GL H 398.2
SOM

122144
LBSNAA

लाल बहादुर श कादमी
L.B.S. National Academy of Administration
मसूरी
MUSSOORIE
पुस्तकालय
LIBRARY
—
122144
अवाप्ति संख्या
Accession No. ~~14655~~
वर्ग संख्या
Class No. GLH 398.2
पुस्तक संख्या
Book No. SOM ~~सोमदे~~

सोमदेव कृत

# कथा-सरित्सागर

—संक्षिप्त हिंदी रूपांतर—

●

रूपांतरकार

**गोपालकृष्ण कौल**

●

संपादक

**विष्णु प्रभाकर**

●

१९५९

सस्ता साहित्य प्रकाशन

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल,
नई दिल्ली

पहली बार : १९५९
मूल्य
छः रुपये

मुद्रक
हिंदी प्रिंटिंग प्रेस
दिल्ली

# प्रकाशकीय

भारतीय साहित्य में 'कथा-सरित्सागर' का महत्वपूर्ण स्थान है। जैसाकि इसके नाम से ही स्पष्ट है, यह कथा-कहानियों का विशाल भंडार है और इसकी कहानियां भारत के कोने-कोने में फैली हुई हैं, हालांकि कम ही लोग जानते हैं कि वे कबसे प्रचलित हैं और कहां से ली गई हैं।

मूल ग्रंथ संस्कृत में है। हमारी बहुत दिनों से इच्छा थी कि संस्कृत साहित्य के इस मूल्यवान ग्रंथ-रत्न का हिंदी में अनुवाद प्रकाशित किया जाय, जिससे हिंदी के पाठक उसका रसास्वादन कर सकें। वह इच्छा अब पूर्ण हो रही है। आकार बड़ा होने तथा कुछ अन्य कारणों से अविकल अनुवाद देना तो संभव नहीं हो सका, कुछ स्थल कम या संक्षिप्त भी कर देने पड़े, फिर भी प्रयत्न यह रहा है कि कोई भी महत्व का प्रसंग छूटने न पाये। वस्तुतः यह अनुवाद नहीं है, चाहें तो भावानुवाद कह सकते हैं।

सारी पुस्तक कहानियों से भरी पड़ी है और कहानियां भी कैसी? एक-से-एक बढ़कर। इतनी रोचक कि एक बार हाथ में उठालें, तो बिना पूरी किये छूटे ही नहीं। कहानियों को पढ़कर मनोरंजन तो होता ही है, शिक्षाप्रद भी बहुतेरी हैं, साथ ही उनसे तत्कालीन समाज के जन-जीवन की—रीति-रिवाजों, प्रथाओं, लोकाचार—तथा किसी हद तक इतिहास की भी, झांकी मिलती है।

मूल ग्रंथ की रचना ग्यारहवीं शताब्दी में हुई थी। इन नौसौ वर्षों में अनेक विद्वानों ने इस पर अन्वेषण-कार्य किया है और अंग्रेजी में तो इसका अनुवाद भी दस जिल्दों में कभी का निकल चुका है।

हम आशा करते हैं कि हिंदी में इस ग्रंथ का स्वागत होगा और इसके पठन-पाठन से पाठकों में मूल ग्रंथ को पढ़ने की जिज्ञासा उत्पन्न होगी।

—मंत्री

# भूमिका

भारतीय साहित्य की विश्व को जो देन है, उसमें लोकप्रिय-कथा की देन विशेष महत्व की है। भारत कथाओं का देश है। विश्व में कहानी का प्रचार यहीं से हुआ है। ईरानियों ने यहीं से इस कला को सीखा, सीखकर अरबों को सिखाया। अरब से यह कला तुर्की और रोम होती हुई संसार भर में फैल गई। यूरोप के महान कथाकारों बोकेशियो, गेटे, ला फोंते, चौसर और शेक्सपियर के साहित्य की प्रेरणा ये ही कथाएं रही हैं। न जाने कितनी कथाएं न जाने किस-किस देश में गई और वहां-वहां के जीवन में समा गईं।

'कथा-सरित्सागर' इसी प्रकार की कथाओं का एक अद्भुत और महत्वपूर्ण ग्रंथ है। साधारणतया भारतीय साहित्य में दो प्रकार की कथाएं मिलती हैं— उपदेशात्मक और मनोरंजक। उपदेशात्मक कथाएं ब्राह्मणों, जैनियों और बौद्धों ने समान रूप से लिखी हैं। बौद्धों की 'जातक-कथाओं' का इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान है। जैनियों का भंडार तो अक्षय है, अभी तक बहुत-कुछ अछूता भी है। वेदों, पुराणों और महाभारत में भी अनेकों कथाएं हैं। 'पंचतंत्र' का मूल्य तो विश्व-विश्रुत है ही। पशु-पक्षियों के माध्यम से उसमें नीति-शास्त्र की विवेचना की गई है। 'कथा-सरित्सागर' मनोरंजक कहानियों की श्रेणी में आता है। इसमें उपदेशात्मक कथाएं भी हैं—'पंचतंत्र' के अनेक अंश इसका प्रमाण हैं; परंतु मुख्यतया इसका लक्ष्य मनुष्य और उसके समाज का चित्रण और मनोरंजन करना है। इसलिए साहित्यिक कथाओं में यह बहुत ही महत्वपूर्ण है। यह ग्रंथ मौलिक नहीं है, बल्कि महाकवि गुणाढ्य द्वारा पैशाची भाषा[1] में लिखी गई एक बहुत प्राचीन और लोकप्रसिद्ध पुस्तक 'बृहत्कथा' का संक्षिप्त संस्कृत रूपांतर है।

१. **पैशाची भाषा के जन्मस्थान के बारे में काफी मतभेद है, परंतु अधिकतर विद्वानों का मत है कि यह उस काल में विंध्यप्रदेश में बोली जाती थी।**

'बृहत्कथा' आज उपलब्ध नहीं है। उसके और उसके लेखक के संबंध में पूरी जानकारी भी किसीको नहीं है, परंतु वे दोनों थे अवश्य, यह निर्विवाद रूप से सिद्ध हो चुका है। स्वयं 'कथा-सरित्सागर' इसका प्रमाण है। इसके प्रथम लंबक 'कथा-पीठ' में यह कथा दी हुई है। काश्मीरी संस्करणों में गुणाढ्य को गोदावरी तट पर बसे प्रतिष्ठान का निवासी माना है और किसी सातवाहन राजा का कृपा-पात्र बताया है। नेपाली-संस्करण के अनुसार उनका जन्म मथुरा में हुआ और वह उज्जैन के राजा मदन के आश्रित थे। अधिकतर विद्वान पहली बात को ठीक मानते हैं। 'बृहत्कथा' के तीन अनुवाद या रूपांतर आज उपलब्ध हैं :

१. **बृहत्कथा-श्लोक-संग्रह** : इसके लेखक थे नेपाल-निवासी बुधस्वामी। यह कब हुए, यह निश्चय से तो नहीं कहा जा सकता है, परंतु अनुमान से वह आठवीं या नवीं शताब्दी में रहे होंगे। इस संग्रह की पूरी प्रति नहीं मिलती। खंडित प्रति में २८ सर्ग और ४५३९ पद्य हैं। संग्रह का अध्ययन करने पर अनुमान किया जाता है कि संपूर्ण ग्रंथ में लगभग २५,००० श्लोक रहे होंगे। दूसरे अनुवादों और रूपांतरों से यह काफी भिन्न है। इस पर आगे विचार करेंगे। अनेक विद्वानों की राय में यह रूपांतर मूल-कथा के सबसे अधिक निकट है। यह सरल, स्पष्ट और निर्मल भाषा में में लिखा गया है। वर्णन स्वाभाविक और स्वर नैतिक है।

२. **बृहत्कथा-मंजरी** : काश्मीर के राजा अनंत (सन १०२८-८०) के राज्य-काल में सन १०६३-६ के आस-पास महाकवि क्षेमेंद्र ने इस ग्रंथ की रचना की। जैसाकि इसके नाम से स्पष्ट है, यह विस्तृत 'बृहत्कथा' का सा है। कवि ने रामायण और महाभारत का सार भी 'रामायण-मंजरी' और 'महाभारत-मंजरी' के रूप में प्रस्तुत किया है। इससे जान पड़ता है कि उस काल में 'बृहत्कथा' का महत्व रामायण-महाभारत जैसा ही रहा होगा। इसमें १८ लंबक और ७५०० पद्य हैं। कविता ऊंचे दर्जे की है, परंतु कवि ने मूल-कथा को इतना संक्षिप्त कर दिया है कि वह रसहीन और दुर्बोध हो गई है। वैसे कहीं-कहीं वर्णन सुंदर हैं और शैली भी आकर्षक है, विशेषकर नारी के सौंदर्य और राजकुमारों के शौर्य-वीर्य के वर्णन में। 'श्लोक-संग्रह' से मिलाने पर पता लगता है कि इसमें कुछ ऐसी कथाएं भी शामिल कर ली गई हैं, जो 'बृहत्कथा' में नहीं रही होंगी बल्कि उस काल में काश्मीर में प्रचलित थीं। इससे मुख्य-कथा का सूत्र बिखर गया है। कवि का एक नाम व्यासदेव भी था और वह अभिनव गुप्त (१००० ई०) के शिष्य थे।

**३. कथा-सरित्सागर :** महाकवि क्षेमेंद्र के ही समकालीन राम के पुत्र सोमदेव भट्ट ने उनसे लगभग २० वर्ष बाद इस ग्रंथ की रचना की। वह भी काश्मीर-निवासी थे। ऐसा माना जाता है कि अनंतराज की विदुषी रानी सूर्यवती ने 'मंजरी' को बहुत ही संक्षिप्त और अरुचिकर पाया, तो उन्होंने सोमदेव को नया ग्रंथ लिखने को प्रोत्साहित किया। तब इन्होंने 'बृहत्कथा' के अनुकूल, न अति संक्षिप्त और न अति विस्तृत, संस्कृत भाषा में अत्यंत रोचक 'कथा-सरित्सागर' की रचना की।

इसमें १८ लंबक, १२४ तरंग और २२,००० श्लोक हैं। यह ग्रंथ सचमुच रोचक है। शैली आकर्षक और सरल, भाषा प्रांजल और प्रवाहमयी होने के कारण यह 'मंजरी' से बहुत उत्कृष्ट है। कवि अलंकरण में इतना विश्वास नहीं करते, जितना कथानक को सुंदर ढंग से प्रस्तुत करने में। वास्तव में उनका चरम लक्ष्य ही यही है। परंतु 'मंजरी' की तरह इसमें भी अनेक काश्मीरी कहानियां आगई हैं।

इनके अतिरिक्त सातवीं सदी में गंगराज दुर्विनीत ने 'बृहत्कथा' का संस्कृत संस्करण प्रस्तुत किया था।[1] उन्होंने 'किरातार्जुनीय' की जो टीका लिखी है, उसके १५वें सर्ग की पुष्पिका में यह बात कही गई है,[2] पर मूल ग्रंथ की तरह वह भी अब उपलब्ध नहीं हैं।

संस्कृत-साहित्य में गुणाढ्य और 'बृहत्कथा' का उल्लेख अनेक बार हुआ है। सबसे पहले दंडी (६ठी सदी के अंत से ८वीं के आरंभ तक) के 'काव्यादर्श' में 'बृहत्कथा' का नाम आया है—'भूतभाषामयीं प्राहुरदभुतार्थां बृहत्कथां'—'काव्यादर्श' १।३८। सुबंधु (६०० ई० के आस-पास) ने 'वासवदत्ता' में इसका वर्णन इस प्रकार किया है : 'बृहत्कथारंभैरिव शालिभंजको पेतैः।' बाण (७वीं सदी) ने अपने दोनों ग्रंथों 'कादंबरी' और 'हर्षचरित' में इसकी प्रशंसा की है। उन्होंने इसे भगवान शंकर की लीला के समान विस्मयकारिणी बताते हुए कहा है :

**समुद्दीपितकंदर्पा कृत गौरी प्रसाधना।**
**हरलोलेव नो कस्य विस्मयाय बृहत्कथा॥**

सोमदेव सूरि (१०वीं सदी) ने भी 'यशस्तिलक चंपू' में इसकी प्रचुर प्रशंसा की है। धनंजय ने (लगभग ९०० ई०) 'दशरूप' में इसे रामायण के साथ स्मरण किया है—

१. **विश्व-साहित्य की रूपरेखा**—भगवतशरण उपाध्याय, पृ० ४९४
२. **संस्कृत-साहित्य का इतिहास**—वी० वरदाचार्य, पृ० १७१

'रामायणादि च विभाव्य बृहत्कथा च' १।६१। 'कुवलयानंद' में लिखा है—'चित्रार्था न बृहत्कथा मचकथं।' त्रिविक्रमभट्ट ने 'नलचंपू' (१०वीं सदी) में और गोवर्धन (१२वीं सदी) ने 'आर्या-सप्तशती' में क्रमशः गुणाढ्य का उल्लेख इस प्रकार किया है—'धनुवेव गुणाढ्येन निःशेषो रंजितो जनः।' १।१४, तथा

**अतिदीर्घ जीविदोपाद व्यासेन यशोअपहारितं हंत,**
**कैर्नोच्येत गुणाढ्यः स एव जन्मांतरापन्नः॥**

गुणाढ्य की कीर्ति केवल भारत में ही सीमित नहीं रही, बल्कि बृहत्तर भारत में भी फैली हुई है। ८७५ ई० के कंबोडिया के एक शिलालेख में इनका नाम आया है।[1]

ऐसा माना जाता है कि भारतीय साहित्य रामायण-महाभारत के बाद कथावस्तु के लिए जातकों और 'बृहत्कथा' का ऋणी है। (१) स्वप्नवासवदत्ता (भास ५००-४०० ई० पू०), (२) प्रतिज्ञा-यौगंधरायण (भास), (३) पंचतंत्र (विष्णुशर्मा), (४) कादंबरी (बाण, ७वीं सदी), (५) चारुदत्त (भास), (६) मृच्छकटिक (शूद्रक, ५वीं सदी), (७) रत्नावली (श्रीहर्ष, ६०६-६४७ ई०), (८) नागानंद (श्रीहर्ष), (९) प्रियदर्शिका (श्रीहर्ष), (१०) मालती-माधव (भवभूति, ८वीं सदी), (११) मुद्राराक्षस (विशाखदत्त, ५वीं सदी), (१२) वैतालपच्चीसी (अनेक लेखक), (१३) हितोपदेश (नारायण, १४वीं सदी), (१४) वेणी-संहार (भट्टनारायण, ८वीं सदी) और (१५) तिलकमंजरी (धनपाल १०वीं सदी) आदि का आधार किसी-न-किसी रूप में गुणाढ्य की 'बृहत्कथा' है। परंतु यह तथ्य निर्विवाद नहीं है, विशेषकर भास के नाटकों, 'पंचतंत्र', 'वैतालपच्चीसी' और 'हितोपदेश' के संबंध में यह कहना बड़ा कठिन है कि उनका संबंध गुणाढ्य या उनकी 'बृहत्कथा' से रहा है। भास और गुणाढ्य के काल का अभीतक कोई सर्व-सम्मत निर्णय नहीं हो सका है। अनेक विद्वानों के मतानुसार ईसा पूर्व की पांचवीं सदी से लेकर दसवीं सदी तक भास का काल वताया जाता है, परंतु बहुमत ने इनका काल ईसा पूर्व पांचवीं और चौथी सदी के बीच निर्धारित किया है। उसीको हमें स्वीकार करना होगा[2]। गुणाढ्य के बारे

१. **संस्कृत साहित्य का इतिहास**—हंसराज अग्रवाल, पृ० १९६; वी० वरदाचार्य, पृ० १७२

२. **संस्कृत साहित्य का इतिहास**—हंसराज अग्रवाल, पृ० ७५; बलदेव उपाध्याय, पृ० ४९९, पंचम संस्करण

में श्री बलदेव उपाध्याय ने अपने इतिहास में लिखा है—"कुछ लोग 'बृहत्कथा' को पंचम शतक की रचना मानते हैं, परंतु अधिकांश विद्वानों की सम्मति में इसकी रचना विक्रम की प्रथम शताब्दी (ईसा पूर्व प्रथम शती से प्रथम शती ई० तक) में हुई।" वी० वरदाचार्य इसका समय ७३ ई० पू० और २१८ ई० के बीच मानते हैं[1]। लैकाट का भी यही मत है[2]। यदि इस बात को स्वीकार करलें, तो ईसा पूर्व पांचवीं और चौथी शती में होनेवाला भास इसका ऋणी कैसे हो सकता है[3] ? वास्तव में कोई भी विद्वान और इतिहासकार इस बारे में किसी निश्चित मत पर नहीं पहुंच पाया है। उदयन और वासवदत्ता का काल ६ठी शती वि० पू० है। उदयन तथा दर्शक ६ठी शती वि० पू० से संबद्ध ऐतिहासिक व्यक्ति हैं[4]। यह भी स्पष्ट है कि राम और कृष्ण के बाद उदयन ही ऐसा व्यक्ति है, जिसकी कथा को लेकर संस्कृत में विपुल साहित्य की सृष्टि हुई है। तब यह क्यों न मान लें कि भास और गुणाढ्य दोनों स्वतंत्र रूप से उदयन की ओर आकर्षित हुए थे ? आज जो स्थिति है, उसमें ऐसा ही करना होगा।

'पंचतंत्र' और 'वैतालपच्चीसी' के बारे में भी कुछ निश्चय से नहीं कहा जा सकता। 'पंचतंत्र' का एक रूप क्षेमेंद्र की 'बृहत्कथा-मंजरी' और सोमदेव के 'कथा-सरित्-सागर' में तो मिलता है, परंतु इन सबसे पूर्व के रूपांतर बुधस्वामी के 'बृहत्कथा-श्लोक-संग्रह' में यह नहीं है। इसलिए कुछ विद्वानों (लैकोट, हर्टेल, एडगर्टम आदि) का मत है कि मूल 'बृहत्कथा' में 'पंचतंत्र' नहीं था। अस्तु, श्री हंसराज अग्रवाल के मतानुसार असली 'पंचतंत्र' दूसरी या तीसरी शताब्दी में रचा गया[5] और 'बृहत्कथा' में काश्मीरियों द्वारा कभी बाद में बढ़ा दिया गया होगा[6]। 'वैताल पंचविंशति' की भी यही स्थिति है। श्री बलदेव उपाध्याय के मतानुसार यही कहा जा सकता है कि यह 'बृहत्कथा' का अंश नहीं है, प्रत्युत यह एक स्वतंत्र कथाचक्र है, जिसका संबंध लोक-कथाओं के साथ पूर्णतया स्थापित किया जा सकता है।[6]

१. **संस्कृत-साहित्य का इतिहास**—वी० वरदाचार्य, पृ० ४३७
२. **संस्कृत-साहित्य का इतिहास**—हंसराज अग्रवाल, पृ० १९८
३. **संस्कृत-साहित्य का इतिहास**—बलदेव उपाध्यय, पृ० ५०५ पंचम संस्करण
४. **संस्कृत-साहित्य का इतिहास**—बलदेव उपाध्याय, पृ० ४९८
५. **संस्कृत-साहित्य का इतिहास**—हंसराज अग्रवाल, पृ० २२३-२३६
६. **संस्कृत-साहित्य का इतिहास**—बलदेव उपाध्याय, पृ० ४३९

लेकिन कुछ भी हो, 'बृहत्कथा' का महत्व फिर भी अक्षुण्ण है। अवांतरकालीन कथा-साहित्य पर इसका प्रचुर प्रभाव देखने को मिलता है। रामायण और महाभारत के समान यह भी संस्कृत-साहित्य का जाज्वल्यमान रत्न है। कथावस्तु के प्रबंध की दृष्टि से अनेक विद्वान इसकी तुलना रामायण से करते हैं। कवि ने केवल उदयन की कथा नहीं कही है, बल्कि इस ग्रंथ के संक्षिप्त रूपांतरों से ज्ञात होता है कि मूल ग्रंथ में कौशांबी के राजा उदयन के पुत्र नरवाहनदत्त के पराक्रमों का वर्णन था। नरवाहनदत्त अपने मित्र गोमुख के साथ वन में गया। उसने एक विद्याधर राजकुमारी मदनमंचुका से विवाह किया। एक विद्याधर मानसवेग मदनमंचुका को हर ले गया। मानसवेग की बहन वेगवती ने मदनमंचुका के ढूंढ़ने में नरवाहनदत्त की सहायता की। अंत में नरवाहनदत्त विद्याधरों का महाराज होगया[1]। मदनमंचुका और सीता की कथा में कुछ समानता है, इसीलिए रामायण से तुलना की गई है, वरना विवरण की दृष्टि से दोनों में बड़ा अंतर है।

मूल-कथा में बेशक इतनी ही कथा रही हो, परंतु 'कथा-सरित्सागर' में इससे अधिक बहुत-कुछ है। उसमें ऐसी अनेक कथाएं हैं, जिनका मूल-कथा से कोई संबंध नहीं है। निश्चय ही ये कथाएं उस समय काश्मीर में प्रचलित रही होंगी। क्षेमेंद्र की 'बृहत्कथा-मंजरी' से यह तिगुना है। क्षेमेंद्र के समान इसके अठारह खंड हैं, जिन्हें दोनों ने 'लंबक' कहा है। उपखंडों को 'मंजरी' में 'गुच्छ' परंतु 'सागर' में 'तरंग' नाम दिया है, जो स्वाभाविक है। पहले पांच खंडों की कथा दोनों की समान है, परंतु शेष का क्रम 'सागर' में इस प्रकार बदल दिया गया है :

| **लंबक का शीर्षक** | **'मंजरी' में क्रम** | **'सागर' में क्रम** |
|---|---|---|
| सूर्यप्रभ | ६ | ८ |
| मदनमंचुका | ७ | ६ |
| बेला | ८ | ११ |
| शशांकवती | ९ | १२ |
| विषमशील | १० | १८ |
| मदिरावती | ११ | १३ |
| पद्मावती | १२ | १७ |

१. **संस्कृत-साहित्य का इतिहास**—वी० वरदाचार्य, पृ० १७१

| | | |
|---|---|---|
| पंचलंवक | १३ | १५ |
| रत्नप्रभा | १४ | ७ |
| अलंकारवती | १५ | ६ |
| शक्तियशोलंबक | १६ | १० |
| महाभिषेक | १७ | १४ |
| सुरतमंजरी | १८ | १६ |

प्रश्न उठता है कि सोमदेव ने ऐसा क्यों किया ? बुधस्वामी के संग्रह से मिलान करने पर यह अंतर और भी अधिक मालूम होता है। जहां तक क्षेमेंद्र और सोमदेव का प्रश्न है, प्रारंभ में क्षेमेंद्र का क्रम अधिक संबद्ध मालूम होता है। उन्होंने मदनमंचका के खो जाने से संबंध रखनेवाली घटनाओं को एक साथ रखने का प्रयत्न किया है, परंतु उसके बाद गड़बड़-घोटाला है। इसके विपरीत सोमदेव ने इस गड़बड़-घोटाले को दूर करने के लिए सभी क्रम बदल दिया है। उन्होंने सारी कथा में यथासंभव क्रम और संबंध बनाये रखने का प्रयत्न किया। परिणाम यह हुआ कि क्षेमेंद्र की प्रारंभिक संगति भी समाप्त होगई। पाठक बड़ी सरलता से पता लगा सकते है कि अनेक लंबक गलत स्थान पर हैं और अपने से ठीक पहले के लंबक से उनका कोई संबंध नहीं है।

यह गड़बड़-घोटाला इसलिए और भी जटिल जान पड़ता है कि बहुत-सी कथाओं का मुख्य-कथा से कोई संबंध नहीं है। वास्तव में मुख्य-कथा से अधिक स्थान गौण-कथाओं ने ले लिया है। नरवाहनदत्त की कथा के वाद विक्रम-कथाओं की आवश्यकता समझ में नहीं आती। अंत में जो मुख्य-कथा का सूत्र फिर से पकड़ा गया है, वह किसी चतुर संपादक का काम लगता है। उसने असंबद्धता को संबद्ध करके कथा की पूर्णता दिखाने का प्रयत्न किया है।

बहुत-सी गौण कथाएं व्यर्थ जान पड़ती हैं, विशेषकर 'पंचतंत्र' की। जैसाकि पहले कहा जा चुका है—कुछ विद्वानों के मतानुसार ये कथाएं गुणाढ्य की 'बृहत्कथा' में नहीं रही होंगी। 'कथा-सरित्सागर' 'बृहत्कथा-श्लोक-संग्रह' से अनेक बातों में भिन्न है। गुणाढ्य के जन्म-स्थान की चर्चा पहले हो चुकी है। यह तो तीनों मानते हैं कि ये कथाएं शिव ने पार्वती को सुनाई थीं, परंतु बुधस्वामी के मतानुसार शिव पार्वती को विद्याधरों की ऐसी कथा सुनाते हैं, जो किसीने न सुनी हो। यहां केवल विद्याधरों की कथा की शर्त है, परंतु 'कथा-सरित्सागर' में देवी-देवता भी हैं, मनुष्य भी हैं, पशु-पक्षी हैं। स्वयं गणाढ्य के जन्म के बारे में 'कथा-सरित्-

सागर' में लिखा है कि पार्वती ने दो गणों को शाप दिया, परंतु बुधस्वामी केवल एक गण की चर्चा करते हैं। 'कथा-सरित्सागर' में मदनमंचुका के विवाह में जो असंगतियां हैं, वे 'श्लोक-संग्रह' में नहीं हैं। उसमें कलिंगसेना की कथा ही नहीं है। 'श्लोक-संग्रह' में मुख्य देवता कुबेर हैं। 'नरवाहनदत्त' का अर्थ है 'नरवाहन' अर्थात कुबेर द्वारा दिया गया, परंतु क्षेमेंद्र और सोमदेव ने शिव को मुख्य देवता माना है। यह सब काल का प्रभाव है। जान पड़ता है, 'श्लोक संग्रह' मूल के अधिक निकट है। बुधस्वामी ने उदयन की कथा ही नहीं दी है[1]। तीनसौ वर्ष बाद क्षेमेंद्र और विशेषकर सोमदेव ने उसमें काफी परिवर्तन कर दिया। शायद उनके काल तक 'बृहत्कथा' में ही परिवर्तन हो चुका हो या फिर उन्होंने मूल-कथा को संक्षिप्त करके उस काल में प्रचलित लोक-कथाएं जोड़ दी हों।

जो हो, 'कथा-सरित्सागर' अपने उपलब्ध रूप में अति रोचक, ज्ञानवर्द्धक और महत्वपूर्ण है। प्राचीन भारत में इतिहास लिखने की परंपरा नहीं रही है, परंतु 'कथा-सरित्सागर' ऐसी कहानियों का अनंत भंडार है, जो तत्कालीन भारत के रीति-रिवाजों और विश्वासों का सुंदर परिचय देती हैं। वे कथाकार की प्रतिभा का भी परिचय देती हैं। यही प्रतिभा तो विश्व के भावी महान कथाकारों की प्रेरणा बनी।

जहां तक तत्कालीन राजनैतिक चित्र का संबंध है, इन कथाओं से स्पष्ट ज्ञात होता है कि भारत में १०वीं-११वीं शती में असंख्य छोटे-छोटे राज्य थे, जिनके शासक प्रायः महत्वाकांक्षी और वंशाभिमानी होते थे। उनके मंत्री प्रायः बुद्धिमान ब्राह्मण होते थे। भावी मंत्री, सेनापति आदि प्रारंभ से ही युवराज के साथ शिक्षा पाते थे। युद्ध, विग्रह, संधि, विवाह और प्रदेश बढ़ाने के लिए अभियान—इन सभी बातों के स्पष्ट चित्रों के साथ राज्य दरबारों के षड्यंत्रों, ईर्ष्या-द्वेषों, वैभव-विलास, सौंदर्य-पिपासा आदि सभी प्रवृत्तियों का परिचय मिलता है। राजाओं का पतन भी होता था। कभी-कभी जनता विद्रोह भी करती थी।

अनार्य जातियों का वर्णन आता है। उनकी आर्यों से मित्रता थी, यह भी स्पष्ट पता लगता है। यद्यपि कथाकार को भारत के अनेक राज्यों का पता था, परंतु राजस्थान के किसी राज्य का जिक्र नहीं आया है। जान पड़ता है कि लेखक का भौगोलिक ज्ञान पूर्ण नहीं है। अकाल खूब पड़ते थे और स्थान-परिवर्तन भी होता था।

१. **संस्कृत-साहित्य का इतिहास**—हंसराज अग्रवाल, पृ० २०६

तत्कालीन सामाजिक स्थिति और भी स्पष्ट रूप में उभरकर आई है।

जहां तक जाति-प्रथा का संबंध है, वह थी; परंतु उप-जातियां नहीं थीं। चांडाल बेशक थे। नीच वर्ण की नारियों से, चांडाल कन्या तक से, विवाह हो सकता था (पृष्ठ ११२, ४८१)। चांडाल व धीवर पुत्र राजकन्याओं का वरण कर सकते थे, परंतु वह बुरा माना जाता था। कथाकार ने उन्हें पूर्व जन्म में उच्च वर्ण का बताकर इसका समाधान किया है (पृष्ठ ४७६)। ऐसी ही स्थिति खान-पान के संबंध में थी। नर्तकी-पुत्र किसी भी तरह क्षत्रीय पुत्र से श्रेष्ठ नहीं था।

अंतर-प्रांतीय विवाह अंतर-जातीय विवाहों की तरह मान्य थे और जाति का पेशे से कोई संबंध नहीं था। व्यापार प्रतिष्ठित पेशा था। वैश्यों की बड़ी चर्चा है। वे समुद्र-यात्रा खूब करते थ। लालची भी थे, पर सूदखोर नहीं थे। ब्राह्मण राज्य पर निर्भर थे और दास-प्रथा प्रचलित थी।

कन्या का जन्म साधारणतया अच्छा नहीं समझा जाता था (पृष्ठ १७३-४ और ३०४)। बाल-विवाह भी साधारणतया नहीं होते थे। विधवा-विवाह का विरोध भी नहीं था। बहु-विवाहों की भरमार थी, पर बहुधा राजा और संपन्न लोग ही ऐसा करते थे। नरवाहनदत्त और सूर्यप्रभ के अनेकों विवाह हुए। अनेक कन्याओं ने सामूहिक रूप से नरवाहनदत्त से विवाह किया, परंतु कथाकार ने ऐसी घटनाओं को अलौकिक रूप में चित्रित किया है। वैसे विवाह अपने-आप में महत्वपूर्ण और सब कुछ प्राप्त करानेवाला था। युवक-युवतियां स्वयं विवाह करते थे। गंधर्व-विवाह खूब प्रचलित थे। परदा नहीं था। स्त्रियां पूर्ण स्वतंत्र थीं और व्यापार करती थीं। नृत्य संगीत और चित्रकला का खूब प्रचार था, उच्च कुल की नारियां भी नृत्य करती थीं। वस्तुतः नारी का एक बहुत ही अद्भुत अध्ययन-चित्र 'कथा-सरित्सागर' में मिलता है। एक ओर नारी की दुष्टता की चरम सीमा इसमें है, तो दूसरी ओर उसकी अद्भुत विशालता, कोमलता और प्रेम के चित्र भी हैं। उसके सौदर्य और चक्कर (पृष्ठ ११० और १४२) की खूब चर्चा है। संकेत पाकर वे प्रेमियों से मिलने मंदिर में जाती हैं (पृष्ठ ११८)। महलों में दासियों द्वारा किसी भी इच्छित पुरुष को बुलाया जा सकता था। सुंदर नारियों के स्वेच्छाचार की कथाएं तो इतनी हैं कि अचरज होता है। प्रेमी के लिए स्वयं पति की हत्या तक करने से वे नहीं झिझकतीं। कहीं-कहीं तो कथाकार ने नारी को इतना गिरा दिया है कि वह कोढ़ियों तक से कुकर्म करती है (पृष्ठ ३१३)। एक के बाद एक अनेक पति ग्रहण करना उसके लिए

ऐसा ही है, जैसे एक के बाद एक ग्रास ग्रहण करना। पिता के घर स्वतंत्र लड़कियां कैसे बिगड़ती थीं, इसके अनेक उदाहरण 'सागर' में मिलते हैं (पृष्ठ ७३ और ८५)। शराब-मांसादि का उनमें खूब प्रचार था (पृष्ठ २०१)। वे तांत्रिक रीति से सिद्धि करती थीं (पृष्ठ ७७) और सुंदर पुरुष के पीछे पागल थीं (पृष्ठ १९९)।

लेकिन इन सब बातों को बुरा समझा जाता था और इन अपराधों के लिए कठोर-से-कठोर दंड और पश्चात्ताप की व्यवस्था थी। फिर भी यह एक स्वस्थ समाज का चित्र नहीं है। ऐसा लगता है तब नारी के प्रति घृणा के भाव पैदा हो गये थे। तीसरी बेताल-कथा (पृष्ठ ३९०) में तो फतवा दे दिया गया है कि 'स्त्रियां ही पापिनी होती हैं।' किसी भी कारग से हो, स्वार्थ या परमार्थ, पत्नी को किसी दूसरे को दे देना बड़ा सहज था (पृष्ठ १६१ और ४८५)।

परंतु यह तसवीर का एक ही पहलू है। नारी को एक ओर जहां इतना पतित दिखाया गया है, वहां उसके चारित्र्य, उसके पातिव्रत धर्म, उसके शौर्य और कुशलता की महिमा भी गाई गई है। पति के परदेश जाने पर देवस्मिता दुष्टों से न केवल अपने सतीत्व की रक्षा करती है, अपितु परदेश जाकर पति का भी उद्धार करती है (पृष्ठ ४४)। शक्तिमती (पृ० ४५) और भवशर्मा (पृ० २९४) की कथाएं भी यही बताती हैं। यही नहीं, जहां योगिनी और चेलियां दूतियों का काम करती हैं (पृष्ठ ४२), वहां वेश्याएं भी शीलवती होती हैं (पृष्ठ १४३—६)। यूं साधारणतया वेश्याओं का समाज में मान था। वे लोक-व्यवहार सिखाती थीं।

नारी-चरित्र के मनोवैज्ञानिक अध्ययन और अद्भुतता के अनेक उदाहरण 'कथा-सरित्सागर' में मिलते हैं। चंद्रश्री किसी दूसरे पुरुष से प्रेम करते रहने पर अपने पति के साथ सती हो जाती है (पृष्ठ २४१)। अध्ययन की दृष्टि से रानी कल्याणवती (पृ०२४२) और विद्रोहिणी मानपरा (पृ०१६१) की कथाएं सुंदर हैं।

यद्यपि बुरा समझा जाता था, तथापि शराब-मांस का प्रचार खूब था। गाय का मांस वर्जित नहीं था, चांडाल तो खाते ही थे, उच्च वर्णवालों द्वारा भी शास्त्र-विधि से मारकर खाने का विधान आता है (पृ० १११)। मनुष्य का मांस तक खाया जाता था (पृ० ८२)। तांत्रिकों और वाममार्गियों का प्रभाव इतना है कि गर्भ निकालकर खाने की व्यवस्था मिलती है—ऐसा करके मनुष्य विद्याधर बन सकते थे। जादू, टोना, मंत्र, तंत्र, अलौकिकता, आकाश-गमन, स्वर्ग-यात्रा, ये सब ऐसी बातें हैं, जो कथाओं की अस्वाभाविकता और अद्भुतता को स्पष्ट करती हैं। पुनर्जन्म तो जैसे

हर रोग की रामवाण दवा है। सब बुरी बातें पुनर्जन्म और शाप के कारण होती हैं। ऐसा लगता है जैसे कथाकार समाज में प्रचलित बुराइयों को ढकने का प्रयत्न कर रहा है। शाप देना तो इतना सरल था कि हर व्यक्ति उस शक्ति का उपयोग करता दिखाई देता है। यह एक बहुत बड़ा मजाक है।

धार्मिक स्थिति भी काफी जटिल थी। देवताओं और राक्षसों का विरोध तो है ही। राक्षस शिव के उपासक हैं, कथाकार का पक्षपात उन्हींकी ओर है। दैत्यों के विरोध में उसने इंद्र को ओछा दिखाया है। उसके माता-पिता अदिति और कश्यप तक उसके विरुद्ध हैं (पृ० १७१-१९२)। यह एक महत्वपूर्ण तथ्य है। 'कथा-सरित्सागर' पर बौद्ध प्रभाव स्पष्ट है। अनेक कथाएं जातकों से ली गई हैं (पृ० ३५३-६३ तथा जीमूतवाहन की कथा पृ० ८७)। कथाकार ने बौद्ध-धर्म को जैन-धर्म से श्रेष्ठ माना है (पृष्ठ ३५३)। इन सब बातों से जान पड़ता है कि सोमदेव स्वयं बौद्ध रहे होंगे। भदंत आनंद कौसल्यायन ने तो 'जातक' (प्रथम खंड) की भूमिका में (पृ० २७) लिखा है—"इससे अनुमान होता है कि 'बृहत्कथा' का आदि-स्रोत जातक-कथाएं ही रही होंगी।"

ये सब बातें विस्तृत अध्ययन की अपेक्षा रखती हैं। ऐसा लगता है कि इन कथाओं में ईसवी पूर्व प्रथम शती से ग्यारहवीं शती ईसवी तक के भारत का चित्र है और ये कथाएं धीरे-धीरे इकट्ठी होती रही हैं। इसीलिए ब्राह्मण-धर्म की ओर भी झुकाव है और बौद्ध-धर्म की ओर भी। तांत्रिक भी है और राक्षस भी। आर्य जाति की कथाओं के साथ-साथ आर्योत्तर जातियां भी हैं। इतिहास-पुराण का भी इसमें खूब सम्मिलन हुआ है। उर्वशी-पुरुरवा, सुंद-उपसुंद, राम-सीता और विभीषण, विश्वमित्र-मेनका, ययाति-शर्मिष्ठा, उषा-अनिरुद्ध और नल-दमयंती की कथाओं के साथ बोधिसत्व, नंद, चंद्रगुप्त, चंडप्रद्योत और उदयन सभी हैं। नारी अपने चरित्र के उच्चतम शिखर पर भी है और गहनतम गह्वर में भी। भारतीय इतिहास ही नहीं, मानवीय इतिहास के अध्ययन की दृष्टि से भी यह अद्भुत ग्रंथ है। पंचतंत्र, बेताल-पच्चीसी, मूर्खों और बुद्धिमानों की अनेकानेक-कथाएं बुद्धि की विलक्षणता, नीतिमत्ता और सबसे बढ़कर विनोदप्रियता प्रकट करने के लिए हैं। वे जैसे घटाटोप आकाश में इंद्र-धनुष की तरह मन को आकर्षित करती हैं।

इतना महत्वपूर्ण होते हुए भी संस्कृत-साहित्य का यह रत्नागार वर्षों तक विस्मृति के गर्त में पड़ा रहा, और जैसाकि होता आया है, इन ग्रंथों का उद्धार भी पश्चिम में

ही हुआ। सन १८०७ से लेकर अनेक विद्वान इन ग्रंथों के संबंध में काम करते रहे हैं। सन १८३९-६६ में जर्मन-विद्वान ब्रोकॉस ने इसके पांच लंबक (चतुर्दारिका तक) पहले नागरी अक्षरों में, फिर रोमन लिपि में, प्रकाशित किये। उसके बाद शेष १३ लंबक प्रकाशित हुए। सन १८८३ में कलकत्ता के श्री जीवानंद भट्टाचार्य विद्यासागर ने इसको गद्य में रूपांतरित किया। ६ वर्ष बाद सन १८८९ में पं० दुर्गाप्रसाद और काशीनाथ पांडुरंग परब ने इसको संपादित किया और बंबई के 'निर्णयसागर प्रेस' से इसका प्रकाशन हुआ। १९३० ई० में इसका चौथा संस्करण छपा। उसका ही संक्षिप्त हिंदी-रूपांतर यहां प्रस्तुत किया जा रहा है। इससे पूर्व जहां तक हमें पता लग सका है, इसके दो हिंदी अनुवाद या रूपांतर प्रकाशित हो चुके हैं। उनमें एक संक्षिप्त रूपांतर पं० केदारनाथ भट्ट ने किया था और वह इंडियन प्रेस, प्रयाग, से प्रकाशित हुआ था। परंतु किसी भारतीय ने अभी तक इसका व्यापक अध्ययन नहीं किया है। इस दृष्टि से श्री सी० एच० टोनें का अनुवाद बहुत महत्वपूर्ण है। इसका संपादन श्री एन० एम० पेंज़र ने बहुत ही परिश्रम और साधना से किया है। दस खंडों में प्रकाशित उस अनुवाद में अधिकारी विद्वानों ने 'सागर' की विशेषताओं का विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया है।

प्रस्तुत रूपांतर संपूर्ण अनुवाद नहीं है। अनेक अश्लील कथाएं और स्थल सुरुचि का ध्यान रखते हुए छोड़ देने पड़े हैं। कुछ अरोचक कथाएं भी छोड़ दी हैं। हम यह दावा भी नहीं करते कि हम मूल के साथ पूर्णतया न्याय कर सके हैं। परंतु प्रयत्न यही रहा है कि सभी वर्ग के पाठक इससे एक समान रस ग्रहण कर सकें और इसकी रोचकता किसी भी तरह कम न हो। वास्तव में 'कथा-सरित्सागर' कथाओं का सागर है, जैसे विश्व-भर की कथा-रूपी सरिताएं इस सागर में समा गई हों। किसी भाषा की, किसी प्रांत की लोक-कथा हो, दादी-नानी की कहानियां हों, लगभग सभी को पाठक किसी-न-किसी रूप में 'कथा-सरित्सागर" में पा सकेंगे और हमें दृढ़ विश्वास है कि एक बार हाथ में लेने पर पाठकों का मन इसे छोड़ने को नहीं करेगा।

**—विष्णु प्रभाकर**

# विषय-सूची

# कथा-सरित्सागर

# कथा-सरित्सागर

## पहला खण्ड

### : १ :

### वत्सराज

पार्वती को कहानी सुनने का बहुत चाव था। जब शिवशंकर प्रसन्न होते तो वह उनसे कोई-न-कोई कहानी सुना करतीं। इसी प्रकार एक बार शंकर बहुत प्रसन्न हुए तो पूछा, "मैं तुम्हारा कौन-सा प्रिय काम करूं!" पार्वती बोलीं, "यदि आप प्रसन्न हैं तो कोई सुंदर-सी नई कहानी सुनाइए।" तब शिव ने पार्वती के पूर्वजन्म की कथा सुनाई और चुप होगये। इसपर पार्वती ने क्षुब्ध होकर कहा, "यह भी क्या नई कहानी है?" तब शिवजी ने उन्हें प्रसन्न करते हुए कहा, "अच्छा, तो मैं विद्याधरों की एक अनोखी कहानी तुम्हें सुनाता हूं।"

कहीं कोई दूसरा व्यक्ति इस अनोखी कथा को सुन न ले, इसलिए नंदी को पहरा देने के लिए दरवाजे पर बैठा दिया गया। लेकिन जब शिव कथा सुना रहे थे, उनका प्यारा गण पुष्पदंत वहां आया। नंदी ने उसे रोका तो उसे बड़ा अचरज हुआ। बिना कारण मुझे क्यों रोका जा रहा है—यह सोचकर उसका कौतूहल और भी बढ़ गया और वह योग-बल से छिपकर अंदर चला गया। सात विद्याधरों की पूरी कहानी उसने सुन ली। फिर घर जाकर उसने अपनी पत्नी जया को सब कहानियां सुनाईं। जया स्त्री थी और स्त्रियां क्या किसी रहस्य को छिपाये रह सकती हैं। उसने पार्वती को वही कथा जा सुनाई। अब तो पार्वती शिव पर बहुत नाराज हुईं और बोलीं, "तुमने जो कथा सुनाई उसको जया भी जानती है। फिर तुम उसे बिल्कुल नई कैसे बताते थे!"

शिव ने तुरंत ध्यान लगाया और सारा भेद जान लिया। उन्होंने पार्वती से कहा, "यह सब पुष्पदंत की चालाकी है।"

पार्वती क्रोध से भर उठीं और उन्होंने तुरंत पुष्पदंत को मनुष्य-योनि में पैदा होने का शाप दे डाला। जब दूसरे गण माल्यवान ने पुष्पदंत की सिफारिश की तो पार्वती ने उसको भी वही शाप दे दिया। पुष्पदंत, माल्यवान और जया तीनों पार्वती के सामने जाकर बार-बार क्षमा मांगने लगे। उनकी यह दशा देखकर पार्वती का मन करुणार्द्र हो उठा। बोलीं, "मैं शाप तो नहीं लौटा सकती, पर उसका समय कम किये देती हूं। जब मनुष्य-योनि में पुष्पदंत को विंध्याचल पहाड़ पर काणभूति नामक पिशाच मिलेगा और उसको पुष्पदंत सारी कथाएं सुनायगा तब वह शाप से छूट जायगा। फिर काणभूति की भेंट माल्यवान से होगी। काणभूमि से माल्यवान सारी कथाएं सुनकर दूसरों को सुनायगा और इस तरह वह भी शाप से छूट जायगा। काणभूति भी असल में सुप्रतीक नाम का यक्ष है, जो कुबेर के शाप से पिशाच बन गया है।"

यह सुनकर दोनों गण अंतर्धान होगये।

कुछ दिनों बाद पार्वती ने शिव से पूछा, "जिन गणों को मैंने शाप दिया था, वे धरती पर कहां पैदा हुए हैं?"

शिव ने बताया, "कौशाम्बी नामक नगर में पुष्पदंत वररुचि के नाम से पैदा हुआ है और माल्यवान सुप्रतिष्ठित नामक नगर में गुणाढ्य नाम से पैदा हुआ है?"

## : २ :

## वररुचि और काणभूति

वररुचि बड़ा विद्वान था। अपनी योग्यता के बल पर वह राजा नंद का मंत्री भी बना। एक बार उसकी पूजा से खुश होकर विंध्यवासिनी देवी ने सपने में उससे कहा, "जाओ, विंध्याचल पहाड़ पर काणभूति नामक पिशाच से तुम्हारी भेंट होगी।"

वररुचि वहीं पहुंचा। हिंसक पशुओं से भरे हुए उस वन में घूमते हुए एक दिन उसने बरगद के एक पेड़ को देखा। उसके नीचे अनेक पिशाचों के साथ काणभूति बैठा हुआ था।

कुशल-मंगल के पश्चात् वररुचि ने काणभूति से पूछा, "ऐसे जंगल में तुम

इस तरह क्यों रहते हो ?"

काणभूति ने उत्तर दिया, "मैं स्वयं कुछ नहीं जानता, लेकिन सुनी हुई बात तुम्हें बताता हूं। एक बार इसी तरह पार्वती ने शिव से पूछा कि वह मरघट में रहना और कपाल साथ रखना क्यों पसंद करते हैं ? तब शिव ने इस बात का रहस्य बताते हुए कहा—

"जल-प्रलय के बाद, जब दुनिया में पानी-ही-पानी दिखाई दे रहा था तब मैंने अपनी जांघ से लहू की एक बूंद निकालकर उस पानी में डाल दी। वह बूंद अंडा बन गई और जब अंडे को फोड़ा गया तो उसमें से पुरुष निकला। उसके बाद मैंने प्रकृति बनाई। पुरुष और प्रकृति के मेल से प्रजापति बने। प्रजापतियों ने सृष्टि की रचना की, लेकिन सृष्टि की रचना करते ही उनमें घमण्ड पैदा हो गया। मुझे यह अच्छा न लगा। मैंने उनके सिर काट डाले। लेकिन बाद में मुझे बड़ा पश्चात्ताप हुआ और दुःखी होकर मैंने मरघट में रहना तथा हाथ में कपाल रखना निश्चित किया।"

यह कहकर शिवजी चुप होगये। पार्वती ने फिर पूछा, "जिस पुष्पदंत को मैंने शाप दिया था, वह कब वापस आयगा ?"

शिव ने बताया कि काणभूति नाम का जो पिशाच है, वह पहले कुबेर का दास था। एक बार कुबेर ने उसको एक राक्षस के साथ देखा और कुपित होकर शाप दे डाला। इस शाप के कारण ही वह पिशाच बनकर श्मशान में रहता है। उसके भाई ने कुबेर के चरणों में गिरकर उसे शाप से मुक्त कर देने की प्रार्थना की तब कुबेर ने बताया, "पुष्पदंत से कथा सुनने पर यह शाप से छूट जायगा और जब यह वही कथा माल्यवान को सुनावेगा तो वह भी शाप से छूट जायगा।"

यह सब बताकर काणभूति ने कहा—"तबसे मैं विंध्याचल के इस जंगल में पुष्पदंत की प्रतीक्षा कर रहा हूं।"

अब तो वररुचि को अपने पूर्व-जन्म की याद हो आई। वह बोला—"मैं ही पहले जन्म में पुष्पदंत था। मैं तुम्हें अनेक कथाएं सुनाकर शाप से छुड़ा दूंगा।"

काणभूति यह जानकर बहुत खुश हुआ और कथाएं सुनने के बाद उसने वररुचि से अनुरोध किया, "यदि गोपनीय न हो तो कृपाकर अपना हाल विस्तार से बताइये।" इसपर वररुचि ने अपने जीवन की कहानी इस प्रकार सुनाई—

मेरा जन्म कौशांबी में रहनेवाले सोमदत्त ब्राह्मण के घर हुआ था। मेरी

माता का नाम वसुदत्ता था । वह ऋषि-कन्या थी, लेकिन शाप के कारण ब्राह्मण की पत्नी बन गई थी । जब मैं छोटा था तभी मेरे पिता का देहांत हो गया था, इसलिए मेरा पालन-पोषण मेरी मां ने ही किया । एक बार हमारे घर दो ब्राह्मण आये । उन्हें एक रात ठहरना था । उस रात कहीं से मृदंग की आवाज आ रही थी । उसे सुनकर मेरी मां को पिता की याद हो आई । कहने लगीं, "लगता है, भवनंद नाच रहा है । वह तेरे पिता का मित्र था ।"

मैंने कहा, "मैं अभी जाकर भवनंद का खेल देखकर आता हूं, फिर तुम्हें उसी प्रकार करके दिखा दूंगा ।'

यह सुनकर वे ब्राह्मण बड़े विस्मित हुए । तब मां ने उनको विश्वास दिलाया, "मेरा पुत्र जो कुछ एक बार सुन लेता है, उसे याद कर लेता है ।"

ब्राह्मणों को फिर भी विश्वास नहीं आया । उन्होंने मेरी परीक्षा ली । मेरे सामने उन्होंने वेद का भाष्य सुनाया । सुनने के बाद फ़ौरन मैंने उसी प्रकार सुना दिया । फिर मैं उन ब्राह्मणों के साथ नाटक देखने गया और घर आकर अपनी मां को ज्यों-का-त्यों वही नाटक कर दिखाया । मेरी स्मरण-शक्ति पर चकित होकर उनमें से व्याडि नामक ब्राह्मण मेरी मां से बोला, "मां, तुम धन्य हो ! हम दोनों तुम्हारे श्रुतधर पुत्र की खोज में ही भटक रहे थे ।"

जब मां ने मेरी खोज करने का कारण जानना चाहा तो व्याडि ने कहानी सुनाई––

मेरे साथी का नाम इंद्रदत्त है । जब हम दोनों के मां-बाप स्वर्गवासी हुए तो विद्या-प्राप्ति के लिए हम स्वामिकार्तिक की तपस्या करने लगे । स्वामिकार्तिक ने सपने में आकर कहा, "पाटलिपुत्र में तुम लोगों को वर्ष नामक ब्राह्मण से ज्ञान मिलेगा ।" यह सुनकर हम लोग वर्ष की खोज में पाटलिपुत्र आये । यहां हमें वर्ष नामका एक मूर्ख मिला । वह मूर्ख चुपचाप बैठा रहता था, लेकिन उसकी पत्नी ने हमारा स्वागत किया । जब उसे हमारे आने का कारण मालूम हुआ तो उसने बताया, "मेरे पति पहले मूर्ख थे, लेकिन जब इन्होंने स्वामिकार्तिक की तपस्या की तो खुश होकर उन्होंने इन्हें विद्या दान दिया । साथ ही यह आदेश भी दिया कि यह विद्या वह केवल सकृत श्रुतधर को ही सिखायें । अगर तुम कहीं सकृत श्रुतधर का पता लगा सको और उसको साथ ला सको, तो तुमको मेरे पति की विद्या प्राप्त हो सकेगी ।"

यह कहानी सुनाकर व्याडि ने मेरी मां से कहा, "मां, तुम्हारा पुत्र सुकृत श्रुतधर है। वह जो कुछ सुनता है, फ़ौरन याद कर लेता है। इसलिए इसको हमारे साथ भेजने की कृपा करो।

मेरी मां बोली, "जब यह पैदा हुआ था तब आकाशवाणी हुई थी कि वर्ष नामक विद्वान से सब शास्त्र पढ़कर यह व्याकरण में विशेष रूप से अपना नाम पैदा करेगा और दुनिया में वररुचि के नाम से प्रसिद्ध होगा। मैं भी इसे वर्ष के पास भेजने की बात सोच रही थी। तुम लोग आ गये, अच्छा हुआ। अब इसे ले जाओ।"

मां की यह बात सुनकर वे दोनों हर्ष से भर उठे। विदा होते समय व्याडि ने अपना सारा धन मेरी मां को भेंट कर दिया। उसने मेरा जनेऊ किया और तब मुझे वर्ष के पास ले गया। वर्ष ने सारे वेद-शास्त्र मुझे पढ़ाये। मैंने सारे शास्त्र एक बार सुनकर ही याद कर लिये, लेकिन व्याडि ने दो बार सुनकर और इंद्रदत्त ने तीन बार सुनकर याद किये। इसके बाद पाटलिपुत्र में वर्ष का नाम चमक उठा। राजा नंद ने भी उसकी प्रशंसा सुनी और सुनकर बहुत-सा धन उसे भेंट में दिया।

: ३ :

## पाटलिपुत्र की कहानी

वररुचि ने फिर कहा—

एक बार वर्ष ने पाटलिपुत्र में विद्वानों के पैदा होने के रहस्य को समझाने के लिए हम लोगों को यह कहानी सुनाई थी, "कनखल नामक तीर्थ में एक दक्षिणी ब्राह्मण रहता था। उसके तीन बेटे थे। पढ़-लिखकर तीनों स्वामिकार्तिक के दर्शन के लिए दक्षिण गये। वहां चिंचिनी नगर के भोजिक नामक ब्राह्मण ने इन तीनों के साथ अपनी तीन कन्याओं का विवाह कर दिया। उसने अपना सारा धन भी उसको दान में दे दिया और स्वयं तपस्या करने के लिए चला गया। एक बार वहां घोर अकाल पड़ा। तीनों भाई अपनी पत्नियों को छोड़कर वहां से चले गये। मझले भाई की पत्नी गर्भवती थी। समय पाकर उसने एक पुत्र को जन्म दिया। पुत्र वह मंझली का था, लेकिन वे तीनों ही बहनें इस लड़के को बहुत प्यार करती थीं।

एक बार शिव और पार्वती विमान पर बैठे सैर कर रहे थे। पार्वती ने देखा कि तीनों बहनें बिना किसी भेदभाव के एक ही पुत्र को प्यार कर रही हैं। उन्होंने शिव से इसका कारण पूछा। शिव बोले, "ये तीनों आशा रखती हैं कि वह बुढ़ापे में उन सबकी सेवा करेगा।"

शिव और पार्वती भी उस लड़के पर प्रसन्न होगये। पार्वती ने उन तीनों बहनों को सपने में दर्शन दिये और कहा, "तुम्हारे इस पुत्र का नाम पुत्रक है। हररोज सबेरे वह अपने सिरहाने एक लाख अशर्फी पाया करेगा और कुछ दिनों बाद राजा भी बनेगा।"

अब क्या था, पुत्रक को प्रतिदिन एक लाख अशर्फियां मिलने लगीं और वह राजाओं की तरह रहने लगा। उसके नाना के मित्र यज्ञदत्त ने उसको सलाह दी कि यदि वह दान देना शुरू करे तो उसके पिता और चाचा भी घर वापस आ सकते हैं। बहुत दिन पहले अकाल पड़ने पर वे दूर देश को चले गये थे। पुत्रक ने तुरंत यह बात मान ली और दान देना शुरू कर दिया। इस दान की चर्चा चारों ओर फैल गई। उसके पिता और चाचा ने भी सुना, और जैसाकि यज्ञदत्त ने कहा था, एक दिन वे वहां आ पहुंचे। पुत्र का वैभव देखा तो चकित रह गये। धीरे-धीरे उनके मन में लालच घर करने लगा, यहांतक कि वे पुत्र को मार डालने की योजना बनाने लगे। हत्यारे भी नियुक्त कर दिये गये। एक बार जब पुत्रक विंध्यवासिनी देवी के दर्शन करने गया तो वहां उन हत्यारों ने उसको मार डालने की कोशिश की, लेकिन किसी तरह अपने आभूषण देकर पुत्रक ने अपने प्राण छुड़ाये और विरक्त होकर वह जंगल में चला गया। उसको मारा गया मानकर उसके पिता और चाचा उसके राज्य के मालिक बन बैठे। लेकिन मंत्रियों ने उनको भी राज-द्रोही समझकर मार डाला। इधर पुत्रक जंगल में घूम रहा था। घूमते-घूमते एक दिन एक जगह उसने दो पुरुषों को लड़ते हुए देखा। लड़ाई का कारण पूछने पर वे बोले, "हम भयासुर के बेटे हैं और अपने बाप के माल के लिए लड़ रहे हैं। जो हममें से जीतेगा वही उसका मालिक बनेगा।"

पुत्रक ने पूछा, "आखिर ऐसा क्या माल है, जिसके लिए आप एक-दूसरे के प्राण लेने पर तुल गये हैं?"

उन्होंने दूर रखे हुए खड़ाऊओं के एक जोड़े, एक डण्डे और एक कटोरे की ओर इशारा करते हुए बताया कि इन खड़ाऊओं को पैर में पहनकर उड़ा जा

सकता है। इस डंडे से जो कुछ लिखा जायगा वह सच हो जायगा और मनचाही चीज इस कटोरे में आ जाया करेगी।

पुत्रक ने कहा, "इसके लिए आपस में लड़ते क्यों हो? दौनों **दौड़** लगाओ, जो आगे निकलेगा, वही जीता हुआ माना जायगा।"

दोनों ने पुत्रक की सलाह मानकर दौड़ना शुरू कर दिया। पीछे से पुत्रक खड़ाऊं पैरों में पहन तथा डंडा और कटोरा साथ ले आकाश में उड़ गया। उड़ते-उड़ते उसने आर्कषिका नाम की एक सुंदर नगरी देखी, फिर रहने के स्थान की खोज करता हुआ वह एक बुढ़िया के घर पहुंचा और वहीं रहने लगा। रहते-रहते जब कई दिन बीत गये, एक दिन बुढ़िया ने कहा, "मैं तेरे विवाह के लिए बहुत चिंतित हूं। कोई भी तेरे जैसा नहीं है। है तो केवल इस देश की राजकुमारी है, जिसका नाम पाटली है। वह बहुत सुंदर है, लेकिन उसके पास कोई पहुंच नहीं पाता है।

पुत्रक ने राजकुमारी पाटली के रूप-गुण की प्रशंसा सुनी तो उसने उसीसे विवाह करने का निश्चय कर लिया। रात के समय उसने पैरों में खड़ाऊं पहनीं और उड़-कर राजकुमारी के महल में दाखिल होगया। वह सो रही थी। जागने पर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ, परंतु धीरे-धीरे दोनों एक-दूसरे को पहचानगये। फिर तो हर रात को वह राजकुमारी से मिलने जाने लगा। उसने पाटली से गंधर्व-विवाह भी कर लिया। लेकिन यह बात देर तक गुप्त नहीं रह सकती थी। एक दिन पहरेदारों को पता चल ही गया। उन्होंने तुरंत राजा से शिकायत की। राजा क्रुद्ध हो उठा और उसने चोर को गिरफ्तार करने की आज्ञा दी। उस रात जब पुत्रक राजकुमारी के पास आया तो एक दासी ने छिपकर उसके कपड़ों में लाल रंग लगा दिया। उसीकी पहचान करके सिपाहियों ने उसको पकड़ लिया। राजा के सामने पेश किया। राजा क्रोध से लाल-पीला हो रहा था। लेकिन इससे पहले कि कोई कुछ कर पाता पुत्रक चट से खड़ाऊं पहनकर आकाश में उड़ गया। सब चकित-विस्मित देखते ही रह गये। वह उड़कर सीधा राजकुमारी के पास गया और उसे लेकर आकाश-मार्ग से ही वहां से चला।

चलते-चलते एक सुंदर स्थान देखकर वह गंगा के किनारें उतरा। कटोरा पास था। मनचाहा भोजन किया और फिर डंडे से लिखा—बड़ा-सा राज, महल, किला धन, आदि-आदि। लिखते ही सबकुछ सच हो गया। क्षण-भर पूर्व

जहां कुछ नहीं था, वहां अब एक वैभवशाली राज्य था। अब क्या था, वह पाटली के साथ आनंद से वहां राज करने लगा। इन पाटली और पुत्रक के नामों के मेल से ही उस नगर का नाम पाटलिपुत्र पड़ा।

वर्ष द्वारा पाटली-पुत्र नगर की यह अद्भुत कथा सुनकर हम लोग बड़े खुश हुए।

: ४ :

## पाणिनि और राजा नंद

वररुचि ने अपनी कहानी फिर शुरू करते हुए कहा :

इंद्रदत्त और व्याडि के साथ पढ़ते-पढ़ते जब मैं जवान हुआ तब व्याडि की सहायता से उपकोशा से मेरा विवाह हो गया। वह मेरी मनचाही स्त्री थी। उसके साथ मैं ससुराल में ही सुख से रहने लगा।

उन्हीं दिनों वर्ष के एक शिष्य से मेरा शास्त्रार्थ हुआ। इस शिष्य का नाम पाणिनि था। पाणिनि वैसे तो मूर्ख था, लेकिन शिव की पूजा करके उसने एक नये व्याकरण के ज्ञान का वरदान प्राप्त कर लिया था। जब यह शास्त्रार्थ शुरू हुआ तब आकाश में शिव जोर-जोर से हुंकार करने लगे। इस हुंकार के कारण मैं अपना ऐंद्र-व्याकरण भूल गया और पाणिनि की जीत होगई। इस पराजय से मैं बहुत खिन्न हुआ। इससे बढ़कर और क्या अपमान हो सकता था! मैंने तुरंत घर का प्रबंध किया और शिवजी को प्रसन्न करने के लिए हिमालय में जाकर तप करने लगा। मैं तभी घर लौटा जब मुझे शिवजी से वरदान में पाणिनि की सारी व्याकरण का ज्ञान प्राप्त हो गया।

तबतक व्याडि और इंद्रदत्त भी अपनी शिक्षा समाप्त कर चुके थे। वर्ष ने उन दोनों से गुरु-दक्षिणा में एक हजार अशर्फियां मांगीं। उनके पास अशर्फियां कहां थीं! इसलिए हम लोग राजा नंद के पास गये, लेकिन हमारे पहुंचने से पहले ही राजा नंद का प्राणांत हो चुका था, पर अभी दाह-संस्कार नहीं हुआ था। तब इंद्रदत्त ने एक तरकीब सुझाई। उसने कहा मैं योग-बल से राजा नंद के मृत शरीर में प्रवेश कर जाऊंगा। इस प्रकार राजा नंद जी उठेगा और जबतक उसके

शरीर में रहूंगा तबतक व्याडि मेरे शरीर की रक्षा करेगा ।

ऐसा ही किया गया। राजा नंद फिर जी उठा और मैंने दरबार में जाकर उससे अशर्फियां मांगीं । उसने अपने मंत्री शकटाल को अशर्फियां देने की आज्ञा दी। मंत्री बड़ा चालाक था। उसे कुछ संदेह हो गया। उसने तुरंत राजाज्ञा निकाली कि नगर के सारे मुर्दों को जला दिया जाय । इस राजाज्ञा का पालन होना ही था । इनमें इंद्रदत्त का मृतक शरीर भी जला दिया गया । व्याडि ने राजा से जाकर शिकायत की कि योग करनेवाले ब्राह्मण के शरीर को फूंककर बड़ा अन्याय किया गया है । यह सुनकर राजा को बड़ा दुःख हुआ, लेकिन उसने एक हजार अशर्फियां मुझे दिला दीं । शकटाल मना नहीं कर सका, लेकिन उसने राजा को मारने का षड्यंत्र रचा। व्याडि ने यह सूचना भी राजा को बताई कि शकटाल राजकुमार चंद्रगुप्त को राजा बनाना चाहता है । उसने यह भी कहा कि वह शकटाल को मंत्री-पद से हटाकर वररुचि को अपना मंत्री बना ले ।

राजा नंद ने ऐसा ही किया । मैं मंत्री बन गया और व्याडि गुरुदक्षिणा देकर तप करने चला गया। उसके बाद मैंने राजा को सुझाया कि शकटाल और उसके सौ पुत्रों को एक अंधे कुएं में कैद कर दिया जाय । राजा ने उस सुझाव को मान लिया । बंदी-जीवन में उनको सिर्फ एक प्याला पानी और एक प्याला सत्तू दिया जाता था । इसका परिणाम यह हुआ कि धीरे-धीरे शकटाल के सभी पुत्र मर गये ।

मैं राजा के साथ पाटलिपुत्र चला गया और राज-मंत्री का काम करते हुए आनंद से रहने लगा ।

## : ५ :

# शकटाल और चाणक्य

वररुचि ने फिर कहना शुरू किया—

कुछ दिनों बाद नंद विलासी बन गया । वह मस्त हाथी की तरह मनचाहे काम करने लगा । राज की देखभाल का सारा काम मेरे ऊपर आ गया । मैं अकेले यह सब काम नहीं कर सकता था । मुझे मदद की जरूरत थी । इसलिए मैंने शकटाल को अंधे कुएं से बाहर निकालकर अपने पास बुला लिया । शकटाल वही करता था जो

मैं कहता था। वह मेरी ताकत समझ गया था।

एक बार नंद गंगा के किनारे टहलने गया। वहां उसने देखा कि गंगा में से एक हाथ निकला हुआ है। उसकी पांचों अंगुलियां एक साथ दिखाई दे रही हैं। उसे बड़ा कौतूहल हुआ। मैंने भी उस ओर देखा और तुरंत अपने हाथ की दो अंगुलियों को मिलाकर उसके सामने कर दिया। मेरा हाथ देखते ही गंगा में से निकला हाथ गायब हो गया। राजा ने इसका मतलब पूछा। मैंने कहा, "गंगा में से निकले हाथ का संकेत था कि पांच आदमी मिलकर बड़े-से-बड़ा काम कर सकते हैं। इसके उत्तर में मैंने दो अंगुलियों को मिलाकर दिखाया, उसका अर्थ था कि एक मन होकर दो ही आदमी बड़े-से-बड़ा काम कर सकते हैं।" मेरी बात से राजा बहुत खुश हुआ।

एक दिन नंद की रानी खिड़की से झांककर एक अतिथि ब्राह्मण को देख रही थी। नंद ने उसे ऐसा करते हुए पकड़ लिया। वह बहुत नाराज हुआ और उसने ब्राह्मण को मार डालने की आज्ञा दी। जब सिपाही ब्राह्मण को मारने के लिए जा रहे थे तब एक अद्भुत घटना घटी। रास्ते में एक मछली पड़ी थी, वह उन्हें देखकर हँस दी। राजा ने मुझसे पूछा, "यह मछली क्यों हँसी ?" मैंने सोचकर उत्तर देने की आज्ञा मांगी और घर चला आया। राजा ने भी मेरा उत्तर पाने तक ब्राह्मण के वध को रोक दिया। कुछ सूझ नहीं रहा था, इसलिए बहुत चिंतित था। परंतु देर तक ऐसा न रहा। रात को स्वयं सरस्वती सपने में आईं, कहा, "जाओ, ताड़ के पेड़ पर छिपकर बैठ जाओ, तुम्हें मछली के हंसने का भेद पता चल जायगा।" मैंने ऐसा ही किया। वहां क्या देखा कि नीचे एक राक्षसी अपने बच्चों से कह रही है, "सुना है कि ब्राह्मण के वध को राजा ने रोक दिया है। मछली के हंसने के कारण एक दिन के लिए वह बच गया है। कल वह जरूर मारा जायगा। तुम सबको तब उसका मांस खाने को दूंगी।"

जब राक्षसी के बच्चों ने मछली के हँसने का कारण पूछा तो वह बोली, "रानी के महल में नारी के भेष में बहुत-से पुरुष रहते हैं। उनका पता तो राजा को चलता नहीं, लेकिन बेचारे ब्राह्मण को बेकार मारा जा रहा है। यही सोचकर मछली हँस पड़ी थी।" यह रहस्य जानकर मैं बहुत खुश हुआ। तुरंत राजा के पास गया। राजा ने उस बात की जांच कराई तो सच निकली। ब्राह्मण मुक्त कर दिया गया।

एक चित्रकार ने नंद और उसकी रानी का सुंदर चित्र बनाया। दोनों की

आकृतियां इतनी अच्छी बनी थीं कि वाणी और चेष्टा के बिना भी सजीव-सी मालूम पड़ती थीं। राजा ने चित्रकार को दक्षिणा में बहुत धन दिया और चित्र को अपने महल में टांग दिया। एक दिन उस महल में जाकर मैंने भी वह चित्र देखा। देखकर चकित रह गया। फिर अपनी प्रतिभा से मजबूर होकर सुंदरता बढ़ाने के लिए चित्र में बनी रानी की कमर में मैंने एक तिल बना दिया। राजा ने उस तिल को देखा तो उसे बड़ा आश्चर्य हुआ, मुझसे पूछा, "यह तिल किसने बनाया है?" मैंने कहा, "मैंने बनाया है।" राजा को मुझपर संदेह हो गया, क्योंकि सचमुच रानी की कमर में तिल था। क्रोध में आकर उसने आज्ञा दी, "वररुचि का वध कर दिया जाय।" यह काम उसने शकटाल को सौंपा। मेरे पिछले उपकार के कारण शकटाल मेरा कृतज्ञ था। उसने मुझे अपने घर में छिपा लिया और राजा से कह दिया कि वररुचि का वध कर दिया गया है।

शकटाल की उदारता से प्रसन्न होकर मैंने उससे कहा, "तुमने मुझे बचाया, अच्छा किया; लेकिन मुझे कोई मार नहीं सकता। एक राक्षस मेरा मित्र है। मैं चाहूं तो राजा को मरवा सकता हूं; लेकिन राजा मेरा मित्र है। राक्षस से मेरी मित्रता बड़े विचित्र ढंग से हुई। एक बार एक-एक करके नगर के चौकीदार मरने लगे। उनके मरने का कारण जानने के लिए मुझे कोतवाल बनाया गया। रात को जब मैं गश्त के लिए निकला तो मुझे वह राक्षस मिला। उसने मुझसे पूछा, "नगर में सर्वश्रेष्ठ सुंदरी कौन है?" मैंने कहा, "जो जिसको अच्छी लगती है वही उसके लिए सुंदर होती है।" मेरे उत्तर से राक्षस बहुत खुश हुआ और मेरा मित्र बन गया। उसने सदा मेरी सहायता करने का वचन भी दिया। तबसे वह राक्षस मेरा मित्र है।" यह सब सुनकर शकटाल ने कहा, "एक दिन राजा को अपनी गलती का पता चलेगा तब वह तुमको फिर याद करेगा। तबतक तुम मेरे घर में रहो।

... ... ...

"हे काणभूति! मैं इसके आगे की कहानी सुनाता हूं", यह कहकर वररुचि ने कहना शुरू किया—

एक बार राजकुमार हिरण्यगुप्त शिकार के लिए जंगल में गया। रात हो जाने पर वह एक पेड़ पर चढ़ गया। पेड़ पर एक रीछ भी बैठा था। रीछ को देखकर राजकुमार डर गया। तब रीछ ने कहा, "तुम डरो मत, आराम से सो जाओ।" राजकुमार सो गया। रीछ जाग रहा था। पेड़ के नीचे एक सिंह ने आकर रीछ से

कहा, "तुम इस आदमी को नीचे फेंक दो।"

रीछ ने कहा, "मैं विश्वासघात नहीं करूंगा। यह आदमी मेरा मित्र है।"

यह कहकर रीछ सो गया। अब राजकुमार जाग रहा था। सिंह ने इस बार राजकुमार से कहा, "तुम रीछ को नीचे धक्का दे दो।"

राजकुमार ने डर के मारे रीछ को धक्का दे दिया, लेकिन वह गिरा नहीं। उसने राजकुमार को शाप दिया, "तू पागल हो जा।" साथ ही उसने यह भी कहा, "कथा सुनने पर तू शाप से छूट जायगा।" राजकुमार तुरंत पागल हो गया। यह देखकर राजा बहुत दुःखी हुआ। कहने लगा, "आज अगर वररुचि होता तो राजकुमार के पागल होने का कारण बता सकता था। यह सनकर शकटाल बोला, "महाराज, क्षमा करें तो कुछ निवेदन करूं।" राजा बोला, "हां-हां, कहो।" तब शकटाल ने मेरे जीवित होने का हाल बता दिया। राजा ने तुरंत मुझे बुला भेजा। मैं उसके पास गया और कथा सुनाकर राजकुमार को ठीक कर दिया। राजा ने चकित होकर पूछा, "तुमने राजकुमार के पागल होने का कारण कैसे जाना!"

मैंने उत्तर दिया, "जैसे मुझे रानी की कमर के तिल का पता चल गया था, वैसे ही इसका भी पता चल गया।"

राजा नंद अब अपनी करनी पर पछताने लगा।

इस तरह अपनी प्रतिष्ठा बनाकर मैं अपने घर वापस पहुंचा। मेरे वध का समाचार सुनकर मेरी पत्नी जलकर मर चुकी थी और शोक के कारण मेरी माता भी स्वर्ग सिधार गई थीं। अब मेरे लिए संसार में क्या रह गया था! मैं तप करने के लिए वन में चला गया। काफी दिनों बाद वहां मुझे अयोध्या का एक ब्राह्मण मिला। उसने बताया कि मेरे वहां से आते ही शकटाल योगनंद को मार डालने का उपाय सोचने लगा। एक दिन उसने एक ब्राह्मण को कुशों को जड़ से उखाड़ते हुए देखा। पूछने पर ब्राह्मण ने बताया, "ये कुश मेरे पैर में छिद गये थे, इसलिए मैं उनको जड़ से उखाड़कर फेंक रहा हूं।" शकटाल ने सोचा—जब यह ब्राह्मण कुशों से इस तरह बदला ले सकता है तो मनुष्य से कुपित होने पर उसको तो जिंदा छोड़ ही नहीं सकता। बस नंद से बदला लेने के लिए उस ब्राह्मण को ही चुन लिया। उस ब्राह्मण का नाम था चाणक्य। शकटाल ने चाणक्य को राजा के घर श्राद्ध में निमंत्रण दिया और उससे कहा, "आपको भोजन के साथ एक लाख

रुपया दक्षिणा में मिलेगा और प्रधान पुरोहित के रूप में आपका सत्कार होगा।"

चाणक्य श्राद्ध में गया। वहां सुबंधु नाम का ब्राह्मण भी निमंत्रित था। उसने चाणक्य को प्रधान बनाने का विरोध किया। शकटाल ने यह बात राजा से जाकर कही और साथ में सुबंधु की योग्यता की प्रशंसा भी की। परिणाम यह हुआ कि सुबंधु को प्रधान बनाने की आज्ञा हुई। शकटाल ने लौटकर यह आज्ञा ब्राह्मणों को सुना दी और चाणक्य से कहा, "मैं क्या करूं, सारा दोष राजा का है।"

चाणक्य क्रोध से भभक उठा और चोटी खोलकर उसने प्रतिज्ञा की—मैं सात दिन में ही नंद का नाश कर डालूंगा। शकटाल उसको अपने घर ले गया। वहां उसने नंद के लिए मारण-मंत्र का योग किया। नतीजा यह हुआ कि सातवें दिन राजा मर गया। राजकुमार को शकटाल ने मार दिया। असली नंद के पुत्र चंद्र-गुप्त को राजा और चाणक्य को राजमंत्री बनाकर शकटाल वन में तप करने चला गया।

इस तरह अपनी कथा सुनाकर वररुचि काणभूति से बोला, "तुम्हें देखकर मेरा शाप छूट गया है। यहां अब गुणाढ्य ब्राह्मण आयगा। वह पहले माल्यवान नामक गण था। जब तुम उसे मेरी कही हुई कथा सुनाओगे तो तुम और वह दोनों शाप से छूट जाओगे। इसलिए तुम यहां गुणाढ्य की प्रतीक्षा करो।"

यह कहकर वररुचि बदरीनाथ को चला गया और वहां उसने सद्गति पाई।

: ६ :

## गुणाढ्य

माल्यवान, गुणाढ्य नाम से इस संसार में पैदा हुआ था। वह राजा सातवाहन के दरबार में काम करता था। एक दिन विंध्यवासिनी देवी के दर्शन करने वह जंगल में आया और उसकी प्रेरणा से वह काणभूति के पास गया। उसने काणभूति से पैशाची भाषा में बातचीत की; क्योंकि संस्कृत आदि तीन भाषाओं को न बोलने की प्रतिज्ञा करके वह वहां आया था। उसने काणभूति से आग्रह किया कि वह उसको पुष्पदंत से सुनी हुई कथाएं सुनाकर दोनों को शाप से मुक्त करे, लेकिन काणभूति ने कहा, "हे गुणाढ्य, पहले तुम अपने मनुष्य-जीवन की कहानी सुनाओ,

फिर मैं सुनाऊंगा।"

तब गुणाढ्य अपनी कहानी इस प्रकार सुनाने लगा--

सुप्रतिष्ठित नाम के नगर में सोमशर्मा नाम का एक ब्राह्मण रहता था। उसके वत्सक और गुल्मक नामक दो बेटे और श्रुतार्था नाम की एक बेटी थी। श्रुतार्था ने बड़े होकर वासुकि के भतीजे कीर्तिसेन से गंधर्व-विवाह किया। उन्हीं-का मैं पुत्र हूं। मेरे पैदा होते ही मेरी माता और मेरे दोनों मामाओं का देहांत हो गया, क्योंकि वे तीनों किसी शाप के कारण इस संसार में पैदा हुए थे और मेरे जन्म से उसका शाप छूट गया था। मेरे जन्म के समय आकाशवाणी भी हुई थी कि मैं शिवजी के गण माल्यवान का अवतार हूं। बड़ा होने पर पढ़ने के लिए मैं दक्षिण की ओर चला गया। जब मैं वहां से पढ़-लिखकर अपने घर वापस आया तो देखा कि मेरे देश के अधिकतर लोग पढ़ने-लिखने की ओर ध्यान देने लगे हैं। बनिए अपने काम में पहले से ज्यादा होशियार होगये हैं। एक दिन एक चतुर बनिए ने अपनी कथा मुझे इस प्रकार सुनाई--

पैसे से तो सभी पैसा पैदा करते हैं, लेकिन मैंने बिना पैसा लगाये ही पैसा पैदा करके दिखा दिया है। जब मैं पढ़-लिखकर बड़ा हुआ तो मेरी मां ने कहा, "जाओ, कुछ रोजगार करो, तुम बनिए के बेटे हो, कुछ-न-कुछ करके दिखाओ। विशाखिल नाम के महाजन गरीब बनियों को रोजगार के लिए पैसा देता है। तुम भी उसके पास जाओ।"

मैं विशाखिल के घर गया तो वह एक बनिए को फटकार रहा था--मैंने तुझे इतनी अशर्फियां दीं, लेकिन तू कोई काम नहीं कर सका। समझदार आदमी इस मरे हुए चूहे को लेकर भी धन कमा सकता है।

विशाखिल बार-बार ऐसा कहकर एक मरे हुए चूहे की ओर इशारा कर रहा था। मैंने उससे वही मरा हुआ चूहा मांग लिया और अपना नाम उसके बहीखाते में लिखा दिया। एक दूसरे बनिए को मैंने वह चूहा मुट्ठीभर चनों के बदले में बेच दिया। उसने अपनी बिल्ली के भोजन के लिए उसे खरीदा था। मैंने उन चनों को भुना लिया। एक घड़ाभर पानी लेकर मैं लकड़हारों के रास्ते में बैठ गया। वे चने खाकर पानी पीते और बदले में मुझे दो लकड़ियां दे जाते। उन लकड़ियों को बेचकर मैं और ज्यादा चने खरीद लाया और फिर इस तरह बहुत-सी लकड़ियां इकट्ठी कर लीं। जब बरसात हुई तो मैंने उन सूखी लकड़ियों को तेज भाव में

बेच दिया। उससे जो पैसा मिला उसको लेकर मैं व्यापार करने लगा। उस व्यापार से मैंने बहुत धन कमाया। अब मैंने सोने का चूहा बनवाकर विशाखिल को वापस किया। वह मेरी चतुराई पर बड़ा प्रसन्न हुआ और उसने अपनी लड़की की शादी मेरे साथ कर दी।"

चूहे और बनिए की कथा सुनाकर गुणाढ्य ने एक ब्राह्मण की कथा सुनाई—

एक बार एक वेद-पाठी ब्राह्मण को किसीने दक्षिणा में स्वर्ण दान दिया। एक विदूषक मित्र ने ब्राह्मण को सलाह दी कि वह उस धन को लोक-व्यवहार सीखने में खर्च करे। ब्राह्मण ने पूछा, "किससे जाकर लोक-व्यवहार सीखूं ?"

मित्र ने सुझाव दिया, "तुम चतुरिका नाम की वेश्या के पास जाओ, वह तुम्हें लोक-व्यवहार सिखावेगी।"

ब्राह्मण ने पूछा, "मैं उससे जाकर क्या कहूंगा ?"

विदूषक मित्र ने कहा, "सामवेद का गान करना।"

वह ब्राह्मण चतुरिका के घर गया और उसे स्वर्ण देकर लोक-व्यवहार सिखाने की प्रार्थना की। वहां के सब लोग ब्राह्मण की हँसी उड़ाने लगे। तब ब्राह्मण ने सामवेद का पाठ शुरू कर दिया। इसपर तो उसका और भी मजाक उड़ाया गया। किसीने कहा, "इस पागल ब्राह्मण को अर्धचंद्र (गर्दन पकड़कर) देकर बाहर निकाल दो।" ब्राह्मण अर्धचंद्र का अर्थ तीर समझकर वहां से प्राण बचाने के लिए भाग खड़ा हुआ। विदूषक मित्र ने जब यह हाल सुना तो वह बहुत हँसा और उसने चतुरिका से ब्राह्मण का धन वापस करने को कहा। चतुरिका ने दो पैरों का पशु है, ऐसा कहकर ब्राह्मण का सोना लौटा दिया।"

जीवन में ऐसी अनेक घटनाएं देखता-सुनता मैं राजा सातवाहन के दरबार में पहुंचा। उसके मंत्रियों ने मेरी बड़ी प्रशंसा की। उससे प्रभावित होकर राजा ने मुझे भी एक मंत्री बना दिया। वहां मैंने अपना विवाह भी कर लिया। विद्यार्थियों को पढ़ाता हुआ और मंत्री का काम करता हुआ अपना जीवन सुख से बिताने लगा।

काणभूति ने गुणाढ्य से पूछा कि उसके राजा का नाम सातवाहन कैसे पड़ा। गुणाढ्य ने बताना शुरू किया—

दीपकर्णि नाम का एक राजा था। उसकी रानी का नाम शक्तिमती था। उनके कोई लड़का न था। अचानक एक दिन रानी को सांप ने काट लिया।

वह मर गई। अब तो राजा बहुत दुखी रहने लगा। हर समय उसे अपने उत्तराधिकारी के न होने की चिंता सताती रहती। फिर भी उसने दूसरी शादी नहीं की और ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन किया। एक बार शिवजी ने उससे स्वप्न में कहा, "जंगल में जाओ और वहां जिस बालक को शेर पर सवार देखो उसे अपने घर ले आओ, वही तुम्हारा पुत्र बनकर रहेगा।"

राजा जब शिकार खेलने के लिए वन में गया तो दोपहर के समय उसे शेर पर सवार एक बालक दिखाई दिया। शेर पानी पीने के लिए एक जलाशय के पास रुका। बालक को पीठ से उतारकर जैसे ही वह पानी पीने लगा, राजा ने खींचकर उसके तीर मारा। तीर लगते ही शेर गिर पड़ा और मरते हुए उसने कहा, "मेरा नाम सात है और मैं कुबेर का बेटा हूं। मैंने एक ऋषि-कन्या से गंधर्व-विवाह कर लिया था। इसलिए नाराज होकर उसके भाइयों ने हम दोनों को शाप दिया था। तबसे मैं सिंह बना घूम रहा था। इस पुत्र के पैदा होते ही इसकी मां तो शाप से छूट गई, अब मैं भी आपका वाण लगने से शाप से छूट गया हूं।"

राजा ने उस बालक को अपने पुत्र की तरह पाला। सात नामक यक्ष पर सवारी करने के कारण उसका नाम सातवाहन रख दिया गया। यह सातवाहन ही आगे चलकर चक्रवर्ती सम्राट बना।

एक बार सातवाहन देवी के बाग में गया। वहां एक जलाशय था। अपनी रानियों के साथ वह उसमें जलक्रीड़ा करने लगा। नहाते समय एक रानी ने कहा, "मोदकैः स्परिताडय।" राजा ने फौरन ही लड्डू मंगा लिये।

रानी हँस पड़ी, बोली, "मैं तो कह रही थी कि पानी से मत मारो (मा उदकैः परिताडय) आपने तो लड्डू मंगा लिये।" राजा समझा था कि रानी का मतलब है लड्डू मारो (मोदकैः+परिताडय)। लेकिन नहाते समय लड्डुओं से खेलने की बात मूर्खतापूर्ण थी, इसलिए राजा को बहुत शर्म आई। उसने तय किया कि या तो अपने अज्ञान को मिटाकर विद्वान बनूंगा या प्राण दे दूंगा।

राजा की यह प्रतिज्ञा सुनकर शर्ववर्मा और मैं उनके पास गये। शर्ववर्मा ने राजा से कहा, "मैंने योगबल से सपने में देखा है कि एक कमल का फूल आसमान से टपका। उसमें से श्वेत वस्त्र पहने हुए एक सुंदर स्त्री निकली और मुख में प्रवेश कर गई। मेरा विश्वास है कि साक्षात् सरस्वती ने ही आपके मुख में आसन जमा लिया है।"

सपने की बात से उत्साहित होकर राजा ने पूछा, "एक आदमी कितने दिनों में विद्वान हो सकता है ?" मैंने उत्तर दिया, "मैं आपको छः वर्ष में व्याकरण पढ़ा दूंगा जबकि दूसरे लोग व्याकरण पढ़ने में बारह वर्ष लगा देते हैं ।"

मेरी बात काटता हुआ शर्ववर्मा बोला, "मैं आपको छः महीने में ही व्याकरण पढ़ा दूंगा ।"

मुझे ताव आ गया। मैंने कहा, "शर्ववर्मा, यदि तुम छः महीने में ही पढ़ा दोगे तो मैं संस्कृत, प्राकृत और देश की भाषा बोलना छोड़ दूंगा ।"

शर्ववर्मा ने कहा, "और यदि मैं पढ़ाने में असफल रहा तो बारह साल तक आपकी खड़ाऊं अपने सिर पर धारण करूंगा ।"

शर्ववर्मा ने कह तो दिया; लेकिन पूरा करना कठिन था। वह इसके लिए स्वामिकार्तिक की तपस्या करने लगा। उसने अपने तप से सिद्धि प्राप्त की और लौटकर राजा को सारी विद्याएं नियत समय में ही पढ़ा दीं। राजा ने प्रसन्न होकर शर्ववर्मा को मरुकच्छ की रियासत दे दी। यही नहीं, उसने उस रानी को पटरानी बना दिया जिसकी प्रेरणा से उसे ज्ञान प्राप्त करने की धुन सवार हुई थी। तबसे मैंने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार संस्कृत, प्राकृत और देशी भाषा का प्रयोग करना छोड़ दिया है।

: ७ :

## नाम का रहस्य

अब मैं प्रायः चुप रहता था। एक दिन मैं राजा के पास बैठा था तो किसी पंडित ने एक श्लोक सुनाया। राजा ने भी संस्कृत भाषा की जानकारी का अच्छा प्रमाण दिया। इस पर सभी उपस्थित लोग प्रसन्न हुए। एक दिन राजा ने शर्ववर्मा से पूछा, "तुमने तमाम विद्याओं में सफलता कैसे पाई ?" शर्ववर्मा ने कहा, "विद्या प्राप्ति की मुझे लगन थी। इतनी थी कि मेरी भूख-प्यास सब जाती रही, और मैंने स्वामिकार्तिक की तपस्या शुरू कर दी। स्वामिकार्तिक ने प्रसन्न होकर मुझे दर्शन दिये और तुरंत सरस्वती मेरे कंठ में विराज गई। स्वामि-

कार्तिक ने अपने छः मुखों से एक साथ 'सिद्धो वर्ण समाम्नाय' सूत्र सुना दिया। मैंने तत्काल उससे आगे का सूत्र सुना दिया। स्वामिकार्तिक ने कहा, 'यदि तुम बीच में नहीं बोलते तो यह शास्त्र पाणिनीय व्याकरण से भी बढ़कर होता। अब यह कातंत्र और मेरे वाहन मोर के नाम पर कालापकं व्याकरण के नाम से प्रसिद्ध होगा।'

"इसके बाद स्वामिकार्तिक ने कहा, 'तुम्हारे राजा सातवाहन का नाम पूर्व-जन्म में कृष्णमुनि था। उसके गुरु का नाम भारद्वाज था। एक बार कृष्णमुनि किसी मुनि-कन्या पर मुग्ध होगया। मुनि-कन्या भी उस पर मुग्ध थी। मुनियों को यह अनुचित लगा और उन्होंने दोनों को अगले जन्म में राजा-रानी होने का शाप दे दिया। वे दोनों ही तुम्हारे राजा-रानी हैं। तुम्हारे दर्शन मात्र से राजा को सारी विद्याएं आ जायंगी।'

"यह कथा सुनाकर शर्ववर्मा चला गया। राजा से विदा लेकर मैं भी विंध्य-वासिनी देवी के दर्शन के लिए इधर आया और यहां पिशाच-भाषा का अभ्यास किया। तब मेरा मौन टूटा और अब आपसे मिलकर मुझे अपने पिछले जन्म की याद हो आई है।"

गुणाढ्य की बात सुनकर काणभूति ने कहा, "तुम्हारे यहां आने का समा-चार मुझे पहले ही मिल गया था। मैं उज्जैन में अपने मित्र भूतिवर्मा राक्षस से मिलने गया था। मैंने उससे शाप से छूटने का उपाय पूछा, तो उसने कहा, 'रात में ही बता सकता हूं, दिन में नहीं।' मैंने पूछा, 'राक्षस रात में ही शक्तिशाली क्यों रहते हैं?' उसने बताया, 'एक बार शिवजी ने ब्रह्मा से कहा था कि दिन में भूत-प्रेत और राक्षस आदि सूर्य की रोशनी में जलकर क्षीण हो जाते हैं।'

फिर भूतिवर्मा ने मुझे तुम्हारे यहां आ जाने का हाल बताया और कहा कि मैं जाकर तुमसे मिलूं तो मेरा शाप छूट जायगा।

इतना कहकर काणभूति गुणाढ्य से बोला, "पहले पुष्पदंत और माल्यवान नाम की कहानी सुनाओ। फिर मैं पुष्पदंत से सुनी हुई कथा सुनाऊंगा।"

गुणाढ्य ने कहा :

गंगा के किनारे बहु-सुवर्णांक नाम का एक गांव था। वहां गोविंददत्त नामक एक ब्राह्मण रहता था। उसके पांच पुत्र थे। वे पांचों मूर्ख और घमंडी थे। एक-बार इनके यहां वैश्वानर नाम का एक ब्राह्मण आया। गोविंददत्त कहीं बाहर गया था। उसके पुत्र अतिथि का मखौल उड़ाने लगे। वह मन-ही-मन खीझ रहा था

कि इतने में गोविंददत्त आ गया। वैश्वानर उसपर बहुत बिगड़ा और उसने लड़कों की बड़ी निंदा की। गोविंददत्त ने कहा, "आप क्षमा करें और शांत होकर भोजन करें। मैं और मेरी पत्नी दोनों अपने नालायक बेटों को छूते तक नहीं हैं।"

तब कहीं वैश्वानर ने भोजन किया। लेकिन उसका एक पुत्र, जिसका नाम देवदत्त था, अपमान से पीड़ित होकर बदरीनाथ में तपस्या करने चला गया। उसने वहां शिव को अपनी तपस्या से प्रसन्न कर लिया और उनसे उनका भक्त बने रहने का वर प्राप्त किया। वहां से वह पाटलिपुत्र गया। वहां वेदकुंभ उपाध्याय नामक विद्वान से उसने विद्या अध्ययन किया। उसके बाद अधिष्ठान नामक देश में जाकर मंत्रिस्वामी नाम के विद्वान से विद्या ग्रहण की और इस प्रकार अपनी शिक्षा पूरी की। एक बार देवदत्त ने सुशर्मा नाम के राजा की श्री नाम की राजकुमारी को कहीं देख लिया। बस वह उससे प्रेम करने लगा और विवाह की बात सोचने लगा। एक दिन वह राजा के महल में गया तो राजकुमारी ने उसकी ओर दांत से उठाकर एक फूल फेंका। लेकिन वह इस संकेत का अर्थ नहीं समझ सका और उदास रहने लगा। उसके गुरु ने उसकी यह अवस्था देखी तो समझ गये। सारी बातें जान लेने के बाद उन्होंने देवदत्त को राजकुमारी के संकेत का अर्थ भी बता दिया। राजकुमारी का इशारा था, "तुम पुष्पदंत मंदिर में जाकर मेरी प्रतीक्षा करो।" देवदत्त तुरंत पुष्पदंत के मंदिर में गया। देखा राजकुमारी श्री भी पूजा करने आई है। राजकुमारी ने देवदत्त से पूछा, "तुमने मेरा संकेत समझ लिया था?"

देवदत्त ने कहा, "मैंने गुरुजी से पूछ लिया था।"

यह सुनकर राजकुमारी ने उसको मूर्ख समझा और उससे बिना कोई बात किये चली गई। उसके विरह में देवदत्त जीवित नहीं रह सका। शिवजी को अपने भक्त पर दया आगई। उन्होंने अपने पंचशिख नामक गण को आज्ञा दी कि देवदत्त को फिर जीवित करके उसकी इच्छा पूरी कर दो। पंचशिख ने देवदत्त को जिला दिया। फिर उसको एक स्त्री के रूप में सजाया और खुद बूढ़ा ब्राह्मण बनकर राजा के दरबार में गया। उसने राजा से विनती की, "मेरा पुत्र खो गया है और यह मेरी पुत्र-वधू है। अपने बेटे को खोजकर न ले आऊं तबतक आप इसे महल में शरण दें।"

राजा ने ब्राह्मण-रूपधारी पंचशिख की बात मान ली और देवदत्त को ब्राह्मण पुत्र-वधू समझकर महल में रखने की आज्ञा दे दी। देवदत्त राजकुमारी के साथ रहने लगा और अवसर पाकर उसने अपना सारा रहस्य उसे बता दिया। फिर उसने राजकुमारी से गंधर्व-विवाह कर लिया। एक दिन अचानक पंचशिख छिपकर देवदत्त को महल से निकाल ले गया। दूसरे दिन राजा के पास जाकर उसने अपनी पुत्र-वधू को मांगा। देवदत्त को दिखाकर उसने कहा, "यह मेरा बेटा है, इसको खोजकर लाया हूं।" राजा ने महल से ब्राह्मण की पुत्र-वधू को बुला भेजा लेकिन वह तो गायब थी। अब तो वह बहुत परेशान हुआ। पंचशिख से उसने कहा—"तुम्हारी बहू तो नहीं मिल रही है, पता नहीं कहां भाग गई!"

पंचशिख ने कहा, "आप तो राजा हैं, न्याय करें। यदि मेरी बहू आपके घर से खो गई है तो उसके बदले में अपनी कन्या का विवाह मेरे बेटे के साथ कर दें।"

राजा समझा, शायद कोई देवता उसकी परीक्षा ले रहा है, जैसे प्राचीन समय में धर्म ने कबूतर और इंद्र ने बाज़ बनकर राजा शिवि को धर्म-संकट में डाल दिया था। इसलिए शाप के भय से राजा ने अपनी कन्या का विवाह देवदत्त के साथ कर दिया। यही नहीं, उसके पुत्र नहीं था, इसलिए राजा उसको ही राजपाट सौंपकर तप करने वन को चला गया।

यह देवदत्त ही शिव की भक्ति करने के कारण दूसरे जन्म में शिवजी का गण हुआ और दांत से पकड़कर फेंके गये फूल के इशारे को न समझ पाने के कारण उसका नाम पुष्पदंत पड़ा। उसकी पत्नी श्री दूसरे जन्म में पुष्पदंत की पत्नी बनी और उसका नाम जया पड़ा जो पार्वती की सेवा करती थी।

पुष्पदंत के नाम की कथा सुनाकर गुणाढ्य ने माल्यवान नाम की कहानी इस प्रकार सुनाई :

गोविंददत्त के सोमदत्त नाम का भी एक पुत्र था। उसने शिवजी की आराधना करते हुए घोर तपस्या की। वह प्रतिदिन शिवजी पर फूल-मालाएं चढ़ाता था। शिवजी प्रसन्न हुए और उससे वर मांगने को कहा। सोमदत्त ने शिव का गण होने का वर मांगा। शिव ने कहा, "एवमस्तु।" दूसरे जन्म में सोमदत्त शिव का गण हुआ और उसने शिव पर फूल-मालाएं चढ़ाई थीं, इसलिए शिव ने उसका नाम माल्यवान रखा।

यह कथा सुनाकर गुणाढ्य बोला, "मेरे माल्यवान बनने की यही कथा है।

अब मैं पार्वती के शाप के कारण गुणाढ्य बन गया हूं। काणभूति, अब तुम पुष्पदंत से सुनी हुई कथा सुनाओ तो हम दोनों का शाप छूटें।"

: ८ :

## कथाओं की रक्षा

काणभूति ने पुष्पदंत से सुनी हुई सारी कथा पैशाची भाषा में गुणाढ्य को सुनाई। अपने रक्त से सारी कथा को सात लाख श्लोकों में लिखने में गुणाढ्य ने सात वर्ष लगाये। इस कथा को सुनाकर काणभूति शाप से छूट गया। दूसरे राक्षस भी शाप से छूट गये।

गुणाढ्य ने सोचा कि यदि वह इस कथा को सारी दुनिया तक पहुंचा सके तो उसका शाप भी छूट जाय। उसने अपनी लिखी कथा को अपने शिष्यों के हाथ राजा सातवाहन के पास भेजा और प्रार्थना की कि वह उसको प्रकाशित कराने का प्रबंध कर दें। सातवाहन ने उसे पसंद नहीं किया और वापस कर दिया। गुणाढ्य को इससे बड़ा दुख हुआ। वह जंगल में गया और वहां अपनी पुस्तक का एक-एक पन्ना पक्षियों को सुनाकर आग में जलाने लगा। इस प्रकार उसने लगभग सारा ग्रंथ ही जला दिया होता, लेकिन शिष्यों के बहुत प्रार्थना करने पर गुणाढ्य ने नरवाहनदत्त की कथा को नहीं जलाया। इस कथा में एक लाख श्लोक थे।

इधर राजा सातवाहन बीमार हो गया। वैद्यों ने निदान किया कि सूखा मांस खा लेने के कारण राजा बीमार हुआ है। अधिकारियों ने भोजन बनानेवाले और शिकारी से पूछा, "राजा को सूखा मांस क्यों दिया गया ?"

वे बोले, "जंगल में एक ब्राह्मण पशु-पक्षियों को कथाएं सुनाता है। वे कथाएं इतनी रोचक हैं कि उनको सुनकर पशु-पक्षी खाना-पीना भी भूल गये हैं, और दिन-प्रति-दिन सूखते चले जा रहे हैं। इसलिए आजकल अच्छा मांस नहीं मिलता, केवल सूखा मांस ही मिल पाता है।"

यह बात सुनकर राजा वन में गया। उसने वहां गुणाढ्य को कथा सुना-सुनाकर पुस्तक को जलाते हुए देखा। उसने तुरंत गुणाढ्य से विनती की कि वह उस

कथा को न जलाये, उसे दे देवे। गुणाढ्य ने कहा, "अब तो केवल एक लाख श्लोक की कथा बची है, उसको मेरे दो शिष्य तुम्हें सुना-पढ़ा देंगे।"

राजा सातवाहन उस बची हुई कथा को ही ले आया, जिसे उसने दोनों शिष्यों की सहायता से प्रचारित किया।

# दूसरा खंड

## : १ :

## सहस्रानीक और मृगावती

सातवाहन को गुणाढ्य से जो कथा प्राप्त हुई थी, वह इस प्रकार है :

स्वर्ग के समान सुंदर वत्स नामक एक देश था। उस देश में कौशांबी नाम की एक भरी-पूरी नगरी थी। इस देश के राजा का नाम शतानीक था। वह पांडवों के वंश में पैदा हुआ था। उसके कोई संतान नहीं थी। इस दुख से दुखी होकर वह शांडिल्य मुनि के आश्रम में गया और उनसे अपना दुख दूर करने की प्रार्थना की। मुनि ने उसकी रानी विष्णुमती को मंत्र से फूंकी गई खीर खाने के लिए दी। उसके खाने से रानी के एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका नाम सहस्रानीक रखा गया। आगे चलकर वह बड़ा शक्तिशाली राजा बना।

एक बार जब देवताओं और असुरों में लड़ाई हुई, तब इंद्र ने सहायता के लिए शतानीक के पास मातलि को भेजा। वह तुरंत जाने को तैयार हो गया। उसने राज्य का काम मंत्री युगंधर और सेनापति सुप्रतीक को सौंप दिया और मातलि के रथ पर चढ़कर स्वर्गलोक को चला गया, वहां दैत्यों के साथ युद्ध में लड़ते-लड़ते वह वीर-गति को प्राप्त हुआ। इसके बाद सहस्रानीक गद्दी पर बैठा। दूसरी बार इंद्र ने सहस्रानीक को भी स्वर्ग आने का न्यौता दिया। वह भी मातलि के रथ पर चढ़कर स्वर्ग गया। वहां नंदन वन में देवताओं को अप्सराओं के साथ आमोद-प्रमोद करते देखकर उसको भी नारी के प्रति आकर्षण हुआ। तब इंद्र ने उससे बताया कि उसके योग्य एक स्त्री धरती पर पैदा हो गई है। इंद्र ने कहा :

"एक बार मैं ब्रह्मा के पास गया। विधूम नामक वसु भी मेरे पीछे लग गया। जब हम लोग वहां पहुंचे तो अलंबुसा नामक एक अप्सरा ब्रह्मा से मिलने के लिए

आई। अलंबुसा और वसु दोनों एक दूसरे पर मुग्ध हो गये। ब्रह्मा को यह अच्छा नहीं लगा, उन्होंने मुझे संकेत किया और मैंने अलंबुसा और वसु को मनुष्य-योनि में पैदा होने का शाप दे दिया। वसु तो सहस्रानीक के रूप में तुम हो और अलंबुसा अयोध्या में राजा कृतवर्मा की कन्या मृगावती के रूप में पैदा हुई है। यह मृगावती ही तुम्हारी पत्नी बनेगी।" अब तो राजा मृगावती के लिए आतुर रहने लगा। तब इंद्र ने सहस्रानीक को मातलि के साथ घर वापस कर दिया। मार्ग में कुछ कहने के लिए तिलोत्तमा अप्सरा ने उसे पुकारा। मृगावती के ध्यान में सहस्रानीक उसकी बात नहीं सुन सका। तिलोत्तमा ने शाप दिया,"जिसके ध्यान में तूने मेरी बात की उपेक्षा की है, चौदह साल तक तुझको उसका वियोग सहना पड़ेगा।" यह शाप केवल मातलि ही सुन पाया, राजा नहीं। राजा ने घर जाकर मंत्रियों से परामर्श किया और राजा कृतवर्मा के पास मृगावती के साथ विवाह-प्रस्ताव भेजा। कृतवर्मा ने अपनी रानी कलावती की सलाह लेकर मृगावती का विवाह सहस्रानीक के साथ कर दिया। इधर सहस्रानीक के मंत्री युगंधर के यौगंधरायण नामक पुत्र पैदा हुआ। सेनापति सुप्रतीक के भी एक लड़का हुआ, जिसका नाम रुक्मवान रखा गया। राजा के परम मित्र के घर भी पुत्र ही हुआ। उसका नाम वसंतक रखा गया। उधर सहस्रानीक की रानी मृगावती भी गर्भवती होगई।

एक बार मृगावती का मन हुआ कि आदमी के खून नें नहाया जाय। राजा कैसे भी हो, रानी को अप्रसन्न करना नहीं चाहता था, इसलिए उसने लाख आदि कई पदार्थों के लाल रंग से एक जलाशय को लाल कर दिया। रानी उसमें नहाने लगी। रानी को मांस का टुकड़ा समझकर कोई बड़ा शिकारी पक्षी उसे ऊपर उड़ा ले गया। राजा यह समाचार सुनकर बेहोश हो गया। जब होश में आया तो मातलि ने उसको बताया कि यह सब तिलोत्तमा के शाप के कारण हुआ है।

उस पक्षी ने रानी को ले जाकर उदयाचल पहाड़ पर छोड़ दिया। वहां एक अजगर रानी को खाने के लिए आया, लेकिन किसी सुंदर पुरुष ने आकर अजगर को मार दिया। रानी बहुत दुखी थी। वह अपनी जान देने के लिए एक पागल हाथी के सामने जाकर ख ी हो गई। लेकिन हाथी ने भी उसे छोड़ दिया। रानी पति की याद में विलाप करने लगी। इतने में फूल चुनने के लिए आये एक बालक ने उसे देख लिया। वह उसको अपने गुरु जमदग्नि के आश्रम में ले गया। मुनि जमदग्नि ने अपने-आप सब हाल जानकर रानी को सांत्वना दी। रानी आश्रम में रहने लगी

और समय पर उसके सुंदर पुत्र पैदा हुआ। पुत्र-जन्म के समय आकाशवाणी हुई कि यह पुत्र उदयन के नाम से प्रसिद्ध होगा और विद्याधरों का राजा बनेगा। मुनि जमदग्नि ने बालक उदयन को क्षत्रिय धर्म की पूरी शिक्षा दी। एक बार रानी ने अपने हाथ का कंगन उदयन के हाथ में पहना दिया। इस कंगन पर राजा सहस्रानीक का नाम खुदा हुआ हुआ था।

बालक उदयन ने जंगल में एक मदारी को सांप पकड़ते हुए देखा। उसे यह अच्छा न लगा। उसने मदारी से सर्प को छोड़ देने के लिए कहा।

मदारी बोला, "मेरा पहला सांप मर गया है, इसलिए मैंने इसको पकड़ लिया है। मेरा जीवन इसी पर निर्भर है। अगर इसे छोड़ दूंगा तो कैसे तमाशा दिखाऊंगा और खाऊंगा ?"

उदयन ने दया करके अपने हाथ का कंगन मदारी को दे दिया और सांप को छुड़वा दिया। मदारी कंगन लेकर चला गया। लेकिन वह सांप छूटते ही एक पुरुष बन गया, जिसके हाथ में वीणा थी। उस पुरुष ने उदयन से कहा, "मेरा नाम वसुनेमि है। वासुकी मेरा छोटा भाई है। तुमने मेरी जान बचाई है, इसलिए मैं तुम्हें यह वीणा, तांबूल और माला भेंट करता हूं। यह माला कभी नहीं मुरझायेगी।"

वसुनेमि ने उदयन को कभी मलिन न पड़नेवाले तिलक के लगाने का उपाय भी बताया। सब चीजें लेकर उदयन मा के पास लौट गया।

इधर वह मदारी उस कंगन को बेचने के लिए कौशांबी गया। कंगन पर राजा सहस्रानीक का नाम देखकर सैनिक उसे दरबार में ले गये। वहां मदारी ने सब हाल बता दिया। राजा संदेह से भर उठा। लेकिन उसी समय आकाशवाणी हुई कि रानी मृगावती अपने पुत्र उदयन के साथ उदयाचल पर जमदग्नि मुनि के आश्रम में है। अब शाप का समय समाप्त हो गया है। रानी को जाकर ले आना चाहिए।

यह आकाशवाणी सुनकर राजा तुरंत मदारी और सेना के साथ उदयाचल की ओर चल पड़ा।

## : २ :

# श्रीदत्त की कहानी

रास्ते में विश्राम करने के लिए राजा ने एक तालाब के किनारे डेरा डाला। जब वह आराम करने के लिए लेटा तब उसने अपने साथ रहनेवाले संगतक नामक नौकर से कोई मनोरंजक कथा सुनाने को कहा।

संगतक ने कहा, "महाराज, शाप का समय तो समाप्त हो गया है। अब आप शीघ्र ही रानी से मिलेंगे। आप दुखी न हों। मिलन और विछोह तो होता ही रहता है। लीजिये आप एक ऐसी ही कथा सुनिये।"

मालव में यज्ञसोम नामक एक ब्राह्मण रहता था। उसके कालनेमि और विगत-भय नामक दो पुत्र थे। पिता के मरने के बाद दोनों पुत्रों ने पाटलिपुत्र में देवशर्मा नामक विद्वान से विद्या-अध्ययन किया। देवशर्मा ने उनकी योग्यता से संतुष्ट होकर उन दोनों के साथ अपनी दोनों लड़कियों का विवाह कर दिया। कालनेमि को धनी बनने की बड़ी चाह थी। वह दूसरों का धन देखकर मन-ही-मन जलता भी था। इसलिए उसने लक्ष्मीजी को प्रसन्न करने के लिए यज्ञ किया। लक्ष्मीजी ने उसे धनी होने का वरदान दिया और कहा, "तेरा एक पुत्र राजा होगा, लेकिन अंत में तेरी मौत चोरी के अपराध में होगी; क्योंकि तूने ईर्ष्या और लोभ के वश होकर यज्ञ किया है।"

लक्ष्मी के वरदान से कालनेमि धनवान होगया और उसके एक पुत्र भी पैदा हुआ, जिसका नाम श्रीदत्त रखा गया। श्रीदत्त ने ब्राह्मण होकर भी क्षत्रियों की तरह युद्ध-विद्या का ज्ञान प्राप्त किया और वह एक योद्धा बन गया। राजा वल्लभ-शक्ति के पुत्र विक्रम शक्ति ने उसको अपना मित्र बना लिया और अवंती के रहने-वाले बाहुशाली और वज्रमुष्ठि नाम के दो क्षत्रिय भी उसके मित्र बन गये। इस तरह उसने अपने गुणों से दक्षिण देश के अनेक लोगों को अपना दोस्त बना लिया। एक बार वह अपने मित्रों के साथ गंगा के किनारे गया। वहां उन्होंने एक खेल खेला, उसमें दो दल बने। एक दल का राजा राजकुमार को बनाया गया। श्रीदत्त के मित्रों ने श्रीदत्त को दूसरे दल का राजा बना दिया। राजकुमार इस बात पर चिढ़ गया और श्रीदत्त से लड़ने लगा। उस यद्ध में राजकुमार की हार हुई। अपनी हार से

राजकुमार बहुत बेचैन हुआ और उसने श्रीदत्त को मरवा डालने का इरादा किया। यह जानकर श्रीदत्त वहां से भाग गया।

जब वह गंगा के किनारे जा रहा था, उसने एक औरत को डूबते-उतराते देखा। वह उसको बचाने के लिए गंगा में कूदा, लेकिन वहां पहुंचते-पहुंचते वह औरत डूब गई। श्रीदत्त भी डुबकी लगाकर पानी के अंदर गया, लेकिन वहां उसको सिवाय एक शिव-मंदिर के और कुछ न दिखाई पड़ा। न तो वहां उस स्त्री का पता था और न कहीं पानी था। श्रीदत्त के मित्र किनारे पर ही छूट गये थे। अब वह वहां अकेला था और इस अद्‌भुत घटना पर आश्चर्य कर रहा था। इतने में रात हो गई और थक जाने के कारण श्रीदत्त वहीं सो गया। सबेरे वह उठा तो देखता है कि वही स्त्री मंदिर में पूजा करने आई है। जब वह पूजा करके जाने लगी तो श्रीदत्त उसके पीछे हो लिया। वह स्त्री एक महल में पहुंची और पलंग पर लेटकर रोने लगी। वहां उस स्त्री की सेवा के लिए अनेक सेवक-सेविकाएं मौजूद थीं। लेकिन वह रोती ही जा रही थी। श्रीदत्त ने उससे रोने का कारण पूछा और उसका दुख दूर करने का वचन दिया। तब उस स्त्री ने कहा, "मेरा नाम विद्युत्प्रभा है। मेरे पिता को विष्णु ने मार डाला है और मेरे बाबा दैत्यराज बलि को कैद कर लिया है। हम एक हजार बहनें हैं। मैं सबसे बड़ी हूं। हमको नगर से निकाल दिया गया है। नगर के द्वार पर एक सिंह को बैठाया गया है, जिसके भय से हम नगर में नहीं जा सकतीं। यह सिंह एक यक्ष है, जो कुबेर के शाप से सिंह बन गया है। इसको मारकर आप हमें भय से मुक्त करें। इससे आपको मृगांक नामक तलवार प्राप्त होगी। उसे लेकर आप सारी पृथ्वी पर विजय प्राप्त कर सकेंगे। यह सिंह मनुष्य के हाथों ही मारा जा सकता है। इसलिए आप ही इसको मार सकते हैं।"

उन एक हजार कन्याओं को साथ लेकर श्रीदत्त उस नगर में गया और उसने सिंह को द्वंद्वयुद्ध में मार डाला। मरते ही सिंह यक्ष बन गया और श्रीदत्त को मृगांक तलवार भेंट करके अंतर्ध्यान होगया। इसके बाद विद्युत्प्रभा के साथ उसने नगर में प्रवेश किया। वहां जाकर विद्युत्प्रभा ने उसको एक विषनाशक अंगूठी भेंट में दी और एक बावली में गोता लगाने को कहा। मृगांक तलवार लेकर और अंगूठी पहनकर जैसे ही श्रीदत्त ने बावली में गोता लगाया, वैसे ही उसने अपनेको फिर गंगा के किनारे पाया।

इस तरह गंगा के किनारे आकर श्रीदत्त को क्षोभ हुआ और विस्मय भी।

वहां उसे अपना कोई मित्र नहीं दिखाई पड़ा। उनकी खोज में वह आगे चल दिया। कुछ दूर चलकर उसको उसका मित्र निष्ठुरक मिला।

निष्ठुरक ने श्रीदत्त को बताया, "तुम्हारे वियोग में सब मित्र आत्महत्या करना चाहते थे, लेकिन आकाशवाणी द्वारा तुम्हारे आने का हाल जानकर सबने वह विचार छोड़ दिया। इधर राजा वल्लभशक्ति के मरने बाद उसका पुत्र विक्रमशक्ति गद्दी पर बैठा है। विक्रमशक्ति ने अगले ही दिन तुम्हारे पिता कालनेमि के घर अपने सिपाही भेजे और पूछा, "श्रीदत्त कहां है ?" उन्होंने कहा, "मुझे उसका पता नहीं।" यह जवाब सुनकर विक्रमशक्ति ने पुत्र को छिपाने का अपराध लगाकर उन्हें फांसी पर चढ़ा दिया। इस शोक से तुम्हारी मां भी मर गई। अब राजा विक्रम-शक्ति तुमको मार डालने के लिए तुम्हें खोज रहा है। यह हाल हमने रास्ते में एक आदमी से सुना था। बाकी मित्र उज्जयनी चले गये हैं। मैं तुम्हारी राह देखने के लिए यहां गंगा के किनारे रुका हुआ हूं।"

यह सब कथा सुनाकर निष्ठुरक ने उससे कहा,"अब उज्जयनी चलो,वहीं सब मित्र मिलेंगे।"

अपने मां-बाप के मरने का समाचार सुनकर श्रीदत्त को बड़ा दुख हुआ। वह निष्ठुरक के साथ उज्जयनी को ओर चल पड़ा। रास्ते में उन्हें एक नारी मिली। वह राह भूल गई थी। उसे भी इन लोगों ने साथ ले लिया। रात को उन्होंने उजड़े हुए गांव में बसेरा किया। आधी रात के समय श्रीदत्त ने देखा—रास्ते में मिली हुई औरत निष्ठुरक को मारकर खा रही है। उसने तत्काल अपनी मृगांक तलवार निकालकर उस औरत को मारना चाहा, वह औरत तुरंत एक राक्षसी बन गई और जैसे ही श्रीदत्त ने उसकी चोटी पकड़ी वैसे ही वह राक्षसी एक सुंदरी बनकर बोली, "मैं वास्तव में राक्षसी नहीं हूं। मेरा यह हाल विश्वामित्र के शाप के कारण हुआ है। एक बार कुबेर का राज्य छीनने के लिए विश्वामित्र ने घोर तपस्या करनी शुरू की। कुबेर इस तपस्या से डर गये और मुझे विश्वामित्र की तपस्या भंग करने के लिए भेजा। मैंने अपनी सुंदरता से विश्वामित्र पर विजय पानी चाही, लेकिन उनपर कोई असर नहीं हुआ। तब मैं राक्षसी का रूप धरकर उन्हें डराने लगी, इससे विश्वामित्र को क्रोध आ गया और उन्होंने मुझे राक्षसी होने का शाप दे दिया। मैं कांप उठी और उनसे क्षमा प्रार्थना करने लगी। तब उन्होंने कहा, "जब श्रीदत्त तेरी चोटी पकड़ेगा तब तू शाप से मुक्त हो जायगी।"

"तब से ही राक्षसी बनकर मैं इस गांव को उजाड़ती रही हूं। अब मैं शाप से छूट गई हूं। तुम मनचाही चीज मुझसे मांग सकते हो।" श्रीदत्त ने कहा, "मेरे मित्र को जिंदा कर दो।" उसने निष्ठुरक को जिंदा कर दिया और फिर अंतर्धान हो गई। वे दोनों भी उज्जयनी चले गये और अपने मित्र बाहुशाली के पास रहने लगे।

एक बार श्रीदत्त अपने मित्रों को साथ लेकर बसंत के मेले में गया। वहां उसने बिंबक राजा की पुत्री मृगांकवती को देखा। दोनों एक-दूसरे को देखकर मुग्ध हो गये। तभी राजकुमारी कहीं दूसरी ओर गई। वहां उसे सांप ने काट लिया। यह समाचार सुनकर बहुशाली ने राजा के सेवक से कहा, "हमारे मित्र के पास एक ऐसी अंगूठी है जिसके स्पर्श से जहर उतर जाता है।" यह सुनकर राजा का सेवक श्रीदत्त की खुशामद करने लगा। श्रीदत्त उसके साथ राजकुमारी के पास चला गया और अपनी विषनाशक अंगूठी उसको पहना दी। उसके पहनते ही वह ठीक हो गई।

यह हाल सुनकर राजा भी वहां आ गया। श्रीदत्त ने वह अंगूठी वापस नहीं ली। राजा ने बहुत-सा सोना उसको भेंट में दिया। उसने वह सब सोना बाहुशाली के पिता को दे दिया। इस घटना के बाद से वह राजकुमारी के लिए और भी बेचैन हो उठा। तभी एक दिन राजकुमारी की सखी भावनिका अंगूठी वापस करने के लिए उसके पास आई। बोली, "राजकुमारी ने प्रतिज्ञा की है कि या तो श्रीदत्त से ही विवाह करेगी या अपने प्राण दे देगी।" ऐसी स्थिति देखकर उन सबने राजकुमारी को भगाकर मथुरा ले जाने की योजना बनाई। अगले दिन बाहुशाली अपने दो मित्रों के साथ मथुरा की ओर चला गया। इधर श्रीदत्त ने राजकुमारी के महल में एक स्त्री और कन्या को कोई नशीली चीज पिलाकर बेहोश कर दिया और महल में आग लगा दी। दूसरी ओर भावनिका राजकुमारी मृगांकवती को चुपके से बाहर निकाल लाई। राजभवन में आग लग जाने से वह स्त्री और कन्या जलकर मर गये। राजा ने समझा कि राजकुमारी अपनी सखी के साथ जलकर मर गई है। श्रीदत्त के दो मित्रों के साथ भावनिका राजकुमारी को लेकर विंध्याचल की तरफ चली गई। दूसरे दिन श्रीदत्त भी उधर पहुंच गया। वहां उसने देखा कि उसके सब मित्र और भावनिका घायल पड़े हुए हैं और राजकुमारी का कहीं पता नहीं है। उन लोगों ने श्रीदत्त को बताया कि एक घुड़सवार ने उन सबको घायल कर दिया है और राजकुमारी को लेकर भाग गया है। श्रीदत्त ने घुड़सवार का

पीछा किया। कुछ दूर जाने पर उसने देखा कि कई घुड़सवारों के बीच एक घुड़सवार ने राजकुमारी को घोड़े पर बांधकर बैठा रखा है। श्रीदत्त ने उससे राजकुमारी को वापस मांगा। घुड़सवार क्यों मानने लगा था ? तब श्रीदत्त ने उसे युद्ध के लिए ललकारा और घोड़े से गिराकर मार दिया। बाकी आदमियों में कुछ मारे गये, कुछ भाग गये। वह राजकुमारी को लेकर आगे चला। कुछ दूर चलने के बाद उसका घायल घोड़ा मर गया। तभी राजकुमारी को भी बड़ी प्यास लगी। श्रीदत्त पानी तलाश करने के लिए जंगल में गया। तलाश करते-करते रात हो गई, लेकिन पानी नहीं मिला। यही नहीं उसे अपना रास्ता भी याद न रहा। किसी तरह सबेरा हुआ तो उजाले में रास्ता तलाश करके जब वह अपने स्थान पर आया, तो वहां उसे राजकुमारी नहीं दिखाई दी। वह पेड़ पर चढ़कर चारों ओर देखने लगा, लेकिन उसका कहीं पता न चला। पेड़ पर चढ़ते समय उसने अपनी तलवार नीचे ही रख दी थी। इसी बीच में डाकुओं के एक सरदार ने आकर वह तलवार उठा ली। श्रीदत्त ने पेड़ से उतरकर उससे राजकुमारी के बारे में पूछा। डाकुओं के सरदार ने कहा, "मेरे साथ आओ। घर पहुंचकर मैं तुम्हें राजकुमारी और तलवार दोनों ही दे दूंगा।" श्रीदत्त उसके साथ उसके गांव में पहुंचा। थका होने के कारण वह रात में सो गया। सुबह जब वह उठा, तो देखा कि उसके पैर बेड़ियों से जकड़े हुए हैं। इतने में मोचनिका नाम की एक औरत उसके पास आई और बोली, "यह डाकुओं का घर है। तुम यहां फंस गये हो, वे तुम्हारी देवी के सामने बलि चढ़ा देंगे। इससे बचने का एक ही उपाय है कि तुम डाकुओं के सरदार की लड़की से प्रेम करो, क्योंकि वह तुम पर मुग्ध हो गई है।" श्रीदत्त ने और कोई उपाय न देखकर डाकू की लड़की से गंधर्व-विवाह कर लिया। दोनों छिप-छिपकर मिलने लगे। डाकू का लड़की सुंदरी की मां को जब इसका पता चला, तो उसने श्रीदत्त से कहा, "तुम्हारे प्रेम का पता जब 'सुंदरी' के पिता को चलेगा, तो वह तुम्हें मार डालेगा, इसलिए तुम भाग जाओ।" उसने सुंदरी को आश्वासन दिया और वहां से भागकर वह उस स्थान पर आया जहां उसका राजकुमारी से विछोह हुआ था। वहां उसे एक शिकारी मिला। उसने कहा, "यहां तुम्हारी स्त्री दुख से रो रही थी। मैंने उससे घर का पता पूछकर मथुरा में विश्वदत्त नामके ब्राह्मण के घर पहुंचा दिया है।" श्रीदत्त तुरंत विश्वदत्त के पास पहुंचा, विश्वदत्त ने बताया, "मैंने राजकुमारी को राजा शूरसेन के उपाध्याय के यहां रख दिया है।

तुम उससे वहां जाकर मिल लो।" श्रीदत्त अब उपाध्याय के घर की तरफ़ चला। रास्ते में वह एक जलाशय में स्नान करने लगा। वहां पानी में उसे एक वस्तु मिली जिसमें रत्नों की एक माला बंधी हुई थी। वह उसको लिये हुए जब नगर में पहुंचा तो राजा के सिपाही उसे पकड़कर दरबार में ले गये। राजा ने उसको मृत्यु का दंड दिया। जब सैनिक उसे मारने के लिए ले जा रहे थे, तो उपाध्याय के घर से राजकुमारी मृगांकवती ने उसको देख लिया। उसने उपाध्याय से कहा, "यह तो मेरे पति हैं।" उपाध्याय ने प्रयत्न करके किसी तरह श्रीदत्त को छुड़वा लिया। यहां श्रीदत्त की भेंट उसके चाचा विगतभय से हुई जो वहां का राजमंत्री था। श्रीदत्त ने विगतभय को सारा हाल सुनाया। उसे सुनकर विगतभय बहुत दुखी हुआ। उसने श्रीदत्त को पांच हजार घोड़े और सात करोड़ अशर्फियां दीं। ये दोनों चीजें उसे एक यक्षिणी से प्राप्त हुई थी। अब श्रीदत्त अपनी पत्नी के साथ सुखपूर्वक वहां रहने लगा। एक दिन विगतभय ने श्रीदत्त से कहा, "मैं राजा शूरसेन की पुत्री को किसी तरह तुम्हारे पास पहुंचा दूंगा। तुम उसे पाकर बहुत धनवान हो जाओगे और लक्ष्मी का दिया हुआ वरदान भी सफल हो जायगा।" ऐसा ही हुआ। श्रीदत्त राजा शूरसेन की पुत्री और अपनी पत्नी को साथ लेकर अवंति की ओर चल दिया। विंध्याचल के रास्ते में डाकुओं ने फिर उसको पकड़ लिया और देवी की भेंट चढ़ाने के लिए ले गये। लेकिन सरदार की कन्या पूर्व-परिचित सुंदरी ने उसको बचा लिया। उसने पिता से सब-कुछ कह दिया। डाकुओं के सरदार के कोई लड़का न था। वह अपनी पुत्री सुंदरी के साथ-साथ अपनी सारी संपत्ति भी श्रीदत्त को दे गया। श्रीदत्त को अपनी तलवार भी मिल गई। उसने राजा शूरसेन की पुत्री से भी विवाह कर लिया।

इसके बाद श्रीदत्त ने विक्रम-शक्ति को मारकर अपने पिता की मृत्यु का प्रतिशोध चुकाया और धीरे-धीरे सारी पृथ्वी का राजा बन गया।

यह कथा सुनाकर संगतक ने राजा सहस्रानिक से कहा, "इस तरह अनेक विपत्तियां सहने के बाद भी धैर्य रखनेवाले पुरुष अंत में सुख और आनंद का ही भोग करते हैं।"

रात भर राजा यह कथा सुनते रहे। सुबह होने पर वह ऋषि जमदग्नि के आश्रम की ओर चल दिये। वहां पहुंचकर उन्होंने महर्षि को प्रणाम किया। जमदग्नि तो सब-कुछ जानते थे। उन्होंने सप्रेम उसकी पत्नी और पुत्र को उसके साथ विदा कर

दिया। जब राजा सहस्रानीक उनको लेकर वापस लौटे तो राज्य में आनंद छा गया। उत्सव मनाये जाने लगे। कुछ समय बाद राजा ने उदयन को युवराज और वसंतक, रुक्मवान और योगंधरायण को मंत्री बनाकर अपने को धीरे-धीरे राज्य के भार से मुक्त कर दिया। जब उदयन को गद्दी पर बैठाया गया तो उस समय आकाशवाणी हुई कि उदयन सारी पृथ्वी का सम्राट् बनेगा। उससे बाद राजा सहस्रानीक अपनी पत्नी के साथ हिमाचल की ओर तपस्या करने के लिए चले गये।

## : ३ :

## राजा उदयन

राजा उदयन गद्दी पर बैठने के बाद आनंद और विलास में डूब गया। राज्य का शासन-भार उसने अपने मंत्री को सौंप दिया। वह नृत्य देखता, सितार बजाता, शिकार खेलता, हाथियों की कुश्ती करवाता और मदिरा के नशे में मस्त रहता। उसे सिर्फ़ अपने लिए एक उच्च वंश की सुंदर और गुणवती पत्नी की तलाश थी। उज्जयनी के राजा चंडमहासेन की लड़की वासवदत्ता को वह पत्नी बनाना चाहता था। चंडमहासेन भी उदयन की ख्याति सुनकर उसे अपनी कन्या देना चाहता था। चंडमहासेन ने सोचा कि जब उदयन हाथियों का शिकार करने के लिए जंगल में आयगा तो उसे गिरफ्तार कर लिया जायगा। फिर उसे महल में ले जायंगे जहां वह वासवदत्ता को संगीत की शिक्षा देगा। यह सोचता हुआ वह देवी के मंदिर में गया और वहां उसने उदयन को प्राप्त करने का वर मांगा। आकाशवाणी हुई कि उसकी इच्छा सफल होगी। उसके बाद चंडमहासेन ने मंत्रियों सलाह करके उदयन के पास अपना दूत भेजा। कौशांबी नगरी में जाकर दूत ने उदयन से कहा, "हमारे राजा की कन्या वासवदत्ता आपसे संगीत सीखना चाहती है, उसके लिए उसने आपको अपने यहां बुलाया है। यदि आप उससे प्रेम करते हैं तो उसके यहां चलिये।" मंत्रियों से सलाह लेकर उदयन ने दूत को जवाब दिया, "अगर तुम्हारे राजा की लड़की को संगीत सीखने की इच्छा है, तो अपने राजा से कह दो कि वह उसे हमारे यहां भेज दें।"

फिर उदयन ने अपने मंत्री से पूछा, "चंडमहासेन को पकड़वाकर यहां बुला लिया जाय तो कैसा रहेगा ?" मंत्री ने उत्तर दिया, "वह बहुत प्रभावशाली राजा है। उसे पकड़ना संकट का काम है। इसलिए आपको उससे मित्रता बढ़ानी चाहिए। इस विषय में मैं एक कहानी सुनाना चाहता हूं। सुनिये।" :

उज्जयनी नामक नगरी में महेंद्र वेर्मा नाम का राजा राज्य करता था। महासेन नाम का उसका एक पौत्र था, जो बहुत बलवान था। उसने एक अच्छी तलवार और एक सुंदर तथा कुलीन स्त्री पाने के लिए देवी की पूजा शुरू की। इस पूजा में अपना मांस तक चढ़ाया। देवी ने प्रसन्न होकर इंद्र के वज्र की तरह मजबूत तलवार और ऐरावत की तरह एक विशालकाय हाथी उसे देकर कहा, "तूने बड़े ही प्रचंड रूप से तप किया है इसलिए तेरा नाम चंडमहासेन होगा और अंगासुर की अंगारवती नामक सुंदरी कन्या से तेरा विवाह होगा।" एक दिवस वही राजा शिकार खेलने के लिए जंगल में गया। वहां उसने एक बहुत बड़ा जंगली सुअर देखा। उसने सुअर पर तीर चलाये। लेकिन वह बचकर अपनी मांद में घुस गया। तीर-कमान के साथ उसका पीछा करते हुए वह उसकी मांद में घुस गया। वहां उसे एक सुंदर वाटिका दिखाई दी। उसमें एक सुंदरी कन्या अपनी सैकड़ों सहेलियों के साथ जलाशय के किनारे सैर कर रही थी। उस कन्या ने राजा से वहां आने का कारण पूछा। राजा के कारण बताने पर वह बड़े दुख से रोने लगी। तब राजा ने उससे पूछा, "तुम क्यों रो रही हो ?" उस सुंदरी ने कहा, "जिस सुअर का तुम पीछा कर रहे थे, वह अंगारक नाम का एक दानव है। उसकी देह वज्र के समान कठोर है। अनेक राजकन्याओं को पकड़कर वह यहां लाया है और उन्हें मेरी दासी बना दिया है। किसीके शाप से वह दैत्य हो गया है। इस समय वह सो रहा है और अपने असली रूप में सो रहा है। जैसे ही वह सोकर उठेगा, तुम्हें मार डालेगा, इसलिए मैं रो रही हूं।"

राजा ने उसे समझाते हुए कहा, "यदि तुम चाहो तो मेरी जान बचा सकती है। जब वह सोकर उठे, तुम जोर-जोर से रोने लगना और कहना कि यदि कोई तुम्हें मार डालेगा तो मेरा क्या होगा ?"

यह कहकर राजा वहीं छिप गया। उस कन्या ने ऐसा ही किया। अंगासुर बोला, "तुम डरो नहीं, मुझे कोई नहीं मार सकता है, क्योंकि मेरी देह वज्र के समान कठोर है। हां, यदि कोई मेरे बायें हाथ के छेद पर प्रहार करे, तो मैं मर

सकता हूं, लेकिन उस छेद को मैं सदा अपने धनुष के नीचे छिपाये रखता हूं।" इस प्रकार राजा ने इस रहस्य को जान लिया और जब अंगासुर शिव की पूजा कर रहा था, तब उसने राक्षस को चुनौती दी। अंगासुर ने अपना बांया हाथ उठाकर थोड़ी देर ठहरने के लिए कहा। तब राजा ने तुरंत ही उसके हाथ के छेद में तीर मार दिया। अंगासुर मर गया। मरते समय उसने कहा, "मैं प्यासा मर रहा हूं, इसलिए अगर तुम मुझे हर साल पानी न दोगे तो तुम्हारे पांच मंत्री मर जायंगे।" इसके बाद राजा ने अंगारवती से विवाह कर लिया और अपने घर आकर रहने लगा। उसके पालक और गोपालक नाम के दो लड़के हुए। उस समय इंद्र ने स्वप्न में उससे कहा, "मेरे आशीर्वाद से तुम्हारे यहां एक सुंदरी कन्या का जन्म होगा।" ठीक समय पर वैसी कन्या का जन्म हुआ। जन्म के समय आकाशवाणी हुई "इस कन्या से जो पुत्र होगा, वह कामदेव का अवतार होगा और सब विद्याधरों के ऊपर राज्य करेगा।" इंद्र के आशीर्वाद से प्राप्त कन्या का नाम ही वासवदत्ता रखा है।

इतनी कथा सुनाकर मंत्री ने उदयन से कहा, "हे राजन, वासवदत्ता का पिता बहुत प्रभावशाली और शक्तिसंपन्न है। उससे युद्ध की बात न सोचिये। वह स्वयं आपके साथ वासवदत्ता का विवाह करना चाहता है।"

## : ४ :

# चंडमहासेन और वासवदत्ता

उदयन का संदेश पाकर चंडमहासेन ने उसको पकड़ मंगवाने का नया उपाय सोचा। उदयन को हाथी के शिकार का बड़ा शौक था। चंडमहासेन ने एक इस तरह का बनावटी हाथी बनवाया जिसके पेट में अनेक सैनिक छिपकर बैठ सकते थे। उस हाथी को वहां छोड़ दिया गया जहां उदयन शिकार खेलने आया करता था। उदयन के नौकरों ने इस नये ढंग के हाथी को देखा। वे तुरंत यह समाचार लेकर उसके पास गये। वह बहुत प्रसन्न हुआ। समाचार देनेवालों को उसने बहुत-सा धन पुरस्कार में दिया।

फिर मंत्रियों और ज्योतिषियों के मना करने पर भी वह अपने जासूसों को

साथ लेकर उस हाथी का शिकार करने चल पड़ा। कहीं हाथी भीड़ देखकर भाग न जाय, इसलिए उसने अपने सैनिकों को दूर छोड़ दिया और स्वयं अपनी वीणा लेकर उसके पास पहुंचा। वह वीणा बजाने लगा। शीघ्र ही वह तन्मय हो गया। उसे यह पता न चला कि वह हाथी बनावटी है। इसी बीच में हाथी के भीतर बैठे सैनिक हथियार-सहित बाहर निकल पड़े और उदयन को गिरफ्तार करके चंड-महासेन के पास ले गये। चंडमहासेन ने उदयन का बड़ा स्वागत-सत्कार किया और संगीत की शिक्षा लेने के लिए वासवदत्ता को उसके पास भेजा। उसके रूप को देखकर उदयन अपने बंधन की बात भूल गया।

इधर जब उदयन के राज्य में उसके गिरफ्तार होने का समाचार पहुंचा तो वहां की प्रजा चंडमहासेन के राज्य पर चढ़ाई करने के लिए बेचैन हो उठी। लेकिन मंत्री रुक्मवान ने उन्हें समझा-बुझाकर ऐसा करने से रोक दिया। मंत्री यौगंधरायण ने दूसरे मंत्रियों को सलाह दी कि इस समय चढ़ाई करना तो ठीक नहीं है, लेकिन मैं वहां जाकर कौशल और चतुरता से उदयन को छुड़ाने का प्रयत्न करूंगा। मैं छिपकर काम करने, घर में प्रवेश करने और लोहे के बंधनों को तोड़ने आदि के कामों में निपुण हूं। उसने ऐसा ही किया। राज्य का भार उसने मंत्री रुक्मवान पर छोड़ा और स्वयं वसंतक को साथ लेकर उज्जयनी की तरफ चल दिया। रास्ते में उसे राजा पुलिंदक मिला, जो उदयन का बड़ा मित्र था। उसने पुलिंदक से कहा कि वह उदयन को साथ लेकर इधर से ही वापस आयेगा। वह अपनी सेना के साथ तैयार मिले।

योगंधरायण उज्जयनी में सबसे पहले महाकाल के मरघट पर पहुंचा। वहां उसे एक ब्रह्मराक्षस मिला, जिससे उसकी बड़ी मित्रता हो गई। ब्रह्मराक्षस की सलाह से यौगंधरायण ने अपना रूप एक बूढ़े, गंजे और बड़े-बड़े दांतवाले पागल-से कुबड़े की तरह बना लिया और अपने साथी वसंतक का पेट खूब मोटा कर दिया। अपनी तोंद फुलाकर वसंतक योगंधरायण की आज्ञा से राजमहल की ओर चला गया। योगंधरायण स्वयं नगर में जहां-तहां हंसी के खेल दिखाने लगा। एक दिन वह राजा के महल के पास अपना खेल दिखा रहा था। उसे देखकर रानियां बहुत प्रसन्न हुईं और वासवदत्ता ने भी उसको अपने महल में बुलाया। वहां वह उदयन को एक बंदी की स्थिति में देखकर बहुत दुखी हुआ। उसने उदयन की ओर कुछ संकेत किये, जिससे उदयन ने उसे पहचान

लिया। फिर उसने योग के प्रभाव से अपने को दूसरों की आंखों से छिपा लिया। रानियां आश्चर्य करने लगीं,"अरे वह कहां गायब हो गया।" तभी उदयन ने पूजा की सामग्री के लाने के बहाने वासवदत्ता और उसकी सखियों को दूसरी ओर भेज दिया। इस प्रकार एकांत हो जाने पर योगंधरायण ने उदयन को लोहे की बेड़ी काटने और वीणा के प्रभाव से वासवदत्ता को अपने आधीन करने का उपाय बताया। फिर उसने वसंतक को भी वहां बुला लिया। जब वासवदत्ता सरस्वती की पूजा के लिए सामग्री ले आई, तब दक्षिणा के लिए ब्राह्मण के रूप में वसंतक उसके सामने उपस्थित हुआ। उदयन को देखकर उसने रोना शुरू कर दिया। उदयन ने उसे बहुत समझाया और उसका रहस्य छिपाने के लिए कहा, "तुम रोओ मत? हम तुम्हारा इलाज करके तुम्हारा रोग दूर कर देंगे।" वसंतक का रूप देखकर वह अपनी हंसी न रोक सका। वासवदत्ता और उसकी सहेलियां भी हंसने लगी। वसंतक से वासवदत्ता ने पूछा, "तू क्या काम कर सकता है?" वसंतक ने कहा, "मैं मनोरंजक कथाएं सुनाता हूं।" तब वासवदत्ता ने उसे एक मनोरंजक कथा सुनाने के लिए कहा। वसंतक ने कहा, "सुनो।" :

मथुरा में रूपणिका नाम की एक वेश्या रहती थी। उसकी मां बूढ़ी हो गई थी, उसका नाम मकरदंस्ट्रा था। वह कुटनी का काम करती थी। वेश्या के ग्राहकों को उस बुढ़िया के कारण बड़ी बाधा पहुंचती थी। एक बार रूपणिका पूजा करने जा रही थी। रास्ते में लोहजंग नामक एक निर्धन ब्राह्मण ने उसे देखा और वह उस पर मुग्ध हो गया। रूपणिका ने घर जाकर उस ब्राह्मण को अपने यहां बुलवाया। धीरे-धीरे वह उस ब्राह्मण से ही प्रेम करने लगी। दूसरों के साथ उसके सब संबंध छूट गये। इस पर उसकी मां मकरदंस्ट्रा ने उसे समझाते हुए कहा, "वेश्या का धर्म किसी एक आदमी से प्रेम करना नहीं है। वह सबमें ही अपना प्रेम बांटती है, चाहे वह प्रेम बनावटी ही क्यों न हो। और गरीब आदमी से तो वेश्या को बात भी नहीं करनी चाहिए।"

रूपणिका ने अपनी मां की एक भी बात न मानी। इससे उसकी मां को बहुत क्रोध आया और वह लोहजंग को घर से बाहर निकालने का उपाय सोचने लगी। एक दिन वह एक गरीब राजकुमार को अपने घर लाई और उससे कहा, "मेरे यहां एक निर्धन ब्राह्मण रहता है। तुम उसे यहां से निकाल दो तो मैं अपनी कन्या तुम्हें दे दूंगी।"

रूपणिका उस समय पूजा करने के लिए गई हुई थी। राजकुमार के आदमियों ने लोहजंग को एक मल से भरे हुए गड्ढे में फेंक दिया। बेचारा गरीब ब्राह्मण किसी तरह उसमें से निकला और आत्महत्या की बात सोचने लगा। रास्ते में उसे एक हाथी की लाश दिखाई दी। उसके अंदर के मांस को जंगली जानवरों ने खा डाला था, केवल ऊपर का चमड़ा बाकी था। उस समय धूप बहुत तेज थी और वह चलते-चलते थक गया था; इसलिए वह उस मरे हुए हाथी की खोखली देह में घुसकर बैठ गया। थके होने के कारण थोड़ी देर में उसे नींद आ गई। कुछ देर बाद पानी बरसने लगा और हाथी की देह का वह चमड़ा भींगकर सिकुड़ने से वह छेद बंद हो गया। पानी इतना बरसा था कि बाढ़ आ गई और वह हाथी बहकर समुद्र में पहुंच गया। एक बड़े गरुड़ पक्षी ने उस हाथी की लाश को समुद्र में बहते हुए देखा। वह उसको उठाकर किनारे पर ले गया और चोंच से उसके मांस को खाने लगा। उसकी खाल फट गई। उसने भीतर एक आदमी को बैठे देखा तो वह उड़ गया। लोहजंग अचरज से भरा हुआ बाहर आया। उसे वहां दो दैत्य दिखाई दिये। वह बहुत भयभीत हुआ। वे भी उसे देखकर डर गये। उनमें से एक दैत्य ने विभीषण से जाकर सब समाचार कहा। विभीषण ने उसे अपनी लंका में बुला भेजा और उसका सत्कार करके पूछा कि उसका वहां किसलिए आना हुआ। लोहजंग के मन में कपट जाग आया था। उसने उत्तर दिया, "मैं मथुरा का रहनेवाला लोहगंज नामक ब्राह्मण हूं। मैंने धनवान बनने के लिए भूखे रहकर तपस्या की थी। तब भगवान ने मुझे स्वप्न में बताया कि विभीषण मेरा बहुत भक्त है, तुम उसके पास जाओ। वह तुम्हें धनवान बना देगा। फिर भगवान की कृपा से सोकर उठा तो मैंने अपने को यहां पाया।"

विभीषण ने समझा कि यह कोई पहुंचा हुआ आदमी है। उसने उसको एक गरुड़ पक्षी दिया और उस पर सवारी करना सिखाया। एक बार लोहजंग ने विभीषण से पूछा, "मथुरा की जमीन लकड़ी से क्यों भरी हुई है?" विभीषण ने इसका कारण बताते हुए कहा, "एक बार कश्यप के पुत्र गरुड़ की मां दासता के बंधन में पड़ गई। गरुड़ उसका बंधन छुड़ाने के लिए देवताओं से अमृत तक लाने को तैयार हो गया। उसने अपने पिता से खाने के लिए कोई ऐसी चीज़ मांगी जो बहुत ही शक्तिदायिनी हो। पिता ने बताया कि समुद्र में शापयुक्त एक हाथी और एक कछुआ पड़ा हुआ है, उनको खा जाओ। गरुड़ उन दोनों को अपने पंजों में

पकड़कर उड़ा और कल्पवृक्ष की एक डाल पर जा बैठा। उसके बैठते ही वह डाल टूट गई। गरुड़ ने उस डाल को चोंच से पकड़कर मथुरा में लेजाकर छोड़ दिया। इसलिए मथुरा की जमीन काठ की बन गई।"

लोहजंग को यह सुनकर बड़ी प्रसन्नता हुई। जब वह लंका से मथुरा लौटने लगा तब विभीषण ने उसको बहुत-सा धन और रत्न भेंट में दिये। उसने सोने के शंख, चक्र, गदा और पद्म भी उसको दिये। साथ ही लाखों कोस तक उड़नेवाला एक पक्षी सवारी के लिए दिया। लोहजंग सब सामान लेकर पक्षी पर बैठकर उड़ा तो पल भर में मथुरा पहुंच गया। नगर से बाहर किसी एकांत स्थान में सब सामान रखकर और पक्षी को बांधकर वह बाजार को गया। गहने, कपड़े और खाने का सामान खरीदने के लिए उसने एक रत्न बेचा। वापस आकर उसने भोजन किया और पक्षी को भी खाना खिलाया। रात में उसने सब कपड़े और गहने पहने, शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये। फिर गरुड़ पर बैठकर रूपणिका के घर के ऊपर चक्कर लगाया। वहीं से बोला, "मैं भगवान विष्णु हूं और तुझसे मिलने आया हूं।" वह रात भर वहां रहा और सुबह उड़कर वापस चला आया। रूपणिका अब अपने को भगवान विष्णु की पत्नी समझने लगी। उसने अपनी मां को एकांत में सब बातें बताईं। दूसरी रात को उसकी मां ने छिपकर विष्णु के रूप में लोहजंग को देखा। दूसरे दिन उसने अपनी लड़की से कहा, "तू भगवान विष्णु से सिफारिश करके मुझे जिंदा ही स्वर्ग पहुंचवा दे।" रात को जब फिर लोहजंग आया तो उसने अपनी मां की बात उससे कही। लोहजंग ने कहा, "उसने बड़े पाप किये हैं। उसे इस रूप में स्वर्ग नहीं भेजा जा सकता। केवल एक उपाय हो सकता है कि जब एकादशी के दिन स्वर्ग का दरवाजा खुलता है और शिव के गण उसमें जाते हैं तो उनके साथ तेरी मां को भेज दूं। लेकिन इसके लिए आवश्यक है कि तेरी मां शिव के गणों में मिलने के लिए अपना रूप उन्हींकी तरह बनाये। तू अपनी मां का सिर मुड़वादे और पांच चोटियां रखवादे। आधा मुंह गोरा और आधा काला करवादे और गले में खोपड़ियों की माला पहनाकर उसे नंगा करदे। इस रूप में ही मैं उसे स्वर्ग ले जा सकता हूं।" रूपणिका ने अपनी मां का वैसा ही रूप बना दिया। लोहजंग अपने साथ पक्षी पर बैठाकर उसे एक मंदिर के ऊपर ले गया। उस मंदिर के उपर लंबे खंभे के ऊपर एक चक्र लगा हुआ था। बुढ़िया को वह चक्र पकड़ाकर वह स्वयं वापस चला आया। जब रात में लोग मंदिर में पूजा और

जागरण के लिए इकट्ठे हुए, तो लोहजंग पक्षी पर बैठकर आकाश में उड़ गया और वहां जाकर आकाशवाणी की, "हे मथुरावासियो, अब तुम्हारे ऊपर महामारी का कोप होनेवाला है। इससे बचने का एक रूप ही उपाय है कि तुम लोग भगवान विष्णु की प्रार्थना करो।" ये लोग डर के मारे भगवान की प्रार्थना करने लगे। लोहजंग भी अपने असली रूप में भीड़ में शामिल होगया। उधर चक्र के सहारे बैठी हुई बुढ़िया सोचने लगी कि भगवान विष्णु ने मुझे अभी तक स्वर्ग क्यों नहीं पहुंचाया ? जब वह ज्यादा देर चक्र के सहारे न बैठ सकी तो चिल्लाने लगी, "हाय मैं गिरी !" लोग समझे कि यह वही गिरनेवाली महामारी है। उन्होंने प्रार्थना की, "देवी ! यहां पर मत गिरो।"

इसी तरह रात बीत गई और सवेरा हुआ। तब लोगों ने उस बुढ़िया को पहचान लिया। उनको उसकी इस दशा पर बड़ी हंसी आई। अपनी मां का यह हाल सुनकर रूपणिका भी आ गई। उसने उसे खंभे से नीचे उतरवाया और जब उन्हें सब बातों का पता चला तो उन्होंने समझा कि यह काम किसी सिद्ध ने किया है। तब राजा और प्रजा सबने कहा, "सबको ठगनेवाली इस बुढ़िया को जिसने ठगा है, उसे डरना नहीं चाहिए और सबके सामने प्रगट हो जाना चाहिए।" इस समय लोहजंग सबके सामने आया और अपना सारा हाल सबको बताया। उसने अपने शंख, चक्र, गदा और पद्म राजा को भेंट कर दिये। वह रूपणिका एक साथ सुखपूर्वक रहने लगा।

वसंतक से यह मनोरंजक कथा सुनने के बाद वासवदत्ता उदयन के प्रति और आकर्षित होगई। परिणामस्वरूप बंधन में रहते हुए भी उदयन सुखपूर्वक रहने लगा।

## : ५ :

## उदयन की मुक्ति

एक दिन योगंधरायण ने उदयन से एकांत में कहा, "राजा चंडमहासेन तुम्हारे साथ वासवदत्ता का विवाह करके ही तुम्हें यहां से मुक्त करना चाहता है। लेकिन इससे तुम्हारा अपमान होगा। इसलिए तुम यहां से वासवदत्ता को अप-

हरण करके ले जाग्रो । इसके लिए मैंने उपाय सोच लिया है । मैंने ग्राशाढ़क नामक महावत को पैसा देकर उससे भद्रवती नामक हथिनी को मांग लिया है। तुम वासवदत्ता को उस हथिनी पर बैठाकर भगा ले जाग्रो। यहां हाथियों की देख-भाल करनेवाला जो कर्मचारी है, उसको किसी तरह मदिरा पिलाकर बेहोश कर दो। तब तक मैं म्लेच्छराज पुलिंदक के पास जाता हूं । मैं उसकी सेनाग्रों को तैयार रखूंगा ।"

योगंधरायण यह सलाह देकर चला गया । उदयन ने वासवदत्ता को सारी बातें समझाईं । वह राजी हो गई । एक दिन अपनी वीणा,वासवदत्ता, उसकी सहेली कंचनमाला, हथियार और वसंतक को लेकर वह हाथी पर सवार हुआ और वहां से भाग निकला । जिन पहरेदारों ने उसको रोकने का प्रयत्न किया, उन्हें उसने मार डाला । चंडमहासेन ने भी यह समाचार सुना । पालक नामक राजकुमार ने दूसरे हाथी पर चढ़कर उदयन से लड़ने के लिए उसका पीछा किया । लेकिन गोपालक उसे समझा-बुझाकर वापस ले आया ।

इधर जब राजा उदयन विंध्याचल के रास्ते से जा रहा था, तब दोपहर के समय भद्रवती हथिनी को बहुत प्यास लगी और जैसे ही उसने पानी पिया, वैसे ही उसके प्राण निकल गये । उदयन और वासवदत्ता हथिनी के इस तरह मरने पर बहुत दुखी हुए । इसी समय आकाशवाणी हुई, "मैं जो भद्रवती हथिनी इस समय मर गई हूं, वास्तव में हथिनी नहीं हूं । मेरा नाम मायावती है और मैं विद्याधरों के वंश की हूं । शाप के कारण मैं हथिनी हो गई थी । अब मैं शाप से छूट गई हूं । जिस तरह मैंने तुम्हारी सेवा की है, उसी तरह भविष्य में तुम्हारे पुत्र के काम भी आऊंगी । वासवदत्ता भी वास्तव में देवी है ।"

इस आकाशवाणी से उदयन को बड़ी प्रसन्नता हुई । वसंतक उदयन के आने का संदेश लेकर पुलिंदक के पास चला गया । कुछ दूर जाने के बाद उदयन को डाकुओं का सामना करना पड़ा, जिनको उसने अपने तीरों से छेद-छेदकर मार भगाया । इसी बीच वसंतक पुलिंदक को और योगंधरायण अपनी सेना साथ लेकर वहां पहुंच गये । सेनापति रुक्मवान भी राज की बड़ी सेना साथ लेकर राजा के स्वागत के लिए आ पहुंचा । सारे विंध्याचल पहाड़ पर सैनिक-ही-सैनिक दिखाई देने लगे । इतने में योगंधरायण का एक वणिक मित्र उज्जयनी से आया और उसने बताया, "राजा चंडमहासेन राजा उदयन पर बहुत खुश हैं । उन्होंने अपना दूत भी

इधर भेजा है ।" इस समाचार से राजा उदयन, वासवदत्ता और उनके सभी साथियों को बहुत संतोष हुआ । तब वासवदत्ता ने वसंतक से कोई पति-प्रेम की कहानी सुनाने का आग्रह किया । वसंतक ने इस प्रकार कहानी शुरू की :

ताम्रलिप्ती नामक नगर में धनदत्त नामक एक धनवान बनिया रहता था । उसके कोई संतान नहीं थी । उसने ब्राह्मणों से इस विषय में सलाह ली । ब्राह्मणों ने कहा, "वैदिक विधि से असंभव काम भी संभव हो सकता है ।" और उदाहरण के लिए उन्होंने यह कथा सुनाई :

पुराने समय में एक राजा था, जिसकी पांचसौ पत्नियां थीं, लेकिन संतान किसीके भी नहीं थी । इसलिए उसने पुत्रेष्ठि यज्ञ किया । यज्ञ के प्रभाव से एक लड़का पैदा हुआ । उसका नाम जंभु रखा गया । एक बार इस लड़के को चींटी ने काट लिया । उसने रोना शुरू कर दिया । राजा-रानी सभी बहुत दुखी और चिंतित हुए । राजा ने ब्राह्मणों से कहा, "केवल एक बेटा होने से बड़ी परेशानी है, क्योंकि एक का दुख बहुत बड़ा मालूम पड़ता है । अगर कई लड़के हों तो इतना दुख नहीं मालूम होता ।" ब्राह्मणों ने उपाय बताया, "यदि तुम अपने लड़के के मांस से यज्ञ करो और उससे उठनेवाले धुएं को सब रानियां सूंघ लें, तो उन सबके एक-एक लड़का पैदा होगा ।"

राजा ने ऐसा ही किया और उसके अनेक लड़के पैदा हुए ।

यह कथा सुनाकर ब्राह्मणों ने धनदत्त को भी यज्ञ करने की सलाह दी । धनदत्त ने यज्ञ किया और उसके भी एक लड़का पैदा हुआ, जिसका नाम गुहसेन रखा गया । जब वह बड़ा हुआ तो धनदत्त उसको साथ लेकर व्यापार करने के लिए दूसरे द्वीप को गया । अब धनदत्त के मन में गुहसेन का विवाह करने की इच्छा हो रही थी । उस द्वीप में धर्मगुप्त नामक एक बनिया रहता था । उसके देवस्मिता नामक एक सुंदर लड़की थी । धनदत्त ने अपने लड़के के साथ देवस्मिता का विवाह कर देने का प्रस्ताव धर्मगुप्त के सामने रखा, लेकिन उसने नहीं माना । उधर देवस्मिता गुहसेन को देखकर उस पर मुग्ध हो गई थी । वह अपनी सखियों की सहायता से धनदत्त और गुहसेन के साथ छिपकर ताम्रलिप्ती भाग आई । ताम्र-लिप्ती में दोनों का विवाह कर दिया गया । वे एक-दूसरे से बहुत प्रेम करते थे । जब धनदत्त मर गया तब व्यापार का सारा भार गुहसेन पर आ पड़ा । गुहसेन अपने मित्रों की सलाह से व्यापार करने के लिए कटाह द्वीप जाने को तैयार हुआ ।

देवस्मिता को यह बात पसंद नहीं आई। उसे भय हुआ कि कहीं उसका पति कटाह द्वीप में जाकर वहां की सुंदरियों के प्रेम में न फंस जाय। उसने गुहसेन को वहां जाने से रोका। दोनों अपना संदेह मिटाने के लिए मंदिर में गये और व्रत शुरू किया। रात में उन्होंने सपना देखा कि शिवजी ने दोनों के हाथों में एक-एक लाल कमल का फूल रख दिया और कहा कि चाहे अलग रहो या पास, अगर एक ने व्यभिचार किया तो दूसरे के हाथ का कमल अपने-आप मुरझा जायगा। वैसे ये फूल कभी नहीं मुरझायेंगे। जब दोनों की आंख खुलीं तो देखा कि वास्तव में उनके हाथों में एक-एक लाल कमल का फूल है। अब गुहसेन उस फूल को साथ लेकर कटाह द्वीप चला गया। वहां उसके हाथ में कभी न मुरझानेवाला कमल का फूल देखकर चार वणिक-पुत्रों को बड़ा कौतूहल हुआ और किसी तरह बातों-बातों में उन्होंने गुहसेन से सारा रहस्य जान लिया। अब उन चारों की नीयत खराब हो गई और वे गुहसेन की पत्नी को धर्मभ्रष्ट करने के इरादे से ताम्रलिप्ती चले आये। ताम्रलिप्ती के एक मंदिर में योगकंडिका नामक एक संन्यासनी से उनकी भेंट हो गई। उन्होंने योगकंडिका से कहा कि यदि उनका काम वह पूरा करा दे तो वे उसको बहुत-सा धन भेंट करेंगे। योगकंडिका ने कहा, "मुझे धन नहीं चाहिए। सिद्धकरी नामक मेरी एक चेली ने मुझे बहुत धन दिया है।" बनिये के बेटे ने पूछा, "सिद्धकरी ने कैसे और कहां से लाकर तुम्हें धन दिया?" योगकंडिका ने कहा, "एक बार इस नगर में ही उत्तर की ओर से आकर एक बनिया रहने लगा। सिद्धकरी ने अपना रूप बदलकर उसके यहां नौकरी की। जब वह बनिया उस पर पूरा भरोसा करने लगा, तब एक दिन सिद्धकरी उसके घर से सारा सोना चोरी कर लाई। ढोल बजाते हुए एक चांडाल ने उसका पीछा किया। सिद्धकरी तत्काल एक पेड़ के नीचे खड़े होकर चांडाल से बोली, 'मेरा मेरे पति से झगड़ा हो गया है और मैं अब मरना चाहती हूं। तू एक फांसी का फंदा बनादे।' चांडाल ने यह सोचकर कि यह अपने-आप मर जायगी और इस तरह सारा धन उसको मिल जायगा, एक फांसी का फंदा बना दिया। फिर सिद्धकरी ने कहा, 'इस फंदे में लटकने का ढंग भी बता दे।' तब चांडाल अपना गला फांसी के फंदे में फंसा ढोल पर खड़ा हो गया। सिद्धकरी ने चट से ढोल को लुढ़का दिया और वह चांडाल सचमुच फांसी पर चढ़ गया। इतने में वह बनिया अपने आदमियों के साथ वहां आ पहुंचा। उसे देखकर सिद्धकरी पेड़ पर चढ़ गई। बनिये ने अपने नौकर को भी

पेड़ पर चढ़ने को कहा। जब वह सिद्धकरी के समीप पहुंचा तो वह उससे बोली, 'आओ मेरे पास, गले लग जाओ; मैं तुम्हें प्यार करती हूं।' नौकर ने ज्योंही अपना मुंह आगे बढ़ाया, सिद्धकरी ने अपने दांतों से उसकी जीभ काट ली। नौकर घबड़ाकर नीचे गिर पड़ा और उसके मुंह से खून गिरने लगा। बनिये ने समझा कि यह भूत का असर है। बस अपने दूसरे नौकरों के साथ वह घर भाग आया। इस तरह सारा धन मेरे पास आ गया।"

यह कथा सुनाकर योगकंडिका ने अपनी चेली की बड़ी प्रशंसा की और उनको उससे मिला भी दिया। बनियों के बेटों ने देवस्मिता से मिलने की इच्छा प्रकट की। संन्यासिनी उनका काम करने का वचन देकर दूसरे दिन अपनी चेली के साथ गुहसेन के घर गई। द्वार पर एक कुतिया थी। वह उसे देखकर भोंकने लगी। देवस्मिता ने संन्यासिनी समझकर उसे अंदर बुला लिया और आने का कारण पूछा। संन्यासिनी ने पहले आशीष दिया फिर बोली, "मैं तुमसे मिलने को बेचैन थी। कल सपने में भी तुम मुझे दिखाई दी थीं, इसलिए आज तुम्हारे पास बिना आये न रह सकी। तुम आजकल अकेली हो, पति परदेस में है। उसके बिना क्या सुख है तुमको? यौवन के ये दिन यों ही निकले जा रहे हैं। मुझे तेरी दशा पर बहुत दुख है।"

इतनी बातें करके उस दिन वह लौट गई। लेकिन दूसरे दिन वह फिर वहां गई और इस बार साथ में खूब मिर्चें लगाकर एक मांस का टुकड़ा भी ले गई। जब द्वार पर कुतिया मिली तो उसने वह टुकड़ा उसको खिला दिया। मिर्चों के कारण कुतिया की आंखों से आंसू गिरने लगे। अब योगकंडिका देवस्मिता के पास गई और रोना शुरू कर दिया। देवस्मिता ने जब उससे रोने का कारण पूछा तो बोली, "यह कुतिया पूर्वजन्म में मेरी सौत थी। आज मुझे देखकर यह रो रही है। इसीलिए मैं भी रो रही हूं। पूर्वजन्म में जब हमारा पति परदेस गया था, तब मैंने तो एक दूसरे पुरुष से प्रेम करके अपने शरीर-धर्म की रक्षा की थी; लेकिन इस मेरी सौत ने शरीर-धर्म की रक्षा नहीं की; इसलिए इसको कुतिया का जन्म मिला। शरीर के धर्म की रक्षा करना सबका पहला कर्तव्य है।"

यह सुनकर देवस्मिता संन्यासिनी के ढोंग को समझ गई और बोली, "तुमने अच्छी बात सुनाई। मेरे पास भी किसी नवयुवक को भेज दो।" योगकंडिका अपना उपाय सफल होता समझकर बोली, "कल ही चार नवयुवक वणिक-पुत्रों को

तुम्हारे पास भेज दूंगी। वे दूर देश के रहनेवाले हैं।"

यह कहकर वह संन्यासिनी अपने घर वापस आ गई। इधर देवस्मिता ने उस षड्यंत्र की बात अपनी सहेलियों से बताई और कहा, "कटाह द्वीप से आये हुए बनिये के बेटे मुझको धर्म से गिराना चाहते हैं। उनके इस काम में यह संन्यासिनी सहायता कर रही। इसलिए तुम धतूरे मिलाकर मदिरा तैयार करो और एक लोहे का कुत्ते का पंजा बना लो।" फिर उसने एक सखी का वेष बदलकर बिल्कुल अपने जैसा बना दिया।

इधर संन्यासिनी ने बनिये के एक बेटे को अपनी चेली के साथ देवस्मिता के घर भेजा। बनावटी देवस्मिता ने इस वणिक-पुत्र को सत्कार के बहाने धतूरा मिली हुई मदिरा खूब पिलाई, जिसके असर से वह बेहोश हो गया। जब वह बेहोश हो गया तो उन लोगों ने उसके माथे पर लोहे के कुत्ते के पंजे का निशान बना दिया। अंत में उठाकर एक गंदे गड्ढे में फेंक दिया। जब उसका नशा उतरा तब वह वहां से आकर नहाया-धोया और फिर संन्यासिनी के घर गया। उसने लाज के मारे किसीसे सच्ची बात नहीं बताई। कह दिया कि चोरों ने मेरा यह हाल बना दिया है। फिर उसने अपने सिर में कपड़ा लपेट लिया और चुपचाप पड़ रहा। इस तरह बारी-बारी से उन चारों बनियों के बेटों की वही हालत हुई और वे चुपचाप कटाह द्वीप को वापस भाग गये। कुछ दिन बाद योगकंडिका अपनी चेली को साथ लेकर देवस्मिता के घर गई। उन दोनों को भी धतूरे से मिली मदिरा सत्कार में पीने को मिली। बाद में उन लोगों ने दोनों के नाक-कान काटकर मल के हौज में फेंक दिया गया। यह सब करने के बाद देवस्मिता के मन में भय पैदा हुआ कि कहीं वे बनिये के बेटे कटाह द्वीप में जाकर उसके पति को न मार डालें। उसने अपनी सास से सब हाल बताया और कटाह द्वीप में जाकर अपने पति की रक्षा करने की आज्ञा मांगी। सास ने पूछा, "दूर देश में जाकर तू किस तरह अपने पति के प्राण बचायेगी?" देवस्मिता ने कहा, "मैं शक्तिमती की तरह अपने पति के प्राणों की रक्षा करूंगी।" यह कहकर उसने यह कहानी सुनाई : "मेरे माता-पिता के नगर में एक यक्ष रहता है। उसकी पूजा करने से लोगों की इच्छा पूर्ण होती है। वहां एक प्रथा है कि जो पुरुष और स्त्री पाप-कर्म करते हुए पाये जाते हैं, उनको रात-भर उस मंदिर में बंद रखा जाता है और दूसरे दिन राजा उनको सजा देता है। एक बार समुद्रदत्त नाम का एक बनिया पर-स्त्री के साथ कुकर्म करता हुआ पकड़ा

गया। कोतवाल ने दोनों को रात भर के लिए मंदिर में बंद कर दिया। समुद्रदत्त की पत्नी शक्तिमती को जब इस बात का पता चला तो वह पूजा करने के बहाने अपना रूप बदलकर मंदिर की ओर गई। अंदर जाकर उसने दूसरी स्त्री को अपनी पोशाक पहना दी। इस तरह वह पर-स्त्री मंदिर से बाहर निकल गई और शक्तिमती मंदिर में रह गई। जब दूसरे दिन कोतवाल ने दोनों को ले जाकर राजा के सामने पेश किया तो पर-स्त्री की जगह बनिये की पत्नी शक्तिमती ही उसके साथ थी। पति-पत्नी होने के कारण राजा ने उन दोनों को छोड़ दिया और कोतवाल को सजा दी।" यह कथा सुनाकर देवस्मिता ने कहा, "मैं भी अपने पति को इसी प्रकार बचाऊंगी।"

बाद में आज्ञा लेकर पुरुष वेष में अपनी दासियों के साथ व्यापार करने के बहाने वह कटाह द्वीप की ओर चल दी। वहां जाकर उसने अपने पति गुहसेन को उन चारों बनियों के बेटों के चक्कर में घिरा हुआ पाया। देवस्मिता राजा के पास गई और उससे कहा, "आप अपनी सारी प्रजा को बुलवाइये। मैं सबके सामने एक निवेदन करूंगी।" राजा ने ऐसा ही किया। तब देवस्मिता ने कहा, "मेरे चार सेवकों का बहुत दिनों से पता नहीं चलता। वे कहीं खो गये हैं! मुझे पता चला है कि वे यहीं हैं। इसलिए उनको मेरे सुपुर्द कर दिया जाय!" राजा ने कहा, "इस भीड़ में तुम्हारे दास मौजूद हैं तो उनकी पहचान करो!" उस भीड़ में वे चारों वणिक पुत्र सिर पर कपड़ा लपेटे मौजूद थे। देवस्मिता ने उनको पकड़कर कहा, "वे चार दास यही हैं।" बनिये के बेटे राजा से दुहाई देने लगे, "हम तो यहीं के रहनेवाले हैं। हम किसीके दास नहीं हैं।" देवस्मिता ने राजा से कहा, "यदि आप विश्वास नहीं करते तो इन सबके सिर का कपड़ा खोलकर देख लीजिये। मैंने इन सबके माथे पर कुत्ते के पंजों के दाग बना दिये थे। वे अब भी मौजूद हैं।" जब यह बात सच निकली तो बनिये के बेटे बड़े परेशान हुए। राजा ने आश्चर्य के साथ देवस्मिता से पूछा, "इस घटना का क्या रहस्य है?" देवस्मिता ने राजा को सच्ची बात बता दी। पूरी कथा जानकर सब लोग बहुत हंसे। उन बनियों के बेटों को दंड दिया गया और देवस्मिता को बहुत-सा धन प्राप्त हुआ। फिर वह अपने पति को साथ लेकर घर चली आई और सुख से अपना जीवन बिताने लगी। इस प्रकार कुलीन नारियां सेवा-भाव से पति को प्रसन्न रखती हैं और पति ही उनके लिए सब-कुछ होता है।

वसंतक से यह कहानी सुनने के बाद वासवदत्ता बहुत खुश हुई और उदयन के प्रति उसका प्रेम और भी अधिक बढ़ गया ।

: ६ :

## उदयन और वासवदत्ता

इस तरह जब उदयन विंध्याचल पर रुका हुआ था तब चंडमहासेन के दूत उसके पास आये । उन्होंने उदयन का अभिवादन किया । फिर अपने राजा का संदेश सुनाया, "वासवदत्ता का अपहरण करने पर हमारे महाराज आपसे नाराज नहीं हैं । वह तो स्वयं आपके साथ वासवदत्ता का विवाह करना ही चाहते थे । अभी वासवदत्ता का भाई गोपालक यहां आता होगा और वह आपके साथ वासवदत्ता का विवाह-संस्कार करायेगा; आप लोग उसकी प्रतीक्षा कीजिये !" परंतु उदयन वहां नहीं रुका । उसने मित्र पुलिंदक को उस दूत के पास वहां छोड़ दिया और स्वयं वासवदत्ता को लेकर कौशांबी की ओर चल दिया । अपने दल-बल के साथ जब वह कौशांबी पहुंचा तो सारी नगरी उसी प्रकार प्रसन्नता से फूल उठी, जिस प्रकार बहुत दिनों के बाद परदेस से पति के लौटने पर पत्नी फूल उठती है । स्त्रियां मंगलगान गाने लगीं । बंदीजन और चारण स्तुतिगान गाने लगे । चारों ओर आनंद की लहर दौड़ गई ।

कुछ ही देर बाद पुलिंदक के साथ गोपालक भी आ गया । उदयन ने उसका राजकीय-सत्कार किया । वासवदत्ता को भी अपने भाई के आने से बड़ी प्रसन्नता हुई । दूसरे ही दिन गोपालक ने विवाहोत्सव मनाया और विधिवत अपनी बहन वासवदत्ता को उदयन को सौंप दिया । वासवदत्ता आनंद से रोमांचित हो उठी ।

गोपालक ने उदयन को बहुत-सा धन भी भेंट किया । उदयन ने भी इस अवसर पर पुलिंदक और गोपालक के साथ एक लिखित मित्रता-संधि की । आये हुए अतिथियों के स्वागत-सत्कार का काम योगंधरायण और रुक्मवान पर था । योगंधरायण ने रुक्मवान से कहा, "हमें सबके सत्कार का ध्यान रखना चाहिए ! कोई बच्चा तक असंतुष्ट न होने पाये, क्योंकि ऐसी स्थिति में नाराज होकर बच्चे भी निंदा करने लगते हैं ।" और फिर उसने उदाहरण के लिए यह कहानी सुनाई :

पहले समय में रुद्रशर्मा नाम का एक ब्राह्मण था। उसकी दो पत्नियां थीं। एक पत्नी लड़का पैदा होने में मर गई। दूसरी पत्नी को उस लड़के का लालन-पालन करना पड़ा। वह उस बालक को रूखा-सूखा खाना खिलाती थी। इससे उसका शरीर दुबला हो गया, लेकिन पेट फूल गया। ब्राह्मण ने अपनी पत्नी से जब इसका कारण पूछा तो उसने कहा, "मैं तो इसे अच्छे-से-अच्छा खाना खिलाती हूं, पता नहीं, इसे क्या हो जाता है?" ब्राह्मण समझा कि यह बच्चा जन्म से ही ऐसा है। लोगों ने बच्चे की कुरूपता को देखकर उसका नाम बाल-विनष्टक रख दिया। जब वह बच्चा पांच साल का हुआ तो वह बड़ा चतुर दिखाई देने लगा। वह अपने ऊपर हुए अत्याचारों का बदला चुकाने की बात सोचने लगा। जब उसका पिता घर आता तो वह कहता, "मेरे तो दो बाप हैं।" यह सुनकर ब्राह्मण अपनी पत्नी पर संदेह करने लगा और उससे दूर-दूर रहने लगा। उसकी पत्नी को बड़ी चिंता हुई और वह समझ गई कि इस लड़के ने ही उसके पति को भड़काया है। एक दिन उसने उस लड़के को नहलाया-धुलाया और अच्छा-अच्छा खाना खिलाया। फिर पूछा, "तूने अपने पिता को मेरे विरुद्ध क्यों भड़का दिया है?" बालक ने कहा, "तुम मुझे न तो पेट भर और न अच्छा खाना देती हो। इसलिए मैंने ऐसा किया। अगर तुम मुझे रोज ऐसा ही खाना खिलाओ, तो मैं पिताजी के मन को फिर बदल दूंगा।"

उसने वचन दिया कि वह आगे से ऐसा ही करेगी। लड़के ने कहा, "पिताजी के आने पर दासी मुझे शीशा दिखाये। उसके बाद मुझे जो करना होगा, करूंगा।"

रुद्रशर्मा के घर आने पर दासी ने उस बालक के सामने शीशा रख दिया। शीशे में झांककर बालक कहने लगा, "मेरे दूसरे पिताजी इस शीशे के अंदर हैं।" यह सुनकर ब्राह्मण सब कुछ समझ गया। उसका क्रोध भी शांत हो गया और वह फिर पहले की तरह अपनी पत्नी से प्रेम करने लगा।

इसके बाद योगंधरायण, रुक्मवान और वसंतक ने सबका दिल खोलकर ऐसा स्वागत-सत्कार किया कि किसीको भी कोई शिकायत नहीं रही। फिर धीरे-धीरे सब लोग बिदा हो गये और उदयन वासवदत्ता के साथ आनंदपूर्वक रहने लगा। कुछ दिनों बाद विजय में प्राप्त हुई एक राजकुमारी को गोपालक ने वासवदत्ता को भेंट कर दिया। वह बहुत सुंदरी थी। इसलिए वासवदत्ता उसे उदयन की आंखों से बचाकर अपने पास रखती थी। उसका वास्तविक नाम तो बंधुमती था, पर वासवदत्ता ने उसका नाम बदलकर मंजुलिका रख लिया था। सब कुछ करने पर

भी किसी तरह एक बार उदयन की दृष्टि मंजुलिका पर पड़ ही गई। उस समय वसंतक भी उसके साथ था। राजा ने मंजुलिका के साथ गंधर्व-विवाह कर लिया। वासवदत्ता को भी इस बात का पता चल गया। उसने मंजुलिका को किसी गुप्त जगह में बंद कर दिया। यही नहीं, उसने वसंतक को बंदी बना लिया। उदयन इससे बड़ा परेशान रहने लगा और उसने वासवदत्ता की सहेली सांकृत्यायिनी से कहा, "किसी तरह वासवदत्ता को मनाकर मंजुलिका को मुझसे मिलवा दो।" सांकृत्यायिनी ने यह बात वासवदत्ता से कही और वासवदत्ता ने उस राजकुमारी को राजा उदयन की भेंट कर दिया। उसने वसंतक को भी छोड़ दिया। तब वसंतक ने उपहास में कहा, "नाराजी सांप पर थी, लेकिन जान दुमुही की गई!" वासवदत्ता ने इस कहावत का मतलब पूछा तो वसंतक ने एक छोटी कथा सुनाते हुए कहा, "पुराने जमाने में एक रुरू नामक ऋषि हुए हैं। एक बार उन्होंने स्थूलकेश नामक मुनि के आश्रम में रहनेवाली अप्सरा मेनका की रूपवती लड़की को देखा। वह उसपर मुग्ध हो गये और मेनका को राजी करके उस लड़की को अपने साथ ले आये। जब उस लड़की के साथ वह विवाह करने जा रहे थे तभी एक सांप ने उस लड़की के काट लिया। रुरू को इससे बहुत वेदना हुई, लेकिन तभी उन्होंने आकाशवाणी सुनी, "यदि तू अपनी आधी उम्र इस लड़की को दान करदे, तो यह फिर जीवित हो जायगी।" उन्होंने बड़ी खुशी से अपनी आधी उम्र उस लड़की को दान करदी। वह जी उठी और उन्होंने लड़की के साथ विवाह कर लिया। लेकिन वह मुनि सांपों पर बहुत नाराज हो गये और उन्होंने उनको मारना शुरू कर दिया। वह दुमुंहे सांपों को भी मार डालते थे। एक बार एक दुमुंहे सांप ने उनसे कहा, "तुम दुमुंहे सांपों को क्यों मारते हो? उन बेचारों में तो जहर नहीं होता है, तुम तो जहरीले सांपों से नाराज हो क्योंकि जहरीले सांप ने ही तुम्हारा नुकसान किया था।"

रुरू मुनि को जब इस तरह सांपों के भेद का ज्ञान हो गया तो उन्होंने सांपों की हत्या करना छोड़ दिया। इतना कहकर वसंतक ने कहा, "मैंने जो कहावत सुनाई उसका यही अभिप्राय था।"

इसके बाद वासवदत्ता और उदयन आनंद से रहने लगे। उदयन का अधिक समय वीणा की झंकार सुनने, मदिरा पीने और अपनी पत्नी के साथ रहने में बीतने लगा।

# तीसरा खंड

## : १ :

## लावणक की कहानी

अब उदयन ने राज्य के कामों में भाग लेना छोड़ दिया। उसकी देख-भाल का सारा भार महामंत्री योगंधरायण और सेनापति रुक्मवान पर डालकर वह निश्चिंत हो गया और दिन-रात भोग-विलास में मग्न रहने लगा।

यह हाल देखकर एक दिन योगंधरायण ने रुक्मवान से कहा, "अब राजा उदयन सारा भार हम लोगों पर छोड़कर स्वयं राज्य की कोई चिंता नहीं करता है। वह स्त्री, मदिरा और शिकार के चक्कर में ही फंसा रहता है। पांडव-वंश के इस राजा की परंपरा में चक्रवर्ती सम्राट होते आये हैं। इसलिए हम लोगों को चाहिए कि कोई ऐसा उपाय करें जिससे हमारा राजा भी सारी धरती का शासक बन जाय। ऐसा करने पर हमारी राज्य-भक्ति और हमारा मंत्री होना दोनों सफल हो जायंगे। यह काम सूझ-बूझ से पूरा हो सकता है।" उदाहरण के लिए यौगंधरायण ने रुक्वान को यह कहानी सुनाई:

महासेन नामक एक राजा था। उसके राज पर एक बलवान शत्रु ने आक्रमण किया। महासेन ने अपने मंत्रियों की सलाह से अपने शत्रु को कर देकर विदा कर दिया। लेकिन वह यह सोचकर कि उसने शत्रु के सामने सिर झुका दिया है, दुखी रहने लगा। धीरे-धीरे उसके पेट में फोड़ा हो गया। वह हर समय दर्द से कराहता रहता था। एक चतुर वैद्य ने सूझ-बूझ से काम लिया। उसने एक दिन राजा से आकर झूठ-मूठ कह दिया कि रानी मर गई है। राजा यह सुनते ही शोक के मारे पछाड़ खाकर पेट के बल गिर पड़ा। इससे राजा के पेट का फोड़ा फूट गया और वह कुछ दिनों बाद ठीक होकर फिर बलवान बन गया। यही नहीं, उसने अपने

शत्रुओं को भी जीत लिया।

यह कथा सुनाकर योगंधरायण ने कहा, "हमको भी इसी तरह कोई उपाय करना चाहिए। मगध का राजा हमारा वैरी है, लेकिन वह बड़ा शक्तिशाली भी है। उसकी पुत्री बहुत सुंदर है। उसका नाम पद्मावती है। पद्मावती का उदयन के साथ विवाह कर दिया जाय तो मगध का राजा हमारा मित्र बन जायगा और युद्ध में हमारी सहायता भी करेगा। ऐसा करने पर उदयन को चक्रवर्ती सम्राट बनाने में कोई कठिनाई नहीं होगी; लेकिन पहले वासवदत्ता को कहीं छिपाना पड़ेगा और घर में आग लगाकर यह अफवाह फैलानी पड़ेगी कि वासवदत्ता जलकर मर गई है; क्योंकि वासवदत्ता के रहते हुए उदयन पद्मावती की तरफ़ आकर्षित नहीं हो सकता है।"

योगंधरायण की बात सुनकर रुक्मवान ने कहा, "इस तरह राजा के साथ विश्वासघात करने से हम लोग किसी संकट में फंस सकते हैं।" और उसने इस बात की पुष्टि में उदाहरण के रूप में यह कथा सुनाई :

"गंगा के तट पर माकंदिका नाम की एक नगरी थी। उसमें एक संन्यासी रहता था। भिक्षा के सहारे वह अपना जीवन बिता रहा था। एक बार वह एक बनिये के घर पर भीख मांगने गया। वह संन्यासी मौन रहा करता था। लेकिन जब बनिये की लड़की उसे भीख देने द्वार पर आई तो वह चिल्ला उठा, 'घोर संकट आनेवाला है।'

"और यह कहता हुआ वह अपने मठ को चला गया। बनिये ने मठ पर जाकर संन्यासी से पूछा, 'आप तो सदा चुप रहते हैं। आज इस तरह बोलने का क्या कारण है?' संन्यासी ने बताया, 'तुम्हारी लड़की को देखकर मुझसे बिना बोले नहीं रहा गया। उस लड़की का भाग्य मंद है। उसका विवाह होते समय तुम्हारा सर्वनाश हो जायगा। इसलिए तुम इस लड़की को एक संदूक में बंद करके, उसके ऊपर एक जलता हुआ दीपक रखकर गंगा की धार में छोड़ दो।' बनिया सर्वनाश की कल्पना से डर गया। उसने लड़की को संदूक में बंद करके रात में गंगा में बहा दिया। संन्यासी ने उस संदूक को गंगा से निकाल लाने के लिए अपने चेलों को पहले ही भेज रखा था; लेकिन चेलों के पहुंचने के पहले ही एक राजकुमार ने उस संदूक को निकाल लिया। खोलने पर उसमें बनिये की लड़की दिखाई दी। उसने लड़की के स्थान पर एक बंदर रखकर संदूक को तो फिर गंगा में बहा

दिया और लड़की से गंधर्व-विवाह कर लिया। उसके बाद संन्यासी के चेलों को वह संदूक मिला। वे उसे संन्यासी के पास ले गये। संन्यासी उस संदूक को मंत्र सिद्ध करने का बहाना बनाकर एकांत में ले गया। वहां उसने जैसे ही संदूक खोला, वैसे ही बंदर ने निकलकर उसके नाक-कान आदि काट डाले। यह देखकर चेलों ने उसकी खूब हंसी उड़ाई और सब जगह उसकी बड़ी बदनामी हुई।"

यह कहानी सुनाकर रुक्मवान ने कहा, "कहीं विश्वासघात करने पर हम लोगों का भी संन्यासी की तरह हाल न हो, क्योंकि जब उदयन को वासवदत्ता का वियोग सतायेगा, तो कोई दुर्घटना भी हो सकती है।" यह सुनकर योगंधरायण बोला, "अगर हमारी योजना सफल नहीं होती है तो हमारी बड़ी बदनामी होगी, क्योंकि जब राजा राज्य के कार-बार को देखता है तो मंत्रियों को कोई बुरा नहीं बताता; लेकिन जब राज्य का भार मंत्रियों के ऊपर होता है, तब कोई भी गलत काम होने पर मंत्रियों की बुद्धि को ही दोष दिया जाता है। यदि वासवदत्ता के पिता चंडमहासेन और उनके पुत्र का कोई डर हो, तो उसे मैं दूर कर सकता हूं।" रुक्मवान बोला, "स्त्री के वियोग से बड़े-बड़े बुद्धिमान लोग भी व्याकुल हो जाते हैं। फिर राजा उदयन की क्या बात है! इस विषय में मैं तुम्हें एक कहानी सुनाता हूं।

"श्रावस्ती नामक एक नगरी में देवसेन नामक एक बहुत बुद्धिमान राजा रहता था। वहां एक बनिये की लड़की इतनी सुंदर थी कि जो कोई भी उसे देखता था वही बेचैन हो उठता था। इसलिए उसका नाम 'उन्मादिनी' पड़ गया था। अपनी लड़की के ये लक्षण देखकर वह बनिया राजा के पास गया और बोला, 'मेरी लड़की इतनी सुंदर है कि वह आपकी रानी बनने के योग्य है।' राजा ने कुछ ब्राह्मणों को उस लड़की को देखने को भेजा। ब्राह्मण बनिये के घर गये और उन्मादिनी के सौंदर्य को देखकर स्वयं ही मुग्ध हो गये। उन्होंने सोचा कि अगर इस लड़की से राजा का विवाह हो जाता है तो राजा सदा विलासिता में डूबा रहेगा। इसलिए उन्होंने राजा से आकर कहा, 'वह लड़की कुलक्षणा है।'

"राजा ने उससे विवाह नहीं किया। तब बनिये ने अपनी लड़की का विवाह सेनापति के साथ कर दिया। एक दिन उन्मादिनी ने राजा को अपने महल के पास से जाते हुए देखा। वह अपनी छत पर चढ़ गई और इस प्रकार खड़ी हो गई कि राजा उसे देख सके। राजा उसे देखते ही मुग्ध हो गया। सेनापति को जब इस बात का पता

चला तो उसने राजा से कहा, 'मेरी पत्नी आपके ही योग्य है। आप उसे ले लीजिये।' राजा ने कहा, 'ऐसा नहीं हो सकता। यह धर्म के विरुद्ध है। मैं पर-स्त्री को ग्रहण नहीं कर सकता। और यदि तुम उसे छोड़ोगे तो तुम्हें भी दंड मिलेगा।'

"यह सुनकर दूसरे मंत्री भी चुप हो गये और उन्होंने राजा को कोई सलाह नहीं दी। लेकिन उन्मादनी तो राजा के मन में बस चुकी थी। प्रेम की उस न दूर होनेवाली पीड़ा से वह कुछ दिनों बाद मर गया।

"इस प्रकार धैर्यवान राजा भी उन्मादिनी के बिना मर गया तो वासवदत्ता के बिना उदयन का क्या हाल होगा ?"

योगंधरायण बोला कि धैर्यवान लोग स्त्री का वियोग सहकर भी जीवित रहते हैं--जैसे राम ने सीता के वियोग को सहा। रुक्मवान ने यह सुनकर कहा, "राम तो देवता थे। वह सब कुछ सह सकते थे; लेकिन मनुष्य के लिए यह दुख सहना बहुत कठिन है। इस विषय में एक कथा सुनाता हूं :

"मथुरा नाम की एक बड़ी संपन्न नगरी थी। उसमें इल्लक नामक एक बनिये का बेटा रहता था। वह और उसकी पत्नी आपस में एक-दूसरे को बहुत प्रेम करते थे। इल्लक किसी कार्यवश विदेश जाने लगा तो उसकी पत्नी ने कहा कि वह भी साथ चलेगी। लेकिन वह उसको साथ नहीं ले गया। उसके जाने के बाद उसकी पत्नी ने उसके वियोग में प्राण तज दिये। यह सुनकर तत्काल ही वह बनिया लौट आया। वह अपनी उस लक्ष्मी जैसी सुंदर पत्नी को मरा हुआ देखकर बहुत दुखी हुआ और उसे गोद में लेकर रोने लगा। फिर वियोग के कारण उसका भी प्राणांत हो गया। इसलिए यहां भी इस बात का भय अवश्य है; क्योंकि उदयन और वासवदत्ता एक-दूसरे को बहुत ही प्रेम करते हैं।"

यह सुनकर योगंधरायण ने धीरज के साथ कहा, "राजाओं के कार्य ऐसे ही होते हैं। मैं एक कहानी सुनाता हूं :

"उज्जयनी नामक नगरी में पुण्यसेन नाम का एक राजा था। एक बार उसके ऊपर एक बहुत शक्तिशाली राजा ने आक्रमण किया। बचने का उपाय एकाएक नहीं सूझा, लेकिन मंत्रियों ने सोचा कि कोई उपाय तो करना ही होगा। बस उन्होंने यह गलत समाचार उड़ा दिया कि पुण्यसेन मर गया है। उन्होंने शत्रु राजा के पास भी अपना दूत भेज दिया। दूत ने जाकर कहा, 'अब तो आप ही हमारे राजा हैं, क्योंकि जो हमारा राजा था, वह आपके भय से मर गया है।' वह शत्रु राजा यह

सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ और वह अपनी सेना सहित उस राज्य में घुस गया और वहां रहने लगा। मंत्रियों ने धीरे-धीरे उस शत्रु राजा की फौजों को अपनी तरफ़ मिला लिया। फिर अवसर पाकर अचानक एक दिन राजा पुण्यसेन ने प्रकट होकर शत्रु राजा को मार डाला। इस तरह वह फिर अपने राज्य का स्वामी बन गया। राजाओं के काम इसी तरह होते हैं। वासवदत्ता की मृत्यु का गलत समाचार फैलाकर हम भी अपनी योजना सफल करेंगे।"

रुक्मवान ने योगंधरायण का पक्का इरादा देखकर अपना सहयोग देने का वचन दिया और सलाह दी कि वासवदत्ता के भाई गोपालक को भी इस योजना में मिला लेना चाहिए।

यही किया गया। गोपालक को बुलाकर उन्होंने सारी बात बता दी। उसने शंका करते हुए कहा, "वासवदत्ता के बिना राजा उदयन कैसे जीवित रहेंगे ?"

योगंधरायण ने समझाया कि "जब उदयन तुमको प्रसन्न देखेंगे तो समझेंगे कि शायद वासवदत्ता मरी नहीं है और वह दुविधा में रहेंगे। तुम्हें प्रसन्न देखकर वह भी प्रसन्न रहेंगे और वासवदत्ता के वियोग को सह लेंगे। काम पूरा होने पर उन्हें वासवदत्ता मिल जायगी।" यह बात गोपालक की समझ में आ गई। फिर तय हुआ कि मगध के पास लावणक नामक देश में शिकार के बहाने उदयन को ले जाया जाय। वह शिकार के लिए प्रसिद्ध स्थान भी है। वहीं घर में आग लगाकर वासवदत्ता की मृत्यु का समाचार फैला दिया जाय और रात में वासवदत्ता को पद्मावती के पास भेज दिया जाय।

ऐसी सलाह करके मंत्रीगण राजा उदयन के पास गये। उन्होंने राजा से कहा, "हमारे पड़ौस में लावणक नामक प्रदेश शिकार के लिए एक सुंदर स्थान है। मगध भी उसके पड़ौस में है। इसी कारण कभी-कभी राज्य में गड़बड़ भी हो जाती है। इसलिए वहां चलना चाहिए।"

राजा उदयन सब बात जानकर वासवदत्ता के साथ वहां जाने के लिए तैयार हो गया। इसी समय नारदजी आये। राजा ने उनका स्वागत किया। नारद ने वासवदत्ता को विद्याधरों के राजा की मां बनने का आशीर्वाद दिया और उदयन के गले में कल्पतरु के फूलों की माला पहनाई। फिर नारद उदयन से बोले, "वासवदत्ता को देखकर मुझे तुम्हारे पूर्वज पांडवों की याद हो आई। उनके द्रौपदी नाम की स्त्री थी। मैंने उन्हें उपदेश दिया था कि स्त्री से कभी शत्रुता न करना, क्योंकि

आपस में झगड़ा करने के बुरे परिणाम निकलते हैं। इसी विषय में मैंने उनको एक कथा भी सुनाई थी। तुमको भी सुनता हूं : प्राचीन समय में सुंद और उपसुंद नाम के दो राक्षस थे। वे दोनों सगे भाई थे। उनको नष्ट करने के लिए ब्रह्मा ने विश्वकर्मा को आज्ञा दी कि वह एक बहुत सुंदर नारी का निर्माण करे। विश्वकर्मा ने तिलोत्तमा नाम की एक अद्‌भुत सुंदरी का निर्माण किया। वह इतनी सुंदर था कि ब्रह्मा ने उसे बार-बार और चारों ओर से देखने के लिए अपने चार मुख बनाये। फिर ब्रह्मा ने उस सुंदरी को सुंद और उपसुंद के पास भेज दिया। दोनों ही राक्षस उस सुंदरी पर मुग्ध हो गये और अपना-अपना एकाधिकार जताने के लिए लड़ने लगे। वे इतना लड़े, ऐसे लड़े, कि लड़ते-लड़ते दोनों ही मर गये।

"मेरी इस कथा और उपदेश को तुम्हारे पूर्वजों ने मान लिया था। तुम भी अपने मंत्रियों की बात पूरी तरह मानना। अगर तुम्हारे ऊपर कोई विपत्ति आये तो भी विचलित न होना। उसके बाद तुम बहुत समृद्धिशाली होनेवाले हो।"

यह उपदेश देकर नारदजी चले गये। तब मंत्रियों ने सोचा कि उनका काम जरूर सफल होगा और वे बड़ी तत्परता से अपने काम में जुट गये।

## : २ :

## अवंतिका की कहानी

इसके बाद योगंधरायण और दूसरे मंत्री वासवदत्ता और उदयन को साथ लेकर लावणक पहुंचे। पड़ोस में मगध के राजा ने जब सुना कि सेना सहित राजा उदयन लावणक में आये हुए हैं, तो उसने सोचा कि कहीं उसके ऊपर आक्रमण तो नहीं करने जा रहे? वह बड़ा घबराया। उसने अपना दूत उदयन के पास भेजा। योगंधरायण ने मगधराज के दूत का स्वागत किया और सादर लौटा दिया।

उदयन वहां रोज शिकार खेलने जाया करता था। एक दिन उसके जाने के बाद मंत्रियों ने अपनी सारी योजना वासवदत्ता के सामने रखी। वासवदत्ता ने अपने पति का हित समझकर उनकी बात मान ली और पति-वियोग सहने के लिए तैयार हो गई। उसके बाद योगंधरायण के सुझाव पर वसंतक ने एक काने बालक का वेश धारण किया। वासवदत्ता अवंतिका नाम की एक ब्राह्मणी बनी और

स्वयं योगंधरायण ने एक बुड्ढे ब्राह्मण का रूप बनाया फिर सबको साथ लेकर मगध की ओर चला गया। इधर रुक्मवान ने खाली महल को आग लगवा दी और वसंतक के साथ वासवदत्ता के जलकर मर जाने की खबर फैला दी। उधर योगंधरायण सबको साथ लेकर राजकुमारी पद्मावती के बगीचे में पहुंचा। पद्मावती ने उसे बूढ़ा ब्राह्मण समझकर अपने पास बुलाया और पूछा, "तुम्हारे साथ कौन-कौन है?" योगंधरायण ने पद्मावती से कहा, "इनमें एक मेरा लड़का है और एक मेरी लड़की है। मेरी लड़की का पति दुराचारी है। वह इसे छोड़कर कहीं बाहर चला गया है। मैं उसकी खोज में बाहर जा रहा हूं। आप मेरी लड़की और मेरे लड़के को आश्रय देने की कृपा करें।' पद्मावती ने यह बात मान ली। तब योगंधरायण लौट गया। पद्मावती अवंतिका को बड़े प्यार और स्नेह से रखने लगी। वह अवंतिका के रूप और गठन को देखकर सोचती थी कि यह तो अलौकिक सुंदरी है। जिस तरह द्रौपदी ने राजा विराट के यहां अपने दिन काटे थे, उसी तरह यह मेरे यहां दिन काट रही है।

एक बार अवंतिका ने कभी न सूखनेवाला तिलक और कभी न मुरझानेवाली माला बनाकर पद्मावती को भेंट की। इन दोनों अद्भुत चीजों को देखकर पद्मावती की मां ने पद्मावती से पूछा, "इनका बनानेवाला कौन है?" पद्मावती ने बताया कि उसके पास अवंतिका नाम की एक ब्राह्मणी रहती है। उसने ही ये चीजें बनाई हैं। पद्मावती की मां ने कहा, "ऐसी कला जाननेवाली कोई साधारण स्त्री नहीं हो सकती। अवश्य ही वह कोई देवी है। कभी-कभी देवी-देवता भी भले आदमियों की परीक्षा लेने के लिए रूप बदलकर आ जाया करते हैं।" इस विषय में पद्मावती की मां ने यह कथा सुनाई :

प्राचीन समय में कुंतिभोज नाम का एक राजा रहता था। एक बार दुर्वासा ऋषि परीक्षा लेने के लिए उसके घर आये। कुंतिभोज ने अपनी कन्या कुंती को ऋषि की सेवा करने की आज्ञा दी। कुंती उनकी सेवा करने लगी। एक दिन दुर्वासा ने कुंती से कहा कि मैं नहाने जाता हूं, तब तक तुम खीर बनाकर तैयार करो। कुंती ने ऐसा ही किया और जब वह नहाकर वापस आये तो एक कटोरे में खीर परोसकर उनके सामने रख दी। खीर गरम थी, इसलिए कटोरा भी बहुत गरम हो गया था। दुर्वासा ने कुंती की पीठ की ओर देखा। कुंती ने इस संकेत को समझ लिया और कटोरे को अपनी पीठ पर रख लिया। उसकी पीठ जलने लगी, लेकिन उसने

कुछ नहीं कहा और चुपचाप कष्ट सहती रही। दुर्वासा कुंती के इस सेवा-भाव से बहुत प्रसन्न हुए और उसे आशीर्वाद दिया।

इस तरह दुर्वासा ने कुंती की परीक्षा ली थी। "इसलिए हे पद्मावती! तू भी इस ब्राह्मणी की खूब सेवा करना।"

पद्मावती अपनी मां की आज्ञा मानकर अवंतिका की खूब सेवा करने लगी। इस तरह अवंतिका के वेष में वासवदत्ता सुख से रहने लगी। इधर जब उदयन शिकार खेलकर डेरे पर वापस आया, तो वासवदत्ता का जलकर मरना सुनकर बेसुध हो गया। वह अपनी जान देने की बात सोचने लगा। लेकिन उसे तत्काल ही नारद की बात याद आ गई। नारद ने कहा था—वासवदत्ता के गर्भ से विद्याधरों के राजा का जन्म होगा। उसने यह भी देखा कि गोपालक और योगंधरायण को विशेष दुख नहीं है, तो वह दुविधा में पड़ गया और धीरज रखकर सोचने लगा कि शायद वासवदत्ता जीवित ही हो। उधर गोपालक ने अपने पिता चंडमहासेन के पास सारा रहस्य कहला भेजा।

इस प्रकार चंडमहासेन की चिंता भी दूर हो गई। दूसरी ओर जब मगध के राजा ने यह सुना कि वासवदत्ता मर गई है तो उसने पद्मावती का विवाह उदयन के साथ करने का निश्चय कर लिया। उचित समय पर उसने यह संदेश उदयन के पास भिजवा दिया। योगंधरायण ने उत्तर में कहला भेजा, "महाराज को यह संबंध स्वीकार है। वह सातवें दिन विवाह के लिए आयेंगे।"

सातवें दिन उदयन बड़े ठाठ के साथ मगध गया। वहां शुभ मुहूर्त में पद्मावती के साथ उसका विवाह हो गया। इस घटना से वासवदत्ता बहुत बेचैन हुई। लेकिन वसंतक ने उसे समझाया कि यह विवाह तो मगध के राजा को अपना मित्र बनाने के लिए किया गया है। तब जाकर कहीं वह शांत हुई। इसके बाद मगध के राजा और उदयन के बीच मित्रता की संधि होना कठिन काम नहीं था। यह काम पूरा हो जाने के बाद योगंधरायण ने शीघ्र ही उदयन के साथ पद्मावती को विदा कर देने के लिए मगध-नरेश से कहा। उसे डर था कि कहीं उदयन की दृष्टि वासवदत्ता पर न पड़ जाय और इस प्रकार बना-बनाया सब खेल बिगड़ जाय। लेकिन जब उदयन पद्मावती को विदा कराकर चले तो वासवदत्ता भी पीछे-पीछे छिपकर चली। नगर में पहुंचकर वह अपने भाई गोपालक के यहां चली गई।

एक दिन पद्मावती और उदयन साथ-साथ बैठे हुए थे। तभी दूत ने आकर

पद्मावती को सूचना दी कि अवंतिका गोपालक के घर पहुंच गई है। पद्मावती ने कहा, "उसे मेरे पास भेज दो, क्योंकि एक ब्राह्मण उसको मुझे सौंप गया है। मैं उसे अपने से दूर नहीं रखना चाहती।" पद्मावती की आज्ञा पाकर जब दूत चले गये तब उदयन ने पूछा, "यह न मुरझानेवाले फूलों की माला और कभी न सूखनेवाला तिलक किसने बनाकर तुम्हें दिये हैं ?" पद्मावती ने सारी कहानी कह सुनाई और कहा, "यह वही अवंतिका है जिसने ये चीजें तैयार की हैं। वह इस समय गोपालक के घर है।" राजा उदयन के मन में सहसा संदेह पैदा हो गया। वह तत्काल ही गोपालक के घर गया। वहां उसने अपने मंत्रियों और गोपालक के साथ वासवदत्ता को देखा। उसे देखते ही वह बेहोश होकर गिर पड़ा। वासवदत्ता भी मूर्च्छित हो गई। फिर वे रोने लगे। तब तक पद्मावती भी वहां आ पहुंची। वह भी रोने लगी। अब तो योगंधरायण ने सारा भेद खोल दिया और कहा,"यह सब मैंने किया है। इसमें वासवदत्ता का कोई दोष नहीं है। मगधराज की मित्रता पा जाने पर आप शीघ्र ही चक्रवर्ती सम्राट् बन जायं।" पद्मावती ने भी वासवदत्ता के पवित्र होने की साक्षी दी और कहा, "वासवदत्ता की पवित्रता को प्रमाणित करने के लिए मैं आग में प्रवेश कर सकती हूं।"

वासवदत्ता भी अग्नि-परीक्षा देने के लिए तैयार हो गई। तब योगंधरायण ने हाथ में जल लेकर कहा, "यदि वासवदत्ता पवित्र है और यदि मैं राजा का हितैषी हूं, तो देवतागण इस बात की घोषणा करें। नहीं तो मैं अपने प्राणों को त्याग दूंगा।"

तभी यह आकाशवाणी हुई, "हे उदयन ! यह तुम्हारा सौभाग्य है कि तुम्हें योगंधरायण जैसा मंत्री प्राप्त हुआ। वासवदत्ता देवी है और निर्दोष है।" यह आकाशवाणी सुनकर उदयन और गोपालक ने योगंधरायण की बहुत प्रशंसा की। इस तरह उदयन सारी पृथ्वी का सम्राट बन गया। वह प्रसन्नतापूर्वक वासवदत्ता और पद्मावती के साथ सुख और आनंद के दिन बिताने लगा।

## : ३ :

# उर्वशी और अहिल्या की कहानी

एक दिन वासवदत्ता और पद्मावती के साथ बैठे हुए राजा उदयन ने गोपालक, वसंतक और अपने मंत्रियों को एक वियोग-व्यथा की कहानी सुनाई :

प्राचीन समय में पुरुरवा नाम का एक परम वैष्णव राजा था। उसे स्वर्ग में आने जाने का भी अधिकार प्राप्त था। एक दिन वह स्वर्ग की नंदन नामक वाटिका में घूम रहा था तो उसने वहां एक परम सुंदरी अप्सरा को देखा। उसका नाम उर्वशी था। राजा उसे देखकर बेसुध हो गया। उर्वशी भी राजा पर मुग्ध हो गई। तब भगवान विष्णु ने नारद को इंद्र के पास भेजा और कहलवाया कि उर्वशी को पुरुरवा के साथ भेज दिया जाय। इंद्र ने उर्वशी को पुरुरवा को भेंट में दे दिया। राजा पुरुरवा उसे अपने घर ले आया और उसके साथ आनंदपूर्वक दिन बिताने लगा। बहुत दिनों बाद इंद्र ने पुरुरवा से सहायता मांगी। पुरुरवा स्वयं युद्ध-भूमि में गये और मायाधर नामक राक्षस को मार डाला। विजय की खुशी में इंद्र ने एक उत्सव किया। उसमें रंभा नामक अप्सरा के नृत्य का आयोजन था। नाचते समय रंभा की कुछ मुद्राएं बिगड़ गई, जिन्हें देखकर पुरुरवा हंस पड़ा। उस समय तुंबुर नाम का गंधर्व आचार्य के आसन पर बैठा हुआ था। रंभा ने नाराज़ होकर पुरुरवा से कहा, "तुम मनुष्य होकर हमारे भावों को नहीं समझ सकते। इसलिए तुम्हारा हंसना अच्छा नहीं मालूम होता।" राजा ने उत्तर दिया, "उर्वशी के साथ रहकर मैं तुम्हारे भावों को समझने लगा हूं और जितना मैं जानता हूं, उतना तुम्हारा गुरु तुंबुर भी नहीं जान सकता।" यह सुनकर तुंबुर तिलमिला उठा। क्रोध में आकर उसने पुरुरव को शाप दिया, "उर्वशी से तुम्हारा विछोह हो जायगा और जब तक तुम भगवान की पूजा नहीं करोगे, तब तक यह विछोह दूर नहीं होगा।" पुरुरवा जब घर आया तो उसने उर्वशी से सारा हाल कहा। कुछ दिनों बाद एक दिन गंधर्वगण छिपकर आये और उर्वशी को उठा ले गये। राजा ने इसको शाप का फल समझा। इसलिए वह बदरिकाश्रम जाकर भगवान की पूजा करने लगा। इस पूजा से वह शाप मुक्त हो गया और उर्वशी फिर उसके पास वापस आ गई। उर्वशी भी वियोग में बहुत दुबली हो गई थी। पुनर्मिलन के बाद वे फिर आनंद से रहने लगे।

यह कहानी सुनकर वासवदत्ता ने सोचा कि उर्वशी का अधिक प्रेम दिखला-कर उदयन ने मेरे ऊपर व्यंग्य किया है। योगंधरायण यह बात भांप गया। इसलिए उसने तत्काल ही दूसरी कहानी सुनाई—"तिमिर नाम की एक नगरी थी, जिसमें विहितसेन नाम का राजा राज्य करता था। उसकी रानी तेजवती उससे बहुत प्रेम करती थी। वे दोनों एक-दूसरे से पल-भर भी दूर रहने पर दुखी होने लगते थे। एक बार राजा को जीर्ण ज्वर हो गया। वैद्यों ने सलाह दी कि वह रानी से दूर रहे। रानी के वियोग में राजा के हृदय में फोड़ा होगया। वैद्य ने मंत्रियों से कहा, "राजा का यह फोड़ा किसी भय, दुख या आघात से फूट सकता है।" फिर मंत्रियों से सलाह करके रानी को छिपा दिया और यह अफवाह फैला दी कि रानी मर गई है। यह सुनकर राजा बहुत दुखी हुआ और शोक के आघात से उसके हृदय का फोड़ा फूट गया।

यह कथा सुनाकर योगंधरायण बोला, "जो स्त्री केवल प्यार ही करती है, वह उतनी अच्छी नहीं होती जितनी अच्छी वह स्त्री होती है, जो पति को प्यार करते हुए भी अवसर आने पर उसके हित के लिए कठोर बन जाती है और कष्ट भी सहती है। इसी तरह मंत्रियों का काम भी राज्य के कल्याण के लिए काम करना है—राजा की जी हजूरी करना नहीं है। हमने जो प्रयत्न किया था, उसका मतलब यही था कि मगध के राजा आपके मित्र बन जायं और आप सारी पृथ्वी के सम्राट हो जायं। इस कार्य में वासवदत्ता ने आपका हित देखकर जो कुछ किया, उसे अप-राध नहीं कहा जा सकता।"

यौगंधरायण की यह बात सुनकर राजा और रानी दोनों ही प्रसन्न हुए। इधर मगध के राजा ने उदयन के पास अपना दूत भेजकर कहलवाया, "पद्मावती के साथ आपका विवाह कराने में आपके मंत्रियों ने हमें धोखा दिया है। लेकिन अब ऐसा उपाय करना चाहिए जिससे आगे कोई दुख की बात न हो।" उदयन ने दूत को पद्मावती के पास भेज दिया। पद्मावती से दूत ने कहा, "ये लोग तुम्हें धोखा देकर तुम्हारे साथ विवाह कर लाये हैं। तुम्हारा पति वासवदत्ता को अधिक चाहता है।" पद्मावती ने दूत से कहा, "तुम मेरे माता-पिता से जाकर कह देना कि राजा और वासवदत्ता दोनों ही मुझसे प्रेम करते हैं। वासवदत्ता तो मुझे अपनी बहन समझती है। अगर वे मुझे सुखी रखना चाहते हैं तो राजा उदयन से अच्छे संबंध रखें।" पद्मावती का यह संदेश लेकर दूत वापस चला गया तो उसे भी

अपनी मां की याद आ गई और वह सोच में डूब गई। उस समय वासवदत्ता ने वसंतक से कोई कहानी सुनाने के लिए कहा। वसंतक ने यह कहानी सुनाई :

एक समय पाटलिपुत्र नामक नगर में धर्मगुप्त नामक एक धनी बनिया रहता था। उसकी पत्नी का नाम चंद्रप्रभा था। उसके एक सुंदर कन्या पैदा हुई। धरती पर आते ही वह बैठ गई और बोलने लगी। यह देखकर सब लोग डर गये। तब बनिये ने उस कन्या से पूछा, "तुम कौन हो?" वह कन्या बोली, "आपका हित इसीमें है कि मेरा कभी विवाह न करें और मुझे हमेशा अपने घर में ही रखें।"

धर्मगुप्त ने उस कन्या को छिपाकर पालना शुरू किया और समाचार फैला दिया कि उसकी कन्या मर गई है। जब वह कन्या तरुणी हो गई तब एक बार वह अपनी छत पर चढ़कर वसंत का मेला देखने लगी। गुहसेन नामक एक बनिये के पुत्र गुहचंद ने उस लड़की को देख लिया। उसके रूप को देखकर वह मुग्ध हो गया और उसके लिए बेचैन रहने लगा। गुहसेन को अपने लड़के की बेचैनी का हाल उसके मित्रों से मालूम हुआ। वह तुरंत धर्मगुप्त के पास गया और उससे कहा, "अपनी लड़की का विवाह मेरे लड़के के साथ कर दो।" धर्मगुप्त ने उत्तर दिया, "मेरी तो कोई लड़की नहीं है।" गुहसेन ने राजा की बहुत सेवा की थी। इसलिए इस मामले में सहायता पाने के लिए वह राजा के पास गया। राजा ने उसकी बात सुनकर उसके साथ अपना कोतवाल भेज दिया। जब कोतवाल को लेकर गुहसेन धर्मगुप्त के घर गया, तब उस सोमप्रभा नाम की लड़की ने अपने पिता से कहा, "आप अपने सम्मान की रक्षा के लिए मुझे गुहसेन के घर भेज दीजिये, लेकिन उन्हें यह बता दीजिये कि गुहचंद मुझे कभी अपनी खाट पर न बुलाये।"

गुहसेन ने समझा कि यह हंसी की बात है। उसी भावना से उसने उसे मान लिया और अपने लड़के साथ सोमप्रभा का विवाह करके अपने घर ले गया। जब रात होने लगी तो गुहसेन ने अपने पुत्र से कहा, "तुम अब इसको अपने शयन-गृह में ले जाओ।" यह सुनकर सोमप्रभा को क्रोध आ गया और उसने गुहसेन की ओर अपनी एक उंगली उठाई। उस उंगली को देखते ही गुहसेन मर गया। अब तो गुहचंद कांप उठा। वह उससे दूर रहने लगा और पूजा-पाठ में अपना समय बिताने लगा। सोमप्रभा भी मौन रहकर ब्राह्मणों की सेवा में लगी रहती थी। एक बार एक बुड्ढा ब्राह्मण आया और उसने सोमप्रभा के अद्भुत सौंदर्य को देखा।

गुहचंद ने भी ब्राह्मण से सब कुछ बता दिया। तब ब्राह्मण ने उसको एक ऐसा मंत्र बता दिया जिससे अग्निदेव को प्रसन्न किया जा सकता था। गुहचंद ने ऐसा ही किया और उसने देखा आग में से एक पुरुष निकल रहा है। उस पुरुष ने कहा, "आज रात को मैं तुम्हारे घर रहूंगा और तुम्हारी पत्नी का सारा रहस्य तुम्हें बताऊंगा।"

रात होने पर वह गुहचंद के साथ ही सो गया। थोड़ी रात बीतते ही सोमप्रभा अपने घर से बाहर चली गई। उस पुरुष ने गुहचंद को जगाया और कहा, "चलो और अपनी पत्नी का रहस्य जान लो।" उसने योग के प्रभाव से अपने को और गुहचंद को भौंरा बना लिया। उस रूप में वे दोनों सोमप्रभा के पीछे लग गये। शहर से बाहर उन लोगों को वीणा के स्वर सुनाई दिये। जिधर से वीणा की ध्वनि आ रही थी, उस ओर ही वे दोनों चल दिये। आगे जाकर उन्होंने देखा कि बरगद के एक बड़े पेड़ की डाल पर एक सिंहासन रखा है, जिस पर एक अलौकिक रूपवती कुमारी बैठी हुई है। कई तरुणियां उस पर चंवर हिला रही ह। सोमप्रभा भी वहीं जाकर चंद्रमा के समान सुंदर उस कुमारी की बगल में बैठ गई। दोनों सुंदरियों ने साथ-साथ भोजन किया और फिर मधुपान किया। थोड़ी देर बाद सोमप्रभा ने अपनी सखी से कहा, "मैं अब जा रही हूं, क्योंकि मेरे घर पर एक बहुत तेजस्वी ब्राह्मण ठहरा हुआ है। उससे मुझे मय लगता है।" यह कहकर वह घर चली आई। पीछे-पीछे वह ब्राह्मण और गुहचंद भी अपने असली रूप में आकर सो गये। फिर उस ब्राह्मण ने गुहचंद को बताया, "तुम्हारी पत्नी अलौकिक नारी है। इसलिए वह तुमसे प्रेम नहीं करती।" उसने एक वशीकरण मंत्र भी बताया और उसको सिद्ध करने का उपाय भी बताया। उसने इस मंत्र को द्वार पर लिख देने की आज्ञा दी। फिर वह ब्राह्मण चला गया। बनिये के बेटे ने विधिपूर्वक मंत्र को सिद्ध किया और फिर उसे सोमप्रभा के द्वार पर लिख दिया। फिर वह एक दूसरी सुंदर स्त्री से बातचीत करने लगा। सोमप्रभा ने पूछा, "यह स्त्री कौन है?" गुहचंद ने कहा, "यह स्त्री मुझसे बहुत प्रेम करती है और आज मैं इसके घर ही जाकर रहूंगा।" सोमप्रभा ने कहा, "मैं तुम्हारी धर्मपत्नी हूं। तुम मुझे छोड़कर कहीं न जाओ। मेरे पास ही रहो।" गुहचंद तो यह चाहता ही था! वह आनंदपूर्वक उसके साथ जीवन बिताने लगा।

*ब्राह्मण की सेवा करने से इसी प्रकार शुभ फल मिलता है और मंत्र के प्रभाव*

से ऐसी ही सिद्धियां प्राप्त होती हैं। पाप का प्रभाव देवताओं पर भी पड़ता है। पाप के ही कारण उन्हें मृत्युलोक में जन्म धारण करना पड़ता है। यह कथा सुनाने के बाद वसंतक पद्मावती को एक दूसरी कथा दुबारा सुनाने लगा :

प्राचीन समय में महर्षि गौतम के अहिल्या नाम की एक सुंदर पत्नी थी। उसके सौंदर्य पर मुग्ध होकर इंद्र एक बार उसके घर आये और उससे प्रेम की याचना की। अहिल्या ने इंद्र की बात मान ली। उधर गौतम-मुनि ने अपने तपोबल से इस गुप्त बात का पता लगा लिया और वह उसी समय वहां पहुंच गये। उनको देखते ही इंद्र ने बिल्ली का रूप धारण कर लिया। गौतम ने अपनी पत्नी से पूछा, "अभी तेरे साथ कौन था ?" अहिल्या ने छिपाते हुए कहा, "मेरे साथ बिल्ली थी।" गौतम को इस झूठ पर क्रोध आ गया और उन्होंने अहिल्या को पत्थर बन जाने का शाप दिया। साथ ही इंद्र को शाप दिया कि उसके शरीर में सहस्र भग बन जायें। ऋषि गौतम ने यह भी कहा, "जब भगवान राम अवतार लेंगे तब उनके चरण-स्पर्श से अहिल्या पुनः नारी बन जायगी और जब इंद्र तिलोत्तमा नामक अप्सरा को देखेगा, तब उसके भग के चिह्न नेत्र बन जायेंगे।"

वसंतक से यह कहानी सुनकर वासवदत्ता और पद्मावती बहुत प्रसन्न हुईं और एक-दूसरे को पहले से अधिक स्नेह करने लगीं। उधर जब मगधराज ने अपने दूतों से सुना कि वासवदत्ता पद्मावती से बहुत स्नेह करती है, तब वह भी सारा द्वेष भूल गया।

फिर जब यौगंधरायण ने कहा कि अब कौशांबी वापिस चलना चाहिए, तब मगधराज ने कहलवाया, "जिस कार्य के लिए आप लोग आये थे, वह तो पूरा करना ही चाहिए।" इसके बाद मगधराज ने उनको बड़े सम्मान के साथ बिदा किया। लेकिन तभी चंडमहासेन का दूत वहां आया। उसने बताया, "चंड-महासेन आपका सारा हाल जानकर बहुत प्रसन्न है। उन्होंने कहलवाया है कि जब तक यौगंधरायण जैसे मंत्री आपके पास हैं, तब तक अपको कोई कठिनाई नहीं हो सकती। यह वासवदत्ता भी धन्य है जिसने आपके प्रेम के कारण वह महान कार्य किया है, जिससे भले आदमियों में हमारा सिर ऊंचा हुआ और पद्मावती भी वासवदत्ता से अलग नहीं है। इन दोनों का हृदय एक है।"

इस प्रकार अपने ससुर के दूत की बात सुनकर राजा उदयन बहुत प्रसन्न हुआ। उसने दूत को सत्कार के साथ विदा किया और कौशांबी की तरफ चलने के लिए तैयार हो गया।

: ४ :

# विदूषक की कथा

दूसरे दिन मंत्रियों के साथ वत्सराज उदयन ने लावणक से कौशांबी की ओर प्रस्थान किया। मार्ग में सदल-बल जाते हुए वे पृथ्वी पर इस तरह शोभित हो रहे थे, जिस तरह फैले हुए जल के प्रवाह से पृथ्वी शोभित होती है। उस समय राजा सिंह के समान दिखाई पड़ रहा था। नगरी में पहुंचने पर बंदियों और चारणों ने आते हुए वत्सराज उदयन का स्वागत गान किया। कई दिनों तक कौशांबी उत्सव-मंगल में डूबी रही।

दूसरे दिन जब उदयन अपने मंत्रियों से बातचीत कर रहा था, तब एक ब्राह्मण आया और जोर से रो कर बोला,"घोर अत्याचार है। दुष्ट ग्वालों ने मेरे बेटे के पैर काट डाले हैं।" राजा ने तुरंत उनमें से कुछ ग्वालों को पकड़ मंगवाया और उनसे ब्राह्मण के बेटे के पैर काटे जाने का कारण पूछा। उन्होंने उत्तर दिया, "हम लोग एक जंगल में रहते हैं। वहां एक ग्वाला है, जो पत्थर पर बैठकर सदा यही कहता है कि वह हमारा राजा है। हम लोग उसे अपना राजा मानकर उसके सामने सिर झुकाते हैं। यह ब्राह्मण का बेटा उधर से ही गुजर रहा था। इसने हम लोगों के कहने पर भी हमारे राजा को प्रणाम नहीं किया और हमने अपने राजा की आज्ञा से इसके पैर काट डाले। हमने अपने राजा का कहना माना है—कोई अपराध नहीं किया है।" यह सुनकर यौगंधरायण ने राजा से अकेले में कहा, "मालूम पड़ता है कि जिस पत्थर पर इन ग्वालों का राजा बैठता है, उसके नीचे कोई बड़ा खजाना दबा हुआ है। उसीके असर से वह ग्वाला इन पर शासन करता है।"

तब राजा उदयन उन ग्वालों को साथ लेकर उस जंगल में गया, जहां वह पत्थर रखा था। पत्थर के नीचे खुदाई कराई गई। खुदाई करते समय एक यक्ष प्रकट हुआ। उसने कहा, "हे राजा, इस भूमि में तेरे पूर्वजों का खजाना और सिंहासन गड़ा हुआ है। तू उसे अपने साथ ले जा।"

यह कहकर यक्ष चला गया और राजा सब वस्तुओं को अपने घर ले आया। इस समाचार से प्रजा बड़ी प्रसन्न हुई। दूसरे दिन यौगंधरायण ने परीक्षा लेने के लिए राजा से कहा, "आप इस सिंहासन पर बैठिये।" राजा ने कहा, "मेरे पूर्वजों

ने सारी पृथ्वी पर विजय प्राप्त करने के बाद इस सिंहासन पर पैर रखा था। जब तक मैं भी पृथ्वी को नहीं जीत लेता हूं, तब तक मैं इस सिंहासन पर नहीं बैठूंगा।" यौगंधरायण यह सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ और बोला, "महाराज आपका कहना उचित है। इसलिए आप भी दिग्विजय की तैयारी कीजिये। पहले आप पूर्व की ओर जाइये, क्योंकि पूर्व-दिशा सबसे श्रेष्ठ बताई गई है। इस ओर ही प्रति दिन सूर्य का उदय होता है। भागीरथी भी इस दिशा की ओर बहती हुई जाती है और देवराज इंद्र भी इस दिशा में निवास करते हैं। आपके पूर्वज भी दिग्विजय के लिए सबसे पहले पूर्व दिशा की ओर ही गये थे। आपके पूर्वज गंगातट पर हस्तिनापुर में रहते थे। राजा शतानीक देश से ज्यादा पुरुषार्थ को प्रबल मानता था। इसलिए वह कौशांबी में आकर बस गया था।"

उदयन ने कहा, "यह बात ठीक है। चक्रवर्ती सम्राट बनने के लिए देश का प्रभाव इतना काम नहीं आता है जितना पुरुषार्थ काम आता है। पुरुषार्थी व्यक्ति ही लक्ष्मी पर विजय प्राप्त करता है। इस विषय में मैं तुम्हें एक कहानी सुनाता हूं :

"प्राचीन समय में आदित्यसेन नाम का एक राजा उज्जयनी में राज्य करता था। वह बहुत शक्तिशाली था और उसने सारी पृथ्वी पर विजय प्राप्त की थी। एक समय गंगा के तट पर गुणवर्मा नामक बनिये ने अपनी तेजस्वती नाम की कन्या राजा को देने का विचार किया। राजा उस कुमारी को देखकर मुग्ध हो गया और उसने उससे विवाह कर लिया। उसके बाद राज्य की चिंता छोड़कर उसके साथ आनंद-भोग में मस्त रहने लगा। कुछ दिनों बाद उसके एक सुंदर पुत्री पैदा हुई। इधर राजा ने उत्साहित होकर सोचा कि दिग्विजय की जाय। वह एक राजा पर चढ़ाई करने के लिए चला। वह स्वयं तो घोड़े पर सवार हो गया और अपनी पत्नी तेजस्वती को एक हथिनी पर बिठाकर साथ ले चला। राजा ने जैसे ही घोड़े को एड़ लगाई, वह हवा में उड़कर गायब हो गया। अनेकों घुड़सवार राजा की खोज करने के लिए इधर-उधर गये। लेकिन उन्हें राजा का कहीं निशान तक नहीं मिला। तब मंत्रियों ने रानी को उज्जयनी वापिस पहुंचा दिया, फिर राज्य का भार प्रजा के ऊपर छोड़कर वे सेना सहित राजा का पता चलाने के लिए चल पड़े।

"इधर वह घोड़ा राजा को उड़ाकर एक घने जंगल में ले गया। राजा को वहां

न तो कोई मार्ग दिखाई देता था और न दिशाओं का ही ठीक-ठीक पता चलता था। तब उसने घोड़े से प्रार्थना की,'तुम देवता जैसे होकर अपने स्वामी को धोखा नहीं दे सकते। इस समय मैं तुम्हारे आधीन हूं। तुम मुझे मेरे घर पहुंचा दो।'

"राजा की बात सुनकर घोड़े को पूर्व जन्म की बात याद आ गई और उसने राजा को फिर अपनी पीठ पर चढ़ा लिया। सौ योजन धरती को फलांग कर वह वापिस उज्जयनी आया। उस समय रात हो गई थी। नगर के सारे द्वार बंद हो चुके थे। इसलिए घोड़ा राजा को एक मठ में ले गया। राजा ने वहीं रात काटनी चाही, लेकिन मठाधीशों ने उसे मठ में नहीं घुसने दिया। तभी एक ब्राह्मण अंदर से निकला। उसका नाम विदूषक था। वह राजा को कुछ-कुछ पहचानता था। इसलिए उसे अंदर ले गया और उसके सोने का प्रबंध कर दिया। यही नहीं, वह रात भर तलवार लेकर राजा का पहरा देता रहा। यह तलवार उसे अग्नि देवता से प्राप्त हुई थी।

"सबेरे उठकर राजा अपने घर पहुंचा। उसे देखते ही रानी और मंत्री लोग आनंद से पुलक उठे। राजा के लौटने की प्रसन्नता में उन्होंने एक उत्सव मनाया। उसमें दूसरे ब्राह्मणों के साथ उस विदूषक को भी बुलाया गया। यही नहीं,राजा ने उसे अपना पुरोहित बना दिया और एक हजार गांव भेंट में दिये। विदूषक ने उन गांवों पर मठ के ब्राह्मणों का भी अधिकार समझा और वह उन्हें भी बराबर हिस्सा देता रहा। कुछ दिनों बाद मठ के ब्राह्मणों की नियत बदल गई और सब अपने-अपने एकाधिकार के लिए लड़ने लगे। तब चक्रधर नाम के एक ब्राह्मण ने कहा, 'आपस में झगड़ा करने से अच्छा है कि किसी एक को पंच बना दिया जाय।' उसने यह भी कहा, 'पड़ौसी के मरघट में तीन चोरों को फांसी पर लटकाया गया है। हम में से जो भी उनके नाक-कान काटकर लाये, उसीको मुखिया बना दिया जायगा, क्योंकि ऐसा काम कोई बहादुर आदमी ही कर सकता है। जो बहादुर है उसको मुखिया बनाना ही चाहिए।' विदूषक भी इस बात को मान गया। लेकिन उन मठाधीशों में से किसी में भी यह काम करने का साहस नहीं था। अंत में विदूषक ही अपनी अग्नि देवता से प्राप्त तलवार लेकर मरघट पर गया। वहां भूत-प्रेत-चुड़ैलें, गिद्ध-कौवे सब बड़े डरावने शब्द कर-करके चिल्ला रहे थे। बैताल अपने मुंह से आग उगल रहे थे। उस आग से चिताओं की ज्वाला और भी तेज हो उठी थी। विदूषक को देखकर बैताल क्रोध में भर उठे। वे उसे डराने और पीटने लगे, लेकिन

विदूषक ने अपनी तलवार से सबको भगा दिया और तीनों चोरों के नाक-कान काट-कर एक अंगोछे में बांध लिये। जब वह वहां से वापिस आ रहा था, तब उसने रास्ते में देखा कि एक संन्यासी मुर्दे की छाती पर बैठा हुआ कोई मंत्र सिद्ध कर रहा है। वह देखता रहा। थोड़ी देर में मुर्दे के मुंह से ज्वाला निकलने लगी। तोंबी में से सरसों के दाने निकले। संन्यासी उन सरसों के दानों को जोर से एक ओर फकने लगा। उन दानों के प्रभाव से बैताल ने उस मुर्दे को जिंदा कर दिया।

"संन्यासी मुर्दे के कंधे पर बैठकर कात्यायनीदेवी के मंदिर की ओर चल दिया। यह सारी लीला देखने के लिए विदूषक भी छिपकर उसके पीछे हो लिया। संन्यासी ने मुर्दे को मंदिर के बाहर ही रख दिया। स्वयं अंदर गया और देवी की प्रार्थना करता हुआ बोला, 'मेरी इच्छा पूरी कर दो, नहीं तो मैं अपनी जान दे दूंगा।' तभी मंदिर में एक आवाज उठी, 'अगर तुम आदित्यसेन की लड़की को मुझे भेंट में ला दो तो तुम्हारा काम पूरा हो सकता है।' संन्यासी बाहर आया और उसी मुर्दे के कंधे पर चढ़कर आदित्यसेन के घर की ओर उड़ चला। विदूषक ने सोचा कि अगर वह वहीं ठहरा रहेगा तो संन्यासी राजकुमारी को नहीं मार सकेगा। बस वह वहीं रुका रहा। उधर संन्यासी राजकुमारी को लेकर मंदिर में लौट आया। पूजा के उपरांत जैसे ही वह देवी के सामने राजकुमारी का सिर काटने को तैयार हुआ, वैसे ही विदूषक ने अपनी तलवार से संन्यासी का सिर काट डाला।

"उसके बाद विदूषक राजकुमारी को वापिस ले जाने की बातें सोचने लगा। इतने में ही आकाशवाणी हुई, 'इस संयासी को मारकर तुमने अच्छा काम किया। इसने बैताल को सिद्ध कर लिया था और कुछ मंत्र-सिद्ध सरसों के दाने इसकी सहायता करते थे। यह सभी राज कन्याओं का अपहरण करना चाहता था। तुम संन्यासी के कपड़ों में बंधे हुए सरसों के दाने खोल लो, इनसे तुमको आज रात भर उड़ने की शक्ति प्राप्त हो जायगी।'

"विदूषक ने ऐसा ही किया और वह राजकुमारी को साथ लेकर उड़ चला। तभी फिर आकाशवाणी हुई,'एक महीने के बाद तुम फिर यहां आना।' विदूषक जब राजकुमारी के महल में पहुंचा तो वह बहुत डर गई थी। इसलिए उसने विदूषक को उस रात रोक लिया। जब सवेरे नौकर-चाकरों ने विदूषक को राजकुमारी के महल में देखा, तो उन्होंने राजा से जाकर शिकायत की। राजा ने उसे बुलाकर पूछा, 'तुम कौन हो ?' विदूषक ने सारा हाल बता दिया। उसके पास चोरों के

कटे हुए नाक-कान, सरसों के दाने और संन्यासी का धड़, ये सब चीजें थी। इनको देखकर राजा ने विदूषक की बात सच मान ली और फिर राजकुमारी का विवाह विदूषक के साथ कर दिया।

"वे दोनों आनंद से रहने लगे। इस प्रकार रहते हुए जब एक महीना समाप्त होने को आया, तो राजकुमारी ने विदूषक को याद दिलाया कि आकाशवाणी के अनुसार उसे एक बार फिर उस मंदिर में जाना है। यह सुनकर विदूषक उसी रात अपनी तलवार लेकर उस मंदिर के द्वार पर पहुंचा। उसी समय अंदर से आवाज़ आई, 'चले आओ!' विदूषक अंदर चला गया। वहां उसने देखा कि एक बहुत सुंदर कुमारी बैठी हुई है। कुमारी ने विदूषक का बहुत अच्छी तरह स्वागत-सत्कार किया और कहा 'मेरा नाम भद्रा है। विद्याधरों की मैं लड़की हूं। मैंने तुम्हारे गुणों का बखान सुना है और मैं तुमसे विवाह करना चाहती हूं।' विदूषक सहमत हो गया और उसने भद्रा से गंधर्व-विवाह कर लिया। यही नहीं, वह आनंद से वहीं रहने भी लगा।

"उधर जब राजकुमारी सोकर उठी तो उसने विदूषक को ला-पता पाया। वह बहुत दुखी हुई और रोने लगी। उसने अपने माता-पिता से सब-कुछ बता दिया। राजा तुरंत उस मंदिर में गया, लेकिन भद्रा ने उस समय अपने प्रभाव से विदूषक को अंतर्धान कर दिया। राजा उसे न देख पाया और निराश होकर घर लौट आया। अब तो राजकुमारी और भी अधिक विलाप करने लगी। वह मरने को तैयार हो गई। लेकिन एक समझदार आदमी ने समझाया, 'तुम्हें ऐसा नहीं करना चाहिए। तुम्हारा पति तुम्हें अवश्य मिलेगा।' इधर एक दिन भद्रा के पास उसकी सखी आई और बोली, 'तुमने एक मनुष्य से विवाह करके विद्याधरों को अप्रसन्न कर दिया है और इस समय वे क्रोध में आकर तुम्हारा कोई भी अहित कर सकते हैं। पूर्व की ओर समुद्र के पार कर्कोटक नामक नगर है। वहां से भी दूर शीतोप नदी के उस पार उदयाचल है, तुम वहीं जाकर रहने लगो। वह ऐसी जगह है, जहां विद्याधर नहीं जा सकते हैं। यह बात अपने पति को भी बता दो। वह भी वहां पहुंच जायगा।' भद्रा ने तुरंत विदूषक को सब हाल बता दिया। उसे अपनी एक अंगूठी भी भेंट की। फिर सवेरा होते ही वह वहां से गायब हो गई। विदूषक ने सुबह उठकर देखा कि न तो वहां पहले जैसा मंदिर है और न कहीं भद्रा है। उसने सोचा कि भद्रा के कहे के अनुसार उसे भी उदयाचल पहुंचना चाहिए। लेकिन उसे यह भी

भय था कि बाहर निकलते ही राजा उसे रोक लेगा। इसलिए उसने अपने कपड़े फाड़ डाले, देह पर मिट्टी लपेट ली और 'भद्रा-भद्रा' चिल्लाता हुआ बाहर निकला। राजा को उसके पागल होने का समाचार मिला तो उसने उसे महल में बुलवा मंगाया और वहां रखकर उसका बहुत इलाज किया। लेकिन वह ठीक नहीं हो सका। तब राजा ने उसे छोड़ दिया। उसने सोचा कि शायद घूमने-फिरने से वह ठीक हो जाय। विदूषक तो यही चाहता था। वह भद्रा की दी हुई अंगूठी लेकर उदयाचल की ओर चल दिया। मार्ग में वह पौंड्रवर्द्धन नामक नगर में एक बुढ़िया ब्राह्मणी के घर ठहर गया। ब्राह्मणी ने उससे रोकर कहा, 'बेटा तुम इस घर में ही रहो, मैं अब ज़िंदा नहीं रहना चाहती। कल मैं अपने जीवन का अंत कर दूंगी।' विदूषक ने उसके दुख का कारण पूछा। उस बुढ़िया ने बताया, 'यहां के राजा देवसेन की दुखलब्धिका नाम की एक कन्या है। वह बहुत सुंदर है। राजा ने उसका विवाह कच्छप राज से किया था। जब उसका पति रात में उसके पास गया, तो वह वहां मर गया। उसके बाद राजा ने उस लड़की की शादी और भी कई लोगों से की; लेकिन सब इसी तरह मर गये। तब राजा ने ब्राह्मण और क्षत्रिय जाति के तमाम युवकों को एक-एक करके बारी-बारी से अपनी कन्या के पास भेजना शुरू कर दिया। लेकिन जो भी उसके पास रात में जाता है, वही मर जाता है। आज राज-कुमारी के पास मेरे पुत्र के जाने की बारी है। इसलिए मैं बहुत दुखी हूं। राजा की प्रतिज्ञा है कि जो भी युवक रात में उसकी कन्या के साथ रहकर जीवित रह जायगा, उसके साथ कन्या का विवाह कर दिया जायगा। इसलिए राजा की आज्ञा टाली नहीं जा सकती।' विदूषक ने बुढ़िया को समझाते हुए कहा, 'तू चिंता मत कर। मैं तेरा पुत्र बनकर राजकुमारी के पास जाऊंगा और तेरे पुत्र के प्राणों की रक्षा करूंगा।'

"बड़े दुखी मन से किसी तरह बुढ़िया ने उसकी बात मान ली। उसी रात विदूषक बुढ़िया का पुत्र बनकर सेनापति के साथ राजकुमारी के महल में गया। उसने अपने साथ अपनी तलवार भी छिपाकर रख ली थी। वह राजकुमारी के पलंग पर लेटा हुआ था तो, पर सजग था। वह जानना चाहता था कि कि कौन उसे मारने आता है। तभी एक भयंकर राक्षस ने अपना हाथ बढ़ाकर उसे पकड़ने का प्रयत्न किया। विदूषक ने तुरंत अपनी तलवार से उसका हाथ काट डाला। राक्षस डरकर वहां से भाग गया। सवेरे जब राजा ने विदूषक को जीवित

पायां,तो वह बड़ा प्रसन्न हुआ और अपनी कन्या का विवाह उसके साथ कर दिया। विदूपक कुछ दिन उस राजकुमारी के पास रहा। फिर एक रात भद्रा से मिलने के लिए उदयाचल की ओर चल पड़ा। सवेरे उठकर जब राजकुमारी ने विदूषक को नहीं पाया, तो वह बहुत दुखी हुई। लेकिन राजा के समझाने पर शांत हो गई।

"इधर विदूपक समुद्र के किनारे बसी हुई ताम्रलिप्ती नामक नगरी में पहुंचा। वहां उसने स्कंधदास नामक एक बनिये से मित्रता की। जब वह बनिया हीरे-जवाहरात भरकर व्यापार के लिए जहाज से बाहर जाने लगा, तो वह भी उसके साथ हो लिया। जहाज कुछ दूर जाकर बीच समुद्र में एकाएक रुक गया और किसी तरह भी आगे नहीं बढ़ा। बनिये ने कहा, 'अगर कोई मेरे जहाज को चला दे, तो मैं उसको अपना आधा धन दे दूंगा और अपनी कन्या से उसका विवाह कर दूंगा।' विदूपक बोला, 'मैं तुम्हारा जहाज चला दूंगा। तुम मुझे एक रस्सी में बांधकर समुद्र में डाल दो। लेकिन रस्सियों को पकड़े रहना और जब जहाज चल निकले तो मुझे ऊपर खींच लेना।' बनिये ने ऐसा ही किया। विदूषक ने समुद्र में गोता लगाया तो देखा कि समुद्र के अंदर एक विशालकाय आदमी सोया पड़ा है। उसीकी जांघ से टकराकर जहाज़ रुक गया है। विदूषक ने अपनी तलवार से उसकी जांघ काट दी। जहाज़ चलने लगा। लेकिन बनिये ने विदूषक के साथ विश्वासघात किया। उसने उसे जहाज़ पर नहीं खींचा और रस्सियां काट डालीं। तब विदूपक ने उस कटी हुई जांघ को ही नाव बनाकर समुद्र पार किया। उस समय आकाशवाणी हुई, 'मैं अग्नि देवता तुम्हारी बहादुरी पर बहुत प्रसन्न हूं। सात दिन के भीतर तुम कर्कोटक नामक नगर में पहुंच जाओगे। वहां तुम्हारी इच्छा पूरी होगी। मेरे आशीर्वाद से न तो तुम्हें भूख सतायेगी और न प्यास।'

"आकाशवाणी सुनकर विदूषक का उत्साह और भी बढ़ गया। वह आगे बढ़ने लगा और सातवें दिन वह कर्कोटक नगर में पहुंच गया। वह वहां एक ब्राह्मणों के मठ में जाकर ठहरा। एक ब्राह्मण ने उसका काफी स्वागत-सत्कार किया। जब रात होने लगी तो वहां के राजा की ओर से ढिंढोरा पिटवाया गया, 'जो व्यक्ति राजकुमारी के साथ विवाह करना चाहता हो, वह रात में उसके साथ रहकर दिखाये।' विदूषक ने यह ढिंढोरा सुना और राजकुमारी के साथ रहने का विचार प्रगट किया। ब्राह्मणों ने कहा, 'तुम मत जाओ, क्योंकि वहां जाकर आज तक कोई वापिस नहीं लौटा।' लेकिन विदूषक तो साहसी था न, उसने

ब्राह्मणों की बात नहीं मानी। उसी रात वह राजकन्या के पास पहुंचा। राजा ने विदूषक का बड़ा स्वागत किया और उसे राजकुमारी के सोने के कमरे में भेज दिया। राजकुमारी उसे देखकर रोने लगी, लेकिन विदूषक अपनी तलवार लेकर उसकी और अपनी रक्षा के लिए तत्पर हो गया। कुछ देर बाद उसन देखा कि एक भयंकर राक्षस ने आकर उसकी ओर अपना बांया हाथ बढ़ाया। विदूषक हाथ देखते ही उसे पहचान गया। यह वही राक्षस या जिसका दांया हाथ वह पहले काट चुका था। इस बार उसने उसका दूसरा हाथ न काटकर उसके सिर के बाल पकड़े और चाहा कि उसे जान से ही मार दे। राक्षस डर गया। वह क्षमा मांगने लगा। बोला, 'तुम वास्तव में एक वीर पुरुष हो। आज से मैं तुम्हारा मित्र बनता हूं। जब भी तुम्हें मेरी सेवा की आवश्यकता हो, तुम मुझे याद कर सकते हो।' उसने आगे कहा, 'मेरी दो लड़कियां हैं—एक पौंड्रवर्द्धन में, जहां एक वीर पुरुष ने मेरा हाथ काटा था और दूसरी यह है। मैं अपनी लड़कियों को किसी पराक्रमी पुरुष को देना चाहता था। वह पराक्रमी पुरुष तुम्हीं हो। कायर पुरुषों से इन दोनों कन्याओं की रक्षा भगवान शिव की आज्ञा से ही कर रहा था। मेरा नाम यमदंष्ट्र है। अब में तुम्हारा मित्र हूं।' विदूषक ने उसे अपना मित्र मान लिया और उसे छोड़ दिया। राक्षस वहां से चला गया।

"सवेरे जब राजा ने विदूषक को जीवित पाया, तो उसने राजकुमारी से उसका विवाह कर दिया। कुछ दिनों तक विदूषक इस राजकुमारी के साथ रहा। बाद में एक रात को छिपकर उदयाचल की ओर चल दिया। उस नगर के बाहर जाकर उसने अपने इस राक्षस मित्र को याद किया। राक्षस तुरंत उपस्थित हो गया। विदूषक ने कहा, 'तुम मुझे उदयाचल के सिद्ध क्षेत्र में भद्रा के पास पहुंचा दो।' राक्षस ने विदूषक को अपने कंधे पर बिठा लिया और शीतोप नदी के किनारे तक उसे पहुंचा दिया। वहां से उदयाचल पास ही था। राक्षस ने कहा, 'आगे सिद्ध क्षेत्र है, जहां जाने की शक्ति मुझ में नहीं है।' यह कहकर वह चला गया। विदूषक ने देखा कि वहां सामने ही एक बावड़ी है। वह वहीं बैठ गया। कुछ देर बाद अनेक सुंदर स्त्रियां सोने के घड़े लिये हुए जल भरने को वहां आईं। विदूषक ने उनसे पूछा, 'तुम किसके लिए जल ले जा रही हो?' उन्होंने कहा, 'हम भद्रा नामक विद्याधरी के नहाने के लिए पानी ले जाती हैं।' उन्होंने विदूषक से भरे घड़ों को उठवा देने की प्रार्थना की। विदूषक ने घड़े उठाकर उनके

कंधों पर रखे और एक घड़े में भद्रा की दी हुई अंगूठी भी डाल दी। जब भद्रा नहा रही थी, तब उसने उन सेविकाओं से पूछा, 'क्या तुम्हारी भेंट किसी पुरुष से हुई थी ?' उन्होंने विदुषक के मिलने का हाल बता दिया। भद्रा ने उनसे कहा, 'वह पुरुष मेरा पति है। उसे नहला-धुलाकर और अच्छे कपड़े पहनाकर यहां ले आओ।' उन्होंने ऐसा ही किया। भद्रा और विदूषक दोनों बड़े प्रेम से मिले। वह इतनी कठिनाइयां उठाकर आया था, इसलिए भद्रा ने उसे अपना सच्चा साथी समझा। वह उसके वशीभूत हो गई। विदूषक ने कहा, 'अगर तुम मुझसे प्रेम करती हो, तो मेरे साथ उज्जयनी चलो।' भद्रा ने उसकी बात मान ली और दोनों उदयाचल से नीचे उतर आये। वहां आकर विदूषक ने अपने राक्षस मित्र का स्मरण किया। वह तुरंत आ पहुंचा। विदूषक ने उसे मार्ग बताया और फिर वह और भद्रा दोनों उसके कंधों पर बैठ गये। राक्षस उनको तेजी से ले चला। पहले विदूषक कर्कोटक पहुंचा। वहां के राजा आर्यवर्मा की लड़की उसकी पत्नी बन चुकी थी, उसे साथ लिया। आगे चलकर समुद्र के किनारे ताम्रलिप्ती नगर में वह स्कंधदास बनिये के पास आया। यह बनिया उसे समुद्र में छोड़कर चला गया था। विदूषक ने दिये हुए वचन के अनुसार आधा धन और उसकी कन्या ले ली। इन सबको लेकर वह उड़ चला। रास्ते में वह अपनी पत्नियों को सब स्थान दिखाता जाता था। आगे जाकर वह पौंड्रवर्द्धन नगर के राजा के यहां पहुंचा और उसकी लड़की को साथ लिया। वह भी उसकी पत्नी बन गई थी।

"इस तरह वह शीघ्र ही उज्जयनी जा पहुंचा। जब लोगों ने उसे राक्षस के ऊपर सवारी करते हुए देखा, तो बहुत डरे। विदूषक के आने की खबर सुनकर राजा भी उसके पास पहुंचा। यह राजा उसका पहला ससुर था। विदूषक ने राक्षस के कंधे से उतरकर राजा को नमस्कार किया। राजा उन सबको महल में ले गया और वहां विदूषक अपनी पहली पत्नी से मिलकर बहुत खुश हुआ। उसने राक्षस को विदा कर दिया। राजा ने उससे उन स्त्रियों के विषय में पूछा, तब उसने अपने जीवन की सारी घटनाएं कह सुनाईं। राजा बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने उसको अपना आधा राज्य दे दिया। विदूषक सब पत्नियों के साथ आनंद से रहने लगा। उसकी पत्नियां आपस में प्रेम से रहती थीं। धीरे-धीरे वह अपने पराक्रम से सारी पृथ्वी का राजा बन गया।"

यह कथा सुनाकर उदयन ने कहा, "इस तरह धैर्य रखनेवाले वीर पुरुषों के

प्रयत्न से कठिन-से-कठिन कार्य भी पूरा हो जाता है।" पद्मावती, वासवदत्ता और मंत्रीगण यह कथा सुनकर बड़े प्रसन्न हुए।

: ५ :

## दिग्विजय की यात्रा

कुछ दिनों के बाद यौगंधरायण ने राजा को याद दिलाया कि अब उसे दिग्विजय करने की तैयारी करनी चाहिए। राजा इस बात से तो सहमत था, लेकिन ऐसा करने से पूर्व उसकी इच्छा थी कि भगवान शंकर की तपस्या करनी उचित है, क्योंकि किसी भी शुभ कार्य को कुशलपूर्वक समाप्त करने के लिए पूजा-पाठ की आवश्यकता होती है। रामचंद्रजी ने सेतुबंधु बनाने से पहले रामेश्वर की स्थापना करके भगवान शंकर की पूजा का प्रस्ताव किया था। उनकी सारी बानर सेना ने जिस प्रकार उसको स्वीकार कर लिया था, उसी प्रकार राजा उदयन की यह बात उसके मंत्रियों ने मान ली। तब राजा ने अपनी दोनों रानियों और मंत्रियों को लेकर महादेव की तपस्या आरंभ कर दी। अभी तप करते हुए उन्हें तीन दिन ही बीते थे कि महादेवजी ने राजा से सपने में कहा, "मैं तुम पर प्रसन्न हूं। अब तुम और तपस्या मत करो। तुम्हारी इच्छा शीघ्र ही पूर्ण होगी। तुम्हारे एक पुत्र उत्पन्न होगा जो सब विद्याधरों का राजा बनेगा।"

राजा ने सवेरे उठकर अपने सपने का सारा हाल मंत्रियों को सुनाया। दूसरे दिन सबकी सलाह से व्रत समाप्त कर दिया गया। उसके बाद यौगंधरायण ने उदयन से कहा, "हे राजा! आप बड़े सौभाग्यशाली हैं। आपके ऊपर महादेवजी की कृपा है। अब अपनी शक्ति से शत्रुओं को जीतकर विजय की लक्ष्मी प्राप्त करें। अपने पुरुषार्थ से प्राप्त की हुई लक्ष्मी ही सदा स्थिर रहती है। आपके पूर्वजों ने जिस लक्ष्मी को अर्जित किया था, वह उनके पुरुषार्थ से ही आपके पास सुरक्षित है। इस बारे में मैं आपको एक कथा सुनाता हूं: पाटलिपुत्र में देवदास नाम का एक बनिया रहता था। उसका पिता बहुत धनी था। पौंड्र देश के एक धनवान बनिये की कन्या से देवदास का विवाह हुआ था। कुछ दिनों बाद उसका पिता मर गया और वह जूए म अपना सारा धन हार गया। यह देखकर

उसका ससुर अपनी लड़की को अपने घर ले गया। देवदास को जब कोई रास्ता नहीं दिखाई दिया, तो उसने अपने ससुर से कुछ रुपया लेकर व्यापार करने का विचार किया। बस वह अपनी ससुराल की ओर चल पड़ा। उसके कपड़े फटे हुए और मैले थे। इसलिए जब वह सायंकाल को पौंड्रवर्द्धन नगर में पहुंचा, तो संकोच के मारे अपनी ससुराल नहीं गया। एक बंद दूकान के पास ठहर गया। कुछ देर बाद एक बनिया वहां आया और दूकान खोलकर अंदर चला गया। उसके पीछे एक स्त्री भी दुकान में गई। देवदास छिपकर उन दोनों को देख रहा था। दूकान के भीतर दिये के उजाले में जब वह स्त्री पहुंची, तो देवदास चौंक पड़ा। यह तो उसकी पत्नी थी। उसके हृदय को बहुत चोट पहुंची। वह सोचने लगा—पिता के घर में स्वतंत्र लड़कियां इसी प्रकार बिगड़ जाती हैं।

"तभी उसने सुना कि उसकी पत्नी अपने प्रेमी से कह रही थी, 'तुम मुझे बहुत ही प्रिय हो, इसलिए मैं तुम्हें एक गुप्त बात बताती हूं। मेरे पति के परबाबा वीर-वर्मा ने अपने घर के आंगन के चारों कोनों में चार सोने के घड़े गाड़े थे। उनमें अशर्फियां भरी हुई हैं। उन्होंने यह बात अपनी पत्नी को बताई थी। उनकी पत्नी ने मेरी ददिया सास को यह भेद बताया और मेरी ददिया सास ने मेरी सास को इसकी सूचना दी। मेरी सास ने मुझसे कहा। यह गुप्त भेद मैंने अपने पति को भी नहीं बताया था, क्योंकि वह जुआ खेलता है और मैं उससे घृणा करती हूं। उसके निर्धन होने पर भी मैंने यह बात उसको नहीं बताई। अब तुम उस मकान को खरीद लो और वह धन निकाल लो। फिर हम-तुम आनंद से रहेंगे।'

"ये सारी बातें सुनकर देवदास अपने घर वापिस लौट गया और आंगन में गड़े हुए धन को उसने खोद निकाला। कुछ दिनों बाद उसकी पत्नी का प्रेमी भी व्यापार करने के लिए उस नगर में आया। उसने देवदास से वह मकान मोल ले लिया; लेकिन जब खोदने पर उसे गड़ा हुआ धन नहीं मिला, तो वह देवदास से झगड़ने लगा। बोला, 'मकान वापिस ले लो और मेरा रुपया लौटा दो।' देवदास ने उसकी बात नहीं मानी। इस तरह झगड़ा बढ़ता गया और मामला राजा के यहां पहुंचा। देवदास ने राजा से अपनी पत्नी का सारा हाल कह सुनाया। राजा ने उसकी पत्नी के प्रेमी बनिये का सब-कुछ छीन लिया। देवदास ने भी अपनी पत्नी के नाक-कान काटकर उसे घर से निकाल दिया। उसने दूसरा विवाह कर लिया और सुखसे रहने लगा।"

यह कथा सुनाकर यौगंधरायण ने कहा, "हे राजा ! इस तरह अधर्म से प्राप्त किया पैसा पास नहीं ठहरता। इसलिए आप धर्म से लक्ष्मी को प्राप्त कीजिये। राज्य एक विशाल वृक्ष है और लक्ष्मी उसकी जड़ है। आप अपने मंत्रियों को धन और मान से प्रसन्न कीजिये और दिग्विजय करने की तैयारी कीजिये। सबसे पहले अपने पुराने शत्रु काशी-नरेश ब्रह्मदत्त को जीतिये। फिर पूर्व की ओर बढ़िये।"

उदयन ने यौगंधरायण की बात मान ली। उसने दिग्विजय के लिए सेनाओं को तैयार रहने की आज्ञा दे दी। वासवदत्ता का भाई गोपालक भी इस दिग्विजय में सहयोग देने के लिए आगया। राजा ने उसका सम्मान किया और भेंट में उसको विदेह का राज्य सौंप दिया। सिंहवर्मा के ऊपर सेना को सुसज्जित करने का भार था। इस कार्य के लिए उसको चंदेली का राज्य इनाम में दिया गया। म्लेच्छराज पुलिंदक को भी इस दिग्विजय यात्रा में सहयोग देने के लिए निमंत्रित किया गया। इस तैयारी का समाचार सुनकर उदयन के शत्रु घबड़ाने लगे। यौगंधरायण ने काशी में अपने भेदिये भेजकर राजा ब्रह्मदत्त का पता चलाने का प्रयत्न किया। उसके बाद राजा उदयन पद्मावती और वासवदत्ता को साथ लेकर एक विशाल सेना के साथ दिग्विजय के लिए चल पड़ा। उधर यौगंधरायण के दूतों ने काशी में जाकर अपना काम शुरू कर दिया। उनमें से एक गुरु बना और बाकी सब चेले। उन चेलों ने सारे नगर में यह बात फैला दी कि उनका गुरु सर्वज्ञ है। यही नहीं, अगर वह किसीसे कह देता था कि जा तेरे घर में आग लग जायगी, तो चेले छिपकर ठीक समय पर उसके घर में आग लगा आते थे। इस तरह वह सारे नगर में प्रसिद्ध हो गया। काशी-नरेश का एक मित्र भी उससे बहुत प्रभावित हुआ—यहां तक कि उसकी सेवा करते हुए वह भी चेलों के साथ ही रहने लगा। इस व्यक्ति से ही उन्हें गुप्त बातों का पता चल जाया करता था। जिस मार्ग से राजा उदयन सेना-सहित काशी की ओर आ रहा था, उस मार्ग पर काशीराज के मंत्री योगकंडक ने पानी, फल-फूल और वृक्षों को विषैला बना दिया। उसने ऐसी नर्तकियां उदयन की सेना में भेज दीं, जो सैनिकों को विष देकर मार देने की कला में निपुण थीं। यौगंधरायण ने यह भेद अपने भेदियों से जान लिया। इसलिए उसने मार्ग के फल-फूल आदि को विष-नाशक औषधियों से शुद्ध करवाया और किसी भी स्त्री का सेना में आना बंद कर दिया। जिन पुरुषों पर उसे संदेह होता था, उन्हें वह

जान से मरवा डालता था। इस तरह काशीराज के मंत्री की एक भी चाल न चल सकी। प्रारंभ में राजा ब्रह्मदत्त ने उदयन की सेना से युद्ध करने का प्रयत्न किया। किंतु शीघ्र ही उसकी अपार शक्ति से वह हताश हो गया। इसलिए उसने उदयन से हार मान ली और भेंट-स्वरूप बहुत सी सामग्री उसको दी।

इस प्रकार काशी पर विजय पाने के बाद राजा उदयन सेना-सहित पूर्व दिशा के राजाओं को परास्त करता हुआ समुद्र के किनारे आकर रुका। वहां उसने अपना जयस्तंभ स्थापित किया। कलिंग देश के रहनेवालों ने उसको अनेक उपहार दिये। फिर उदयन ने महेंद्र पर्वत को जीतकर दक्षिण दिशा की ओर प्रस्थान किया। कावेरी नदी को पार करके उसने चोल देश को जीता फिर रेवा नदी के पार बसी हुई उज्जयनी नगरी में जाकर वहां रुका। वहां के राजा चंडमहासेन ने उसका बहुत स्वागत-सत्कार किया। वासवदत्ता भी अपने पिता से मिलकर बहुत प्रसन्न हुई। कुछ दिन रहने के बाद उदयन उज्जयनी की सेना लेकर पश्चिम दिशा की ओर बढ़ा। वहां उसने लाटव देश पर विजय प्राप्त की। फिर वह उत्तर में गया। वहां म्लेच्छों को मारकर उसने सिंधु देश के राजा पर विजय प्राप्त की। फिर उसने पारस के राजा को युद्ध में मारा और हूण देश को अपने आधीन किया। विजय के इन समाचार को सुनकर कामरूप का राजा आप ही उसकी शरण में आ गया। उसने भेंट में बहुत से हाथी दिये।

इस तरह चारों दिशाओं को जीतता हुआ राजा उदयन मगध पहुंच गया। मगध का राजा उदयन का श्वसुर और पद्मावती का पिता था। उसने उदयन का बड़ी धूम-धाम से स्वागत किया और बड़ा उत्सव मनाया। वासवदत्ता को फिर से प्रकट रूप में देखकर मगध-नरेश ने बड़ी प्रसन्नता प्रकट की। अंत में उत्सवसमाप्त होने के बाद उदयन मगध से अपने लावणक नामक देश वापिस आ गया।

: ६ :

## कार्तिकेय और मंत्र सिद्ध करने की कथा

लावणक में सेना विश्राम करने के लिए रुकी। तब एक दिन उदयन ने यौगंधरायण से एकांत में कहा, "जो राजा पराजित हो चुके हैं, उनमें कोई और तो

सिर नहीं उठायेगा, लेकिन काशीराज ब्रह्मदत्त पर मुझे अभी संदेह है। वह कुटिल है और किसी भी समय उपद्रव कर सकता है।" यौगंधरायण बोला, "अब वह सिर नहीं उठायेगा। उसके हार जाने के बाद भी आप उससे सम्मानपूर्वक मिले थे। फिर भी अगर वह कोई बुरा काम करेगा, तो उसका ही अहित होगा, क्योंकि जो अच्छा काम करते हैं, उनको अच्छा फल मिलता है और जो बुरा करनेवाले हैं, उनको बुरा फल मिलता है। उदाहरण के लिए मैं एक कहानी सुनाता हूं:

"पद्म देश में अग्निदत्त नाम का एक ब्राह्मण था। राजा ने उसे कुछ गांव भेंट में दिये थे। उन गांवों से होनेवाली आमदनी से ही वह अपने घर का खर्चा चलाता था। सोमदत्त और वैश्वानरदत्त नाम के उसके दो बेटे थे। बड़ा बेटे सोमदत्त सुंदर होते हुए भी मूर्ख था, लेकिन छोटा लड़का विनयशील और पंडित था। पिता के मर जाने पर दोनों ने संपत्ति को आधा-आधा बांट लिया। फिर विवाह करके अलग-अलग रहने लगे। वैश्वानरदत्त समाज में और राज-दरबार में सम्मानित हुआ, लेकिन सोमदत्त बुरे आचरणों में फंस गया। एक दिन सोमदत्त शूद्रों के साथ बैठा हुआ था। यह देखकर उसके पिता के एक मित्र ने डांटते हुए कहा, 'तू अग्निदत्त ब्राह्मण का पुत्र होकर शूद्रों की संगति करता है। कम-से-कम तझे राज-दरबार से सम्मानित अपने भाई का तो ध्यान रखना चाहिए।' सोमदत्त को यह बात बुरी लगी और उसने अपने पिता के मित्र को पीटा। वह तुरंत राजा के पास पहुंचा और सोमदत्त की शिकायत की। राजा ने सोमदत्त को बंदी बनाने के लिए सिपाहियों को भेजा। सोमदत्त और उसके साथियों ने सिपाहियों को भी मार-पीटकर भगा दिया। तब राजा ने सेना भेजकर उसे पकड़ मंगवाया और उसको शूली पर चढ़ाने की आज्ञा दी। जब सोमदत्त को शूली पर चढ़ाया गया, तब अचानक उछलकर वह इस तरह दूर जा गिरा जैसे उसको किसीने पटक दिया हो। यही नहीं, उसका वध करनेवाले भी सहसा अंधे हो गये। तब छोटे भाई के कहने पर राजा ने सोमदत्त को छोड़ दिया। उसने इस अपमान के कारण वहां से किसी दूसरे देश में जा रहने की बात सोची, लेकिन जब उसके भाई और साथियों ने समझाया-बुझाया, तो वह वहीं रहने लगा। लेकिन उसने अपने हिस्से की संपत्ति को छोड़ दिया और उपजाऊ धरती की खोज करता हुआ वह जंगल में पहुंचा। वहां उसने एक विशालकाय पीपल का वृक्ष देखा। वृक्ष के नीचे खड़े होकर वह कहने लगा, 'इस वृक्ष पर जो देवता रहता है, उसका मैं पुजारी हूं।'

फिर उसने विधिवत उसकी पूजा की और बैलों की जोड़ी लाकर खेती करने लगा। उसकी पत्नी प्रति दिन वहीं खेत पर खाना दे जाती थी। समय आने पर बहुत अच्छी फसल तैयार हुई। लेकिन किसी दूसरे देश के राजा ने आकर उस फसल को उजाड़कर फेंक दिया। जब राजा और उसकी सेना वहां से चले गये, तो सोमदत्त ने फिर उस पीपल के पेड़ की पूजा की, उसे बलिदान चढ़ाया और फिर खेती में जुट गया।

"एक रात चिंता के कारण उसको नींद नहीं आ रही थी। इतने में ही उसने आकाशवाणी सुनी—'तुम श्रीकंठ देश के राजा आदित्य प्रभु के राज्य में जाकर कहो—मैं कफभूति नाम का ब्राह्मण हूं। सज्जन को उसकी सज्जनता का और दुर्जन को उसकी दुर्जनता का फल मिलता है—यह बात कहते हुए अग्निहोत्र और संध्या के मंत्र पढ़ना। जब तुम ऐसा करोगे, तो तुम्हें यश प्राप्त होगा। मैं एक यक्ष हूं। तुम्हें संध्या और अग्निहोत्र के मंत्र सिखाये देता हूं।'

"इस तरह मंत्र सिखाकर वह यक्ष वहां से चला गया। बाद में अपनी पत्नी के साथ सोमदत्त श्रीकंठ देश पहुंचा। वहां उसने यक्ष के कहने के अनुसार बार-बार वैसा ही किया। राजा ने भी उसे अपने दरबार में बुलवाया और उसकी बात सुनी। उसने प्रसन्न होकर सोमदत्त को कई गांव भेंट में दिये। इस तरह वह सम्मान पाकर वहां अपना जीवन बिताने लगा। एक दिन राजा ने देखा कि उसकी रानी कुवलयावती आंगन में माथे पर सिंदूर का तिलक लगाये, आंखें बंद किये, बाल खोले नंगी बैठी किसी देवता को प्रसन्न करने के लिए मदिरा, मांस और बलिदान के द्वारा उसकी पूजा में जुटी हुई है। राजा को देखते ही रानी घबड़ा गई और अपने शरीर पर कपड़ा डालते हुए उसने कहा, 'जो कुछ मैं कर रही हूं, वह आपके कल्याण के लिए ही है। इस विषय में आपको शास्त्र और सिद्धि की एक कहानी सुनाती हूं : एक बार बचपन में मैं अपनी सहेलियों के साथ एक बगीचे में वसंत का उत्सव मना रही थी। तब मेरी सहेलियों ने कहा कि इस बगीचे में गणेशजी का एक मंदिर है। अगर तुम उनकी पूजा करो, तो तुमको मन के अनुसार शीघ्र ही योग्य पति प्राप्त हो सकता है। मेरी सखी ने मेरे पूछने पर बताया कि गणेश की पूजा के बिना देवताओं के काम भी सकुशल पूरे नहीं होते। मेरी सखी ने गणेशजी की महिमा का बखान करते हुए एक कहानी भी सुनाई थी :

प्राचीन समय में शिव ने कामदेव को अपने तीसरे नेत्र की ज्वाला से भस्म कर दिया था, परंतु पार्वती ने अपनी तपस्या के प्रभाव से शिवजी को पति के रूप में प्राप्त किया। बाद में पार्वतीजी ने गणेशजी की पूजा बिना किये ही चाहा कि कामदेव जीवित हो उठे और शिव से उनके पुत्र हो। पार्वती की भावना को समझकर शिव ने कहा, "कामदेव का जन्म सबसे पहले ब्रह्मा के मन से हुआ। पैदा होते ही कामदेव ने ब्रह्मा से पूछा था—बताओ किसका नाश करूं (कं दर्पयामि) ? उसकी यह बात सुनकर ही ब्रह्मा ने उसका नाम कंदर्प रख दिया था और उससे कह दिया था कि वह कभी शिव का मन विचलित करने का प्रयत्न न करे नहीं तो जीवन से हाथ धोना होगा। परंतु उसने ब्रह्मा का कहना नहीं माना और मेरे मन पर प्रहार किया। इसलिए मैंने उसको भस्म कर दिया। अब वह शरीर फिर पैदा नहीं हो सकता। लेकिन मैं बिना कामदेव की सहायता के ही अपने बल से तुम्हें पुत्रवती बनाऊंगा।"

इधर तारकासुर राक्षस के कारण सारे देवता दुखी थे। ब्रह्मा और इंद्र ने आकर शिव से विनती की कि वह तारकासुर को मारने का कोई उपाय करें। तब शिव ने कहा, "मैं पार्वती से एक औरस पुत्र पैदा करूंगा और सृष्टि को चालू रखने के लिए अपने और प्राणियों के हृदय में कामदेव को जाग्रत करने का उपाय करूंगा।"

यह बात सुनकर ब्रह्मा और इंद्र प्रसन्न हुए और वहां से चले गये। फिर शिव और पार्वती कहीं एकांत में जाकर रमण करने लगे। अनेक वर्ष बीत गये, लेकिन वे बाहर नहीं आये। इससे सारे ब्रह्मांड में खलबली मच गई। देवताओं ने अग्नि से प्रार्थना की कि वह कुछ उपाय करे, लेकिन शिव के भय से अग्निदेवता पानी में जाकर छिप गये, लेकिन मेंढकों ने उनका पता बता दिया। वह वहां से निकलकर भागे और मंदराचल पर्वत पर जाकर छिप गये, लेकिन वहां भी हाथियों ने देवताओं को उनका पता दिया। देवताओं के बहुत पीछा करने पर अग्नि को उनके सामने प्रकट होना पड़ा। अंत में उनका काम करने के लिए वह वहां पहुंचे, जहां शिवजी पार्वती के साथ रहते थे। अपने प्रभाव से उन्होंने शिवजी के काम में बाधा डाली और फिर उनको प्रणाम करके निवेदन किया, "यह सब काम मैंने देवताओं के हित के लिए किया है।" शिव ने अग्नि को क्षमा कर दिया। पार्वती फिर भी पुत्रवती नहीं हुई। वह बहुत बेचैन हुई और उन्होंने शिवजी से कहा, "आप

ने मुझे पुत्रवती नहीं बनाया।" शिव बोले, "तुम पुत्रवती इसलिए नहीं बनीं कि तुमने सबसे पहले गणेशजी की पूजा नहीं की थी। अब तुम गणेशजी की पूजा करो, तो तुम्हें पुत्र की प्राप्ति होगी।" तब पार्वती ने गणेश की पूजा की। उसके प्रभाव से हजारों वर्षों के बाद एक पुत्र का जन्म हुआ, जिसके छः मुख थे। पार्वती-जी के सामने उसको दूध पिलानें की समस्या खड़ी हो गई। उन्होंने छः कृतिकाओं को आज्ञा दी कि वे उस बालक को दूध पिलाया करें। बड़ा होने पर उसका नाम स्वामी कार्तिक पड़ा। उसने देवताओं की प्रार्थना पर तारकासुर से उनकी रक्षा की। बाद में इंद्र को भय हुआ कि कहीं शक्तिशाली स्वामी कार्तिक उसके अधिकार को न छीन ले। इसलिए इंद्र ने स्वामी कार्तिक से युद्ध किया। युद्ध में इंद्र ने उन पर वज्र से प्रहार किया। इस प्रहार से स्वामी कार्तिक के शरीर से दो परम तेजवान पुत्र उत्पन्न हुए। एक का नाम शाख और दूसरे का विशाख था। उनके साथ मिलकर स्वामी कार्तिक ने इंद्र को हरा दिया। तब इंद्र ने इच्छा प्रकट की कि स्वामी कार्तिक उसकी सेना के सेनापति बना दिये जायें। शिव ने भी स्वामी कार्तिक को यही सलाह दी और कहा, "तुम्हारा जन्म इंद्र की रक्षा और तारकासुर के मारने के लिए हुआ है।"

इसके बाद इंद्र ने कार्तिकेय को सेनापति बनाने की घोषणा करने के लिए ज्योंही मंगल-कलश को हाथ में उठाया, त्योंही उसका हाथ जहां-का-तहां स्थिर होकर रह गया। इस पर शिव ने कहा, "गणेश का पूजन करने से ही विघ्न शांत हो सकते हैं।" तब इंद्र ने गणेश का पूजन किया और उसका हाथ खुल गया। फिर उसने स्वामी कार्तिक को देव-सेना का सेनापति बनाया। स्वामी कार्तिक ने भी तारकासुर को मार डाला। इससे देवता प्रसन्न हुए। पार्वती भी ऐसा पुत्र पाकर प्रसन्न हुईं।

यह कथा सुनाकर मेरी सखी ने कहा था कि अच्छा वर पाने के लिए मुझे भी गणेश की पूजा करनी चाहिए। मैंने गणेश की पूजा की। उसके बाद मैंने अपनी सहेलियों को आकाश में उड़ते हुए देखा। मैंने उनसे इस तरह उड़ने का उपाय पूछा। उन्होंने बताया कि नर-मांस खाने के बाद डाकिनी-मंत्र जपने से यह सिद्धि प्राप्त होती है। डाकिनी मंत्र को सिद्ध करने का ढंग कालरात्रि नाम की एक ब्राह्मणी बताती थी। मेरे कहने पर मेरी सखियां उस ब्राह्मणी को मेरे पास बुला लाईं। मेरे विनय करने पर उस ब्राह्मणी ने मुझे नहला-धुलाकर पहले

गणेश का पूजन करवाया। फिर मुझे मंत्र सिखाने के बाद मुझसे बलिदान करवाया और मुझे मनुष्य का मांस भी खिलाया। इतना कुछ करते ही मैं भी तत्काल अपनी सहेलियों के साथ आकाश में उड़ने लगी। थोड़ी देर उड़कर मैं अपने घर वापिस चली आई। तब से मैं इसी प्रकार पूजा करने का प्रयत्न करती रही हूं।'

इसी संबंध में रानी ने कालरात्रि की दूसरी कथा सुनाई,"कालरात्रि ब्राह्मणी के पति का नाम विष्णु स्वामी था। वह वेदों का बहुत बड़ा पंडित था। उसके पास दूसरे देशों के विद्यार्थी वेद का अाध्ययन करने आते थे। उन विद्यार्थियों में सुंदरक नाम का एक बहुत सुंदर नवयुवक था। एक बार जब कालरात्रि घर पर अकेली थी, तो उसने सुंदरक से प्रणय की याचना की। सुंदरक ने उसकी बात नहीं मानी। इससे उसको बहुत क्रोध आया और उसने अपने कपड़े फाड़ डाले, बाल बखेर लिये,नाखून और दांतों से अपने शरीर को क्षत-विक्षत कर डाला। जब उसका पति घर आया, तो उसने सुंदरक की शिकायत की और कहा कि सुंदरक ने ही मेरी यह दुर्दशा की है।

"विष्णु स्वामी ने अपनी पत्नी की बात का विश्वास कर लिया। वह बड़ा क्रुद्ध हुआ और उसने रात में दूसरे विद्यार्थियों के साथ मिलकर सुंदरक को खूब पीटा। फिर अधमरा समझकर उसे बाहर फिकवा दिया। जब सुंदरक को होश आया, तब यह सोचकर उसको बहुत दुख हुआ कि नारियां पुरुषों के मन को किस तरह दूषित कर देती हैं। नारी के कहने में आकर इस विद्वान ब्राह्मण ने भी मेरे साथ कितना अत्याचार किया? यह सोचते हुए सुंदरक भय के कारण गोवाट नामक महल में छिपने के लिए जाने लगा। उसी समय कालरात्रि अनेक डाकिनियों को साथ लेकर मुंह से ज्वाला निकालती हुई हाथ में छुरा लिए वहां आई। सुंदरक इनको देखकर निशाचरों का नाश करनेवाले मंत्र का पाठ करने लगा। इस मंत्र के प्रभाव से कालरात्रि सुंदरक को नहीं देखी पाई। उसके बाद उसने उड़ने का मंत्र पढ़ा, जिससे वह महल-का-महल ही आकाश में उड़ गया और उज्जयनी में जाकर वह महल उस मंडी में ठहर गया जहां साग-सब्ज़ी और फल बिकते थे। वहां सुंदरक को भूख लगी। वह चुपके से महल से निकला और मंडी में आकर उसने कुछ गाजर-मूली खाई,फिर वहीं जा बैठा। उसने यह मंत्र भी याद कर लिया था। इसी बीच में कालरात्रि डाकिनियों को साथ लेकर मरघट में घूमने चली गई थी। वह भी लौट आई

और महल को मंत्र-बल से उड़ाकर पहली जगह ले आई। इसके बाद महल से निकल-कर वह अपने घर चली गई। सुंदरक भी अपने मित्रों से मिलने चला गया। उसने उन्हें सारा हाल कह सुनाया। मित्रों की सलाह से वह अब यज्ञ-मंडप में रहने लगा। एक दिन सुंदरक को बाजार में देखकर कालरात्रि ने फिर प्रणय की याचना की। सुंदरक ने फिर मना करते हुए उससे कहा, 'आप गुरु की पत्नी हैं, इसलिए मेरी मां के समान हैं। मैं ऐसा अधर्म का काम नहीं कर सकता।' कालरात्रि को फिर क्रोध आ गया। पहले-जैसा रूप बनाकर उसने पति से सुंदरक की फिर शिकायत की। इस बार भी उसके पति ने सुंदरक को डांटा-फटकारा और खाना देना बंद कर दिया। ऐसी स्थिति में उसने कहीं दूर देश जाने का विचार किया। पिछली बार वह महल उड़ाने का मंत्र सुनकर सीख गया था, लेकिन नीचे उतारने का मंत्र नहीं सुन पाया था। इसलिए वह फिर गोवाट महल में जाकर बैठ गया। कालरात्रि पहले की तरह फिर आई और उस महल को उड़ाकर उज्जयिनी की मंडी में ले गई। महल से निकलकर वह मरघट में विहार करने के लिए चली गई। सुंदरक ने मंडी में जाकर कुछ मूलियां खरीदकर खाईं और कुछ साथ लेकर फिर उस महल में आ बैठा। कालरात्रि ने मरघट से लौटकर महल को उड़ाया और पहली जगह पर लाकर उतार दिया। सुंदरक महल से निकलकर उन मूलियों को बाजार में बेचने के लिए ले चला। मालवराज के कर्मचारियों ने मूलियां छीननी चाहीं। उसने नहीं दीं तो उसे पकड़ लिया और राजा के सामने ले गये। उसके मित्र भी साथ में वहां पहुंच गये थे। राजा ने जब उससे प्रश्न किया, तो वह चुप रहा; लेकिन उसके मित्रों ने कहा, 'सुंदरक को उसके साथियों के साथ अगर गोवाट महल में जाने की आज्ञा दी जाय तो वह सब हाल बता सकेगा।' राजा ने यह बात मान ली।

"तब सुंदरक अपने मित्रों के साथ उस महल में बैठकर आकाश में उड़ गया। उड़ते-उड़ते वह प्रयाग पहुंचा और ऊपर से गंगा में कूद पड़ा। वहां से नहा-धोकर वह वहां के राजा के पास गया। राजा ने पूछा, 'तुम कौन हो और आकाश से किस तरह नीचे आये?' सुंदरक ने कहा, 'मैं मुरज नामक शिवजी का एक गण हूं और उनकी आज्ञा लेकर संसार का आनंद लेने के लिए आया हूं।' राजा ने उसका विश्वास करके उसको एक नगर, बड़ा-सा महल, धन और स्त्री आदि देकर संसार का सुख लूटने की पूरी सुविधा प्रदान कर दी। सुंदरक सब-कुछ लेकर आकाश

में चला गया और आकाश में ही अपने मित्रों के साथ सुखपूर्वक जीवन बिताने लगा। एक बार उसे आकाश में उड़ता हुआ एक सिद्ध दिखाई दिया। उसकी उसने बहुत पूजा-प्रार्थना की। सिद्ध ने प्रसन्न होकर उसे आकाश से नीचे उतरने का मंत्र भी सिखा दिया। तब सुंदरक अपने नगर, महल और मित्रों को आकाश से नीचे उतारकर कान्यकुब्ज देश में ले आया। यह आश्चर्यजनक घटना देखकर वहां का राजा सुंदरक से मिलने आया और उसे देखकर ही पहचान गया। सुंदरक ने राजा को कालरात्रि का सब रहस्य बता दिया। राजा ने उसे बुला भेजा। उसने आकर अपना दोष स्वीकार कर लिया। राजा ने उसके नाक-कान काटने की आज्ञा दी। लेकिन वह तुरंत ही अंतर्धान हो गई। सुंदरक राज-सम्मान पाकर आकाश में उड़ गया और वहीं रहने लगा।"

रानी कुवलयावती ने अपने बचपन की ये कथाएं सुनाकर राजा आदित्य-प्रभु से कहा, 'आज आपने मुझे देख ही लिया है। मैं आपकी उन्नति के लिए ही मंत्र सिद्ध कर रही थी और किसी पुरुष का बलिदान देनेवाली ही थी कि आप आ गये। इसलिए अब आप इस पूजा में मेरे साथी बन जाइए और मंत्र-बल के प्रभाव से दिग्विजय करके चक्रवर्ती बनने का प्रयत्न कीजिये।' पहले तो राजा इस रास्ते पर चलने को तैयार नहीं हुआ, लेकिन जब इस बात को लेकर रानी प्राण देने को तैयार हो गई, तो वह मान गया। रानी ने एक रसोइये को भी अपना शिष्य बना लिया, उसका नाम साहसिक था। फिर रानी ने राजा से आग्रह किया कि फलभूति नामक ब्राह्मण का बलिदान दिया जाय। राजा बड़ी कठिनता से इस बात को स्वीकार कर सका। फिर राजा और रानी दोनों ने ही रसोइये को आज्ञा दी कि सवेरे जो भी व्यक्ति खाना बनाने का आदेश देने के लिए सबसे पहले आये, उसीको मारकर तुम उसका मांस पकाना। लेकिन यह सब काम छिपाकर करना।

"सवेरा होने पर राजा ने फलभूति ब्राह्मण को अपने पास बुलाया और उससे कहा, 'रसोइये को जाकर शीघ्र ही खाना बनाने की आज्ञा दो।' फलभूति आज्ञा देने जा ही रहा था कि रास्ते में राजा का बेटा चंद्रप्रेम मिल गया। उसने फलभूति को रोककर कहा, 'राजा जिस तरह के कुंडल अपने कानों में पहनता है, वैसे ही कुंडल मेरे लिए अभी बनवाकर ला दो।' यह कहकर राजकुमार ने फलभूति को सोना देकर तुरंत ही कुंडल बनवाने के लिए भेज दिया। जाते समय रसोइये

को खाना बनाने का आदेश देने का भार फलभूति राजकुमार पर छोड़ गया। राजकुमार रसोइये के पास भोजन बनाने की आज्ञा देने के लिए पहुंचा, तो रसोइये ने उसको ही मारकर उसके मांस से उत्तम भोजन तैयार किया। पूजा के बाद राजा और रानी ने उस पके हुए मांस को खाया। रात भर राजा फलभूति के मरने से चिंतित रहा, लेकिन सवेरा होते ही जब फलभूति सोने के कुंडल लेकर आया, तो उसको आश्चर्य हुआ। उसने पूछा कि ये कुंडल किसलिए लाये हो? तब फलभूति ने सब बात बता दी। पुत्र की मृत्यु की बात सुनकर राजा बेहोश हो गया और होश में आने पर 'हा पुत्र! हा पुत्र!' पुकारता हुआ रानी और अपने कृत्य की निंदा करने लगा। मंत्रियों के पूछने पर राजा ने सारा हाल बता दिया और कहने लगा, 'फलभूति का कथन सही है कि अच्छा काम करनेवाले को अच्छा फल मिलता है और बुरा काम करनेवाले को बुरा फल मिलता है।'

अब राजा संतानहीन हो गया था। पश्चात्ताप के रूप में उसने फलभूति को ही सारा राज्य सौंप दिया और स्वयं आग में जल कर मर गया। फलभूति राज्य पाकर आनंद से जीवन बिताने लगा।"

यौगंधरायण उदयन को यह कहानी सुनाने के बाद बोला, "काशी के राजा ब्रह्मदत्त पर विजय प्राप्त करके भी आपने उसका उपकार किया है। यदि इस उपकार के बदले में वह कोई कुटिलता करेगा, तो उसको वैसा ही फल मिलेगा।"

यौगंधरायण की ये बातें सुनकर उदयन बहुत प्रसन्न हुआ। उसके बाद वह लावणक से कौशांबी लौट आया और बड़े समारोह के साथ अपने पूर्वजों के सिंहासन पर बैठा। समारोह में आये हुए राजाओं का उसने खूब स्वागत किया और भेंट में बहुत-सा धन दिया। मंत्रियों को भी उसने धन दिया और ब्राह्मणों को भी मुक्त-हस्त से दान दिया। इस तरह उसकी सारी प्रजा आनंद-मग्न हो उठी और वह सारी पृथ्वी का सम्राट बन गया। उसने राज्य के कार्य की चिंता यौगंधरायण व रुक्मवान पर छोड़ दी और स्वयं अपनी दोनों रानियों के साथ सुखपूर्वक आनंद का भोग करने लगा।

# चौथा खंड

## : १ :

## देवदत्त की कहानी

अब राजा उदयन का अधिकतर समय सुख-भोग में बीतने लगा। राज्य की देख-भाल की चिंता यौगंधरायण और रुक्मवान करते थे। वह तो वसंतक के साथ पद्मा-वती और वासवदत्ता को सामने बिठाकर वीणा बजाया करता था तथा आमोद-प्रमोद और मधु-पान में मस्त रहता था। वह शिकार खेलने भी जाया करता था। इस तरह शिकार और संगीत, आमोद और प्रमोद ही उदयन की दिनचर्या बन गये थे। तभी अचानक एक दिन नारद मुनि आये और राजा उदयन से स्नेहपूर्वक कहने लगे, "तुम्हारे पूर्वजों में पांडु नाम के एक राजा थे। तुम्हारी तरह ही उनके भी दो पत्नियां थीं। एक का नाम कुंती और दूसरी का माद्री था। पांडु ने सारी पृथ्वी पर विजय प्राप्त की थी। उनको भी शिकार खेलने का बहुत शौक था। एक दिन वह शिकार खेलने के लिए जंगल में गये और पत्नी के साथ क्रीड़ा करते हुए एक हिरन को उन्होंने तीर से मार दिया। वह हिरन वास्तव में हिरन नहीं था। वह कमंद नाम का एक मुनि था। इसलिए तीर लगते ही अपने वास्तविक रूप में आकर मुनि ने पांडु राजा को शाप दिया—'जिस तरह तुमने पत्नी के साथ क्रीड़ा करते समय मुझे मारा है, उसी तरह तुम भी अपनी पत्नी के साथ क्रीड़ा करने के समय मरोगे।' इस शाप के डर से पांडु ने अपनी पत्नियों के साथ क्रीड़ा करना छोड़ दिया और तपोवन में रहने लगे। लेकिन एक दिन उनसे नहीं रहा गया और वह माद्री के पास गये। उसके तुरंत बाद ही पांडु की मृत्यु हो गई। इसलिए, हे उदयन! तुम्हें शिकार की इस आदत को छोड़ देना चाहिए; क्योंकि इसका फल अशुभ हो सकता है। तुम्हारे जो लड़का पैदा होगा वह कामदेव के समान सुन्दर

होगा। इसकी भी एक कथा है जो मैं तुम्हें सुनाता हूं : "एक बार कामदेव की पत्नी रति ने शिव की प्रार्थना करते हुए निवेदन किया कि उसके पति कामदेव को फिर सशरीर जन्म लेने की आज्ञा की जाय। शिव ने प्रसन्न होकर रति से कहा, 'पार्वती जब पृथ्वी पर जन्म लेगी और पुत्र की इच्छा से मेरी तपस्या करेगी तब कामदेव ही उसका पुत्र बन कर पैदा होगा। वह विद्याधरों का राजा भी बनेगा।' नारद बोले, "हे उदयन ! तुम्हारी पत्नी वासवदत्ता पार्वती का ही अवतार है। यदि अब वह भगवान शंकर की उपासना करे तो उसके कामदेव जैसा ही पुत्र उत्पन्न होगा।"

यह कहकर नारदजी चले गए। उस दिन उदयन और वासवदत्ता पुत्र की चिन्ता में डूबे रहे। दूसरे दिन द्वारपाल ने आकर राजा से कहा, "द्वार पर आपसे मिलने के लिए एक ब्राह्मणी खड़ी है। उसके साथ दो बच्चे भी हैं। राजा ने उसे अन्दर बुला लाने के लिए कहा। वह ब्राह्मणी अपने दोनों बेटों के साथ राजा के सामने आई। वह बड़ी दुर्बल और पीली पड़ी हुई थी। उसके कपड़े फटे हुए थे। उसने राजा को नमस्कार करके कहा,"ये दोनों मेरे जुड़वां पुत्र हैं। भूखे रहने के कारण मेरे स्तनों में इतना दूध भी नहीं होता है कि इन्हें पिला सकूं। इसलिए हे राजा ! आप कृपा करके मेरे बालकों की और मेरी रक्षा करें। मैं आपका आश्रय चाहती हूं।" उदयन ने दोनों बच्चे के साथ ब्राह्मणी को वासवदत्ता के पास रहने के लिए भेज दिया। वासवदत्ता ने उसको बड़े स्नेह से अपने पास रखा। सोचने लगी भगवान की कैसी लीला है ! इस दुखिया ब्राह्मणी के तो दो पुत्र हैं और मेरे एक भी नहीं। ऐसा सोचती हुई वासवदत्ता नहाने चली गई। दासी से कहकर ब्राह्मणी को भी नहाने-खाने का प्रबन्ध करा दिया। जब नहा-धोकर ये एक साथ बैठीं तो ब्राह्मणी की परीक्षा लेने के लिए उससे कहानी कहने को कहा। तब ब्राह्मणी ने यह कथा सुनाई :

"प्राचीन काल में जयदत्त नाम का एक साधारण राजा था। उसके देवदत्त नाम का एक पुत्र था। देवदत्त के बड़े होने पर राजा ने उसका विवाह किसी धनवान बनिये की लड़की से करना चाहा। उसने सोचा कि राजा की लक्ष्मी वेश्या के समान बहुत चंचल होती है। उसका उपभोग शक्तिशाली आदमी ही कर सकता है। बनियों की लक्ष्मी कुलवधू की तरह स्थिर होती है। इसलिए राजा ने पाटलिपुत्र में रहने वाले वसुदत्त नामक बनिये से कहा कि वह अपनी कन्या का विवाह

राजकुमार से कर दे। वसुदत्त ने राजा की बात मान ली और अपनी लड़की का विवाह राजकुमार देवदत्त के साथ कर दिया। उसने दहेज में बहुत-सा धन दिया। एक बार वसुदत्त अपनी कन्या को बिदा कराके घर ले गया। तब देवदत्त के चाचाओं ने उसके पिता को मार कर राज्य पर अधिकार कर लिया और देवदत्त को बाहर निकाल दिया। देवदत्त अपनी माता को साथ लेकर किसी दूसरे देश को चला गया। उसकी मां ने सलाह दी कि पूरब देश में रहने वाला चक्रवर्ती राजा हमारा स्वामी है। उससे मिल कर अपना राज्य वापस लेने का प्रयत्न करें। यह सुन कर देवदत्त ने कहा, "बिना अच्छे कपड़ों और साज-सामान के उस राजा के सामने जाने में मुझे संकोच होता है।" मां बोली, "तुम ससुराल जाकर इसका प्रबन्ध करो।" यह सुन वह ससुराल की ओर चल दिया। जब वह अपने ससुर के घर पहुंचा तब सांझ हो गई थी। इसलिए वह संकोच के कारण बाहर ही यज्ञशाला में ठहर गया। रात में उसने देखा कि एक स्त्री उसके ससुर के घर से रस्सी के सहारे नीचे उतर रही है। जब वह समीप से गुजरी तो देवदत्त ने पहचान लिया कि वह तो उसकी पत्नी ही है। वह यज्ञशाला के अन्दर गई। अंधेरे में छिप कर देवदत्त भी उसके पीछे-पीछे गया। वहां देवदत्त ने देखा कि उसकी पत्नी किसी दूसरे पुरुष के साथ है। पहले तो उसे बहुत क्रोध आया, लेकिन बुरे दिनों का ध्यान करके वह चुप रह गया। जब उसकी पत्नी लौटने लगी तब उसके एक कान का कर्णफूल वहीं गिर पड़ा। देवदत्त उस कर्णफूल को लेकर कान्यकुब्ज नामक प्रदेश में पहुंचा और वहां एक लाख अशर्फियों में उसे गिरवी रखकर अपना ठाट-बाट बनाया। फिर उस चक्रवर्ती राजा के पास पहुंचा। उसकी सहायता से देवदत्त को फिर अपना राज्य वापस मिल गया। तब देवदत्त ने उस कर्णफूल को रुपया वापस देकर छुड़ा लिया और ससुर के घर भेज दिया। जब ससुर ने वह कर्णफूल अपनी कन्या को दिया तब उसे ध्यान आया कि यह तो यज्ञशाला में गिर गया था। वहां एक पथिक ठहरा था। अवश्य ही वह मेरा पति था। यह जानकर कि उसके पति ने उसके गुप्त प्रेम की बात जान ली, वह दुःख के आघात से मर गई। तब उस चक्रवर्ती राजा ने, जिसने देवदत्त की सहायता की थी, अपनी कन्या का विवाह देवदत्त के साथ कर दिया। देवदत्त आनंद से रहने लगा।"

यह कहानी सुनाकर उस ब्राह्मणी ने कहा, "इस कहानी से मैंने शिक्षा ग्रहण की थी। इस कारण ही मैं संकटों के दिनों में भी अपने चरित्र की रक्षा कर सकी और

मुझे आपके दर्शनों का सौभाग्य मिला।"

तब वासवदत्ता उससे बहुत प्रसन्न हुई और बोली, "तुम अपने जीवन की कहानी सुनाओ। तब ब्राह्मणी ने अपनी जीवन-गाथा इस तरह शुरू की :

"मालव देश में अग्निदत्त नाम का एक ब्राह्मण रहता था। उसके दो बेटे थे। एक का नाम शंकरदत्त और दूसरे का नाम शान्तिकर था। शंकरदत्त का विवाह यज्ञदत्त की पुत्री से हुआ। मैं ही यज्ञदत्त की पुत्री हूं। मेरे पति का भाई शांतिकर कहीं दूर देश चला गया था। उधर मैं जब गर्भवती थी तब मेरे पति की मृत्यु हो गई। उसके बाद डाकुओं ने मेरे गांव को लूटकर बर्बाद कर दिया। फिर एक महीने तक मैंने वे दिन इधर-उधर बड़े कष्ट से काटे। वहां राजा उदयन का नाम सुनकर उनकी शरण पाने के लिए यहां चली आई। मेरे ये दोनों बेटे भी यहीं पैदा हुए थे। मैं राजा के पास गई और राजा ने कृपा करके मुझे शरण दी। अब मैं आपकी शरण में हूं। मैंने बचपन से ही अग्निहोत्र किया है, इस कारण मेरी आंखें पीली पड़ गई हैं। इसीसे मेरा नाम भी पिंगलिका है। शांतिकर का पता नहीं कि वह कहां चला गया है।"

वासवदत्ता ने कहा, "शांतिकर नाम का हमारा एक पुरोहित है। शायद वह तुम्हारा देवर ही हो।" और उसने शांतिकर को बुलवाया। बातचीत के बाद पता चला कि वह उसी ब्राह्मणी का देवर है। फिर तो वासवदत्ता ने उस ब्राह्मणी को शांतिकर के साथ रहने के लिए भेज दिया। उसने उसके दोनों लड़कों का नाम भी रख दिया। एक का नाम शांतिसोम और दूसरे का वैश्वानर।

## : २ :

# जीमूतवाहन और गरुड़ की कथा

कुछ दिनों के बाद एक कुम्हारी मिट्टी के पात्र देने के लिए वासवदत्ता के पास आई। उसके साथ उसके पांच बच्चे भी थे। रानी उन बच्चों को देखकर पिंगलिका से बोली, "देखो इस कुम्हारी के तो पांच बेटे हैं और मुझे भगवान ने एक भी नहीं दिया है।" पिंगलिका ने रानी को धीरज बंधाते हुए कहा, "ज्यादा संतानें दरिद्रता की निशानी होती हैं। आपके तो एक ही पुत्र होगा लेकिन वह बड़ा प्रतापी और

गुणी होगा ।" इधर राजा उदयन ने भी वासवदत्ता को चिंतित देखकर कहा, "नारदजी के कहने के अनुसार तुम्हें भगवान शंकर की उपासना करनी चाहिए।" रानी ने पूजा-व्रत करना शुरू कर दिया। इस व्रत में राजा और प्रजा ने भी सहयोग दिया। तीन दिन बाद शिव स्वप्न में आये और बोले, "तुम्हारी इच्छा शीघ्र ही पूरी होगी, इसलिए अब आगे तप न करो।" इसके कुछ दिन बाद वासवदत्ता को स्वप्न में एक संन्यासी दिखाई दिये। उन्होंने रानी को एक फल भेंट किया। अब तो राजा को विश्वास हो गया कि वासवदत्ता शीघ्र ही पुत्रवती होगी।

कुछ समय बाद वासवदत्ता गर्भवती हुई। सुंदर नयनों वाली वासवदत्ता का पीला मुख चन्द्रमा के समान मनोहर दिखाई पड़ता था। उदयन का प्रेम वासवदत्ता के प्रति और अधिक बढ़ गया। एक दिन रानी ने स्वप्न में देखा कि विद्याधरों की स्त्रियां उसे आकाश में ले जाकर उसकी सेवा करती हैं। तब वासवदत्ता ने इच्छा प्रकट की कि जिस तरह वह सपने में आकाश विहार करती है उसी तरह वह जागते हुए भी करना चाहती है। यौगंधरायण ने रानी की इस इच्छा को मंत्र-तंत्र और जादू के प्रभाव से पूरा किया। अब वासवदत्ता आकाश में जाकर अपना मनोरंजन करने लगी। नगर की स्त्रियां यह देखकर चकित हो उठती थीं। एक बार वासवदत्ता ने विद्याधरों की कहानी सुननी चाही। तब यौगंधरायण ने कहा:

"जीमूतकेतु नाम का विद्याधरों का एक राजा था। वह हिमालय पर्वत पर निवास करता था। वहां एक कल्पतरु भी था। इसी वृक्ष से एक दिन जीमूतकेतु ने एक पुत्र की याचना की। कल्पतरु ने कहा कि तुम्हारे एक बड़ा पुण्यात्मा और पूर्वजन्म का ज्ञान रखने वाला पुत्र होगा। समय पाकर उसके एक पुत्र हुआ। उसका नाम जीमूतवाहन रखा गया। वह अपने पूर्वजन्म की कथा भी जानता था। जब वह बड़ा हुआ तब उसे युवराज बनाया गया। युवराज बनने पर उसन अपने पिता से कहा कि कल्पतरु को सबका ही उपकार करना चाहिए। ऐसा करने से बहुत यश मिलेगा। यश के बराबर संसार में और कुछ नहीं है। उसका पिता यह बात मान गया। उसके बाद उसने कल्पतरु से कहा कि अब आप संसार के तमाम निर्धन और दुखी लोगों का उपकार करने में लग जाइए, जिससे कोई भी दुखी न रहे।

यह सुनकर कल्पतरु ने सोने की वर्षा की। उससे सभी के कष्ट दूर हो गए। इस तरह जीमूतवाहन विख्यात हो गया। कुछ दिनों बाद जीमूतवाहन को कमजोर

समझकर उसके सगे-संबंधी उससे लड़ने लगे। जीमूतवाहन ने उनसे लड़ना ठीक न समझा और अपना राज्य उन्हें देकर जंगलमें जाने का विचार किया। उसके माता-पिता भी उससे सहमत हो गए और उसके साथ मलयाचल पर्वत पर चले गए। वहां वे एक आश्रम बनाकर रहने लगे। जीमूतवाहन अपने माता-पिता की सेवा करता था। वहां उसकी मित्रता मित्रावसु से होगई। मित्रावसु सिद्धोंके राजा विश्वावसु का बेटा था। जीमूतवाहन ने एक दिन मित्रावसु की बहन को देखा। देखते ही पहचान गया कि वह उसकी पूर्वजन्म की पत्नी है। मित्रावसु ने एक दिन जीमूतवाहन से कहा, 'तुम मेरी बहन मलयवती से विवाह कर लो।' तब जीमूतवाहन ने बताया कि पूर्वजन्म में भी मलयवती उसकी पत्नी थी और मित्रावसु उसका मित्र था। यह सुनकर मित्रावसु ने उससे पूर्वजन्म की कथा कहने को कहा। जीमूतवाहन ने अपने पूर्वजन्म की कथा इस प्रकार सुनाई: "पिछले जन्म में मैं एक विद्याधर था। एक बार मैं आकाश में उड़ता हुआ जा रहा था कि मेरी दृष्टि हिमालय पर क्रीड़ा करते हुए शिव और पार्वती पर पड़ी। मुझे अपनी ओर देखते हुए देखकर शिवजी ने मुझे शाप दिया, 'तू मनुष्य हो जा। जब तेरा विवाह विद्याधरों की लड़की से होगा और उससे एक पुत्र उत्पन्न हो जायगा तथा उस पुत्र को तू अपना राज्य दे देगा तब फिर मनुष्य से विद्याधर बन जायगा। तुझको अपने पूर्वजन्म की बात भी याद रहेगी।' इसके बाद मैं महाधन नामक एक बनिये के घर वल्लभी-नगर में पैदा हुआ। मेरा नाम वसुदत्त रखा गया। बड़ा होने पर व्यवसाय करने के लिए मैं विदेश गया। वहां से जब मैं वापस आ रहा था तब रास्ते में मुझे चोरों ने लूटकर रस्सी से बांध दिया और देवी के मंदिर में लेजाकर मेरा बलिदान करने की तैयारी करने लगे। उस मंदिर के पुजारी को मेरे ऊपर दया आई। वह मेरी जगह अपना बलिदान देने को तैयार होगया। उस समय आकाशवाणी हुई, 'हे पुलिंदक! तुम वरदान मांगो।' उसने मेरे साथ हर जन्म में मित्रता बनी रहने का वरदान मांगा। उसके बाद उसने धन देकर मुझे विदा किया। एक बार राजा ने उसी पुलिंदक को चोरी के अपराध में फांसी की सजा दी। उस समय मैंने राजा को एक लाख रुपया देकर उसकी जान बचाई। इस उपकार के बदले में वह धनुष-बाण लेकर मेरे लिए गज-मुक्ता की खोज में हिमालय की ओर चला गया। वहां पहुंचकर वह एक सरोवर के किनारे एक मंदिर में छिपकर बैठ गया और हाथियों के आने की प्रतीक्षा करने लगा। उसका विचार था कि जब हाथी तालाब में पानी

पीने के लिए आयंगे तो वह उन पर छिपकर बाण चालायेगा। लकिन थोड़ी देर में सिंह पर बैठकर एक सुंदरी कन्या वहां आई और उतरकर तालाब में कमल तोड़ने लगी। पुलिंदक उसके पास गया और नमस्कार करके खड़ा होगया। उस कन्या ने पूछा, 'तुम कौन हो ?' तब पुलिंदक अपना परिचय देते हुए बोला, 'मैं यहां गज-मुक्ता की खोज में आया हूं। मैं शबरों का राजा हूं। मेरा एक मित्र बहुत रूपवान है। अगर तुम चाहो तो उसे अपना पति बना सकती हो।' लड़की ने कहा, 'पहले अपने मित्र को मुझे दिखाओ।' तब पुलिंदक मुझे बुलाकर ले गया। उसने मुझे देखकर कहा, 'यह तो कोई देव-पुरुष है, मनुष्य नहीं है।' तब मैंने उसे अपनी कहानी सुनाई। मेरी कहानी सुनने के बाद उस लड़की को कुछ-कुछ विश्वास हुआ और बोली, 'स्वप्न में भगवान शिव ने मुझे आज सवेरे ही योग्य वर मिलने का वरदान दिया है।' उसके बाद हम दोनों का विवाह निश्चित हो गया और मैं उसके साथ सिंह पर बैठकर अपने घर आया। वहां धूमधाम से हमारा विवाह होगया। पुलिंदक को वह अपना भाई मानने लगी। विवाह होते ही वह सिंह एक देव पुरुष के रूप में बदल गया और बोला,'मेरा नाम चित्रांगद है। मैं विद्याधर हूं और यह मेरी मनोवती नाम की लड़की है। एक बार मैं गंगाजी के बीच से जा रहा था तो मेरी माला गिर पड़ी और वह नारदजी की पीठ पर जा लगी। वे क्रोध में भर उठे और शाप दिया, 'तू सिंह होगा और अपनी लड़की को पीठ पर इधर-उधर घुमाये फिरेगा। जब उसका विवाह हो जायगा तब तू फिर विद्याधर बन जायगा।' यह कहकर चित्रांग आकाश में उड़ गया। मैं मनोवती के साथ आनंद से रहने लगा। पुलिंदक को राजा ने बन का राजा बना दिया। समय पर मेरे एक पुत्र हुआ। उसका नाम हिरण्यगर्भ रखा गया। मेरे पुत्र हो जाने के बाद मेरे माता-पिता जीवन के अंतिम दिन बिताने के लिए गंगा के किनारे चले गए। इसी तरह जब मेरा पुत्र भी समर्थ हो गया तब घर-बार उसको सौंपकर मैं अपनी पत्नी के साथ कालिंजर नामक पहाड़ पर चला गया। पुलिंदक भी मेरे साथ था। उस समय मुझे शिव से प्राप्त शाप का स्मरण हो आया। मैंने पुलिंदक और अपनी पत्नी से सब-कुछ बता दिया और इस शरीर को त्याग देने की बात सोची। शरीर त्यागने से पहले मैंने शिव से प्रार्थना की कि मुझे अगले जन्म में ये ही दोनों, मित्र और पत्नी के रूप में प्राप्त हों तथा इस जन्म की कहानी याद रहे। अंत में पुलिंदक और मेरी पत्नी ने भी मेरे साथ अपने जीवन का अंत कर

लिया।" यह कथा सुनाकर जीमूतवाहन ने कहा, "मैं वही वसुदत्त हूं और तुम ालदक हो जो मित्रावसु के रूप में उत्पन्न हुए हो। तुम्हारी बहिन मेरी पूर्व जन्म की पत्नी मनोवती है। इसके साथ मेरा विवाह होना उचित ही है।"

मलयवती का विवाह जीमूतवाहनके साथ होगया। एक बार जीमूतवाहन और मित्रावसु समुद्र के किनारे सैर कर रहे थे। उन्होंने देखा कि एक व्यक्ति एक चट्टान पर किसी दूसरे व्यक्ति को छोड़कर उसकी माता को साथ ला रहा है। वह विलाप करती हुई कह रही है,' हा पुत्र! हा पुत्र!' जीमूतवाहन ने उस व्यक्ति से पूछा, 'तुम्हारी मां को क्या दुख है?' उस व्यक्ति ने बताया,' कश्यप मुनि की दो पत्नियां थीं। एक का नाम कद्रू और दूसरी का विनता था। एक बार उन दोनों में इस बात पर झगड़ा हो गया कि सूर्य के घोड़ों का रंग काला है या सफ़ेद। विनता ने सूर्य के घोड़ों का रंग सफ़ेद और कद्रू ने कला बताया। दोनों में यह निर्णय हुआ कि जो भी हारेगी उसको दासी बनना पड़ेगा। कद्रू के बेटे सांप थे। उन्होंने माता की आज्ञा पाकर अपने विष के प्रभाव से सूर्य के घोड़ों का रंग काला कर दिया। विनता को कद्रू की दासी बनना पड़ा। विनता के पुत्र गरुड़ ने सांपों से विनय की कि वे उसकी माता को दासता से मुक्त कर दें। सांपों ने गरुड़ से कहा, 'अगर हमें अमृत लाकर दो तब हम तुम्हारी मां को छोड़ सकते हैं।' गरुड़ ने ईश्वर से प्रार्थना की कि वह उसकी सहायता करें। भगवान ने उसे वर दिया कि सांप तेरा भोजन बनेंगे और तुझे अमृत का घड़ा भी प्राप्त होगा। उस समय इंद्र ने गरुड़ से कहा, 'अमृत का घड़ा ले तो जाओ लेकिन इसको इस तरह रखना कि सांप पी न सकें। फिर मैं इसे ले आऊंगा।'

गरुड़ अमृत का घड़ा ले आया और कुश के आसन पर रख दिया। सांपों ने अमृत का घड़ा देख कर विनता को स्वतन्त्र कर दिया। इतने में इंद्र आये और मंत्र-बल से सांपों को मुग्ध करके अमृत का घड़ा अपने साथ ले गए। उन सांपों ने सोचा कि कुश के आसन पर शायद कुछ अमृत गिर पड़ा हो इसलिए उन्होंने उस आसन को ही चाटना शुरू कर दिया। लेकिन कुशों की धार से उन सबकी जीभ कट गई। तभी से सांपों के दो जीभें बन गईं और वे द्विजिह्व कहलाने लगे। फिर गरुड़ ने सांपों को खाना प्रारम्भ कर दिया। जहां भी उन्हें सर्प मिलते थे, नहीं छोड़ते थे। जब वह पाताल की ओर जाते थे तो अनेक सांप डर के मारे ही मर जाते थे। तब सांपों के राजा वासुकि ने गरुड़ से समझौता किया कि समुद्र के किनारे

की चट्टान पर उनके भोजन के लिए बारी-बारी से एक सांप रोज पहुंच जाया करेगा। तब से समुद्र के किनारे इस चट्टान पर एक सांप प्रतिदिन भोजन बनने के लिए आता है। मैं भी एक सांप हूं और मेरा नाम शंखचूड़ है। आज मेरी बारी है। और इसीलिए मैं इस चट्टान पर आया हूं।

जीमूतवाहन ने कहा, 'आज तुम्हारे बदले मैं यहां बैठूंगा।' लेकिन शंखचूड़ ने उसकी बात नहीं मानी और कहा, 'यह हमारी वंश-मर्यादा के प्रतिकूल है।' यह कहकर शंखचूड़ भगवान् शिव को प्रणाम करने के लिए मंदिर में गये। इस बीच में ही जीमूतवाहन चट्टान पर जा बैठा। उसने मित्रावसु को पहले ही कोई बहाना बनाकर घर भेज दिया। गरुड़ आया और जीमूतवाहन को चोंच से पकड़ कर दूसरे पहाड़ पर ले गया और उसको खाना शुरू कर दिया। इधर जब शंखचूड़ चट्टान पर वापस आया तो उसने वहां खून के दाग देखे और देखा कि वे निशान दूर तक बने हुए हैं। वह उन्हीं के सहारे-सहारे उस पहाड़ पर पहुंच गया जहां बैठकर गरुड़ जीमूतवाहन को खा रहा था। शंखचूड़ ने वहां पहुंच कर गरुड़ से कहा, 'इसको छोड़ दीजिये। आपका भोजन तो मैं हूं।' और उसने जीमूतवाहन की सारी कथा गरुड़ को सुना दी। गरुड़ को यह सुनकर बहुत दुख हुआ और वे पश्चात्ताप प्रकट करने लगे। तब जीमूतवाहन ने कहा, 'अगर आप सचमुच प्रायश्चित्त करना चाहते हैं तो आज से सांपों को मारना छोड़ दीजिये।'

गरुड़ ने उसकी बात मान ली। उसके घावों को ठीक करने के लिए तथा मरे हुए सांपों को जिलाने के लिए वह स्वर्ग की ओर चले गए। लेकिन गरुड़ के वापस आने से पहले ही मलयवती की प्रार्थना पर देवी प्रकट हुई और उन्होंने जीमूतवाहन के शरीर पर अमृत की वर्षा की। उसके सारे घाव ठीक ही नहीं हो गए, बल्कि वह पहले से अधिक सुन्दर हो गया। थोड़ी ही देर में गरुड़ भी अमृत ले आये, और उसकी वर्षा करके उन्होंने मरे हुए सांपों को जीवित कर दिया।

इस प्रकार जीमूतवाहन अपने गुणों के कारण चारों ओर विख्यात हो गया। उसके भाई-बंधु भी उसके पास आये और उसको हिमालय पर ले गए। वहां वह विद्याधरों का चक्रवर्ती राजा बना।"

यौगंधरायण की यह कहानी सुनकर वासवदत्ता को बहुत शांति मिली। उसका वह दिन बड़े आनंद से कटा।

: ३ :

# नरवाहनदत्त का जन्म

एक दिन राजा उदयन अपने मंत्रियों के साथ एकांत में बैठे हुए थे। तब वासवदत्ता वहां आई और बोली, "आजकल मुझे हर समय अपने गर्भ की रक्षा की चिंता सताती रहती है। कल रात मुझे स्वप्न में एक दिव्य पुरुष दिखाई पड़े, जिनके शरीर पर भस्म लगी थी, बड़ी-बड़ी उनकी जटायें थीं और मस्तक पर जिनके चंद्रमा चमक रहा था तथा हाथ में त्रिशूल लिये हुए थे। उस दिव्य पुरुष ने मुझसे कहा, 'तुझको चिंता नहीं करनी चाहिए। मैं ही तेरे गर्भ की रक्षा करता हूं। कल राजा के पास एक स्त्री आयेगी। वह अपने पति पर लांछन लगाकर उसे दंड दिलाना चाहेगी। लेकिन तुम उसको छुड़वा देना।' इतना कहकर वह दिव्य पुरुष चले गए।

रानी की यह बात सुनकर सब लोग उस स्त्री की राह देखने लगे। कुछ देर में ही वह स्त्री आई। उसने राजा से कहा, "मेरा पति मुझे न खाना देता है और न कपड़ा। इसलिए मेरी व्यवस्था करने की कृपा की जाय और अपराधी को दंड दिया जाय।" यौगंधरायण के कहने पर राजा ने उससे गवाही और प्रमाण मांगे। अंत में वह झूठी साबित हुई। इसलिए राजा ने उस स्त्री को देश-निकाले का दंड दिया और उसके पति को दूसरा विवाह करने के लिए धन दिया।

यह सब देखकर वसंतक ने कहा, "प्रेम और घृणा पिछले जन्म के कर्मों का फल होते हैं। इस संबंध में मैं आपको यह कहानी सुनाता हूं :

एक समय काशी में विक्रमचंद नाम का राजा राज्य करता था। सिंहपराक्रम नाम का उसका एक प्रिय अनुचर था। इस अनुचर की पत्नी बड़ी कलहकारिणी थी। वह धन और अच्छे-अच्छे कपड़ों से अपनी पत्नी का सत्कार किया करता था लेकिन वह फिर भी झगड़ा करने से नहीं चूकती थी। घर की इस कलह से दुखी होकर वह एक दिन कहीं भाग गया। उस दिन उसने खाना भी नहीं खाया था। वह विंध्यवासिनी देवी के मंदिर में जाकर पड़ रहा। सपने में रात को देवी ने उससे कहा, 'नगर में जो सबसे विशाल वट का वृक्ष है उसकी जड़ में एक बड़ा खजाना गड़ा हुआ है। उस खजाने में गरुड़-मणि का एक बर्तन है। उसे खोद-

कर निकाल लाओ। जब उस बर्तन में झांककर देखोगे तब तुम्हें अपनी पत्नी और अपने पूर्वजन्म का पता लग जायेगा।" सिंहपराक्रम ने ऐसा ही किया। जब उसने मणि-पात्र में झांककर देखा तो उसे पता चला कि पूर्व जन्म में वह शेर था और उसकी पत्नी रीछनी थी। वह समझ गया कि शेर और रीछ में स्वाभाविक वैर होता है। इसीलिए उसकी और उसकी पत्नी की नहीं पटती है। तब उसने निर्वाह के लिए कुछ धन देकर अपनी पत्नी से संबंध-विच्छेद कर लिया। फिर मणि-पात्र में दुबारा झांककर देखा। उसे दिखाई दिया कि सिंहश्री नाम की एक लड़की पूर्व जन्म में शेरनी थी। उसने उसके साथ ही विवाह किया और उन दोनों में कभी झगड़ा नहीं हुआ।' यह कहानी सुनकर सभी को आनंद हुआ। कुछ दिनों के बाद मंत्रियों और दूसरे राजकर्मचारियों के पुत्र पैदा हुए। रुक्मवान के पुत्र का नाम हरिशिख, यौगंधरायण के पुत्र का नाम मरुभूति, वसंतक के पुत्र का नाम तपंतक तथा प्रधान प्रतिहार नित्योदित के पुत्र का नाम गोमुख रखा गया। तभी आकाशवाणी हुई कि उदयन के जो पुत्र होगा वह चक्रवर्ती सम्राट होगा। इन मंत्रियों के पुत्र ही उसके मंत्री बनेंगे। समय पर वासवदत्ता ने चंद्रमा के समान सुंदर कांतिवान् एक पुत्र को जन्म दिया। राजपरिवार और प्रजाजनों में प्रसन्नता की लहर दौड़ गई। मंगलगान होने लगे। तभी यह भी आकाशवाणी हुई कि यह राजपुत्र कामदेव का अवतार है और इसका नाम नरवाहनदत्त है। यह अपने पराक्रम से सब विद्याधरों का राजा बनकर चक्रवर्ती सम्राट बनेगा। फिर आकाश से फूलों की वर्षा हुई और दुंदुभी बजने का स्वर सुनाई पड़ा। विद्याधर भी आकाश में आकर अपनी प्रसन्नता प्रकट करने लगे।

इस प्रकार धरती और आकाश में खूब उत्सव मनाया गया। जब धीरे-धीरे राजपुत्र बड़ा होने लगा। उसकी बाल-लीला देखकर राजा उदयन फूले नहीं समाते थे। दूसरे मंत्रियों के बालक भी आकर नरवाहनदत्त के साथ खेलते थे। उन सबको देखकर सारा राज-परिवार ही आनंदमग्न हो जाता था।

# पांचवा खंड

## : १ :

## दो धूर्तों की कहानी

अब राजा उदयन अपने पुत्र के पालन-पोषण में ही व्यस्त रहने लगा। उसे हर समय उसकी रक्षा की चिंता रहती थी। एक दिन राजा को बहुत चिंतित देख-देखकर यौगंधरायण ने एकांत में उससे कहा, "हे राजा! आपको अपने पुत्र की रक्षा की इतनी चिंता नहीं करनी चाहिए। उसकी रक्षा भगवान शिव के आदेश से स्तंभक नामक गणेश हर समय किया करते हैं। यह बात मुझे नारदजी ने बताई थी। आपका पुत्र तो विद्याधरों का चक्रवर्ती राजा है। कुछ विद्याधर इस बात से ईर्ष्या कर सकते हैं। और राजकुमार की अहित की कामना कर सकते हैं। वह यह कह ही रहा था कि एक विद्याधर आकाश से उतरकर वहां आ खड़ा हुआ। मुकुट लगाये हुए, कानों में कुंडल पहने और हाथ में तलवार लिये हुए वह दिव्य पुरुष सुंदर मालूम पड़ रहा था। राजा ने उस अतिथि का सत्कार किया और नमस्कार करते हुए पूछा, "तुम कौन हो और क्या चाहते हो?" वह बोला, "मैं मनुष्य होने के बाद भी विद्याधरों का राजा बन गया हूं। मेरा नाम शक्तिवेग है। यह सुनकर कि आपका पुत्र विद्याधरों का राजा है, मैं उसका दर्शन करने आया हूं।"

राजा ने उसको राजकुमार के दर्शन करा दिये। फिर पूछा, "मनुष्य विद्याधर कैसे बन जाता है?" उसने कहा, "शिव की आराधना से धीर मनुष्य को विद्याधर की पदवी प्राप्त होती है। भगवान शिव उसको विद्यादान देते हैं और तलवार, माला आदि साधनों को देकर उसे विद्याधर बना देते हैं। उदाहरण के लिए मैं अपने विद्याधर बनने की कहानी सुनाता हूं: "प्राचीन समय में एक परोपकारी नाम का राजा था। वह वर्द्धमानपुर में राज्य करता था। उसकी

रानी कनकप्रभा के एक पुत्री उत्पन्न हुई जिसका नाम कनकरेखा रखा गया। लड़की के बड़े होने पर राजा को उसके विवाह की चिंता हुई। तब रानी ने राजा से कहा, 'कनकरेखा तो विवाह करना ही नहीं चाहती।' यह सुनकर राजा ने कनकरेखा से इसका कारण पूछा। कनकरेखा ने जवाब दिया, 'वैसे मैं विवाह करने की इच्छा नहीं रखती लेकिन यदि कोई ब्राह्मण या क्षत्रिय युवक आकर यह सिद्ध कर दे कि उसने कनकपुरी देखी है तो मैं उसके साथ विवाह कर लूंगी।' राजा ने उसकी बात मान ली और राज्य में इस बात का ढिंढोरा पिटवा दिया कि जिस ब्राह्मण या क्षत्रिय युवक ने कनकपुरी देखी हो वह दरबार में आकर सिद्ध करे। उसको युवराज बनाया जायेगा और राजकुमारी के साथ विवाह कर दिया जायगा।' इस घोषणा को सुनकर सब लोग चकित रह गये; क्योंकि किसीने कनकपुरी का नाम तक नहीं सुना था लेकिन शक्तिदेव नाम के एक जुआरी धूर्त ब्राह्मण ने सोचा कि यदि झूठ ही जाकर कह दिया जाय तो इसमें हानि ही क्या होगी। इसलिए उसने राजा के पास जाकर कह दिया कि उसने कनकपुरी देखी है। राजा ने उसे राजकुमारी के पास भेज दिया। राजकुमारी ने जब उससे कई प्रश्न किये तो वह किसी प्रश्न का भी ठीक उत्तर न दे सका। इसलिए उसको धूर्त समझकर निकाल दिया गया। कनकरेखा ने अपने पिता से कहा कि धूर्त लोग संसार में इसी तरह भले आदमियों को ठगा करते हैं। इस संबंध में मैं एक कहानी सुनाती हूं :

"रक्तपुर नामक नगर में दो धूर्त्त रहते थे। एक का नाम शिव और दूसरे का नाम माधव था। उनका एक द भी था और उन्होंने अनेक धनवान व्यक्तियों को धोखा दिया था। कुछ दिनों बाद वे उज्जैन के एक पुरोहित शंकरस्वामी को ठगने के लिए गये। शंकरस्वामी एक धनवान व्यक्ति था और उसके एक लड़की भी थी। शिव ने ब्रह्मचारी का रूप धारण किया और क्षिप्रा नदी के तट पर एक मठ में रहने लगा। उसने वहां पूजा-पाठ का बड़ा दिखावा किया। और कुछ दिनों में प्रसिद्ध हो गया। माधव ने एक राजा का रूप धारण किया और नगर के बाहर बड़े ठाट-बाट से ठहर गया। एक बार वह क्षिप्रा नदी के तट पर गया और देखा कि शिव को अनेक लोग घेरे बैठे हैं। माधव ने ब्रह्मचारी-रूपी शिव को प्रणाम किया और सबको सुनाते हुए कहा कि यह सिद्ध पुरुष हैं और इनको मैंने दूसरे स्थानों पर भी देखा है।

"यह कहकर वह वापस आ गया और दूसरे दिन सवेरे उसने अपना एक अनुचर दो वस्त्रों के साथ शंकर स्वामी के पास भेजा। उस अनुचर ने वे दोनों वस्त्र शंकर स्वामी को भेंट करते हुये कहा, 'माधव नाम के राजकुमार नगर से बाहर डेरा डाले पड़े हैं और वह आपके राजा की सेवा करना चाहते हैं। इसलिए आप उनका यह प्रबंध करवादें।

"शंकर स्वामी ने लोभवश वे दोनों वस्त्र रख लिये। दूसरे दिन राजकुमार की तरह सजकर माधव शंकर स्वामी के घर आया और उससे बोला, 'मेरे पास धन की कमी नहीं है, लेकिन मैं अपने परिवारवालों के अनुरोध से आपके राजा की सेवा करना चाहता हूं।'

"शंकर स्वामी ने उसको राजा के यहां काम दिलवा दिया और धनवान समझकर अपने घर पर ही उसके रहने का प्रबंध कर दिया। माधव ने शंकर स्वामी को एक नकली मोतियों के गहनों से भरा हुआ संदूक संभाल कर रखने के लिए दिया।

"कुछ दिनों बाद माधव ने खाना-पीना कम करके अपने को झूठ-मूठ का रोगी बना लिया। फिर शंकर स्वामी से कहा, 'कोई योग्य ब्राह्मण बुलाइये। मैं अपने हीरे-मोतियों को दान देना चाहता हूं। शंकर स्वामी ने नगर से अनेक ब्राह्मणों को बुलाया, लेकिन माधव ने सभी को अयोग्य बताकर वापस कर दिया। तब शंकर स्वामी शिव को बुलाकर लाया। शिव ने कहा, 'मैं इतने धन का दान ले कर क्या करूंगा? हां, यदि कोई अपनी कन्या मुझे दे, तो गृहस्थी चलाने के लिए इतना बड़ा दान ले सकता हूं।' शंकर स्वामी ने उसके साथ अपनी कन्या का विवाह कर दिया और फिर माधव ने हीरे-मोतियों के गहनों से भरा वह संदूक शिव को दान में दे दिया। शिव ने नकली हीरे-मोती शंकर स्वामी के पास ही रख दिये। शंकर स्वामी ने लोभवश उन्हें अपने पास ही रख लिया। कुछ दिनों बाद शिव ने कहा, 'मैं इस तरह कब तक ससुराल में रहूंगा? आप मेरे हीरे-मोतियों का मूल्य दे दीजिये, फिर मैं अपने घर चला जाऊं। हीरे-मोती तो साथ में ले जाना ठीक नहीं।' शंकर स्वामी ने सोचा कि यह तो बहुत बड़ा धन बहुत सस्ते में हाथ लग रहा है। सो उसने हीरे-मोतियों के बदले में अपनी सारी संपत्ति शिव को दे दी। इस तरह शिव और माधव शंकर की संपत्ति से आनंद उठाने लगे। कुछ दिनों

बाद शंकर स्वामी उन हीरे-मोतियों के जेवरों को लेकर बाजार में बेचने गया। पारखियों ने बताया कि वे सब नकली हैं। यह सुनकर शंकर स्वामी शिव के पास आया और कहने लगा कि अपने हीरे-मोती ले लो और मेरी संपत्ति वापिस दे दो। शिव ने कहा, 'तुमसे जितना धन मिला था, वह सब तो खर्च हो गया।' इस तरह झगड़ा बढ़ गया। दोनों राजा के पास गये। वहां माधव भी बैठा था। शिव ने राजा से कहा, 'ये हीरे-मोती मुझे माधव ने दान में दिये थे और फिर शंकर स्वामी ने इनको प्रसन्नतापूर्वक अपने पास रख लिया था। इसमें मेरा कोई दोष नहीं है।' राजा ने माधव से पूछा। माधव ने कहा, 'मेरे पिता ने ये हीरे-मोती कहीं गिरवी रखे थे। मैं उनको छुड़ाकर यहां ले आया। यदि ये सब नकली हैं, तो झूठे दान का अशुभ फल मुझे भुगताना पड़ेगा।' इस पर राजा ने शंकर स्वामी से कहा, 'इसमें न तो माधव का दोष है और न शिव का।' इस तरह शंकर स्वामी निराश होकर घर लौट आया और वे दोनों धूर्त वहीं आराम से रहने लगे।"

यह कथा सुनाकर कनकरेखा ने कहा, "यह ब्राह्मण भी इसी तरह का धूर्त था। इसीलिए आप अभी मेरे विवाह की चिंता मत कीजिये।" राजा ने कहा, "यह तो ठीक है, लेकिन सयानी लड़की को पिता अपने घर कब तक रख सकता है। संसार के लोग सयानी लड़की के चरित्र पर झूठा दोष लगाने लगते हैं। इस संबंध में मैं तुम्हें एक कथा सुनाता हूं :

"सुकुमार नामक नगर में गंगा के किनारे एक कुटिया बनाकर हरस्वामी नाम का एक ब्राह्मण निवास करता था। भीख मांगकर वह अपना जीवन बिता रहा था। एक बार जब वह भीख मांगने के लिए नगर में गया तब एक दुष्ट आदमी ने कहा कि यह ब्राह्मण धूर्त है। इसने नगर के अनेक बालकों को खा डाला है। तब दूसरा व्यक्ति बोला कि हां, मैंने भी यह बात सुनी है। तीसरे व्यक्ति ने कहा, 'हां, भाई, सच कहते हो।'

"और इस प्रकार यह गलत समाचार सारे शहर में फैल गया। लोग उससे डरने लगे और अपने बच्चों को घर में बंद रखने लगे। अब उसे कोई भी भीख नहीं देता था। एक दिन नगरवासियों ने कुछ आदमी उस ब्राह्मण के पास भेजे, जिन्होंने डर के मारे दूर से ही कहा, 'तुम यहां से चले जाओ। तुमने नगर के सभी बालकों को मार कर खा लिया है।' उस ब्राह्मण को यह बात बहुत बुरी लगी। वह स्वयं नगर में आया। सब लोग उसे देखकर भय के मारे अपनी-अपनी

छतों पर खड़े हो गये । ब्राह्मण ने जोर से पुकारकर नगरवासियों से पूछा, 'बताओ तो सही मैंने किस-किस का बालक खा लिया है ?'

"तब सबने अपने-अपने बालकों को देखा, तो पता चला कि किसीका भी बालक कम नहीं है। अब तो वे सब अपने-अपने भ्रम पर पश्चात्ताप करने लगे और जब वह ब्राह्मण उस नगर को छोड़कर जाने लगा, तब सबने उससे विनती की और क्षमा मांगी।" यह कथा सुनकर राजा ने कहा, "दुष्ट प्रकृति के लोग भले आदमियों पर दोष लगाकर बुराई फैलाते हैं। इसलिए तुमको अपना विवाह जरूर कर लेना चाहिए।"

इसके बाद राजा ने नगर में फिर ढिंढोरा पिटवाया, लेकिन कोई भी ऐसा युवक नहीं निकला जिसने कनकपुरी नाम की नगरी देखी हो।

: २ :

# कनकपुरी और शक्तिदेव

उधर राजा के यहां से अपमानित होकर निकाले जाने के बाद से ब्राह्मण शक्तिदेव बहुत बेचैन रहने लगा। उसने निश्चय किया कि या तो मैं मर जाऊंगा या कनकपुरी देखकर ही मानूंगा। फिर वह कनकपुरी की खोज में दक्षिण की ओर गया। पहले वह विंध्याचल के जंगलों में पहुंचा। वहां उसने देखा कि सूर्यतप नामक मुनि एक सरोवर के किनारे एक पीपल के नीचे बैठकर तपस्या कर रहे हैं। उसने उनसे कनकपुरी का पता पूछा। मुनि ने कहा, "कनकपुरी का पता तुम्हें दीर्घतपा मुनि से मालूम होगा। यह दीर्घतपा मुनि कांपिल्य देश में उत्तर दिशा की ओर एक पहाड़ पर रहते हैं। यह स्थान यहां से सौ योजन दूर है।" तब शक्तिदेव चलते-चलते दीर्घतपा के पास पहुंचा और उनसे कनकपुरी का पता पूछा। दीर्घतपा ने बताया, "कनकपुरी का पता सत्यव्रत नामक निषादों का राजा बता सकता है। सत्यव्रत उत्स्थल नामक द्वीप में रहता है, जो समुद्र के बीच में है। तुम विटंकपुर जाओ। वहां से अनेक बनियें व्यापार करने के लिए समुद्र में जहाज पर जाते हैं। किसी जहाज पर बैठकर तुम भी चले जाना।"

फिर शक्तिदेव वहां से विटंकपुर गया और समुद्रदत्त नामक बनिये के जहाज प बैठकर समुद्र-मार्ग से उस द्वीप की खोज करने के लिए चल पड़ा। थोड़ी दूर जाने के बाद समुद्र में तूफान आया और वह जहाज डूब गया। समुद्रदत्त तो किसी तरह दूसरे जहाज पर चला गया, किंतु शक्तिदेव पानी में गिर पड़ा। उसे एक मछली ने आकर निगल लिया। निषाद लोग उस मछली को पकड़कर निषाद-राज के पास ले गये। जब मछली काटी गई तो अंदर से शक्तिदेव निकला। उसने बाहर आते ही कहा, "मैं सत्यव्रत की खोज में उत्स्थल द्वीप को जा रहा हूं। मुझे उससे कनकपुरी का पता पूछना है।" निषादराज ने कहा, "सत्यव्रत मेरा ही नाम है और तुम उत्स्थल द्वीप में ही खड़े हो। तुम यहां ठहरो। तुम्हारा काम पूरा करने का प्रयत्न किया जायगा।"

और शक्तिदेव एक मठ में ठहरा दिया गया) रात में वहां बातें करते हुए सबको शक्तिदेव ने अपना सब हाल बता दिया। यह सुनकर विष्णुदत्त नाम का एक ब्राह्मण बोला, "तुम मेरे मामा के पुत्र हो। मैं यहां बचपन में ही आ गया था। तुम यहां अच्छे आ गये। मैं तुम्हारा काम करवा दूंगा।" फिर विष्णुदत्त ने यह कहानी सुनाई : एक समय यमुना के किनारे एक गाव में गोविंदस्वामी नामक एक व्यक्ति निवास करता था। उसके दो बेटे थे। एक का नाम अशोकदत्त और दूसरे का नाम विजयदत्त था। एक बार अकाल से पीड़ित होकर गोविंदस्वामी सपरिवार अपने गांव को छोड़कर चल दिया। रात में काशी में पहुंचकर वह मंदिर के पास एक पेड़ के नीचे ठहर गया। रात में उसके छोटे लड़के विजयदत्त को शीत-ज्वर हो आया। उसने अपने पिता से कहा, "अगर आग का प्रबंध हो जाय तो ताप लूं।" फिर उसने सामने जलती हुई आग तक ले चलने का आग्रह किया। गोविंदस्वामी ने कहा, "वह तो चिता जल रही है। वहां चलना ठीक नहीं।" पर विजयदत्त नहीं माना। अपने पिता के साथ जाकर वहां तापने लगा। चिता में एक खोपड़ी जल रही थी। विजयदत्त ने उसे एक लकड़ी से तोड़ने का प्रयत्न किया। ऐसा करने पर वह खोपड़ी फूट गई और उसके अंदर से चर्बी उछल कर विजयदत्त के मुंह में चली गई। उसके प्रभाव से विजयदत्त एक डरावना दैत्य बन गया। उसके बाद उसने उस खोपड़ी की सारी चर्बी को चाट लिया और अपने पिता को ही मार डालने के लिए झपटा; लेकिन उसी समय चिता में से आवाज आई, "हे कपालस्फोट इधर आ जाओ।" तब वह पिता को छोड़कर चला गया और उसका पिता

वहां से भाग आया। उसने आकर सबको यह बात सुनाई। समुद्रदत्त नामक एक बनिया गोविंदस्वामी और उसके दूसरे पुत्र अशोकदत्त को अपने घर ले गया। अशोकदत्त समय पाकर पंडित भी बना और शक्तिशाली भी। दक्षिण से आये एक पहलवान को हराकर उसने राजा को प्रसन्न कर लिया। वह राजा के साथ रहने लगा। एक बार वह राजा और अशोकदत्त चतुर्दशी की रात को उस श्मशान से गुजर रहे थे। उन्होंने सुना कि कोई कह रहा है, "मुझे फांसी पर चढ़े तीन दिन हो गये हैं, लेकिन मेरी जान नहीं निकलती है। मुझे कोई पानी पिला दे।" राजा ने अशोकदत्त को पानी पिलाने के लिए भेज दिया और स्वयं वापस घर चला आया। उधर श्मशान में अशोकदत्त ने देखा कि एक आदमी फांसी पर लटका हुआ है और उसके पैरों के पास नीचे बैठी हुई एक स्त्री रो रही है। अशोकदत्त से उस स्त्री ने कहा, "यह मेरा पति है। जब यह मर जायगा तो मैं इसके साथ सती हो जाऊंगी। मेरे पास पानी है और इसे पिलाना चाहती हूं, लेकिन मैं इसके मुंह तक पहुंच नहीं सकती हूं।" अशोकदत्त ने कहा, "तुम मेरी पीठ पर चढ़कर इसे पानी पिला दो।" वह स्त्री ऐसा करने के लिए उसकी पीठ पर चढ़ गई। लेकिन कुछ देर में ही अशोकदत्त ने देखा कि उसकी पीठ पर रक्त की बूंदें गिर रही हैं। उसने सिर उठाकर देखा कि वह स्त्री छुरे से उसका मांस काट-काटकर खा रही है। यह देख अशोकदत्त ने उस स्त्री को मार डालना चाहा, लेकिन वह उसी समय अंतर्धान हो गई। हां, अशोकदत्त के हाथ में उसके पैर का नूपुर आ गया, जिसे लेकर वह राजा के पास लौट आया। उसने राजा से सारा हाल बताया। राजा अशोकदत्त के गुणों पर और भी प्रसन्न हो उठा और रानी से सलाह करके अपनी कन्या मदनरेखा का विवाह उसके साथ कर दिया।

कुछ दिनों बाद एक बार रानी ने राजा से कहा, "जैसा एक नूपुर अशोक ने हमको लाकर दिया है, वैसा ही दूसरा बनवा दीजिये।" राजा ने सुनारों को वैसा नूपुर बनाने की आज्ञा दी, लेकिन सभी ने मना कर दिया। कहा, "पृथ्वी पर ऐसा नूपुर कोई नहीं बना सकता।" तब अशोकदत्त ने वैसा ही दूसरा नूपुर लाने का वचन दिया और चतुर्दशी आने पर रात में वह फिर मरघट गया। वह एक मुर्दे को लेकर वहां बैठ गया और मांस बेचने की आवाज़ लगाने लगा। एक पेड़ पर बैठी हुई एक स्त्री ने उससे मांस का भाव पूछा। अशोकदत्त ने कहा, "मांस का मूल्य एक नूपुर है।" वह स्त्री बोली, "एक नूपुर मेरे पास है, दूसरा तो तुम पहले

ही ले जा चुके। तुमने मुझे पहचान लिया होगा। मैं वही स्त्री हूं जो तुम्हारी पीठ पर चढ़ी थी। अगर तुम मेरा कहना मानो तो मैं तुमको दूसरा नूपुर दे सकती हूं।" अशोकदत्त ने कहा, "अगर नूपुर तुम दे दोगी, तो मैं तुम्हारा कहना मान लूंगा।" तब स्त्री ने बताया, "मैं लंबजिह्व की पत्नी विद्युच्छिखा हूं। मेरा पति हिमालय के त्रिघंट नामक नगर का मालिक था। उसको कपालस्फोट नाम के एक दैत्य ने मार डाला। अब मेरी केवल एक कन्या है। अगर तुम वहां चलकर मेरी कन्या से विवाह कर लो, तो मैं तुमको दूसरा नूपुर दे दूंगी।"

अशोकदत्त उस स्त्री के साथ त्रिघंट नगर गया और वहां उसकी कन्या के साथ विवाह कर लिया। कुछ दिन वहां रहा भी। फिर उसकी सास ने वह नूपुर और एक कमल का फूल उसे दिया, जिसे लेकर वह राजा के पास लौट आया। उसने राजा को अपना सब हाल भी बता दिया। राजा ने वह कमल मंदिर की चोटी के कलश पर लगा दिया और कहा, "यदि दूसरा कमल मिल जाता तो उसे मंदिर की दूसरी चोटी पर लगा दिया जाता।" अशोकदत्त फिर चतुर्दशी की रात को उस मरघट पर गया और अपनी सास से एक और कमल मांगा। उसकी सास ने कहा, 'मेरे पास अब दूसरा कमल नहीं है। इस तरह के कमल कपालस्फोट के सरोवर में होते हैं। तुम वहां जाकर ले आओ।" अशोकदत्त कपालस्फोट के सरोवर पर गया और कमल तोड़ने लगा। उसे देखकर कपालस्फोट उसके चरणों में गिर पड़ा और बोला, "मैं तुम्हारा छोटा भाई हूं। मुझे तुम्हें देखकर अपनी याद आ गई।" उसी समय आकाश से उतरकर विद्याधरों के गुरु विज्ञप्ति कौशिक नीचे आये। उन्होंने उन दोनों से कहा, "तुम सब विद्याधर हो। शाप के प्रभाव से तुम्हें यह रूप धारण करना पड़ा। अब तुम अपने घर वापस जाओ। विद्या पढ़कर तथा अपने भाइयों को पढ़ाकर उनका कल्याण करो।" फिर विद्याधर ने उनको विद्यादान दिया और उसके बाद वह अंतर्धान हो गये। तब अशोकदत्त कमलों को लेकर अपनी पत्नी राक्षस-कन्या के पास गया। उसके प्रभाव से उसकी पत्नी भी विद्याधरी बन गई। फिर वे लोग उड़कर काशी पहुंचे। राजा को अशोकदत्त ने वे कमल दिये और विजयदत्त अपने पिता गोविंद स्वामी से जाकर मिला। पिता के पूछने पर विजयदत्त ने बताया, "राक्षस हो जाने के बाद राक्षस मुझे पकड़कर अपने राजा के पास ले गये। उसकी आज्ञा से मुझे राक्षसों की सेना का सेनापति बनना पड़ा। कुछ दिनों बाद गंधर्वों ने हमारे राजा को मार डाला और उसकी जगह मुझे राजा

बना दिया। फिर मुझे अशोकदत्त के दर्शन हुए और मैं शाप-मुक्त हो गया। अशोकदत्त ने अपने पिता को बताया, "पिछले जन्म में हम दोनों विद्याधर थे। किसी समय हमारी दृष्टि गंगा में नहाती हुई मुनि-कन्याओं पर पड़ गई थी। इसलिए शाप के कारण हमें मनुष्य बनना पड़ा। लेकिन जब विद्याधरों के विज्ञप्ति-कौशिक ने आकर हमको उपदेश दिया, तो हम शाप से छूट गये और फिर विद्याधर बन गये हैं।"

इसके बाद अशोकदत्त ने सबको विद्या-दान दिया और फिर आकाश मार्ग से सब विद्याधरों के स्थान पर चले गये। अब उनका नाम अशोकवेग और विजयवेग हुआ। उधर काशी के राजा ने मंदिर के दूसरे कलश पर भी कमल लगा दिये।

यह कथा सुनाकर विष्णुदत्त ने शक्तिदेव से कहा, "कभी-कभी इस प्रकार दिव्य-पुरुष भी मनुष्य बनकर जन्म लेते हैं और असाधारण कार्यों को सिद्ध करते हैं। तुम्हारे अंदर भी मुझे उसी दिव्य पुरुष का अंश दिखाई पड़ता है। इसलिए तुम्हारा काम भी अवश्य पूरा होगा।"

: ३ :

## विद्याधर शक्तिवेग

सवेरा होने पर सत्यव्रत शक्तिदेव के पास गया और कहा, "समुद्र में रत्नकूट नाम का एक द्वीप है। आषाढ़ महीने के शुक्ल पक्ष में वहां द्वादशी का मेला जुड़ता है। उसमें सब देश के लोग आते हैं। वहां जाने पर कनकपुरी का पता चल जायगा।" यह सुनकर शक्तिदेव सत्यव्रत के साथ रत्नकूट की तरफ़ चल दिया। जहाज के कुछ दूर जाने के बाद, दूर पर उन्हें एक विशाल वस्तु दिखाई पड़ी। सत्यव्रत ने बताया कि यह विशाल बरगद का पेड़ है।

वे इस तरह बातें कर रहे थे कि सहसा उनका जहाज डूब गया। उसके साथ सत्यव्रत भी। शक्तिदेव किसी तरह उस बरगद के पेड़ की डाली पकड़कर बच गया। तरह-तरह के पक्षी चारों दिशाओं से उस पेड़ पर बसेरा लेने आते थे। उस रात भी आये, पर अंधेरे में शक्तिदेव को न देख सके और आपस में मनुष्यों की भाषा में बातें करने लगे। एक पक्षी ने कहा, "कल सवेरे मैं कनकपुरी जाऊंगा, क्योंकि

वहां चुगने के लिए काफी मिल जाता है ।"

शक्तिदेव ने उस पक्षी को पहचान लिया और जब सारे पक्षी सो गये, तब वह उस पक्षी के पंखों के बीच चुपचाप जाकर छिप गया। सवेरे वह पक्षी उड़कर कनकपुरी पहुंचा। तब वह उसके पंखों में से निकलकर बाहर आ गया। शक्तिदेव ने वहां दो स्त्रियों को देखा। वे एक जगह फूल तोड़ रही थीं। उसने उनसे पूछा, "यह कौन-सा स्थान है ?" उन स्त्रियों ने बताया, "यह कनकपुरी है और जहां हम फूल तोड़ रही हैं, यह चंद्रप्रभा का बगीचा है। यह विद्याधरों की नगरी है ।" शक्तिदेव ने कहा, "मुझे चंद्रप्रभा के पास ले चलो ।"

वे स्त्रियां उसको चंद्रप्रभा के पास ले गईं। शक्तिदेव ने चंद्रप्रभा से अपना सब हाल कह सुनाया। तब चंद्रप्रभा अकेले में ले जाकर उससे बोली, "शशिखंड यहां के राजा हैं। उनकी चार कन्याएं हैं। मैं सबसे बड़ी हूं। चंद्ररेखा, शशिरेखा और शशिप्रभा मेरी तीन छोटी बहनें हैं। एक बार मेरी तीनों बहनें गंगा नहाने गईं। वहां अग्रतपा ऋषि ने उन्हें मृत्युलोक में जन्म लेने का शाप दे दिया। यह भी कहा कि जन्म लेने के बाद उनको पूर्वजन्म की याद रहेगी। इसके बाद वे तीनों मृत्युलोक चली गईं, तब मेरे पिता ने यहां का राज्य मुझे सौंपकर बाहर जाने का निश्चय किया। तब से मैं ही यहां की देख-भाल करती हूं। एक रात सपने में मुझसे देवी ने आकर कहा कि तुझे पति के रूप में मनुष्य मिलेगा। तब से मैं कन्याव्रत का पालन कर रही हूं। अब मैं तुम पर मुग्ध हूं। मैं अपने पिता की आज्ञा लेने जाऊंगी और उसके बाद तुमसे विवाह करूंगी।"

फिर वह चतुर्दशी के दिन ऋषभ पहाड़ पर अपने पिता से मिलने गई। जाने से पहले उसके शक्तिदेव से कहा, "जब तक मैं लौटकर नहीं आऊं, तब तक तुम यहीं रहना। सब जगह जाना, लेकिन इस मकान की बीच की मंज़िल में मत जाना।"

उसके जाने के बाद शक्तिदेव कनकपुरी में इधर-उधर घूमने लगा। अच्छे-अच्छे स्थानों का देखने के लिए जिधर मन होता चला जाता था। वह उस मंजिल पर भी गया जिस पर जाने के लिए चंद्रप्रभा मनाकर गई थी। वहां उसने देखा कि तीन कन्याएं मरी हुई पड़ी हैं। उनमें एक कनकरेखा भी है। वह वहां से बाहर निकल आया और एक सरोवर के किनारे गया। वहां पर एक घोड़ा खड़ा था। वह उस पर चढ़ने लगा तो उसने ऐसी लात मारी कि वह सरोवर में जा

गिरा। डूबने के डर से वह पानी में गोता लगा गया। जब वह बाहर निकला, तो देखा कि वह वर्द्धमानपुर में पहुंच गया है। वह अपने घर गया और राजा की ओर से फिर उसी घोषणा को सुना। वह राजा के पास गया और कहा, "मैंने कनक-पुरी देखी है। अगर इस बार मेरी बात ग़लत निकले, तो मुझे प्राण-दंड दिया जाय।" तब राजा ने कनकरेखा को बुला भेजा। उसको देखते ही शक्तिदेव बोल उठा, "तुम तो कनकपुरी में अपने पलंग पर मरी हुई पड़ी थीं। यहां किस प्रकार आ गईं?"

यह सुनते ही कनकरेखा को विश्वास हो गया कि उसने कनकपुरी देखी है। उसने अपने पिता से कहा, "मैं ऋषि के शाप से आपके यहां पैदा हुई। मैं विद्या-धरों की कन्या हूं। यह मनुष्य मेरा और मेरी बहनों का पति बनेगा और विद्या-धरों पर राज्य करेगा। इसके मिलने पर मेरे शाप का अंत हो गया है। अब मैं यह शरीर छोड़कर कनकपुरी जा रही हूं। वहां मैं अपने पूर्व शरीर में फिर जीवित हो उठूंगी।"

यह कहकर कनकरेखा ने अपना शरीर त्याग दिया। शक्तिदेव भी पहलेवाले मार्ग से फिर कनकपुरी की ओर चल दिया। रास्ते में उसको समुद्रदत्त मिला। दोनों ने एक-दूसरे को अपने-अपने हाल-चाल सुनाये। अगले दिन उत्स्थल द्वीप में वह सत्यव्रत के पुत्रों से मिला। उन्होंने अपने पिता का हाल पूछा। तब उसने कहा, "वह तो समुद्र में डूबकर मर गये हैं।"

पुत्रों ने उसकी बात पर विश्वास नहीं किया और आरोप लगाया कि उसने ही उनके पिता की हत्या करके समुद्र में डाल दिया होगा। इसलिए वे शक्तिदेव को बांधकर बलिदान करने के लिए देवी के मंदिर में ले गये। तब रात हो गई थी, इसलिए उन्होंने उसे मंदिर में बांधकर डाल दिया। रात में देवी ने उससे सपने में कहा, "तड़के ही यहां के निषादराज की कन्या बिंदुमती मंदिर में आयगी। अगर तुम उसके साथ विवाह करने के लिए राजी हो जाओगे, तो वह तुमको बंधन से छुड़ा देगी।"

सवेरे ऐसा ही हुआ। बिंदुमती आई और शक्तिदेव ने उसके साथ विवाह करना स्वीकार कर लिया। वह भी उसको छुड़ाकर अपने घर ले गई। फिर विवाह करके वे दोनों आनंद से रहने लगे।

एक बार वह अपने घर की छत पर खड़ा हुआ था। उसने देखा कि एक चांडाल

गाय का मांस लेकर उधर से निकल रहा है। उसने अपनी पत्नी से कहा, "गाय की पूजा सभी करते हैं। हर लोक में उसका आदर किया जाता है, लेकिन जो लोग उसका मांस खाते हैं,पता नहीं उनकी क्या दशा होगी?" बिंदुमती बोली,"मांस खाना ही अच्छा काम नहीं है। मैंने तो एक बार वीणा की तांत को ठीक करने के लिए उसे दांत से दबा दिया था। केवल इसी कारण मुझे निषाद के घर पैदा होना पड़ा। मैं पहले विद्याधरी थी और शाप के कारण मुझे यहां आना पड़ा। इसलिए जब तांत छूने से यह दशा होती है, तो जो गाय का मांस खाते हैं, उन्हें न जाने कितना बड़ा प्रायश्चित्त करना पड़ता होगा ?"

थोड़ी देर बाद बिंदुमती के भाई ने आकर कहा, "एक सूअर बहुत उपद्रव मचा रहा है।" शक्तिदेव अपने घोड़े पर बैठकर सूअर को मारने गया। उसने अपनी पूरी शक्ति से उस पर प्रहार किया, लेकिन वह भागकर अपनी मांद में घुस गया। शक्तिदेव भी उसके पीछे उसकी मांद में चला गया। वहां उसने एक सुंदर कन्या देखी। उस कन्या ने कहा, "यह सूअर एक दैत्य है, जिसे अभी किसी ने मार दिया है। यह दैत्य मुझे उठाकर यहां ले आया था। मैं राजा चंडविक्रम की लड़की बिंदुरेखा हूं।" तब शक्तिदेव ने अपना परिचय देते हुए बताया, "सूअर को मैंने ही मारा है।" इससे बिंदुरेखा बहुत प्रसन्न हुई और उसने कहा, "आप मेरे पति हैं।" फिर दोनों ने विवाह कर लिया और बिंदुमती के घर आकर रहने लगे। कुछ समय बाद बिंदुरेखा गर्भवती हो गई। जब आठ महीने हो गये, तब बिंदुमती ने शक्तिदेव से बहुत आग्रह किया कि वह बिंदुरेखा के गर्भ को बाहर निकाल ले। वह बिंदुरेखा के पास गया। यह काम करते हुए उसे बहुत दुख हो रहा था, लेकिन बिंदुरेखा ने उसे समझाया और एक कथा सुनाई :

तंबुक नामक नगर में एक ब्राह्मण रहता था। उसका नाम देवदत्त था। उसे जुआ खेलने की आदत थी। एक बार वह अपनी सारी संपत्ति जुए में हार गया। इस दुख से दुखी होकर वह एक सूने मंदिर में जाकर बैठ गया। वहां उसे एक महाव्रती मिला। उसने अपना सारा हाल उसको बताया। महाव्रती ने कहा, "विद्याधर बनने की साधना कर रहा हूं। यदि तुम अपना संकट दूर करना चाहते हो, तो इस काम में सहयोग दो।" देवदत्त को यह बात भा गई और उसने उसके कहने के अनुसार काम शुरू कर दिया। वह प्रति दिन मरघट में जाता था और एक वट वृक्ष के नीचे बैठकर अपनी साधना किया करता था। एक बार उस पेड़ से एक

स्त्री निकली और वह देवदत्त को अपने साथ ले गई। जहां वह पहुंची, वहां एक सुंदरी स्त्री पलंग पर लेटी हुई थी। उस स्त्री ने देवदत्त को अपने पास बुलाकर पलंग पर बिठा लिया और बोली, "तुम मेरे साथ विवाह कर लो। मैं रत्नवर्ष नामक एक यक्ष की लड़की हूं और मेरा नाम विद्युत्प्रभा है।" देवदत्त उसके साथ विवाह करके वहीं रहने लगा। कुछ दिनों बाद विद्युत्प्रभा ने गर्भ धारण किया। उस समय देवदत्त महाव्रती से मिलने आया और उसको अपना सब हाल बताया। महाव्रती ने देवदत्त से विद्युत्प्रभा का गर्भ निकाल लाने के लिए कहा। देवदत्त अपनी पत्नी के पास वापस आया, लेकिन उसका गर्भ निकालने का साहस नहीं हुआ। तब विद्युत्प्रभा ने अपना गर्भ स्वयं निकालकर देवदत्त को दे दिया। फिर वह बोली, "गर्भ निकलने से मैं शाप मुक्त हो गई हूं।" और वह अंतर्धान हो गई। देवदत्त गर्भ लेकर महाव्रती के पास गया। महाव्रती ने गर्भ अपने पास रख लिया और देवदत्त को भैरों की पूजा करने के लिए दूर जाने की आज्ञा दी। देवदत्त के जाने के बाद महाव्रती उस गर्भ का भोजन पकाकर खा गया। देवदत्त ने वापस आकर उससे पूछा, "वह गर्भ कहां है?" महाव्रती ने कहा, "उसे मैं खा गया हूं।"

फिर देवदत्त के देखते-देखते ही उस गर्भ के प्रभाव से महाव्रती विद्याधर बनकर आकाश में चला गया। देवदत्त को महाव्रती पर बड़ा क्रोध आया और उसको दंड देने के लिए उसने बैताल की पूजा शुरू की। जब बैताल का उसको इष्ट हो गया, तो उसके कहने पर बैताल उसको महाव्रती के पास ले गया। बैताल ने महाव्रती को खूब पीटा। देवदत्त ने बैताल को आज्ञा दी, "इसे यहां से धरती पर ले जाओ।" तभी पार्वतीजी ने प्रकट होकर कहा, "देवदत्त! मैं तुमको विद्याधरों का राजा बनाती हूं।" इस प्रकार महाव्रती धरती पर आगया और उसकी सिद्धि नष्ट हो गई। देवदत्त आकाश में रहकर विद्याधरों का राजा बन गया।

यह कहानी सुनाने के बाद बिंदुरेखा ने शक्तिदेव से कहा, "तुम चिंता मत करो, इससे कोई अच्छा फल ही निकलेगा।" शक्तिदेव ने जब उसका गर्भ निकाला तब हाथ में आते ही उसने एक तलवार का रूप धारण कर लिया। उस तलवार को पाते ही शक्तिदेव विद्याधर बन गया और बिंदुरेखा गायब हो गई। इसके बाद बिंदुमती ने शक्तिदेव से कहा, "बिंदुरेखा और कनकरेखा मेरी बहनें हैं। तुम्हारे प्रभाव से उन दोनों का शाप दूर हो चुका है और अब मेरा भी शाप छूट गया है। इसलिए अब मैं यह शरीर छोड़कर अपने वास्तविक शरीर में प्रवेश करने जा रही

हूं। तुम इस तलवार के प्रभाव से कनकपुरी पहुंच सकते हो। हमारी बड़ी बहन चंद्रप्रभा भी तुमको वहीं मिलेगी।"

यह कहकर बिंदुमती ने अपना शरीर छोड़ दिया। शक्तिदेव भी उस तलवार को हाथ में लेकर कनकपुरी पहुंचा। वहां उसका बहुत सत्कार किया गया और राजा ने अपनी चारों कन्याओं का विवाह उसके साथ कर दिया। दहेज में अपना राज्य दे दिया। कुछ दिन बाद विद्याधरों की सभी विद्याएं भी सिखा दीं और उसका नाम शक्तिवेग रख दिया। साथ ही उसने शक्तिवेग को कभी पराजित न होने का वरदान दिया और कहा, "केवल उदयन का पुत्र नरवाहनदत्त ही तुम्हारा राजा बनेगा। उसके प्रति तुम सदा विनयशील बनकर रहना।" और तब से शक्तिवेग अपनी चारों पत्नियों के साथ कनकपुरी में राज्य करने लगा।

इतनी कथा सुनाने के बाद वह विद्याधर बोला, "हे राजा उदयन, मेरा ही नाम शक्तिवेग है। मैं अपने स्वामी, आपके पुत्र, के दर्शनों से धन्य हो गया हूं।" यह कहकर वह वहां से आकाश की ओर चला गया।

# छठा-खंड

## : १ :

## मदनमंचुका

नरवाहनदत्त धीरे-धीरे बड़ा होने लगा। आठ वर्ष की अवस्था में वह विद्याओं का अभ्यास किया करता था और जंगल में जाकर खेलता था। पद्मावती और वासवदत्ता नरवाहनदत्त के विकास को देखकर बहुत प्रसन्न होती थीं। जब वह युवा हुआ, तब राजा उदयन उसके विवाह की बात सोचने लगे। उस समय वितस्ता नदी के किनारे तक्षशिला नाम की एक नगरी थी। वह नगरी बहुत सुंदर थी। वितस्ता के पानी में उसके भवनों की छाया ऐसे मालूम पड़ती थी, जैसे पानी के अंदर सुंदर पातालपुरी दिखाई पड़ रही हो। वहां कलिंगदत्त नाम का बौद्ध राजा राज्य करता था। उसकी प्रजा जिनदेव को माननेवाली थी। वहीं वितस्तादत्त नाम का एक बनिया रहता था। वह भिक्षुओं की बहुत सेवा किया करता था, लेकिन उसका पुत्र रत्नदत्त इस बात के विरुद्ध था और उसकी निंदा किया करता था। वितस्तादत्त ने एक बार राजा से पुत्र के दुर्व्यवहार की शिकायत की। राजा ने रत्नदत्त को बुलवाया और कहा, "तुमको दो महीने के अंदर समाप्त कर दिया जायेगा।"

तब से रत्नदत्त दिन-प्रति-दिन दुबला होने लगा। जब वह काफी क्षीण हो गया, तो राजा ने उसे बुलाकर दुर्बल होने का कारण पूछा। रत्नदत्त ने कहा, "मौत के डर के कारण ही ऐसा हो रहा हूं।" राजा ने कहा, "मैंने इस प्रकार तुम्हें यह जानने का अवसर दिया है कि प्रत्येक आदमी को मृत्यु का कितना भय होता है। इस मृत्यु के डर से ही लोग मोक्ष पाने की साधना करते हैं। तुम्हारा पिता भी ऐसी ही साधना करता है। इसलिए तुम उसे बुरा मत कहा करो।"

तब रत्नदत्त ने राजा से मोक्ष का रहस्य बताने का आग्रह किया। राजा ने एक

कटोरा मंगवाया जिसमें ऊपर तक तेल भरा हुआ था। उसे रत्नदत्त के हाथों पर रख कर कहा, "तुम इस कटोरे को लेकर सारे नगर में घूम आओ, लेकिन तेल की एक बूंद भी बाहर नहीं गिरनी चाहिए। ऐसा हुआ तो तुम्हें प्राण दंड मिलेगा।" रत्नदत्त चला गया, लेकिन जब लौटकर आया तो राजा ने पूछा, "नगर में तुमने क्या-क्या देखा?" रत्नदत्त बोला, "मैंने नगर में कुछ भी नहीं देखा, क्योंकि मेरा ध्यान तो कटोरे के तेल की ओर लगा था।" तब राजा ने कहा, "इसी प्रकार मन को एकाग्र करने से मोक्ष प्राप्त होता है।"

यह सुनकर रत्नदत्त घर वापस आ गया। उसी बीच में स्वर्ग में इंद्र की सभा में एक उत्सव मनाया गया। वहां सब अप्सराओं ने मिलकर नृत्य किया। लेकिन सुरभिदत्ता नाम की एक अप्सरा नृत्य में नहीं दिखाई पड़ी। इंद्र ने जब उसका पता चलाया, तो ज्ञात हुआ कि वह एक विद्याधर के साथ नंदन वन में विहार कर रही है। यह जानकर उसे क्रोध आ गया। वह सोचने लगा कि कामांध होकर लोग कितना दुराचार करते हैं। देवताओं के देश में भी काम के प्रभाव से लोग अविनीत हो जाते हैं और मेरी उपेक्षा करने लगते हैं। लेकिन इसमें विद्याधर का क्या दोष है—स्त्रियों का सौंदर्य ही ऐसा होता है। सुंदर स्त्रियों ने बड़े-बड़े महापुरुषों का मन मोह लिया। मेनका को देखकर विश्वामित्र का तप भंग हो गया था और शर्मिष्ठा के सौंदर्य के लोभ में ययाति को क्या नहीं करना पड़ा था। तो इसमें इस अप्सरा का ही दोष है।

यह सोचकर इंद्र ने उसको शाप दिया, "तेरा जन्म मनुष्य-जाति में धरती पर होगा, और जब तेरे अयोनिज पुत्री उत्पन्न हो जायेगी, तब तू शाप से मुक्त होकर फिर स्वर्ग में आ जायेगी।" इसलिए जब राजा कलिंगदत्त की रानी गर्भवती हुई तो यह सुरभिदत्ता ही उसके गर्भ में आई। रानी ने स्वप्न में देखा कि उसके पेट में आकाश से उतर कर एक ज्वाला समा गई है। उसने सवेरे राजा से उस स्वप्न का हाल कहा। राजा ने उसको बताया, "तुम्हारे गर्भ में किसी दिव्य आत्मा ने प्रवेश किया है।" रानी बोली, "ठीक है। कर्म के अनुसार अच्छे और बुरे फल भोगने को मिलते हैं। इस बारे में मैं एक कहानी सुनाती हूं:

"मेरी माता का नाम नागश्री था। मेरे पिता कौशल देश के राजा धर्मदत्त थे। जब मैं बच्ची ही थी, तब मेरे माता और पिता को अपने पूर्व जन्म का स्मरण हो आया। मेरी मां ने मेरे पिता से कहा, 'मैं अपने पूर्व-जन्म की कथा कहने के लिए

बहुत बेचैन हूं, लेकिन डर यह है कि कथा सुनाने के बाद मैं मर जाऊंगी।' पिता ने कहा, 'मेरी भी ऐसी ही स्थिति है। इसलिए आज हम दोनों ही एक-दूसरे को अपने पूर्व जन्म की कथा सुनायें।' माता ने पहले अपनी कथा सुनाते हुए कहा, 'पिछले जन्म में मेरे पति का नाम देवदास था और मैं माधव नामक ब्राह्मण के घर में सेविका का काम करती थी। जो भोजन हमको वहां से मिलता था, वही खाकर हम अपना गुजारा करते थे। एक बार एक अतिथि हमारे यहां आया। हमने अपना खाना उसको खिला दिया। कुछ समय बाद मेरे पति का देहांत हो गया और मैं भी उसके साथ सती हो गई। सती होने के शुभ कर्म के कारण ही मैं इस जन्म में रानी बनी।'

"यह कथा सुनकर मेरे पिता बोले, 'पिछले जन्म में मैं ही तुम्हारा पति था। मेरा ही नाम देवदास था।'

"इस प्रकार दोनों ने अपनी-अपनी कथा सुनाकर शरीर त्याग दिया। मैं अपनी मौसी के पास जाकर रहने लगी। एक बार वहां भी अतिथि आये। मैंने उनका स्वागत और सम्मान किया। उनके वरदान से ही आप जैसा योग्य पति मुझे प्राप्त हुआ।"

तब राजा कलिंगदत्त बोला, "धर्म का छोटा-सा कार्य भी बड़ा फल देनेवाला होता है। इस संबंध में मैं भी तुम्हें एक कथा सुनाता हूं:

"कुंडिनपुर नामक एक स्थान में एक विद्वान उपाध्याय रहता था। उसके शिष्यों में सात ब्राह्मण-पुत्र भी थे। एक दिन उपाध्याय ने उन ब्राह्मण-पुत्रों को आज्ञा दी कि वे उसकी ससुराल जाकर एक गाय ले आयें। वे सातों शिष्य उपाध्याय की ससुराल गये। वहां अकाल पड़ा हुआ था। इसलिए गुरु के ससुर ने उन्हें भोजन के लिए नहीं पूछा और एक गाय देकर विदा कर किया। सातों शिष्य भूख से बेचैन थे। रास्ते में जब और कुछ नहीं मिला, तो प्राण-रक्षा के लिए उस गाय को ही उन्होंने शास्त्र-विधि से मारकर खा लिया। जो मांस बच गया, उसे अपने गुरु को लाकर दे दिया और उन्होंने गुरु को सब-कुछ सच-सच बता दिया। इस कारण वे किसी भी दोष के भागी नहीं बने। सो यह ठीक ही है कि पवित्र मन से किया हुआ अच्छा काम फल देनेवाला होताहै।" राजा ने इस विषय में दूसरी कहानी इस प्रकार सुनाई:

किसी समय गंगा के किनारे एक भूखा ब्राह्मण बैठा हुआ था। वहीं कुछ दूर

पर एक भूखा चांडाल भी बैठा था। सामने उन्होंने देखा कि निषाद गंगा से मछलियां निकालकर खा रहा है। ब्राह्मण उसे देखकर मन में कहने लगा कि यह निषाद सौभाग्यशाली है, जो इसको ऐसी सुंदर मछलियों का मनचाहा भोजन मिल जाता है। दूसरी ओर चांडाल ने यह देखकर कहा कि इस निषाद का जीवन कितना निंदनीय है जो जीव-हिंसा के बिना अपना पेट नहीं भर सकता। उसके बाद जब उन दोनों की मृत्यु हुई, तो ब्राह्मण निषाद के घर पैदा हुआ और चांडाल राजा के घर। इस प्रकार मन की पवित्रता से ही अच्छे फल की प्राप्ति होती है।

राजा ने एक कथा और कह सुनाई: उज्जैन में एक राजा राज्य करता था। उसका नाम विक्रमसिंह था। एक बार वह हाथी पर बैठकर शिकार खेलने के लिए जा रहा था। मार्ग में एक मंदिर पड़ा। राजा ने देखा कि उस मंदिर में दो आदमी छिपकर बातचीत कर रहे हैं। जब राजा शिकार खेलकर लौटा, तब भी वे आदमी मंदिर में घुसुर-पुसुर कर रहे हैं। राजा को संदेह हो गया और उसने उनको बुलवाया। पूछने पर उनमें से एक बोला, "मैं जाति का ब्राह्मण हूं और मेरे पिता का नाम करभक है। एक बार मैं हथियार चलाने का अभ्यास करने के लिए जंगल में गया। वहां मैंने एक बरात जाती हुई देखी। बरात के बीच में कहीं से एक हाथी आकर घुस गया। इससे बराती डरकर भाग गये। नव वधू को वहीं छोड़ गये। मैंने उस नव वधू की रक्षा की। तब उस नव वधू ने कहा, 'तुमने मेरी रक्षा की है, इसलिए तुम ही मेरे पति होने के योग्य हो। मेरा पति मुझे ले जाने के लिए आ रहा होगा। जब मैं उसके साथ जाऊं, तब मेरे पीछे आकर तुम भी मेरे घर पहुंच जाना।'

"मैंने ऐसा ही किया। मैं उसके घर के पड़ौस में एक मंदिर में रुक गया। वहां मैंने एक ब्राह्मण से अपना सब हाल बताया। उस ब्राह्मण ने मुझसे कहा, 'जिस बनिये की नव वधू तुम्हारे साथ जाने के लिए तैयार है, उसकी बहन मुझ से प्रेम करती है। इस काम में वह तुम्हारी मदद करेगी'

"उस बनिये की बहन की सहायता से वह नव वधू मेरे पास आ गई। मैं उसे ले भागा। बनिये की बहन भी उस ब्राह्मण के साथ भाग आई। अब हम दोनों अपनी पत्नियों को लेकर इस मंदिर में बैठे हुए हैं।" यह सुनकर राजा ने उन दोनों को अपने यहां रख लिया।

ये कथाएं सुनाकर राजा बोला, "इस प्रकार बिना साहस किये कोई भी काम

पूरा नहीं हो सकता। हर आदमी अपने किये हुए काम का ही फल पाता है। तुम्हारे गर्भ में जिस ज्वाला ने प्रवेश किया है, वह अवश्य कोई दिव्य ज्योति है।"

अपने पति के इन वचनों को सुनकर रानी तारादत्ता को संतोष मिला।

: २ :

## कलिंगसेना

समय आने पर रानी तारादत्ता ने एक अनुपम रूपवती कन्या को जन्म दिया। राजा को पुत्र की आशा थी, इसलिए वह बहुत निराश हुआ। मन को शांत करने के लिए वह बौद्ध विहार में जाने लगा, कई दिन तक वहां उसने धर्म-पाठक भिक्षु से उपदेश सुना, लेकिन उसके मन का शोक पूरी तरह से दूर नहीं हुआ। एक दिन एक बूढ़े ब्राह्मण ने उसको समझाया, "राजन्! तुम कन्या के जन्म से इतने दुखी क्यों होते हो? कन्या पुत्रों से भी उत्तम होती है। पुत्र तो राज्य और धन के लालची होते हैं और मकड़ी की तरह अपने जन्मदाता को ही खा जाते हैं। कन्यादान से जो फल प्राप्त होता है वह पुत्र के होने से कहीं अधिक श्रेष्ठ है। इस संबंध में मैं तुमको सुलोचना की कथा सुनाता हूं:

"चित्रकूट में सुषेण नाम का एक राजा रहता था। उसने एक सुंदर बगीचा बनवाया। वह बगीचा स्वर्ग के नंदन कानन से भी अधिक सुंदर था। उसमें उसने एक जलाशय बनवाया, जिसकी सीढ़ियों में रत्न जड़े हुए थे। एक बार आकाश मार्ग से जाते हुए सुंदरी अप्सरा रंभा ने इस बगीचे में सुषेण राजा को देखा। वह बहुत सुंदर था। रंभा नीचे उतर आई और वह सुषेण से मिली। दोनों एक-दूसरे की ओर आकर्षित हुए और साथ-साथ रहने लगे। कुछ दिनों बाद रंभा ने एक लड़की को जन्म दिया। तब रंभा ने राजा से कहा, 'मैं शाप के कारण यहां आई थी। अब इस पुत्री के जन्म से शाप मुक्त हो गई हूं। और वापस जा रही हूं। आप इस कन्या का लालन-पालन अच्छी तरह से करना। इसका विवाह होने पर हम फिर स्वर्ग में मिलेंगे।'

"यह कहकर रंभा फिर स्वर्ग चली गई। राजा बहुत दुखी हुआ, लेकिन क्या हो सकता था! धीरे-धीरे सुलोचना बड़ी हुई। एक दिन वह बाग में घूम रही

थी। वहां उसने मुनि कुमार काश्यप को देखा। काश्यप ने सुलोचना को देखा। दोनों एक-दूसरे से प्रेम करने लगे। सुलोचना ने काश्यप से कहा, 'ग्राप मुझे मेरे पिता से मांग लें।' काश्यप सुषेण से जाकर मिला। उसे क्या ग्रापत्ति होती? वह बोला, 'मेरी कन्या की मां ग्रप्सरा रंभा है। वह मरते समय कह गई थी कि इसका विवाह होने पर मैं उससे स्वर्ग में जाकर फिर मिलूंगा। मुनि कुमार मुझे बताइये कि यह कैसे संभव होगा?' यह सुनकर काश्यप सोचने लगा कि रुरू नामक मुनि ने ग्रपनी स्त्री को ग्रपनी ग्रायु दान कर दी थी। विश्वामित्र त्रिशंकु को स्वर्ग में ले गये थे। तब क्या मैं ग्रपने तप के प्रभाव से इसके लिए इतना भी नहीं कर सकता हूं? यह सोचकर उसने देवताग्रों से कहा, 'हे देवताग्रो! मेरे तप के ग्रंश से यह राजा सशरीर स्वर्ग में पहुंच जाये ग्रौर रंभा से जा कर मिले।' ऐसा ही हुग्रा। सुषेण कन्या दान करते ही सशरीर स्वर्ग चला गया ग्रौर वहां रंभा के साथ रहने लगा। इस प्रकार कन्या के प्रताप से सुषेण को सशरीर स्वर्ग प्राप्त हुग्रा। इसलिए कन्या के जन्म पर दुख नहीं मनाना चाहिए।"

राजा कलिंगदत्त यह सुनकर बहुत प्रसन्न हुए ग्रौर ग्रपनी सुंदर कन्या का नाम उन्होंने कलिंगसेना रखा।

एक बार मायासुर की लड़की सोमप्रभा ग्राकाश में विचर रही थी। उसने ऊपर से कलिंगसेना को देखा। वह उसे देखते ही उसके प्रति प्रेम से भर उठी। ग्राकाश से उतरकर उसके घर ग्राई। उससे मित्रता करके वहीं रहने लगी। सोमप्रभा ने कलिंगसेना से कहा, "तुम राजकुमारी हो। तुम्हारी-मेरी मित्रता कैसे निभेगी? राजकुमार ग्रौर राजकुमारियों का स्वभाव दूसरी प्रकार का होता है। मैं तुम्हें एक कथा सुनाती हूं:

"पुष्करावती नगरी में गूढ़सेन नामक एक राजा था। उसके एक लड़का था। उस लड़के की एक बनिये के बेटे से मित्रता हो गई। राजकुमार का जब विवाह हुग्रा, तब वह बनिया मित्र भी बरात में गया। रात होने पर राजकुमार ने इक्षुमती नदी के किनारे ग्रपना डेरा डाला। राजकुमार तो सो गया, लेकिन बनिये के बेटे को नींद नहीं ग्राई। कुछ देर बाद उसने सुना कि ग्राकाश में कुछ स्त्रियां बात कर रही हैं। एक ने कहा, 'इस राजकुमार को एक माला मिलेगी, लेकिन जैसे ही वह उसे गले में डालेगा उसकी मृत्यु हो जायेगी।' दूसरी बोली, 'ग्रगर यह माला से बच भी गया, तो यह ग्राम का एक पेड़ देखेगा।

उसके फल खाने पर इसके प्राण निकल जायंगे।' उसके बाद तीसरी ने कहा, 'अगर उससे भी बच गया तो यह जिस घर में विवाह करने जायगा, वह घर ही उसके ऊपर गिर पड़ेगा और यह मर जायगा।' अंत में चौथी बोली, 'अगर तब भी यह नहीं मरा, तो जब अपनी पत्नी के पास जाकर यह पलंग पर बैठेगा, तब इसको सौ छींकें आयेंगी और उसी समय प्रत्येक छींक पर कोई व्यक्ति कहेगा "जीव नहीं" उसी समय इसकी मृत्यु हो जायेगी और जो ये बातें सुनकर राजकुमार से कहेगा वह भी तत्काल मर जायगा।' ये सब बातें सुनकर बनिये को बड़ी चिंता हुई। वह राजकुमार को बचाने का उपाय सोचने लगा। उसने पहले तीन संकटों से राजकुमार को किसी तरह बचा भी लिया। लेकिन जब राजकुमार अपनी पत्नी के पास गया,तब उसको बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा। फिर भी किसी तरह वह पलंग के नीचे जाकर छिप गया जब राजकुमार को छींकें आने लगीं, तब उसके मित्र ने बहुत धीरे से "जीव-जीव" कहा। राजकुमार उसे नहीं सुन सका। अब तो मित्र पलंग के नीचे से बाहर निकल आया। उसे देखकर राजकुमार क्रुद्ध हो उठा और उसको गिरफ्तार करवा दिया। सवेरे उसको प्राण-दंड की आज्ञा मिली। जब उसको वध करने के लिए ले जाया जा रहा था, तब उसने राजकुमार से बात करने की इच्छा प्रकट की। मिलने पर उसने सारा हाल सुना दिया। राजकुमार ने सब कुछ जानकर उसे छोड़ दिया। फिर उसका विवाह भी करा दिया और वे दोनों फिर सुख से रहने लगे। इस प्रकार हे राजकन्ये, वह राजकुमार छोटी-सी बात में ही अपने मित्र के प्राण लेने के लिए तैयार हो गया।"

कलिंगसेना ने यह बात सुनकर सोमप्रभा से कहा, "राजकुमार ऐसे हो सकते हैं, लेकिन राजकुमारियां ऐसी नहीं होतीं। तुमको मेरे बारे में ऐसी बात नहीं सोचनी चाहिए।" यह सुनकर सोमप्रभा ने अपने घर जाने की आज्ञा मांगी और चल पड़ी। कलिंगसेना ने देखा कि सोमप्रभा आकाश में उड़ गई है। उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। सोचने लगी मेरी सखी या तो अप्सरा है या विद्याधरी है, जो मुझसे मिलने मानुषी बनकर आती है।

: ३ :

# सोमप्रभा

दूसरे दिन सवेरे सोमप्रभा फिर आई और उसने कलिंगसेना को कठपुतलियां दीं। कलिंगसेना ने उसको गले लगाकर कहा, "हे सखी ! तुम्हारे चंद्रमुख को क्षण भर भी देखे बिना मैं व्याकुल हो जाती हूं। तुम्हारे पिता किस देव-जाति के हैं ? तुम किस वंश की हो ? तुम्हारा नाम क्या है ? ये काठ की पुतलियां किसलिए लाई हो ?" सोमप्रभा ने उत्तर दिया, "मैं मायासुर की लड़की सोमप्रभा हूं। राक्षस होते हुए भी मेरा पिता भगवान का पुजारी है। मेरे एक बहन भी है, जो ब्रह्मचारिणी है। उसका नाम स्वयंप्रभा है। मेरे पति का नाम नलकूबर है। वह कुबेर के पुत्र हैं। मेरे पिता ने ही इन कठपुतलियों को बनाया है। मेरे पिता ने इंद्र-सभा बनाई थी, इसलिए राक्षस उनसे बहुत रुष्ट हैं। उनसे अपनी रक्षा करने के लिए ही मेरे पिता विंध्याचल पर मायामंदिर नाम का घर बनाकर रहते हैं।" फिर उसने कलिंगसेना को अपने पिता के बनाये हुए अनेक मायावी यंत्र दिखाये। दोनों का स्नेह और भी बढ़ गया। अब सोमप्रभा कलिंगसेना को भी आकाश-विहार के लिए ले जाती थी। एक दिन वह बोली, "जब तक तुम्हारा विवाह नहीं होता है, तभी तक हमारी तुम्हारी मित्रता बनी रहेगी। इसलिए तुम अपना विवाह देख-भालकर करना। विवाह के बाद सास बहू को बहुत दुख देती हैं। इस बारे में मैं एक कहानी सुनाती हूं :

"पाटलिपुत्र में धनपाल नाम का एक बनिया रहता था। उसकी कन्या का नाम कीर्तिसेना था। मगध के रहनेवाले देवसेन नामक बनिये से उसका विवाह हुआ था। देवसेन का पिता पहल ही मर चुका था। इसलिए घर की देख-भाल उसकी मां पर ही थी। यह मां कीर्तिसेना को बहुत दुख पहुंचाती थी, लेकिन कीर्तिसेना ने अपने पति से कभी कुछ नहीं कहा। एक बार जब देवसेन विदेश गया हुआ था, तब उसकी मां ने कीर्तिसेना को तहखाने में बंद कर दिया और बहुत कम खाना देने लगी। एक दिन कीर्तिसेना तहखाने में से सुरंग बनाकर बाहर निकल गई। उसने साथ में कुछ धन भी ले लिया। अपने पति के पास जाने के लिए उसने राजकुमार का वेष बनाया। रात में जब वह एक जगह ठहरी, तो वहां उसने

बहुत से चोरों को देखा। डर के मारे वह एक पेड़ के खोखले में छिप गई। उस पेड़ पर एक राक्षसी रहती थी। रात में वह अपने बच्चों से कहने लगी, 'वसुदत्त-पुर में वसुदत्त नाम का एक राजा रहता है। उसके कान में एक कानखजूरा घुस गया है और वहां उसने अनेक बच्चे पैदा कर दिये हैं। उसका इलाज मेरे अति-रिक्त और किसीको नहीं मालूम। यदि राजा के सिर पर गर्म घी की मालिश करके उसे धूप में बिठा दिया जाय, फिर एक मिट्टी के घड़े पर छेददार मिट्टी का प्याला ढककर उसमें नरकुल ठूंस दिया जाय और फिर नरकुल को राजा के कान में लगा दिया जाय तो गरमी के कारण वे कनखजूरे नरकुल से होकर घड़े में आ जायंगे। इस बात का किसीको पता नहीं है। इसलिए राजा की मृत्यु जरूर होगी और तब हमको बहुत-सा मांस खाने को मिलेगा।'

"कीर्तिसेना ने उस खोखले में बैठे हुए सब कुछ सुन लिया। वह वसुदत्तपुर गई। वहां उसने उसी प्रकार राजा का इलाज किया। ठीक हो जाने पर राजा ने बहुत सा धन उसको भेंट में दिया। कीर्तिसेना ने वह धन राजा के पास ही रख दिया। स्वयं भी वहीं रहने लगी। कुछ दिनों बाद उसका पति भी वहीं आ गया। वह उससे मिली और आपबीती उसको सुनाई। इसके बाद वे दोनों वसुदत्तपुर में ही रहने लगे।"

यह कथा सुनाकर सोमप्रभा ने कलिंगसेना से कहा, "इसी तरह सास बहुओं को बहुत कष्ट देती हैं। तुम अपना विवाह देख-भालकर करना।" यह कहकर सोमप्रभा अपने घर चली गई।

: ४ :

## मदनवेग और कलिंगसेना

कुछ दिनों बाद मदनवेग नाम के एक विद्याधर ने आकाश-मार्ग से जाते हुए नीचे देखा तो उसको कलिंगसेना दिखाई दी। उसे देखकर वह उसके सौंदर्य पर मोहित हो गया। सोचने लगा—यह तो विद्याधरों की स्त्रियों और अप्सराओं से भी अधिक सुंदर है। लेकिन यह मानुषी है और मैं विद्याधर हूं। मेरा इसका संग

किस तरह हो ? फिर उसने अपनी विद्या के बल से जाना कि यह मानुषी नहीं है। वह तो अप्सरा है जो शाप-वश राजा कलिंगदत्त के घर पैदा हुई है। इसलिए मदन-वेग भगवान शंकर की तपस्या करने लगा। उसकी कठोर तपस्या से शिव प्रसन्न हुए और प्रकट होकर उन्होंने कहा, "कलिंगसेना जैसी सुंदरी के लिए योग्य पति राजा उदयन है। लेकिन वासवदत्ता के डर से उदयन उसके साथ विवाह करने में असमर्थ है। इसलिए जब तक उसका विवाह नहीं होता है, तब तक तुम उदयन का रूप बनाकर उसके साथ गंधर्व विवाह करके रह सकते हो।" यह सुनकर मदन-वेग कालकूट पहाड़ पर अपने घर चला गया। इधर एक दिन कलिंगसेना ने सोमप्रभा से कहा."आजकल मेरे पिता के पास अनेक राज्यों के दूत आते हैं, लेकिन उन्हें मेरे पिता वापस कर देते हैं। केवल श्रावस्ती के राजा प्रसेनजित के दूत का ही उन्होंने सत्कार किया है। मुझे लगता है कि मेरा विवाह प्रसेनजित से कर दिया जायगा।" सोमप्रभा बोली, "प्रसेनजित तो प्रौढ़ता को भी पार कर चुका है, इस-लिए वह तुम्हारे योग्य नहीं है। तुमको तो अपना विवाह राजा उदयन से करना चाहिए।" कलिंगसेना ने जब राजा उदयन को प्राप्त करने का उपाय पूछा तो सोम-प्रभा ने कहा, "यह तो सब भाग्य के आधीन है। मैं तुम्हें एक कथा सुनाती हूं :

"उज्जैन के राजा विक्रमसेन के एक कन्या थी। उसका नाम तेजस्वती था। वह किसी भी पुरुष को अपना पति होने के योग्य नहीं समझती थी। एक बार उसने महल के पास से जाते हुए एक व्यक्ति को देखा। वह उसके मन को भा गया। उसने अपनी एक दूती को उस व्यक्ति के पास भेजकर कहलवाया कि रात में वह मंदिर में आकर उससे मिले। उस रात को ही एक दूसरे राजा के राजकुमार सोमदत्त को अपना घर छोड़कर उज्जयनी में विक्रमसेन से मिलने आना पड़ा। इस राजकुमार के पिता मर गये थे और भाइयों ने उसे घर से निकाल दिया था। रास्ते में रात हो जाने के कारण वह मंदिर में ठहर गया था। राजकुमारी तेजस्वती रात को अपने बुलाये हुए व्यक्ति से मिलने के लिए मंदिर में गई। वह व्यक्ति तब तक वहां नहीं आया था। तेजस्वती ने मंदिर में ठहरे हुए राजकुमार को ही वह व्यक्ति समझा और उसके साथ वह वहां रही। भेद खुलने पर भी उसे अधिक दुख नहीं हुआ, क्योंकि सोमदत्त भी उस व्यक्ति के समान ही सुंदर था। सवेरे उठकर सोम-दत्त राजा के पास सहायता के लिए गया। राजा ने अपने मित्र के पुत्र की सहायता करने का वचन दिया। फिर अपनी पुत्री तेजस्वती से उसका विवाह करने का परा-

मर्श भी रानी से किया। राजा को उस मंदिरवाली बात का भी पता चल गया। उस समय राजा के एक मंत्री ने राजा से कहा, 'भाग्यवान लोगों के कामों में भाग्य ही सबसे बड़ी सहायता करता है। मैं आपको एक कथा सुनाता हूं :

" 'किसी गांव में एक ब्राह्मण रहता था। उसका नाम हरिशर्मा था। वह गरीब था और मूर्ख भी। उसने स्थूलदत्त नामक एक बनिये के यहां नौकरी कर ली। एक बार इस बनिये के घर विवाह का उत्सव हो रहा था। उसमें खाने-पीने की बहुत सी चीजें बनीं, लेकिन हरिशर्मा की ओर किसी ने ध्यान नहीं दिया। तब उसने अपनी पत्नी से कहा, "मैं एक सर्वज्ञ पंडित बनता हूं। तुम यह बात सबसे कह आना।" इसके बाद हरिशर्मा ने दूल्हे के घोड़े को चुराकर छिपा दिया। सवेरे सब लोग घोड़े को खोजने लगे तब हरिशर्मा की पत्नी ने कहा, "मेरा पति सर्वज्ञ है, उससे पूछो।" हरिशर्मा से पूछने पर घोड़े का पता लग गया और वह प्रसिद्ध हो गया। एक बार राजा के घर चोरी हुई। राजा ने भी हरिशर्मा को बुलाकर चोरी का पता लगाने को कहा। हरिशर्मा ने एक दिन का समय मांगा और उस रात वह राजा के महल के पड़ौस में ही सोया। उसे कल की बहुत चिंता थी। वह समझ नहीं पा रहा था कि क्या करे। इस चिंता में वह कुछ बकने लगा, "हे जिह्वा रानी! अब तो तुम्हें मरना ही पड़ेगा।" यह बात वह अपनी जीभ को संबोधित करके कह रहा था; लेकिन जिह्वा नाम की दासी ने, जिसने चोरी की थी, समझा कि इस ब्राह्मण को मेरी चोरी का पता चल गया है। डर के मारे वह उसके पास आकर गिड़गिड़ाने लगी। हरिशर्मा ने सब-कुछ जान कर दूसरे दिन राजा को चोरी का रहस्य बता दिया। तब राजा के मंत्रियों में खलबली मच गई। उन्होंने कहा, "इस ब्राह्मण की परीक्षा लेनी चाहिए।" उसकी परीक्षा के लिए घड़े में एक मेंढ़क बंद करके रख दिया गया और उससे पूछा गया कि उसमें क्या है? हरिशर्मा बहुत घबराया। बचपन में उसके पिता उसको मेंढ़क के नाम से पुकारते थे। इसलिए वह कहने लगा, "हे मेंढ़क! अब तुझको मरना ही पड़ेगा।" यह सुनकर राजा और मंत्री बहुत प्रसन्न हुए और उसे बहुत-सा पुरस्कार दिया।' "

"यह कथा सुनाकर मंत्री ने राजा विक्रमसेन से कहा, 'सोमदत्त और आपकी कन्या तेजस्वती का मिलन इसी भांति भाग्य का प्रभाव है। इसलिए आपको इन दोनों का विवाह कर देना चाहिए।' विक्रमसेन ने सोमदत्त और तेजस्वती का विवाह कर दिया। बाद में विक्रमसेन की सहायता से सोमदत्त ने अपना खोया हुआ राज्य

भी पा लिया।"

सोमप्रभा बोली, "सो हे कलिंगसेना! अगर भाग्य साथ देगा तो उदयन से तेरी भेंट अवश्य होगी।"

यह कहकर सोमप्रभा आकाश-मार्ग से अपने घर चली गई।

## : ५ :

## कलिंगसेना और उदयन

दूसरे दिन सवेरे जब सोमप्रभा आई तब कलिंगसेना ने कहा, "मेरा विवाह प्रसेनजित से तय हो रहा है, लेकिन मैं तो उदयन से प्रेम करती हूं। इसलिए पहले मुझे प्रसेनजित को दिखाओ और बाद में उदयन के भा दर्शन कराओ।" सोमप्रभा बोली, "मैं तुमको उदयन के दर्शन करा सकती हूं। लेकिन मुझे डर है कि उसको देखकर तुम फिर वापस नहीं आओगी। इसलिए मैं ऐसा नहीं करूंगी।" कलिंगसेना ने कहा, "तुम उदयन को यहीं ले आओ। इस विषय में तुम्हें एक कहानी सुनाती हूं :

"बाणासुर की कन्या का नाम ऊषा था। उसके तप से प्रसन्न होकर पार्वतीजी ने उसे वरदान दिया—'स्वप्न में जिसको तू पति के रूप में देखेगी वही तेरा पति होगा।' ऊषा ने स्वप्न देखा कि एक देवकुमार ने उससे गंधर्व विवाह किया है। लेकिन सवेरे उसको अपने पास न पाकर बहुत दुखी हुई। उसने अपनी सखी चित्रलेखा से सब हाल कहा। चित्रलेखा ने कहा, 'संसार में जितने सुंदर राजकुमार हैं मैं उनके चित्र बनाती हूं। उन चित्रों देखकर तुम स्वप्नवाले व्यक्ति को पहचान लेना।'

"चित्रलेखा ने अनेक सुंदर युवकों के चित्र बनाये। ऊषा ने जिस चित्र को पहचाना, वह चित्र अनिरुद्ध का था। चित्रलेखा ने कहा, 'तुमने बहुत सुंदर पति पसंद किया है। यह भगवान कृष्ण का पोता है।' वह विद्या के बल से सोते हुए अनिरुद्ध को ऊषा के महल में उठा लाई और इस प्रकार उसने ऊषा को मनचाहा पति पाने में सहायता दी। इसलिए सोमप्रभा, तुम मेरी सखी हो; तुम भी मेरी सहायता करो।"

सोमप्रभा ने कहा, "मैं मानुषी नहीं हूं। देवजाति की होने के कारण किसी पुरुष को छू नहीं सकती। हां, तुमको उसके पास ले चलूंगी।" उसने ऐसा ही किया। पहले उसने राजा प्रसेनजित को दिखाया, फिर वह राजा उदयन के यहां पहुंची। कालिंगसेना राजा उदयन को देखते ही बोली, "मैं एक क्षण भी नहीं ठहर सकती। मुझे आज ही राजा उदयन से मिला दो।" सोमप्रभा ने कहा, "आज का दिन अच्छा नहीं है। आज बगीचे में ठहर जाओ। मेरे वापस लौटने की प्रतीक्षा करो।" यह कहकर सोमप्रभा वहां से चली आई। लेकिन कलिंगसेना को एक क्षण भी उदयन से मिले बिना रहना कठिन था। उसने तुरंत ही अपना दूत उदयन के पास भेजा। राजा उदयन ने दूत का सम्मान किया और कलिंगसेना के प्रस्ताव को मान लिया। राजा ने अपने मंत्री यौगंधरायण से सारी बात कही और पूछा, "विवाह की शुभ तिथि कब और कितनी शीघ्र आनेवाली है?" यौगंधरायण ने सोचा कि यदि राजा का विवाह कलिंगसेना के साथ हो जाता है, तो राजा उस जैसी रूपवती के साथ आनंद-विहार में ही मग्न हो जायगा। इसलिए उसने सोचा कि विवाह में देर लगने की कोई युक्ति निकाली जाय। तब उसने राजा उदयन से कहा, "शुभ तिथि का पता तो ज्योतिषी बता सकते हैं और विवाह जैसे कामों को अच्छे ज्योतिषियों से पूछकर ही करना चाहिए। इस काम में समय लगेगा। तब तक आप कालिंगसेना को अतिथि बनाकर उसके ठहरने का प्रबंध करा दें।" यह सुनकर राजा ने कलिंगसेना के ठहरने का प्रबंध एक मंदिर में करा दिया। कलिंगसेना ने समझा कि अब उसका विवाह शीघ्र ही उदयन से हो जायगा। उधर यौगंधरायण ने ज्योतिषियों से कह दिया कि विवाह की तिथि कई दिनों के बाद की निकालें और वासवदत्ता के पास जाकर वह बोला, "यदि राजा तुमसे विवाह के बारे में सलाह मांगें, तो मना मत करना क्योंकि मना करने से राजा की उत्सुकता और हठ दोनों ही बढ़ जायेंगे।" उसने पद्मावती को भी यही युक्ति बता दी। यौगंधरायण इस प्रकार सबको सिखाकर अपने घर चला गया।

: ६ :

# कदलीगर्भा की कहानी

दूसरे दिन यौगंधरायण जब राजा उदयन के पास आया तो बोला, "ज्योतिषियों को आज ही बुलाकर विवाह की तिथि पूछ ली जाय।" राजा ने ऐसा ही किया। ज्योतिषियों ने कहा, "अनुकूल लग्न छः महीने के बाद पड़ता है।" यौगंधरायण ने राजा के सामने ज्योतिषियों पर बनावटी क्रोध प्रकट किया और कहा, "गणक को बुलाकर पूछा जाय।" गणक ने भी ज्योतिषियों की बात का समर्थन किया। तब यौगंधरायण बोला, "महाराज अब क्या किया जाय, मजबूरी है।" वहां से वह ज्योतिषियों के साथ कलिंगसेना के पास गया। वह तो छः महीने बाद भी विवाह करने को तैयार थी। यह सब प्रबंध करके यौगंधरायण चला गया। जाते समय वह अपने एक मित्र योगेश्वर को कलिंगसेना की छिपकर देख-भाल करने के लिए छोड़ गया।

एक दिन सोमप्रभा कलिंगसेना के पास आई। उसने आते ही कलिंगसेना से कहा, "मुझे सब बातों का पता चल गया है। यह ठीक ही है। अशुभ मुहूर्त में कोई शुभ काम नहीं करना चाहिए। उसका परिणाम बुरा होता है। इस संबंध में मैं एक कहानी सुनाती हूं :

"विष्णुदत्त नाम का एक ब्राह्मण एक बार विद्या प्राप्त करने के लिए वल्लभपुरी गया। सात ब्राह्मण-पुत्र भी उसके साथ हो लिये। विष्णुदत्त कुछ पढ़ा-लिखा भी था, लेकिन दूसरे सातों ब्राह्मण-पुत्र मूर्ख थे। उन सातों ने तय किया कि किसी भी दशा में वे एक-दूसरे का साथ नहीं छोड़ेंगे। मार्ग में कुछ अपशकुन होने पर विष्णुदत्त ने कहा, 'हमको घर लौट चलना चाहिए।' लेकिन वे सातों तैयार नहीं हुए। कुछ दूर आगे जाने पर फिर अपशकुन हुआ। विष्णुदत्त ने फिर कहा, 'हमें अब भी लौट जाना चाहिए।' उन सातों ने फिर विरोध किया और कहा, 'तुम बार-बार हमें टोकते हो, इसलिए सबसे बड़ा असगुन तो तुम्हीं हो।' यह सुनकर विष्णुदत्त चुप हो गया। रास्ते में रात होने पर वे सब एक गांव में ठहर गये। यह गांव निषादों का था। जिसके घर ये लोग ठहरे थे, उसकी स्त्री युवती थी। रात में वे सातों मूर्ख सो गये, लेकिन विष्णुदत्त जाग रहा था। उसने दरवाजे के छेद में

से देखा कि एक व्यक्ति उस युवती के पास आया। उन दोनों के सो जाने के बाद उस स्त्री का पति भी आ गया। उसने अपनी पत्नी के प्रेमी को देखा, तो तलवार से उसे काट डाला और चुपचाप अपने पलंग पर जाकर सो गया। जब वह युवती जागी तो सब-कुछ समझ गई। उसने लाश को उठाया और बाहर एक गड्ढे में दबा दिया। विष्णुदत्त सब-कुछ देखता रहा। लौटकर उस युवती ने अपने पति को मार डाला और जोर से रोकर कहने लगी, 'मेरे घर ठहरे हुए इन यात्रियों ने मेरे पति को मार डाला है।' गांव के लोग इकट्ठा होकर उन ब्राह्मणों को पीटने लगे। तब विष्णुदत्त ने सारी बात बता दी और जहां पर उस युवती ने अपने प्रेमी की लाश को दबाया था वह स्थान भी दिखा दिया। अब गांववालों को विश्वास हो गया और उन्होंने उन ब्राह्मणों को मुक्त कर दिया।"

यह कथा सुनाने के बाद सोमप्रभा ने कहा, "इस तरह अशुभ क्षणों में किया हुआ कार्य दुखदायी होता है। तुमने अशुभ समय में ही उदयन से मिलने के लिए घर से प्रस्थान किया और दूत भी शुभ मुहूर्त्त में नहीं भेजा था। इसीलिए तुम्हारे विवाह में देर हो रही है। लेकिन अब तुमको अपने चरित्र का ध्यान रखना चाहिए, क्योंकि देवता भी तुमसे प्रेम करते हैं। विशेषरूप से तुम्हें यौगंधरायण से सतर्क रहना चाहिए; क्योंकि हो सकता है कि वह राज्य के हित की दृष्टि से तुम्हारे विवाह में बाधा पहुंचाये। तुम्हें उदयन की दूसरी पत्नियों का भी विचार करना चाहिए। इस संबंध में एक कथा सुनो : प्राचीन समय में मंकणक नाम के एक ऋषि थे। इक्षुमती नदी के किनारे उन्होंने एक आश्रम बनवाया था। एक बार वह शीर्षासन द्वारा तपस्या कर रहे थे। उस समय आकाश मार्ग से मेनका नाम की अप्सरा जा रही थी। उसे देखकर मुनि का मन विचलित हो उठा। परिमाण-स्वरूप एक कन्या का जन्म हुआ। उस कन्या का नाम कदलीगर्भा रखा गया। जब वह बड़ी हुई तो एक बार राजा दृढ़वर्मा शिकार खेलता हुआ उस स्थान पर आया और कदलीगर्भा के सौंदर्य को देखकर उस पर मुग्ध हो गया। उसने मुनि से उस कन्या का परिचय पूछा। मुनि ने कन्या के जन्म का सारा हाल बता दिया और राजा का मन देखकर उसके साथ उसका विवाह भी कर दिया। उस आश्रम में विवाह-उत्सव बड़ी धूमधाम से मनाया गया। उसमें अप्सराओं ने भी भाग लिया। जब कदलीगर्भा बिदा होने लगी, तो अप्सराओं ने उसको सरसों के दाने भेंट किये और कहा, 'इनको रास्ते में बिखेरती जाना। अगर कभी तुम्हारा पति तुमको छोड़ दे, तो तुम इनको देखकर अपने घर

*तक वापस आ सकती हो ।'*

"इसके बाद कदलीगर्भा अपने पति के साथ चली गई । राजा दृढ़वर्मा उस पर इतना अनुरक्त हुआ कि अपनी दूसरी रानियों का ध्यान बिल्कुल ही छोड़ दिया । यह देखकर पटरानी ने राजा का मन फेरने के लिए एक संन्यासिनी को सहायता के लिए बुलाया । संन्यासिनी ने यह काम पूरा करने का वचन तो दे दिया, लेकिन घर आकर सोचने लगी—इस काम को हाथ में लेने से प्राणों को खतरा है । इसलिए उसने अपने एक-मित्र नाई को बुलाकर उससे यह काम करने को कहा । नाई ने संन्यासिनी से कहा, 'तुम्हें केवल दो काम करने होंगे । बाकी मैं कर लूंगा । एक तो तुम पटरानी से कहकर कदलीगर्भा के महल में कुछ हड्डियां फिकवा दो और दूसरे राजा के किसी वृद्ध पुरुष को अपनी ओर मिला लो, जो राजा से जाकर कहे कि नई रानी डाकिनी है । ऐसा करने से राजा का मन कदलीगर्भा से फिर जायगा ।' संन्यासिनी ने ऐसा ही किया और राजा ने कदलीगर्भा को डाकिनी समझकर छोड़ दिया ।

"कदलीगर्भा सरसों के जिन दानों को रास्ते में बिखेरती आई थी, उन्हींके सहारे-सहारे वह अपने घर लौट गई । उसने अपने मुनिपिता से सारी कथा कह सुनाई । मुनि ने अपने तपोबल से सारा रहस्य समझ लिया और कदलीगर्भा को अपने साथ लेकर राजा के पास गये । उन्होंने राजा को पटरानी के षड्यंत्र की सारी कथा समझाई । तब राजा पटरानी को छोड़कर कदलीगर्भा के साथ रहने लगा ।"

यह सुनाकर सोमप्रभा ने कहा, "इस प्रकार सौतें शुद्ध चरित्र पर भी आरोप लगा देती हैं । इसलिए राजा उदयन की दूसरी रानियों का तुमको ध्यान रखना चाहिए ।" इतना समझाकर सोमप्रभा अपने घर चली गई ।

: ७ :

# कलिंगसेना का विवाह

विवाह में देर होने के कारण कलिंगसेना बहुत दुखी रहने लगी । राजा उदयन भी बेचैन हो एक दिन वासवदत्ता के महल में गया । उसने बड़े प्रेम से राजा का स्वागत किया । जब उदयन ने कलिंगसेना के साथ अपने विवाह के बारे में

पूछा तो वासवदत्ता ने अपनी स्वीकृति दे दी। इसी तरह पद्मावती ने भी विवाह के पक्ष में सिर हिला दिया। तब राजा ने यौगंधरायण को बुलाकर कहा, "दोनों रानियां इस नये विवाह के पक्ष में हैं।" यौगंधरायण बोला, "आपकी दोनों रानियां विरोध तो नहीं करती हैं, किंतु मुझे लगता है कि जब अन्य किसी दूसरी स्त्री पर प्रेम प्रकट करेंगे तो वे अपने प्राण दे देंगी। सती स्त्रियों को अपने प्राणों का भी भय नहीं होता है। इस विषय में मैं आपको एक कहानी सुनाता हूं :

*"दक्षिण की ओर गोकर्णपुर नाम का एक स्थान है। वहां श्रुतसेन नाम का* राजा राज्य करता था। वह सदा इस खोज में रहता था कि कोई उसके योग्य स्त्री मिल जाय। एक दिन अग्निशर्मा नामक ब्राह्मण ने राजा से कहा, 'मैंने दो अद्भुत बातें देखी है। उन्हें मैं आपको सुनाना चाहता हूं।' राजा की आज्ञा से उसने इस प्रकार कहना शुरू किया : 'एक समय मैं तीर्थयात्रा करने गया था। पंचतीर्थ से आगे जाने पर एक खेत में मैंने एक किसान को गाना गा-गाकर हल चलाते देखा। उधर से एक संन्यासी आ रहा था। संन्यासी ने किसान से रास्ता पूछा। किसान ने उसका कोई उत्तर नहीं दिया। इस पर संन्यासी किसान को गाली देने लगा। तब किसान बोला, "तुम संन्यासी होकर भी धर्म को नहीं समझ सके हो और मैंने बिना पढ़े-लिखे ही समझ लिया है।" इस पर संन्यासी ने पूछा, "तूने कैसे धर्म के रहस्य को समझ लिया है?" इस पर किसान ने एक कथा सुनाई—"मेरे प्रांत में ब्रह्मदत्त, सोमदत्त और विष्णुदत्त नाम के तीन ब्राह्मण रहते हैं। वे तीनों सगे भाई हैं। वे मेरे जमींदार हैं। ब्रह्मदत्त और सोमदत्त का विवाह हो गया है लेकिन विष्णुदत्त अभी कुंआरा है। एक दिन दोनों भाभियां उस पर मोहित हो गईं, लेकिन विष्णुदत्त ने उनकी ओर ध्यान नहीं दिया। इस पर दोनों भाभियों ने उसके भाइयों से उसकी झूठी शिकायत कर दी। भाइयों ने विष्णुदत्त को दंड देने की दृष्टि से सांप का बिल पाटने की आज्ञा दी। विष्णुदत्त जब सांप की बांबी को खोदकर बराबर कर रहा था तो उसे एक गड़ा हुआ खजाना मिल गया। उसने सारा धन अपने भाइयों को लाकर दे दिया। लेकिन भाइयों ने उसके हाथ-पैर कटवा डाले। इस पर भी विष्णुदत्त को क्रोध नहीं आया और उसके इस धैर्य के प्रताप से उसके हाथ-पैर ठीक हो गये। तब से वह विष्णुदत्त मेरे ही पास रहता है। मैंने क्रोध छोड़ दिया है, पर तुम संन्यासी होकर भी क्रोध करते हो। मैंने क्रोध को जीतकर स्वर्ग को भी जीत लिया है।" इतना कहकर वह किसान सशरीर स्वर्ग चला गया। दूसरी अद्भुत

बात यह है कि जब मैं आगे चलकर राजा वसंतसेन के राज्य में गया तो, वहां सदाव्रत बंट रहा था। वहां मैंने एक परम सुंदरी राजकन्या को देखा। उस राजकुमारी का नाम विद्युत्द्योता है। वह आपके योग्य है।' यह सुनकर राजा श्रुतसेन ने प्रयत्न करके विद्युत्द्योता से विवाह किया। कुछ दिनों बाद वह एक स्वयंवर में भी गया और वहां उसने एक बनिये की सुंदरी लड़की से विवाह कर लिया। इस आघात से विद्युत्द्योता मर गई। राजा भी उसके शोक में मर गया और नव-विवाहिता वणिक-पुत्री उसके साथ सती हो गई। इस प्रकार सारे राज्य का नाश हो गया। अगर अब आप कलिंगसेना से विवाह करेंगे, तो वासवदत्ता और पद्मावती भी अपने प्राण दे देंगी और आपका पुत्र नरवाहनदत्त भी संकट में पड़ जायगा।"

इस बात का राजा उदयन पर बड़ा प्रभाव हुआ और उसने कलिंगसेना के साथ विवाह करने का विचार छोड़ दिया। इधर एक दिन योगेश्वर ने यौगंधरायण से आकर कहा, "कलिंगसेना जिस महल में रहती है, उस महल के ऊपर आकाश में कुछ शब्द सुनाई पड़ते हैं, लेकिन मैं उनको समझ नहीं पाता हूं।" यौगंधरायण बोला, "बुद्धि का प्रयोग करने से सब बातें समझी जा सकती हैं। बिना बुद्धि के पुरुषार्थ भी बेकार हो जाता है।" इस संबंध में उसने एक कहानी सुनाई :

श्रवस्ती नगरी में प्रसेनजित राजा रहता था। वहीं नगर में दूसरे देश का एक ब्राह्मण एक दूसरे ब्राह्मण के घर में रहता था। वह बनियों का पुरोहित था। उसे जो दक्षिणा मिलती थी, उसको वह जोड़ा करता था। इस प्रकार उसने दो हजार अशर्फियां जोड़ी थीं। उनको वह एक जंगल में एक पेड़ के नीचे गाड़ आया था। वह प्रति दिन जाकर अपनी गाड़ी हुई अशर्फियों को देखता था। एक दिन उसने देखा कि पेड़ की जड़ खुदी पड़ी है और अशर्फियां गायब हैं। दुख के मारे उसने किसी तीर्थस्थान में जाकर आत्महत्या करने की बात सोची। राजा को किसी तरह इस ब्राह्मण के हाल का पता चल गया। उसने ब्राह्मण से पूछा, "तुमने किस पेड़ के नीचे अशर्फियां गाड़ी थीं?" ब्राह्मण ने बताया, "नागबला पेड़ की जड़ में।" राजा ने कहा, "तुम धीरज रखो। मैं तुम्हारी अशर्फियों का पता लगवा दूंगा और अगर वे नहीं मिलीं तो अपने पास से दो हजार अशर्फियां दे दूंगा।" फिर राजा ने सिर दर्द का बहाना करके कई वैद्यों को चिकित्सा के लिए बुलवाया। वह हर वैद्य से पूछता था, "आजकल तुम्हारे कितने रोगी हैं और उनको क्या-क्या दवा देते हो?" एक वैद्य ने बताया, "मैंने अपने एक रोगी को नागबला को दवा के रूप में बताया

है। मेरे रोगी का नाम मातृदत्त है।" राजा ने मातृदत्त को बुलवाकर पूछा, "तुम्हारे लिए नागबला कौन लाता है?" मातृदत्त ने बताया, "मेरा नौकर।" तब राजा ने उस नौकर को बुलाकर कहा, "तुमने जो अशर्फियां नागबला खोदते हुए पाई थीं, वे इस ब्राह्मण की हैं। उन्हें लाकर इस ब्राह्मण को दे दो।" इस प्रकार राजा ने बुद्धि के प्रयोग से ब्राह्मण की अशर्फियों को खोज निकाला।

यह कथा सुनाकर यौगंधरायण ने योगेश्वर से कहा, "अगर तुम बुद्धि लगा कर काम करो तो कलिंगसेना के दोष का भी पता लगा सकते हो।"

योगेश्वर फिर अपने काम में लग गया। एक दिन मदनवेग विद्याधर उदयन के रूप में कलिंगसेना के पास आया। इस विद्याधर को शिव का वरदान प्राप्त था। कलिंगसेना ने उसे उदयन समझकर उसका बड़ा स्वागत किया। यह सब देखकर योगेश्वर ने यौगंधरायण से आकर कहा, "वहां तो महाराज स्वयं पहुंच गये हैं।" यौगंधरायण ने कहा, "पहले तुम उदयन को महल में अच्छी प्रकार से देख लो फिर कलिंगसेना के पास आनेवाले उदयन से उसका मिलान करना।" यौगंधरायण ने युक्तिपूर्वक रानियों के महल में योगेश्वर को राजा उदयन को देखने का पूरा अवसर दिया। बाद में योगेश्वर कलिंगसेना के महल में गया और उसने देखा, विद्याधर मदनवेग अपने असली रूप में कलिंगसेना के साथ सो रहा है। उसने आकर यौगंधरायण से सारी बात कह दी। यौगंधरायण राजा उदयन को साथ लेकर रात में ही कलिंगसेना के महल में गया। राजा उदयन ने देखा कि कलिंगसेना के साथ मदनवेग सो रहा है। वह क्रोध के मारे मदनवेग को मारने दौड़ा, लेकिन मदनवेग आकाश में उड़कर भाग गया। इतने में कलिंगसेना जाग गई और उसने देखा कि राजा उदयन मंत्री के साथ सामने खड़े हैं। उसने कहा, "अभी-अभी तो आप मेरे पास थे अब मंत्रियों को कहां से आ पहुंचे।" तब यौगंधरायण बोला, "हे कलिंगसेना! तुमको किसीने उदयन बनकर धोखा दिया है और गंधर्व विवाह कर लिया है। इसलिए अब राजा उदयन तुम्हारे साथ विवाह नहीं करेंगे।" कलिंगसेना रो पड़ी। बोली, "आपको क्या हो गया है? मेरे साथ गंधर्व विवाह करके भी आप मुझको ऐसे भूले जा रहे हैं, जैसे दुष्यंत शकुंतला को भूल गये थे।" उदयन बोला, "मैं इससे पहले तुम्हारे महल में कभी नहीं आया। इसलिए तुम्हारे साथ गंधर्व विवाह की बात झूठी है। तुमको भ्रम हो गया है।"

यह कहकर राजा उदयन मंत्रियों सहित चला आया। कलिंगसेना निराश होकर रोने लगी और आकाश की ओर प्रार्थना करते हुए बोली, "जिसने भी उदयन बनकर मेरे साथ गंधर्व विवाह किया है, वह मेरे सामने आये। अब मैं उसकी ही पत्नी हूं।" यह सुनकर मदनवेग आकाश से उतरकर उसके सामने आ खड़ा हुआ और उसने अपनी सारी कथा कह सुनाई। उसके बाद मदनवेग और कलिंगसेना पति-पत्नी के रूप में रहने लगे।

: ८ :

# नरवाहनदत्त और मदनमंचुका

कुछ समय बाद एक रात राजा उदयन को कलिंगसेना की इतनी याद आई कि वह उसी समय हाथ में तलवार लेकर उसके घर पहुंचा। उस समय घर पर वह अकेली ही थी। उसने राजा का विधिवत स्वागत-सत्कार किया। तब राजा ने उससे प्रेम की याचना की। कलिंगसेना ने कहा, "मैं अब दूसरे की पत्नी हूं। आपसे प्रेम नहीं कर सकती। मैंने अपनी सखी के मना करने पर भी अशुभ तिथि में आपसे मिलने का प्रयत्न किया था, उसका ही फल मुझे मिला है। भाई-बंधुओं के मना करने पर भी जो स्त्री स्वेच्छाचार करती है, वह संकट में पड़ती है। कुमारियों की दशा तो और भी खराब होती है। मैं आपको इस संबंध में एक कहानी सुनाती हूं : प्राचीन समय में चेदि नामक देश में इंद्रदत्त नाम का एक राजा रहता था। वह एक बार किसी तीर्थ पर गया। वहां उसने नहाते हुए बनिये की एक बहुत रूपवती स्त्री को देखा। वह उस पर मुग्ध होकर उसकी खोज में लग गया। खोजते-खोजते वह एक रात उसके घर भी पहुंच गया और उससे प्रेम-याचना करने लगा। उस स्त्री ने राजा की इस याचना को ठुकरा दिया, लेकिन राजा नहीं माना। वह उसके साथ बलात्कार करने लगा। तब उसने प्राण त्याग दिये। यह देखकर राजा को बहुत ग्लानि हुई और कुछ दिनों बाद उसका भी देहांत हो गया।"

यह कथा सुनाकर कलिंगसेना ने उदयन को समझाया और वापस कर दिया। इसी बीच मदनवेग आ गया था और उन दोनों की बातें छिपकर सुन रहा था। उसने कलिंगसेना की बहुत प्रशंसा की। दोनों में पहले से भी अधिक

स्नेह बढ़ गया। इधर राजा उदयन भी कलिंगसेना का ध्यान छोड़कर अपने राज-काज में मन लगाने लगा। कुछ दिनों बाद पता लगा कि कलिंगसेना मां बनने-वाली है। तब मदनवेग ने कहा, "देव-जाति के लोग गर्भवती पत्नी के साथ नहीं रहते हैं, इसलिए मैं अब स्वर्ग जा रहा हूं। जब भी तुम मेरी याद किया करोगी, मैं आ जाया करूंगा।" यह कहकर मदनवेग स्वर्ग चला गया। इधर कामदेव की पत्नी रति ने शिव को अपनी तपस्या से प्रसन्न कर लिया और वर मांगा, "मेरा पति फिर से सशरीर जन्म ले।" शिव बोले, "कामदेव उदयन के पुत्र नर-वाहनदत्त के रूप में पैदा हो चुका है। उसने अधिक अपराध किया था, इसलिए वह एक स्त्री के पेट से पैदा हुआ है, लेकिन तुमने मेरी पूजा की है। तुम धरती पर किसी स्त्री के पेट से नहीं पैदा होगी। फिर भी तुम्हारा जन्म धरती पर होगा।" उसके बाद शिव ने ब्रह्मा को समझाया कि जब कलिंगसेना के पुत्र पैदा हो, तो उसे उठा-कर ले आना और रति को एक सुंदर कन्या बना कर रख आना। ब्रह्मा ने ऐसा ही किया। कलिंगसेना के पुत्री का जन्म हुआ है, यह सुनकर यौगंधरायण ने राजा उदयन से कहा, "मुझे ऐसा लगता है कि कलिंगसेना के जो लड़की पैदा हुई है, वह रति का अवतार है और वह कामदेव के अवतार नरवाहनदत्त की पत्नी बनेगी।"

फिर उसने एक कथा सुनाई : विरूपाक्ष नाम का कुबेर का एक अनुचर था। मथुरा में एक स्थान पर बड़ा खजाना गड़ा हुआ था। विरूपाक्ष का उसको पता था। इसलिए उसने एक यक्ष को उस खजाने पर पहरा देने के लिए भेज दिया था। हर समय वह यक्ष उस खजाने पर पहरा देता था। एक बार पाशुपत नाम का एक ब्राह्मण हाथ में चर्बी का दीपक लेकर खजानों की खोज में घूम रहा था। जब वह वहां आया, तो उसका दीपक गिर पड़ा। वह समझ गया कि यहां पर खजाना गड़ा है। कुछ ब्राह्मणों को लाकर उसने उस स्थान की खुदाई शुरू कर दी। विरूपाक्ष की आज्ञा से यक्ष ने उन सबको मार डाला। जब कुबेर ने यह सुना, तो यक्ष से उसने कहा, "तूने ब्रह्म-हत्या की है। इस पाप के कारण तेरा जन्म पृथ्वी पर होगा।" तब वह यक्ष मृत्युलोक में एक धनवान ब्राह्मण के घर पैदा हुआ। उस यक्ष की दुखी पत्नी ने कुबेर से विनती की कि उसको भी उसके पति के पास मृत्युलोक में भेज दिया जाय। कुबेर ने कहा, "जिस ब्राह्मण के घर यक्ष पैदा हुआ है, वहीं एक दासी की तू पुत्री बनेगी। लेकिन तू उसके पेट से नहीं पैदा होगी।"

एक दिन उस ब्राह्मण की एक दासी ने दरवाजे पर एक नवजात कन्या को पड़ा पाया। ब्राह्मण ने उस कन्या को देखकर दासी से कहा, "यह दिव्य कन्या है। इसका पालन-पोषण मेरे घर पर ही कर। जब यह बड़ी होगी, तो मैं अपने पुत्र का विवाह इसके साथ ही कर दूंगा।"

बड़ा होने पर उन दोनों का विवाह कर दिया गया। आनंद से अपना जीवन बिताने के बाद जब उस ब्राह्मण-पुत्र रूपी यक्ष की मृत्यु हुई, तो उसकी पत्नी भी उसके साथ सती हो गई। इस तरह वह यक्ष अपनी पत्नी के पुण्य के प्रभाव से फिर कुबेर-लोक में पहुंच गया।

यह कथा सुनाकर यौगंधरायण ने कहा, "यह लड़की भी कलिंगसेना के पेट से उत्पन्न नहीं हुई। यह कोई दिव्य कन्या है और नरवाहनदत्त की पत्नी बनने योग्य है।"

कलिंगसेना ने अपनी पुत्री का नाम मदनमंचुका रखा। एक बार वासवदत्ता ने मदनमंचुका को अपने घर बुलाया। नरवाहनदत्त भी वहां मौजूद था। दोनों बालक बड़े सुंदर लग रहे थे। धीरे-धीरे दोनों साथ-साथ खेलने लगे। दोनों को देखकर सब लोग बहुत प्रसन्न हुए।

जब नरवाहनदत्त बड़ा हुआ, तो राजा उदयन ने उसको युवराज बना दिया। साथ ही मरुभूति को मंत्री, हरिशिख को सेनापति, तपंतक को युवराज का मित्र और गोमुख को सेवकों का स्वामी बनाया। वैश्वानर और शांतिसोम पुरोहित बने। राजा ने नरवाहनदत्त के लिए एक सुंदर महल भी बनवाया। जब युवराज के राज्याभिषेक का उत्सव हुआ, तो कलिंगसेना ने भी उसमें भाग लिया। वह अपनी पुत्री के विवाह को लेकर बड़ी चिंतित थी। उसने अपनी सखी सोमप्रभा को इस बात पर विचार करने के लिए बुलाया। सोमप्रभा ने कहा, "तुम्हें मदनमंचुका के विवाह की चिंता नहीं करनी चाहिए क्योंकि नरवाहनदत्त विद्याधरों का राजा, बनेगा और मदनमंचुका उसकी पटरानी। वे दोनों ही दिव्य जाति के हैं। तुम भी दिव्य जाति की हो—केवल शाप-वश तुम्हें मनुष्य जाति में जन्म लेना पड़ा है। अब वह शाप छूटनेवाला है।" यह कहकर सोमप्रभा ने मदनमंचुका के विवाह के लिए एक दिव्य उपवन का निर्माण किया और फिर चली गई। दूसरे दिन सब लोगों ने इस नये उपवन को देखा तो चकित रह गये। राजा उदयन भी उपवन को देखने आये। कलिंगसेना ने सोमप्रभा की कही हुई सारी बातें उनको बता दीं।

सब लोग बड़े प्रसन्न हुए और उदयन अपनी रानियों के साथ उस दिन वहां रहे। दूसरे दिन उदयन ने देव-मंदिर के पास बहुत सी असाधारण रूपवती स्त्रियों को देखा। परिचय पूछने पर उन्होंने कहा, "हम साक्षात कलाएं और विद्याएं हैं। हम सब नरवाहनदत्त के हृदय में प्रवेश करेंगी।" यह कहकर वे सब चली गईं और समय आने पर उन्होंने नरवाहनदत्त के हृदय में स्थान बना लिया। इस प्रकार नरवाहनदत्त सब कलाओं और विद्याओं का पंडित बन गया। वह गंधर्वों से भी अधिक सुंदर वीणा बजाता था। वह नृत्य कला में भी बड़ा पटु था। उसने मदन-मंचुका को नृत्य कला सिखलाई। कुछ दिनों में मदनमंचुका नृत्य और संगीत कला में निपुण हो गई। फिर धीरे-धीरे दोनों ने किशोर अवस्था पार करके यौवना-वस्था में प्रवेश किया। एक बार नरवाहनदत्त मंत्रियों और मदनमंचुका को साथ लेकर नागवन में गया। वहां एक बनिये की स्त्री गोमुख पर मोहित हो गई और प्रेम की याचना करने लगी। जब गोमुख तैयार नहीं हुआ, तब उसने विष मिला शर्बत पिलाकर उसे मारने का प्रयत्न किया। लेकिन गोमुख को किसी तरह इस बात का पता चल गया और उसने शर्बत पीने से मना कर दिया। फिर उसने एक दुराचारिणी स्त्री की कहानी सुनाई—"एक गांव में शत्रुघ्न नाम का एक आदमी रहता था। उसकी पत्नी दुराचारिणी थी। उसका एक प्रेमी था, जो रात में उसके घर आया करता था। एक दिन शत्रुघ्न ने उस प्रेमी को मार डाला और उसकी लाश को कहीं खाई-खंदक में डालने के लिए ले चला। उसकी पत्नी ने यह सब देख लिया। वह भी पीछे-पीछे चल दी। जब वह लाश को एक अंधे कुएं में डाल रहा था तब उसकी पत्नी ने उसको भी पीछे से धक्का दे दिया।"

यह कथा सुनकर और सांपों की पूजा करने के बाद नरवाहनदत्त नागवन से वापस चला आया। एक दिन वह कलिंगसेना के पास गया। कलिंगसेना ने उससे कहा, "देव जाति का एक पुरुष मदनमंचुका को विवाह के लिए मांगने आया था, लेकिन मैंने उससे कह दिया कि मेरी लड़की का विवाह नरवाहनदत्त के साथ होगा।" गोमुख बोला, "नरवाहनदत्त के विद्याधरों के राजा होने की बात सुनकर कुछ विद्याधर मन-ही-मन उससे जलते हैं।" यह सुनकर कलिंगसेना बड़ी चिंतित हुई। बोली, "तब तो नरवाहनदत्त और मदनमंचुका का विवाह शीघ्र ही कर देना चाहिए, क्योंकि हो सकता है कि कोई विद्याधर मेरी तरह मदनमंचुका से भी छल करे।"

ग्रौर उसने तुरंत ही विवाह का प्रस्ताव राजा उदयन के पास भेज दिया। फिर शुभ तिथि में दोनों का विवाह बड़ी धूम-धाम से संपन्न हो गया। ज्योतिषियों ने विवाह की इस तिथि का फल बताते हुए कहा कि कुछ दिनों के लिए दोनों को वियोग सहना पड़ेगा।

विवाह के बाद मदनमंचुका ग्रौर नरवाहनदत्त ग्रानंद से ग्रपना जीवन बिताने लगे।

# सातवां खंड

## : १ :

## रत्नप्रभा की कहानी

एक बार नरवाहनदत्त वसंतोत्सव मनाने के लिए अपने मंत्रियों के साथ एक उपवन में गया। वहां तपंतक ने नरवाहनदत्त को बताया, "उपवन के एक कोने में मैंने एक सुंदरी कन्या को देखा है। उसने आपको बुलाया है।" नरवाहनदत्त उसके पास गया और उसका परिचय पूछा। उसने कहा, "कैलाश के ऊपर कनक-श्रृंग नाम का सोने का एक नगर है। वहां हेमप्रभ नाम का विद्याधरों का एक राजा रहता है। उसकी रानी का नाम अलंकारप्रभा है। वह राजा शिव का परम भक्त है और प्रति दिन एक लाख अशर्फियां दान में देता है। लेकिन उस राजा के कोई पुत्र नहीं है, इसलिए वह दुखी रहता है। एक बार रानी के कहने पर राजा ने एक पुत्रहीन सत्वशील नामक व्यक्ति की कहानी इस प्रकार सुनाई :

"चित्रकूट में एक दानी राजा रहता था। उसका नाम ब्राह्मणवर था। उसके यहां सत्वशील नाम का एक वीर पुरुष था। राजा उसको प्रति मास सौ अशर्फियां देता था। सत्वशील के कोई पुत्र नहीं था। इसलिए जो कुछ धन उसको मिलता था, उसे वह दान कर देता था। एक बार उसे उपवन में बहुत सा धन मिला। उसको भी उसने बांटना शुरू कर दिया। कुछ ईर्ष्यालु लोगों ने सत्वशील की शिकायत राजा से जाकर की। राजा ने उसको बुला भेजा। जब वह राजा के पास आया, तो द्वारपाल ने उसे कुछ देर के लिए रोक लिया। वह वहां बैठकर जमीन कुरेदने लगा। वहां पर भी उसको तांबे के घड़े दिखाई पड़े। उसने मिट्टी बराबर करके उनको ढंक दिया। फिर वह राजा के पास गया। राजा ने कहा, 'जो धन तुमको गड़ा हुआ मिला है उसे मुझे दे दो।' सत्वशील बोला, 'आज

का मिला हुआ धन आपको दूं या पहले का ?' राजा ने कहा, 'आज का ही दो।' उसने ऐसा ही किया। तब राजा ने उससे कहा, 'इससे पहले तुम्हें जो खजाना मिला था, उसका तुम जो चाहो कर सकते हो।' सत्वशील अपने घर आकर मिले हुए खजाने को खुले हाथों दान करने लगा। पुत्र न होने के दुख को वह इस तरह दूर करने का प्रयत्न किया करता था।

"राजा ने कहा, 'यह कथा सुनकर मेरी चिंता और अधिक हो गई है।' तब रानी ने कहा, 'जिस प्रकार बुरे समय में सत्वशील का साथ उसके भाग्य ने दिया, उसी तरह आपका साथ आपका भाग्य देगा, क्योंकि भले आदमियों का साथ उनका भाग्य ही होता है। इसलिए आप चिंता न करें।' फिर रानी ने इस संबंध में उसको एक कहानी सुनाई :

"पाटलिपुत्र में विक्रमतुंग नाम का एक राजा था। वह बहुत वीर और दानी था। एक दिन आखेट के लिए वह एक जंगल में गया। वहां उसने देखा कि एक ब्राह्मण बेल के फलों से यज्ञ कर रहा है। राजा ने उससे इसका कारण पूछा। ब्राह्मण ने कहा, 'मैं अग्नि देवता को प्रसन्न करने के लिए यह हवन कर रहा हूं। ऐसा करने से हवन-कुंड से सोने के बेल प्राप्त होते हैं और अग्नि देवता वरदान भी देते हैं। यज्ञ करते बहुत दिन हो गये हैं, लेकिन अभी तक अग्नि देवता की कृपा मुझ पर नहीं हुई है।' तब राजा ने उस यज्ञ में चढ़ाने के लिए एक बेल मांगा और उसको हवन-कुंड में डालते हुए मन में कहा कि यदि अग्नि देवता प्रसन्न नहीं हुए, तो मैं अपना सिर काटकर चढ़ा दूंगा। तत्काल ही अग्नि-कुंड से अग्नि देवता प्रकट हुए। उनके एक हाथ में स्वर्ण बेल भी था। उन्होंने राजा को वर मांगने के लिए कहा। तब राजा ने ब्राह्मण की इच्छा पूरी करने का वर मांगा। उस समय ब्राह्मण ने अग्नि देवता से कहा, 'मैंने आपको प्रसन्न करने के लिए इतने दिनों तक यज्ञ किया और अनेकों बेल चढ़ाये, लेकिन आप मुझ पर प्रसन्न नहीं हुए। राजा के एक फल चढ़ाते ही प्रसन्न हो गये—यह क्या बात है ?' अग्नि देव ने कहा, 'यह राजा सत्यवान है। यदि मैं प्रकट नहीं होता तो यह प्राण दे देता। सत्यवान व्यक्ति को शीघ्र ही सिद्धि प्राप्त होती है। तुम सत्यवान नहीं हो, इसलिए तुम्हें शीघ्र सफलता नहीं मिली।' यह कहकर अग्नि देवता ब्राह्मण और राजा को सदा धनवान बने रहने का वर देकर वहां से चले गये। राजा और ब्राह्मण भी अपने-अपने घर चले गये। एक दिन इस राजा के पास एक दूसरा

ब्राह्मण आया और कहने लगा, 'मैं तांबे को सोना बना सकता हूं।' राजा ने तांबा मंगा दिया और ब्राह्मण ने उसे सोना बनाने के लिए उस पर एक चूर्ण डाला। लेकिन वहां छिपे हुए एक यक्ष ने उस चूर्ण को हटा दिया। इसलिए तांबा सोना नहीं बना। ब्राह्मण ने तीन बार प्रयत्न किया और यक्ष ने हर बार बाधा पहुंचाई। चौथी बार राजा ने ब्राह्मण से चूर्ण लेकर अपने हाथ से तांबे पर डाला। यक्ष राजा के प्रताप से डर गया, इसलिए उसने बाधा नहीं पहुंचाई और तांबा सोना बन गया। यह देखकर ब्राह्मण बहुत चकित हुआ। फिर राजा ने ब्राह्मण से इस प्रकार सोना बनाने का उपाय सीख लिया और प्रति दिन सोना बनाकर दान देने लगा।

"यह कथा कहकर रानी ने कहा, 'सत्यवान मनुष्य को अवश्य सफलता मिलती है। आप भी कितने धैर्यशील, सत्यवान और दानी हैं। यदि आप शिव की पूजा करें तो हमारे अवश्य पुत्र होगा।'

"फिर राजा-रानी ने मिलकर नौ करोड़ अशर्फियों का दान दिया और शिव को प्रसन्न करने के लिए घोर तपस्या शुरू कर दी। राजा ने प्रतिज्ञा की—या तो शिवजी की कृपा प्राप्त करूंगा या प्राण दे दूंगा।

"तीसरे दिन स्वप्न में शिवजी ने उससे कहा, 'तुम्हारे एक पुत्र और एक पुत्री पैदा होगी। तुम्हारी पुत्री नरवाहनदत्त की रानी बनेगी।' ऐसा ही हुआ। समय आने पर उनके एक पुत्र और एक पुत्री पैदा हुए। पुत्र का नाम वज्रप्रभु और पुत्री का नाम रत्नप्रभा रखा गया। बड़ा होने पर वज्रप्रभु को युवराज बनाया गया और फिर उसका विवाह कर दिया गया। राजा-रानी अपनी पुत्री रत्नप्रभा को नरवाहनदत्त के गुणों का वर्णन सुनाया करते थे। एक बार नरवाहनदत्त के गुणों का ध्यान करती हुई रत्नप्रभा सो रही थी कि स्वप्न में पार्वतीजी ने आकर कहा, 'तुम कौशांबी में जाकर नरवाहनदत्त से मिलो। उससे मिलने के बाद तुम्हारा पिता उसके साथ तुम्हारा विवाह करेगा।'

अपनी माता से आज्ञा लेकर रत्नप्रभा नरवाहनदत्त से मिलने के लिए कौशांबी गई।"

इतना सुनाकर उस सुंदरी ने नरवाहनदत्त से कहा, "रत्नप्रभा मेरा ही नाम है।" नरवाहनदत्त बहुत प्रसन्न हुआ और बोला, "यह मेरा सौभाग्य है कि तुमने स्वयं आकर मुझे दर्शन दिये हैं।" उसी समय रत्नप्रभा के पिता और भाई सेना

को साथ लेकर आकाश-मार्ग से वहां आये। राजा उदयन भी वहां आ गया था। हेमप्रभा ने उदयन से बातचीत करने के बाद रत्नप्रभा और नरवाहनदत्त का विवाह तय कर दिया। फिर वह नरवाहनदत्त को आकाश मार्ग से अपने घर ले गया और वहां अपनी पुत्री के साथ उसका विवाह धूम-धाम से कर दिया। कुछ दिनों कनकशृंग में रहने के बाद हेमप्रभा ने नरवाहनदत्त को फिर कौशांबी पहुंचा दिया। कौशांबी में आकर नरवाहनदत्त मदनमंचुका और रत्नप्रभा के साथ आनंद करते हुए जीवन बिताने लगा।

: २ :

## सती-धर्म की कहानी

एक दिन नरवाहनदत्त रत्नप्रभा के महल में बैठा हुआ था। तभी गोमुख और दूसरे मंत्री उससे मिलने आये, लेकिन द्वार पर पहरा देनेवाली स्त्री ने उनको रोक दिया। रत्नप्रभा को यह बात बुरी लगी और उसने द्वारपालिकाओं को भविष्य में ऐसा न करने के लिए कहा। फिर राजा से बोली, "मैं भले घर की हूं, इसलिए मेरे ऊपर इतना पहरा बैठाने की कोई जरूरत नहीं है। मैं अपने चरित्र की स्वयं रक्षा कर सकती हूं। इस संबंध में आप एक कथा सुनिये:

"रत्नकूट नामक एक द्वीप में रत्नाधिप नाम का एक राजा राज्य करता था। उसने सारे संसार पर विजय पाने के लिए घोर तपस्या की। तप से प्रसन्न होकर भगवान ने उसको एक आकाशगामी श्वेतरश्मि नाम का हाथी दिया। इस पर चढ़कर आकाश मार्ग से उसने सारी पृथ्वी की यात्रा की और अनेक राजकुमारियों के साथ विवाह किया। दिव्य पुरुष समझकर राजा लोग उसके साथ अपनी लड़कियों का विवाह बड़ी प्रसन्नता से कर देते थे। इस प्रकार उसने अस्सी हजार विवाह किये और उसने सारे संसार पर विजय प्राप्त की। एक बार वह आकाश से नीचे उतर रहा था कि एक चिड़िया ने अपनी चोंच से हाथी के मस्तक पर प्रहार किया। इस चोट से हाथी बेहोश हो गया और धड़ाम से नीचे आ गिरा। उसको होश में लाने का बहुत प्रयत्न किया गया। लेकिन वह नहीं उठा। तब राजा ने निश्चय किया कि यदि हाथी नहीं उठता है तो वह अपने प्राण दे देगा।

उसकी यह प्रतिज्ञा सुनकर आकाशवाणी हुई—'यदि कोई पतिव्रता इस हाथी को आकर छुए तो यह फिर से उठ बैठेगा।'

"राजा ने सोचा कि यह तो बहुत सरल उपाय है। उसने एक-एक करके सब रानियों को बुलाना शुरू किया। बारी-बारी से अस्सी हजार रानियों ने हाथी को छुआ पर हाथी खड़ा नहीं हुआ। फिर उसने अपने देश की सभी स्त्रियों को बुलाया, लेकिन हाथी को होश नहीं आया। अब तो राजा को बहुत चिंता हुई। दुख भी हुआ। उन्हीं दिनों हर्षगुप्त नाम का एक बनिया नगर में आया हुआ था। उसकी पत्नी शीलवती थी। शीलवती हाथी के पास आई और मन-ही-मन उसने कहा, 'यदि मैंने स्वप्न में भी किसी पर पुरुष का ध्यान न किया हो, तो यह हाथी ठीक हो जाये।' यह कहकर उसने अपने हाथ से हाथी को छुआ। उसके छूते ही हाथी उठ बैठा। तब राजा ने प्रसन्न होकर उसको बहुत-सा धन दिया और कहा कि उसके जैसी चरित्रवाली दूसरी स्त्री मिले, तो वह उसके साथ विवाह करेगा। शीलवती ने कहा, 'मेरी बहन तारादत्ता भी मेरी तरह अच्छे चरित्र की लड़की है।' राजा ने तारादत्ता के साथ विवाह कर लिया। लेकिन जिस तिथि में राजा ने विवाह किया था, उसका प्रभाव बताते हुए ज्योतिषियों ने कहा, 'इस तिथि में जिस स्त्री से विवाह किया जायगा, वह दुराचारिणी बन जायेगी।' यह सुनकर राजा को बहुत चिंता हुई। उसने तारादत्ता के चरित्र की रक्षा के लिए समुद्री द्वीप में महल बनवाया। वहां किसी दूसरे मनुष्य का पहुंचना संभव नहीं था। राजा रात में हाथी पर बैठकर वहां चला जाता था और दिन में अपने राज्य का काम देखता था। एक दिन एक तख्ते से चिपटा हुआ एक आदमी किसी तरह तैर कर उस द्वीप में जा पहुंचा। वह एक व्यापारी था, जो जहाज़ डूब जाने के कारण किसी तरह बच-कर निकल आया था। तारादत्ता उस समय महल में अकेली थी। इसलिए इस व्यापारी के साथ उसने विहार किया। उसी समय राजा रत्नाधिप आ पहुंचा और उन दोनों को एक साथ देखकर बहुत दुखी हुआ। उसने मन में कहा कि ज्योतिषियों की बात ठीक थी। मुझे अशुभ लग्न में विवाह नहीं करना चाहिए था। अपनी ही गलती समझकर राजा ने उस बनिये से कुछ नहीं कहा। उससे सारा हाल पूछकर उसे चला जाने दिया। वह बनिया फिर समुद्र में उसी तख्ते के सहारे तैरने लगा। इस तरह तैरते हुए उसे एक व्यापारी जहाज़ दिखाई दिया। वह उस जहाज़ पर चढ़ गया। वह जहाज़ कोषवर्मा का था। यहां वह व्यापारी उसकी पत्नी पर

मुग्ध हो गया और उसे छेड़ने का प्रयत्न करने लगा। कोषवर्मा ने उठाकर उसे समुद्र में फेंक दिया। इधर राजा तारादत्ता को उस द्वीप से रत्नकूट ले गया और उसकी बहन शीलवती के पास भेज दिया। उसने शीलवती को अपना आधा राज्य भी दे दिया और तपस्या करने के लिए अपने हाथी पर बैठकर तपोवन जाने की तैयारी करने लगा। उस समय श्वेतरश्मि हाथी ने एक दिव्य पुरुष का रूप धारण कर लिया और कहने लगा, 'मैं सोमप्रभ नाम का गंधर्व हूं। मेरे बड़े भाई का नाम देवप्रभ है और वह तुम्हीं हो। एक बार तुम्हारी पत्नी भगवान विष्णु के सामने गा रही थी। उस समय उसे एक सिद्ध पुरुष घूरने लगा। मेरे बड़े भाई ने उससे कहा कि तुम परस्त्री को इस तरह क्यों घूरते हो कि सिद्ध पुरुष ने क्रोध में आकर मेरे बड़े भाई को शाप दिया, "तेरा मन शुद्ध नहीं है। इसलिए तेरा जन्म पृथ्वी पर होगा और अपनी पत्नी को परपुरुष के साथ तू अपनी आंखों से देखेगा।" यह सुनकर मुझे क्रोध आ गया था और मैंने इस सिद्ध पुरुष पर मिट्टी का हाथी फेंक कर मारा, उसने तभी मुझको भी शाप दिया था, "तू भी धरती पर आकाशगामी सफ़ेद हाथी के रूप में पैदा होगा और तेरा भाई तुझ पर सवारी करेगा।" यह सब सुनाकर सोमप्रभ अपने भाई से बोला, "अब हमारा शाप छूट गया और मैं फिर हाथी से गंधर्व बन गया हूं। सोमप्रभ की यह बातें सुनकर राजा को भी अपने पूर्व जन्म की याद आ गई। वह बोला, "मैं तुम्हारा भाई देवप्रभ हूं और यह तारादत्ता मेरी पूर्व जन्म की पत्नी राजवती ही है।"

"तारादत्ता भी गंधर्व-स्त्री बन गई और वे तीनों स्वर्ग चले गये। इधर शीलवती अपना सारा धन लेकर ताम्रलिप्ति चली गई और वहां जाकर धर्म का आचरण करती हुई आनंद से रहने लगी।"

यह कथा सुनाकर रत्नप्रभा बोली, "इस प्रकार स्त्रियों के सतीत्व की रक्षा तभी होती है जब उनका अपना चरित्र दृढ़ और अच्छा हो।" ये बातें सुनकर नरवाहनदत्त भी बहुत प्रसन्न हुआ।

: ३ :

# स्त्री-चरित्र

रत्नप्रभा की यह कथा सुनकर नरवाहनदत्त से गोमुख ने कहा, "संसार में सच्चरित्र स्त्रियां बहुत कम हैं। अधिकतर स्त्रियां चंचल ही होती हैं। इसलिए इन पर विश्वास नहीं किया जाता। इस संबंध में आप एक कथा सुनिये :

"प्राचीन समय में उज्जयनी नगरी में निश्चयदत्त नाम का एक बनिया रहता था। वह जुआरी था और जुए से उसने बहुत धन पैदा किया था। वह प्रति दिन नदी में नहाकर मरघट जाया करता था और वहां महाकाल की पूजा किया करता था। वहां पर पत्थर का एक स्तंभ बना हुआ था। वह उस स्तंभ पर चंदन लगाता और फिर उससे अपनी पीठ रगड़ा करता था। ऐसा करने से वह पत्थर का खंभा चिकना हो गया।

"एक बार एक कलाकार ने वहां आकर उस चिकने खंभे पर पार्वती का चित्र बना दिया। कुछ दिनों बाद विद्याधरों की एक लड़की वहां महाकाल की पूजा करने आई। उसने उस खंभे पर पार्वती का चित्र देखा, उसने उसकी पूजा की और बाद में उसी खंभे में प्रवेश कर गई। निश्चयदत्त जब अगले दिन आया तो उसने देखा कि उस खंभे पर पार्वती का चित्र बना हुआ है। इसलिए उसने दूसरे भाग में चंदन लगाकर अपनी पीठ रगड़ना शुरू किया। तब विद्याधरों की कन्या उसकी पीठ में चंदन लगाने लगी। निश्चयदत्त ने तत्काल उसका हाथ पकड़ लिया और उसका परिचय पूछा। उस कन्या ने कहा, 'मेरे पिता का नाम विंध्यसर है। वह पुष्करवती में रहते हैं और विद्याधरों के राजा हैं। मेरा नाम अनुरागपरा है। तुमको चंदन लगाकर खंभे से पीठ रगड़ते देखकर मैंने तुम्हारी पीठ में चंदन लगा दिया। मुझे तुमसे स्नेह हो गया है। अब मैं अपने घर जा रही हूं।'

"लेकिन निश्चयदत्त ने उसे रोक कर कहा, 'अब मेरी इच्छा पूरी किये बिना तुम नहीं जा सकतीं।' तब वह बोली, 'जब तुम मेरे नगर में आओगे, तब तुम्हारी इच्छा पूरी करूंगी।' यह कहकर वह अंतर्धान हो गई। निश्चयदत्त अपने घर जाकर उससे मिलने का उपाय सोचने लगा। रात में उसने तय किया कि या तो वह अनुरागपरा को प्राप्त करेगा या अपने प्राण दे देगा। दूसरे दिन वह उत्तर की ओर

चल दिया। रास्ते में उसको तीन साथी और मिल गये। उनके साथ अनेक नगर, ग्राम, नदी आदि को पार करते हुए वह म्लेच्छों के एक नगर में पहुंचा। उन म्लेच्छों को ताजिक कहते थे। उन ताजिकों ने उनको पकड़कर एक दूसरे ताजिक के हाथ बेच दिया। जिसने उन्हें खरीदा था, उसने उनको अपने एक मित्र के पास उपहार-स्वरूप भेज दिया। जब वे वहां पहुंचे तो पता चला कि जिस आदमी के पास इन्हें उपहार के लिए भेजा था, वह मर चुका है और उसका बेटा मौजूद है। उसने कहा, 'इन चारों को मेरे पिता के लिए भेजा गया था, लेकिन वह अब इस दुनिया में नहीं है। इसलिए कल इनको भी मैं अपनी पिता की कब्र में गाड़ दूंगा। अब इन को बांध दो।' उस रात निश्चयदत्त ने जब दुर्गा देवी से प्रार्थना की, तो उसने स्वप्न में आकर कहा, 'तुम लोगों के बंधन खुल जायेंगे और तब तुम यहां से भाग जाना।'

"कुछ देर बाद उन चारों ने देखा कि उनके बंधन खुल गये हैं। फिर वे वहां से निकल भागे। आगे जाने के बाद निश्चयदत्त का रास्ता बदल गया और वह अकेला ही आगे बढ़ने लगा। कुछ दूर जाने के बाद उसको चार महाव्रती मिल गये। चलते-चलते उनको रास्ते में सांझ हो गई। तब एक आदमी मिला और उसने कहा, 'अब आगे मत जाओ, क्योंकि आगे जंगल में एक शिवालय है। वहां अगर रात में कोई पहुंचता है, तो उस मंदिर में रहनेवाली एक यक्षिणी उसको मार डालती है। उसका नाम शृंगोत्पाहिनी है, लेकिन उन लोगों ने उस आदमी का कहना नहीं माना और वे रात को उस मंदिर में जा पहुंचे। उन्होंने आग जलाई और प्राणों की रक्षा के लिए मंत्रों का जप करने लगे। उसी समय यक्षिणी भी वहां आ गई और वह भी मंत्र जपने लगी। फिर उसने एक महाव्रती की ओर ध्यान से देखा। उसके देखते ही वह महाव्रती आग में जाकर गिर पड़ा और उसके सींग भी निकल आये। जब वह आधा जल गया तब यक्षिणी ने उसको खा लिया।

"इस तरह एक-एक करके वह तीन महाव्रतियों को खा गई। निश्चयदत्त यह सब देख रहा था। उसने बुद्धि से काम लिया और जो मंत्र यक्षिणी पढ़ रही थी, वह भी पढ़ने लगा साथ ही उसने अपनी दृष्टि यक्षिणी पर जमा दी। तब यक्षिणी डर गई और बोली, 'मेरा मंत्र पढ़कर तुम मेरे प्राण मत लो। मैं तुम्हारा काम पूरा कर दूंगी। मैं तुम्हारे मन की इच्छा जानती हूं।' तब निश्चय-दत्त ने मंत्र पढ़ना छोड़ दिया और यक्षिणी के कंधे पर बैठकर आकाश-मार्ग से

अनुरागपरा के नगर को चल पड़ा। एक रात उड़ने के बाद यक्षिणी एक पहाड़ पर उतरी और बोली, 'मैं दिन में नहीं उड़ सकती। इसलिए तुम यहीं ठहरो। रात होने पर मैं फिर आ जाऊंगी।' यह कहकर वह चली गई। निश्चयदत्त ने उस पहाड़ पर एक जगह देखा कि मिट्टी में कोई चीज चमक रही है। मिट्टी खोदने पर एक बंदर का मुंह दिखाई पड़ा। वह बंदर बोला, 'मैं पहले ब्राह्मण था और किसी कारणवश मुझे बंदर बनना पड़ा। मुझे इस मिट्टी से बाहर निकाल लीजिये। फिर मैं आपको अपनी कहानी सुनाऊंगा।'

"निश्चयदत्त ने मिट्टी हटाकर उसको बाहर निकाला। तब उसने कहा, 'मैं काशी में रहनेवाले चंद्रस्वामी ब्राह्मण का बेटा हूं। मेरी मां का नाम सुव्रता है और मेरा नाम सोमस्वामी है। वहां श्रीगर्भ नामक एक बनिये की लड़की बंधुदत्ता से मेरा संबंध हो गया था। वह अपनी एक सखी को भेजकर मुझे रोज अपने घर बुलाती थी। कुछ दिनों बाद उसका पति उसे लेने आया। उसके पति का नाम ब्रह्मदत्त था। वह मथुरा में रहता था। लेकिन बंधुदत्ता मेरे वियोग को सहन नहीं कर सकती थी, इसलिए उसने अपनी सखी से उपाय पूछा। उसने बताया, 'मैं दो मंत्र जानती हूं। एक से आदमी को बंदर बनाया जा सकता है और दूसरे से बंदर को आदमी। अगर सोमस्वामी राजी हो जाय, तो उसको बंदर बनाकर अपने साथ ले जाओ।' जब बंधुदत्ता ने मुझसे यह बात कही, तो मैंने उसका यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और बंदर बनकर उसकी ससुराल को चल दिया। मार्ग में उसके पति ने मुझे अपने कंधे पर बिठा लिया। यह देखकर जंगल के बंदर ब्रह्मदत्त पर दौड़ पड़े। डर के मारे उसने मुझे वहीं छोड़ दिया और अपनी पत्नी के साथ आगे चला गया। मैं भी किसी प्रकार अपनी जान बचाकर वहां से भागा और इस जंगल में आ गया। यहां हाथी ने अपनी सूंड से पकड़कर मुझे दलदल में फेंक दिया। दलदल सूख जाने के बाद भी इतने दिनों से मैं इस मिट्टी में गड़ा पड़ा हूं। आज आपने मुझे निकाला है। मुझे सब-कुछ याद है, लेकिन बंदर से आदमी बनने का मंत्र नहीं याद है।'

"उसकी कथा सुनकर निश्चयदत्त ने भी अपना हाल सुनाया। तब बंदर-रूपधारी सोमस्वामी ने कहा, 'स्त्रियों का चक्कर ही ऐसा होता है। जैसे मैं एक स्त्री के कारण बंदर बना हूं, उसी प्रकार तुम भी कष्ट उठा रहे हो। तुम मेरी बात मानकर अपने घर चले जाओ। इस संबंध में मेरे एक मित्र ने भी मुझे सलाह दी थी, किंतु

मैंने उसकी सलाह नहीं मानी इसलिए मुझे बंदर बनना पड़ा। मैं अपने उस मित्र की कहानी सुनाता हूं: मेरे मित्र का एक ब्राह्मणी से संबंध था। वह ब्राह्मणी काशी में रहती थी। उसका नाम सोमदत्ता था। वह योग का चमत्कार भी जानती थी। एक बार मेरे मित्र ने किसी बात पर उसको पीट दिया। सोमदत्ता ने मुंह पर तो कुछ नहीं कहा, लेकिन मन में इस बात को रख लिया। एक दिन उसने प्रेम का अभिनय करते हुए मेरे मित्र के गले में एक डोरा बांध दिया। मेरा मित्र तुरंत बैल बनगया। फिर सोमदत्ता ने उस बैल को एक ऊंटवाले के हाथ बेच दिया। मेरे मित्र को बैल के रूप में बहुत दिनों तक बोझा ढोना पड़ा। एक दिन बंधमोचनिका नामक योगिनी की कृपा से वह फिर मनुष्य बन गया। सोमदत्ता ने मेरे मित्र को बंधमोचनिका के साथ देखकर उससे कहा, "तुमने उसे बैल से फिर आदमी बना दिया है, इसलिए मैं तुम दोनों के प्राण ले लूंगी।" यह सुनकर मेरे मित्र को ंधुमोचनिका ने समझाया कि सोमदत्ता काली घोड़ी बनकर उसे मारने को आयेगी। उस समय मैं लाल घोड़ी बनकर आऊंगी और हम दोनों आपस में लड़ने लगेंगी, तब तुम पीछे से आकर काली घोड़ी को तलवार से मार देना।

" 'ऐसा करके मेरे मित्र ने सोमदत्ता को मार डाला तब कहीं जाकर स्त्री-चक्र से उसकी जान बची। स्त्रियों की चंचलता, कुटिलता और दुस्साहसिकता, तीनों ही पुरुषों के नाश का कारण बनती हैं। इसलिए हे मित्र! तुम अनुरागपरा विद्याधरी के पीछे इस तरह मत दौड़ो। जब कोई विद्याधर उसको मिल जायगा, तब वह तुमको छोड़कर भाग जायगी।'

"इस प्रकार उन दोनों को बात करते हुए रात हो गई और ठीक समय पर वह यक्षिणी निश्चयदत्त के पास आई। निश्चयदत्त उसके कंधे पर बैठकर फिर उड़ चला और आधी रात को पुष्करावती पहुंचा। वहां उसने अनुरागपरा से गंधर्व-विवाह किया और आनंद से रहने लगा। एक बार वह अनुरागपरा के साथ अपने बंदर से भी मिलने गया। कुछ दिनों बाद फिर उसने अनुरागपरा से अपने बंदर मित्र से मिलने को कहा तो वह बोली, 'आज मैं नहीं जाऊंगी। तुम स्वयं चले जाओ। मैं तुम्हें आकाश में उड़ने और नीचे उतरने का उपाय बताये देती हूं।'

यह विद्या सीखकर निश्चयदत्त अकेला ही अपने बंदर मित्र से मिलने चला

गया। उसके जाने के बाद अनुरागपरा ने रागभंजन नामक विद्याधर से विवाह कर लिया। जब निश्चयदत्त लौटकर आया, तो अनुरागपरा बीमारी का बहाना करके उससे दूर-दूर रही। निश्चयदत्त उसके बीमार होने के कारण मन में बहुत दुखी हुआ और उसी समय अपने मित्र सोमस्वामी से मिलने चला आया। सब हाल सुनकर उस बंदर-रूप सोमस्वामी ने कहा, 'तुम इसी समय अनुरागपरा के पास जाओ। वह सो रही होगी। उसको सोते हुए ही यहां उठा लाओ। उसका रोग यहां ठीक हो जायगा।' निश्चयदत्त उसी समय रात में अनुरागपरा के पास गया और उसको सोते हुए उठा लाया। वह यह नहीं देख पाया था कि रागभंजन विद्याधर अदृश्य बन कर उसके अंचल में सोया हुआ है। इसलिए अनुरागपरा के साथ वह भी उड़ा हुआ चला आया। यहां सोमस्वामी ने योग-बल से निश्चयदत्त को दिखा दिया कि अनुरागपरा अकेली नहीं है। उसके साथ रागभंजन भी सोया हुआ है। यह देखकर निश्चयदत्त बहुत दुखी हुआ और अपने को धिक्कारने लगा। इसी समय इन दोनों की नींद खुल गई और दोनों भाग गये। निश्चयदत्त सोमस्वामी के साथ उसी जंगल में रहने लगा। एक बार वहां मोक्षदा नामकी एक योगिनी आई। उसने दया करके सोमस्वामी को बंदर से फिर मनुष्य बना दिया। तब से निश्चयदत्त और सोमस्वामी घोर तपस्या करने लगे और समय पाकर उन्होंने मोक्ष प्राप्त किया।"

गोमुख के मुख से यह कहानी सुनकर नरवाहनदत्त और दूसरे लोग बहुत प्रसन्न हुए।

: ४ :

## शीलवती वेश्या की कथा

इस कथा से सब लोगों को प्रसन्न देखकर मरुभूति ने कहा, "सभी स्त्रियां ऐसी नहीं होती हैं। कभी-कभी वेश्याओं तक में शील और सदाचार दिखाई देता है। इसलिए स्त्रियों को, चंचल होते हुए भी, सबको एक-सा नहीं कहा जा सकता। इस संबंध में मैं आपको एक कथा सुनाता हूं : पाटलिपुत्र में विक्रमादित्य नाम का एक राजा राज्य करता था। उसके दो मित्र थे। वे दोनों राजा थे। एक का नाम हय-

पति था और दूसरे का गजपति। हयपति के पास अनेक घोड़े थे और गजपति के पास अनेक हाथी। विक्रमादित्य का एक राजा घोर वैरी भी था। उसका नाम नरसिंह था और वह अधिष्ठान नामक देश पर राज्य करता था। एक बार विक्रमादित्य ने प्रतिज्ञा की कि वह राजा नरसिंह को हराकर अपना दास बनायेगा। उसको अपने मित्रों की सहायता पर बहुत विश्वास था। उसने सोचा कि शत्रु को हराने के लिए कोई भी उपाय बुरा नहीं होता है। अगर कोई शत्रु युद्ध में प्रबल हो, तो उसे बुद्धि जीतना चाहिए। यह सोचकर विक्रमादित्य ने अपना राज्य मंत्रियों को सौंप दिया और भिक्षु का रूप बनाकर वह प्रतिष्ठान नामक नगर को चला। उसने अपने साथ बुद्धिवर नामक मंत्री, पांच योद्धाओं और सौ राजकुमारों को भिक्षुओं के रूप में ले लिया था। वहां वह मदनमाला नामक प्रसिद्ध वेश्या से जाकर मिला। विक्रमादित्य के भव्य रूप को देखकर मदनमाला ने उसका स्वागत-सत्कार किया। वह मदनमाला के यहीं रहने लगा। वह वेश्या धीरे-धीरे राजा से प्रेम करने लगी और अपने पूर्व प्रेमी राजा नरसिंह को भूलने लगी। राजा के सारे खर्चे का भार भी वही उठाती थी। एक दिन राजा ने अपने मंत्री बुद्धिवर से पूछा, 'इस वेश्या के उपकारों का बदला किस प्रकार चुकाया जाय ?' बुद्धिवर ने कहा, 'आप उन रत्नों में से, जो आपको प्रपंचबुद्धि नामक भिक्षु ने दिये थे, कुछ रत्न मदनमाला को दे दीजिये।' राजा बोला, 'सारे रत्नों को दे देने पर भी इस वेश्या के उपकारों का बदला नहीं चुकाया जा सकता। लेकिन उस भिक्षु के द्वारा ही एक दूसरे उपाय से उपकारों का बदला चुकाया जा सकता है। मैं तुम्हें भिक्षुक की कहानी सुनाता हूं :

" 'पाटलिपुत्र में प्रपंचबुद्धि ने मुझको एक डिब्बा दिया था और कहा था कि इस डिब्बे को बिना खोले ही संभाल कर रखना। वह प्रति दिन आकर मुझको एक डिब्बा देता था और मैं बिना देखे ही खजाने में रख देता था। एक बार एक डिब्बा मेरे हाथ से छूटकर पृथ्वी पर गिर पड़ा और खुल गया। उसमें एक बहुमूल्य रत्न था। सब डिब्बों में ऐसे ही रत्न निकले। तब मैंने उस भिक्षुक से पूछा, "इन रत्नों को तुम संभाल कर क्यों रखवा रहे हो ?" उसने कहा, "मैं मरघट में एक सिद्धि प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहा हूं। चतुर्दशी के दिन आप वहां आकर मेरी सहायता करें।" मैंने उसकी बात मान ली; लेकिन चतुर्दशी की रात आई, तो देवता ने मुझे स्वप्न में आकर कहा, "तुम उस भिक्षुक के चक्कर में मत पड़ना। वह तुम्हारा

बलिदान करना चाहता है। इसलिए जब तुम उस भिक्षुक के साथ मरघट पर जाग्रो, तो उसके कहने पर सिर मत झुकाना और आंख भी मत बंद करना। तुम उससे कहना कि पहले वही तुम्हें यह सब करके दिखाये, तब तुम करोगे। जब वह भिक्षुक आंख बंद करके अपना सिर तुम्हारे सामने झुकाये, तो तुम उसका सिर काट डालना। इससे जो सिद्धि उसे मिलनी थी, वह तुम्हें मिल जायगी।'

" 'मैंने ऐसा ही किया। जैसे ही मैंने उस भिक्षुक का सिर काटा, वैसे ही मेरे सामने एक अलौकिक पुरुष आकर खड़ा हो गया। उसने कहा, "मैं कुबेर हूं। आकाश में उड़ने की जो सिद्धि वह भिक्षुक चाहता था, वह तुमको मिल जायगी। इसके अतिरिक्त और जो वरदान तुम चाहो वह मैं दे सकता हूं।" मैंने कहा, "कभी आवश्यकता पड़ने पर वरदान मांग लूंगा। सो मैं अब उस वरदान को मांगकर इस वेश्या के उपकारों का बदला चुकाना चाहता हूं।"

"फिर राजा ने मंत्री को घर भेज दिया और स्वयं उस वेश्या के यहां रहने लगा। एक दिन वह उस देव मंदिर में गया, जिसमें वह जाया करती थी। वहां जाकर उसने कुबेर का ध्यान किया। जब कुबेर प्रकट हुए तो राजा ने वर मांगा, "इस मंदिर में सोने के चार-पांच अक्षय पुरुष हो जायें।' कुबेर ने ऐसा ही किया। तब राजा वहां से अपने घर चला गया। जब वह वेश्या के पास वापस नहीं पहुंचा, तब वह देव मंदिर में आई। लेकिन उसने वहां राजा को तो नहीं पाया, बल्कि सोने के पुरुषों को देखा। वह समझ गई कि यह उस राजा का ही प्रताप है। वह कोई दिव्य पुरुष था। वह उसके वियोग में बहुत दुखी हुई और निश्चय किया अगर राजा छः महीने के अंदर वापस नहीं आया तो मैं अपनी सारी संपत्ति दान कर दूंगी और जलकर मर जाऊंगी। यह प्रतिज्ञा करके वह प्रति दिन दान देने लगी। एक बार उसने सोने के एक आदमी का हाथ काट कर एक ब्राह्मण को दान कर दिया। लेकिन दूसरे दिन उसने देखा कि वह हाथ वैसा-का-वैसा ही मौजूद है। फिर तो वह प्रति दिन ब्राह्मणों को सोने के पुरुषों के हाथ काटकर दान करने लगी। एक बार उस वेश्या के पास एक ब्राह्मण आया, जो चारों वेदों का पंडित था। वेश्या मदनमाला ने उसको सोने के चार हाथ दान दिये। वह ब्राह्मण इतना अधिक सोना पाकर चकित हो गया और राजा विक्रमादित्य के पास जाकर कहने लगा, 'प्रतिष्ठानपुर की वेश्या मदनमाला ने सोने के ये चार हाथ मुझको दान में दिये हैं। मैं इनको आपके पास रखने आया हूं। उस वेश्या का कोई दिव्य पुरुष

प्रेमी उसे छोड़कर चला गया है। उसकी प्रतिज्ञा है कि यदि उसका प्रेमी छः महीने में लौटकर वापस नहीं आया, तो वह अपनी सारी संपत्ति दान करके आग में जल जायगी।' यह सुनकर राजा विक्रमादित्य तुरंत आकाश में उड़कर मदनमाला के पास गया। वह बहुत प्रसन्न हुई। तब राजा विक्रमादित्य ने उसको बताया कि वह राजा नरसिंह को जीतना चाहता है। वेश्या ने उसको सहायता का वचन दिया। फिर वेश्या ने अपने नौकरों को बताया कि जब राजा नरसिंह आये, तो उन्हें क्या-क्या करना चाहिए। राजा नरसिंह ने उन सोने के आदमियों की कहानी सुनी थी। इसलिए वह मदनमाला से मिलने आया। जब वह महल में पहुंचा, तो चारणों ने ऊंचे स्वर में कहा, 'हे महाराज! यह नरसिंह नाम के राजा आपसे मिलने आये हैं। ये राजा आपके पुजारी हैं, इसलिए इनसे मिलने की कृपा करें।' यह सुनकर राजा नरसिंह ने पूछा, 'किस महाराजा को सुनाकर यह सब कह रहे हो।' उन्होंने बताया, 'अंदर महाराज विक्रमादित्य बैठे हैं।'

"यह सुनकर राजा नरसिंह ने सोचा कि राजा विक्रमादित्य ने मुझको चतुरता से हरा दिया है। फिर वह अंदर गया, तो राजा विक्रमादित्य ने उसको अपने पास स्थान दिया। विक्रमादित्य के तेज को देखकर वह बहुत प्रभावित हुआ और उसने उसकी अधीनता स्वीकार कर ली।

"इस प्रकार राजा नरसिंह को पराजित करके राजा विक्रमादित्य पाटलिपुत्र को लौट गया। वह वेश्या भी उसके साथ पाटलिपुत्र चली आई। इस प्रकार वेश्याएं भी सदाचार और शील का परिचय देती हैं। फिर जो स्त्रियां अच्छे वंश में पैदा हुई हैं, उनकी बात क्या कही जाय।"

यह कहानी सुनकर नरवाहनदत्त और उसके साथी बहुत प्रसन्न हुए।

## : ५ :

# गुणवरा और रूपशिखा

उसके बाद हरिशिख ने कहा, "यह बात सच है कि भली स्त्रियां पर-पुरुष का कभी ध्यान नहीं करती हैं और सदा पति-परायणा रहती हैं। इस संबंध में मैं आपको एक कथा सुनाता हूं। वर्द्धमानपुर में वीरभुज नाम का एक राजा राज्य करता

था। वह बहुत धर्मात्मा था। उसके सौ पत्नियां थीं। वह गुणवरा नाम की एक रानी को सबसे अधिक प्रेम करता था, लेकिन उसके कोई संतान नहीं थी, इसलिए उसने एक दिन वैद्य से सलाह ली। वैद्य ने कहा, 'एक जंगली बकरा पकड़कर मंगवाइये। मैं उससे पुत्र पैदा करने की एक दवा तैयार करूंगा।' राजा ने वैद्य को एक जंगली बकरा मंगवा दिया। वैद्य ने उस बकरे के मांस से एक रस तैयार किया और उसमें एक चूर्ण मिलाकर सब रानियों को पीने को दिया। गुणवरा को छोड़कर सभी रानियों ने उस रस को पिया। वह उस समय राजा के साथ देव-मंदिर गई हुई थी। इसलिए वंचित रह गई। उसे बड़ा दुख हुआ। उसने रसोइये से पूछा, 'क्या कुछ भी नहीं बचा है?' तब उसने बकरे के सींग दिखा दिये। वैद्य ने कहा, 'सींग तो और भी गुणवाले होते हैं।' और उसने सींग का रस निकालकर गुणवरा को पिलाया। समय पर सब रानियों के पुत्र पैदा हुए। गुणवरा को सबके बाद में पुत्र हुआ। सबसे छोटा होने पर भी वह गुण और सौंदर्य में सबसे श्रेष्ठ था। इसलिए सब उसको बहुत चाहते थे। सींग के रस से पैदा होने के कारण गुणवरा के पुत्र का नाम शृंगभुज रखा गया। शृंगभुज की प्रशंसा के कारण दूसरी रानियां गुणवरा से जलने लगीं। सबने मिलकर उसके विरुद्ध षड्यंत्र रचा। अयशोलेखा नामक रानी ने राजा से शिकायत की कि रानियों के महल का एक अधिकारी, जिसका नाम रक्षित है, गुणवरा के साथ अनुचित संबंध रखता है। यह सुनकर राजा ने रक्षित को बहुत दूर किसी परदेश में भेज दिया और फिर गुणवरा के महल में गया। राजा उस समय बहुत उदास था। गुणवरा ने उदासी का कारण पूछा। राजा ने कहा, 'एक बड़े ज्ञानी पुरुष ने मुझे बताया है कि तुम अपनी पत्नी गुणवरा को तहखाने म बंद कर दो और स्वयं ब्रह्मचारी बन जाओ। अगर मैं ऐसा नहीं करूंगा तो मेरा नाश हो जायगा।'

"यह सुनकर गुणवरा बोली,'आपके हित के लिए मैं कोई भी कष्ट उठा सकती हूं। इसलिए आप मुझे तहखाने में बंद करा दें।' राजा ने उसको तहखाने में बंद करवा दिया। उसके इस आचरण से वह समझ गया कि रानी निरपराध है। फिर भी लोकमर्यादा की रक्षा के लिए उसको कुछ दिनों तक तहखाने में बंद रखा। उसके तहखाने में बंद हो जाने के बाद दूसरी रानियों ने शृंगभुज को घर से निकालने का षड्यंत्र रचा। अयशोलेखा ने अपनी इच्छा अपने पुत्र निर्वासभुज पर प्रकट की। निर्वासभुज ने अपने दूसरे भाइयों से परामर्श किया। एक दिन उन लोगों ने

देखा कि घर की छत पर एक विशालकाय बगुला बैठा हुआ है। सबने एक-एक करके उस बगुले पर बाण छोड़े। किसीका बाण उस बगुले को नहीं लगा। उनमें से एक ने शृंगभुज को राजा का सोने का बाण लाकर दिया। शृंगभुज ने वह बाण छोड़ा और उससे वह घायल तो हो गया, लेकिन उसको लेकर उड़ गया। तब भाइयों ने कहना शुरू किया, 'तुम जाकर सोने का बाण लाओ, नहीं तो राजा सबको बड़ा दंड देंगे।' शृंगभुज ने उनकी बात मान ली और बगुले के शरीर से गिरनेवाले रक्त को देखता-देखता उसकी खोज में चल दिया। उन निशानों पर चलते-चलते वह एक जंगल में पहुंचा। वहां उसको एक सुंदर लड़की दिखाई दी। शृंगभुज ने उसका परिचय पूछा। वह लड़की बोली, 'मैं अग्निशिख नामक राक्षस की पुत्री रूपशिखा हूं। तुम्हारे सौंदर्य पर मुग्ध होकर मैं तुमसे मिलने आई हूं।' शृंगभुज ने उस राक्षस-कन्या को अपना सारा हाल सुना दिया। रूपशिखा ने कहा, 'तुम बड़े वीर हो। तुमने जिस बगुले को तीर मारा है, वह मेरे पिता ही थे। उन्होंने ही बगुले का रूप धारण कर लिया था। वह बाण मेरे पास है। मेरे पिता का घाव अब लगभग ठीक हो रहा है। तुम उनसे मिलकर जाओ। मैं तुमसे प्रेम करने लगी हूं।' उसने अपने पिता से जाकर कहा, 'शृंगभुज नाम का एक राजकुमार मेरे साथ आया है। मैं उससे प्रेम करती हूं। यदि आप उससे मेरा विवाह नहीं करेंगे, तो मैं जीवित नहीं रहूंगी।' उसके पिता ने राजकुमार को अपने पास बुलाकर कहा, 'मेरी एक शर्त मानो तो मैं तुम्हारे साथ रूपशिखा का विवाह कर दूंगा।' फिर उसने राजकुमार को नहाकर आने की और रूपशिखा को अपनी बहनों को लाने की आज्ञा दी। एकांत पाकर रूपशिखा ने शृंगभुज को समझाया कि मेरी सौ बहनों को खड़ा करके मेरा पिता तुमसे मुझको पहचानने को कहेंगे। हम सब बहनें एक-से रूप की हैं। इससे तुम्हें पहचानने में कठिनाई होगी। उस समय मैं गले की माला को अपने सिर पर रख लूंगी। इस चिह्न से तुम मुझे पहचान लेना। हो सकता है कि इसके बाद भी मेरे पिता राक्षस स्वभाव के कारण और भी पूछें। उन सब बातों के उत्तर तुम मुझसे पूछ लिया करना।

"यह कहकर वह अपनी बहनों को बुलाने चली गई। जब शृंगभुज नहा-धोकर आया, तब उस राक्षस ने अपनी सौ लड़कियां उसके सामने खड़ी कर दीं और कहा, 'जिसे तुम पसंद करते हो, उसके गले में माला डाल दो।' शृंगभुज ने, बताई हुई पहचान के अनुसार, रूपशिखा को माला पहना दी। तब राक्षस ने कहा, 'कल मैं

तुम्हारा विवाह रूपशिखा से करूंगा, लेकिन उससे पहले तुम एक काम करो। खेत में जाकर पहले दो बैलों से जमीन जोतो और फिर उसमें एकसौ पचास मन तिल बोओ।' राजकुमार ने रूपशिखा से इसका उपाय पूछा। रूपशिखा ने अपनी माया से क्षण-भर में वह काम कर दिया। तब राजकुमार ने राक्षस को इस बात की सूचना दी तो उसने कहा, 'जो तिल तुम बो आये हो, उन सबको बीन लाओ।' रूपशिखा ने राजकुमार के इस काम को भी थोड़ी ही देर में पूरा कर दिया। तब अग्निशिख ने राजकुमार से कहा, 'तुम मेरे भाई धूमशिख को विवाह का निमंत्रण देने जाओ। वह दक्षिण की ओर एक जंगल में शिव के मंदिर में रहता है।' राजकुमार ने रूपशिखा से इस काम में भी सहायता मांगी। रूपशिखा ने राजकुमार को अपना घोड़ा, एक कांटा, पानी, आग और मिट्टी देकर कहा, 'तुम इस पर चढ़कर वहां पहुंच जाओगे। जब तुम न्यौता देकर वापस लौटो, तो मिट्टी आदि इन वस्तुओं को बारी-बारी से अपने पीछे फेंकते आना।' सब बातें समझकर शृंगभुज दक्षिण की ओर चला गया। जब निमंत्रण देकर वह लौट रहा था, तो उसने मुड़कर देखा कि धूमशिख उसके पीछे आ रहा है। उसने मिट्टी फेंकी। उस मिट्टी से एक बहुत बड़ा पहाड़ बन गया। लेकिन धूमशिख ने उस पहाड़ को भी पार कर लिया। तब राजकुमार ने पीछे पानी फेंका। इस पानी से एक बहुत बड़ी नदी बन गई। राक्षस ने उस नदी को भी पार कर लिया। अब राजकुमार ने कांटा फेंका। उससे एक बहुत बड़ा कांटेदार जंगल खड़ा हो गया, लेकिन वह राक्षस उस जंगल से भी निकल आया। तब शृंगभुज ने आग फेंकी। उससे अग्नि का एक पहाड़-सा बन गया। इस पहाड़ को देखकर वह राक्षस वापस चला गया। राजकुमार अग्निशिख के पास लौट आया और बोला, 'मैं आपके भाई को निमंत्रण दे आया हूं।'

"इस काम के पूरे होने पर अग्निशिख चकित रह गया और उसने सोचा कि यह मनुष्य नहीं है, कोई दिव्य पुरुष मालूम पड़ता है। फिर भी उसने राजकुमार से पूछा, 'तुमने वहां क्या देखा था?' राजकुमार ने बताया, 'वहां शिव की मूर्ति के दक्षिण की ओर गणेश की मूर्ति और बाईं ओर पार्वती की मूर्ति है।' यह सुनकर राक्षस को राजकुमार के दिव्य पुरुष होने में विश्वास हो गया और उसके साथ रूपशिखा का विवाह कर दिया। कुछ दिनों रूपशिखा के साथ रहने के बाद उसने अपने घर जाने की इच्छा प्रकट की। रूपशिखा ने कहा, 'मेरे पिता

हम लोगों को नहीं जाने देंगे। इसलिए यहां से छिपकर चलना पड़ेगा।'

"फिर रूपशिखा ने अपने साथ बहुत-सा धन लिया और कुछ सोने के तीर भी लिये। फिर विहार करने का बहाना बनाकर शरवेग नामक घोड़े पर बैठकर वे दोनों वहां से चल दिये। अभी वे थोड़ी ही दूर गये थे कि उनको आकाश में एक आवाज सुनाई दी। रूपशिखा बोली, 'मालूम पड़ता है कि मेरे पिता आ रहे हैं।' उसने तुरंत अपनी माया से राजकुमार और घोड़े को छिपा दिया। स्वयं लकड़हारा बनकर लकड़ी बीनने लगी। अग्निशिख ने आकर उससे पूछा, 'तुमने इधर से एक स्त्री और पुरुष को जाते देखा है?' उसने कहा, 'मैंने किसीको नहीं देखा है। मैं तो अग्निशिख नामक राक्षस को फूंकने के लिए लकड़ियां बीन रहा हूं, क्योंकि वह मर गया है।' यह सुनकर मूर्ख अग्निशिख अपने घर वापस भागा और जब वहां उसके आदमियों ने कहा कि वह तो जिंदा है तो वह फिर रूपशिखा का पीछा करने चल पड़ा। रूपशिखा ने देखा कि उसका पिता फिर आ रहा है, तो उसने फिर राजकुमार और घोड़े को अपनी माया से छिपा दिया और स्वयं एक दूत बन गई। जब अग्निशिख ने पहले की तरह उससे पूछा, तो दूत बोला, 'मुझे नहीं मालूम। मैं तो अपने ही काम से चिंतित हूं। अग्निशिख को उसके शत्रुओं ने खूब मारा है, इसलिए उसकी चिट्ठी लेकर उसके भाई धूमशिख के पास जा रहा हूं कि वह आकर अग्निशिख का राज्य संभाल ले।' यह सुनकर वह घबड़ा गया और तत्काल वापस लौट गया। उसने घर जाकर जब अपने शत्रुओं के बारे में पूछा तो घर-वालों ने बताया कि अग्निशिख को किसीने नहीं मारा है। उस समय अग्निशिख अपने को सकुशल समझकर प्रसन्नता में रूपशिखा की बात भूल गया और फिर उसने उसका पीछा नहीं किया।

"उधर वे दोनों उस घोड़े पर बैठकर वर्द्धमानपुर आये। राजा वीरभुज ने इतने दिनों के बाद अपने पुत्र को पाकर बड़ी प्रसन्नता प्रकट की। उसने शृंगभुज से पूछा, 'तुम घर छोड़कर क्यों चले गये थे?' तब राजकुमार ने सारी बातें बता दीं और अपने भाइयों को सोने का तीर भी दिया। राजा की समझ में आ गया कि जिस प्रकार दूसरी रानियों ने गुणवरा के साथ षड्यंत्र किया था वैसे ही उसके भाइयों ने शृंगभुज के साथ षड्यंत्र किया है। तब राजा सारे रहस्य का पता लगाने के लिए अपनी रानी अयशोलेखा के पास गया। अयशोलेखा ने राजा के साथ खूब मदिरा-पान किया और फिर उसके साथ ही वह सो गई। सोते हुए

वह बड़बड़ाने लगी, 'यदि मैं गुणवरा को बंद न करवा देती, तो राजा मेरे पास नहीं आता।' यह बात सुनकर राजा को सारे रहस्य का पता लग गया। उसने गुणवरा को तहखाने से बुलवा लिया और उसे सारा हाल बताया। श्रृंगभुज ने पत्नी-सहित अपनी मां को नमस्कार किया और सब बातें बताईं। यह सुनकर गुणवरा ने कहा, 'तुम्हारी पत्नी शील गुणवाली है, क्योंकि उसने तुम्हारे जीवन की रक्षा की और तुम्हें घर तक लौटा लाई।'

"राजा वीरभुज अपनी दूसरी रानियों और उनके लड़कों को सजा देने की बात सोचने लगा, लेकिन श्रृंगभुज और रानी गुणवरा के कहने और समझाने पर उसने उन सबको क्षमा कर दिया। उसने श्रृंगभुज को युवराज बनाया, जिसने अपनी शक्ति से सारी पृथ्वी पर विजय प्राप्त की। इस तरह पतिव्रता स्त्रियां सदा पतिपरायणा रहती हैं। वे गुणवरा और रूपशिखा की भांति अपने पति की सहायता करती हैं।"

हरिशिख की यह कहानी सुनकर सभी को आनंद प्राप्त हुआ।

: ६ :

## पूर्व-जन्म का संस्कार

एक दिन राजा नरवाहनदत्त रत्नप्रभा के महल में बैठा हुआ था। प्रातःकाल उसके मंत्रीगण मिलने के लिए आये। मरुभूति मदिरा पीकर आया था। दूसरे मंत्रियों ने उसको समझाया कि राजा के सामने इस प्रकार मदिरा में मत्त होकर आना ठीक नहीं है। तब गोमुख ने कहा कि यह ऐसा आदमी नहीं है जो अपने गुणों को स्वयं ही अपना ले। ऐसे लोग दूसरे ही होते हैं जिनमें बिना प्रयास के गुणों का प्रवेश हो जाता है। इस संबंध में मैं आपको एक कहानी सुनाता हूं :

"तपोदत्त नाम का एक ब्राह्मण प्रतिष्ठान नामक देश में रहता था। बचपन में उसने अपना समय विद्या पढ़े बिना यों ही बिता दिया। जब वह बड़ा हो गया, तब वह गंगा के किनारे जाकर घोर तपस्या करने लगा। उसने सोचा कि वह तप के बल से विद्वान बनेगा। एक दिन इंद्र ब्राह्मण का रूप धरकर वहां आया और गंगा में रेत फेंकने लगा। यह देखकर तपोदत्त ने पूछा, 'तुम गंगा में रेत क्यों फेंक रहे

हो ?' ब्राह्मण रूपी इंद्र ने उत्तर दिया, 'मैं पुल बनाना चाहता हूं।' तपोदत्त बोला, 'तू मूर्ख है। पानी में रेत बह जाता है। उससे पुल नहीं बन सकता।' ब्राह्मण-रूपी इंद्र ने जवाब दिया, 'जिस प्रकार रेत से पुल नहीं बनता है, उसी प्रकार तपस्या से विद्वान नहीं बना जा सकता।' यह सुनकर तपोदत्त अपने घर वापस चला गया। बुद्धिमान के लिए संकेत ही काफी होता है।" तब हरिशिख ने कहा, "ठीक है, जो बुद्धिमान होते हैं, वे जल्दी ही संभल जाते हैं। इस विषय में मेरी भी कथा सुनिये :

"विरूपशर्मा नाम का एक ब्राह्मण काशी में रहता था। वह बहुत असुंदर था। उसने सुंदरता और लक्ष्मी की प्राप्ति के लिए घोर तपस्या की। तब इंद्र ने एक बीमार और कुरूप सियार का रूप धारण किया और जहां पर वह ब्राह्मण तपस्या कर रहा था, वहां पर जाकर बैठ गया। उस सियार की कुरूपता देखकर ब्राह्मण ने सोचा कि यह सियार तो मुझसे भी ज्यादा कुरूप है। यह सब पिछले जन्मों के कर्मों का फल ही है। फिर उसने तपस्या करना छोड़ दिया और अपने घर चला गया।"

हरिशिख की यह कहानी सुनकर गोमुख बहुत प्रसन्न हुआ, लेकिन मरुभूति लड़ने को तैयार हो गया। नरवाहनदत्त ने उसको समझा-बुझाकर घर भेज दिया। दूसरे दिन प्रातःकाल फिर सब मंत्री राजा नरवाहनदत्त के पास आये। तब रत्न-प्रभा कहने लगी, "यह पूर्वजन्म के पुण्यों का ही फल है कि आपको जो मंत्री मिले हैं, वे बचपन से आपके स्नेह करनेवाले साथी हैं।" यह सुनकर वसंतक ने कहा, "यह सच है, क्योंकि बिना पिछले जन्म के संस्कारों के कोई भी काम पूरा नहीं होता है। इस संबंध में एक कथा सुनाता हूं : एक समय विनयशील नाम का एक राजा विलासपुर में राज्य करता था। उसकी रानी का नाम कमलप्रभा था। वह बहुत सुंदर थी। जब राजा बूढ़ा हो गया तो उसने एक वैद्य से फिर जवान बनने की दवा पूछी। उस वैद्य ने कहा, 'आप जमीन में एक गड्ढा खुदवाइये और उसमें रहना शुरू कीजिये। फिर मैं आपको दवा दूंगा। ऐसा करने से आप फिर नवयुवक हो जायंगे।'

"राजा ने ऐसा ही किया। वैद्य उस गड्ढे में जाकर कभी-कभी दवा के बहाने कुछ खाने को दे आता था। इस प्रकार वह वृद्ध राजा और जर्जर हो गया। वैद्य ने सोचा कि अब वह मर ही जायगा, इसलिए राजा की आकृति के किसी और मनुष्य को पकड़ लाया। रात में उस आदमी को गड्ढे में बिठा दिया और वृद्ध राजा को

मारकर एक कुएं में डाल दिया। वैद्य ने जिस आदमी को गड्ढे में बिठाया था, उसकी शक्ल राजा से मिलती थी और वह तरुण भी था। जब राजा के कर्मचारियों और मंत्रियों ने राजा का हाल पूछा तो वैद्य ने कहा, 'राजा जवान हो गया है। तुम लोग चलकर उसको देख सकते हो। फिर वह राजा के कर्मचारियों और मंत्रियों को राजा के पास ले गया और दूर से उस आदमी को दिखा दिया। धीरे-धीरे जब वह आदमी सबसे परिचित हो गया, तो उसे राज-दरबार जाने की आज्ञा मिल गई। उस आदमी ने राज्य-सभा में राजा की तरह ही व्यवहार किया और यह साबित कर दिया कि वही राजा है। अब लोग उस राजा को अजर नाम से पुकारने लगे। लेकिन वह उस वैद्य को कम मुंह लगाता था। इस बात से क्रुद्ध होकर वैद्य ने राजा से एकांत में कहा, 'देखो मैंने ही तुमको राजा बनाया है। तुम इस प्रकार मेरी उपेक्षा करते हो, यह बात ठीक नहीं।' राजा ने उत्तर दिया, 'कोई मनुष्य किसीको न तो राजा बना सकता है और न भिखारी। मैं अपने पूर्व-जन्म के कर्मों के फल से ही राजा बना हूं।'

"उसके बाद एक दिन राजा मंत्रियों और वैद्य के साथ नदी के किनारे घूम रहा था। उसने देखा, नदी में पांच सुवर्ण कमल तैर रहे हैं। राजा ने वे कमल निकलवा लिये और वैद्य से कहा, 'तुम जाकर पता लगाओ कि ये कमल कहां पैदा होते हैं।' वैद्य नदी के किनारे-किनारे उस ओर चल दिया जहां से वे कमल बहते हुए आ रहे थे। बहुत दूर जान के बाद वैद्य ने देखा कि नदी के किनारे एक विशाल बरगद का पेड़ खड़ा है। उससे एक आदमी का कंकाल नीचे मुंह किये लटक रहा है। थोड़ी देर में पानी बरसने लगा। बरसात का पानी कंकाल में होकर नदी में टपकता था और वह सोने का कमल बन जाता था। यह देखकर वैद्य चकित रह गया और उसने उस कंकाल को नदी में फेंक दिया। फिर राजा से आकर सारा हाल सुनाया। राजा ने कहा, 'पेड़ पर लटका हुआ जो कंकाल तुम देख आये हो, वह मेरा ही कंकाल है। पूर्व-जन्म में मैंने ऐसे ही लटककर तपस्या की थी। इसी तरह मेरे प्राण निकल गये थे। मैं पूर्व-जन्म की तपस्या के फल से ही इस जन्म में राजा बना हूं। उसीके प्रताप से मुझे वे सब बातें भी याद हैं। मैं यह भी जानता हूं कि तुम उस कंकाल को नदी में फेंक आये हो। इसलिए मित्र, तुमको यह घमंड छोड़ देना चाहिए कि तुमने मुझको राजा बनाया है।' "

यह कथा सुनाकर वसंतक ने कहा, "हे राजा! हमको मंत्री बनने का जो

सौभाग्य प्राप्त हुआ है, वह पिछले जन्म के संस्कारों के कारण ही है।"

: ७ :

# चिरायु और नागार्जुन

दूसरे दिन राजा नरवाहनदत्त रत्नप्रभा के साथ बैठा हुआ अपने मंत्रियों से बात-चीत कर रहा था। उसी समय द्वार पर किसीके रोने की आवाज सुनाई दी। मालूम हुआ कि कंचुकी के भाई की किसी तीर्थ में मृत्यु हो गई है और उसी शोक में वह रो रहा है। रत्नप्रभा बोली, "जो लोग हमें प्रिय होते हैं, उनके विछोह से हमको बहुत दुख होता है। पता नहीं, विधाता ने उनको अमर क्यों नहीं बनाया?" रत्नप्रभा की यह बात सुनकर मरुभूति ने कहा, "मनुष्यों में यह बात संभव नहीं हो सकती है। इस संबंध में मेरी एक कथा सुनिये :

"चिरायु नाम का एक राजा चिरायु नामक नगर में राज्य करता था। उसका मंत्री नागार्जुन बड़ा दयालु, दानशील और वैज्ञानिक था। उसने सिद्ध रसायन नामक एक दवा बनाई थी, उसे खाकर राजा अमर हो गया था। एक बार नागार्जुन का लड़का मर गया। उसे बहुत दुख हुआ। उसने निश्चय किया कि मैं मृत्यु को जीतने के लिए अमृत का निर्माण करूंगा और वह उसी प्रयत्न में लग गया। जब अमृत को बनाने के काम में वह अंतिम औषधि मिला रहा था, तब इंद्र विचलित हो गये। सब देवताओं से मंत्रणा करने के बाद इंद्र ने अश्विनीकुमार से कहा, 'तुम जाकर नागार्जुन से कहो कि तुम्हारा इस प्रकार अमृत बनाना ठीक नहीं है। क्या तुम विधाता पर विजय पाना चाहते हो? अगर मरणशील प्राणियों को अमर कर दिया जायगा, तो देवता और मनुष्य में क्या भेद रहेगा? फिर देवताओं के प्रति आदर का भाव मिट जायगा। इसलिए तुम अमृत बनाना छोड़ दो। नहीं तो देवता तुमको शाप दे देंगे। तुम्हारा पुत्र तो स्वर्ग में सुख भोग रहा है।' अश्विनीकुमार ने नागार्जुन के पास जाकर इंद्र का संदेश दिया तो वह मान गया और उसने उस अमृत को धरती पर फेंक दिया।

"कुछ दिनों बाद राजा चिरायु ने अपने पुत्र को युवराज बना दिया। वह युवराज अपनी मां को यह शुभ समाचार सुनाने गया। मां ने कहा, 'युवराज बनने से

कोई लाभ नहीं है, क्योंकि तुम्हारे पिता अमर हैं, अतः तुम कभी राजा नहीं बन सकते। मैं तुमको एक उपाय बताती हूं। जब सबेरे नागार्जुन दान देता है, तो तुम उसके पास जाओ और दान में उसका सिर मांग लो। जब नागार्जुन नहीं रहेगा तो उसके वियोग में या तो राजा मर जायगा या राज्य छोड़कर कहीं जंगल में चला जायगा। उस समय तुम राजा बन सकते हो।'

"दूसरे दिन सवेरे वह नागार्जुन के पास दान लेने गया। उसने नागार्जुन से उसके सिर की याचना की। नागार्जुन ने अपना सिर उसके सामने कर दिया और कहा, 'लो काट लो।' कई बार प्रयत्न करने पर भी सिर न कट सका। उसी समय राजा चिरायु वहां आ गया और उसने उसको सिर देने से रोका; लेकिन दानशील नागार्जुन ने राजा की यह बात नहीं मानी और कहा, 'मैं पिछले जन्मों में निन्यानवे बार अपने सिर का दान कर चुका हूं। इसलिए सौवीं बार भी दान करने से नहीं चूकूंगा।' यह यहकर नागार्जुन ने युवराज की तलवार पर एक चूर्ण का लेप कर दिया, जिससे उसका सिर सहज ही कट गया। नागार्जुन के मर जाने के बाद राजा बहुत दुखी रहने लगा। लेकिन एक दिन आकाशवाणी हुई कि नागार्जुन को मोक्ष प्राप्त हो गया है। आकाशवाणी सुनने के बाद राजा भी तपस्या करने वन में चला गया। अब युवराज वहां का राजा बन गया। लेकिन कुछ दिनों बाद नागार्जुन के लड़कों ने इस राजा को मारकर चिरायु के दूसरे लड़के को राजा बना दिया।"

यह कथा सुनाकर मरुभूति बोला, "इस प्रकार विधाता की सृष्टि में सभी मनुष्य मरणशील हैं। विधाता की बिना इच्छा के कोई भी प्राणी कुछ नहीं कर सकता है।"

यह कथा सुनने के बाद मंत्रियों के साथ नरवाहनदत्त उठकर अपना काम-काज करने चला गया।

: ८ :

# नरवाहनदत्त की आखेट-यात्रा

एक दिन नरवाहनदत्त अपने पिता के साथ शिकार खेलने गया। उसके साथ बहुत से घोड़े और हाथी थे। सिंह, भालू आदि अनेक जानवरों का शिकार करने के बाद वह घोड़े पर बैठकर गोमुख के साथ जंगल में चला गया। कुछ दूर जाने के बाद उसने गेंद खेलना शुरू किया। एक बार अचानक गेंद उधर से निकलती हुई एक तापसी स्त्री के जा लगी। उसने मुस्कराकर नरवाहनदत्त से कहा, "अभी तो तुम्हारा यह हाल है, अगर कहीं कर्पूरिका तुम्हारी रानी बन जाय तब क्या होगा ?" नरवाहनदत्त ने उस तपस्विनी से अपने अपराध की क्षमा मांगी और जब वह प्रसन्न हो गई तो पूछा, "यह कर्पूरिका कौन है ?" तापसी ने बताया, "कर्पूरिका कर्पूरपुर के राजा कर्पूरक की पुत्री है। वह बहुत सुंदरी है, किंतु वह किसीसे विवाह नहीं करती। यदि तुम उसके पास जाओगे तो वह तुम्हारे साथ विवाह कर लेगी।"

यह कहकर वह तपस्विनी चली गई। तब नरवाहनदत्त भी गोमुख को साथ लेकर कर्पूरपुर की ओर चल दिया। इधर राजा उदयन यह समझे कि नरवाहनदत्त घर चला गया है; लेकिन घर आने पर युवराज का पता नहीं चला। सबको बड़ी चिंता हुई। परंतु रत्नप्रभा ने अपनी माया से युवराज का सब हाल जान लिया और सास व ससुर को भी बता दिया। फिर उसने अपनी माया के द्वारा ही मार्ग में युवराज की रक्षा का प्रबंध कर दिया। उधर नरवाहनदत्त को एक कन्या दिखाई दी। उस कन्या ने बताया, "मैं रत्नप्रभा की ओर से आप लोगों की रक्षा करने आई हूं। संध्या हो जाने पर नरवाहनदत्त और गोमुख एक तालाब के किनारे रुके। घोड़ों को बांधकर वे पेड़ पर चढ़कर रात बिताने लगे। तभी एक भयंकर शेर ने आकर दोनों घोड़ों को मार डाला। यह देखकर नरवाहनदत्त ने उस पर अपनी तलवार से प्रहार किया। वह शेर वहीं मर गया। सबेरा होने पर दोनों पैदल ही चल पड़े। चलते-चलते मनोरंजन के लिए गोमुख ने एक कथा सुनाई :

परित्यागसंग नाम का एक राजा ऐरावती नगरी में रहता था। उसके दो

रानियां थीं। एक का नाम अधिकसंगमा और दूसरी का नाम काव्यालंकारा था। अधिकसंगमा राजा के एक मंत्री की ही लड़की थी। इस राजा के कोई लड़का नहीं था। इसलिए उसने घोर तपस्या की। प्रसन्न होकर पार्वतीजी ने स्वप्न में दो फल राजा को दिये। सवेरे उन दोनों फलों को लेकर राजा पहले अधिकसंगमा के पास गया। उसने उसे एक फल खिला दिया और दूसरा फल अपने पास रखकर वहीं सो गया। अधिकसंगमा ने वह फल भी खा लिया। जब दूसरी रानी काव्यालंकारा को इस बात का पता चला, तो उसे क्रोध तो बहुत आया पर वह बोली नहीं। समय आने पर अधिकसंगमा के दो पुत्र हुए। एक का नाम इंदीवरसेन और दूसरे का नाम अनिच्छासेन रखा गया। दोनों ही बहुत सुंदर थे। काव्यालंकारा इनसे मन-ही-मन बहुत जलती थी।

जब वे दोनों बड़े हुए, तो उन्होंने दूसरे देशों को जीतने के लिए जाने की अपने पिता से आज्ञा मांगी। उनका पिता उनके इस साहसपूर्ण निश्चय पर बहुत प्रसन्न हुआ और सहर्ष जाने की आज्ञा दे दी और कहा, "अगर कोई विपत्ति आये तो पार्वतीजी का स्मरण कर लेना।"

पहले उन्होंने पूर्व दिशा की ओर विजय प्राप्त की, फिर उधर के राजाओं के साथ दक्षिण की ओर चल दिये। उनके जाने के बाद काव्यालंकारा ने एक षड्-यंत्र रचा। उसने एक राज्याधिकारी से राजा की ओर से दूसरे राजपुत्रों को एक पत्र लिखवाया। इसमें लिखा गया था : "मेरे ये दोनों लड़के दिग्विजय करने के बाद स्वयं राजा बनना चाहते ह। इसलिए इनको जान से मार दो।"

जब इस चिट्ठी को लेकर दूत राजपुत्रों के पास गया, तो वे इन राजकुमारों को मारने के लिए तैयार हो गये। लेकिन इस बात का पता उनके मंत्री को भी लग गया था। वह रात में दोनों राजकुमारों को बचाकर निकाल ले गया। जब वे तीनों विंध्याचल के जंगल में पहुंचे तो उनके घोड़े और मंत्री मर गये। इससे दोनों राज-कुमारों को बहुत दुख हुआ और उन्होंने विंध्यवासिनी देवी की कृपा पाने के लिए घोर तपस्या शुरू कर दी। उधर जो दूसरे राजपुत्र वह चिट्ठी पाकर इनको मारने की खोज में घूम रहे थे, वे निराश होकर राजा परित्यागसंग के पास गये और उसको वह चिट्ठी दिखाई। चिट्ठी को देखकर राजा को बहुत क्रोध आया। उसने चिट्ठी लिखनेवाले राज्याधिकारी को मृत्युदंड दे दिया और काव्यालंकारा को बंदीगृह मे डाल दिया। इधर उन राजकुमारों की तपस्या से प्रसन्न होकर विंध्यवासिनी देवी ने इंदीवरसेन

को एक ऐसी तलवार भेंट की जो हर काम करने में समर्थ थी। वे दोनों उस तलवार को लेकर आगे चल दिये। रास्ते में उनको एक नगर दिखाई पड़ा। जब वे उसमें प्रवेश करने लगे, तो द्वार पर पहरा देनेवाले एक डरावने राक्षस ने उनको रोका। उस राक्षस ने बताया, "हमारे राजा का नाम यमदंष्ट्र है और नगर का शैलपुर। तुम लोग अंदर नहीं जा सकते।" इंदीवरसेन ने उस राक्षस को मार डाला और दोनों उस राक्षस के महल में पहुंचे। वहां उन्होंने देखा कि यमदंष्ट्र राक्षस के साथ दो स्त्रियां बैठी हैं। उन्होंने राक्षस को लड़ने के लिए ललकारा। खूब युद्ध हुआ। राजकुमार राक्षस का सिर बार-बार काट डालते थे, लेकिन हर बार वह वैसा ही हो जाता था। तभी दोनों में से एक स्त्री ने संकेत किया कि सिर के दो टुकड़े करने के बाद फिर काटो। राजकुमार इंदीवरसेन ने ऐसा ही किया और वह राक्षस मर गया। वे दोनों स्त्रियां बड़ी प्रसन्न हुईं। उनमें से एक ने, जो कुमारी थी, कहा, "राक्षस यमदंष्ट्र ने इस नगर के पहले राजा वीरभुज को मार डाला था और उसकी पत्नी और राज्य पर अधिकार कर लिया था। यमदंष्ट्र मेरा बड़ा भाई था। मेरा नाम खड्गदंष्ट्रा है और यह जो राक्षस की पत्नी है, इसका नाम मदनदंष्ट्रा है।" फिर उसने इंदीवरसेन के प्रति अपना प्रेम प्रकट किया। इंदीवरसेन ने उसके साथ गंधर्व-विवाह कर लिया और वे वहीं रहने लगे। एक बार इंदीवरसेन ने अपनी उस तलवार से अकाश में उड़नेवाला यंत्र बनाया और उस पर बैठाकर अपने भाई अनिच्छासेन को घर भेज दिया। घर जाकर अनिच्छासेन ने अपना और अपने भाई का सब हाल अपने पिता को सुनाया। फिर भाई को लाने के लिए आकाश मार्ग से वह शैलपुर वापस पहुंचा। वहां आकर उसने देखा कि उसका भाई इंदीवरसेन मूर्च्छित पड़ा है और वे दोनों स्त्रियां विलाप कर रही हैं। खड्गदंष्ट्रा ने बताया, "मेरी अनुपस्थिति में तुम्हारे भाई ने मदनदंष्ट्रा से प्रेम किया। इसलिए मैंने क्रोध में आकर इसकी तलवार को आग में फेंक दिया। ऐसा करते ही तुम्हारा भाई अचेत होकर गिर पड़ा और तब से ऐसे ही पड़ा हुआ है।"

यह सुनकर अनिच्छासेन बहुत दुखी हुआ और अपनी जान देने की बात सोचने लगा। उसी समय आकाशवाणी हुई, "तुम्हारा भाई इंदीवरसेन मरा नहीं है। वह मूर्च्छित पड़ा है। ये दोनों स्त्रियां तुम्हारे भाई की पूर्व जन्म की पत्नियां थीं। इसलिए उसने दोनों से प्रेम करके कोई पाप नहीं किया है। अगर तुम पार्वती की पूजा करोगे तो यह ठीक हो जायगा।"

अनिच्छासेन ने ऐसा ही किया। उसका भाई अच्छा हो गया और तलवार भी पहले जैसी बन गई। उसके बाद इंदीवरसेन सबके साथ आकाश मार्ग से अपने घर आ गया और राजा को सारा हाल बता दिया। कुछ दिन सुखपूर्वक रहकर इंदीवरसेन ने देवी से प्राप्त अपनी तलवार से दुबारा दिग्विजय प्राप्त की। उस समय सहसा उसको अपने पिछले जन्म की सारी बातें याद आ गईं। वह अपने पिता से बोला, "हिमालय पर एक सुंदर नगर है, जिसका नाम मुक्तापुर है। उसमें मुक्तासेन नामक विद्याधरों का राजा राज्य करता था। उसकी पत्नी का नाम कंबुवती था। उसके दो पुत्र पैदा हुए। एक का नाम पद्मसेन और दूसरे का नाम रूपसेन था। पद्मसेन का विवाह एक विद्याधरी से हुआ था, उसका नाम आदित्यप्रभा था। आदित्यप्रभा के चंद्रवती नाम की एक सखी थी। ईर्ष्या के कारण उसने भी पद्मसेन के साथ विवाह किया था। एक बार गृह-कलह से घबड़ाकर पद्मसेन ने अपने पिता से वन में जाने की अनुमति मांगी। पद्मसेन का भाई रूपसेन भी उसके साथ जाना चाहता था। लेकिन उसके पिता ने उसे आज्ञा नहीं दी। जब पद्मसेन ने बार-बार कहा, तो उसके पिता को क्रोध आ गया और उसने शाप दे दिया, 'तेरा जन्म मनुष्य रूप में होगा। तेरी पत्नी आदित्यप्रभा एक राक्षस के घर जन्म लेगी और चंद्रवती एक राजा की रानी बनेगी, लेकिन उसको भी एक राक्षस ले जायगा। फिर वह राक्षस की पत्नी बनेगी, लेकिन कुछ दिनों बाद दोनों तेरी पत्नी बन जायेंगी। तेरा छोटा भाई तेरे साथ मनुष्य योनि में पैदा होगा। कुछ दिनों तुझे तेरी पत्नियों से दुख मिलेगा, लेकिन बाद में सारे संसार पर विजय प्राप्त कर जब तू अपने पिता के पास आयगा, तब तुझको अपने पूर्व जन्म की याद आयगी। तभी यह शाप भी मिट जायगा।' सो हे पिता! पिछले जन्म में मैं ही पद्मसेन था, अनिच्छासेन रूपसेन था, मदनदंष्ट्रा चंद्रवती और खड्गदंष्ट्रा आदित्यप्रभा थी। मैं अपना कर्तव्य पूरा कर चुका हूं। मेरा शाप भी छूट चुका है। अब आप अपना राज्य संभालिये।"

यह कहकर पद्मसेन अपने भाई और स्त्रियों के साथ विद्याधर बनकर मुक्तापुर में जाकर रहने लगा।

इतनी कथा सुनाने के बाद गोमुख ने युवराज से कहा, "बड़े लोगों को जितना दुख प्राप्त होता है, उतना ही सुख प्राप्त होता है। अगर इस समय आपको कर्पूरिका के लिए दुख उठाना पड़ रहा है, तो कुछ दिनों बाद सुख भी मिलेगा।"

यह कथा सुनते-सुनते नरवाहनदत्त सांझ को एक सरोवर के तट पर पहुंच गया। वहां उन्होंने कुछ फल तोड़कर खाये और रात बिताने के लिए पत्ते बिछा-कर सो गये।

## : ९ :

# राजकुमारी कर्पूरिका

सवेरे उठकर नरवाहनदत्त ने गोमुख से कहा, "मैंने रात में एक सपना देखा है। सपने में सफेद कपड़े पहने हुए एक सुंदरी कुमारी ने मुझसे कहा कि शीघ्र ही तुम्हारी इच्छा पूरी होगी। समुद्र के किनारे तुम्हें एक अद्भुत नगर मिलेगा। वहीं कर्पूरक राज्य में तुमको कर्पूरिका राजकुमारी प्राप्त होगी।"

सचमुच कुछ दूर जाने के बाद समुद्र के किनारे उन्हें एक नगर दिखाई पड़ा। उस नगर के सारे मकान सोने के बने हुए थे और सारे नगरवासी निर्जीव यंत्र की तरह काम कर रहे थे। जब नरवाहनदत्त महल में गया, तो सिंहासन पर बैठे हुए व्यक्ति ने उसका स्वागत किया। नरवाहनदत्त ने अपना सब हाल उसको बताया और पूछा, "तुम्हारे नगर में बहुत-सी आश्चर्यजनक बातें क्यों हैं?" उसने बताया, "बाहुबल नाम का एक राजा कांची नाम की नगरी में राज्य करता है। मैं वहीं रहता था। मैं जाति का बढ़ई हूं। मेरा एक भाई और है। मैं और मेरा भाई अद्भुत प्रकार के यंत्र बनाने में बड़े निपुण थे। मेरे बड़े भाई का नाम प्राणधर है और मेरा नाम राजधर है। मेरा बड़ा भाई विलासी है। उसने सारा धन विलास में उड़ा दिया। जब वह बिल्कुल निर्धन हो गया तो उसने लकड़ी के दो हंस बनाये और उनमें ऐसा यंत्र लगाया जिसकी डोरी खींचने से वे हंस काम करने लगते थे। वह रात में उन हंसों की डोरी खींचा करता था और वे हंस राजा के खजाने से धन चुरा लाते थे। जब राजा के कोष में प्रति दिन धन कम होने लगा, तो उसने कड़ा पहरा बिठा दिया। रात को झरोखे से जानेवाले ये हंस पकड़ लिये गये। तब मेरे भाई ने अपने बनाये हुए एक उड़नेवाले यंत्र पर चढ़कर भागने की तैयारी की। वह अपने परिवार के साथ उस पर बैठ गया, लेकिन मेरे लिए जगह न बची। वह उड़ गया, तब मैंने भी अपने बनाये हुए यंत्र पर बैठकर आकाश-मार्ग

से उड़ना शुरू किया और इस विचित्र नगर में आ पहुंचा। यहां कोई आदमी नहीं था। मैं इस महल में आया और एक पलंग पर लेट गया। नींद आने पर स्वप्न में भगवान कार्तिक ने मुझसे कहा, 'तुम अब यहीं आराम से रहो। जब भूख लगे तो ऊपर के कमरे में आ जाना।' सवेरे भोजन के समय मैं ऊपर के कमरे गया। वहां मैं जिस चीज की भी इच्छा करता था, वही सोने के बर्तनों में आ जाती थी। इस प्रकार मुझे हर चीज इच्छानुसार मिलने लगी। लेकिन यहां स्त्री-पुरुषों का अभाव था। इसलिए मैंने ये काठ के यंत्रों के नौकर-चाकर बना लिये हैं,जो मेरा काम करते रहते हैं। इस प्रकार इस विचित्र स्थान में मैं अकेला प्राणी होकर भी आनंद से रहता हूं।"

फिर उसने नरवाहनदत्त और गोमुख को नहला-धुलाकर भोजन कराया और जब वे आराम कर रहे थे, तब उसने नरवाहनदत्त से कहा, "तुम चिंता न करो। तुम्हें कर्पूरिका अवश्य प्राप्त होगी। मैं इस विषय में तुमको एक कहानी सुनाता हूं: कांची के राजा बाहुबल के एक प्रतिहारी का नाम अर्थलोभ था। उसकी एक रूपवती पत्नी थी, जिसका नाम मानपरा था। राजा के यहां से अर्थलोभ को जो धन प्राप्त होता था, वह एक बनिये को व्यापार में लगाने के लिए दे आता था। इस लेन-देन का काम अर्थलोभ की पत्नी देखती थी। मानपारा के सौंदर्य के कारण यह लेन-देन का व्यापार काफी फैल गया। अर्थलोभ इसे अपनी पत्नी की सफलता समझकर बड़ा प्रसन्न होता था। एक बार नगर में सुखधन नाम का एक बड़ा धनी व्यापारी आया। तब अर्थलोभ ने अपनी पत्नी मानपरा से कहा, 'तुम अपने प्रभाव से पांच हचार घोड़े और दस हजार सुंदर कपड़े सुखधन से लाकर मुझे दो।' पति की आज्ञा मानकर मानपरा ने सुखधन से ये वस्तुएं प्राप्त करने का प्रयत्न किया, परंतु उसने कुछ भी नहीं दिया और कहा, 'यदि एक रात तुम मेरे साथ रहो, तो मैं ये सब चीजें तुमको बिना पैसे लिये ही दे सकता हूं।' मानपरा ने लौटकर पति से सारी बातें बता दी। अर्थलोभ ने कहा, 'यदि एक रात में इतना लाभ हो सकता है, तो इसे नहीं छोड़ना चाहिए। तुम सुखधन के पास रह सकती हो।' मानपरा पति की आज्ञा मानकर उस रात सुखधन के पास चली गई। सुखधन ने भी उसी रात पांच हजार घोड़े और दस हजार कपड़े उसके घर भेज दिये। इतना सामान पाकर अर्थलोभ बहुत प्रसन्न हुआ; लेकिन सवेरा होने पर मानपरा घर नहीं लौटी। अर्थलोभ ने अपने नौकरों को भेजा तो उसने कहा, 'उससे जाकर

कह देना कि अब मैं उसकी पत्नी नहीं हूं । जब उसने मुझे इस व्यापारी के हाथ बेच दिया है, तो मैं अब इसकी ही पत्नी बन गई हूं ।'

"नौकरों ने यही बात अर्थलोभ से जाकर कह दी । तब अर्थलोभ अपनी सेना लेकर सुखधन पर आक्रमण करने के लिए गया, लेकिन हारकर लौट आया। फिर वह राजा बाहुबल के पास गया और सहायता की याचना करने लगा । राजा ने तुरंत आज्ञा दी, 'सुखधन को पकड़ लाओ ।' मंत्रियों ने राजा को समझाया, 'बिना अच्छी तरह पूरा हाल जाने ऐसा नहीं करना चाहिए, क्योंकि सुखधन भी एक बहुत बड़ा व्यापारी है ।' तब राजा ने सही स्थिति का पता लगाने के लिए एक दूत नियत कर दिया । वह मानपरा से भी मिला । मानपरा ने सारी बातें उस दूत को बतला दीं । दूत ने जाकर राजा से कहा । सब-कुछ जानकर राजा अर्थलोभ के साथ मानपरा के पास पहुंचा । स्वागत-सत्कार के बाद मानपरा बोली, 'जिस आदमी ने धन के लालच में मुझे बेच दिया है, अब उसका मुझ पर अधिकार ही क्या है ?' राजा ने अर्थलोभ से पूछा, 'बताओ अब तुम क्या कहते हो ?' अर्थलोभ बोला, 'मेरा और सुखधन का द्वंद्व युद्ध हो जाना चाहिए । जो जीतेगा, वही मानपरा को ले जायेगा ।'

"राजा ने इस बात को स्वीकार कर लिया । दोनों का द्वंद्व युद्ध हुआ । इसमें अर्थलोभ घायल होकर गिर पड़ा । राजा सुखधन से बहुत प्रसन्न हुआ और उसे अपना प्रतिहार बना लिया । इनाम भी दिया । सुखधन आराम से मानपरा के साथ जीवन बिताने लगा । इस प्रकार पुरुषार्थी, वीर और साहसी आदमी को धन और स्त्री दोनों ही मिल जाते हैं । इसलिए हे राजकुमार ! तुम्हारे जैसे पराक्रमी को कर्पूरिका अवश्य प्राप्त होगी ।"

दूसरे दिन सवेरे राजधर ने नरवाहनदत्त को अपना बनाया हुआ आकाशगामी यंत्र भेंट किया । उस पर बैठकर वे दोनों कर्पूरपुर में जाकर उतरे । वहां राजमहल के पड़ौस में रहनेवाली एक बुढ़िया के घर उन्होंने रहने का प्रबंध कर लिया । एक दिन नरवाहनदत्त ने उस बुढ़िया से वहां के राजा का परिचय पूछा । बुढ़िया ने बताया, "हमारे राजा का नाम कर्पूरक है । उसके कोई संतान नहीं होती थी । तब उसने अपनी रानी के साथ शिव को प्रसन्न करने के लिए घोर तप किया । शिव ने प्रसन्न होकर राजा से स्वप्न में कहा, 'तुम्हारे एक रूपवती कन्या उत्पन्न होगी, जो विद्याधरों के राजा से ब्याही जायगी ।' समय पर राजा कर्पूरक

की बुद्धिकरी नामक रानी से एक कन्या पैदा हुई, जिसका नाम कर्पूरिका रखा गया। वह पुरुषों से बहुत चिढ़ती है और विवाह के विरुद्ध है। मेरी लड़की उसकी सखी है। उसने एक दिन मेरी लड़की को अपने पूर्वजन्म का हाल बताया था। उसने कहा था, 'पिछले जन्म में मैं राजहंसिनी थी और समुद्र के किनारे एक सरोवर में चंदन के एक पेड़ के पास अपने पति के साथ रहती थी। एक बार चंदन के पेड़ पर मैंने अपना नीड़ बनाया और उसमें अपने बच्चों को पालने लगी। लेकिन एक दिन समुद्र की तेज लहरों में बच्चों समेत वह नीड़ बह गया। इससे मुझे बहुत दुख हुआ और मैंने खाना-पीना छोड़ दिया। फिर मैं शिवजी की पूजा करने लगी। उस समय मेरे पति ने कहा, 'इतना दुख क्यों करती हो। अगर हम लोग जीवित हैं, तो और भी बच्चे पैदा हो जायंगे।' पति की यह बात मुझे बहुत बुरी लगी और मैंने सोचा कि ये पुरुष कितने स्वार्थी होते हैं जिन्हें अपने बच्चों से भी प्रेम नहीं होता। इसलिए मैंने शिव से याचना की कि अगले जन्म में मैं राजघराने में पैदा होऊं और मुझे पिछले जन्म की बातें भी याद रहें। मैंने तत्काल ही शरीर छोड़ दिया और यहां राजकुमारी के रूप में पैदा हुई। मुझे पिछले जन्म की बातें याद है। इसलिए मुझे पुरुषों से चिढ़ होती है।' "

राजकुमारी की बात सुनाकर उस बुढ़िया ने नरवाहनदत्त से कहा, "तुम मुझे बड़े पराक्रमी मालूम पड़ते हो और लगता है कि कर्पूरिका से तुम्हारा विवाह हो जायगा।" दूसरे दिन सवेरे गोमुख ने नरवाहनदत्त को महाव्रती बना दिया वह राज-महल के द्वार पर जाकर इधर-उधर घूमता हुआ "हाय हंसिनी!" "हाय हंसिनी! !" चिल्लाने लगा। गोमुख भी महाव्रती के रूप में उसके साथ था। राजकुमारी कर्पूरिका को जब यह पता चला, तो उसने इस महाव्रती-रूपी राजकुमार को अपने पास बुलाया और पूछा, "तुम हाय हंसिनी ! हाय हंसिनी ! ! क्यों चिल्लाते हो ?" राजकुमार ने कोई उत्तर नहीं दिया और "हाय हंसिनी!" "हाय हंसिनी! !" कहता रहा। तब गोमुख बोला, "मुझे इसने एक बार अपना हाल बताया था। इसको अपने पूर्वजन्म का सब हाल मालूम है। पूर्वजन्म में यह हंस था और समुद्र की लहरें इसके बच्चे बहा ले गई थीं। उन बच्चों के दुख से इसकी हंसिनी ने अपना शरीर छोड़ दिया था। उसीके वियोग में यह बहुत दुखी हुआ और इसने शिव की मूर्ति के सामने अपने प्राण दे दिये। मरने से पहले इसने शिव से प्रार्थना की थी कि अगले जन्म में यह राजकुमार बने और उसकी हंसिनी ही राजकुमारी बनकर

उसकी रानी बने। फिर यह राजा उदयन के घर राजकुमार बनकर पैदा हुआ। इसके बारे में आकाशवाणी हुई है कि यह विद्याधरों का चक्रवर्ती राजा होगा। महाराज उदयन ने इसका विवाह दो विद्याधरियों से कर दिया है, लेकिन फिर भी यह अपनी हंसिनी के लिए बेचैन रहता है। एक दिन एक तपस्विनी ने बताया, 'तेरी हंसिनी राजा कर्पूरक के घर पैदा हुई है और उसका नाम कर्पूरिका है। कर्पूरपुर जाकर उससे मिलो और उसे अपना हाल सुनाओ। कर्पूरिका को भी अपने पूर्वजन्म का स्मरण होगा, इसलिए वह तुम्हारे साथ विवाह कर लेगी।' यह बताकर तपस्विनी चली गई और तब से यह राजकुमार 'हाय हंसिनी!' 'हाय हंसिनी!!' कहता हुआ उस हंसिनी की खोज में इधर-उधर घूम रहा है।"

गोमुख की ये बातें सुनकर कर्पूरिका सोचने लगी, मेरे वियोग में मेरे पति ने पूर्वजन्म में और इस जन्म में भी बहुत दुख सहा है। फिर बोली, "मैं ही वह हंसिनी हूं।" उसने गोमुख और नरवाहनदत्त का स्वागत-सत्कार किया और अपने पिता को यह हाल सुनाया। राजा बहुत प्रसन्न हुआ और उसने प्रसन्नतापूर्वक कर्पूरिका का विवाह नरवाहनदत्त से कर दिया। कुछ दिन वहां रहकर नरवाहनदत्त ने कौशांबी चलने की इच्छा प्रकट की। तब राजधर के बड़े भाई ने एक विशाल विमान बनाया। उस पर बैठकर नरवाहनदत्त, गोमुख, कर्पूरिका और उनके दास-दासियां कौशांबी की ओर चल दिये। वहां पहुंचने पर सब बड़े प्रसन्न हुए। कुछ दिनों बाद नरवाहनदत्त ने प्राणधर को भी अपने पास बुला लिया और तीनों रानियों के साथ सुख के दिन बिताने लगा।

# आठवां खंड

## : १ :

## सूर्यप्रभ की कथा

एक दिन नरवाहनदत्त राजसभा में अपने पिता के साथ बैठा था। उस समय आकाश से एक दिव्य पुरुष उतरकर नीचे आया। उसने बताया, "मेरा नाम वज्र-प्रभ है। मैं विद्याधरों का राजा हूं। हिमालय पर जिस स्थान पर मैं रहता हूं, वह वज्रकूटपुर कहलाता है। मेरा शरीर भी वज्र की तरह कठोर है। इसलिए मुझे कोई नहीं हरा पाता है। जब मुझे पता चला कि आप विद्याधरों के राजा बननेवाले हैं, तो मैं आपके दर्शन करने आया हूं। इससे पहले भी विद्याधरों के दो चक्रवर्ती राजा हुए हैं। एक का नाम सूर्यप्रभ और दूसरे का नाम श्रुतशर्मा था, लेकिन वे दोनों आधे-आधे भाग पर ही अपना अधिकार कर पाये थे। आपको देखकर मुझे लगता है कि आप पूरे सिंहासन के अधिकारी हैं।"

राजकुमार ने अचरज से पूछा, "सूर्यप्रभ किस प्रकार विद्याधरों का राजा बना था?" इस पर वज्रप्रभ ने यह कथा सुनाई :

प्राचीन समय में मद्र देश के शाकल नामक नगर में चंद्रप्रभ नाम का एक राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम कीर्तिमती था। उसके एक पुत्र हुआ, जिसका ताम सूर्यप्रभ रखा गया गया। उसके जन्म पर आकाश-वाणी हुई थी कि सूर्यप्रभ विद्याधरों का चक्रवर्ती राजा बनेगा। जब सूर्यप्रभ बड़ा हुआ, तो चंद्रप्रभ ने उसको गुणवान समझकर युवराज बनाया और मंत्री-पुत्रों को उसका मंत्री। एक दिन मयासुर चंद्रप्रभ के पास आया और बोला, "आप सूर्यप्रभ को मेरे साथ भेज दीजिये। मैं उसको अनेक विद्याओं का पंडित बना दूंगा।" राजा ने उसके साथ सूर्यप्रभ को भेज दिया। सूर्यप्रभ ने वहां आकाश में उड़ने आदि की अनेक सिद्धियां प्राप्त कीं।

कुछ दिनों के बाद मयासुर सूर्यप्रभ को वापस चंद्रप्रभ के पास लाया और बोला, "अब यहां रहकर ही इसको विद्याओं का अभ्यास करना चाहिए। जब तक मैं लौटकर न आऊं, तब तक यह कहीं न जाय।" यह कहकर मयासुर कहीं बाहर चला गया। सूर्यप्रभ अपने मंत्रियों के साथ विमान पर बैठकर आकाश में सैर करने के लिए जाने लगा। वह दूर देशों में जाता था और जहां भी जो भी राजकुमारी उसे भा जाती, उसको अपने साथ ले आता। वह बहुत सी कन्याओं का अपहरण करके भी लाया था। इस प्रकार जब अनेक राजकुमारियां एकत्र हो गईं, तो उसने सबके साथ विधिपूर्वक विवाह करने का निश्चय किया। कुछ राजा तो खुशी से अपनी लड़की का विवाह उसके साथ कर गये और कुछ उसके भय के कारण कर गये।

एक बार राजा जन्मेजय की कन्या से विवाह होने के बाद देखा गया कि आकाश में विद्याधरों की एक बहुत बड़ी सेना के बीच में एक सुंदर विद्याधर राजा की तरह खड़ा हुआ है। उसके चारण ने ऊपर से कहा, "यह हमारे युवराज आषाढेश्वर के पुत्र दामोदर हैं और सूर्यप्रभ! तू मनुष्य जाति का एक प्राणी है; इसलिए हमारे युवराज के चरणों में झुककर नमस्कार कर और जन्मेजय तू भी हमारे स्वामी की प्रार्थना कर। तूने अपनी कन्या का विवाह एक अयोग्य मनुष्य से कर दिया है, इसलिए तू हमारे स्वामी से क्षमा मांग। अगर तुम लोग यह नहीं करोगे, तो हमारा स्वामी तुम लोगों पर कुपित हो जायगा।"

यह सुनते ही सूर्यप्रभ को क्रोध आ गया और अपनी तलवार लेकर युद्ध करने के लिए आकाश में उड़ गया और उसके आठ मंत्री भी तलवार लेकर आकाश में चले गये। उन आठ मंत्रियों के साथ सूर्यप्रभ ने उन तमाम विद्याधरों को मार गिराया। जब यह विद्याधरों के राजा दामोदर का सिर काटने जा रहा था, तब एक भयंकर स्वर सुनाई पड़ा। यह स्वर भगवान ने दामोदर को बचाने के लिए किया था। इसलिए सूर्यप्रभ ने उसे छोड़ दिया।

इस प्रकार विद्याधर दामोदर को बचाकर ले गये और सूर्यप्रभ धरती पर लौट आया। सब लोग उसकी प्रशंसा करने लगे। कुछ दिनों बाद वह कांची गया और वहां के राजा सुभट की कन्या चंद्रिकावलि को अपनी पत्नी बनाया। वह अपनी सब पत्नियों के साथ अपने पिता के घर रहकर मयासुर के वापस आने की प्रतीक्षा करने लगा।

: २ :

# असुर और देवता

एक दिन चंद्रप्रभ का दरबार लगा हुआ था। उसमें सूर्यप्रभ भी बैठा था। चंद्रप्रभ ने किसी प्रसंग में मयासुर को याद किया। उसी समय राज-सभा के बीच की धरती फट गई और भयंकर शब्द करता हुआ मयासुर उसमें से प्रकट हुआ। वह रात में दिखाई देनेवाले पहाड़ की तरह दिखाई दे रहा था। राजा चंद्रप्रभ ने उसका स्वागत-सत्कार किया और रत्न के आसन पर बिठाया। तब मयासुर बोला, "संसार में जितने भोग हो सकते हैं, उन सबको तुम लोग भोग चुके हो। अब तुम्हें दूसरे काम करने चाहिए। तुम अपने नातेदारों, संबंधियों और मित्रों को बुला लो।"

चंद्रप्रभ ने अपने आकाशगामी मंत्रियों को इस कार्य के लिए भेजा। सूर्यप्रभ ने जो विद्याएं मयासुर से सीखी थीं, वे सब अपने मंत्रियों और रानियों को भी सिखा दी थीं। इसी समय राज-सभा में नारदजी आकाश से उतरे। उन्होंने कहा, "इंद्र का आदेश है कि मयासुर की बातों में आकर तुम लोग सूर्यप्रभ को विद्याधरों का चक्रवर्ती राजा बनाने का प्रयत्न छोड़ दो, क्योंकि इंद्र ने श्रुतशर्मा को चक्रवर्ती की पदवी दी है। तुम लोग अगर शिव की कृपा से ऐसा करने का प्रयत्न करोगे, तो तुम्हारा भला न होगा। यह धर्म के अनुकूल भी नहीं है।"

यह सुनकर मयासुर ने नारदजी से कहा, "हम लोग जो कुछ कर रहे हैं, वह शिव की आज्ञा से कर रहे है। इसलिए यह धर्म है। शिव की आज्ञा के सामने हम इंद्र की कोई बात मानने को तैयार नहीं हैं।"

यह उत्तर सुनकर नारदजी इंद्र के पास लौट गये। उस समय मयासुर ने चंद्रप्रभ से कहा, "डरो नहीं। हमारे साथ शिव हैं। हमें कोई नहीं हरा सकता।" यह सुनकर राजा चंद्रप्रभ ने युद्ध की तैयारी शुरू कर दी। मित्र राजाओं ने भी अपनी सेनाएं सहायता के लिए भेज दीं। फिर शिव को प्रसन्न करने के लिए बलि दी गई और यज्ञ शुरू किया गया। तब शिव के वाहन नंदी ने प्रकट होकर कहा, "डरो नहीं। चाहे कितने ही इंद्र आयें, सूर्यप्रभ विद्याधरों का चक्रवर्ती राजा बन-कर रहेगा।" यह कहने के बाद नंदी चला गया। दूसरे दिन अकेले में ले जाकर

मयासुर चंद्रप्रभ से बोला, "आज मैं तुमको एक रहस्य बताता हूं। पिछले जन्म में मैं तुम्हारा पिता था। तुम्हारा लड़का सूर्यप्रभ भी मेरा पुत्र था। सूर्यप्रभ का नाम सुमुंडीक और तुम्हारा नाम सुनीथ था। जब देवताओं और असुरों में युद्ध हुआ था, तो अति शक्तिशाली होते हुए भी उसमें तुम दोनों काम आये थे। उस समय मैंने तुम्हारे शवों को ऐसी दवाएं लगाकर पाताल में रख दिया था कि जिससे वे नष्ट न हों। अब तुम दोनों चलकर उन शरीरों में फिर से प्रवेश करो। फिर तुम्हें कोई नहीं जीत सकेगा। सूर्यप्रभ भी विद्याधरों का चक्रवर्ती राजा बन जायेगा। तुम्हारे अनुचर भी, जो पिछले जन्म में राक्षस थे, वे भी पाताल में अमृत पीकर दिव्य हो जायेंगे।" दूसरे दिन मयासुर का कहना मानकर चंद्रप्रभ और सूर्यप्रभ इरावती और चंद्रभागा के संगम पर गये। वहां सूर्यप्रभ की सब पत्नियों को सुरक्षा के लिए अपने मित्र राजाओं को सौंपकर मंत्रियों के साथ उस संगम में प्रवेश कर गये। मित्र राजा लोग पड़ौस के एक मंदिर में चले गये। इसी समय विद्याधरों की एक सेना वहां आ गई। उसने सूर्यप्रभ की सब रानियों का अपहरण कर लिया। तभी आकाशवाणी हुई—"अरे श्रुतशर्मा! यदि तूने सूर्यप्रभ की पत्नियों को छुआ, तो तू मर जायगा और तेरी सेना भी मर जायगी। यद्यपि मैं भी तुझको मारकर इन रानियों को मुक्त कर सकता हूं, लेकिन किसी कारण से मैंने ऐसा नहीं किया। तू इन रानियों को मां के समान समझकर इनकी रक्षा कर।"

इस आकाशवाणी को सुनकर विद्याधरों की सेना वहां से चली गई। इधर जब मंदिर से सूर्यप्रभ के मित्र राजा लौटे, तो उन्होंने वहां रानियों को नहीं पाया। इससे उत्तेजित होकर वे आपस में ही लड़ने लगे। उसी समय फिर आकाशवाणी हुई, "तुम लोगों को धीरज रखना चाहिए। सब रानियां लौट आयेंगी।" यह सुनकर उन्होंने लड़ने-मरने की बात छोड़ दी और रानियों के लौट आने की प्रतीक्षा करने लगे। इधर मयासुर चंद्रप्रभ और उसके साथियों को पाताल ले गया। उसने चंद्रप्रभ को शरीर में प्रवेश करने का उपाय बताते हुए कहा, "यह ऐसी सिद्धि है कि इससे अनेक सफलताएं प्राप्त होती हैं। इसे पाने के बाद मुक्ति की भी इच्छा नहीं रहती है। बड़े-बड़े ऋषि-मुनि भी इसकी चाह करते हैं। इस संबंध में एक कहानी सुनाता हूं:

"प्राचीन समय में काल नामक एक ब्राह्मण पुष्कर नामक तीर्थ पर घोर

तपस्या कर रहा था। उसे इस प्रकार तप करते हुए दो सौ वर्ष हो गये। तब उसके सिर से एक ज्योति पैदा हुई। उस ज्योति में इतना तेज था कि उससे तीनों लोक जलने लगे। तब देवतागण उसके पास दौड़े हुए आये और कहने लगे, 'तुम मन-चाहा वरदान ले लो, लेकिन अपनी तपस्या बंद कर दो।' ब्राह्मण ने कहा, 'मैं एक ही वरदान चाहता हूं कि मैं सदा अपनी तपस्या में लगा रहूं।' यह सुनकर देवता और भी घबड़ा गये। जब उन्होंने उस ब्राह्मण को बहुत समझाया, तो वह वहां से हिमालय के उत्तर की ओर जाकर तप करने लगा। इंद्र ने उसका तप भंग करने के लिए कई सुंदर अप्सराओं को भेजा। उन्होंने अपने सौंदर्य और कला से उस पर प्रभाव डालने का प्रयत्न किया, लेकिन कुछ हो न सका। तब इंद्र ने मृत्यु को भेजा। मृत्यु ने ब्राह्मण से कहा, 'तुम लोक-मर्यादा के विरुद्ध काम कर रहे हो। इतने दिनों तक कोई भी प्राणी जीवित नहीं रह सकता है। इसलिए तुमको अपना शरीर छोड़ देना चाहिए।' ब्राह्मण ने मृत्यु से कहा, 'अगर तुम ऐसा समझती हो कि मेरा समय पूरा हो चुका है, तो जहां चाहो ले चलो। मैं आत्महत्या का पाप नहीं ले सकता।' यह सुनकर मृत्यु निरुत्तर हो गई और वहां से चली गई। तब इंद्र उसके पास गये और उसको सशरीर स्वर्ग में ले आये। लेकिन ब्राह्मण ने स्वर्ग में आकर भी तप नहीं छोड़ा। इससे देवता बहुत बेचैन हुए और उसे फिर हिमालय पर ले गये और वर मांगने का आग्रह करने लगे। लेकिन वह कोई वरदान लेने के लिए तैयार नहीं था। उसी समय वहां राजा इक्ष्वाकु आ गये और सब हाल जानकर ब्राह्मण से बोले, 'यदि तुम देवताओं से कोई वरदान नहीं लेना चाहते हो, तो मुझसे मांगो। मैं तुम्हें वरदान दूंगा।' ब्राह्मण ने कहा, 'मैं तुमसे भी कोई वरदान नहीं चाहता।' तब राजा इक्ष्वाकु ने कहा, 'अगर तुम नहीं चाहते, तो जो वरदान मैं मांगूं वह मुझे दो।' ब्राह्मण ने कहा, 'जो चाहो मांग सकते हो।' राजा इक्ष्वाकु ने कहा, 'मैं तुम्हारे तप का आधा फल चाहता हूं।' ब्राह्मण ने अपने तप का आधा फल राजा को दे दिया। उसी समय से राजा इक्ष्वाकु को तीनों लोकों में आने-जाने की सिद्धि प्राप्त हो गई। न जाने कितने कल्प समय तक वह ब्राह्मण देवलोक में रहा। फिर पृथ्वी पर पैदा हुआ। और फिर उसने स्वतंत्र रूप से सब जगह जाने की सिद्धि प्राप्त की।"

यह कथा सुनाकर मयासुर ने चंद्रप्रभ से कहा, "ऐसी ही सिद्धि मैंने तुम लोगों को दी है।" फिर वह सबको दूसरे पाताल में ले गया। वहां चंद्रप्रभ ने देखा कि

एक स्थान पर एक विशालकाय शरीर पड़ा हुआ है, जिसके चारों ओर राक्षसों की स्त्रियां बैठी हुई हैं। मयासुर ने बताया, "पिछले जन्म में यही तुम्हारा शरीर था। अब मेरी बताई हुई विद्या के अनुसार तुम शरीर में प्रवेश कर जाओ।" चंद्रप्रभ ने ऐसा ही किया। सुनीथ फिर जीवित हो गया और उसने अपने पिता मयासुर के चरण छुए। यह देखकर सूर्यप्रभ और उसके मंत्री दुखी हुए। तब मयासुर नें उन सबको समझाकर धीरज बंधाया। उन सबको दूसरे नगर में एक बावड़ी के किनारे पर ले गया, जिसमें अमृत भरा हुआ था। उसने उन सबको अमृत पिलाया, जिससे वे सब शक्तिशाली हो गये। फिर वह सबको स्वर्णपुर में अपनी पत्नी लीलावती के पास ले गया। वहां उसने विभीषण और मंदोदरी को बुलाया। विभीषण न आकर मयासुर से कहा, "देवताओं से मत लड़ो। इसका फल अच्छा नहीं निकलेगा।" यह कहकर विभीषण वहां से लंका की ओर गया। मयासुर तभी अपने पुत्र सुनीथ और दूसरे लोगों को साथ लेकर तीसरे पाताल में बलि के पास पहुंचा। उसे अपना सब हाल बताया। तब राजा बलि ने प्रह्लाद आदि दूसरे दैत्यों को बुलवाया। जब सातों पातालों के दैत्य आ गये, तब उनकी सभा में मयासुर ने सुनीथ और सूर्यप्रभ की कहानी सुनाई और कहा "इनके आने से हमारा कल्याण हो गया।" सब दैत्यों ने मिलकर उनके आने की खुशी में उत्सव मनाया। उसी समय वहां नारदजी आये और बोले, "इंद्र का कहना मानकर देवताओं से लड़ना छोड़ दो।" प्रह्लाद ने उत्तर दिया, "यह सब भाग्य के हाथ में है। हम लोग क्या कर सकते हैं? इंद्र ही हम लोगों के साथ बिना किसी कारण के लड़ाई की बातें करता रहता है।" यह यह मुनकर नारद इंद्र के पास लौट गये। उसी समय दैत्यों की सभा में आकर उनके गुरु शुक्राचार्य ने कहा, "इंद्र से हम लोगों को डरना नहीं चाहिए। जब-तक हमारे ऊपर शिवजी की कृपा है, तब तक हमलोग उनसे नहीं हार सकते।" यह सुनकर सारे राक्षस निर्भय हो गये, और अपने-अपने घर चले गये।

दूसरे दिन प्रातःकाल सूर्यप्रभ, सुनीथ और मयासुर प्रह्लाद के पास गये। प्रह्लाद ने अपनी लड़की महल्लिका का विवाह सूर्यप्रभ के साथ कर दिया। दूसरे दिन दूसरे पाताल लोक में अभीलदैत्य नामक राक्षस ने अपनी कन्या सूर्यप्रभ को दी। इस कन्या नाम कलावती था। इसी प्रकार पांचवें पाताल के दुरारोह नामक दैत्य ने अपनी कन्या कुमुदावती, सातवें पाताल के दैत्य तंतुकक्ष ने और छठे पाताल के राजा सुमाया दैत्य ने बारी-बारी से अपनी मनोवती और सुभद्रा नामक कन्याओं

का विवाह सूर्यप्रभ से कर दिया। राजा बलि भी सूर्यप्रभ को अपने तीसरे पाताल में ले गये और वहां उसके साथ अपनी सुंदरी नामक कन्या का विवाह कर दिया। फिर मयासुर सूर्यप्रभ को चौथ पाताल में ले गया और उसने अपनी कन्या सुमाया से उसका विवाह कर दिया। इस प्रकार सूर्यप्रभ के अनेक पत्नियां हो गईं। वह सबके पास अपना रूप बदल-बदलकर जाया करता था। केवल महल्लिका के पास वह अपने वास्तविक रूप में जाता था। एक बार महल्लिका ने सूर्यप्रभ को बारह अलौकिक सुंदरियां भेंट कीं। सूर्यप्रभ ने उनको चौथे पाताल में छिपाकर रख दिया। फिर एक दिन सुनीथ और सूर्यप्रभ सबके साथ अपने भूतासन नामक सिद्धि यंत्र पर चढ़कर आकाश में उड़े और उड़कर सुमेरु नामक पहाड़ के ऊपर कश्यप के आश्रम में पहुंचे। उस आश्रम में उन सबने दिति और दनु को जाकर नमस्कार किया और फिर उन्होंने कश्यप के पास जाकर उनके चरण छुए। कश्यप ने सबके पूर्वजन्मों का हाल बताया और आशीर्वाद दिया कि अगर तुम धर्म पर चलते रहे, तो तुमको अपार धन प्राप्त होगा। कश्यप मुनि की पत्नियां, जिनमें अदिति भी थी, दोपहर के समय भोजन और सोमपान के लिए वहां आ पहुंची। तभी इंद्र भी कश्यप ऋषि के दर्शन करने के लिए आया। उसके साथ सब लोकपाल भी थे। उसने पहले कश्यपजी की प्रार्थना की और फिर सूर्यप्रभ को देखकर कहने लगा, "जो विद्याधरों का चक्रवर्ती राजा बनने का स्वप्न देखता है, क्या यह वही लड़का है? यह इससे बड़ी चीज क्यों नहीं चाहता? इसे तो इंद्रासन का स्वप्न देखना चाहिए।" मयासुर ने इंद्र को जवाब दिया, "यह तो भाग्य की बात है, जिस प्रकार आप इंद्र बनाये गये हैं उसी प्रकार सूर्यप्रभ विद्याधरों का चक्रवर्ती राजा बनाया गया है।" तब इंद्र ने हंसी में कहा, "इतने सुंदर व्यक्ति को इतनी छोटी चीज़ के पीछे नहीं पड़ना चाहिए।" मयासुर ने भी हंसी में जवाब दिया, "जब श्रुतशर्मा विद्याधरों का चक्रवर्ती राजा बनने के लिए ठीक है, तो सूर्यप्रभ जैसा सुंदर व्यक्ति भी इंद्र के आसन पर बैठ सकता है।" यह सुनकर इंद्र को क्रोध आ गया और वह मयासुर पर वज्र छोड़ने के लिए चला। उसी समय कश्यप मुनि ने एक तीव्र हुंकार भरा, जिसे सुनकर इंद्र डर गया और उसने अपने वज्र को रोक लिया। फिर वह कश्यप मुनि के चरणों में गिरकर बोला, "जिसको मैंने विद्याधरों का चक्रवर्ती राजा बनाया है, उसका नाम श्रुतशर्मा है और यह सूर्यप्रभ उसको गद्दी से उतारकर स्वयं राजा बनाना चाहता है। मयासुर सूर्यप्रभ की सहायता कर रहा है।" यह सुनकर

कश्यप ने कहा, "यदि तुमने श्रुतशर्मा को चक्रवर्ती बनाया है, तो शिव ने सूर्यप्रभ को चक्रवर्ती बनाने की घोषणा की है। शिवजी की आज्ञा से ही मयासुर सूर्यप्रभ की सहायता कर रहा है। इसलिए इसका कोई दोष नहीं है। अगर इस समय तुम इस पर वज्र छोड़ते, तो मैं तुमको भस्म कर देता। तुम इसको नहीं मार पाओगे।" यह सुनकर इंद्र ने लज्जा से सिर झुका लिया। उस समय अदिति ने कहा, "यह श्रुतशर्मा कौन है? उसको बुलाइये—हम भी देखेंगे।" तब इंद्र की आज्ञा से मातलि जाकर श्रुतशर्मा को बुला लाया। श्रुतशर्मा को देखकर दिति और अदिति ने कहा, "बताओ सूर्यप्रभ और श्रुतशर्मा में कौन अधिक रूपवान है?" तब कश्यप मुनि ने कहा, "श्रुतशर्मा से अधिक सुंदर तो सूर्यप्रभ का मंत्री प्रभास है। सूर्यप्रभ तो इतना गुणवान और रूपवान है कि वह तो इंद्र बनने योग्य है।" फिर उसी समय कश्यप ने उसको वरदान दिया, "तुमने इंद्र के वज्र छोड़ने के लिए तैयार हो पर भी क्रोध नहीं दिखाया, इसलिए तुम्हारा शरीर वज्र की तरह कठोर हो जायगा और तुम सदा अमर रहोगे। सुनीथ भी तुम्हारे समान शक्तिशाली रहेगा। तुम किसीसे पराजित नहीं होगे और जब तुम मेरे पुत्र सुवास कुमार को सहायता के लिए स्मरण करोगे, उस समय वह तुम्हारी सहायता के लिए पहुंच जायगा।"

इसके बाद दिति, अदिति और सब लोगों ने मयासुर को भी ऐसे ही वर दिये। फिर अदिति ने इंद्र से कहा, "देखो क्रोध करना बहुत बुरा है। तुम्हारे क्रोध करने पर भी मयासुर शांत रहा, इसलिए उसे इतने वरदान मिले। अब तुम मयासुर को भी प्रसन्न कर दो।" तब इंद्र ने मयासुर से मिलकर उससे समझौता कर लिया। सूर्यप्रभ के सौंदर्य के सामने श्रुतशर्मा का सौंदर्य बिल्कुल क्षीण रह गया। तब इंद्र लोकपालों के साथ कश्यप मुनि को नमस्कार कर अपने स्थान को लौट गया और मयासुर आदि भी मुनि को प्रणाम कर वहां से चले गये।

: ३ :

## युद्ध की तैयारी

सूर्यप्रभ, मयासुर और सुनीथ कश्यप ऋषि के आश्रम से इरावती और चंद्रभागा के संगम पर आये। सूर्यप्रभ ने देखा कि वहां केवल उसके मित्र और बंधु हैं और वे

उसको देखकर रो रहे हैं। उन्होंने बताया, "विद्याधर सब स्त्रियों को हरकर ले गय हैं।" यह सुनकर सूर्यप्रभ को क्रोध आगया और उसने प्रतिज्ञा की कि जिन लोगों ने दूसरों की स्त्रियों का अपहरण किया है, निश्चय ही मैं उनका नाश करूंगा। लेकिन तभी मयासुर ने कहा, "तुम्हें अपनी स्त्रियों के संबंध में चिंता नहीं करनी चाहिए। मैं उनको अपनी माया से छुड़ा लाया हूं। वे पाताल में सुरक्षित हैं। तुम निश्चित होकर देवताओं से लड़ने की तैयारी करो।"

फिर वह सबको अपने साथ पाताल ले गया। वहां सूर्यप्रभ की सब स्त्रियां मौजूद थीं। उनके साथ वह प्रह्लाद के पास गया। प्रह्लाद ने उसको शिवभक्त रहने का वर-दान दिया और अपनी दूसरी पुत्री यामिनी का विवाह भी उसके साथ कर दिया। आभील ने भी अपनी दूसरी लड़की सुखावती का विवाह उसके साथ कर दिया। दोनों ने अपने दो-दो पुत्र भी सूर्यप्रभ को भेंट किये। इसी प्रकार दूसरे राक्षसों ने भी कुछ-न-कुछ सहायता की। अपनी पत्नियों के साथ सूर्यप्रभ कुछ दिन तक वहां रहा। जब सुनीथ की तीनों पत्नियां तथा उसकी सभी पत्नियां गर्भवती हुईं, तो उन्होंने महायुद्ध देखने की अभिलाषा प्रकट की। यह जानकर मयासुर बहुत प्रसन्न हुआ और बोला, "अब तक जितने भी असुर युद्ध में मारे गये हैं, वे सभी इनके गर्भ से उत्पन्न होंगे, इसीलिए इनके हृदयों में महायुद्ध देखने की अभिलाषा उत्पन्न हुई है।"

छः दिन वहां और ठहरकर सातवें दिन सूर्यप्रभ आदि अपनी पत्नियों को साथ लेकर पाताल से निकलकर पृथ्वी पर आये। यहां चंद्रप्रभ के पुत्र रत्नप्रभ को पृथ्वी के राज्य पर अभिषिक्त किया। उसके बाद वे सब विमानों पर चढ़कर विद्याधरों के स्वामी सुमेरु के तपोवन में गये। वहां मयासुर ने सुमेरु को सब समा-चार कह सुनाये। सुमेरु ने भी शिवजी की पहली आज्ञा का स्मरण करके उन सबका सत्कार किया। वहां ठहरकर सूर्यप्रभ आदि ने अपनी-अपनी सेनाओं तथा बंधु-मित्रों को बुलवाया। बाद में दूसरे दैत्य-दानव भी बंधु-बांधवों सहित आ गये। सभी के साथ लाखों की संख्या में सेनाएं थीं। मयासुर और सुनीथ की असंख्य सेनाएं भी वहां आ गईं। जब सबकी सेनाएं वहां एकत्रित हो गईं, तब सूर्यप्रभ आदि के साथ मयासुर ने स्मरण मात्र से उपस्थित सुवास कुमार मुनि से पूछा, "हे भगवन्! इधर-उधर बिखरी हुई इस सेना का हम अनुमान नहीं लगा सकते। कृपया ऐसा स्थान बताइये, जहां हम अपनी समस्त सेनाओं को एक साथ देख सकें।"

उस मुनि ने कहा, "यहां से योजन-मात्र की दूरी पर कलाप-ग्राम नामक एक विस्तृत प्रदेश है। वहां जाकर तुम अपनी समस्त सेनाओं का निरीक्षण करो।" मुनि की आज्ञानुसार वे सभी अपनी सेनाओं सहित कलाप-ग्राम में पहुंचे। वहां एक उन्नत स्थान पर खड़े होकर उन्होंने असुरों तथा मानवों की उस समस्त सेना को देखा।

तब सुमेरु ने उन सबसे कहा, "निश्चित ही श्रुतशर्मा हमसे सैन्य बल में अधिक है, क्योंकि एक-सौ-एक विद्याधर राजा उसके पक्ष-समर्थक हैं, उन राजाओं में से प्रत्येक के अधीन बत्तीस-बत्तीस विद्यधर हैं। किंतु, कोई चिंता की बात नहीं है। मैं उनमें से कुछ विद्याधरों को तोड़कर तुमसे मिला दूंगा। सो हमें प्रातःकाल ही वल्मीक नामक स्थान पर चलना चाहिए, क्योंकि कल फाल्गुन कृष्ण अष्टमी है। इस तिथि का विद्याधरों में बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। इस तिथि में ही वहां चक्रवर्ती के लक्षण उत्पन्न होते हैं।"

सुमेरु के कथनानुसार वे सब प्रातःकाल अपनी-अपनी सेनाओं के साथ वल्मीक नामक स्थान पर गये। वहां उन्होंने हिमालय के दक्षिण शिखर पर गरजती हुई सेनाओं के साथ बहुत से विद्याधर राजाओं को देखा। वे कुंडों में अग्नि जलाकर हवन कर रहे थे। सूर्यप्रभ ने भी वहां एक विशाल अग्नि-कुंड बनाया और उसमें अपनी विद्या के प्रभाव से स्वयं अग्नि प्रज्वलित की। यह देखकर सुमेरु अत्यधिक प्रसन्न हुआ और सूर्यप्रभ के साथ हवन करने लगा। एक क्षण के पश्चात पृथ्वी के बिल से एक अति भयंकर सर्प निकला। उस सर्प को पकड़ने के लिए ब्रह्मगुप्त नाम का विद्याधर सगर्व दौड़ा। उस सर्प ने फुंकार मात्र से जीर्ण पत्ते की भांति उसे सौ हाथ की दूरी पर फेंक दिया। इसके बाद दूसरे विद्याधर भी क्रमशः उस सर्प को पकड़ने के लिए आये, किंतु सभी को उस सर्प े दूर फेंक दिया। यहां तक कि उन विद्याधरों के शिरोमणि श्रुतशर्मा को भी उसने दो-तीन बार श्वास मात्र से दूर फेंक दिया। तब सुमेरु के कहने से सूर्यप्रभ उस सर्प को पकड़ने चला। यह देखकर दूसरे विद्याधर उसका उपहास करने लगे। किंतु उनके हंसते-हंसते ही सूर्यप्रभ ने तत्काल सर्प को मुसकराते हुए पकड़ लिया। वह सर्प तत्क्षण तरकस बन गया और सूर्यप्रभ के मस्तक पर स्वर्ग से पुष्प वृष्टि होने लगी। उसी समय आकाशवाणी हुई—"हे सूर्यप्रभ! तुम्हें अक्षय तूणीर की सिद्धि हुई हैं, तुम इसे ग्रहण करो।" इस घटना से सभी विद्यधरों को दुख हुआ, परंतु मयासुर, सुनीथ और सुमेरु इस घटना से परम प्रसन्न हुए।

श्रुतशर्मा ने अपना एक दूत सूर्यप्रभ के पास भेजा। उस दूत ने आकर कहा,

"हमारे स्वामी की यह आज्ञा है कि यदि तुम जीवित रहना चाहते हो तो इस तूणीर को उन्हें समर्पित कर दो।" सूर्यप्रभ ने उत्तर दिया, "हे दूत ! अपने स्वामी से जाकर कहो कि मेरे बाणों से आच्छादित उनका शरीर ही तूणीर बन जायेगा।" इस उत्तर को सुनकर दूत लौट गया।

सुमेरु ने सूर्यप्रभ से कहा, "निःसंदेह भगवान शंकर का वचन आज सफल हुआ, तूणीर की सिद्धि हो जाने से तुम्हारा चक्रवर्ती होना निश्चित हो गया। सो, चलो अब निश्चित होकर धनुष की सिद्धि प्राप्त करो।" सुमेरु की बात मानकर वे हेमकूट पर्वत पर पहुंचे। उसके उत्तरी पार्श्व में उन्होंने 'मानस' नामक सरोवर को देखा जो मानो विधाता की दूसरी समुद्र-रचना थी। उसमें स्नान करती हुई दिव्य नारियों के नयन ऐसे सुंदर प्रतीत होते थे, मानो वायु से कंपाये हु ए साक्षात स्वर्ण कमल ही उस सर की शोभा को देख रहे हों। इसी बीच वहां पर श्रुतशर्मा आदि भी आ पहुंचे। दोनों ने धनुष-सिद्धि के लिए हवन किया। क्षण भर के पश्चात उस सरोवर से एक भयंकर बादल उठा और आकाश में छाकर उसनें बड़ी भारी वर्षा की। उस बादल से एक भयंकर काला सर्प सरोवर के नीचे गिर पड़ा। सुमेरु के कहने से सूर्यप्रभ ने उसे दृढ़ता से पकड़ लिया। पकड़ते ही वह सर्प धनुष बन गया। उसके धनुष बन जाने पर बादल से एक दूसरा सर्प गिरा, जिसकी विषाग्नि से समस्त आकाशचारी पक्षी भस्म हो गये। उसको भी सूर्यप्रभ ने पहले की ही भांति पकड़ लिया। यह सर्प उस धनुष की डोरी बन गया और इसके बाद शीघ्र ही वह बादल भी आकाश से लुप्त हो गया। इसी समय आकाश से एक दिव्यवाणी सुनाई दी—"हे सूर्यप्रभ ! तुम्हें यह अमित प्रभाववाला धनुष सिद्ध हुआ है और यह अभेद्य प्रत्यंचा (धनुष की डोरी) भी तुम्हें मिली है। इन दो रत्नों को तुम स्वीकार करो।" इस वाणी के साथ आकाश से पुष्प वृष्टि भी हुई। सूर्यप्रभ ने उस प्रत्यंचा सहित धनुष को ले लिया। श्रुतशर्मा यह देखकर बहुत उद्विग्न हुआ और अपने अनुयायियों सहित तपोवन में चला गया।

तब उन सबके पूछने पर सुमेरु ने कहा, "यहां बांस का एक बड़ा भारी दिव्य वन है। जो बांस काटकर इस सरोवर में डाल दिये जाते हैं, वे सभी दिव्य धनुष बन जाते हैं। प्राचीन काल में इन्हीं धनुषों को भिन्न-भिन्न देवताओं, असुरों, गंधर्वों तथा श्रेष्ठ विद्याधरों ने सिद्ध कर लिया था। इन धनुषों के भिन्न-भिन्न नाम हैं। प्राचीन काल में देवताओं ने चक्रवर्तित्व को देनेवाले अमृतबल नामक धनुषों को

इस सरोवर में फेंक दिया था। वे धनुष उन्हींको सिद्ध होते हैं जो पुण्यात्मा हैं तथा जो भविष्य में चक्रवर्ती राजा होनेवाले हैं। वह महाधनुष आज सूर्यप्रभ को सिद्ध हो गया है। इसलिए हे मित्रों ! तुम भी अपने अपने बल के अनुसार दूसरे धनुषों को सिद्ध करो। जिन वीरों की जैसी योग्यता होती है, वे धनुष उसीके अनुसार आज भी सिद्ध हो जाते हैं।" सुमेरु के इस वचन को सुनकर सूर्यप्रभ के प्रभास आदि सभी मित्र उस वंशवन में गये और उसके रक्षक चंडदंड नामक राजा को जीतकर वहां से बांस काट लाये और उन्हें उस सरोवर के बीच में डाल दिया। तब उन सबने एक सप्ताह तक सरोवर के किनारे बैठकर हवन और तप किया, जिससे उन सबको अनेक धनुष सिद्ध हो गये। तब वे सब मिलकर सुमेरु के तपोवन में आये। उसने सूर्यप्रभ से कहा, "आपके मित्रों ने वेणुवन के अजेय राजा चंडदंड को भी जीत लिया—यह बड़े आश्चर्य की बात है, क्योंकि उस राजा के पास मोहिनी नाम की विद्या है—इसलिए वह राजा दुर्जेय है। अवश्य ही उसने उस विद्या का प्रयोग आपके इन मित्रों पर नहीं किया होगा और उस विद्या को आपके लिए सुरक्षित रखा होगा। इस विद्या को जब उसके गुरु ने उसे दिया था, तो उसके प्रभाव की परीक्षा करने के लिए उसने उसका उन्हीं पर प्रयोग कर दिया, जिससे गुरुजी ने उसे यह शाप दे दिया कि यह विद्या एक बार ही फल देगी। इस विद्या का प्रभाव दुसह्य है, इसका कारण आप भगवान मयासुर से पूछ लीजिये। इनके सामने मैं क्या कह सकता हूं सूर्य के सामने दीपक के प्रकाश का क्या महत्व है ?"

सुमेरु के कहने पर मयासुर ने कहना आरंभ किया, "सुमेरु ने जो कुछ कहा है, वह सत्य है। मैं संक्षेप में तुमसे कहता हूं। किसी अव्यक्त सत्ता से विभिन्न शक्तियों का प्रादुर्भाव होता है। प्राण शक्ति से उठा हुआ नाद विंदु-मार्ग को प्राप्त होकर विद्या आदि मंत्रत्व को प्राप्त होता है। उन मंत्र विद्याओं का प्रभाव ज्ञान तथा तप के कारण और सिद्धों की आज्ञा के कारण अनुल्लंघनीय होता है। इसलिए हे प्रुत्र ! तुम्हें और सभी विद्याएं सिद्ध हो गई हैं, किंतु मोहिनी और परिवर्तिनी नाम की दो विद्याएं तुम्हें अभी और सिद्ध करनी हैं। इन विद्याओं को केवल याज्ञवल्क्य मुनि ही जानते हैं। अतः उन्हींसे जाकर प्रार्थना करो।"

मयासुर के कहने से सूर्यप्रभ महर्षि याज्ञवल्क्य के पास गया। मुनि ने सूर्यप्रभ को सात दिन तक सर्प-सरोवर में खड़ा रखकर मोहिनी नामक विद्या दी

और तीन दिन तक अग्नि ताप को सहन करने के बाद परिवर्तिनी नामक विद्या दी। विद्या प्राप्त करने पर भी गुरु ने उसे पुनः अग्नि-प्रवेश की आज्ञा दी और सूर्यप्रभ ने उसका पालन किया। उसी क्षण इच्छानुसार गगन-विहारी महापद्म नामक विमान सूर्यप्रभ को प्राप्त हुआ। इसी समय धीरे स्वर में आकाशवाणी हुई—"तुम्हें यह चक्रवर्ती विमान सिद्ध हुआ है—अपनी रानियों को इसमें रखो, फिर तुम्हारे शत्रु उन्हें कदापि परेशान न कर सकेंगे।" यह सुनकर उसने गुरु याज्ञवल्क्य से कहा, "हे गुरु, आज्ञा दीजिये, मैं आपको क्या दक्षिणा दूं ?" मुनि बोले, "अपने राज्याभिषेक के समय तुम मुझे याद करना—यही मेरी दक्षिणा है।" तब सूर्यप्रभ मुनि को नमस्कार करके और विमान पर चढ़कर सुमेरु के निवास-स्थान पर स्थित अपनी सेना में गया।

सुनीथ, सुमेरु और मयासुर आदि को उसने सब बातें बताई। सुवास कुमार को स्मरण किया। उसने तत्काल उपस्थित होकर उनसे कहा, "सूर्यप्रभ को समस्त विद्याएं और विमान सिद्ध हो गये हैं, फिर भी शत्रु को जीतने में तुम आज भी उदासीन क्यों हो!" मयासुर ने कहा, 'भगवन, आपका कथन युक्ति-युक्त है, किंतु पहले शत्रु के पास दूत भेजकर नीति का प्रयोग करना चाहिए।" मुनिपुत्र ने इसका समर्थन किया और प्रहस्त नामक दूत को श्रुतशर्मा के पास भेजा गया। दूत के चले जाने पर सूर्यप्रभ ने अपने साथियों से कहा, "मैंने आज प्रातःकाल एक अपूर्व स्वप्न देखा है, हम सब एक बड़े भारी जल-प्रवाह में नाचते हुए बहे जा रहे हैं; तभी प्रतिकूल वायु के चलने से वह जल-प्रवाह प्रतिकूल दिशा में लौट पड़ता है। इसी समय किसी एक पुरुष ने आकर हमें जल से निकालकर जलती हुई आग में फेंक दिया, किंतु हम उस अग्नि में जले नहीं। इसी बीच एक बादल ने उमड़कर आकाश से रक्त वृष्टि कर दी। उस रक्त से समस्त दिशाएं लाल हो गईं। तभी रात्रि के साथ-साथ मेरी निद्रा भी भंग हो गई।" इस स्वप्न को सुनकर मुनि सुवास कुमार ने कहा, "यह स्वप्न परिश्रमपूर्वक उन्नति का सूचक है। संग्राम ही बड़ा भारी जल-प्रवाह है, उसमें धैर्य धारण करना ही न डूबना है। वायु चलना ही किसी शरण-दायक रक्षक का प्राप्त होना है। जल से निकालनेवाले व्यक्ति साक्षात शंकर भगवान हैं। अग्नि में पड़ना एक भयावह युद्ध में पड़ना है, मेघ का प्रकट होना किसी आकस्मिक भय का उपस्थित होना है। रक्त की वर्षा भय के विनाश की सूचक है। दिशाओं में लालिमा का व्याप्त होना समृद्धि सूचक है।" मुनि कुमार

से स्वप्न का सुफलदायक लक्षण सुनकर वे सब प्रसन्न हुए।

इसी समय श्रुतशर्मा के पास से प्रहस्त लौट आया उसने समस्त वृतांत विस्तार से कह सुनाया। अंत में बोला, "विक्रम शक्ति ने मुझसे कहा कि हे दूत! जाओ, हमें भी तुम्हारे स्वामी की तरह ईश्वर ने बनाया है। सो वह आ जायें, हम उसका अतिथि-सत्कार करने में समर्थ हैं। मैंने हंसकर उत्तर दिया, 'पद्मवन में हंस तभी तक नाद करते हैं, जब तक आकाश को छा देनेवाले बादल का आगमन नहीं होता है।' इतना कह कर मैं सगर्व चला आया।"

ये सब बातें सुनकर मयासुर आदि अत्यंत संतुष्ट हुए। उन्होंने युद्ध को अनिवार्य मानकर प्रभास को सेनापति नियुक्त किया। सुवास कुमार के आदेशानुसार वे उस दिन नियम और व्रत पूर्वक वहीं रहे। रात्रि में व्रत-शय्या पर सोये हुए सूर्यप्रभ ने अनिद्रित अवस्था में एक अपूर्व सुंदरी कन्या को गृह में प्रविष्ट होते हुए देखा। उसके साथ एक सखी थी। सूर्यप्रभ को सोया हुआ जानकर वह स्वच्छंदतापूर्वक समीप आई और उसके रूप को देख उस पर मोहित हो गई। उसने सखी से कहा, "हे सखि, इसका श्रुतशर्मा के साथ संग्राम होगा, उसमें कौन जीतेगा—यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। शूरवीरों का संग्राम प्राणों की बाजी लगाकर होता है। जिस आकाश-विहारी ने काम चूड़ामणि को देख लिया, भला उसके हृदय को मुझ जैसी साधारण स्त्री कैसे अनुरक्त कर सकती है!" सखी ने कहा, "देवि! क्या तुम्हारा मन इसपर आसक्त नहीं है? क्या तुम विद्या के प्रभाव से युद्ध में इसका कल्याण नहीं देखती हो? सिद्धों ने इस चक्रवर्ती की तीन पत्नियां बताई हैं—काम चूड़ामणि, तुम और सुप्रभा। इन्हीं दिनों इसने सुप्रभा के साथ विवाह किया है। यदि तुम अपने बंधु-बांधवों के कारण इसके प्रति उदासीन हो, सो ठीक नहीं है, क्योंकि सती स्त्रियों का पति ही गति है, बंधु-बांधव नहीं।" सखी के वचनों को सुनकर वह कन्या बोली, "तुमने ठीक कहा है, मुझे बंधु-बांधवों से कोई प्रयोजन नहीं। मैं विद्याबल से युद्ध में अपने प्रिय की ही विजय देखती हूं। इन्होंने समस्त विद्याओं और रत्नों को तो सिद्ध कर लिया है, किंतु इन्होंने औषधियों को सिद्ध नहीं किया है—इसीसे मेरा मन दुखित है। वे सभी औषधियां चंद्रपाद पर्वत पर गुहा में स्थित हैं। पुण्यात्मा चक्रवर्ती उन्हें सिद्ध कर सकते हैं। यदि ये अभी ऐसा करलें, तो इनका कल्याण हो, क्योंकि प्रातःकाल ही इनका महायुद्ध आरंभ होगा।"

उस कन्या की इन बातों को सुनकर सूर्यप्रभ एकदम उठ खड़ा हुआ और

पूछा, "हे देवि, तुमने मेरे प्रति जो अपना पक्षपात प्रदर्शित किया है, उसके लिए कृतज्ञ हूं, मैं अभी औषधियों की सिद्धि के लिए जाता हूं, किंतु तुम्हारा परिचय प्राप्त करना चाहता हूं।" वह कन्या सूर्यप्रभ के इन वचनों से अत्यंत लज्जित हुई और कुछ न बोल सकी। उसकी सखी ने कहा, "यह विद्याधरों के स्वामी सुमेरु के छोटे भाई की पुत्री है। इसका नाम विलासिनी है और यह तुम्हारे दर्शन की लालसा से यहां आई है।" यह कहकर वे दोनों वहां से चली गईं।

सूर्यप्रभ भी सबको लेकर रात्रि में ही चंद्रपाद पर्वत की ओर चल दिया। मार्ग में अनेक बाधाएं आईं। स्वयं गुफा के द्वार पर भगवान शंकर के गणों ने उन्हें रोक लिया। सुवास कुमार के कहने पर उन्होंने भगवान शंकर की स्तुति की, तब शंकरजी के गणों ने गुफा का मार्ग मुक्त कर दिया और कहा, "इस गुफा में स्वयं सूर्यप्रभ को प्रवेश नहीं करना चाहिए। अकेला प्रभास ही इस गुफा में प्रवेश करे, क्योंकि इसके लिए गुफा सुगम है।" उन्होंने वैसा ही किया। प्रभास के गुफा में प्रवेश करते ही वह अंधकारपूर्ण गुफा एकदम प्रकाशयुक्त हो गई। अत्यंत भयंकर चार राक्षस भी नौकरों की भांति उसके सामने झुक गये। प्रभास उस गुफा से दिव्य सात औषधियों को लेकर बाहर निकला। उसी समय अकस्मात आकाश वाणी हुई—"ये सभी औषधियां सूर्यप्रभ को सिद्ध हो गई हैं।" तब वे सब सुमेरु के आश्रम में लौट आये। वहां सुनीथ ने सुवास कुमार से पूछा, "हे मुनि! क्या कारण है कि शंकर के गणों ने सूर्यप्रभ को रोककर प्रवास को गुफा में प्रवेश कराया?" मुनि ने कहा, "सूर्यप्रभ और प्रभास में कोई भेद नहीं है, प्रभास सूर्यप्रभ का ही आत्म-रूप है। पूर्वजन्म में किये हुए सुकर्मों के कारण यह गुफा प्रभास की ही है। मैं इसके पूर्व जन्म की कथा सुनाता हूं: प्राचीन काल में नमुचि नाम का एक राक्षसराज था। वह इतना दानवीर था कि मांगने पर अपने शत्रु को भी सब कुछ दे देता था। दस हजार वर्ष कठोर तपस्या करके उसने ब्रह्मा से यह वर प्राप्त कर लिया था कि वह लोहे, पत्थर तथा काष्ठ आदि के किसी भी शास्त्र से न मारा जायगा। उसने अनेक बार इंद्र को जीतकर भगा दिया था। कश्यप ऋषि ने देवताओं से उसकी संधि करा दी। देवताओं और राक्षसों ने वैर-भाव को त्यागकर मंदराचल को मथनी बनाकर क्षीर-सागर को मथा। जो वस्तुएं इस मंथन से प्राप्त हुईं, उनमें से विष्णु भगवान आदि ने लक्ष्मी आदि को लिया और नमुचि ने उच्चैःश्रवा नामक घोड़े को, अन्य देवताओं ने ब्रह्मा के द्वारा दी हुई अन्य वस्तुओं

को लिया, किंतु अमृत को देवताओं ने छल से चुरा लिया। अतः देव-दानवों में पुनः वैर हो गया। इस युद्ध में देवता जिस-जिस दानव को मार गिराते, उसीको उच्चैःश्रवा सूंघकर उसी क्षण जीवित कर देता। इस प्रकार दानव अजेय हो गये। यह देखकर इंद्र बहुत दुखी हुआ। तब गुरु बृहस्पति ने कहा, 'अब केवल एक ही उपाय है, उसीका आश्रय लो। नमुचि से जाकर उसका उच्चैःश्रवा घोड़ा मांग लो। वह अपने आजन्म संचित दान के तप को खंडित नहीं करेगा और तुम्हें घोड़ा दे देगा।' देवगुरु की आज्ञा पाकर इंद्र समस्त देवताओं के साथ नमुचि मुनि के पास पहुंचा और उससे उच्चैःश्रवा को मांगा। नमुचि ने अपना व्रत भंग न किया और उन्हें उच्चैःश्रवा दे दिया। असुरों के गुरु शुक्राचार्य ने नमुचि को बहुत रोका, किंतु उसने संपत्ति और जीवन के हेतु अपना व्रत नष्ट न किया। इंद्र ने नमुचि को विश्वास दिलाया था कि हम तुम्हें नहीं मारेंगे। किंतु देवों ने विश्वासघात करके शस्त्र आदि से अवध्य उसे वज्र के द्वारा फेंके ए गंगा के झाग से मार डाला। ओह, सांसारिक भोग-तृष्णा का कोई अंत नहीं है, जिसके वशीभूत होकर देवता भी अनुचित कार्य करने से नहीं डरते! नमुचि की हत्या का समाचार पाकर उसकी माता ने शोक से संतप्त होकर यह संकल्प किया कि बलवान नमुचि ही फिर मेरे गर्भ से उत्पन्न होगा और युद्ध में समस्त देवताओं को जीतेगा। वही नमुचि संपूर्ण रत्नों से युक्त होकर पुनः उसीके गर्भ से उत्पन्न हुआ और उसका नाम प्रबल पड़ा। इस प्रबल ने भी पूर्व संस्कार के कारण अनेक तप किये और अपने प्राणों से भी याचक को संतुष्ट करने का व्रत लिया। उसने सौ बार इंद्र को जीता। तब सब देवता सलाह करके उसके पास गये और उन्होंने उससे पुरुष यज्ञ के लिए उसका शरीर मांगा। उसने प्रसन्न होकर अपना शरीर उन्हें दे दिया। तब देवताओं ने उस प्रबल टुकड़े-टुकड़े कर डाले। वही प्रबल आज प्रभास के रूप में पुनः जीवलोक उत्पन्न हुआ है। प्रारंभ में नमुचि रूप में तथा मध्यकाल में प्रबल-रूप में और आज प्रभास के रूप में वह प्राचीन पुण्य के कारण शत्रुओं से अजेय है। उस प्रबल की यह औषधियों की गुफा आज प्रभास की अपनी ही गुफा है और उसके नौकर आज भी प्रभास के नौकर हैं। इस गुफा के नीचे पाताल में प्रबल का एक महल है। जहां उसकी बारह मुख्य पत्नियां हैं। उसके अनेक रत्न, अनेक शस्त्रास्त्र, चिंतामणि, लाखों घोड़े भी आज प्रभास के ही हैं। इस प्रकार यह प्रभास बड़ा अद्भुत है।"

मुनि कुमार से इस कथा को सुनकर मयासुर और प्रभास आदि के सहित सूर्यप्रभ रत्नादि को लेने के लिए पाताल में स्थित उस महल में गया। प्रभास अंदर जाकर अपनी पूर्व पत्नियां तथा रत्न और घोड़े आदि लेकर लौट आया और उसने सूर्यप्रभ को खूब संतुष्ट किया। तब मयासुर, सुनीथ, सुमेरु, प्रभास आदि के साथ सूर्यप्रभ शीघ्र ही अभीष्ट सिद्धि को प्राप्त करके फिर अपनी सेना में आ गया। अन्य राजा अपने-अपने डेरों चले गये, पर सूर्यप्रभ ने संग्राम-व्रत में दीक्षित होकर कुश-शय्या पर ही शेष रात्रि बिताई।

## : ४ :

# युद्ध का आरंभ

प्रातःकाल होते ही सूर्यप्रभ श्रुतशर्मा को जीतने की इच्छा से अपने सैन्य-दल के साथ सुमेरु के तपोवन से निकला और त्रिकूट पर्वत के निकट पड़ाव डाला। इसी समय त्रिकूट देश से एक दूत आया और सुमेरु से बोला, "श्रुतशर्मा के पिता ने तुम्हें यह संदेश भेजा है कि तुम हमेशा हमसे दूर देश पर स्थित थे, इसलिए हम तुम्हारा कभी भी आतिथ्य-सत्कार न कर सके। आज तुम इन शत्रुओं के साथ हमारे प्रदेश में आये हो, अतः हम तुम्हारा आज यथोचित अतिथि सत्कार करेंगे।" शत्रु के इस संदेश को पाकर सुमेरु ने उसे उत्तर दिया, "ठीक है, हमारे समान दूसरा योग्य अतिथि तुम्हें न मिलेगा और हमारा सत्कार तुम्हें परलोक में फल न देकर इसी समय फल देगा—सो हम तैयार हैं हमारा आतिथ्य करो।" इस उत्तर को पाकर दूत लौट गया।

तब सूर्यप्रभ आदि ने एक उन्नत प्रदेश पर खड़े होकर अपनी सेनाओं को देखा। मयासुर ने अंगुली से संकेत करके अपनी सेना के प्रत्येक वीर महारथी का परिचय दिया। फिर बोला, "यद्यपि हमारी सेना अनेक महावीरों से युक्त है, फिर भी शत्रु की सेना हमसे अधिक बलवती है। किंतु भगवान शंकर के प्रसाद से वह हमारी सेना का मुकाबला न कर सकेगी।" मयासुर सुनीथ से ये बातें कर ही रहा था कि श्रुतशर्मा के पास से पुनः एक और दूत आया और बोला, "हमारे स्वामी ने कहा है कि यह भूमि इस युद्ध के लिए छोटी होने के कारण अपर्याप्त है। इसलिए कलाप

ग्राम के विशाल प्रदेश में चलना चाहिए।" यह सुनकर वे सब अपनी सेना के साथ कलाप ग्राम में गये। श्रुतशर्मा आदि भी वहीं पहुंचे। उन्होंने अपनी सेना का सेनापति दामोदर को बनाया और उसने महासूचि-व्यूह का निर्माण किया। श्रुतशर्मा स्वयं अपने मंत्रियों सहित उसके समीप खड़ा था। सूर्यप्रभ ने प्रभास को सेनापति बनाया गया और उसने अपनी सेना को अर्धचंद्र व्यूह में खड़ा किया। वह स्वयं उस व्यूह के बीच में रहा। कुंजर कुमार और प्रहस्त दोनों कोनों पर खड़े हो गये और सूर्यप्रभ तथा सुनीथ आदि उसके पीछे खड़े हो गये। सुमेरु और सुवास कुमार भी उसके पास ही रहे।

दोनों सेनाओं में लड़ाई के बाजे बजने लगे। उस समय इंद्र, शंकर, ब्रह्मा, मूर्तिमान वेद, शास्त्र तथा चक्रधारी साक्षात विष्णु भगवान भी उस युद्ध को देखने के लिए आकाश में एकत्रित हो गये। दोनों सेनाओं के बीच बड़ा भयंकर युद्ध आरंभ हो गया। समस्त दिशाएं बाणों से इस प्रकार व्याप्त हो गईं, जिस प्रकार बादलों से आकाश आच्छादित हो जाता है। अनेक प्रकार के शस्त्रास्त्र चलने लगे, रक्त की नदियां बहने लगीं।

दोनों ओर की असंख्य सेना मारी गई। धीरे-धीरे अपने पक्ष के और विपक्ष के योद्धा दिखाई पड़ने लगे। मनुष्यों के साथ विद्याधरों के इस असंभव युद्ध को देखकर मानोखिन्न हुआ सूर्य भी अस्त हो गया। सांयकाल होने पर युद्ध बंद हुआ। दोनों सेनाएं अपने-अपने डेरे की ओर चलीं। इस प्रथम दिन के संग्राम में श्रुतशर्मा के तीन विशेष वीर रणक्षेत्र में काम आये और सूर्यप्रभ की सेना के तेंतीस प्रधान वीर मारे गये।

## : ५ :

## विजय के लक्षण

दूसरे दिन फिर दोनों सेनाएं युद्ध के लिए तैयार होकर रणभूमि में उपस्थित हुईं। सभी देवता आज भी संग्राम देखने के लिए आये। श्रुतशर्मा के सेनापति दामोदर ने चक्रव्यूह का निर्माण किया और सूर्यप्रभ के सेनापति प्रभास ने वज्र-व्यूह रचा। देखते-देखते घमासान युद्ध हो गया। बाणों के समूह से सूर्य ढंक गया।

समस्त दिशाएं वीरों के नादों से बहरी हो गईं। दामोदर के बनाये हुए चक्र-व्यूह को भेदकर प्रभास उसमें घुस गया। उसके घुसते ही दामोदर ने व्यूह के प्रवेश द्वार को रोक लिया। अकेला प्रभास ही व्यूह में रह गया। यह देखकर सूर्यप्रभ ने अपने पंद्रह महारथियों को उसकी सहायता के लिए भेजा। किंतु दामोदर ने उन्हें अंदर न घुसने दिया। यह देखकर सुनीथ बड़ा चिंतित हुआ। लेकिन सुवास कुमार ने कहा, "तीनों लोकों के सुर, असुर और मानव भी एक साथ मिलकर प्रभास का कुछ नहीं बिगाड़ सकते। इन विद्याधरों की तो शक्ति क्या है? आप लोग निश्चित रहें।" उधर देखते-ही-देखते प्रभास ने कालकथन तथा विद्युत्प्रभ नाम के दो महारथियों को मार डाला और उनकी सहायता के लिए भेजे हुए आठ अन्य महारथी भी मौत के घाट उतार दिये। इस प्रकार श्रुतशर्मा की भारी सेना नष्ट हो गई। सांयकाल के समय अनेक बंधु-बांधवों के मर जाने से विद्याधर बड़े दुखित होकर अपने-अपने डेरों को लौटे और सूर्यप्रभ आदि जय की प्राप्ति के कारण प्रसन्न चित्त से अपने निवासस्थान पर आये। इसी समय सुमेरु के द्वारा भेजे हुए महायान और सुवास नाम के दो महारथी श्रुतशर्मा के पक्ष को छोड़कर सूर्यप्रभ के पास आये और बोले, "हमें अपनी शरण में स्थान दीजिये।" सूर्यप्रभ ने उन दोनों का यथोचित सत्कार किया। इससे श्रुतशर्मा का साहस और भी शिथिल हो गया। यह देखकर इंद्र ने विश्वावसु के द्वारा कहला भेजा, "तुम निश्चित रहो, मैं सबेरे सब देवताओं को साथ लेकर तुम्हारी सहायता करूंगा।"

शत्रु की सेना में भेद पड़ने से संतुष्ट हुए सूर्यप्रभ ने वह रात्रि भी रनिवास में न जाकर मंत्रियों के साथ बिताई।

: ६ :

## गुणशर्मा की कथा

उस रात्रि को सूर्यप्रभ ने अपने मंत्री वीतभीति से कहा, "हे मित्र! मुझे नींद आ रही है; किसी पराक्रमशाली व्यक्ति की कथा सुनाओ, जिससे मन बहले।" तब वीतभीति ने उसे यह कथा सुनाई: 'उज्जयिनी में एक गुणज्ञ महासेन नाम का राजा था। वह संपूर्ण कलाओं का पंडित था। उसकी अश्मेकवती नाम की रानी

थी। उसका परम प्रिय और विश्वासपात्र गुणशर्मा नाम का एक ब्राह्मण मित्र था। वह ब्राह्मण बड़ा शूरवीर, विद्याओं में पारंगत और समस्त कलाओं और शस्त्रास्त्रों में निपुण था। एक दिन रनिवास में नृत्य का प्रसंग चल रहा था, तब राजा और रानी ने गुणशर्मा से कहा, "आप सर्वगुणसंपन्न हैं, यदि आप नाचना जानते हों, तो हमें नाचकर दिखाइये।" यह सुनकर मुसकराता हुआ गुणशर्मा बोला, "मैं नाचना तो जनता हूं, किंतु इस समय नाचना युक्त नहीं हैं।" राजा और रानी के अधिक अनुरोध करने पर उसने नाचकर दिखाया। उसका नृत्य इतना स्वाभाविक था कि राजा-रानी भी हृदय से उसके साथ नाचने लगे। इसके बाद राजा ने उसे वीणा बजाने के लिए दी। उसे लेते ही गुणशर्मा ने कहा, "यह वीणा ठीक नहीं है, क्योंकि इसकी तांत कुत्ते के बाल से बनी है। अतः मुझे और कोई वीणा दो।" तब वीणा की तांत देखी गई और वास्तव में उसमें से कुत्ते का बाल निकला। उसकी इस सर्वज्ञता की राजा ने बड़ी प्रशंसा की और उसे दूसरी वीणा दी। गुणशर्मा ने उस वीणा को बजाकर राजा और रानी का मनोविनोद किया। फिर राजा ने उसकी शस्त्रास्त्र की प्रवीणता देखने के लिए उस पर अनेक शस्त्रास्त्रों का प्रहार किया। गुणशर्मा ने उनसे अपना बचाव करके राजा के हाथ-पैर बांध दिये। तब राजा ने उसको राजकीय सहायता के योग्य समझकर उसकी बहुत प्रकार से स्तुति की। रानी अशोकवती उसके रूप-सौंदर्य और गुण-चातुर्य्य को देखकर उस पर मुग्ध हो गई। उसने मन में निश्चय किया कि यदि मुझे ऐसा गुणसंपन्न पुरुष न प्राप्त हुआ, तो मेरा जीवन व्यर्थ है। तब उसने मन में एक युक्ति सोची और वह राजा से बोली, "मैं भी गुणशर्मा से वीणा सीखना चाहती हूं।" राजा ने गुणशर्मा से कहा तो उसने कहा, "किसी शुभ दिन इन्हें वीणा सिखाना आरंभ कर दूंगा।"

एक दिन भोजन करते समय गुणशर्मा राजा के पास ही बैठा हुआ था। जब रसोइया एक दाल परोसने लगा, तो गुणशर्मा ने उसे रोक दिया और राजा से कहा, "इस दाल में विष मिला हुआ है।" परीक्षा करने के लिए वह दाल उस रसोइये को ही खिलाई गई, जिससे वह तुरंत मूर्च्छित हो गया। गुणशर्मा ने मंत्र-शक्ति से उस रसोइये को स्वस्थ कर दिया। राजा ने उस रसोइये से पूछा, "सच बताओ, क्या बात है?" उसने उत्तर दिया, "मुझे गौड़देश के राजा विक्रमशक्ति ने तुम्हें विष देने के लिए रसोइया बनाकर भेजा था। वही मैंने किया है।" इस घटना से राजा गुणशर्मा से अत्यंत प्रसन्न हुआ। उसने रसोइये को मरवा दिया

और गुणशर्मा को एक हजार गांव इनाम दिये।

इधर एक दिन वीणा सिखाते समय रानी गुणशर्मा से बोली, "मैंने वीणा सीखने के बहाने तुम्हें एकांत में बुलाया है। मैं तुमसे प्रेम करती हूं। मेरी इच्छा पूरी करो।" गुणशर्मा ने उत्तर दिया, "तुम मेरे स्वामी की पत्नी हो। तुम्हें ऐसी बातें न करनी चाहिए।" रानी ने कहा, "तुम्हारा रूप और कला-चातुर्य व्यर्थ है, जो तुम मुझ जैसी प्रेमिका की उपेक्षा कर रहे हो।" गुणशर्मा हंसता हुआ बोला, "तुमने ठीक कहा है। ऐसा रूप और चातुर्य निष्फल है, जो दूसरे की पत्नी का अपहरण करके अपनी कीर्ति को नष्ट करता है।" इस पर रानी क्रुद्ध होकर उससे बोली, "यदि तुम मेरी इच्छा पूरी न करोगे, तो मैं तुम्हें मरवाकर स्वयं भी मर जाऊंगी।" इस पर गुणशर्मा ने कहा, "मैं ऐसी मृत्यु को भी पसंद करूंगा।" जब रानी ने बहुत हठ किया, तो गुणशर्मा ने उस समय को टालने के लिए किसी दूसरे दिन का वायदा किया और वह वहां से चला गया।

कुछ दिनों के बाद राजा महासेन ने जाकर सोमदेश के राजा के किले को घेर लिया। उसी समय गौड़देश के राजा विक्रमशक्ति ने पीछे से आकर महासेन को घेर लिया। तब राजा ने गुणशर्मा से कहा, "अब तो हम दोनों ओर से शत्रुओं से घिर गये। हमारे पास इतनी सेना नहीं है कि दोनों का मुकाबला किया जा सके। अब हमें क्या करना चाहिए?" गुणशर्मा ने कहा, "आप धैर्य धारण करें। मैं ऐसा उपाय करूंगा, जिससे इस संकट से पार हो सकें।" इस प्रकार राजा को आश्वस्त करके गुणशर्मा ने रात्रि के समय अपने नेत्रों में लोपांजन लगाया और अदृश्य होकर विक्रमशक्ति की सेना में गया। सोये हुए राजा के पास जाकर उसने उसे जगाकर कहा, "मैं विष्णु भगवान का दूत हूं। उन्होंने मुझे तुम्हारे पास यह कहने के लिए भेजा है कि यदि तुम अपना कल्याण चाहते हो, तो महासेन के पास दूत भेजकर उससे संधि कर लो, अन्यथा सेना-सहित तुम्हारा नाश हो जायगा। तुम्हारे संधि के प्रस्ताव को महासेन स्वीकार कर लेगा। तुम भगवान के भक्त हो और भगवान भक्त का कल्याण चाहते हैं।" विक्रमशक्ति ने उसके वचन पर विश्वास करके दूसरे दिन महासेन के पास संधि के प्रस्ताव के साथ अपना दूत भेजा। महासेन ने उसके प्रस्ताव को स्वीकार करके उससे संधि करली। गुणशर्मा के प्रभाव से महासेन ने सोमकेश्वर को भी जीत लिया। फिर गुणशर्मा ने महासेन को एक बार नदी में स्नान करते समय ग्राह से और दूसरी बार उपवन में सर्प से बचाया।

कुछ दिनों के पश्चात महासेन और विक्रमशक्ति का पुनः घोर संग्राम हुआ। दोनों राजा रथहीन होकर खड्गों से लड़ने लगे। उस युद्ध में महासेन व्याकुल होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। उसके गिरने पर विक्रमशक्ति ने उसका सिर काटने के लिए ज्योंही तलवार उठाई, त्योंही गुणशर्मा ने बीच में ही चक्र से खड्ग-सहित विक्रमशक्ति की भुजा काट ली और उसकी छाती में परिघ मारकर उसे मार दिया। राजा महासेन ने पृथ्वी से उठकर गुणशर्मा से कहा, "ब्राह्मण वीर ! तुमने मेरी पांच बार प्राण-रक्षा की है।" महासेन ने गुणशर्मा द्वारा मारे हुए विक्रमशक्ति की समस्त सेना और राष्ट्र पर अधिकार कर लिया। गुणशर्मा की सहायता से अन्य राजाओं को भी जीतकर वह उज्जयनी में सुखपूर्वक रहने लगा।

इस बीच में अशोकवती दिन-रात गुणशर्मा से प्रार्थना करती रही, किंतु उसने इस अकार्य को कदापि स्वीकार न किया। तब रानी ने उससे बदला लेने का निश्चय कर लिया। एक दिन वह झूठ-मूठ रोने लगी। राजा ने रोने का कारण पूछा, तो वह बोली, "जिसने मेरा अपकार किया है, उसको दंड देने में तुम अशक्त हो। अतः तुम्हारे सामने अपना दुख प्रकट करने से क्या लाभ ?" जब राजा ने बहुत हठ किया, तो वह बोली, "गुणशर्मा गौड़ेश्वर से धन प्राप्त करने के लिए तुम्हें मरवाना चाहता था। इसलिए उसने विक्रमशक्ति के पास दूत भेजा था कि तुम धन का प्रबंध करलो। तब विक्रमशक्ति के रसोइये ने उससे कहा कि आप धन खर्च न करें, मैं आपका काम सिद्ध दूंगा। यह कहकर उसने गुणशर्मा के दूत को वहीं बंदी करा दिया और आप यहां आकर रसोइया बन गया। जब गुणशर्मा का दूत वहां से छूटकर आया, तो उसने रसोइये का हाल कहा। इससे गुणशर्मा ने उससे बदला लेने के लिए विष देते हुए उसे पकड़ लिया और मरवा डाला। तब उस रसोइये का समाचार जानने के लिए उसकी माता, पत्नी और भाई यहां आये। गुणशर्मा ने उनको भी मरवा दिया। उसका भाई किसी तरह दौड़कर मेरे महल में आ गया। उसीने मुझे यह समस्त वृत्तांत बताया। तभी गुणशर्मा भी मेरे निवास-गृह में घुस आया। गुणशर्मा को देखकर उसका भाई भय से न जाने कहां भाग गया। जब मैंने गुणशर्मा से पूछा, 'क्या बात है ?' तब गुणशर्मा ने मुझे पकड़ना चाहा और कहा, 'देवि ! मैं तुम्हारे प्रेम की अग्नि से जल रहा हूं। सो मुझे स्वीकार करो। अन्यथा मैं जीवित न रहूंगा। मुझे प्राण-दक्षिणा दो।' ऐसा कहकर वह मेरे चरणों पर गिर पड़ा। तब मैं ज्योंही शीघ्रता से अपने पैर को

खींचकर उठी, त्योंही उसने उठकर हठात मेरा आलिंगन कर लिया। उसी समय मेरी दासी पल्लविका वहां आ गई। उसे देखकर वह भय के मारे वहां से चला गया। यदि सौभाग्यवश पल्लविका वहां न आती, तो निश्चय ही वह पापी मेरे चरित्र को आज भ्रष्ट कर देता।" यह कहकर वह झूठ-मूठ फिर रोने लगी। यह सुनकर राजा क्रोध से जल उठा और रानी को सांत्वना देता हुआ बोला, "सुंदरी! मैं उस द्रोही का वध अवश्य ही करूंगा। किंतु मैं उसे युक्ति से मारूंगा, जिससे मेरा अपयश न हो, क्योंकि प्रकट है कि उसने मेरे प्राणों की पांच बार रक्षा की है और तुम्हारे अपमान की बात को लोगों के सामने कहा भी नहीं जा सकता।" रानी बोली, "यदि मेरा अपमान लोगों के सामने अकथनीय है, तो गौड़ेश्वर के साथ मिलकर तुम्हें मारने का अपराध तो अकथनीय नहीं है।" यह सुनकर राजा बोला, "तुम्हारी बात बिल्कुल युक्ति-युक्त है।" रानी से ऐसा कहकर राजा महासेन राज दरबार में आया। इधर गुणशर्मा भी जब अपने घर से चला, तो उसे अनेक अपशकुन हुए। इनके संबंध में सोचता हुआ जब वह राज दरबार में पहुंचा, तो पहले तो राजा ने उसे क्रोध की दृष्टि से देखा और फिर राज्य सिंहासन से उठकर उसके पास बैठ गया। राजा का यह व्यवहार देख सभासदों को आश्चर्य हुआ और साथ ही गुणशर्मा को भी। उसने राजा से कहा, "मैं आपका सेवक हूं और आप मेरे स्वामी, आपका यह व्यवहार ठीक नहीं है। आप अपने आसन पर बैठे हुए ही मुझे आज्ञा दीजिये।" मंत्रियों के भी ऐसा कहने पर राजा बोला, "नहीं, इस सिंहासन पर मैं नहीं बैठूंगा, गुणशर्मा बैठेगा।" बाद में राजा ने समस्त सभासदों को गौड़ेश्वर के साथ मिलकर अपने को मार डालने का वह बनावटी वृत्तांत कह सुनाया, जो रानी ने उसे बताया था। राजा ने साधारण पुरुषों को वहां से हटाकर विश्वासपात्र व्यक्तियों को यह भी बता दिया कि यह गुणशर्मा रानी को चरित्रभ्रष्ट भी करना चाहता था। गुणशर्मा ने यह सुनकर राजा से कहा, "महाराज, यह बिल्कुल झूठ है। आपसे किसीने यह बिल्कुल ही बनावटी बात कही है। आपको बिना सचाई जाने हुए कोई भी बात शीघ्रता में नहीं कहनी चाहिए।" गुणशर्मा के ऐसा कहने पर राजा ने दौड़कर उस पर छुरे से प्रहार कर दिया। पर इस प्रहार से गुणशर्मा ने अपने को बचा लिया। तब राजा के अन्य सेवकों ने उस पर प्रहार किया। गुणशर्मा ने उन सबके प्रहार से बचकर उन सबके बाल आपस में बांध दिये और वहां से भाग निकला। उसने अपने पीछे दौड़ते हुए सौ योद्धाओं को भी मार गिराया और

अपनी आंखों में लोपांजन लगाकर दक्षिण दिशा की ओर चल पड़ा। चलते हुए वह एक गांव में पहुंचा, जहां उसने एक बड़ के पेड़ के नीचे शिष्यों को पढ़ाते हुए एक ब्राह्मण को देखा। उस ब्राह्मण ने गुणशर्मा का सत्कार करके उससे पूछा, "तुम कौन हो ? तुम्हारा कौनसा वंश है ? कौनसे वेद की कौनसी शाखा को पढ़नेवाले ब्राह्मण हो ? कौनसे देश को तुमने अपने जन्म से अलंकृत किया है ?" गुणशर्मा ने अपना जीवनवृत्त कह सुनाया, "ब्रह्मन्, उज्जयनी नगरी में आदित्यशर्मा नाम का एक ब्राह्मण था। उसके माता-पिता बचपन में ही मर गये थे। अतः उसका पालन-पोषण अपने मामा के यहां हुआ था। समस्त विद्याओं और कलाओं को सीखने पर आदित्यशर्मा की मित्रता एक संन्यासी से हो गई। वह संन्यासी आदित्यशर्मा के साथ पितृवन में जाकर यक्षिणी की सिद्धि के लिए हवन करने लगा। वहां उसके सामने विमान में जाती हुई अनेक सुंदर कन्याओं के साथ एक दिव्य कन्या प्रकट हुई। वह मधुर वाणी में संन्यासी से बोली, 'भगवन ! मैं विद्युन्माला नाम की यक्षिणी हूं और मेरे साथ ये अनेक यक्षिणियां हैं। सो आप मेरी इन सखियों में से किसी एक को इच्छानुसार ले लीजिये। आपकी मंत्र-साधना से इतनी ही सिद्धि मिल सकती है। आपको मेरी मंत्र-साधना का पूरा ज्ञान नहीं था, अतः मैं आपको सिद्ध न हो सकी। अब आप व्यर्थ परिश्रम न कीजिये।" विद्युन्माला के कहने से संन्यासी ने उनके बीच से एक यक्षिणी को ले लिया। तब विद्युन्माला वहां से अंतर्धान हो गई। आदित्यशर्मा ने उस यक्षिणी से पूछा, 'क्या विद्युन्माला से भी उत्तम कोई यक्षिणी है।' उस यक्षिणी ने उत्तर दिया, 'विद्युन्माला, चंद्रलेखा और तीसरी सुलोचना—ये यक्षिणियों में उत्तम हैं, इनमें भी सुलोचना सर्वोत्तम है।' ऐसा कहकर यक्षिणी यथासमय पुनः आने का वचन देकर चली गई। आदित्यशर्मा भी संन्यासी के साथ घर लौट आया। उसके बाद वह यक्षिणी प्रति दिन आती और संन्यासी को यथेष्ट भोग देती। एक दिन संन्यासी ने आदित्यशर्मा के कहने से यक्षिणी से यह पूछा, 'सुलोचना को सिद्ध करने की विधि कौन जानता है।' यक्षिणी ने कहा, 'दक्षिण दिशा में तुंबवन नाम का एक स्थान है, वहां विष्णुगुप्त नाम का एक बौद्ध संन्यासी वेणा नदी के किनारे पर आश्रम बनाकर रहता है, वह विस्तारपूर्वक उसकी साधना-विधि जानता है।' यह जानकर आदित्यशर्मा संन्यासी के साथ बौद्ध संन्यासी के पास पहुंचा और तीन वर्ष तक भक्तिपूर्वक उसकी सेवा की। उस बौद्ध संन्यासी ने

उसकी सेवा से प्रसन्न होकर उसे सुलोचना को सिद्ध करने की मंत्र-विधि बता दी। आदित्यशर्मा ने उस मंत्र का जप किया और अंत में विधिपूर्वक एकांत में हवन किया। तब विमान में बैठकर सुलोचना यक्षिणी उसके सामने प्रकट हुई और बोली, 'मैं तुम्हें सिद्ध हो गई हूं। तुम छः मास तक मेरे कन्याभाव को नष्ट न करना। उसके बाद तुम्हें मुझसे एक श्रेष्ठ लक्षणोंवाला, महावीर, सर्वज्ञ और अजेय पुत्र प्राप्त होगा।' आदित्यशर्मा ने उसकी बात स्वीकार कर ली। तब वह यक्षिणी आदित्यशर्मा को अपने विमान पर बैठाकर अलकापुरी ले गई। वहां आदित्यशर्मा ने उसके पास रहते हुए असिधारा की तरह कठोर व्रत का पालन किया और इस तरह छः मास बिता दिये। तब कुबेर ने संतुष्ट होकर स्वयं दिव्य-विधि से सुलोचना को आदित्यशर्मा को दे दिया। मैं उसी सुलोचना और आदित्य-शर्मा का पुत्र हूं। मेरा नाम गुणशर्मा है। वहीं मैंने यक्षों के अधिपति मणिधर से वेदों, विद्याओं और कलाओं का ज्ञान प्राप्त किया।

"एक बार किसी कार्य से इंद्रदेव कुबेर के पास आये। उन्हें देखकर वहां बैठे हुए सभी देव उठ खड़े हुए। मेरे पिता आदित्यशर्मा उस समय विधिवश किसी अन्य चिंता में मग्न थे, अतः वह न उठे। इससे इंद्रदेव उनपर अप्रसन्न हो गये और उन्हें शाप दिया, 'हे जड़, जा तू अपने मर्त्यलोक में ही जा। तू यहां रहने योग्य नहीं है।' सुलोचना ने इंद्र को अनुनय-विनय करके प्रसन्न कर लिया। तब इंद्र ने कहा, 'अच्छा, यदि यह स्वयं मर्त्यलोक में न जाये, तो इसका पुत्र चला जाये, क्योंकि मेरा शाप व्यर्थ नहीं जायेगा और पुत्र पिता का ही दूसरा रूप होता है।' तब मेरे पिता ने मुझे स्वर्ग से लाकर उज्जयनी में अपने मामा के घर में रख दिया। मेरी वहां के राजा से मित्रता हो गई।" ऐसा कहकर उसने आदि से लेकर अशोकवती के दुर्व्यवहार तथा राजा के आचरण और युद्ध तक का वृत्तांत कह सुनाया। यह सब सुनकर उस ब्राह्मण ने गुणशर्मा से कहा, "हे भगवन! आपके आने से मैं कृतकृत्य हो गया। आप मेरे घर चलिये। मेरा नाम अग्निदत्त है। यह ग्राम मेरा ही है।" ऐसा कहकर अग्निदत्त गुणशर्मा को आदर-सहित अपने घर ले गया और लक्षण दिखाने के बहाने उसे अपनी कन्या दिखाई। गुणशर्मा ने उस कन्या के चिह्नों को देखकर उसके अनेक शुभ लक्षण बताये। तब अग्निदत्त ने एकांत में गुणशर्मा से कहा, "हे महाभाग! आप यहीं रहिये, विदेश मत जाइये, मैं आपके साथ अपनी कन्या का विवाह कर दूंगा।" गुणशर्मा ने उत्तर दिया,

"अवश्य ही इससे बढ़कर मुझे और क्या सुख होगा, किंतु राजा के अपमान से संतप्त मुझे कोई भी बात अच्छी नहीं लगती। दूसरे उज्जयनी नगरी यहां से समीप ही है। कहीं वह राजा मुझे यहां जानकर और कोई उपद्रव न करे। सो मैं तीर्थों में घूमता हुआ अपने पापों को धोकर इस शरीर का त्याग करूंगा।"

उसके ऐसा कहने पर अग्निदत्त हंसकर बोला, "यदि तुम्हारा हृदय शुद्ध है, तो तुम उस राजा के अपमान से दुखित क्यों होते हो? वह राजा अपने किये हुए का फल शीघ्र ही पायेगा, क्योंकि अविवेकी मनुष्य के पास संपत्ति अधिक समय तक नहीं ठहरती। अशोकवती के दुराचरण को देखकर तुम्हें स्त्री-जाति के प्रति घृणा नहीं होनी चाहिए। यदि तुम महासेन से डरते हो, तो मैं तुम्हारे लिए एक अगम्य तहखाना बनवा दूंगा, जहां रहते हुए तुम्हें कोई भी न जान सकेगा।" अग्निदत्त ने जब उसे खूब समझाया, तो वह बोला, "मै आपका कहना मान लूंगा, किंतु आपकी कन्या के साथ तब तक विवाह न करूंगा, जब तक कि उस राजा से बदला न ले लूंगा। पहले मैं नियमपूर्वक किसी देवता की सिद्धि करूंगा, उसके बाद राजा से बदला चुकाकर आप जैसा कहेंगे, वैसा करूंगा।" अग्निदत्त ने उसकी बात मान ली और उसके लिए पातालवसति नामक एक तहखाना बनवाया। फिर स्वामी कार्तिकेय का मंत्र बताकर उसे तहखाने में भेज दिया। कुछ दिन बाद स्वामी कार्तिकेय गुणशर्मा की तपस्या से प्रसन्न हुए और वर दिया—"तुम्हारे पास अक्षय संपत्ति होगी और तुम राजा महासेन को जीतकर समस्त पृथ्वीमंडल पर राज्य करोगे।" उनके वरदान से गुणशर्मा को अक्षय कोष की प्राप्ति हुई। फिर अग्निशर्मा ने अपनी सुंदरी पुत्री का विवाह उसके साथ कर दिया। विवाह के पश्चात गुणशर्मा ने अपने अक्षय कोष से सेना एकत्रित करली और अनेक राजाओं को भी धन देकर अपने साथ मिला लिया। उसने शीघ्र ही उज्जयनी पर आक्रमण किया। वहां समस्त प्रजा से अशोकवती के दुराचार की बात कहकर और राजा महासेन को जीतकर स्वयं वहां का राजा बन गया। धीरे-धीरे उसने अन्य राजाओं को भी जीत लिया और चक्रवर्ती राजा बन गया।

यह कथा सुनाकर वीतिभीति बोला, "जिस प्रकार गुणशर्मा धैर्य धारण करके चक्रवर्ती बन गया, इसी प्रकार आप भी धैर्य धारण करके शत्रुओं को जीतकर समृद्धि प्राप्त करें।"

अपने मंत्री से इस श्रेष्ठ कथा को सुनकर सूर्यप्रभ धीरे-धीरे सो गया।

: ७ :

# चक्रवर्ती-पद की प्राप्ति

प्रातःकाल सूर्यप्रभ अपने मंत्रियों तथा दानव-सेना के साथ और श्रुतशर्मा विद्याधर-सेनाओं के साथ युद्ध-भूमि में आये। संपूर्ण देव और राक्षस भी पहले की तरह युद्ध देखने के लिए आ गये। दोनों सेनाओं के सेनापतियों ने अर्ध-चंद्र-व्यूह में अपनी सेनाएं खड़ी कीं। तब घोर संग्राम आरंभ हुआ। दोनों सेनाओं के असंख्य वीर मारे गये। खून की नदियां बहने लगीं। फिर महारथियों के द्वंद्व-युद्ध आरंभ हुए। इनमें दोनों ओर के कई प्रसिद्ध-प्रसिद्ध योद्धा मारे गये। सूर्यप्रभ का श्रुतशर्मा के साथ, प्रभास का दामोदर के साथ और सूर्यप्रभ के मंत्री प्रहस्त का ब्रह्मगुप्त के साथ युद्ध हुआ। इसके बाद जब देवताओं ने अपने-अपने अंश से उत्पन्न वीरों को मरा हुआ देखा, तो वे स्वयं युद्ध करने लगे। तब ब्रह्माजी इंद्र से बोले, "तुम लोग हार जाओगे। इसलिए हठ छोड़कर मानव-दानवों के साथ संधि कर लो।" किंतु इंद्र ने उनकी बात न मानी। प्रभास और दामोदर के विचित्र द्वंद्व-युद्ध में प्रभास ने दामोदर को भगा दिया। सूर्यप्रभ और श्रुतशर्मा का बड़ा घोर द्वंद्व युद्ध हुआ। श्रुतशर्मा जिस-जिस अस्त्र का प्रयोग करता था, सूर्यप्रभ तत्क्षण उसी अस्त्र को विरोधी अस्त्रों से काट देता था। श्रुतशर्मा जिस माया का प्रयोग करता, सूर्यप्रभ उसकी विरोधी माया से उसे नष्ट कर देता था। तब श्रुतशर्मा ने अत्यंत कुपित होकर ब्रह्मास्त्र चलाया। सूर्यप्रभ ने पाशुपत-अस्त्र चला दिया। उस महास्त्र से ब्रह्मास्त्र नष्ट हो गया और उसके प्रभाव से श्रुतशर्मा मरने लगा। तभी इंद्रादि लोकपालों ने चारों से अपने-अपने उत्तम अस्त्रों का प्रयोग किया, किंतु पाशुपत के प्रभाव से वे सब अस्त्र नष्ट हो गये और वह अस्त्र श्रुतशर्मा को मारने की इच्छा से जलने लगा। तब सूर्यप्रभ ने उस महास्त्र की स्तुति की और कहा, "श्रुतशर्मा को मारिये नहीं, वरन उसे बंदी बनाकर मुझे दे दीजिये।" ऐसा ही हुआ। श्रुतशर्मा को बंदी देखकर सब देवता युद्ध करने लगे। उसी समय शिव का भेजा हुआ वीरभद्र नाम का गण आया और इंद्रादि से कहने लगा, "तुम सब यहां युद्ध देखने आये हो, स्वयं युद्ध करने नहीं। ऐसा करने से मर्यादा का उल्लंघन होगा और बड़ी अव्यवस्था होगी।" यह सुन-

कर देवताओं ने उत्तर दिया, "हम लोगों के पुत्र युद्ध में मारे गये हैं और मारे जा रहे हैं, तब हम युद्ध क्यों न करें ?"

यह सुनकर वीरभद्र लौट गया। देवताओं और राक्षसों का महायुद्ध पुनः आरंभ हो गया। अंत में देवताओं के शस्त्र टूट गये और वे युद्ध-क्षेत्र से भाग खड़े हुए। तब क्रुद्ध होकर स्वयं इंद्र सूर्यप्रभ से युद्ध करने लगा। इंद्र ने जिस-जिस अस्त्र का उस पर प्रयोग किया, उसीको सूर्यप्रभ ने काट दिया और कान तक खींचे हुए बाण से इंद्र पर प्रहार किया। तब क्रुद्ध होकर इंद्र ने वज्र उठाया, जिसे शिवजी ने अपनी हुंकार मे बीच में ही नष्ट कर दिया। इंद्र भी युद्ध से भाग गया। इंद्र को भागा हुआ देखकर स्वयं भगवान विष्णु प्रभास से युद्ध करने लगे। युद्ध में उन्होंने प्रभास का रथ नष्ट कर दिया और उसके घोड़े मार डाले। वह दूसरे रथ पर चढ़कर युद्ध करने लगा। भगवान विष्णु ने क्रोध से जलते हुए सुदर्शन चक्र को प्रभास पर छोड़ा। प्रभास ने भी उसे रोकने के लिए अभिमंत्रित दिव्य खड्ग का प्रयोग किया। दोनों अस्त्रों का आपस में युद्ध होता रहा। अंत में चक्र से खड्ग को दबा हुआ देखकर शिवजी ने हुंकार किया, जिससे खड्ग और चक्र दोनों ही अदृश्य हो गये।

इस प्रकार सूर्यप्रभ की जीत और श्रुतशर्मा को बंधा हुआ देखकर राक्षस प्रसन्न हुए और देवता खिन्न। तब देवताओं ने शिवजी की स्तुति की और कहा, "भगवान आपकी प्रतिज्ञा को कौन भंग कर सकता है ? किंतु हमने भी इस श्रुतशर्मा से जो प्रतिज्ञा की है, कृपया इसे भी पूरा कीजिये।" शिवजी के कहने से श्रुतशर्मा सूर्यप्रभ के चरणों पर आकर पड़ा। शिवजी ने दोनों के बीच संधि करा दी। उन्होंने सूर्यप्रभ को सिंहासन के दक्षिण भाग का और श्रुतशर्मा को उत्तर भाग का चक्रवर्ती बनाया और सूर्यप्रभ से बोले, "हे पुत्र ! तुम कुछ ही दिनों में समस्त आकाशचारियों तथा किंनरादिकों के साम्राज्य को प्राप्त करोगे और इससे चौगुना ऐश्वर्य तुम्हें मिलेगा। दोनों पक्षों के जितने भी वीर इस युद्ध में मारे गये हैं, वे सभी जी उठेंगे।" ऐसा कहकर भगवान शिव वहां से अंतर्धान हो गये। तब रण में मरे हुए योद्धा इस प्रकार उठ खड़े हुए मानों सोते से उठे हों।

शिवजी के अंतर्धान हो जाने पर सूर्यप्रभ एक बडे मैदान में जाकर स्वयं बैठ गया और अर्धभाग में श्रुतशर्मा को बैठाया। सूर्यप्रभ के मंत्री, श्रुतशर्मा के मंत्री तथा अन्य ैत्य और विद्याधर भी यथोचित स्थानों पर बैठे। उस समय सातों पातालों

के स्वामी, दैत्य-दानवों के स्वामी; प्रह्लाद आदि, लोकपाल, बृहस्पति, इंद्र, सुमेरु, सुवासकुमार, कश्यप आदि; तथा सूर्यप्रभ की सब रानियां और विद्याधरों के सब राजा उपस्थित थे। इंद्र ने देवताओं और राक्षसों के पारस्परिक मेल की उपयोगिता पर उपदेश दिया, जिसे सुनकर दोनों पक्षों ने सदा मेल से रहने का वचन दिया। इसके बाद शिवजी की आज्ञा से सुमेरु ने अपनी कन्या कामचूड़ामणि का विवाह सूर्यप्रभ के साथ कर दिया। सुमेरु ने अनेक अमूल्य रत्न, ऐरावत से उत्पन्न श्रेष्ठ हाथी आदि सूर्यप्रभ को दिये। इस विवाह में पार्वतीजी ने दिव्य रत्नों की एक माला सूर्यप्रभ को दी, जिसके पहिनने से भूख-प्यास तथा मृत्यु की बाधा न हो तथा एकावली नाम की दूसरी माला दी, जिससे सदा युवावस्था बनी रहे। विवाह संपन्न हो जाने पर सुमेरु ने सभी सुरों, असुरों, विद्याधरों तथा देवमाताओं से निवेदन किया, "आप आज मेरे ही घर भोजन करें।" पहले सब लोग सुमेरु के घर भोजन के लिए राजी नहीं हुए। इतने में शिवजी का वाहन नंदी वहां आया और सबसे कहने लगा, "भगवान शिव की वह इच्छा है कि सुमेरु के यहां भोजन किया जाय। इससे आप सबको शाश्वत तृप्ति प्राप्त होगी।" यह सुनकर सबने सुमेरु के यहां भोजन किया। फिर सब लोग अपने-अपने स्थान को चले गये। सूर्यप्रभ ने भी अपनी रानियों के साथ वह रात्रि सुमेरु के तपोवन में बिताई। अगले दिन सुषेण नाम का विद्याधरों का दूत सूर्यप्रभ के पास आकर कहने लगा, "मुझे समस्त विद्याधरों ने आपके पास यह सूचित करने के लिए भेजा है कि आज से तीसरे दिन आपका ऋषभ पर्वत पर अभिषेक होगा। अतः आप सबको निमंत्रण भिजवा दें तथा अभिषेक की तैयारी करें।" सूर्यप्रभ ने दूत से कहा, "तुम मेरी ओर से विद्याधरों से कह देना कि तैयारी तो आप लोग करलें, निमंत्रण मैं भिजवा दूंगा।" इसके बाद सूर्यप्रभ ने अपने मंत्रियों को अभिषेक महोत्सव में सम्मिलित होने के लिए निमंत्रण देने भेजा और शिवजी को निमंत्रण देने वह स्वयं गया। शिवजी ने उससे कहा, "अरे पुत्र! तुमने यहां आने का कष्ट क्यों किया? वहीं से मुझे क्यों न स्मरण कर लिया? मैं अवश्य सम्मिलित होऊंगा।" और एक गण को बुलाकर कहा, "जाओ, इन्हें ऋषभ पर्वत पर ले जाओ!" शिव की आज्ञा से गण ने सूर्यप्रभ को ऋषभ पर्वत पर पहुंचा दिया। वहां सूर्यप्रभ के सब मंत्री, रानियां, देवता, दैत्य, महर्षि, श्रुतशर्मा, सुवासकुमार और सुमेरु आदि आये। पार्वती-सहित शिवजी भी इस अभिषेक में सम्मिलित हुए। शिवजी की आज्ञा से ऋषियों ने सूर्यप्रभ को

सिंहासन पर बैठाया। शांति और मंगल पाठ हुआ। मयासुर ने उसके मस्तक पर मुकुट बांधा, महर्षियों ने राज्याभिषेक किया और कामचूड़ामणि को पटरानी बनाया।

अभिषेक के बाद सब लोग अपनें-अपने स्थान को चले गये। सूर्यप्रभ ने राज्य का उत्तर भाग श्रुतशर्मा को दे दिया। शिवजी के प्रसाद से उसने अनेक विद्याधरियों के साथ विवाह किया। इस प्रकार वह विद्याधरों का चक्रवर्ती बन गया।

विद्याधरों का राजा वज्रप्रभ वत्सराज के सामने यह कथा कहकर और प्रणाम करके आकाश मार्ग से चला गया। उसके चले जाने पर नरवाहनदत्त अपनी रानी मदनमंचुका के साथ विद्याधरों के चक्रवर्ती पद की प्राप्ति की राह देखने लगा।

# नवां खंड

## : १ :

## अलंकारवती

एक बार नरवाहनदत्त शिकार खेलने गया। अपनी सेना को छोड़कर वह गोमुख के साथ वन की शोभा देखने के लिए दूर चला गया। घूमते-घूमते उसने दूर से आते हुए मधुर वीणा के स्वर को सुना। उस स्वर का अनुसरण करता हुआ वह एक शिवालय में जा पहुंचा। वहां उसने वीणा बजाती हुई तथा अनेक श्रेष्ठ कन्याओं से घिरी हुई एक देवकन्या को देखा। उसके रूप को देखकर राजा का हृदय इस प्रकार उमड़ पड़ा, जिस प्रकार पूर्ण चंद्र को देखकर समुद्र उमड़ पड़ता है। राजा को देखकर वह कन्या भी वीणा बजाना भूल गई और सरस दृष्टि से उसे देखने लगी। यह देखकर गोमुख ने उसकी सखियों से पूछा, "यह सुंदरी कौन है और किसकी पुत्री है ?"

उसी समय एक प्रौढ़ा विद्याधरी आकाश से उतरी और उसने उस कन्या को आशीर्वाद दिया कि तुम सब विद्याधरों के स्वामी की पत्नी बनो। उस प्रौढ़ा विद्याधरी से नरवाहनदत्त ने पूछा, "देवि ! यह कन्या कौन है और तुम्हारी क्या लगती है ?" उस विद्याधरी ने उत्तर दिया, "हिमालय में श्री सुंदरपुर नाम का एक नगर है। वहां अलंकारशील नाम का एक विद्याधरों का स्वामी है। उसकी कांचनप्रभा नाम की रानी है। उससे अलंकारशील के एक पुत्र उत्पन्न हुआ। पार्वती ने उससे स्वप्न में कहा कि तुम्हारा यह पुत्र धर्मपरायण होगा। इसलिए राजा ने उसका नाम धर्मशील रखा। समस्त विद्या प्राप्त कर चुकने पर अलंकारशील ने उसे युवराज बना दिया। उसके बाद रानी कांचनप्रभा के एक पुत्री उत्पन्न हुई, जिसका नाम अलंकारवती रखा गया। धर्मशील बड़ा शांत और धार्मिक

प्रकृति का नवयुवक था। एक दिन एकांत में उसने अपने पिता से कहा, 'ये क्षणभंगुर भोग मुझे पसंद नहीं हैं। मैं तो वन में जाकर तप करना चाहता हूं।' धर्मशील की इस वैराग्य-युक्त वाणी को सुनकर अलंकार बोला, 'बेटा, यह त्याग का समय नहीं है। तुम विवाह करके राज्य संभालो। यदि तुम युवा होकर ही बन जाना चाहते हो, तो मैं बूढ़ा होकर इस राज्य का क्या करूंगा ? मैं भी वन में चला जाऊंगा।' ऐसा कहकर वह मृत्यलोक में आया और उसने ब्राह्मणों तथा दरिद्रों को बहुत दान किया। फिर अपने नगर में आकर अपनी पत्नी कांचनप्रभा से बोला, 'तुम मेरी आज्ञा से अलंकारवती का पालन करो। मैं आज के दिन आकर इसका विवाह नरवाहनदत्त के साथ कर जाऊंगा। वही हमारे राज्य का पालन करेगा।'

"इस प्रकार अपनी रानी को समझाकर अलंकारशील बन को चला गया और कांचनप्रभा अलंकारवती के साथ घर पर ही रहने लगी। एक बार प्रज्ञप्ति नाम की विद्याधरी ने अलंकारवती से कहा, 'काश्मीर में स्वयंभू नाम के प्रदेशों जाकर शंभु का पूजन करो, तो तुम्हें विद्याधरों का चक्रवर्ती नरवाहनदत्त पति रूप में मिलेगा।' उसने अपनी माता के साथ वहां जाकर शंभु का पूजन किया। वहां पूजन करके वे माता-पुत्री पुनः अपने घर आ गईं। मैं इसकी माता कांचनप्रभा हूं और यह मेरी पुत्री अलंकारवती है। आज यह मुझसे कहे बिना ही इस शिवालय में आ गई। विद्या के द्वारा इसका और तुम्हारा एक साथ ही इस मंदिर में आना जानकर मैं भी चली आई। तुम दोनों के विवाह के लिए कल शुभ लग्न है। इसलिए हे पुत्र ! तुम आज ही अपनी कौशांबी नगरी में पहुंच जाओ। हम दोनों भी वहां पहुंचती हैं। कल प्रातःकाल इसके पिता तपोवन से आकर तुम दोनों का विवाह करेंगे।"

कांचनप्रभा के ऐसा कहने पर अलंकारवती तथा नरवाहनदत्त दोनों की विचित्र दशा हो गई। आंखों में आंसू आ गये और उन्हें रात्रि मात्र का वियोग भी असह्य प्रतीत होने लगा। यह स्थिति देखकर कांचनप्रभा उनसे बोली, "एक रात्रि का वियोग भी तुम नहीं सह सकते ? धीर व्यक्ति अनिश्चित काल तक सहन करते हैं।" ऐसा कहकर उसने उन दोनों को राम और सीता की कथा सुनाई। फिर वह अलंकारवती के साथ आकाश मार्ग से अपने स्थान को चली गई। नरवाहनदत्त भी कौशांबी को चला गया।

रात्रि को नरवाहनदत्त को नींद नहीं आई। तब गोमुख ने उसके मनोविनोद

के लिए एक कथा सुनाई :

दक्षिणापथ में एक अधिष्ठान नाम का नगर था। वहां पृथिरूप नाम का अत्यंत सुंदर राजा राज्य करता था। एक बार दो साधु उसके पास आये और कहने लगे, "हम समस्त पृथ्वी पर घूमे हैं, किंतु हमने तुम्हारे समान कोई सुंदर पुरुष नहीं देखा। हां स्त्रियों में मुक्तिपुर द्वीप में रूपधर राजा की पुत्री रूपलता ही तुम्हारे समान सुंदर है। यदि तुम दोनों का संयोग हो जाये, तो बड़ा अच्छा हो।" इस प्रकार साधुओं के वचनों को सुनकर राजा ने चित्रकार कुमारदत्त को बुलवाया और कहा, "तुम मेरा चित्र बनाकर इन साधुओं के साथ मुक्तिपुर द्वीप में जाओ और वहां के राजा रूपधर की पुत्री रूपलता को किसी युक्ति से दिखा दो। यह भी पता लगाओ कि वह राजा अपनी पुत्री को मुझे देना चाहता है या नहीं। और हां, एक काम और करना, रूपलता का चित्र भी बनाकर ले आना।"

इस प्रकार समझाकर उसने कुमारदत्त को साधुओं के साथ भेज दिया। पांच दिन के बाद वे मुक्तिपुर द्वीप में पहुंचे। वहां चित्रकार ने जाकर यह प्रसिद्ध कर दिया कि मेरे समान श्रेष्ठ चित्रकार पृथ्वी पर नहीं है। यह खबर पाकर राजा रूपधर ने उसे अपने पास बुलवाया। चित्रकार बोला, "राजन ! मैं समस्त भूमंडल में घूमा हूं। आप आज मेरी चतुरता देखिये और आज्ञा दीजिये कि मैं किस देवता, मनुष्य अथवा दानव का चित्र बनाकर आपको दिखाऊं।" तब राजा ने रूपलता को उसके सामने लाकर कहा, "मेरी इस पुत्री का चित्र उतारो।" कुमारदत्त ने राजा की आज्ञा का तुरंत पालन किया। उस चित्र को देखकर राजा चकित रह गया। उसने पूछा, "क्या तुमने भूमंडल में घूमते हुए मेरी पुत्री के समान कोई सुंदर स्त्री अथवा पुरुष देखा है ?" चित्रकार ने कहा, "राजन् ! पृथ्वी भर में एक राजा पृथिरूप ही इसके समान सुंदर है, अन्य कोई नहीं। उसका चित्र मेरे पास है।" यह कहकर उसने पृथिरूप का चित्र रूपधर को दिखा दिया। उसे देखकर रूपधर बड़ा विस्मित हुआ और वह कन्या भी उस चित्र पर मुग्ध हो गई। फिर रूपधर ने कुमारदत्त से कहा, "तुम मेरी पुत्री का चित्र ले जाकर पृथिरूप को दिखाओ और कहो कि यदि उन्हें रुचे, तो मेरी पुत्री के साथ विवाह करलें।" उसने अपना एक दूत भी चित्रकार के साथ भेजा। वह दूत पृथिरूप के पास पहुंचा और उसने राजा के सामने भेंट रखकर रूपधर का संदेश कहा। कुमारदत्त ने उसको रूपलता का चित्र भी दिखाया। उस चित्र को देखकर राजा की आंखें उसी प्रकार तृप्त नहीं

हुई, जिस प्रकार चकोर चंद्रमा को देखकर तृप्त नहीं होता। राजा ने दूत से कहा, "मुझे रूपधर का वचन स्वीकार है।" फिर पृथिरूप ने उस चित्रकार तथा दूत को धन देकर संतुष्ट किया और अगले दिन ही शुभ लग्न विचारकर रूपधर के दूत के साथ मुक्तिपुर द्वीप को चल पड़ा। मार्ग में भिल्लों की एक बड़ी भारी सेना ने उस पर आक्रमण कर दिया, जिससे उसके पचास सैनिक मारे गये। यह सुनकर पृथिरूप भिल्लों पर इस प्रकार टूट पड़ा, जिस प्रकार कौरवों की सेना पर अर्जुन टूट पड़ा था। इस युद्ध में भिल्लों का स्वामी मारा गया और उनकी सेना भी भाग गई। विजयी होकर राजा ने अपनी सेना को एक दिन सरसी नदी के किनारे पर विश्राम करने दिया। कुछ दिन जलमार्ग से और कुछ दिन स्थलमार्ग से चलता हुआ वह आठ दिनों में मुक्तिपुर द्वीप में पहुंचा। रूपधर ने प्रसन्न होकर उसका स्वागत किया, दोनों ने एक-दूसरे का प्रगाढ़ आलिंगन किया। फिर रूपधर ने अपनी पुत्री रूपलता का विवाह उसके साथ कर दिया। दस दिन तक वे दोनों बड़े सुख के साथ वहां रहे। ग्यारहवें दिन राजा पृथ्वीरूप रूपलता के साथ अपने राज्य में लौट आया। लौटने पर उसने राज्य में बड़ा भारी उत्सव मनाया।

इस कथा को सुनाकर गोमुख ने नरवाहनदत्त से कहा, "धीर व्यक्ति इस प्रकार चिरकालीन विरह को भी सहन कर लेते हैं। क्या आप केवल एक रात्रि का विरह भी नहीं सहन कर सकते? प्रातःकाल ही आपका विवाह अलंकारवती से हो जायेगा।" इस प्रकार गोमुख तथा अन्य परिजनों से बातचीत करते हुए तथा कथा सुनते हुए नरवाहनदत्त ने वह रात्रि बिताई।

सवेरा होते ही राजा ने कांचनप्रभा को अपने पति अलंकारशील, पुत्र धर्मशील और पुत्री अलंकारवती के साथ आकाश से उतरते हुए देखा। उसने उन सबका आदर-सत्कार किया। इसी समय वत्सराज उदयन भी अपनी पत्नी तथा मंत्रियों-सहित वहां आगया। अलंकारशील ने राजा उदयन से अपनी पुत्री का समस्त वृत्तांत कह सुनाया। राजा उदयन ने भी अलंकारशील की पुत्री और अपने पुत्र के इस विवाह का समर्थन किया। तब अलंकारशील ने अपनी विद्या के प्रभाव से हाथ में जल लेकर उस आंगन की भूमि को सींचा, जिससे वहां एकदम स्वर्णमयी तथा दिव्य वस्त्रों से आच्छन्न वेदी और नाना रत्नों से अलंकृत मंडप प्रकट हो गये। उस दिव्य वेदी पर अलंकारवती का नरवाहनदत्त के साथ विवाह कर दिया गया। विवाह के बाद अलंकारशील सब लोगों का यथोचित सम्मान करके अपनी पत्नी

तथा पुत्र के साथ आकाश मार्ग से अपने स्थान को चला गया। नरवाहनदत्त भी अनेक गुणों से युक्त अलंकारवती को पाकर इस प्रकार सम्मान का पात्र हुआ, जिस प्रकार कोई रसिक कवि अलंकार-युक्त वाणी को पाकर सम्मानित होता है।

: २ :

## दिव्य नारियों का दुराचरण

एक दिन नरवाहनदत्त अपनी पत्नी अलंकारवती के साथ राजमहल में बैठा था। इतने में एक भयभीत स्त्री अचानक अलंकारवती के पास आकर उसके चरणों में गिर पड़ी और बोली, "देवि ! मेरी रक्षा करो। एक ब्राह्मण मुझे मारने के लिए बाहर खड़ा है।" रानी ने कहा, "तुम डरो मत और अपना वृत्तांत कहो।" वह बोली, "मैं यहीं के बलसेन क्षत्रिय की पुत्री हूं। मेरा नाम अशोकमाला है। रूप के लोभी इस कुरूप हठशर्मा ब्राह्मण ने मेरे पिता से मुझे मांगा था। मैंने अपने पिता से तभी कह दिया था कि मैं इस कुरूप के साथ कभी नहीं जाऊंगी। यदि आपने जबरदस्ती भेज भी दिया, तो मैं इसे छोड़कर किसी दूसरे के साथ चली जाऊंगी। किंतु यह हठशर्मा जब मेरे लिए अपने प्राण तक देने के लिए तैयार हो गया, तो मेरे पिता ने ब्रह्महत्या से डरकर मुझे इस ब्राह्मण को दे दिया। इसने मेरी इच्छा के विरुद्ध मुझसे विवाह कर लिया। जब यह मुझे अपने घर ले आया, तो मैं इसे छोड़कर एक-एक करके तीन क्षत्रियों के घर गई। लेकिन इस दुष्ट ने उन सबों के घरों में आग लगा दी। तब मैं इस दुष्ट ब्राह्मण से डरती हुई यहीं आपके नौकर वीरशर्मा की दासी बन गई। वीरशर्मा को अपने से बलवान पाकर यह मेरे प्रति निराश हो गया और मुझे मारने का अवसर ढूंढ़ने लगा। आज मैं दुर्भाग्यवश बाहर निकल आई। यह दुष्ट तलवार हाथ में लेकर ज्योंही मुझे मारने को दौड़ा, त्योंही मैं दौड़कर आपकी शरण में आ गई हूं। वह मेरी प्रतीक्षा में बाहर खड़ा होगा।"

यह सुनकर नरवाहनदत्त ने हठशर्मा को बुलवाया। क्रोध में भरकर वह उससे

बोला, "हे दुष्ट ब्राह्मण। तुम स्त्री को मारते हो और उसके लिए दूसरों के घर जलाते हो?" हठशर्मा बोला, "हे राजन! यह मेरी धर्मपत्नी है, मुझे छोड़कर यह दूसरे के पास चली गई। मैं इसे कैसे बरदाश्त कर सकता हूं?" ब्राह्मण के ऐसा कहने पर अशोकमाला बोली, "हे लोकपालो! तुम मेरे साथी हो, बताओ, इसने मेरे साथ जबरदस्ती विवाह किया है या मेरी इच्छा से? क्या मैंने उसी समय नहीं कह दिया था कि मैं इसके घर नहीं रहूंगी?" लोकपालों ने अशोकमाला की साक्षी दी और कहा कि अशोकमाला सत्य कहती है। इसी समय आकाशवाणी हुई कि कि यह अशोकमाला मानुषी नहीं हैं वरन विद्याधरी है। इसका वृत्तांत सुनो:

"अशोककर नाम का एक वीर विद्याधरों का स्वामी था। उसके कोई पुत्र न था, यही अशोकमाला एकमात्र उसकी संतान थी। जब यह युवती हुई, तो इसके पिता ने इसकी शादी करनी चाही, किंतु रूप के अभिमान से इसने किसीको भी अपना पति स्वीकार न किया। तब इसके पिता इससे कुपित हो गये और इसे शाप दिया कि तू इसी नाम से मानुषी बन जा। एक कुरूप ब्राह्मण तुझसे जबरदस्ती विवाह करेगा। उसे छोड़कर तू उसके भय से क्रमशः तीन पुरुषों को पति बनायेगी। फिर भी वह तेरा पीछा न छोड़ेगा; तब तू दासी बनेगी। फिर वह तुझे मारने के लिए दौड़ेगा, तू दौड़कर राज भवन में प्रवेश करेगी—तभी तेरे शाप का अंत होगा। इस प्रकार यह शाप से मानुषी बनी है। आज इसके शाप का अंत हो गया है, अब यह फिर विद्याधरी बनकर अपने पिता के घर जायगी और अपने पिता के द्वारा बताये हुए पति से विवाह करेगी।"

ज्योंही यह आकाशवाणी बंद हुई, त्योंही अशोकमाला जीवन-रहित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी। अलंकारवती और नरवाहनदत्त बड़े दुखी हुए। परंतु वह हठशर्मा ब्राह्मण अकस्मात हर्ष से भर उठा। जब राजा ने उससे इसका कारण पूछा, तो वह बोला, "मुझे अपने पूर्वजन्म का स्मरण हो आया है। मैं पहले जन्म में हिमालय पर्वत में स्थित मदनपुर नाम के नगर के विद्याधर राजा पुलंबभुज का पुत्र था। मेरा नाम स्थूलभुज था। जब मैं जवान हुआ, तो सुरभिवत्स नाम का विद्याधर-राज अपनी कन्या-सहित हमारे घर आया और उसने मेरे पिता से कहा कि तुम मेरी पुत्री के साथ अपने पुत्र का विवाह करलो। मेरे पिता ने मुझे बुलाकर उस कन्या के साथ विवाह करने को कहा। मैंने अपने रूप से गर्वित होकर कहा, 'पिताजी! मैं इसके साथ विवाह नहीं करूंगा, क्योंकि यह रूप में मध्यम कोटि

की है।' पिता ने उत्तर दिया, 'यह अच्छे वंश में उत्पन्न हुई है। इसके पिता ने स्वयं विवाह की प्रार्थना की है और मैंने उन्हें अपनी स्वीकृति भी दे दी है। अतः तुम इसे स्वीकार करलो।' पिताजी के बार-बार कहने पर भी जब मैंने उनकी बात नहीं मानी, तो वह कुपित हो गये और उन्होंने मुझे शाप दिया कि तुम मनुष्य योनि में उत्पन्न होकर अत्यंत विकृत आकारवाले होगे और शाप से पतित हुई अशोकमाला को पत्नी रूप में पाओगे, लेकिन उसके द्वारा छोड़े जाकर तुम अत्यंत कष्ट पाओगे। वह किसी दूसरे व्यक्ति में आसक्त होगी, इससे दुखित तुम अग्निदाहादि निकृष्ट पाप भी करोगे। जब पिताजी ने मुझे यह शाप दिया, तो सुरभिदत्ता ने रोते हुए मेरे पिताजी कहा कि मुझे भी यह शाप दो कि मैं इनके साथ रहूं। मैं नहीं चाहती कि मेरे कारण मेरे पति को ऐसे कष्ट उठाने पड़ें। तब मेरे पिता पुलंबभुज ने उससे कहा, 'जब अशोकमाला के शाप का अंत होगा, तभी यह भी अपनी जाति को स्मरण करके इस शाप से मुक्त हो जायेगा और फिर यहां आकर तुम से विवाह करेगा।' ऐसा कहने पर उस साध्वी स्त्री को कुछ तसल्ली हुई। राजन्! मैं वही स्थूलभुज हूं।" यह कहकर उसने विद्याधर का शरीर धारण कर लिया और अशोकमाला के शरीर को विद्या के प्रभाव से गंगा में डाल दिया। फिर भावी चक्रवर्ती नरवाहनदत्त को नमस्कार करके अपनी कार्य-सिद्धि के लिए आकाश में उड़ गया।

इस कथा को सुनकर सब बड़े चकित हुए। तब गोमुख ने एक कथा सुनाई: शूरपुर नगर में महावराह नाम का एक राजा था। उसकी पत्नी का नाम पद्मरति था। गौरी की आराधना से उसके अनंगरति नाम की कन्या उत्पन्न हुई। वह उसकी एकमात्र संतान थी। युवती होने पर अपने रूप का अभिमान करके वह किसीको भी अपना पति नहीं बनाना चाहती थी। उसने यह निश्चय किया कि मैं उसी आदमी से विवाह करूंगी, जो शूरवीर हो, सुरूप हो और किसी एक विज्ञान को पूर्णतः जानता हो। तब वहां दक्षिणापथ के चार वीर आये। उन्होंने अनंगरति का वृत्तांत सुन रखा था। वे उन सभी गुणों से युक्त थे, जिन्हें अनंगरति चाहती थी। उनमें से एक पंचपट्टिक नाम का शूद्र था, जो पांच जोड़े वस्त्र प्रति दिन बुनता था। उन पांच जोड़ों में से एक वह ब्राह्मण को दे देता, दूसरा जोड़ा ईश्वर के निमित्त था, तीसरे को वह स्वयं धारण करता, चौथा जोड़ा वह उस स्त्री को देता, जो उसकी पत्नी बनती और पांचवें को बेचकर वह अपना निर्वाह करता। दूसरा भाषाज्ञ

नाम का वैश्य था, जो पशु-पक्षियों की बोली जानता था और तीसरा व्यक्ति खड्गधर नाम का क्षत्रिय था, जिसका युद्ध ही जीवन था। चौथा व्यक्ति जीवदत्त नाम का ब्राह्मण था। वह मरी हुई स्त्री को जीवित कर देता था। महावराह ने उन सबको अनंगरति के सामने पेश किया और प्रत्येक ने अपने गुणों का परिचय दिया। किंतु अनंगरति ने उनमें से किसीको भी पसंद नहीं किया। अगले दिन वे चारों वीर नगर में घूमने निकले। तभी पद्मकवल नाम का मत्त हाथी बंधन को तोड़कर हस्तिशाला से बाहर निकल भागा। वह हाथी उन वीरों पर झपटा, वे वीर भी शस्त्र उठाकर उसकी ओर दौड़े। खड्गधर ने एक ही प्रहार से उसकी सूंड को काट डाला और चतुराई दिखाकर उसके पैरों के बीच से निकल-कर दूसरा प्रहार उस हाथी की पीठ पर किया। तीसरे प्रहार में उसके दो पैरों को काट डाला। तब वह हाथी चिंघाड़ता हुआ भूमि पर गिर पड़ा और मर गया। खड्गधर के इस पराक्रम को देखकर सब लोग चकित हुए और राजा महावराह भी उससे बड़ा प्रभावित हुआ। अगले दिन राजा हाथी पर चढ़कर शिकार खेलने गया। खड्गधर आदि चारों वीर उसके पीछे-पीछे चले। वहां हाथी के घंटे की आवाज़ सुनकर अनेक शेरों ने कुपित होकर राजा पर आक्रमण कर दिया। खड्ग-धर ने एक शेर को तीक्ष्ण तलवार के प्रहार ने टुकड़े-टुकड़े कर दिया और दूसरे शेर को पैर से दबाकर बांयें हाथ से चीर दिया। भाषाज्ञ, जीवदत्त और पंचपट्टिक ने भी एक-एक शेर को उसी प्रकार मार डाला। राजा उन चारों से अत्यंत प्रसन्न हुआ। उसने घर आकर अनंगरति के सामने उन चारों की वीरता का बखान किया और उन चारों में से किसी एक को छांटकर अपना पति बनाने के लिए कहा। अनंगरति ने पिता को उत्तर दिया, "आप किसी ज्योतिषी को बुलाकर तो पूछिये कि वह क्या कहता है?" तब राजा ने ज्योतिषी को बुलाकर उन चारों वीरों के सामने पूछा। ज्योतिषी ने कहा, "इन चारों में से कोई भी तुम्हारी पुत्री के अनु-कूल नहीं है। यह शाप से पतित विद्याधरी है। आप तीन महीने तक प्रतीक्षा कीजिये, इस बीच में यदि यह स्वर्गलोक को न चली जाय, तब और बात संभव हो सकती है।" यह सुनकर वे वीर तीन महीने तक वहीं प्रतीक्षा करते रहे। तीन महीने बीत जाने पर राजा ने ज्योतिषियों और कन्या को बुलाकर पूछा, "तीन महीने तो बीत चुके हैं। अतः क्या करना चाहिए?" तभी अनंगरति ने अपनी जाति का स्मरण करके अपने आंचल से अपना मुंह ढंक लिया और जब राजा ने वस्त्र उठा-

कर देखा, तो वह मर चुकी थी। यह देखकर राजा और रानी भी मूच्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। तब राजा ने जीवदत्त से कहा, "तुमने प्रतिज्ञा की थी कि मैं मरी हुई स्त्री को जीवित कर दूंगा। तुम इस कन्या को जीवित कर दो, मैं इसका विवाह तुम्हारे साथ कर दूंगा।" जीवदत्त ने अपनी विद्या का प्रयोग किया, किंतु वह जीवित न हुई। यह देखकर जीवदत्त बहुत दुखी हुआ और अपनी विद्या को निष्फल देखकर अपना सिर काटने को उद्यत हो गया। तभी आकाशवाणी हुई: "हे जीवदत्त! मरने का साहस न करो। यह अनंगप्रभा नाम की विद्याधरी थी। अपने पिता के शाप से यह मनुष्य योनि को प्राप्त हुई थी। आज इसके शाप का अंत हो गया और यह मानव शरीर छोड़कर अपने लोक को चली गई। यदि तुम विंध्यवासिनी की आराधना करो, तो उसके प्रसाद से यह विद्याधरी तुम्हें प्राप्त हो सकती है।" इस आकाशवाणी को सुनकर राजा ने पत्नी-सहित शोक करना छोड़ दिया और पुत्री का दाह-संस्कार किया। वे तीनों वीर भी अपने-अपने स्थान को चले गये। जीवदत्त ने जाकर विंध्यवासिनी की आराधना की और उसने स्वप्न में उससे कहा,"मैं तुमसे संतुष्ट हूं, उठो, जो कुछ मैं तुमसे कहती हूं, उसे सुनो। हिमालय में वीरपुर नाम का एक नगर है, वहां विद्याधरों का राजा समर राज्य करता है। उसके अनंगवती पत्नी से अनंगप्रभा नाम की पुत्री उत्पन्न हुई। रूप और यौवन से संपन्न होकर उसने किसी भी पति को पसंद न किया। तब उसके अत्यंत हठ से अप्रसन्न होकर उसके पिता ने उसे शाप दिया कि तुम मनुष्य योनि में जाओ, वहां भी तुम्हें पति का सुख न मिलेगा। सोलह वर्ष की अवस्था तक कन्या रहकर तुम फिर यहीं चली आओगी। फिर एक कुरूप खड्गधारी सिद्ध पुरुष तेरा पति होगा, वह तेरी इच्छा के विरुद्ध भी तुझे मर्त्यलोक में ले जायगा। वहां उससे तेरा वियोग हो जायगा। उस खड्गसिद्ध ने पूर्वजन्म में आठ पर-स्त्रियों का अपहरण किया था, अतः वह आठ जन्मों में भोगने योग्य दुख भोगेगा और तू भी एक जन्म में ही आठ जन्मों का दुख पायेगी तथा विद्याधरी विद्या से भ्रष्ट होकर मानव योनि को प्राप्त होगी। वहां तू बहुत से मनुष्यों को अपना पति बनायेगी। अंत में जिस मदनप्रभ नाम के विद्याधर ने तुझे मांगा था, वही मनुष्य बनकर तेरा पति होगा। तभी तेरे शाप की समाप्ति होगी और मदनप्रभ भी शाप-मुक्त होकर अपने लोक को लौट आयेगा। इस प्रकार पिता से शापित होकर अनंगप्रभा भूमि में अनंगरति के नाम से उत्पन्न हुई है। इसलिए तुम वीरपुर में

जाकर उसके पिता को युद्ध में जीतकर उसे प्राप्त करो। यह तलवार लो। इसके हाथ में लेने पर तुम्हारी आकाश में गति होगी और तुम अजेय हो जाओगे।"

यह कहकर तथा उसको तलवार देकर देवी अदृश्य हो गई। जब जीवदत्त जागा और अपने हाथ में तलवार देखी, तो बड़ा प्रसन्न हुआ। उस तलवार को लेकर वह आकाश मार्ग से उड़कर वीरपुर के राजा समर के पास पहुंचा। उसे युद्ध में जीतकर अनंगप्रभा से उसने विवाह कर लिया। कुछ दिन तक वहां दिव्य भोगों को भोगकर उसने कहा, "मैं धरती पर जाने को बहुत उत्सुक हूं। अपनी जन्म-भूमि कैसी भी हो, बहुत प्रिय होती है।" लेकिन अनंगप्रभा की इच्छा न होने पर भी वह उसे गोदी में भरकर आकाश से मर्त्यलोक में एक रमणीक पर्वत पर उतर आया। अनंगप्रभा के कहने से उसने वहां विश्राम किया और भाग्य से प्रेरित होकर उससे कहा, "कोई मधुर गाना गाओ।" वह गाने लगी और जीवदत्त सो गया। उसी समय राजा हरिवर वहां शिकार खेलने आया। अनंगप्रभा उसके रूप पर मोहित हो गई। अनंगप्रभा चाहती थी कि मैं हरिवर को लेकर आकाश में उड़ जाऊं। किंतु पति के साथ द्रोह करने के पाप के कारण वह अपनी विद्या को भूल गई और पिता के शाप को याद करके वह उदास हो गई। अतः वह हरिवर के रथ पर बैठकर उसके नगर में आ गई और वे दोनों सुखपूर्वक रहने लगे। जब जीवदत्त जागा, तो उसने खड्ग और अनंगप्रभा दोनों को अपने पास नहीं पाया। उसने सारे वन में इन्हें ढूंढा, किंतु वे न मिले। इस प्रकार वह घूमता हुआ एक दिन एक गांव में एक धनवान ब्राह्मण के घर पहुंचा। वहां उसकी पतिव्रता स्त्री ने उसका समस्त वृत्तांत जान लिया और उसका सत्कार किया। जीवदत्त ने उस ब्राह्मणी से पूछा, "देवि! तुम मेरा वृत्तांत कैसे जानती हो? और यह भी बताओ कि मेरी पत्नी अनंगप्रभा और मेरा खड्ग दोनों कहां गये?" तब उस पतिव्रता ब्राह्मणी ने उत्तर दिया, "मैंने कभी स्वप्न में भी पर-पुरुष की कामना नहीं की, मैं दूसरे पुरुषों को अपने भाई तथा पुत्रों के समान देखती हूं। मेरे घर से कभी कोई अतिथि भूखा नहीं गया। यही कारण है कि मैं भूत, वर्तमान और भविष्य की बातें जानती हूं। तुम्हारी पत्नी अनंगप्रभा को राजा हरिवर ले गया है। वह कुलटा है। अतः उसे भी छोड़कर वह दूसरे के साथ चली जायेगी। तेरा उसके प्रति मोह व्यर्थ है।" जीवदत्त बोला, "देवि! तुम्हारा कथन सत्य है, तुम्हारे उपदेशामृत से मेरा मोह शांत हो गया। मुझे यह दुख पूर्वजन्म के पापों के

कारण प्राप्त हुआ है। उसे दूर करने मैं तीर्थ-यात्रा के लिए जाऊंगा।"

वह अनेक तीर्थों में घूमता हुआ विंध्यवासिनी के मंदिर में गया। वहां उसने निराहार होकर तप किया। भगवती विंध्यवासिनी उससे प्रसन्न हुईं और बोलीं, "मेरे पंचभूत, चतुर्वक्र, महोदरमुख तथा विकटवदन नाम के चार गण हैं। तुम चौथे हो। तुम चारों एक बार गंगा के किनारे विहार करने गये थे। वहां तुमने स्नान करती हुई एक मुनि-कन्या को देखा। उसका नाम चापलेखा था और वह कपिलजट नाम के मुनि की पुत्री थी। तुम सबने काम पीड़ित होकर उस कन्या से प्रार्थना की। उसने कहा कि मैं कन्या हूं, मुझसे दूर रहो। वे तीनों तो चुप खड़े रहे, किंतु तुमने उसे बलात पकड़ लिया। वह 'पिताजी, रक्षा करो! रक्षा करो!!' कहकर रो पड़ी। उसका चिल्लाना सुनकर समीप में स्थित वह मुनि क्रुद्ध होकर आया। उसे देखकर तुमन उसे छोड़ दिया। उस मुनि ने तुम्हें शाप दिया कि हे पापियो! तुम इसी क्षण मनुष्य योनि में चले जाओ। जब तुम सबने उस मुनि से प्रार्थना की, तो उसने कहा कि तुम्हारे शाप का अंत तब होगा, कि जब राजपुत्री अनंगप्रभा की तुम कामना करोगे और वह मनुष्य योनि को छोड़कर विद्याधर योनि को प्राप्त होगी। किंतु तुम उसके विद्याधरी हो जाने पर भी उसको पुन: हर लाओगे। हे विकटवदन! तब तुम पर बड़ी भारी आपत्ति आयेगी। चिरकाल के बाद देवी की आराधना करके तुम उस शाप से छूटोगे। इस प्रकार उस मुनि के शाप से तुम चारों मानव योनि में उत्पन्न हुए थे। पंचपट्ट, भाषाज्ञ तथा खड्गधर तो अनंगरति के विद्याधर पद को प्राप्त होने पर मेरी शरण में आकर शाप से मुक्त हो गये। तुमने आज मेरी आराधना की है, अत: तुम्हारे शाप का भी अंत हो गया।" ऐसा कहकर भगवती विंध्यवासिनी अंतर्धान हो गईं और जीवदत्त भी शाप से मुक्त होकर फिर भगवती का गण हो गया।

उधर राजा हरिवर को अनंगप्रभा सब रानियों में अधिक प्यारी हो गई। वह अपने मंत्री पर राज्य का समस्त भार सौंपकर दिन-रात उस ही में आसक्त रहने लगा। एक बार उस राजा के पास मध्य देश से लब्धवर नाम का नाट्याचार्य आया। राजा ने उसका वाद्य और उसे नाट्यकौशल देखा और सम्मानित करके अपनी स्त्रियों को नाट्य-शिक्षा देनेके लिए उसे रख लिया। उस लब्धवर ने अनंगप्रभा को नृत्य-क्रिया में अत्यंत प्रवीण कर दिया। इसी बीच अनंगप्रभा नाट्याचार्य से अनुराग करने लगी। कुछ दिन बाद वह स्वर्ण-भूषणादि लेकर पुरुष वेश में नाट्या-

चार्य के साथ चली गई। उसे महल में न पाकर जब राजा हरिवर मरने के लिए उद्यत हुआ, तब उसके मंत्री ने उसे समझाया कि जो स्त्री खड्गधर को छोड़कर तुम्हारे साथ चली आई, वह तुम्हारे साथ कैसे रह सकती थी ? वह क्षण भर अनुराग करनेवाली है। निश्चित ही वह नाट्याचार्य के साथ चली गई है।

मंत्री की यह बात सुनकर राजा हरिवर आश्वस्त हुआ। उधर अनंगप्रभा वियोगपुर नाम के नगर में नाट्याचार्य के साथ कुछ दिन रही। वहां दैववश नाट्याचार्य की सुदर्शन नाम के नवयुवक द्यूतकार से मित्रता होगई। उस सुदर्शन ने शीघ्र ही नाट्याचार्य का समस्त धन जुए में हर लिया। नाट्याचार्य को धनहीन देखकर अनंगप्रभा सुदर्शन के साथ चली गई। नाट्याचार्य भी धन और स्त्री दोनों के हरे जाने से विरक्त होकर गंगातट पर चला गया। कुछ दिन तक अनंगप्रभा सुदर्शन के साथ बड़े सुख से रही। एक दिन रात्रि को चोरों ने सुदर्शन का समस्त धन चुरा लिया। तब धन के अभाव से अनंगप्रभा को दुखित देखकर सुदर्शन बोला, "हिरण्यगुप्त नाम का एक महाधनी मेरा मित्र है। चलो उसके पास से कुछ धन मांग लायें।" दुर्भाग्य का मारा वह सुदर्शन अनंगप्रभा के साथ हिरण्यगुप्त के पास पहुंचा और उससे ऋण मांगा। अनंगप्रभा उसे देखकर और वह अनंगप्रभा को देखकर एक-दूसरे के प्रति अनुरक्त हो गये। उस वणिक ने सुदर्शन से आदरपूर्वक कहा, "आप दोनों आज रात को मेरे यहां रहिये और भोजन कीजिये, प्रातःकाल में धन दे दूंगा।" किंतु उन दोनों के विकृत भाव को ताड़कर सुदर्शन ने कहा, "आज मेरी भोजन करने की इच्छा नहीं है।" यह सुन वह वैश्य बोला, "तुम्हारी पत्नी हमारे घर आज पहली ही बार आई है, इसलिए बिना भोजन किये वह नहीं जा सकती।" यह सुनकर सुदर्शन चुप हो गया और वह वैश्य अनंगप्रभा के साथ अंदर चला गया। वहां वे दोनों आहार-पान आदि में मस्त हो गये। सुदर्शन बाहर बैठा हुआ उनके निकलने की प्रतीक्षा करता रहा। फिर पूछने पर वैश्य के नौकरों ने सुदर्शन से कहा, "तुम्हारी पत्नी तो यहां से चली गई। तुमने उसे जाते हुए नहीं देखा !" जब सुदर्शन ने हठ किया, तो नौकरों ने उसे मार-पीटकर भगा दिया। इस घटना से दुखित होकर सुदर्शन बदरिकाश्रम में तप करने चला गया।

उधर अनंगप्रभा उस वैश्य के समस्त धन की स्वामिनी होगई। कुछ समय पश्चात अधिक व्यय करने के कारण वह वैश्य धनहीन होगया। तब वह व्यापार करने की कामना से स्वर्णभूमि नाम के द्वीप की ओर अनंगप्रभा के साथ चला और

चलते-चलते सागरपुर नामक नगर में पहुंचा। वहां पर सागरवीर नाम के एक धीवरराज से उसकी भेंट हो गई। उसके जहाज में बैठकर वह दूसरे द्वीपों की ओर चला। एक दिन आकाश में भयंकर बादल उमड़ आये और मूसलाधार वर्षा होने लगी। तूफान के तीव्र झकोरों से वह जहाज समुद्र में डबने लगा। सब लोग घबड़ा गये और चिल्लाने लगे। अनंगप्रभा वैश्य से बिछुड़ गई। उसे न पाकर वह वाणिक समुद्र में कूद पड़ा, किंतु दैवयोग से उसे एक नाव मिल गई, जिस पर चढ़कर वह किनारे आ लगा। उधर जहाज के डूब जाने पर सागरवीर नाविक ने अनंगप्रभा को रस्सी से एक लकड़ी के पटड़े पर चढ़ा लिया और उसे किनारे पर ले आया। वह अनंगप्रभा को अपने घर ले गया। अनंगप्रभा ने उसे अपने पर प्राण देनेवाला, धनवान और रूप-यौवन संपन्न देखकर पति बना लिया। उस धीवरराज के घर में अनंगप्रभा बड़े सुख से रहने लगी। एक दिन विजयवर्मा नाम का क्षत्रिय कुमार उस धीवरराज के महल के सामने से जा रहा था। उसके रूप पर लुब्ध होकर महल से नीचे उतरकर वह उस क्षत्रिय कुमार से बोली, "मैं तुम पर मोहित हो गई हूं, तुम मुझे स्वीकार करो।" क्षत्रिय कुमार विजयवर्मा उसे अपने घर ले गया। सागरवीर भी उसके वियोग से दुखित होकर गंगा में अपना शरीर त्यागने के लिए चला गया। अनंगप्रभा विजयवर्मा के साथ कुछ दिन तक रही। तभी एक दिन वहां का राजा सागरवर्मा हथिनी पर चढ़कर नगर में घूमने के लिए निकला। जब वह राजा उस मार्ग से गुजरा, जिस पर विजयवर्मा का महल था, तब अनंगप्रभा उसको देखने के कुतूहल से महल के ऊपर चढ़ी। उसे देखकर वह इतनी परवश होगई कि वह हाथी पर चढ़े हुए राजा से बोली, "अरे हाथी के सवार, मैं कभी हाथी पर नहीं चढ़ी, सो मुझे चढ़ा लो। मैं देखूंगी कि हाथी पर चढ़ने से क्या सुख होता है?" राजा ने हाथी रुकवा लिया और अनंगप्रभा उसकी गोदी में कूद पड़ी। राजा उसे पाकर बड़ा प्रसन्न हुआ। वह उसे अपने महल में ले गया और अपनी मुख्य रानी बना लिया। अपनी पत्नी को हरी हुई देखकर विजयवर्मा ने सागरवर्मा के साथ युद्ध छेड़ दिया और मारा गया। कुछ काल के पश्चात अनंगप्रभा के एक पुत्र उत्पन्न हुआ। सागरवर्मा ने उसका नाम समुद्रवर्मा रखा। समुद्रवर्मा के युवा होने पर राजा ने उसे युवराज बना दिया और उसका विवाह सुखवर्मा की पुत्री कमलवती से कर दिया। फिर सारा राजपाट उसको सौंप दिया। तब समुद्रवर्मा ने पिता से कहा, "मैं दिग्विजय करना

चाहता हूं, आप मुझे आज्ञा दीजिये, क्योंकि वास्तव में यही क्षत्रिय का धर्म है।" पिता ने पहले तो उसे समझाया, फिर भी उसका आग्रह रहा, तो आज्ञा दे दी। समुद्रवर्मा ने दिग्विजय के लिए प्रस्थान किया और क्रम से समस्त दिशाओं को जीतकर तथा अमूल्य रत्न लेकर वह लौट आया। पिता ने अनेक उत्सव किये, ब्राह्मणों को अनेक दान दिये। पुत्र को उपदेश देकर सागरवर्मा ने कहा, "मैं अब तीर्थों पर जाकर अपना शरीर छोड़ना चाहता हूं।" तब वह अनंगप्रभा के साथ प्रयागराज में चला गया। वहां उन दोनों ने भगवान शिव को प्रसन्न किया। स्वप्न में दर्शन देकर शिवजी ने कहा, "तुम दोनों विद्याधर हो, कल प्रातःकाल तुम्हारे शाप की समाप्ति होगी और तुम पुनः विद्याधर योनि को प्राप्त करोगे।" स्वप्न से जागकर उन दोनों को अपनी पूर्वयोनि का स्मरण हो आया। तभी अनंगप्रभा का पिता समर आकाश से वहां उतरा। सागरवर्मा ने उसे प्रणाम किया। अनंगप्रभा भी पिता के चरणों पर गिर पड़ी। समर ने अपनी पुत्री को उसकी भूली हुई समस्त विद्याएं दे दीं और सागरवर्मा से कहा, "तुम मदनप्रभ नाम के विद्याधर हो, मेरा नाम समर है और यह अनंगप्रभा मेरी पुत्री है। इसने पूर्वजन्म में अपने रूप और यौवन से गर्वित होकर किसी भी राजा से विवाह करना पसंद न किया। तब विधि योग से तुमने इसे मांगा, किंतु इसने तुमसे भी विवाह करना अस्वीकार कर दिया। मैंने क्रुद्ध होकर इसे मनुष्य योनि में आने का शाप दिया। तुमने भी शिव की आराधना करके इस संकल्प से शरीर त्याग दिया था कि आगामी जन्म में वह तुम्हारी पत्नी बने। इसलिए तुम दोनों मनुष्य योनि को प्राप्त हुए और यह अनंगप्रभा तुम्हारी पत्नी बनी। अब आओ, अपने लोक को चलें, आज तुम दोनों के शाप का अंत हो गया है।"

तब वे दोनों तत्क्षण विद्याधर बनकर समर के साथ आकाश-मार्ग से वीरपुर नगर में पहुंचे। अब समर ने अपनी पुत्री अनंगप्रभा को विधिपूर्वक मदनप्रभ को दे दिया। मदनप्रभ भी अनंगप्रभा के साथ अपने नगर लौट गया और सुखपूर्वक रहने लगा। इस प्रकार दिव्य नारियां शाप से पतित होकर मनुष्यलोक में अवतीर्ण होती हैं और अपने पाप-कर्मों का उचित फल भोगकर पुनः सद्गति को प्राप्त होती हैं।

गोमुख से यह कथा सुनकर सब लोग अत्यंत प्रसन्न हुए।

: ३ :

# स्वामिभक्त सेवक

एक बार मरुभूति ने नरवाहनदत्त से कहा, "हे देव ! देखिये ! यह बेचारा भिखारी केवल चमड़ा लपेटे, धूलि रमाये आपके महल के मुख्य द्वार पर दिन-रात पड़ा रहता है, फिर भी आप इसे कुछ नहीं देते—यह क्या बात है ?" यह सुनकर गोमुख बोला, "जो बात मरुभूति ने कही है वह बिल्कुल ठीक है, किंतु फिर भी देव ! इसमें आपका कोई दोष नहीं है। जब तक इसके पाप क्षीण नहीं हो जाते, तब तक आप चाहते हुए भी इसे कुछ नहीं दे सकते और पाप के क्षीण हो जाने पर आप यदि न देना भी चाहें, तब भी ईश्वर दे ही देगा। इस संबंध में मैं आपको एक कथा सुनाता हूं :

लक्षपुर नाम का एक नगर था। वहां लक्षदत्त नाम का एक बड़ा भारी त्यागी राजा राज्य करता था। किसी भी याचक को लाख से कम देना वह न जानता था। वह जिससे बातचीत कर लेता, उसे पांच लाख मुद्राएं देता था; जिससे प्रसन्न हो जाता, उसे दरिद्रता से रहित कर देता था। उसके महल के दरवाजे पर लब्धदत्त नाम का एक भिखारी दिन-रात पड़ा रहता था। वह केवल चमड़े का एक टुकड़ा ही शरीर पर धारण करता था और गरमी-सरदी में भी द्वार से न हटता था। राजा आते-जाते नित्य उसे देखता था। यद्यपि वह बड़ा दानी और कृपालु था, फिर भी उसने उस भिखारी को कुछ न दिया। एक दिन वह शिकार खेलने वन में गया। वह भिखारी भी डंडा लेकर उसके पीछे-पीछे चला। राजा तथा उसकी सेना ने वहां अनेक शेर, हरिण, सूअर आदि मारे। उस पैदल भिखारी ने भी डंडे से ही बहुत से सूअर, हरिण आदि मारे। उसका पराक्रम देखकर राजा ने मन में सोचा कि यह बड़ा ही शूरवीर है, किंतु उसे दिया कुछ भी नहीं। शिकार करके राजा नगर में लौट आया और वह भिखारी भी लौटकर पूर्ववत महल के दरवाजे पर रहने लगा। तभी लक्षदत्त का किसी राजा के साथ बड़ा भारी युद्ध हुआ। उस युद्ध में भी उस भिखारी ने डंडे से ही अनेक शत्रु वीरों को मार गिराया। जीतकर राजा अपने शहर लौट आया, किंतु फिर भी उसने उस भिखारी को कुछ न दिया।

इस प्रकार उस लब्धदत्त को वहां रहते हुए पांच वर्ष बीत गये। एक दिन राजा

ने सोचा कि मैंने आज तक इसे कुछ भी नहीं दिया, सो युक्ति से इसे देकर मैं यह देखूं कि इसके पाप क्षीण हुए हैं अथवा नहीं ? लक्ष्मी इसे आज भी दर्शन देती है कि नहीं ? यह विचारकर राजा ने उस कार्पटिक को सभा में बुलाकर उससे कहा कि तुम कोई श्लोक सुनाओ। उसने एक श्लोक सुनाया। राजा ने उसे रत्नों से भरा हुआ एक नींबू दिया। यह देख सभा में बैठे हुए लोग भी आश्चर्यचकित हुए कि यह राजा जिसे देता है, उसे निहाल कर देता हैं, किंतु इस कार्पटिक को केवल एक नींबू देकर टाल दिया। वह कार्पटिक भी उसे लेकर राज-दरबार से चला गया। एक भिक्षुक ने उससे वह नींबू एक धोती के बदले में ले लिया और फिर राजा को भेंट कर दिया। राजा ने उस नींबू को पहचान लिया और भिक्षुक से पूछा कि यह नींबू तुमने कहां से पाया ? उसने असली बात बतादी। दूसरे दिन राजा ने उस कार्पटिक को फिर बुलाया और उसे वही रत्न-युक्त नींबू दे दिया। उसे लेकर वह फिर मुख्य द्वार पर आ गया। इस दिन इस नींबू को किसी राज्याधिकारी ने दो धोतियों के बदले में उससे ले लिया। वह नींबू फिर राजा के पास पहुंच गया। राजा ने उस नींबू को पहचानकर रख लिया और अपने मन में सोचा कि आज भी लक्ष्मी इस पर प्रसन्न नहीं हुई। तीसरे दिन राजा ने इस कार्पटिक को फिर बुलवाया और श्लोक सुनकर वही नींबू इनाम में दिया। इस बार उस कार्पटिक ने इस नींबू को कुछ सोने के बदले में एक वेश्या को दे दिया। वह नींबू फिर राजा के पास आ गया। चौथे दिन राजा ने फिर राज-सभा की और सबके सामने उस नींबू को उसे इतनी शीघ्रता में दिया कि वह वहीं गिर पड़ा और उसके टुकड़े-टुकड़े हो गये। उस नींबू में छिपे हुए रत्न भूमि पर बिखर गये। यह देखकर सभी सभासदों को महान आश्चर्य हुआ। वे राजा से बोले, "आपने इसे तीन बार क्यों व्यर्थ में परेशान किया, पहले ही प्रसन्न होकर क्यों न दे दिया ?" राजा ने कहा, "मैंने इससे पूर्व भी तीनों बार इस नींबू में रत्न छिपाकर दिये थे, किंतु इससे लक्ष्मी प्रसन्न न थी। अब की बार उसने प्रसन्न होकर दर्शन दिये हैं।" ऐसा कहकर उसे अनेक गांव, हाथी, घोड़े आदि दिये। वह कार्पटिक कृतार्थ होकर अपने स्थान को चला गया। इस प्रकार जब तक पाप का अंत नहीं होता, तब तक स्वामी सेवकों पर प्रसन्न नहीं होता और दी हुई वस्तु भी उसे फल नहीं देती।

यह कहानी सुनाकर मुख्य मंत्री गोमुख नरवाहनदत्त से बोला, "हे प्रभु ! न मालूम आज भी इसके पाप नष्ट हुए हैं या नहीं ?" गोमुख के ये वचन सुनकर नर

वाहनदत्त ने उस कार्पटिक को पांच गांव, हाथी, घोड़े, श्रेष्ठ वस्त्र-आभूषण तथा बहुत-सा धन दिया। वह कार्पटिक भी कृतार्थ होकर एक राजा के समान समृद्धिशाली हो गया।

एक बार नरवाहनदत्त के पास दक्षिण दिशा से एक नवयुवक ब्राह्मण आया। उसका नाम प्रलंबबाहु था। उसने राजा से कहा, "मैं आपकी कीर्ति सुनकर आपके पास आया हूं। आप चाहे हाथी-घोड़े पर चलें अथवा भूमि या आकाश में चलें, मैं हमेशा पैदल चलता हुआ आपका साथ कभी न छोड़ूंगा, क्योंकि मैंने सुन रखा है कि आप भविष्य में विद्याधरों के स्वामी बनेंगे। मुझे प्रति दिन आप सौ अशर्फी वेतन दीजिये।" नरवाहनदत्त ने उसे अपने यहां रख लिया। उस प्रसंग में गोमुख ने राजा से कहा, "राजन ! ऐसे स्वामिभक्त सेवक भी होते हैं। में आपको इस संबंध में एक कथा सुनाता हूं :

प्राचीनकाल में विक्रमपुर नाम के नगर में विक्रमतुंग नाम का राजा रहता था। वह बड़ा ही न्यायी, धर्मात्मा तथा शूरवीर था। एकबार उसके पास मालव देश से वीरवर नाम का एक ब्राह्मण नौकरी के लिए आया। धर्मवती नाम की पत्नी, वीरवती नाम की पुत्री तथा सत्त्ववर नाम का पुत्र भी उसके साथ था। कटि में कृपाण, एक हाथ में चमड़ा तथा दूसरे में शीशा—यही उसकी सेवा-सामग्री थी। उसने राजा से प्रति दिन पांचसौ अशर्फियां वेतन में मांगी। राजा ने उसके तेजस्वी होने का अनुमान करके इतने ही वेतन पर उसे नौकर रख लिया। उसने अपने गुप्तचरों से कहा कि देखो यह इतने वेतन का क्या करता है ?

वह वीरवर उन पांचसौ अशर्फियों में से सौ अशर्फियां अपनी पत्नी को भोजन आदि के खर्चे के लिए दे देता था, सौ अशर्फियां वस्त्र, माला आदि खरीदने में व्यय कर देता, सौ अशर्फियां स्नान करके भगवान की पूजा में लगा देता था, शेष दो सौ अशर्फियां वह ब्राह्मणों तथा गरीबों को दे देता था। अपने दैनिक कर्म से निवृत होकर वह दिन-रात मुख्य द्वार पर ही रहता, केवल भोजन के लिए घर जाता। गुप्तचरों से वीरवर की यह दिनचर्या जानकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ। एक दिन रात्रि के समय भयंकर बादल उमड़ रहे थे। तेज वर्षा हो रही थी और वीरवर मुख्य द्वार पर बैठा था। उसी समय दूर से एक स्त्री के करुणापूर्ण रोने की आवाज राजा के कानों में आई। राजा ने पूछा कि दरवाजे पर कौन है ? वीरवर उपस्थित हुआ। राजा ने उससे कहा, "देखो, यह रोने की आवाज कहां से आ रही है ? यह

कौन रो रही है और रोने का क्या कारण है, यह जानकर शीघ्र आओ।" वीरवर आज्ञा पाकर तलवार हाथ में लिये हुए अकेला उस ओर चल दिया, जहां से वह रोने की आवाज आ रही थी। राजा भी कौतुहलवश उसके पीछे-पीछे चल दिया। वहां से चलकर वीरवर नगर से बाहर एक तालाब पर पहुंचा और वहां उसने रोती हुई एक स्त्री को देखा। जब वीरवर ने उसका नाम तथा रोने का कारण पूछा, तो वह बोली, "मैं पृथ्वी हूं। विक्रमतुंग नाम का धार्मिक राजा मेरा स्वामी है। आज से तीसरे दिन उसकी निश्चित ही मृत्यु हो जायगी। इसीलिए मैं विलाप कर रही हूं।" वीरवर ने कहा, "हे माता! यदि राजा की रक्षा का कोई उपाय हो, तो बताइये।" पृथ्वी ने कहा, "एक ही उपाय है और वह तुम्हारे अधीन है। यदि तुम राजकुल के समीप स्थित चंडी के मंदिर में अपने पुत्र सत्त्ववर की बलि दे दो, तो राजा जीवित रह सकता है अन्यथा नहीं।" यह सुनकर वीरवर बहुत प्रसन्न हुआ और बोला, "देवि! यह उपाय मैं अभी जाकर करता हूं।" इसके बाद वह स्त्री सहसा अंतर्धान हो गई। वीरवर भी अपने घर लौट आया। उसने आकर पहले अपनी पत्नी को जगाया, फिर सत्त्ववर को जगाकर पृथ्वी का वचन कह सुनाया। इसे सुनकर सत्त्ववर बहुत प्रसन्न हुआ और बोला, "इससे बढ़कर और क्या पुण्य होगा कि स्वामी के कार्य के लिए मेरे शरीर का उपयोग हो सके।" तब वीरवर अपनी पत्नी, पुत्री तथा पुत्र के साथ चंडिका के मंदिर में गया। वहां सत्त्ववर को देवी के सामने झुकाकर बोला, 'देवि! मेरे बेटे की बलि से तुम हमारे स्वामी को जीवित करो।" ऐसा कहते हुए उसने बालक का सिर तलवार से काट दिया। भाई को मरा हुआ देखकर उसकी बहन वीरवती ने भी प्राण त्याग दिये। पुत्र और पुत्री को मृत देखकर उनकी मां अपने पति से बोली, "हे देव! हमने स्वामी का कार्य संपन्न कर दिया है, इसलिए मुझे भी आप अग्नि में प्रविष्ट होने की आज्ञा दीजिये।" वीरवर उसे कैसे रोकता? सो पति की आज्ञा पाकर धर्मवती भी अग्नि में जलकर मर गई। अंत में वीरवर ने सोचा अब मेरे जीवन से क्या लाभ? सो अपनी बलि देकर देवी की आराधना क्यों न करूं? उसने देवी को स्तुति की और वह ज्योंही अपना सिर काटने के लिए उद्यत हुआ, त्योंही आकाशवाणी हुई: "हे पुत्र! तुम इतना साहस न करो। मैं तुमसे प्रसन्न हूं। इच्छित वर मांगो।" यह सुनकर वीरवर बोला, "देवि! यदि तुम मुझसे प्रसन्न हो, तो राजा विक्रमतुंग सौ वर्षों तक जीयें और मेरा पुत्र, पुत्री

तथा पत्नी भी जीवित हो जायें।" देवी के आशीर्वाद से वे सभी तत्क्षण जीवित हो गये। राजा विक्रमतुंग छिपकर इस घटना को देख रहा था।

वीरवर ने पहले अपने कुटुंब को घर पहुंचाया और बाद में राज-दरबार में आकर अपने काम पर हाज़िर होगया। राजा विक्रमतुंग भी छिपकर अपने महल में पहुंच गया था। बोला, "द्वार पर कौन है ?" वीरवर सामने उपस्थित हुआ और बोला, "देव ! मैं उस स्त्री को देखने गया था, वह कोई देवी थी। मुझे देखते ही अदृश्य हो गई।" उसके ये वचन सुनकर राजा ने सोचा कि निश्चय ही यह कोई अपूर्व पुरुष है, जो इतना प्रशंसनीय काम करके भी अपने मुंह से उसका बखान नहीं करता। इसने मुझसे छिपकर मेरे प्राणों की रक्षा के लिए अपने पुत्र की बलि दे दी। इसका मैं क्या प्रिय कर सकता हूं। यह सोचते हुए ही उसने रात्रि बिताई। प्रातः-काल उसने वीरवर का समस्त वृत्तांत सभा में कह सुनाया और उसे अनेक रत्न, हाथी, सुवर्ण आदि दिये, जिससे वह राजा के तुल्य हो गया।

इस कथा को कहकर गोमुख नरवाहनदत्त से बोला, "बड़े पुण्य के प्रभाव से ही इस प्रकार के स्वामिभक्त सेवक प्राप्त होते हैं। यह प्रलंबबाहु भी मुझे ऐसा ही प्रतीत होता है।"

: ४ :

# सुकर्म और पुरुषार्थ की महिमा

एक बार नरवाहनदत्त गोमुख आदि के साथ रथ में बैठकर वन में शिकार खेलने गया। प्रलंबबाहु भी उसके आगे-आगे दौड़ता हुआ चला। यही नहीं, उसने पैदल चलते हुए ही तलवार से सिंह आदि बनैले पशुओं को मार गिराया। शिकार के बाद प्यास से व्याकुल होकर उन्होंने महावन में प्रवेश किया। वहां उन्हें एक बड़ा भारी तालाब मिला, जिसमें सुवर्ण कमल खिले हुए थे। उसमें स्नान करके तथा जल पीकर नरवाहनदत्त ने सुवर्ण कमलों को तोड़ते हुए चार पुरुषों को देखा, जो बड़ी सुंदर आकृति के थे और दिव्य वस्त्र एवं आभूषण पहने हुए थे। कुतूहलवश वह उन दिव्य पुरुषों के पास पहुंचा। उसका परिचय पाकर वे अत्यंत प्रसन्न हुए और बोले, "समुद्र के बीच में नारिकेल द्वीप के नाम से प्रसिद्ध एक द्वीप है। वहां मैनाक, वृषभ, चक्र

और बलाहक नाम के दिव्य पर्वत हैं। हम सब उन्हीं पर रहते हैं। हममें से एक का नाम रूपसिद्धि है, जो अनेक रूप धारण कर सकता है। दूसरे का नाम प्रमाणसिद्धि है, जो बहुत ही सूक्ष्म प्रमाणों को देख सकता है; तीसरे का नाम ज्ञानसिद्धि है, जो वर्तमान, भूत और भविष्य की बातों को जान सकता है; और चौथे का नाम देवसिद्धि है, जिसे समस्त देवताओं की सिद्धि है। हम इन सुवर्ण कमलों को लेकर श्वेत द्वीप में भगवान की पूजा करने जा रहे ह। तुम भी हमारे साथ वहां चलो। हम तुम्हें भगवान के दर्शन करायेंगे।"

यह सुनकर नरवाहनदत्त गोमुख आदि को वहीं छोड़कर उनके साथ आकाश मार्ग से श्वेत द्वीप में गया। वहां उसने भगवान विष्णु को देखा और उनकी स्तुति की। तब भगवान ने प्रसन्न होकर इंद्र के पास से चार अप्सराएं मंगवाईं और नरवाहनदत्त से कहा, "हे राजन! मैं तुम्हें ये अप्सराएं देता हूं। तुम विद्याधरों के चक्रवर्ती बनोगे।" फिर भगवान ने इंद्र के सारथि मातलि से कहा, "नरवाहन-दत्त जिस भी मार्ग से अपने घर जाना चाहें, उस ही मार्ग से इन्हें घर पहुंचा दो।" भगवान की आज्ञा पाकर मातलि ने नरवाहनदत्त को अप्सराओं सहित विमान पर बैठाकर नारिकेल द्वीप में पहुंचा दिया, जहां वह गोमुख और प्रलंबबाहु आदि को छोड़ आया था। वहां देवपुत्रों ने उसका स्वागत-सत्कार किया और उससे प्रार्थना की कि कुछ दिन आप हमारे बीच रहकर दिव्य सुख भोगें। वह वहां तीन-चार दिन रहकर फिर देवपुत्रों से आज्ञा लेकर अप्सराओं-सहित अपने पिता के पास आया। माता वासवदत्ता और पद्मावती भी उसको देखकर अत्यंत प्रसन्न हुईं। उसने सबको वह अद्भुत वृत्तांत सुनाया और तब देवरूपा, देवरति, देवमाला और देवप्रिया आदि अप्सराओं ने उदयन के चरणों में प्रणाम किया। उदयन बहुत प्रसन्न हुआ और नरवाहनदत्त भी कुछ दिन तक वहां सुखपूर्वक रहा।

एक दिन वह अलंकारवती के घर में बैठा हुआ था, तभी उसने बाहर नगाड़ों की आवाज सुनी। उसने सेनापति हरिशिख से इसका पता लगाने को कहा। क्षण भर बाद लौटकर हरिशिख ने बताया, "इस नगरी में रुद्र नाम का एक वैश्य रहता है। वह यहां से व्यापार करने के लिए सुवर्ण द्वीप में गया था। जब वह वहां से बहुत सा धन इकट्ठा करके लौट रहा था, तभी रास्ते में उसका जहाज टूट गया और उसका धन नष्ट हो गया। वह अकेला किसी प्रकार बचकर घर लौट आया। उसे आये हुए आज छठा दिन है। आज अचानक उसे अपने बाग में बड़ा भारी खजाना गड़ा

हुआ मिल गया है। यह भी पता लगा है कि वह वत्सराज उदयन के पास गया था और उसने अपना सारा खजाना उन्हें अर्पित कर दिया था, किंतु वत्सराज ने वह धन उसीको लौटा दिया। इसी प्रसन्नता पर वह नगाड़े बजवा रहा है।"

पिता की इस उदारता और धार्मिकता को सुनकर नरवाहनदत्त बहुत विस्मित हुआ और बोला, "विधाता क्यों तो किसीका धन ले लेता है और क्यों फिर दुबारा दे देता है ?" यह सुनकर गोमुख ने कहा, "ब्रह्मा की ऐसी ही विचित्र लीला है। इस विषय में मैं आपको एक कथा सुनाता हूं :

"प्राचीन काल में हर्षपुर नाम का एक नगर था। वहां हर्षवर्मा नाम का राजा राज्य करता था। उसके राज्य में समुद्रशूर नाम का वैश्य था। वह कुलीन, धार्मिक और धनवान था। एक बार वह व्यापार करने के लिए सुवर्ण द्वीप की ओर चला। समुद्र में जाते हुए उसका जहाज एक विशाल मछली से टकराकर डूब गया। वह वैश्य जल में तैरने लगा। वहां उसने एक शव को देखा, उस पर चढ़कर वह किनारे पर आ लगा। उसने उस शव की पीठ में धोती में लिपटी हुई रत्नों की कंठी देखी। उसे लेकर वह कलसपुर नाम के नगर के एक मंदिर में आगया। वहां छाया में बैठते ही उसे थकावट के कारण नींद आ गई। उसके सो जाने पर अकस्मात वहां सिपाही आ गये और उसके हाथ में वह रत्न-कंठी देखी। उसे देखकर उन्होंने आपस में कहा, 'यह कंठी तो राजकुमारी चक्रसेना की है, हो न हो, इसने राजकुमारी के गले से इस कंठी को चुराया है।' यह कहकर उसे जगाया और पकड़कर राजमहल में ले गये। जब राजा ने उस वैश्य से कंठी के संबंध में पूछा, तो उसने सब सच्चा हाल कह सुनाया। किंतु राजा को विश्वास नहीं आया। उसने समस्त सभासदों को कंठी उठाकर दिखाई और कहा, 'यह वही राजकुमारी की कंठी है। यह जो कुछ कहता है, बिल्कुल झूठ है।' इतने में आकाश से झपट्टा मारता हुआ एक गिद्ध आया और उस कंठी को उठाकर कहीं उड़ गया। यह देखकर समुद्रशूर विलाप करके शिवजी को पुकारने लगा। राजा ने क्रुद्ध होकर उस वैश्य को मारने की आज्ञा दे दी। इसी समय आकाशवाणी हुई कि हे राजन! इसे मत मारो। यह चोर नहीं है। यह हर्षपुर नगर का वैश्य समुद्रशूर है। जिस चोर ने इस कंठी को चुराया था, वह राजपुरुषों से डरकर रात को समुद्र में डूबकर मर गया। उस चोर की ही पीठ से इसे यह कंठी मिली है। इस धार्मिक वैश्य को कुछ देकर छोड़ दो। यह आकाशवाणी सुनकर राजा ने समुद्रशूर को

धन देकर छोड़ दिया। उस धन को लेकर समुद्रशूर अपने देश को लौट आया। समुद्र पार करके जब वे एक वन से होकर जा रहे थे, तो रात हो गई। सबके सो जाने पर वह जागता रहा। तभी चोरों ने उन पर हमला कर दिया। वह चुपचाप पास ही एक बरगद के पेड़ पर चढ़ गया। चोरों के चले जाने पर वह रात भर उसी पेड़ पर रहा। सवेरे जगकर उसने गिद्ध के घोंसले में उसी कंठी के साथ अनेक रत्न पाये। पेड़ से उतरकर प्रसन्न मन वह अपने नगर हर्षपुर लौट आया और सुखपूर्वक रहने लगा। इस प्रकार हे राजन! विधि की लीलाएं विचित्र हैं। धन कभी मिलता है और कभी नष्ट होता है। सुकर्मी मनुष्य दुख अनुभव करके भी सुख पाता है।"

एक दिन की बात है कि नरवाहनदत्त का बचपन का मित्र समरतुंग नामक राजपुत्र अपने भुजबल से अपने पांच शत्रुओं को बांधकर राजा के पास ले आया। नरवाहनदत्त ने उसका बड़ा सम्मान किया। उसके पुरुषार्थ को सुनकर गोमुख ने नरवाहनदत्त से कहा, "देव! मैं आपको ऐसी ही कथा सुनता हूं:

"हस्तिनापुर नगर में चमरवाल नाम का राजा राज्य करता था। उसके पास बड़ा भारी खजाना, सेना और अनेक किले थे। उसके वंश के समरवल आदि पांच दूसरे राजाओं ने मिलकर विचारा कि यह चमरवाल हम सबको एक-एक करके बाधा पहुंचाता है, सो हम सब मिलकर इसे जीतें। यह सलाह करके वे पांचों यात्रा का शुभ लग्न पूछने के लिए ज्योतिषी के पास पहुंचे। उसने शुभ लग्न के साथ अपशकुन भी देखकर उनसे कहा, 'इस वर्ष तो कोई अच्छी लग्न नहीं है। यदि तुम अशुभ लग्न में चढ़ाई करोगे, तो तुम्हारी हार होगी। पर तुम लोग चमरवाल की संपत्ति से ईर्ष्या क्यों करते हो? लक्ष्मी का फल है उसका उपभोग, सो वह आप लोगों को उससे भी अधिक प्राप्त है। क्या आप लोगों ने इस संबंध में दो वैश्यों की कथा नहीं सुनी? लो मैं सुनाता हूं:

'"प्राचीनकाल में कौतुकपुर नाम के नगर में बहुसुवर्ण नाम का राजा था। यशोवर्मा नाम का एक युवक क्षत्रिय कुमार उसका सेवक था। दानशील होते हुए भी वह राजा उसको कुछ न देता था। जब कभी वह राजा से मांगता, तो वह उससे कह देता था, "मैं तुम्हें देना चाहता हूं, किंतु सूर्य भगवान मुझे देने नहीं देते, मैं क्या करूं?" एक दिन सूर्यग्रहण के समय उसने राजा से कहा, "आज तो सूर्य भगवान को राहु ने पकड़ रखा है, सो आप जो कुछ मुझे देना चाहते हैं,

उसे आज दे दीजिये।" सह बात सुनकर राजा हंसा और उसने वस्त्र, सोना आदि बहुत-कुछ उसे दिया। कुछ ही दिनों में यशोवर्मा ने वह धन खा-पी लिया, लेकिन उसके बाद राजा ने उसे कुछ भी न दिया। इसी बीच में उसकी पत्नी भी मर गई। तब वह अपने जीवन को निरर्थक मानकर देवी के सामने ही शरीर को छोड़ने अथवा इच्छित वर पाने के लिए विंध्यवासिनी के मंदिर में गया। वहां उसने निराहार रहकर बड़ा कठोर तप किया। तब देवी स्वप्न में दर्शन देकर उससे बोलीं, "हे पुत्र ! मैं तुमसे प्रसन्न हूं। बोलो, तुम अर्थलक्ष्मी चाहते हो या भोगलक्ष्मी ?" यह सुनकर यशोवर्मा ने देवी से कहा, "माता ! मैं इन दोनों में भेद नहीं जानता।" तब देवी ने उससे कहा, "तुम्हारे नगर में जो भोगवर्मा और अर्थवर्मा नाम के दो वैश्य हैं, उनकी लक्ष्मी को जाकर देखो। उन दोनों में से जो भी तुम्हें अच्छी लगे, उसे मुझसे मांग लेना।" प्रात: काल जागते ही यशोवर्मा अपने कौतुकपुर नगर में गया। वहां पहले वह अर्थवर्मा के घर पहुंचा। उसके घर में अनंत स्वर्ण, रत्न आदि थे। अर्थवर्मा ने उसका अतिथि-सत्कार किया और दोनों ने एक साथ भोजन किया। यद्यपि अर्थवर्मा ने बहुत थोड़ा खाया था, किंतु फिर भी और दिन की अपेक्षा कुछ अधिक ही खाया। यशोवर्मा ने उससे पूछा, "सेठजी, क्या बात है, आपने बहुत कम खाया है?" अर्थवर्मा ने कहा, "मैंने आज तुम्हारे अनुरोध से कुछ अधिक ही खा लिया है। मैं तो हमेशा सत्तू ही खाता हूं, फिर भी मेरे मंदाग्निवाले पेट में नहीं पचता।" रात्रि के समय अर्थवर्मा ने फिर यशोवर्मा के लिए कुछ दूध और भात मंगाया और स्वयं केवल एक तोला भर दूध लिया। जब वे दोनों सो गये, तो यशोवर्मा ने स्वप्न में देखा कि कुछ भयंकर आकृति के मनुष्य अर्थवर्मा को फटकारकर कह रहे हैं कि आज तूने अधिक क्यों खाया। ऐसा कहते हुए उन्होंने अर्थवर्मा को खूब पीटा और उसके पेट से अधिक खाया हुआ अन्न बाहर खींच लिया। यह स्वप्न देखकर ज्योंही यशोवर्मा जागा, त्योंही उसने देखा कि अर्थवर्मा के पेट में दर्द हो रहा है और वह वमन कर रहा है। यह देखकर यशोवर्मा ने सोचा कि ऐसा जीवन धिक्कार है और ऐसी संपत्ति धिक्कार है। अगले दिन वह भोगवर्मा के यहां पहुंचा। उसने भी उसका खूब आदर-सत्कार किया और उसे भोजन के लिए आमंत्रित किया। यशोवर्मा ने देखा कि भोगवर्मा अपना व्यापार उचित रीति से करता है। एक आदमी से सामग्री लेकर दूसरे को दे देता है और इस प्रकार बिना अपनी पूंजी के ही उसने अशर्फियां कमा ली हैं। फिर उनसे अपनी पत्नी के लिए खाने-

पीने की सामग्री खरीदकर भेज दीं। तभी अर्थवर्मा का एक मित्र उसे अपने यहां प्रीतिभोज पर ले गया। यशोवर्मा भी उसके साथ गया। शाम को घर आकर उन्होंने फिर खूब खान-पान किया। सोते समय यशोवर्मा को बातचीत के प्रसंग में पता चला कि कल खाने-पीने को कुछ नहीं है। सोने पर स्वप्न में यशोवर्मा ने कुछ आदमियों को देखा। उनमें कुछ आदमी दूसरे आदमियों को पीट रहे थे और कह रहे थे, "तुमने भोगवर्मा के लिए कल के भोजन का प्रबंध क्यों नहीं किया ?" दूसरे कह रहे थे, "आज हमसे अपराध हुआ। इसे क्षमा कीजिये, कल से ऐसा न होगा।" जब यशोवर्मा की आंख खुली तो वह सोचने लगा कि यही लक्ष्मी उत्तम है।

'"बिदा होकर वह फिर विंध्यवासिनी के मंदिर में तप करने के लिए पहुंचा। उसके तप से प्रसन्न होकर जब देवी प्रगट हुई तो उसने भोगलक्ष्मी का वर मांगा।

'"इस प्रकार भोग के योग्य लक्ष्मी थोड़ी होने पर भी अच्छी है और भोग-रहित लक्ष्मी अधिक होने पर भी अच्छी नहीं। सो आप लोग राजा चमरवाल की कृपण संपत्ति की क्यों इच्छा करते हैं ?" पर ज्योतिषी के मना करने पर भी उन पांचों ने चमरवाल पर आक्रमण कर ही दिया। यह समाचार पाकर राजा चमरवाल ने शिव की पूजा की और युद्ध के लिए निकल पड़ा। तभी आकाशवाणी हुई: 'हे राजन ! निःशंक होकर लड़ो, तुम्हारी विजय अवश्य होगी।' यही हुआ भी। उस समय युद्ध में चमरवाल की विजय हुई और उसे अतुल संपत्ति तथा शत्रुओं की रानियां मिली। उनमें से राजा प्रतापसेन की रानी यशो-लेखा मुख्य थी। उसे उसने पटरानी बनाया। यशोलेखा के कहने से ही उसने उन पांचों राजाओं को छोड़ दिया और सम्मानपूर्वक उनका राज्य उन्हें लौटा दिया। इस प्रकार बहुत से शत्रुओं को एक ही पौरुष-संपन्न व्यक्ति युद्ध में जीत लेता है।"

: ५ :

## राजा कनकवर्ष की कथा

एक दिन राजा नरवाहनदत्त अलंकारवती के घर में मंत्रियों के साथ बैठा हुआ था। तभी मरुभूति का नौकर आकर राजा से बोला, "हे देव ! मैंने मरुभूति की दो वर्ष तक सेवा की है। इन्होंने मुझे और मेरी पत्नी को भोजन और वस्त्र के

अलावा प्रति-वर्ष पचास अशर्फियां देने को कहा था। जब मैंने इनसे वे अशर्फियां मांगी, तो इन्होंने मुझे पीटा। यदि आप मेरी कोई चिंता न करेंगे, तो मैं अग्नि में प्रवेश कर जाऊंगा।" मरुभूति ने कहा, "मुझे उसे अशर्फियां तो देनी हैं, किंतु मेरे पास अभी नहीं हैं।" उसके ऐसा कहने पर सब हंस पड़े। पर राजा ने मरुभूति से उसे तत्क्षण सौ अशर्फियां दिलवा दीं। इसी प्रसंग में गोमुख बोला कि इसमें मरुभूमि का दोष नहीं है। विधाता ने मनुष्यों की विचित्र चित्त-वृत्तियां बनाई हैं। इस संबंध में मैं आपको एक कथा सुनाता हूं :

"प्राचीनकाल में चिरपुर नाम के नगर में चिरदाता नाम का एक राजा राज्य करता था। उस राजा का प्रसंग नाम का एक सेवक था, जो किसी दूसरे देश से आया था। सेवा करते हुए उसे पांच वर्ष बीत गये, किंतु राजा ने उसे किसी भी उत्सव आदि में कुछ न दिया। एक दिन उस राजा का छोटा लड़का मर गया। तब प्रसंग ने राजा के पास जाकर कहा, 'हे राजन! आपने बहुत समय से मुझे कुछ नहीं दिया। फिर भी मैं आपकी सेवा इसी आशा पर करता रहा कि आपका पुत्र समर्थ होकर कुछ देगा। सो, दुर्भाग्यवश वह पुत्र भी आज मर गया। तब हमारे यहां रहने से क्या लाभ? आप हमें नौकरी से छुट्टी दीजिये।' ऐसा कहकर वह राजा के चरणों में गिर पड़ा। राजा ने सोचा कि ये नौकर बड़े ही स्वामिभक्त हैं, जो मेरे पुत्र में इतनी आस्था रखते थे। सो इनको त्यागना उचित नहीं है। तब राजा ने प्रसंग को खूब धन देकर इतना समृद्ध बना दिया कि उस पर फिर कभी अर्थ संकट नहीं आया। इस प्रकार उस राजा ने उचित समय पर तो कुछ नहीं दिया, किंतु कुसमय पर बहुत-सा धन दे दिया।"

इस कथा को कहकर कहानी सुनाने में प्रवीण गोमुख ने नरवाहनदत्त को एक दूसरी कथा सुनाई :

प्राचीन काल में गंगा के किनारे पर कनकपुर नाम का एक नगर था। वहां वासुकि नाग के पुत्र प्रियदर्शन और यशोधरा नाम की राजपुत्री का बेटा कनकवर्ष नाम का एक यशस्वी और सुंदर राजा राज्य करता था। वह धन की नहीं, यश की इच्छा करता था; शत्रु से नहीं, पाप से ही डरता था। एक बार वह अपने महल में बैठा हुआ था, तभी प्रतिहार ने आकर निवेदन किया, "हे राजन! विदर्भ देश से कोई अपूर्व चित्रकार आया है। वह कहता है कि मेरे समान कोई नहीं है। अपना नाम रोलदेव बताता है।" यह सुनकर राजा ने उसे आदरपूर्वक बुलवाया। उसने

सभासदों के सुझाव पर और राजा की आज्ञा पाकर राजा का ही चित्र बनाया। उसे देखकर सबने उस चित्रकार की चित्र-प्रवीणता की प्रशंसा की और कहा, "हम राजा को चित्र में अकेला नहीं देखना चाहते। सो तुम चित्रभित्ति में चित्रित इन रानियों मे से किसी एक को अनुरूप विचार करके उसका चित्र इनके चित्र के साथ बना दो।" यह सुनकर चित्रकार बोला, "इन रानियों में कोई भी राजा के तुल्य नहीं है। समस्त पृथ्वी में इस राजा के समान रूपवाली केवल एक ही राजपुत्री है। विदर्भ देश में कुंडिन नाम का एक नगर है। वहां के राजा देवशक्ति और उसकी अनंतवती रानी से उत्पन्न मदनसुंदरी नाम की कन्या है। वही राजपुत्री रूप-सौंदर्य विनय, आयु तथा कुल में इस राजा के समान है। एक बार उसने मुझे अंतःपुर में बुलवाया था और सामने बैठाकर अपने हाथ से भूमि पर एक चित्र बनाकर कहा, 'हे उपाध्याय, आप मुझे इस चित्र के समान चित्र बनाकर दीजिये।' उस सुंदर और नवयुवक व्यक्ति का चित्र बनाकर मैंने सोचा कि राजकन्या ने तो मुझसे साक्षात कामदेव का ही चित्र बनवा लिया। मैंने वहां यह भी सुना था कि वह राजकन्या आपके रूप और गुणों को सुनकर आप पर ही अनुरक्त है। तब गुप्त रूप से उस कन्या का चित्र बनाकर मैं आपकी सेवा में उपस्थित हुआ हूं। आपको देखकर मेरा संदेह दूर हो गया। उस कन्या ने मुझसे आपका ही चित्र बनवाया था। किंतु मैं अब आपके चित्र के साथ उसका चित्र बनाने में असमर्थ हूं, क्योंकि उसका रूप क्षण-क्षण में बदलता रहता है।" फिर चित्रकार ने राजा को राजपुत्री का चित्र दिखाया। उसके चित्र को देखते ही वह एकदम मुग्ध हो गया। चित्रकार को बहुत सा धन दिया अपने मंत्रियों से सलाह करके मदनसुंदरी को मांगने के लिए राजा देवशक्ति के पास संगमस्वामी नाम के ब्राह्मण को दूत बनाकर भेजा।

कुंडिनपुर में जाकर संगमस्वामी ने देवशक्ति से अपने राजा का समाचार कह सुनाया। देवशक्ति ने कनकवर्ष का संदेश स्वीकार कर लिया। संगमस्वामी के साथ अपना दूत भी भेज दिया। यह समाचार पाकर कनकवर्ष शुभ लग्न शोधकर विवाह के लिए चल दिया। कुंडिननगर में पहुंचने पर देवशक्ति ने उसका बहुत सम्मान किया। अगले दिन उसके साथ मदनसुंदरी का विवाह कर दिया। सात दिन वहां रहकर कनकवर्ष नववधू के साथ अपने नगर को लौट आया। उसने मदनसुंदरी को पटरानी बना दिया।

एक दिन उसने बड़ा विचित्र स्वप्न देखा और प्रातःकाल एक क्षपणक (बौद्ध

साधु) से उसका फल पूछा। क्षपणक ने कहा, "आपका पत्नी तथा पुत्र से वियोग होगा, किंतु कुछ समय पश्चात पुनः संयोग हो जायेगा।" क्षपणक के ऐसा कहने पर राजा बोला, "मेरे तो आज भी पुत्र नहीं है, पहले हो तो सही।" यही सोचते-सोचते एक रात उसे नींद न आई। तभी अचानक उसका दरवाजा खुला और एक सौम्य रूपवाली स्त्री अंदर आई। राजा के प्रणाम करने पर वह स्वयं बोली, "मैं नागराज वासुकि की पुत्री हूं और तुम्हारे पिता की बड़ी बहन हूं। मेरा नाम रत्नप्रभा है। मैं हमेशा तुम्हारी रक्षा के लिए छिपे रूप में तुम्हारे निकट रहती हूं। तुम इतने दुखी क्यों हो?" बुआ के ये वचन सुनकर राजा बोला, "मैं पुत्र की इच्छा रखता हूं।" रत्नप्रभा बोली, "तुम स्वामी कार्तिकेय की पूजा करो। मैं तुम्हारे शरीर में प्रवेश करूंगी, जिससे तुम सब विघ्नों को सह सकोगे। विघ्नों को जीतकर तुम इच्छित वस्तु प्राप्त करोगे।" ऐसा कहकर रत्नप्रभा अदृश्य हो गई। प्रातःकाल होते ही राजा राज्य का भार मंत्रियों पर सौंपकर स्वामी कार्तिकेय की पूजा के लिए गया। अपने शरीर में प्रविष्ट हुई रत्नप्रभा के प्रभाव से उसने बहुत कठोर तप किया और सब विघ्नों को सह लिया। तब स्वामी कार्तिकेय प्रकट होकर बोले, "मैं तुमसे प्रसन्न हूं, वर मांगो।" राजा ने पुत्र-प्राप्ति का वर मांगा। स्वामी कार्तिकेय ने कहा, "तुम्हें मेरे प्रताप से हिरण्यवर्ष नाम का पुत्र प्राप्त होगा।" फिर उसे एक विशेष वर देने के लिए स्वामी कार्तिकेय मंदिर के भीतर ले गये। ज्योंही राजा मंदिर में प्रवेश करने लगा, त्योंही रत्नप्रभा राजा के शरीर से निकलकर बाहर रह गई, क्योंकि स्त्रियां शाप के भय से स्वामी कार्तिकेय के मंदिर में नहीं घुसतीं। राजा तेजहीन होगया। स्वामी कार्तिकेय समझ गये कि इसने रत्नप्रभा के बल से ही इतना कठोर तप किया है। इसलिए वह उससे नाराज हो गये और उसे शाप दिया, "तुमने मुझसे छल करके यह वरदान पाया है, इसलिए मेरे वर से तुम्हें पुत्र तो होगा, किंतु तुम्हारा अपनी पत्नी तथा पुत्र से वियोग होगा।" इस दारुण शाप को सुनकर राजा ने स्वामी कार्तिकेय की बहुत स्तुति की, जिससे वह उस पर पुनः प्रसन्न हुए और कहा, "तुम्हारा अपनी पत्नी तथा पुत्र से वियोग केवल एक वर्ष तक रहेगा और तुम तीन अपमृत्युओं से बचकर उन्हें पुनः पाओगे।"

यह वर पाकर राजा अपने नगर में लौट आया। कुछ काल के पश्चात मदनसुंदरी से एक पुत्र उत्पन्न हुआ। राजा ने पांच रात तक बहुत से उत्सव मनाये।

छठी रात अचानक तूफान आया और बादल गरजने लगे। उस तूफान में अचानक एक भयंकर स्त्री दरवाजा खोलकर अंदर आ गई और बालक को लेकर भाग गई। "हाय, राक्षसी बालक को उठाकर भाग गई!"—चिल्लाती हुई रानी भी उसके पीछे दौड़ी। वह स्त्री उस बालक को लेकर एक तालाब में कूद पड़ी। मदन-सुंदरी भी उसके पीछे ही उसीमें कूद पड़ी। महल में करुण क्रंदन गूंज उठा। राजा ने भी जब आकर यह समाचार सुना, तो वह शून्य महल को देखकर मूच्छित हो गया। होश में आने पर उसे स्वामी कार्तिकेय का शाप याद आया और अधीर होकर वह विंध्य वन में चला गया घूमता-घूमता प्यास और गरमी से पीड़ित होकर एक पेड़ के नीचे आ बैठा। तभी वन से एक भयंकर शेर निकलकर उस पर झपटा। इसी समय एक विद्याधर वहां आया और उसने तलवार के प्रहार से शेर को मार डाला। फिर राजा के पास आकर कहा, "हे कनकवर्ष! तुम इस प्रदेश में कैसे आ गये?" राजा ने अपना समाचार सुनाकर पूछा, "तुम मुझे कैसे जानते हो?" विद्याधर ने कहा, "मैं साधु होकर तुम्हारे शहर में रहा था। तुमने विद्याधर की सिद्धि प्राप्त करने में मेरी सहायता की थी। अब विंध्यवासिनी भगवती के दर्शन करने पर तुम्हें पत्नी और पुत्र मिलेंगे।" इतना कहकर वह विद्याधर अपने लोक को चला गया। राजा भी विंध्यवासिनी के दर्शन करने के लिए चला। मार्ग में एक मत्त हाथी उस पर झपटा—उससे बचकर राजा उद्दंड पुंडरीक नाम के तालाब पर पहुंचा। वहां स्नान करके और जल पीकर एक पेड़ के नीचे थककर सो गया। तभी शबर जाति के लोग उस मार्ग से शिकार करके लौट रहे थे। वे सोये हुए इस सुलक्षण व्यक्ति को देखकर देवी के उपहार के लिए उसे बांधकर अपने स्वामी शवरराज मुक्ताफल के पास ले गये। शवरराज उसको देवी के मंदिर में भेंट चढ़ाने के लिए ले गया। देवी को देखते और प्रणाम करते ही राजा के बंधन ढीले पड़ गये। यह अद्‌भुत काम देखकर शवरराज ने उसके बंधन खोल दिये। इस प्रकार तीसरी मृत्यु से बचने पर राजा के शाप का वर्ष पूरा हो गया। तभी कनक-वर्ष की बुआ रत्नप्रभा मदनसुंदरी तथा पुत्र को लेकर उपस्थित हुई और बोली, "मैं तुम्हारे शाप को जानती थी। इसलिए मैंने ही तुम्हारी पत्नी और पुत्र को लाकर इनकी रक्षा की है। अतः जाकर अपना राज्य भोगो।" ऐसा कहकर वह अंतर्धान हो गई। इस घटना को देखकर शवरराज भी उसके चरणों पर गिर पड़ा और अपनी कुटी में लेजाकर उसका उचित सत्कार किया। इसके बाद राजा ने शवरराज

के दूतों से अपनी सेना तथा ससुर देवशक्ति को बुलवाया और बड़े समारोह के साथ अपने राज्य में पहुंचा। वहां उसने अपनी पत्नी तथा पुत्र के साथ चिरकाल तक निष्कंटक राज्य किया।

गोमुख से इस कथा को सुनकर राजा-रानी बहुत प्रसन्न हुए।

: ६ :

## नल-दमयंती की कथा

इसके बाद राजा नरवाहनदत्त ने मरुभूति से कहा, "तुम भी एक कथा कहो।" तब मरुभूति ने यह कथा सुनाई :

राजा कमलवर्मा के नगर कमलपुर में चंद्रस्वामी नामक एक श्रेष्ठ ब्राह्मण रहता था। उसकी स्त्री का नाम देवमति था। उससे चंद्रस्वामी के एक पुत्र उत्पन्न हुआ। पुत्र के उत्पन्न होते ही आकाशवाणी हुई : "हे चंद्रस्वामिन् ! तुम बच्चे का नाम महीपाल रखो, क्योंकि यह बच्चा बड़ा प्रतापी राजा होगा और समस्त पृथ्वी पर राज्य करेगा।" इस वाणी को सुनकर चंद्रस्वामी ने उसका नाम महीपाल ही रख दिया। महीपाल बड़ा होने पर वेदों, शस्त्रास्त्रों तथा अन्य विद्याओं में निपुण हो गया। कुछ दिन बाद चंद्रस्वामी की पत्नी ने एक सुंदरी कन्या को जन्म दिया। उसका नाम चंद्रवती रखा गया। दोनों भाई-बहन पिता के घर में बढ़ने लगे। एक बार उस राज्य में अनावृष्टि के कारण बड़ा भारी दुर्भिक्ष पड़ा। चंद्रस्वामी दोनों बच्चों को उनके नाना के घर छोड़ आने के लिए ले चला। तीन-चार दिन चलते-चलते वह एक बड़े भारी वन में पहुंचा। सूर्य की तेज किरणों से प्यास से व्याकुल उन दोनों बालकों को एक पेड़ के नीचे बैठाकर वह उनके लिए पानी ढूंढ़ने दूर चला गया। उसी समय अकस्मात सिंहदंष्ट्र नाम का शबरराज उधर आ गया और चंद्रस्वामी को नर-बलि देने के लिए बांधकर ले चला। चंद्रस्वामी उन दोनों बच्चों के लिए बहुत व्याकुल हुआ और विलाप करने लगा। अंत में छूटने का कोई उपाय न देखकर चंद्रस्वामी ने सूर्य भगवान की स्तुति की। सूर्य भगवान उससे संतुष्ट हुए और तभी आकाशवाणी हुई : "हे ब्राह्मण ! डरो मत, मैं तुमसे प्रसन्न हूं। तुम्हारा वध नहीं होगा। मेरे प्रसाद से तुम्हारे बच्चे भी

तुम्हें मिल जायेंगे ।"

उधर बच्चे भी पिता के न आने पर रोने-चिल्लाने लगे । उसी समय सार्थधर नाम का एक व्यापारी वैश्य उधर से आ निकला और उन दोनों बच्चों को आश्वस्त करके अपने घर ले गया और बड़े लाड़-चाव से उन्हें पाला । एक दिन तारापुर निवासी ताराधर्म नाम के राजा का मंत्री अनंतस्वामी कार्यवश उस वैश्य के घर आ गया । उसके कोई संतान न थी, इसलिए वह उन बच्चों को अपने घर ले गया । उधर चंद्रस्वामी शवरराज के बंधन से छूटकर उन बच्चों को ढूंढ़ता हुआ समुद्र के किनारे पर स्थित जलपुर नाम के नगर में पहुंचा और वहां एक ब्राह्मण का अतिथि बना । चंद्रस्वामी ने उस ब्राह्मण से अपने बच्चों के बिछुड़ने की बात कही । उस ब्राह्मण ने कहा कि पिछले दिनों एक कनकवर्मा नाम का वैश्य इधर आया था । उसे वन में दो बच्चे मिले थे । उनको लेकर वह नारिकेल महाद्वीप को चला गया है । यह सुनकर चंद्रस्वामी विष्णुवर्मा नाम के एक वैश्य के साथ नारिकेल द्वीप को चला । वहां पहुंचकर उसे पता चला कि कनकवर्मा नाम का वैश्य यहां अवश्य रहता था और उसे वन में दो बच्चे भी मिले थे, किंतु कुछ दिन हुए वह उन बच्चों को लेकर कटाह द्वीप चला गया । वहां पहुंचकर उसने सुना कि वह वहां से भी कर्पूरद्वीप चला गया । इस प्रकार सुनते-सुनते वह अनेक द्वीप-द्वीपांतरों में कनकवर्मा को ढूंढ़ता फिरा । अंत में सिंहल द्वीप में पहुंचकर उसका पता चला कि वह समुद्र के किनारे पर स्थित चित्रकूट नाम के नगर में हैं । वहां पहुंचने पर उसे कनकवर्मा मिला और उसने दो बालकों को दिखाया, किंतु वे उसके बालक नहीं थे । चंद्रस्वामी शोक से पीड़ित होकर विलाप करने लगा कि इतना घूमने पर भी मुझे अपने बच्चे प्राप्त न हुए । चंद्रस्वामी ने प्रण किया कि यदि एक वर्ष में बच्चों को न पा लूंगा, तो गंगा के किनारे तप करके शरीर छोड़ दूंगा । उसी समय वहां कोई ज्ञानी आ गया और बोला कि नारायणी के प्रभाव से तुम्हें तुम्हारे बच्चे मिल जायेंगे । यह सुनकर चंद्रस्वामी बहुत प्रसन्न हुआ और इसे उसने सूर्यनारायण का अनुग्रह समझा । फिर चंद्रस्वामी वहां से चल दिया और घूमता-घूमता एक वन में पहुंचा । वहां शेर आदि की आशंका से एक पेड़ पर चढ़ गया । रात्रि में उसने देखा कि उस पेड़ के नीचे नारायणी आदि मातृकाओं का समूह अनेक उपहारों को लिए हुए भैरव के आगमन की प्रतीक्षा कर रहा है । भैरव के आने पर सब मातृकाओं ने उनकी पूजा की और नाचती-गाती रहीं । जब वह

चला गया, तो नारायणी ने चंद्रस्वामी को देखा और उसे नीचे उतर आने को कहा। नीचे उतरकर चंद्रस्वामी ने उससे अपने बच्चों को पाने का वर मांगा। नारायणी ने कहा कि तुम्हारे बच्चे शीघ्र ही मिल जायेंगे। उसने चंद्रस्वामी को एक कमल दिया और कहा कि यह कमल कभी मुरझाता नहीं है तथा विष को दूर करता है। यह कहकर नारायणी अंतर्धान हो गई।

चंद्रस्वामी घूमता हुआ तारापुर नाम के नगर में अनंतस्वामी ब्राह्मण के घर पहुंचा। यह अनंतस्वामी वहां के राजा का मंत्री था। मंत्री ने उसे विद्वान जानकर अपने घर भोजन के लिए निमंत्रित किया। जब चंद्रस्वामी तालाब में स्नान करके आया, तब उसने रोने-चिल्लाने की आवाज सुनी। पता लगा कि सार्थधर नाम के एक वैश्य को वन में घूमते हुए दो बालक मिल गये थे। निस्संतान होने के कारण अनंतस्वामी ने इन बच्चों को ले लिया था। उनमें से महीपाल नाम के लड़के को आज एक भयंकर सर्प ने काट लिया है। इसीलिए यह रोने-चिल्लाने की आवाज हो रही है।

चंद्रस्वामी ने जान लिया कि निश्चय ही ये उसके बच्चे हैं। वह एकदम वहां पहुंचा और उस बालक को कमल सुंघा दिया। महीपाल जीवित हो गया। राजा ने उसे महात्मा जानकर बहुत सा धन दिया। उसके बाद चंद्रस्वामी अनंतस्वामी के घर पर ही रहने लगा। दोनों बच्चों तथा चंद्रस्वामी ने एक-दूसरे को पहचान लिया, किंतु वे चुप रहे। राजा तारावर्मा ने महीपाल को सर्वगुण-संपन्न देखकर अपनी पुत्री बंधुमती का उससे विवाह कर दिया और राज्य के आधे भाग का स्वामी भी बना दिया। राज्य पाकर महीपाल ने चंद्रस्वामी को अपना पिता प्रसिद्ध कर दिया। अपनी बहन का भी उसने योग्य पति से विवाह कर दिया। तब एक समय चंद्रस्वामी ने महीपाल से कहा, "अपनी माता को भी ले आओ। कहीं ऐसा न हो कि वह यह जानकर कि तुमने राज्य प्राप्त करके उसे भुला दिया है, शाप दे दे। माता-पिता के शाप से संतान कभी भी सुख नहीं प्राप्त करती। इस संबंध में मैं तुम्हें एक प्राचीन कहानी सुनाता हूं :

"धवलपुर में चक्र नाम का एक वैश्य-पुत्र था। वह अपने माता-पिता की इच्छा के विरुद्ध स्वर्ण द्वीप में व्यापार करने चला गया। वहां पांच वर्ष तक व्यापार करके उसने बहुत सा धन कमाया और फिर घर को लौट चला। किनारे से कुछ ही दूर रहा होगा कि भयंकर तूफान आ गया और उसकी समस्त संपत्ति डूब गई। आयु

शेष होने के कारण केवल चक्र बच गया। किसी तरह जब वह किनारे पर पहुंचा, तो एक पुरुष उसे जाल में बांधकर सिंहासन पर बैठे हुए एक पुरुष के पास ले गया। उसकी आज्ञा से चक्र जेल में डाल दिया गया। वहां उसने एक व्यक्ति को देखा, जिसके सिर पर गर्म लोहे का चक्र घूम रहा था। पूछने पर उसने कहा, 'मैं खड्ग नाम का एक वैश्य-पुत्र हूं। मैंने अपने माता-पिता का कहना नहीं माना था। उन्होंने क्रुद्ध होकर मुझे शाप दे दिया। जब मैं उनके सामने रोया-चिल्लाया, तो उन्होंने कहा कि तुम्हें यह पीड़ा केवल एक महीने तक रहेगी। उसीका यह फल है कि मैं यह पीड़ा भोग रहा हूं। आज मुझे यह पीड़ा भोगते हुए एक महीना हुआ है। किंतु मैं आज भी शाप से मुक्त नहीं हुआ।' चक्र ने उस व्यक्ति से कहा, 'मैंने भी अपने माता-पिता की आज्ञा का उल्लंघन किया था, उसीके परिणामस्वरूप मेरा समस्त धन नष्ट हो गया और आज मुझे यह बंधन प्राप्त हुआ है। सो तुम इस चक्र को मेरे सिर पर रख दो, मैं अब जीवित नहीं रहना चाहता।' इसी समय आकाशवाणी हुई : 'हे वैश्य पुत्र ! इस चक्र को वैश्य-पुत्र चक्र के सिर पर रख दो। तुम्हारे शाप का अंत हो गया।' यह वाणी सुनकर खड्ग ने चक्र को वैश्य-पुत्र के सिर पर रख दिया और घर जाकर अपने माता-पिता की सेवा करने लगा।

"चक्र ने तप्त चक्र को अपने सिर पर रखकर कहा, 'संसार के दूसरे पापी भी अपने पापों से छूट जायें। जब तक दूसरे पापी अपने पापों से मुक्ति न पायें, तब तक यह चक्र मेरे मस्तक पर घूमता रहे।' उसके ऐसा कहने पर देवताओं ने संतुष्ट होकर उस पर पुष्प वृष्टि की और कहा, 'हे महापुरुष ! तुम्हें धन्य है ! इस करुणा से तुम्हारा पाप शांत हो गया। शीघ्र ही तुम्हारे शाप का अंत हो जायेगा।' देवताओं के ऐसा कहते ही उसी क्षण वह तप्त चक्र लुप्त हो गया और एक विद्याधर कुमार वहां आया। उसने अनेक बहुमूल्य रत्न देकर चक्र को उसके पिता के पास पहुंचा दिया।" यह कथा सुनकर चंद्रस्वामी फिर महीपाल से बोला, "माता-पिता का विरोध इस प्रकार कष्ट देनेवाला होता है और उनकी भक्ति कामधेनु की भांति अभीष्ट फल देनेवाली होती है। इस संबंध में मैं तुम्हें एक और कथा सुनाता हूं :

"किसी वन में कोई महा तपस्वी मुनि रहता था। एक दिन जब वह पेड़ की छाया में बैठा हुआ था, तो उसके ऊपर एक बगुली ने बींट कर दी। उस मुनि ने

क्रुद्ध होकर उस बगुली की ओर देखा, इससे वह भस्म होकर नीचे गिर पड़ी। यह देखकर वह मुनि अभिमान से भर उठा। एक बार वह किसी शहर में भिक्षा मांगने के लिए एक ब्राह्मण के घर पहुंचा। ब्राह्मण की पत्नी ने कहा, 'महाराज! ठहरिये, मैं अपने पति की सेवा समाप्त करके अभी आपको भिक्षा देती हूं।' तब वह मुनि कुपित होकर उस स्त्री की ओर देखने लगा। उस ब्राह्मण पत्नी ने हंसकर कहा, 'हे मुनि! मैं वह बगुली नहीं हूं जिसे तुम भस्म कर दोगे।' यह सुनकर मुनि बड़े आश्चर्य में पड़ा और जब अपने पति की सेवा समाप्त करके वह पतिव्रता भिक्षा लेकर मुनि के पास आई, तो उस मुनि ने हाथ जोड़कर पूछा, 'तुमने उस बगुली के वृत्तांत को कैसे जान लिया? पहले मुझे यह बात बताओ, तब मैं भिक्षा लूंगा।' वह स्त्री बोली, 'मैं पति की सेवा के अतिरिक्त किसी दूसरे धर्म को नहीं मानती। उसी धर्म के प्रसाद से मुझे यह ज्ञान प्राप्त हुआ है। तुम इसी नगर में रहनेवाले धर्मव्याध के पास जाओ। उसे देखकर तुम्हारा अहंकार दूर होगा और तुम्हारा कल्याण होगा।' अगले दिन वह मुनि धर्मव्याध के पास पहुंचा। वह अपनी दूकान में बैठा हुआ मांस बेच रहा था। उस मुनि को देखकर बोला, 'क्या आपको उस पतिव्रता ने यहां भेजा है?' यह सुनकर मुनि बड़ा चकित हुआ और व्याध से बोला, 'मांस बेचते हुए भी तुम्हें इतना ज्ञान कैसे हो गया?' व्याध ने कहा, 'मैं अपने माता-पिता का भक्त हूं, वे ही मेरे पूजा-पाठ हैं। मैं उनको स्नान कराकर नहाता हूं, उनको भोजन कराकर भोजन करता हूं, उनके सोने पर सोता हूं। इसीलिए मुझे इतना ज्ञान है। दूसरों के द्वारा मारे हुए हरिण आदि का मांस मैं अपना धर्म समझकर बेचता हूं, केवल आजीविका मात्र के लिए नहीं। मैं और वह पतिव्रता अहंकार नहीं करते। इसलिए तुम भी अहंकार को छोड़कर अपने धर्म का पालन करो। इससे तुम्हें ज्ञान प्राप्त होगा।' यह सुनकर वह मुनि प्रसन्न-चित्त वन को चला गया और धर्मव्याध तथा पतिव्रता के समान अपने धर्म का पालन करते हुए सिद्धि को प्राप्त हुआ। माता, पिता तथा पति की भक्ति का यह प्रभाव है। सो, चलो, तुम भी अपनी माता से चलकर मिलो।"

इस प्रकार अपने पिता चंद्रस्वामी के सुझाने पर महीपाल ने राज्य का भार अपने धर्मपिता अनंतस्वामी को सौंप दिया और स्वयं माता के दर्शन के लिए अपने देश को चल दिया। वहां पहुंचकर वह अपनी माता से मिलकर बड़ा आनंदित

हुआ।

उधर महीपाल के चले जाने पर उसकी पत्नी बंधुमती अपने पति की विरह-वेदना से पीड़ित होकर, देश-देशांतरों से आये हुए ब्राह्मणों का सत्कार करके उसके आने का समाचार पूछती थी। एक दिन संगमदत्त नाम का एक दीन ब्राह्मण उसके पास आया। उससे बंधुमती ने अपने पति के संबंध में पूछा। वह बोला, "देवि! धैर्य धारण करो, तुम्हारे पति अवश्य ही लौटेंगे। मैंने यह बात प्रत्यक्ष देखी है कि शुभ कर्मों के करने से पुण्यात्मा व्यक्तियों को इच्छित वस्तु, बहुत काल में ही सही, प्राप्त अवश्य होती है। एक बार मैं घूमता हुआ हिमालय पर्वत में मान-सरोवर पर जा पहुंचा। वहां मैंने शीशे की भांति स्वच्छ एक मणि-जटित महल देखा। अचानक उस महल से निकलकर तलवार हाथ में लिये हुए एक पुरुष उस सरोवर के किनारे पर आया। उसके साथ कुछ सुंदर स्त्रियां भी थीं। वह उद्यान में स्त्रियों के साथ विहार करने लगा। मैं छिपकर बड़े कौतुक के साथ यह देखता रहा। तभी एक दूसरा सुंदर पुरुष वहां आ गया। मैंने उसको भी वह दृश्य दिखाया। तब वह पुरुष बोला, 'मैं त्रिभुवनपुर का त्रिभुवन नाम का राजा हूं। वहां एक पाशुपत ने मेरी चिरकाल तक सेवा की। जब मैंने उससे सेवा का कारण पूछा, तो उसने कहा कि मैं बिल में खड्ग की सिद्धि का करना चाहता हूं, आप मेरी सहायता कीजिये। मैंने उसकी सहायता करना स्वीकार कर लिया। तब वह एक रात को मुझे वन में ले गया। वहां हवन आदि करके उसने एक बिल प्रकट किया और मुझसे कहा कि हे वीर! तुम इस बिल में पहले घुसो और वहां से तलवार लेकर फिर मुझे भी भीतर प्रवेश करा देना।

" 'यह सुनकर मैंने उस बिल में प्रवेश किया और वहां एक रत्नमय गृह देखा। उस घर से एक असुर कन्या बाहर निकली और मुझे अंदर ले गई। वहां उसने मुझे एक तलवार दी। उसने मुझे बताया कि यह तलवार संपूर्ण सिद्धियों को देनेवाली है और इसे हाथ में लेकर आकाश में भी उड़ा जा सकता है, अतः इसकी भली प्रकार रक्षा करना। उस तलवार को लेकर मैं कुछ काल तक उस असुर कन्या के साथ वहां रहा। फिर अपनी प्रतिज्ञा को याद करके बाहर आया और उस पाशुपत को भी अपने साथ बिल में ले गया। वहां मैं उस असुर-कन्या के साथ और पाशुपत दूसरी असुर-कन्या के साथ रहने लगा। एक दिन जब मैं शराब पीकर अचेत हो गया, तब उस पाशुपत ने छल से मेरी तलवार को ले लिया

और मुझे बिल से बाहर निकालकर फेंक दिया। तब से आज बारह वर्ष हो गये, मैं इस बिल के द्वार पर ही उसको ढूंढ़ रहा हूं कि शायद कभी बाहर निकलता हुआ मुझे मिल जाये। सो आज मेरी ही असुर कन्या के साथ विहार करता हुआ यह मुझे दिखाई पड़ा है।'

"त्रिभुवन के मुझसे ऐसा कहते-कहते वह पाशुपत शराब के नशे में अचेत हो गया। तब त्रिभुवन ने उसके हाथ से वह तलवार ले ली। उस तलवार को पाकर वह राजा फिर प्रभावशाली हो गया। उसने पाशुपत को पद-प्रहार से जगाकर खूब फटकारा, किंतु मारा नहीं। वह अपनी असुर-कन्या के साथ फिर उस बिल में चला गया। उधर वह पाशुपत सिद्धि से भ्रष्ट होकर बहुत कष्ट भोगने लगा। मैंने यह घटना स्वयं अपनी आंखों से देखी है। इसी प्रकार देवि ! तुम्हें भी अपने पति का संयोग प्राप्त होगा।"

बंधुमती ने यह कथा सुनकर उस ब्राह्मण को धन देकर संतुष्ट किया। अगले दिन एक और अपूर्व ब्राह्मण बंधुमती के पास आया। उत्सुक होकर बंधुमती ने उससे भी अपने पति के संबंध में पूछा। वह बोला, "देवि ! मैंने तुम्हारे पति को नहीं देखा, किंतु मेरा मन कहता है कि वह शीघ्र ही तुमको मिलेंगे, क्योंकि वियोगी प्रेमियों का संयोग अवश्य ही होता है। इस संबंध में मैं तुम्हें एक कथा सुनाता हूं :

"प्राचीन काल में निषध देश में नल नाम का एक राजा था। वह बहुत ही सुंदर था। अपने समान पत्नी की खोज करते हुए उसने विदर्भ देश के राजा भीम की पुत्री दमयंती का नाम सुना। राजा भीम को भी नल के अतिरिक्त अपनी पुत्री के योग्य कोई वर न दिखाई दिया। एक बार दमयंती अपने नगर में जल-क्रीड़ा के लिए एक तालाब पर गई। वहां पर उसने एक सुंदर राजहंस देखा और उसे पकड़ लिया। पकड़े जाने पर हंस ने मनुष्य की वाणी में कहा, 'हे राजपुत्री ! तुम मुझे छोड़ दो। मैं तुम्हारा उपकार करूंगा। निषध देश का राजा नल तुम्हारे योग्य पति है। तुम दोनों का संयोग कराने में मैं कामदूत का कार्य करूंगा।' तब दमयंती ने उसे छोड़ दिया। हंस वहां से उड़कर निषध राज्य में आ गया। वहां जल-क्रीड़ा करते हुए नल ने उसे पकड़ लिया। हंस ने नल से भी कहा, 'हे राजन ! मुझे छोड़ दो। मैं तुम्हारा उपकार करूंगा। विदर्भ-राज भीम की पुत्री दमयंती पृथ्वीतल में सर्वोत्तम है। देवता भी उसकी कामना करते

हैं। वह तुम में अनुरक्त है। यही तुमसे कहने के लिए मैं यहां आया हूं।' नल ने भी दमयंती के प्रति अपना अनुराग व्यक्त किया। हंस पुनः दमयंती के पास आया और नल के प्रेम की बात कही। तब दमयंती ने माता द्वारा अपने पिता से नल की प्राप्ति के लिए स्वयंवर रचने को कहा। भीम ने ऐसा ही किया। सब राजा निश्चित तिथि पर विदर्भ पहुंचे। राजा नल जब विदर्भ आ रहा था, तो मार्ग में उसे इंद्र, वायु, यम, अग्नि और वरुण, ये पांचों लोकपाल मिले। उन्होंने नल को अपना दूत बनाकर दमयंती के पास भेजा कि वह उन पांचों में से किसी एक को वरण कर ले। दमयंती ने उत्तर में कहा, 'निश्चित ही लोकपाल मनुष्यों से बड़े हैं, किंतु मैं तो नल को मन से पति स्वीकार कर चुकी हूं। अब मुझे लोकपालों से कोई प्रयोजन नहीं है।'

"स्वयंवर के समय इंद्रादि लोकपाल नल का रूप धारण करके उसके ही पास बैठे। वरमाला लिये हुए दमयंती जब सभा में प्रविष्ट हुई, तो उसने छः नलों को एक साथ बैठे हुए देखा। वह बहुत व्याकुल हुई और सूर्य की ओर मुंह करके बोली : 'हे लोकपालो! यदि मैंने स्वप्न में भी नल के अतिरिक्त किसी दूसरे का चिंतन न किया हो, तो मुझे अपना वास्तविक रूप दिखाओ। मैं तो नल की पत्नी हो चुकी हूं, आप मेरे लिए क्यों उद्योग कर रहे हैं?' यह सुनकर इंद्रादि पांचों देव अपने वास्तविक रूप में प्रकट हो गये और दमयंती ने नल को वरण कर लिया। तब आकाश से पुष्प-वृष्टि हुई। राजा भीम ने नल और दमयंती का विधिपूर्वक विवाह कर दिया। इंद्रादि पांचों देवता जब स्वयंवर से लौट रहे थे, तो उन्हें मार्ग में कलि और द्वापर आते हुए मिले। जब देवताओं से उन्हें स्वयंवर के सब समाचार मालूम हुए, तो वे दोनों क्रोध में भर कर बोले, 'दमयंती ने आप देवताओं को भी छोड़कर मनुष्य नल को वरा है, इसलिए हम दोनों उनका वियोग अवश्य करायेंगे।' ऐसी प्रतिज्ञा करके वे दोनों वहां से लौट गये।

"उधर राजा नल भी सात दिन तक ससुर के घर में रहकर दमयंती के साथ अपने देश लौट आया। उन दोनों का शिव-पार्वती की भांति पारस्परिक प्रेम था। कुछ समय के पश्चात उनके चंद्रसेन नाम का पुत्र तथा इंद्रसेना नाम की पुत्री उत्पन्न हुई। इस बीच में कलि और द्वापर भी अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने के लिए अवसर की प्रतीक्षा में रहे। एक दिन राजा नल शराब के नशे में चूर होकर बिना संध्या-

वंदन किये तथा बिना पैर धोये ही रात को सो गया। इस छिद्र को पाकर कलि ने उसके शरीर में प्रवेश किया। ऐसा होते ही राजा नल धर्म-विरुद्ध आचरण करने लगा। इसी प्रकार द्वापर ने भी छिद्र पाकर नल के छोटे भाई पुष्कर के शरीर में प्रवेश किया और वह भी कुपथगामी बन गया। पुष्कर के पास एक सुंदर दांत नाम का श्वेत बैल था। नल ने लोभ वश उसे लेना चाहा, किंतु पुष्कर ने उसकी आज्ञा का उल्लंघन करके उसे न दिया। इसके लिए दोनों भाइयों में जुआ हुआ। इस जुए में नल अपना समस्त राज्य हार गया। यह देखकर दमयंती ने अपने दोनों बच्चों को रथ पर बैठाकर अपने पिता के घर भेज दिया। राज्य हार जाने पर पुष्कर ने नल से कहा, 'अब दांव पर दमयंती को लगाओ।' यह सुनकर नल क्रोध से जल उठा, किंतु उसने प्रतिकूल अवसर देखकर कुछ भी न कहा। तब पुष्कर ने कहा, 'यदि तुम दमयंती को दांव पर नहीं लगाते हो, तो उसे लेकर मेरे राज्य से बाहर चले जाओ।' यह सुनकर नल-दमयंती दोनों राज्य की सीमा के बाहर चले गये। इधर-उधर घूमते हुए वे एक वन में पहुंचे और एक तालाब के किनारे विश्राम करने लगे। इस तालाब केकिनारे नल ने दो हंसों को देखा और पकड़ने के लिए अपना दुपट्टा उन पर फेंका। वे दुपट्टे को लेकर उड़ गये। तब राजा और दमयंती दोनों एक ही वस्त्र धारण कर विश्राम करने लगे। जब दमयंती सो गई, तब नल ने उसका आधा वस्त्र फाड़कर पहन लिया और उसे अकेली छोड़कर चला गया। दमयंती ने जागकर नल को अपने पास न पाया, तो वह विलाप करती हुई वन में इधर-उधर भटकने लगी। एक शिकारी ने उसका धर्म भ्रष्ट करना चाहा, किंतु तभी एक सर्प ने उस शिकारी को काट लिया और उसके सतीत्व की रक्षा हो गई। तभी दैवयोग से कुछ व्यापारी उसे मिल गये, जिनके साथ वह सुबाहु राजा के राज्य में पहुंच गई। वहां की राजपुत्री ने महल के ऊपर से सुंदरी दमयंती को देखा और उसे अपने पास बुला लिया। वह उसकी मौसी थी। दमयंती ने उसकी माता से अपना वृत्तांत कह सुनाया। उधर जब राजा भीम को नल के देश-निर्वासन का समाचार मिला, तो उसने उन दोनों को ढूंढने के लिए अपने आदमी भेजे। उनमें से सुषेण नाम का एक मंत्री घूमता हुआ सुबाहु की राजधानी में आ पहुंचा। इस प्रकार दमयंती सुषेण के साथ अपने पिता के घर आ गई। यहां रहकर वह नल को ढूंढने का प्रयत्न करने लगी।

"इधर राजा नल ने घूमते हुए वन की भयंकर अग्नि देखी। उसमें से उसे यह

सुनाई दिया : 'हे महापुरुष ! मुझे बचाओ। मैं इस दावाग्नि में जल रहा हूं।' यह सुनकर राजा उस आग के समीप गया और उसने कुंडली बांधे हुए एक मणिधर सर्प को देखा, जो आग की लपेट में आ गया था। राजा ने उसे अपने कंधे पर उठा लिया, पर वह उसे दूर ले जाकर ज्यों ही छोड़ने लगा, त्यों ही उसने उसे काट लिया, जिससे उसकी भुजाएं छोटी हो गईं और रूप विकृत एवं काला हो गया। जब राजा ने उससे पूछा, 'आप कौन हैं और आपने मेरी भलाई का यह क्या बदला चुकाया है ?" तो वह बोला, 'हे राजन ! मैं कार्कोट नाम का सर्पराज हूं। मैंने तुम्हें भलाई के लिए ही काटा है, बुराई के लिए नहीं; क्योंकि अज्ञातवास के लिए तुम्हारी यह कुरूपता कार्यसाधक होगी। लो, मैं तुम्हें अग्निशौच नाम के दो वस्त्र देता हूं। जब तुम इन्हें पहनोगे, तुम्हारा स्वरूप पहले जैसा हो जायेगा।' यह सुनकर राजा वहां से कौशल देश में पहुंचा और राजा ऋतुपर्ण के यहां ह्रस्वबाहु के नाम से रसोइया बनकर रहने लगा। वह भोजन-विद्या और रथ चलाने में बहुत प्रसिद्ध हो गया। तभी राजा भीम का एक दूत वहां आ निकला और उसने सुना कि राजा ऋतुपर्ण का रसोइया ह्रस्वबाहु भोजन बनाने तथा रथ चलाने में नल के समान है। दूत उस रसोइये से मिला और उसे यह निश्चय हो गया कि यही नल है। उसने विदर्भ देश लौटकर राजा भीम तथा दमयंती से यह वृत्तांत कहा। दमयंती ने अपने पिता से कहा, 'एक दूत राजा ऋतुपर्ण के यहां भेजकर उनसे कहा जाये कि नल का कोई पता नहीं लगा। इसलिए कल प्रातःकाल ही दमयंती का स्वयंवर है; आप आज ही विदर्भ पहुंच जायें। इस समाचार को सुनकर ऋतुपर्ण आर्यपुत्र के साथ एक दिन में ही आ जायेंगे।' राजा ने ऐसा ही किया। यह संदेश सुनकर ऋतुपर्ण ने ह्रस्वबाहु से कहा, 'मुझे आज ही विदर्भ पहुंचा दो।'

"नल सब कुछ समझ गया। तुरंत तैयार होकर दोनों चल पड़े। नल की रथ चलाने की चतुरता देखकर ऋतुपर्ण ने उससे कहा, 'तुम मुझे रथ-विद्या सिखा दो। मैं तुम्हें ऐसी द्यूत-विद्या सिखा दूंगा कि तुम कभी नहीं हार सकते।'

"द्यूत-विद्या सीखते ही नल के शरीर से एक काला पुरुष बाहर निकल पड़ा और बोला, 'मैं कलि हूं, दमयंती को प्राप्त करने की ईर्ष्या से मैंने ही तुम्हारी दुर्गति की है। कार्कोट ने जब तुम्हें वन में काटा था, तो तुम नहीं काले पड़े, वरन मैं भी काला पड़ गया।' यह कहकर कलि अदृश्य हो गया और राजा भी

पहले की भांति तेजस्वी हो गया।

"ऋतुपर्ण का आगमन सुनकर दमयंती हर्षित हुई। उसने वास्तविकता का पता लगाने के लिए अपनी दासी को ऋतुपर्ण के पास भेजा। दासी ने आकर बताया कि राजा का रसोइया पाक-विद्या में अद्भुत रूप से निपुण है, लेकिन कुरूप भी बहुत है। दमयंती ने सोचा—हो-न-हो मेरे विरह से ही राजा कुरूप हो गये हैं। यह सोचकर अपने पुत्र और पुत्री को दासी के साथ उसके पास भेजा। उन बच्चों को गोदी में बिठाकर नल चुपचाप बड़ी देर तक आंसू बहाता रहा। पूछने पर उसने कहा, 'मेरे भी इतने ही बड़े दो बच्चे हैं, वे अपने नाना के घर हैं, इन बच्चों को देखकर मुझे उनकी याद आ गई।'

"दमयंती ने अगले दिन फिर अपनी दासी से कहा, 'तुम ऋतुपर्ण के रसोइये के पास जाकर कहो कि आज दमयंती भी आपका बनाया भोजन खाना चाहती है।' यह सुनकर नल दमयंती के पास पहुंचा। दमयंती बोली, 'सच बताइये, क्या आप नल हैं? चिंता के समुद्र में डूबती हुई मुझे पार लगाइये।' यह सुनकर नल आंखों में आंसू भरकर बोला, 'सच ही मैं वही कठोर-हृदय नल हूं, जिसने तुम्हें संताप की अग्नि में जलाया है।' यह कहकर उसने दमयंती को सब हाल सुनाया और कार्कोट के दिये हुए अग्निशौच नामक वस्त्र पहन लिये। वह अब अपने पूर्वरूप में प्रकट हो गया। दमयंती नल को अपने पूर्वरूप में पाकर परम प्रसन्न हुई। विदर्भराज भीम ने भी इस समाचार को पाकर अपने नगर में महोत्सव मनाया। राजा ऋतुपर्ण ने भी राजा नल का सत्कार किया। नल अपने सुसर के यहां कुछ दिन रहकर और उसकी सेना को साथ लेकर अपने देश लौटा। वहां जुए में उसने पुष्कर को हरा दिया। बाद को पुष्कर के शरीर से भी द्वापर बाहर आ गया और वह पहले जैसा धर्मात्मा बन गया। राजा नल ने आधा राज्य अपने भाई पुष्कर को दे दिया और आधे पर स्वयं राज्य करने लगा।"

इस कथा को सुनाकर ब्राह्मण ने बंधुमती से कहा, "महापुरुष दुख भोगकर भी कल्याण प्राप्त करते हैं। तुम भी दमयंती की भांति शीघ्र ही अपने पति को प्राप्त करोगी।" बंधुमती भी उस ब्राह्मण को धन आदि से सम्मानित करके पति की प्रतीक्षा में धैर्यपूर्वक रहने लगी। कुछ ही दिनों में महीपाल अपनी माता को लेकर पिता-सहित लौट आया और बंधुमती के साथ सुखपूर्वक राज्य-भोगने लगा।

अपने मंत्री मरुभूति से यह विचित्र कथा सुनकर नरवाहनदत्त बहुत संतुष्ट हुआ।

# दसवां खंड

## : १ :

## शक्तियशा

एक बार नरवाहनदत्त ने सुना कि उसके नगर में वसुधर नाम का मजदूर है। उसने एक जड़ाऊ कंकण पाया है और उसके एक रत्न को हिरण्यगुप्त वैश्य को बेच दिया है। उस कंकण पर राजा का नाम अंकित है।

यह सुनकर राजा ने मजदूर और वैश्य दोनों को रत्न तथा कंकण-सहित बुलवाया और कहा, "अरे! यह कंकण तो मेरे हाथ से शहर में घूमते हुए गिर पड़ा था। तुमने मेरा नाम देखकर इसे मेरे पास क्यों नहीं पहुंचाया?" मजदूर ने कहा, "राजन! मैं तो अनपढ़ हूं, नाम मैं कैसे पढ़ता?" हिरण्यगुप्त ने कहा, "मैंने इस रत्न को पांच हजार अशर्फियों में खरीदा है, इस पर कोई विशेष चिह्न नहीं है, जिससे मैं जान सकता कि यह आपका है।" यह सुनकर यौगंधरायण बोला, "इसमें इन दोनों का कुछ भी दोष नहीं है, क्योंकि मजदूर अनपढ़ और गरीब है। गरीबी में मनुष्य चोरी तक कर लेता है, फिर पड़ी हुई चीज़ को लौटाने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। इस खरीदनेवाले वैश्य का भी कोई दोष नहीं है, क्योंकि इसने पांच हज़ार अशर्फियां देकर इसे खरीदा है।" मंत्री के इस वचन को सुनकर राजा ने हिरण्यगुप्त को पांच हजार अशर्फियां देकर रत्न ले लिया और मज़दूर से भी कंकण लेकर उसे छोड़ दिया। उनके चले जाने पर वसंतक राजा से बोला, "दैव का जिस पर कोप होता है, उसके पास प्राप्त धन भी नहीं रहता। इस संबंध में मैं आपको एक कहानी सुनाता हूं:

"प्राचीन काल में पाटलिपुत्र में शुभदत्त नाम का एक लकड़हारा रहता था, वह प्रति दिन वन से लकड़ियां लाकर अपने कुटुंब का पोषण करता था। एक बार जब

वह वन से लौट रहा था, तो उसने दिव्य वस्त्रों को धारण किये हुए चार यक्षों को देखा। उसका सब हाल जानकर यक्षों ने कहा,'तुम हमारे पास नौकर हो जाओ। हम तुम्हारे परिवार का पालन करते रहेंगे।' शुभदत्त ने उनकी बात मान ली। भोजन का समय होने पर उन यक्षों ने उससे कहा, 'देखो, यह घड़ा इच्छानुसार फल देने-वाला है। तुम इसमें हाथ डालो, तुम्हें इच्छानुसार भोजन मिलेगा।' उसने ऐसा ही किया। घड़े में से खाद्य-पदार्थ निकालकर उन सबको खिलाये और स्वयं भी खाये। तीन महीने तक सेवा करने पर यक्ष उससे प्रसन्न होकर बोले, 'शुभदत्त! हम तुमसे प्रसन्न हैं—तुम जो मांगोगे वही देंगे।' शुभदत्त ने कहा, 'यदि आप वास्तव में मुझसे प्रसन्न हैं, तो यह भद्रघट मुझे दे दीजिये!' यक्षों ने कहा, 'यह घड़ा फूटने पर भाग जायगा, तुम और कोई वर मांगो।' जब समझाने पर भी शुभदत्त ने अन्य कोई वर न चाहा, तो यक्षों ने उसे वह भद्रघट दे दिया। उसे लेकर वह अपने घर आया और उससे इच्छित भोजनादि प्राप्त करके सकुटुंब सुखपूर्वक रहने लगा। उस घड़े के प्रभाव से वह मालदार हो गया। एक दिन जब उसने शराब पी रखी थी, तो उसके बंधुओं ने उससे पूछा, 'तुम्हें यह संपत्ति कहां से प्राप्त हुई?' उस मूर्ख ने स्पष्ट रूप से न बताकर शराब के नशे में सिर पर वह घड़ा रखकर नाचना शुरू कर दिया। परिणाम यह हुआ कि वह घड़ा गिरकर फूट गया और भाग गया। सो हे राजन! शराब पीने के दोष से मनुष्यों की बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है और वे प्राप्त वस्तु की भी रक्षा नहीं कर पाते।"

सायंकाल नरवाहनदत्त मित्रों के साथ महल में आया और पलंग पर लेट गया, लेकिन उसे नींद नहीं आई। तब मरुभूति बोला, "हे देव! आप वेश्याओं के प्रेम की अस्थिरता को जानते हुए भी उनमें इतने अनुरक्त क्यों हैं? उनके प्रेम में कभी भी गंभीरता और सद्भावता नहीं होती। इस संबंध में मैं आपको एक कथा सुनता हूं:

"चित्रकूट नाम के एक नगर में विशाल धनपति रत्नवर्मा नामक एक वैश्य रहता था। उसके ईश्वरवर्मा नाम का पुत्र था। जब ईश्वरवर्मा समस्त विद्याओं को पढ़कर जवान हुआ, तो उसके पिता रत्नवर्मा ने सोचा कि धनवान व्यक्तियों के लिए रूपवती वेश्याएं प्राण और धन को हरनेवाली होती हैं। सो अपने इस पुत्र को वेश्याओं के छल-कपट सिखाने के लिए किसी कुटनी के पास छोड़ दूं। यह विचार-कर वह उसको यमजिह्वा नाम की कुटनी के घर लेकर पहुंचा और उससे बोला,

'यह मेरा पुत्र है। मैं इसे वेश्याओं के छल-कपट की शिक्षा देना चाहता हूं। यदि तुम मेरे पुत्र को इसमें निपुण कर दोगी, तो मैं तुम्हें एक हज़ार अशर्फियां दूंगा।' यमजिह्वा ने उसे शिक्षा देना स्वीकार कर लिया। ईश्वरवर्मा एक वर्ष में इस विद्या में भी निपुण होगया। फिर कुछ दिन बाद ईश्वरवर्मा को उसके पिता ने पांच करोड़ अशर्फियां देकर व्यापार के लिए भेजा। वह अपने साथियों के साथ कांचनपुर पहुंचा। वहां नहा-धोकर जब वह नगर में घूमने निकला, तो उसने देव-मंदिर में नाचती हुई एक सुंदर वेश्या को देखा। उसे देखकर वह एकदम उस पर आसक्त हो गया और उसकी सीखी हुई सभी विद्याएं लुप्त हो गईं। उसने अपने मित्र को उसके पास भेजकर उससे मिलने की इच्छा प्रकट की। उस वेश्या ने भी उससे मिलना सहर्ष स्वीकार कर लिया। वह मकरकटी नाम की वेश्या की पुत्री थी। ईश्वर-वर्मा अपने डेरे पर कुशल रक्षकों को छोड़कर उसके घर चला गया। वेश्या ने उसे बनावटी प्रेम दिखाकर ऐसा मोहित कर लिया कि वह अपने डेरे पर भी जाना भूल गया और उसे पच्चीस लाख अशर्फियां देने लगा। उस धन को बनावटी रूप से अस्वीकार करती हुई वह वेश्या ईश्वरवर्मा से बोली, 'मैंने बहुत सा धन पाया है, किंतु आप-सा पुरुष नहीं प्राप्त किया। जब मैंने आपको पा लिया, तो आपका धन भी मेरा ही है। जैसा आपके पास, वैसा ही मेरे पास।' उसके इस बनावटी व्यवहार से वह और भी अधिक मुग्ध हो गया। तब मकरकटी ने कहा, 'बेटी, हमारा धन भी इनका ही है, फिर यह भी लेकर यदि उसीमें रख दिया जाय, तो क्या हानि है?' माता के ये वचन सुनकर पुत्री ने बड़ी मुश्किल से वे अशर्फियां लीं। ईश्वरवर्मा उसके प्रेम को सच्चा समझकर उसके यहां दो महीने रहा और उसने उसे दो करोड़ अशर्फियां और भेंट कर दीं। एक दिन अर्थदत्त नाम का उसका मित्र ईश्वरवर्मा के पास पहुंचा और कहने लगा, 'हे मित्र! क्या तुम कुटनी की सिखाई हुई सारी विद्याओं को भूल गये? वेश्याओं का प्रेम झूठा होता है। सो चलो, इस शेष धन से व्यापार करने चलें।' मित्र की यह बात सुनकर ईश्वरवर्मा बोला, 'मित्र, तुम ठीक कहते हो कि वेश्याएं विश्वसनीय नहीं होतीं, किंतु यह सुंदरी ऐसी नहीं है। यह मेरे बिना प्राण छोड़ देगी। यदि चलना ही चाहते हो, तो इससे पूछ-कर चलो।' तब अर्थदत्त उस वेश्या के पास पहुंचा और बोला, 'ईश्वरवर्मा व्यापार के लिए स्वर्णद्वीप जाना चाहता है। वहां से बहुत सा धन कमाकर वह शीघ्र ही लौटेगा और तब आपके साथ सुखपूर्वक रहेगा। आप उसे आज्ञा दें।' यह सुन-

कर वह सुंदरी आंखों में आंसू भरकर बोली, 'आप लोग जानें, मैं क्या कहूं ? परिणाम बिना जाने कौन किसका विश्वास करेगा ? सो जो कुछ मेरे भाग्य में होना होगा, वह होगा।' उसकी ये बातें सुनकर उसकी माता ने भी उनके सामने उसे बहुत समझाया। पीछे से उसने ईश्वरवर्मा के जाने के मार्ग में एक कुएं में गुप्त-रीति से जाल डलवा दिया। जब ईश्वरवर्मा चला, तो वह अपनी माता के साथ उसको विदा करने उस कुएं तक आई, जिसमें जाल डलवा रखा था। ईश्वरवर्मा उससे विदा होकर ज्यों ही कुछ कदम चला, त्यों ही वह उस कुएं में कूद पड़ी। चारों ओर हाहाकार मच गया। उसकी माता भी 'हाय पुत्री!' 'हाय पुत्री!!' कहकर चिल्लाने लगी, जिसे सुनकर ईश्वरवर्मा लौट आया और अपनी प्रियतमा को कुएं में गिरी हुई जानकर मूर्छित हो गया। तब मकरकटी ने अपने नौकर को कुएं में उतार दिया। उसने वहीं से कहा, 'सौभाग्य से लड़की जीवित है।' फिर उन्होंने उस सुंदरी को कुएं से निकाल लिया। ईश्वरवर्मा को इस घटना से उस वेश्या पर पूर्ण विश्वास हो गया। वह उसके प्रेम को सत्य जानकर फिर उसके घर ही रहने लगा। उसके मित्र अर्थदत्त ने उसे बहुत समझाया, किंतु उसने उसकी एक न सुनी और एक मास में ही शेष तीन करोड़ आशर्फियां भी उस पर खर्च कर दीं। उस वेश्या ने जब देखा कि उसके पास कुछ नहीं रहा, तो उसे अपने घर से निकाल दिया। तब अर्थदत्त आदि ने जाकर उसके पिता से समस्त वृत्तांत कह सुनाया। वह बहुत दुखी हुआ और यमजिह्वा कुटनी के पास जाकर बोला, 'तुमने मुझसे पूरा मूल्य लेकर भी मेरे पुत्र को कैसी शिक्षा दी जो वह ठगा गया ?' और उसने उसे मकरकटी का वृत्तांत सुना दिया। यमजिह्वा ने कहा, 'तुम अपने पुत्र को यहां बुला लो। मैं उसे ऐसी शिक्षा दूंगी कि वह मकरकटी का सारा धन हर लायेगा।' रत्नवर्मा ने पुत्र को बुलवाने के लिए उसके मित्र अर्थवर्मा को भेजा। वह शीघ्र ही ईश्वरवर्मा को लेकर लौट आया। तब रत्नवर्मा पुत्र को लेकर यम-जिह्वा के पास पहुंचा और पुत्र ने उसे सारा हाल कह सुनाया। यमजिह्वा ने कहा, 'इसमें अवश्य मेरा अपराध है। मैंने भूल से तुम्हें यह शिक्षा नहीं दी। उस वेश्या ने निश्चय ही कुएं में जाल डलवा दिया होगा, जिससे सुंदरी कुएं में गिरी और मरी नहीं। इसका मेरे पास उपाय है।' ऐसा कहकर उसने अपने आल नाम के बंदर को मंगवाया। उनके आगे ही उसे एक हजार अशर्फियां निगलवा दीं और उससे कहा, 'इसे बीस दे दो, इसे पच्चीस दे दो, इत्यादि।' उस बंदर ने भी जितनी

अशर्फियां थीं उतनी, जिस-जिसको बताईं ,दे दीं । यह दिखाकर उसने ईश्वरवर्मा से कहा कि तुम इस बंदर को ले जाओ और इसे एकांत में अशर्फियां निगलवाकर उस वेश्या के सामने इससे बंटवाना । वह वेश्या इस बंदर को अशर्फियों का अक्षय कोष समझकर खरीद लेगी और इसके बदले में तुम्हें अपना सर्वस्व देगी ।

"ईश्वरवर्मा उस बंदर को तथा दो करोड़ अशर्फियां लेकर फिर कांचनपुर गया और उसने बंदर को कुछ अशर्फियां निगलवा दीं । वेश्या ने उसे फिर धन-युक्त जानकर उसका खूब सत्कार किया । ईश्वरवर्मा ने उस वेश्या सुंदरी तथा मकरकटी के सामने उस बंदर से अशर्फियां बंटवाईं । नित्य उसे अशर्फियां बांटता हुआ देखकर माता और पुत्री ने सोचा कि निश्चित ही इस ईश्वरवर्मा को बंदर के रूप में चिंतामणि सिद्ध हो गया है । यदि यह हमें मिल जाये, तो हमारे सारे मनोरथ पूर्ण हो जायें । एक दिन सुंदरी ने ईश्वरवर्मा से कहा, 'तुम यह बंदर मुझे दे दो ।' ईश्वरवर्मा ने कहा, 'यह बंदर पिताजी का सर्वस्व है, इसे नहीं दिया जा सकता ।' सुंदरी ने कहा, 'इसके लिए मैं तुम्हारे पिताजी को पांच करोड़ अशर्फियां दे दूंगी ।' ईश्वरवर्मा ने कहा, 'यदि तुम अपना सर्वस्व तथा समस्त नगर भी इसके बदले में दो, तब भी इसका मूल्य नहीं चुकाया जा सकता ।' सुंदरी बोली, 'अगर तुम मुझे यह नहीं दोगे, तो मेरी माता मुझसे नाराज होगी ।' 'इतना कहकर उसने ईश्वरवर्मा के पैर पकड़ लिये । तब अर्थदत्त आदि ने उससे कहा, 'यदि इनका इतना अनुरोध है, तो यह बंदर इन्हें दे दो । जो कुछ होगा देखा जायेगा !' ईश्वरवर्मा ने बंदर उसे दे दिया और उसके बदले में उसका सर्वस्व लेकर चला आया ।

"वह बंदर सुंदरी को दो दिन तक एक-एक हजार अशर्फियां देता रहा, किंतु फिर उसने कुछ न दिया । तब कुपित होकर सुंदरी ने उसके घूंसे मारे । बंदर ने गुस्से में भरकर सुंदरी तथा उसकी माता मकरकटी के मुंह को बुरी तरह से नोंच लिया । वे रक्त-रंजित हो गईं और उन्होंने बंदर को लाठियों से मार डाला । उसके बाद स्वयं भी मरने के लिए तैयार हो गईं । इस वृत्तांत को जानकर लोग उनकी हंसी उड़ाने लगे और कहने लगे, 'इस मकरकटी ने जिसका धन "जाल" से हर लिया था उस बुद्धिमान ने इसका धन "आल" से हर लिया !'

"ईश्वरवर्मा भी स्वर्णद्वीप से बहुत सा धन कमाकर चित्रकूट में अपने पिता के यहां आ गया । रत्नवर्मा ने यह देखकर बड़ा उत्सव मनाया और यमजिह्वा

को खूब धन दिया।"

मरुभूति से आल-जाल की यह कथा सुनकर नरवाहनदत्त अपने मित्रों के साथ खूब हंसा।

## : २ :

## स्त्री-चरित्र

मरुभूति से वेश्याओं की निंदा सुनकर गोमुख ने भी नरवाहनदत्त को कुमुदिका वेश्या की कहानी सुनाई :

प्रतिष्ठान देश में विक्रमसिंह नामक राजा राज्य करता था। उसकी पत्नी का नाम शशिलेखा था। एक बार उसके पांच-छः कुटुंबी राजाओं ने उस पर आक्रमण कर दिया। उसके अनंतगुण नाम के मंत्री ने उनसे संधि का प्रस्ताव रखा, किंतु राजा विक्रमसिंह ने उनसे संधि न की और मंत्री की सलाह को न मानकर युद्ध के लिए निकल पड़ा। लेकिन उन पांचों की सम्मिलित सेनाओं ने उसकी सेना को मार भगाया। वे सब अकेले राजा पर टूट पड़े। राजा विक्रमसिंह के मंत्री ने उसे घिरा हुआ देखकर कहा, "आपने तब मेरी बात नहीं मानी। अब इतना तो कीजिय कि हाथी से उतरकर और घोड़े पर बैठकर निकल भागिये। यदि जीवित रहे तो शत्रु को फिर जीतेंगे।" राजा ने मंत्री की सलाह मान ली। वह सेना के बाहर चला आया और भेस बदलकर मंत्री के साथ उज्जयनी नगरी में पहुंचा। वहां कुमुदिका नाम की एक प्रसिद्ध और बहुत धनी वेश्या थी। वे दोनों उसके यहां पहुंचे। कुमुदिका ने उसके वेष तथा लक्षणों ने उसे राजा समझ लिया। उसने उठकर राजा का बड़ा स्वागत-सत्कार किया और कहने लगी, "मेरा बड़ा सौभाग्य है, जो आपने अपने चरणों से मेरा घर पवित्र किया है। मैं अपकी क्रीत दासी हूं। मेरे दो सौ हाथी, बीस हज़ार घोड़े तथा रत्न-परिपूरित घर—सब कुछ आपके हैं।" राजा मंत्री के साथ उसके मकान में रहने लगा। राजा उसके धन को ज्यों-ज्यों अधिक खर्च करता, त्यों-त्यों वह अधिक प्रसन्न होती। राजा ने समझा कि यह मुझ पर अनुरक्त है। एक दिन अनंतगुण ने राजा से एकांत में कहा, "वेश्याओं में इतना सद्भाव नहीं होता। निश्चय ही यह वेश्या किसी कारणवश आपसे प्रेम-भाव प्रदर्शित करती है।" राजा बोला, "ऐसी

बात नहीं है। यह मुझसे सच्चा प्रेम करती है और मेरे लिए प्राण भी दे सकती है। यदि तुम्हारा विश्वास न हो तो मैं इसकी परीक्षा लेकर दिखा सकता हूं।" ऐसा कहकर उसने किसी बहाने से कम खा-पीकर अपना शरीर कमज़ोर कर लिया और एक दिन अपने को मरा हुआ दिखाकर वह निश्चेष्ट होकर लेट गया। उसके परिजन उसे श्मशान में ले गये और चिता तैयार की। कुमुदिका वेश्या बहुत रोकने पर भी उसके साथ चिता में भस्म होने को तैयार हो गई। जब वह भी उसके साथ चिता पर लेट गई, तो राजा आग लगाने से पहले ही अंगड़ाई लेता हुआ उठ खड़ा हुआ। राजा को जीवित हुआ देखकर सब लोग उसे कुमुदिका के साथ घर ले आये। तब एकांत में राजा के मंत्री ने कहा, "मुझे इतने पर भी विश्वास नहीं है। निश्चय ही इसका कोई कारण है।" इसी समय राजा का एक गुप्तचर भी वहां आ गया। उसने आकर समाचार दिया कि रानी शशिलेखा आपको मरा हुआ जानकर अग्नि में जलकर मर गई हैं।

यह सुनकर राजा मूर्छित हो गया और होश में आने पर विलाप करने लगा। जब कुमुदिका को पता चला, तो वह राजा से बोली, "आपने मुझसे पहले ही क्यों नहीं कहा? आप मेरे धन से सेना एकत्र करके शत्रु को जीतिये।" राजा ने ऐसा ही किया। अबकी बार युद्ध में उसकी विजय हुई। अपना राज्य प्राप्त करके राजा ने कुमुदिका से कहा, "तुम क्या चाहती हो?" कुमुदिका ने उत्तर दिया, "देव, यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं, तो उज्जयनी में श्रीधर नाम का ब्राह्मण-पुत्र मेरा प्रेमी है। उसे राजा ने किसी अपराध में बंदी बना लिया है, आप उसे छुड़ा दीजिये। आपको राज-लक्षणों से युक्त देखकर इसी आशा से मैंने इतने दिनों तक आपकी भक्ति-पूर्वक सेवा की है। जब मैंने आपको मरा हुआ देखा तो सोचा कि आपकी मृत्यु हो जाने से मेरी अभिलाषा पूर्ण न होगी। इसी कारण मैं भी आपके साथ चिता में भस्म होने के लिए तैयार हो गई थी।" तब राजा ने मन में सोचा—निश्चय ही मंत्री का कहना ठीक था कि वेश्याओं के मन का कोई पता नहीं, उनका प्रेम सच्चा नहीं होता। लेकिन उज्जयनी जाकर उसने श्रीधर को छुड़ा दिया और वेश्या को बहुत सा धन दिया। फिर वह अपने मंत्री अनंतगुण को बड़ा बुद्धिमान समझकर उसकी सम्मति से राज्य करने लगा।

यह कथा कहकर गोमुख चुप हो गया। लेकिन तपंतक बोला, "हे राजन! वेश्या ही क्या, सभी स्त्रियां चंचल स्वभाव की होती हैं। उन पर विश्वास नहीं

करना चाहिए। इसी नगरी में मैंने जो आश्चर्य देखा है, वह मैं आपको सुनाता हूं। यहां बलवर्मा नाम का एक वैश्य रहता था। उसकी स्त्री का नाम चंद्रश्री था। उसने खिड़की से शीलहर नामक एक सुंदर वैश्य कुमार को देखा। देखते ही वह उस पर मुग्ध हो गई और अपनी सखी के द्वारा उसे उसके घर बुलवाया। फिर तो वे दोनों प्रति दिन मिलने लगे। धीरे-धीरे उनके प्रेम की बात संबंधियों और परिवार के व्यक्तियों पर भी प्रकट हो गई। अकेला बलवर्मा ही उसे असती नहीं मानता था। एक बार बलवर्मा बहुत बीमार पड़ा, तब भी वह अपनी सखी के घर जाकर शीलहर से मिलती रही। एक दिन जब वह शीलहर के पास ही थी, बलवर्मा का देहांत हो गया। उसे मृत जानकर चंद्रश्री संबंधियों द्वारा रोकी जाने पर भी बलवर्मा के साथ सती हो गई। इस प्रकार स्त्रियों के चित्त की गति बड़ी गहन है। उसे जाना नहीं जा सकता। वे प्रेम किसी दूसरे के साथ करती हैं और सती अपने पति के साथ हो जाती हैं।"

तपंतक की कहानी सुनकर हरिशिख बोला, "क्या यहीं के देवदास नामक व्यक्ति का वृत्तांत आपने नहीं सुना ? वह यहीं के एक गांव में रहता था। उसकी स्त्री दुशीला थी। वह किसी परपुरुष से प्रेम करती थी। उसके दुराचार को सभी जानते थे। एक दिन देवदास किसी कार्य से राजकुल में गया था। दुशीला ने उस परपुरुष को देवदास का वध कराने के लिए दिन में ही अपने मकान के ऊपर के भाग में छिपाकर रख लिया। रात में जब देवदास आकर सो गया, तो उस जार ने उसे मार डाला। दुशीला ने अपने उप-पति को तो भगा दिया और बाद में यह कहकर शोर मचाने लगी कि मेरे पति को चोरों ने मार डाला। उसका चिल्लाना सुनकर लोग वहां आ गये और उन्होंने देखकर कहा, 'यदि तुम्हारे पति को चोरों ने मारा है, तो वे यहां से कुछ भी चुराकर क्यों नहीं ले गये ?' उसका छोटा बच्चा इन सब बातों को देख रहा था। जब उन लोगों ने उस बालक से पूछा, 'तेरे पिता को किसने मारा है ?' तो उसने स्पष्ट बता दिया, 'दिन में एक युवक ऊपर छिप गया था और रात को उसने ही नीचे उतरकर पिता की हत्या कर दी। मेरी माता मुझे लेकर पहले ही पिता के पास से उठ गई थी।' बालक के इस बयान से उन्होंने जान लिया कि उसके उप-पति ने ही देवदास को मारा है। उन्होंने जार को ढूंढ़कर मार डाला और बच्चे को लेकर उस दुशीला को भी घर से निकाल दिया। इस प्रकार अन्य पुरुष में आसक्त स्त्री सर्पिणी की भांति

घातक होती है ।"

यह सुनकर गोमुख कहने लगा, "आप लोग दूर क्यों जाते हैं ? यहीं वत्सराज उदयन के नौकर वज्रसार के साथ जो हास्ययुक्त घटना घटी है, उसे आप सुनिये । वज्रसार बड़ा ही सुंदर और शूरवीर था । उसकी पत्नी भी बहुत रूपवती थी । उसे वह प्राणों से भी अधिक प्यार करता था । एक बार उसका श्वसुर स्वयं अपनी पुत्री को लेने आया । वज्रसार भी निमंत्रित होने पर अपनी पत्नी के साथ ससुराल गया और वहां तीन महीने तक सुखपूर्वक रहकर लौट आया और पूर्ववत राजा की सेवा में लग गया । उसकी पत्नी अपने पिता के घर ही रह गई । कुछ दिन बीतने पर पता लगा कि वहां वह किसी दूसरे पुरुष पर आसक्त हो गई है । वज्रसार ने सोचा कि यह बात सत्य हो सकती है, क्योंकि मैंने उसे लाने के लिए एक आदमी भेजा था, पर वह आई नहीं । सो, मैं स्वयं उसे लेने के लिए जाऊंगा और देखूंगा कि क्या बात है ? यह सोचकर वह स्वयं ससुराल गया और उसे बिदा कराकर चल दिया । रास्ते में एक निर्जन वन में उसने पत्नी से कहा, 'मुझे पता लगा है कि तुम्हारा किसी अन्य पुरुष से प्रेम हो गया है ? सो सच बताओ क्या बात है ? अन्यथा मैं तुम्हें बांधूगा ।' स्त्री बोली, 'यदि तुम्हें विश्वास है, तो जो कुछ तुम्हारी इच्छा हो, सो करो ।' वज्रसार ने विश्वास कर लिया, क्योंकि उसके मन में भी खोट पैदा हो गया था । इसी बीच मौका पाकर उस स्त्री ने वज्रसार के हाथ-पैर बांध दिये और उसके ही शस्त्र से उसके नाक-कान काट लिये । फिर वह उसके ही वस्त्र धारण करके वहां से भाग गई । बाद में किसी वैद्य ने, जो वहां औषधि लेने के लिए आया था, उसने बंधन काटकर उसे छुड़ाया । सब लोगों के उपहास का पात्र बनकर आज भी वह यहां रहता है । सो, हे राजन ! स्त्रियों का कौन विश्वास करे !"

गोमुख के यह कथा कह लेने के पश्चात मरुभूति फिर बोला, "स्त्रियों का मन बड़ा ही अस्थिर होता है । इस संबंध में मुझे एक कथा याद आ गई है । प्राचीन काल में दक्षिणापथ में सिंहबल नाम का एक राजा राज्य करता था । उसकी सारी रानियों में मालव सामंत की पुत्री कल्याणवती नाम की प्रिय पत्नी श्रेष्ठ थी । एक बार उसके संबंधियों ने मिलकर उसे परास्त करके राज्य से निकाल दिया । वह अपनी पत्नी कल्याणवती के साथ अपनी ससुराल को चला । मार्ग में वन में एक शेर ने उन पर आक्रमण कर दिया । राजा ने तलवार के प्रहार

से उसे मार गिराया। आगे एक जंगली हाथी गरजता हुआ उन पर झपटा, राजा ने उसे भी मार दिया। अकेले राजा ने मार्ग में मिले हुए चोरों के झुंड को भी मार भगाया। इस प्रकार मार्ग में अपने अद्भुत पराक्रम दिखाता हुआ वह अपनी ससुराल पहुंचा। वहां जाकर उसने अपनी पत्नी से कहा कि तुम मार्ग की इन घटनाओं के बारे में अपने पिता के घर किसीसे मत कहना। कल्याणवती अपने पिता के घर ही रही और सिंहबल अपने श्वसुर की सेना लेकर शत्रुओं को जीतने चला गया। एक दिन कल्याणवती ने झरोखे से एक अत्यंत सुंदर पुरुष को जाते हुए देखा। उसे देखकर उसका मन आसक्त हो गया और उसने अपनी सखी के द्वारा उसे झरोखे से महल में बुलवा लिया। वह पुरुष आकर रानी के प्रताप और तेज से प्रभावित होकर अलग आसन पर बैठ गया। रानी ने समझ लिया कि यह व्यक्ति किसी नीच वंश का है। इसी बीच में वहां एक सर्प निकल आया। उसे देखकर पहले तो वह आदमी डर कर खड़ा हो गया, पर बाद में उसने सर्प को धनुष लेकर बाण से मार डाला। अपनी इस बहादुरी पर वह आदमी प्रसन्न होकर नाचने लगा। उसे नाचता हुआ देखकर कल्याणवती को बड़ी ग्लानि हुई कि इस नीच पराक्रमहीन अधम व्यक्ति को धिक्कार है, जो इतनी-सी बात पर नाच रहा है। कल्याणवती की ग्लानि को देखकर उसकी सखी बाहर जाकर पुनः लौट आई और बोली, 'देवि! तुम्हारे पिताजी आ रहे हैं।' यह कहकर उसने उस पुरुष को उसी गुप्त मार्ग से, जिससे वह प्रविष्ट हुआ था, निकाल दिया। उसके चले जाने पर कल्याणवती ने सखी को अपने पति की सिंह, हाथी तथा चोरों को अकेले मार गिराने की बात कह सुनाई और बोली, 'मेरा पति तो इन सबको अकेले ही मार कर भी लज्जित होता था और उसने मुझसे कहा था कि इन बातों को किसीसे न बताना और यह सांप को ही मारकर नाचता है। इसलिए मेरे इस अपवित्र चित्त को धिक्कार है, जो ऐसे पराक्रमी पति को छोड़कर इस नीच पर आसक्त हुआ।' इस प्रकार वह कल्याणवती पश्चात्ताप करके अपने पति की प्रतीक्षा करने लगी। इसी बीच सिंहबल अपने शत्रुओं को जीतकर लौट आया और कल्याणवती को अपने राज्य में ले जाकर सुखपूर्वक रहने लगा। जब इतनी विवेकशील स्त्रियों का भी मन वीर तथा सुंदर पति के होने पर नीच व्यक्तियों पर रीझ जाता है, तो साधारण स्त्रियों का शुद्ध चरित्र मिलना तो बहुत ही दुर्लभ है।"

: ३ :

# शास्त्रगंज तोते की कथा

एक दिन प्रातःकाल नरवाहनदत्त आवश्यक कार्यों से निबटकर मंत्रियों के साथ बगीचे में घूमने गया। वहां उसने पहले आकाश से उतरते हुए एक प्रकाश को देखा और बाद में बहुत सी विद्याधारियों को। उन विद्याधारियों में एक सुंदरी कन्या ऐसी मनोहारिणी थी, जैसी तारों के बीच में चंद्रमा की कांति। उसे देखकर राजा का हृदय मुग्ध हो गया। मंत्रियों के साथ उसके पास पहुंचकर उसने पूछा, "सुंदरी! तुम कौन हो? और यहां क्यों आई हो?" कन्या बोली, "हिमालय पर्वत पर कांचनशृंग नाम का एक नगर है, वहां स्फटिक नाम का एक विद्याधरों का स्वामी है। वह बड़ा ही धार्मिक और शरणागत वत्सल है; उसकी हेमप्रभा नाम की रानी से पार्वती के वर से मैं उत्पन्न हुई हूं। मेरा नाम शक्तियशा है। मेरे पांच बड़े भाई हैं। पार्वती ने मेरे व्रत से प्रसन्न होकर मुझे समस्त विद्याएं दीं और यह वर दिया कि विद्याधरों का भावी चक्रवर्ती वत्सराज का पुत्र नरवाहनदत्त तेरा पति होगा। आज रात्रि में फिर पार्वतीजी ने मुझे स्वप्न में दर्शन देकर कहा कि हे पुत्री! तू प्रातःकाल अपने पति को जाकर देख आ। एक मास के अंदर ही तेरा पिता उसके साथ तेरा विवाह कर देगा। सो मैं आपके दर्शन करने यहां चली आई हूं और अब अपने स्थान को जा रही हूं।" ऐसा कहकर वह अपनी सखियों के सहित आकाश में उड़ गई। नरवाहनदत्त भी उसके विवाह के लिए उत्सुक होकर बेचैनी की हालत में अपने घर लौट आया। उसे एक महीना भी युग के समान प्रतीत होने लगा। उसे दुखी देखकर गोमुख ने मनोरंजन के लिए एक कथा सुनाई :

प्राचीन काल में कांचनपुरी नाम की एक नगरी में सुमना नाम का प्रतापी राजा राज्य करता था। एक दिन वह दरबार में बैठा हुआ था, तभी द्वारपाल ने आकर कहा, "हे देव! मुक्तलता नाम की निषादराज की पुत्री पींजड़े में एक तोते को लिये हुए बाहर दरवाजे पर खड़ी है और वीरप्रभ नाम का उसका भाई भी उसके साथ है। दोनों आपके दर्शन करना चाहते हैं।" राजा की आज्ञा पाकर उन दोनों ने प्रवेश किया। उस कन्या के अमानवीय और अद्भुत रूप-सौंदर्य को देखकर सब सभासद आश्चर्य चकित रह गये। उसने राजा को प्रणाम करके कहा,

"देव ! यह चारों शास्त्रों को जाननेवाला शास्त्रगंज नाम का तोता है। यह कवि है और समस्त विद्याओं में निपुण है। मैं इसे आपके लिए उपयोगी समझकर सेवा में लाई हूं। आप इसे स्वीकार कीजिये।" यह कहकर उसने वह तोता राजा को समर्पित कर दिया। तोते ने राजा के सामने एक श्लोक पढ़ा। फिर पूछा, "हे राजन! बताइये कि मैं किस शास्त्र से कौनसा प्रमेय कहूं ?" यह सुनकर राजा अत्यंत विस्मित हुआ। तब उसके मंत्री ने उससे कहा कि मेरे विचार में यह तोता पूर्वजन्म में कोई ऋषि था और किसी पाप के कारण तोता बन गया है। इसलिए पुण्य के प्रभाव से पूर्वजन्म में पढ़े हुए शास्त्र इसे स्मरण हैं। मंत्री के ऐसा कहने पर राजा ने तोते से पूछा, "हे भद्र ! मुझे बड़ी उत्सुकता है, आप अपने पूर्वजन्म का वृत्तांत सुनाइये। आपका जन्म कहां हुआ था ? तोता होने पर भी आपको इतने शास्त्रों का ज्ञान कहां से प्राप्त हुआ ?"

तब तोते ने आंखों में आंसू भरकर धीरे-धीरे कहना शुरू किया, "हे देव ! यद्यपि मेरे पूर्वजन्म का वृत्तांत अकथनीय है, फिर भी मैं आपकी आज्ञा से कहता हूं। सुनिये : हिमालय के पास एक रोहिणी वृक्ष था। उस पर अनेक दिशाओं से आकर बहुत से पक्षी रहते थे। उस पर एक तोता भी अपनी तोती के साथ रहता था। दुर्भाग्यवश मैं उसका पुत्र होकर उत्पन्न हुआ। मेरे पैदा होते ही मेरी माता मर गई। बूढ़े पिता ने ही अपने पंखों में छिपाकर मुझे पाला-पोसा। वह आस-पास के रहनेवाले तोतों के जूठे फलों को लाकर मुझे देते और मैं उन्हें खाकर अपना पेट भरता। एक बार वहां बहुत से भील शिकार खेलते आ गये। एक बूढ़े भील ने शाम तक घूमकर भी जब कहीं मांस न पाया, तो उसने भूख से पीड़ित होकर हमारे घोंसलों को देखा। उसने पेड़ पर चढ़कर बहुत से पक्षियों तथा तोतों को घोंसलों से खींचकर और मारकर जमीन पर डाल दिया। यम के समान भयंकर उस भील को आता हुआ देखकर मैं भयभीत होकर पिता के पंखों में छिप गया। उस दुष्ट ने हमारे घोंसले में आकर मेरे पिता की गर्दन दबोच दी और पेड़ से नीचे फेंक दिया। मैं भी पिता के पंखों में लिपटा हुआ जमीन पर गिर पड़ा और डरता हुआ पास में पड़े हुए पत्तों और तिनकों में छिप गया। पेड़ से उतरकर उस भील ने कुछ पक्षियों को तो आग में भूनकर खा लिया और शेष बचे हुओं को लेकर वह अपने घर चला गया। उसके चले जाने पर मेरा भय शांत तो हो गया, किंतु वह रात्रि दुख के कारण मैंने बड़ी बेचैनी से काटी। प्रातःकाल सूर्य निकलने पर

प्यास से व्याकुल होकर मैं धीरे-धीरे घिसटता हुआ पास के पद्मसर नामक तालाब के किनारे पहुंच गया। वहां मरीचि नाम के मुनि स्नान करके रेत में बैठे हुए थे। उन्होंने मुझे कमजोर देखकर मेरे मुख में पानी की बूंदें डालीं और दोने में रखकर मुझे अपने आश्रम में ले गये। वहां पुलस्त्य नाम के मुनि मुझे देखकर मुस्कराये। यह देखकर दूसरे मुनियों ने उनसे मुस्कराने का कारण पूछा। वह दिव्यदृष्टिवाले महर्षि थे। उन्होंने कहा, 'इस तोते को देखकर मैं दुख से मुस्कराया हूं, क्योंकि यह शाप के कारण इस योनि को प्राप्त हुआ है। इसकी कहानी मैं तुम्हें दैनिक कार्यों से निवृत्त होकर सुनाऊंगा। तब इसे भी अपने पूर्वजन्म की याद आ जायेगी।' नित्य-कर्म से निवृत्त होकर उन्होंने मेरी यह कथा सुनाई :

प्राचीन काल में रत्नाकर नामक नगर में ज्योतिष्प्रभ नाम का राजा था। उसकी पत्नी का नाम हर्षवती था। उसके तीव्र तप से शिव संतुष्ट हुए। उनकी कृपा से रानी के एक पुत्र उत्पन्न हुआ। गर्भ के दिनों में रानी ने अपने मुख में चंद्रमा को प्रविष्ट होते हुए देखा था। इसलिए उस पुत्र का नाम सोमप्रभ रखा गया। वह सोमप्रभ समस्त अमृतमय गुणों से युक्त होकर और प्रजा की प्रीति का पात्र बनकर युवावस्था को प्राप्त हुआ। यह देखकर राजा ने उसे युवराज और अपने मंत्री-पुत्र प्रियंकर को उसका मंत्री बना दिया। उसी समय इंद्र का सारथि मातलि एक घोड़ा लेकर आकाश से उतरा और सोमप्रभ से आकर बोला, "आप पूर्वजन्म में इंद्र के मित्र विद्याधर थे, सो उन्होंने आपके पास उच्चैःश्रवा का बेटा आशुश्रवा नाम का घोड़ा भेजा है। इस पर चढ़कर आप अजेय हो जायेंगे।" अगले दिन सोमप्रभ ने अपने पिता से कहा, "मैं दिग्विजय करना चाहता हूं, मुझे आज्ञा दीजिये; क्योंकि क्षत्रिय का धर्म घर पर निश्चित होकर बैठ जाना नहीं।" ज्योतिष्प्रभ न पुत्र की बात सुनकर उसे दिग्विजय की आज्ञा दे दी और एक दिन शुभ मुहूर्त में सोमप्रभ इंद्र के घोड़े पर चढ़कर दिग्विजय के लिए चल दिया। वह जिस दिशा में भी जाता, सब राजा उसे अनेकों रत्न भेंट में देते। इस प्रकार उसने समस्त दिशाओं के राजाओं को जीत लिया। दिग्विजय से लौटते समय उसने हिमालय पर्वत के निकट अपनी सेना का पड़ाव डाला और स्वयं शिकार खेलने के लिए वन में चला गया। दैवयोग से उसने वहां एक रत्नमय किन्नर देखा और उसका पीछा करता हुआ वह पर्वत की गुफा में पहुंच गया। वहां जाकर वह किन्नर अदृश्य हो गया और सोमप्रभ बियाबान जंगल में पहुंच गया। तभी सूर्य

भी छिप गया। पास में ही एक बड़ा भारी तालाब था। सोमप्रभ उसीके किनारे रात्रि बिताने के लिए घोड़े से उतर पड़ा। राजा ने घोड़े को एक पेड़ से बांधकर उसे घास-पानी दिया और स्वयं भी फल खाकर और पानी पीकर विश्राम करने लगा। तभी उसने दूर से आते हुए मधुर गान की आवाज सुनी। कुतूहलवश वह उस शब्द का अनुसरण करता हुआ एक मंदिर में पहुंचा और वहां उसने शिव-लिंग के सामने गाती हुई एक दिव्य कन्या को देखा। उस सुंदरी ने उसका अतिथि-सत्कार किया और पूछा, "आप कौन हैं ? और इस निर्जन वन में कैसे आये हैं ?" सोमप्रभ ने अपना वृत्तांत उसे बता दिया और उससे उसका परिचय पूछा। वह सुंदरी आंखों में हर्षाश्रु भरकर बोली, "इस पर्वत प्रदेश में कांचनप्रभा नाम का एक नगर है। वहां पद्मकट नाम का विद्याधरों का स्वामी राज्य करता है। मैं उसकी पुत्रों से भी अधिक प्यारी पुत्री मनोरथप्रभा हूं। मेरी माता का नाम हेम-प्रभा है। मैं विद्या के प्रभाव से अपनी सखियों के साथ अनेक द्वीपों, पर्वतों, वनों तथा उपवनों में खेल-कूदकर सायंकाल फिर अपने पिता के पास ही चली जाती थी। एक दिन मैं घूमती हुई इसी तालाब पर आ गई और यहां मैंने एक नवयुवक मुनिकुमार को देखा। देखते ही उसके रूप पर मोहित हो गई। उस मुनिकुमार ने भी प्रेममयी दृष्टि से मेरा स्वागत किया। मेरी सखी उसके प्रति मेरे हृदयगत प्रेम-भाव को ताड़ गई। उसने उससे उसका परिचय पूछा। मुनिकुमार के एक साथी ने कहा, 'यहां से कुछ ही दूर पर स्थित एक आश्रम में दीधिति नाम के मुनि रहते हैं। वह एक बार इस तालाब पर स्नान करने आये। उसी समय देवी लक्ष्मी भी यहां आ गई। लक्ष्मी उस मुनि को देखकर मुग्ध हो गई और उसने उस मुनि को शरीर से अप्राप्य मानकर केवल मन से मिलन की कामना की। इस मानसिक कामना से ही लक्ष्मी के एक पुत्र उत्पन्न हुआ। लक्ष्मी ने कहा, "तुम्हारे दर्शन से ही मेरे यह पुत्र उत्पन्न हुआ है, इसलिए इसे तुम स्वीकार करो।" ऐसा कहकर और पुत्र को मुनि को देकर वह अदृश्य हो गई। मुनि भी उस अनायास मिले हुए पुत्र को पाकर बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने उसका नाम रश्मिमान रख दिया। अच्छी प्रकार पाल-पोसकर उसे समस्त विद्याएं सिखा दीं। यह मुनिकुमार वही लक्ष्मी का पुत्र रश्मिमान है।' यह कहकर उसने मेरी सखी से मेरा परिचय पूछा। एक-दूसरे के वंश का परिचय पाकर हम दोनों एक-दूसरे के प्रति और भी तेजी से आकृष्ट हुए। इसी समय अचानक घर से मेरी एक सहेली ने आकर कहा, 'उठो, तुम्हारे पिताजी भोजन के लिए

तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं, शीघ्र चलो।' यह सुनकर में तुरंत पिताजी के पास चली गई। भोजन करके ज्यों ही रसोई से मैं बाहर निकली, त्यों ही मेरी पहली सखी ने आकर मुझसे कहा, 'मुनिकुमार का मित्र बाहर खड़ा है और कहता है कि मुझे रश्मिमान ने अपने पिता की बताई हुई आकाश-गामिनी विद्या देकर मनो-रथप्रभा के पास भेजा है। वह उससे अलग होकर एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकता।' यह सुनकर में अपनी सखी को साथ लेकर उस मुनिकुमार के मित्र के साथ रश्मिमान के पास पहुंची। मैंने जाकर देखा कि रश्मिमान मेरे आने से पूर्व ही चंद्रमा के उदित होने पर मर चुका है। तब उसके वियोग से व्यथित होकर मैं उसके शरीर के साथ भस्म होने को तैयार हुई। तभी आकाश से एक दिव्य आकृतिवाला पुरुष उतरा और उसके शरीर को लेकर उड़ गया। इधर मैं ज्यों ही अग्नि में जलने को तैयार हुई, त्योंही आकाशवाणी हुई, 'हे मनोरथप्रभा, तुम जलकर मत मरो। इस मुनिकुमार के साथ कुछ समय के पश्चात तुम्हारा फिर मिलन होगा।' इस आकाशवाणी को सुनकर मैंने मरने का इरादा छोड़ दिया और मुनिकुमार के मिलन की प्रतीक्षा में शिवजी की पूजा करती हुई यहां रहती हूं। मुनिकुमार का मित्र भी न जाने कहां चला गया।"

तब सोमप्रभ ने विद्याधरी से पूछा कि तुम्हारी सखी तुम्हें अकेली छोड़कर कहां चली गई? यह सुनकर मनोरथप्रभा ने कहा, "मेरी सखी सिंहविक्रम नाम के विद्याधर स्वामी की पुत्री है, उसका नाम मकरंदिका है। वह मेरी प्राणों के समान प्रिय और मेरे दुख से दुखित रहनेवाली सखी है। उसने मेरे कारण ही अभी तक विवाह नहीं किया है। उसने मेरा समाचार जानने के लिए अपनी सखी को मेरे पास भेजा था। मैंने भी अपनी सखी को उसकी सखी के साथ उसका कुशल-समाचार जानने के लिए भेज दिया है। अब मैं यहां अकेली हूं।" ऐसा कहकर उसने आकाश से उतरती हुई अपनी सखी को सोमप्रभ को दिखा दिया। उसके उतर आने पर मनोरथप्रभा ने अपनी सखी मकरंदिका का समाचार जानकर सोम-प्रभ के लिए पत्तों की शय्या तैयार करवाई और उसके घोड़े को घास डलवाई। वह रात्रि उन सबने वहीं बिताई और प्रातःकाल उठकर आकाश से उतरते हुए देवजय नाम के विद्याधर को देखा। उसने प्रणाम करके मनोरथप्रभा से कहा, "मुझे राजा सिंहविक्रम ने तुम्हारे पास भेजा है और कहा है कि जब तक तुम्हारा विवाह नहीं होता, तब तक मेरी पुत्री मकरंदिका भी विवाह नहीं करना चाहती।

सो, तुम यहां आकर उसे समझाओ, जिससे वह विवाह कर ले।" यह सुनकर सखी के स्नेह के कारण मनोरथप्रभा मकरंदिका के पास जाने को उद्यत हुई। सोमप्रभ ने उससे कहा, "देवि! विद्याधर लोक को देखने की मेरी बड़ी इच्छा है, इसलिए मुझे भी अपने साथ वहां ले चलो। मेरा घोड़ा यहीं घास खाता रहेगा।" मनोरथप्रभा ने सोमप्रभ की बात मान ली और वह सबके साथ देवजय की गोदी में बैठकर विद्याधर-लोक में पहुंची। मकरंदिका ने उन सबका स्वागत-सत्कार किया और सोमप्रभ के विषय में पूछा। मनोरथप्रभा ने उसे सोमप्रभ का पूरा वृत्तांत बता दिया। उसे सुनकर मकरंदिका का मन सोमप्रभ पर आसक्त हो गया। सोमप्रभ भी मन में सोचने लगा कि यह लक्ष्मी के समान सुंदर रूपवाली मकरंदिका किस सौभाग्यशाली के साथ विवाह करेगी? मनोरथप्रभा से एकांत में मकरंदिका ने पूछा, "तुम मुझे अपने शरीर से भी अधिक प्रिय हो, बिना तुम्हारे विवाह किये मैं कैसे विवाह कर सकती हूं?" मकरंदिका के ये प्रेमयुक्त वचन सुनकर मनोरथप्रभा ने कहा, "सखि! मैंने तो अपना वर चुन लिया है, मैं तो केवल उसकी प्रतीक्षा में हूं।" तब मकरंदिका ने कहा, "अच्छा सखि! तुम जैसा कहोगी मैं वैसा ही करूंगी।" मनोरथप्रभा ने जान लिया कि मकरंदिका सोमप्रभ पर मुग्ध है। वह बोली, "सखि! सोमप्रभ समस्त पृथ्वी में घूमकर तुम्हारे यहां अतिथि रूप में आये हैं। तुम्हें इनका अतिथि-सत्कार करना चाहिए।" यह सुनकर मकरंदिका ने कहा, "सखि! मैंने अपने शरीर-समेत सभी वस्तुएं इन्हें समर्पित कर दी हैं। यह चाहें तो उन्हें स्वीकार करें।" उसके ऐसा कहने पर मनोरथप्रभा ने उसके प्रेम की बात उसके पिता से कह दी और उन दोनों के विवाह का निश्चय करा दिया। तब सोमप्रभ ने धैर्य धारण करके मनोरथप्रभा से कहा, "मैं अब पहले तुम्हारे आश्रम पर जाऊंगा, क्योंकि कहीं ऐसा न हो कि मेरा मंत्री सेना-सहित वहां आ जाय और मेरे घोड़े को बंधा हुआ देखकर किसी अनिष्ट की चिंता से वापिस लौट जाय। सो, मैं पहले अपनी सेना की देख-भाल करके फिर शुभ लग्न में विवाह करूंगा।" यह सुनकर मनोरथप्रभा उसे फिर देवजय की गोदी में बिठाकर अपने आश्रम में ले गई। उसी समय सोमप्रभ का प्रियंकर नाम का मंत्री सेना-सहित वहां आ गया। सोमप्रभ ने उसे समस्त वृत्तांत कह सुनाया। तभी सोमप्रभ के पिता का दूत एक पत्र लेकर वहां आया, जिसमें लिखा था कि शीघ्र ही चले आओ।

पिता की आज्ञा पाकर सोमप्रभ शीघ्र ही अपने घर को लौट चला।

मनोरथप्रभा तथा देवजय से उसने कहा, "आप मकरंदिका को सांत्वना दे दें कि पिताजी के दर्शन करके शीघ्र ही वापस लौट आऊंगा।" देवजय ने ऐसा ही किया, लेकिन मकरंदिका सोमप्रभ के वियोग में इतनी बेचैन रहने लगी कि उपवन में, सखियों के साथ क्रीड़ा में, गान में तथा तोते आदि पक्षियों के मनोहर शब्दों में भी उसका मन न बहलता। कमल के पत्रों की शय्या छोड़कर पागल की तरह वह घूमने लगती। इससे उसके माता-पिता को बहुत कष्ट हुआ। जब बहुत आश्वासन देने पर भी उसने धैर्य धारण न किया, तो उसके माता-पिता ने कुपित होकर उसे शाप दे दिया : "तू कुछ काल तक इसी शरीर से, अपनी जाति को भूलकर निषादों के बीच में रहेगी।" यह शाप पाकर मकरंदिका निषाद के यहां जाकर निषाद कन्या हो गई और उसका पिता सिंहविक्रम भी अपनी पत्नी-सहित उसके शोक से व्याकुल होकर मर गया। राजा सिंहविक्रम मरकर पहले तो संपूर्ण शास्त्रों का ज्ञाता ऋषि बना और बाद में किसी पूर्वजन्म के प्रताप से तोता बन गया। उसकी पत्नी वन की शूकरी बनी। यह तोता वही सिंहविक्रम है और पूर्वजन्म के संस्कारों तथा तपोबल के कारण इसे अपनी सब विद्याएं याद हैं।

"ऋषि ने कहा, 'मैं इसी विचित्र कर्म की गति को देखकर हंसा था। यह इस कथा को राजसभा में कहकर अपने पापों से मुक्त हो जायेगा और सोमप्रभ इसकी पुत्री मकरंदिका को, जो निषाद-योनि को प्राप्त हो गई है, अवश्य पायेगा। मनोरथप्रभा अब उस रश्मिमान नामक मुनिकुमार को पतिरूप में पायेगी, जो मरने के बाद राजा बन गया है। सोमप्रभ भी अपने पिता के दर्शन करके जब मनोरथप्रभा के आश्रम में लौटा, तो उसने मकरंदिका का समस्त समाचार जाना और अब वह अपनी प्रियतमा की प्राप्ति के लिए शिव की आराधना कर रहा है।'

"इस कथा को कहकर जब पुलस्त्य मुनि चुप हो गये, तब मैं भी अपनी जाति का स्मरण करके हर्ष और शोक से अभिभूत हो गया। तब जो मरीचि मुनि मुझे कृपा करके अपने आश्रम में लाये थे, वह ही मुझे पालने लगे। जब मेरे पंख निकल आये, तो मैं पक्षियों के स्वभाव के अनुसार चपलता से इधर-उधर उड़कर अपनी विद्या का चमत्कार दिखाने लगा। एक दिन मैं निषादों के हाथ में पड़ गया और क्रम से आज आपके पास आ पहुंचा हूं। अब मेरी पक्षि-योनि का शाप भी क्षीण हो गया है।"

इस कथा को सभा में कहकर तोते के चुप हो जाने पर राजा सुमना बहुत

प्रसन्न हुआ। इसी बीच में सोमप्रभ की तपस्या से संतुष्ट होकर भगवान शिव ने उसे स्वप्न में आज्ञा दी, "हे राजन ! उठो ! और सुमना राजा के पास जाओ। वहां तुम अपनी प्रियतमा मकरंदिका को प्राप्त करोगे, जो माता-पिता के शाप से मुक्तलता नाम की निषाद-कन्या बनकर तोते की योनि में पड़े हुए अपने पिता को पिंजड़े में रखकर उसके पास गई है। तुम्हें देखकर उसे अपने पूर्वजन्म का वृत्तांत याद आ जायेगा और वह शाप-मुक्त होकर पुनः विद्याधरी बन जायेगी। तब आपस में एक-दूसरे को पहचानकर तुम दोनों का समागम होगा।" शिवजी ने सोमप्रभ से स्वप्न में यह कहकर फिर मनोरथप्रभा को दर्शन देकर कहा, "रश्मिमान नामक मुनिकुमार, जिसे तुमने अपना पति स्वीकार किया है, इस जन्म में सुमना नामक राजा के रूप में उत्पन्न हुआ है। सो तुम उसके पास जाओ, तुम्हें देखते ही उसे अपने पूर्वजन्म की कथा याद आ जायेगी।"

इस प्रकार स्वप्न में महादेव से अलग-अलग आज्ञा पाकर सोमप्रभ और मनोरथप्रभा दोनों राजा सुमना की सभा में पहुंचे। सोमप्रभ को देखकर मकरंदिका अपनी पूर्वजन्म की जाति को स्मरण करके शाप-मुक्त हो गई और उसने सोमप्रभ को पहचान लिया। सोमप्रभ भी शिव के प्रसाद से अपनी प्रियतमा को पाकर कृतार्थ हो गया। राजा सुमना ने भी मनोरथप्रभा को देखा, तो पूर्व जाति का स्मरण आ गया। तब उसने आकाश से गिरे हुए अपने पहले मुनिकुमार के शरीर में प्रवेश किया और अपनी प्रिया मनोरथप्रभा को लेकर अपने पूर्व आश्रम में लौट गया।

राजा सोमप्रभ अपनी प्रियतमा मकरंदिका को लेकर अपने नगर को चला गया। तोता भी पक्षि-योनि से छूटकर विद्याधर-योनि को पाकर तप के प्रभाव से उच्च पद को प्राप्त हुआ। इस प्रकार अनेक योनियों को प्राप्त होकर भी प्राणियों का सम्मिलन अवश्य होता है।

अपने मंत्री गोमुख से इस अद्भुत और विचित्र कथा को सुनकर नरवाहनदत्त शक्तियशा की प्राप्ति के लिए और भी अधिक उत्कंठित हो गया।

: ४ :

# बुद्धिमानों की कथाएं

इसके बाद गोमुख ने नरवाहनदत्त से कहा, "बुद्धिमान मनुष्य दोनों लोकों के कल्याण के लिए काम आदि के आवेग को सहन कर लेते हैं। इस विषय में मैं एक कथा सुनाता हूं :

"राजा कुलधर का सेवक शूरवर्मा बहुत ही पराक्रमी तथा कुलीन था। एक दिन बाहर से लौटकर उसने अपनी पत्नी को अपने एक मित्र के साथ देख लिया। यह देखकर उसे क्रोध तो आया, पर उसने सोचा कि मित्रद्रोही इस नरपशु को मारने से क्या लाभ ? और दुराचारिणी पत्नी को मारना भी व्यर्थ है। क्यों व्यर्थ पाप का भागी बनूं ?

"यह सोचकर उसने उन दोनों को छोड़ दिया और कहा, 'तुम दोनों आज से मेरी आंखों के सामने न आना, नहीं तो मैं तुम्हें मार डालूंगा।' वे दोनों वहां से कहीं दूर चले गये और शूरवर्मा दूसरी शादी करके सुखपूर्वक रहने लगा। इस प्रकार हे राजन ! मनुष्य को क्रोध को जीतकर बुद्धि से काम लेना चाहिए, तभी कल्याण की प्राप्ति होगी। पशु-पक्षियों का भी कल्याण बुद्धि से ही होता है, केवल पराक्रम से नहीं।" इस संबंध में उसने राजा को सिंह-बैल आदि की एक कथा सुनाई :

किसी नगर में कोई धनवान वैश्य पुत्र रहता था। वह एक बार अपनी गाड़ी में दो बैलों को जोतकर व्यापार करने के लिए मथुरापुरी को जा रहा था। मार्ग में उसका संजीवक नाम का एक बैल कीचड़ में फिसलकर गिर पड़ा। वैश्य ने उसे उठाने का बहुत प्रयत्न किया, किंतु वह बैल उठ न सका। अंत में वह व्यापारी निराश होकर उस बैल को वहीं छोड़कर चला गया। संजीवक बैल भी दैवयोग से धीरे-धीरे उठकर कोमल-कोमल हरी घास को खाता हुआ पुष्ट हो गया। वह खूब गरजता हुआ इधर-उधर घूमने लगा। शिवजी के बैल की भांति उसकी गर्दन मोटी हो गई और वह अपने सींगों से नदी के किनारों को उखाड़ने लगा। उस वन का राजा पिंगलक नाम का सिंह था। उस सिंह के करटक और दमनक नाम के दो गीदड़ मंत्री थे। वह शेर एक दिन पानी पीने के लिए यमुना के किनारे पर

आया। वहां उसने संजीवक की गर्जना को सुनकर मन में विचारा कि यह मुझसे अधिक बलवान कोई पशु है। ऐसी दहाड़ मैंने इससे पूर्व कभी नहीं सुनी। सो, यह निश्चित ही मुझे या तो मार डालेगा या यहां से निकाल देगा।

यह सोचकर पिंगलक शेर बिना पानी पिये ही लौट आया और उदास होकर बैठ गया। यह देखकर दमनक ने एकांत में करटक से कहा, "क्या कारण है जो हमारा स्वामी शेर बिना पानी पिये ही लौट आया और कुछ उदास सा प्रतीत होता है? स्वामी के पास जाकर इसका कारण पूछना चाहिए।" करटक ने उत्तर दिया, "यह जानना हमारा काम नहीं है और जो काम हमारा नहीं है, उसे हमें नहीं करना चाहिए। क्या तुमने इस बारे में फच्चर उखाड़नेवाले बंदर की कथा नहीं सुनी है? लो मैं तुम्हें सुनाता हूं :

"किसी नगर में एक वैश्य ने देव मंदिर बनवाना आरंभ किया। वहां पर बढ़ई लकड़ी के चीरने का काम करते थे। एक दिन बढ़ई आधी चिरी हुई लकड़ी में एक फच्चर लगाकर अपने घर चले गये। तभी वहां एक बंदर कूदता हुआ आ गया और आधी चिरी हुई लकड़ी के ऊपर बैठकर उस फच्चर को उखाड़ने लगा। उस फच्चर के उखड़ जाने से वह बंदर उस फटी हुई लकड़ी के बीच में आ गया और पिचकर मर गया। इस प्रकार जिस आदमी का जो काम नहीं है, यदि वह उसे करता है, तो अवश्य ही आपत्ति में पड़ता है। सो, हमें सिंह के गुप्त आशय को जानने से क्या लाभ?"

यह सुनकर दमनक बोला, "बुद्धिमान मनुष्यों को राजा के हृदय की बात जान लेनी चाहिए, केवल पेट कौन नहीं भर लेता?" इस विषय में दोनों में काफी वाद-विवाद चला। अंत में करटक ने दमनक से कहा, "जैसी तुम्हारी इच्छा हो, वैसा करो।" तब दमनक पिंगलक के पास जाकर प्रणाम करके बैठ गया और फिर क्षमा मांगते हुए बोला, "महाराज! आप नदी पर पानी पीने गये थे, किंतु पानी न पीकर उदास मन होकर क्यों लौट आये?" पिंगलक ने कहा, "मैं आज जब नदी पर पानी पीने गया, तो मैंने एक अपूर्व गर्जन का शब्द सुना। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि वह शब्द मुझसे भी अधिक बलवान किसी जानवर का है। वह या तो मुझे मार देगा या वन से बाहर निकाल देगा। सो, मुझे कहीं दूसरी जगह चले जाना चाहिए।" यह सुनकर दमनक ने कहा, "देव! आप शूरवीर हैं, आपको वन छोड़-कर चला जाना शोभा नहीं देता। वीरों को शब्द-मात्र से ही भयभीत नहीं होना

चाहिए। शब्द तो यंत्रादिकों के भी भयंकर होते हैं। सो, हे राजन ! वास्तविकता को जाने बिना शब्द-मात्र से मत डरिये। इस विषय में मैं आपको नगाड़े और गीदड़ की कथा सुनाता हूं :

"प्राचीन काल में किसी वन में एक गीदड़ रहता था। एक दिन वह भोजन की तलाश में इधर-उधर घूम रहा था। घूमता हुआ वह एक युद्ध भूमि में पहुंचा, जहां एक नगाड़ा पड़ा हुआ था, जो वायु द्वारा हिलाई हुई वृक्षों की शाखाओं से कभी-कभी बज पड़ता था। उसकी गंभीर ध्वनि को सुनकर वह शृगाल डर गया, किंतु जब उसने धैर्य धारण करके इधर-उधर नजर डाली, तो उस नगाड़े को देखकर वह बहुत प्रसन्न हुआ हुआ और सोचने लगा कि शायद इसके बीच में कुछ भोजन होगा। लेकिन जब उस नगाड़े को फाड़ा तो उसमें केवल लकड़ी और चमड़ा पाया। सो, राजन ! शब्द-मात्र से डरने की आवश्यकता नहीं। यदि आप आज्ञा दें तो मैं इसका पता लगा लाऊं।"

सिंह की आज्ञा पाकर दमनक यमुना के किनारे पहुंचा और वहां उसने घास को चरते हुए संजीवक को देखा। उससे बातचीत करके वह पिंगलक के पास आया और बैल का वृत्तांत कह सुनाया। शेर ने कहा, "यदि तुमने उस बैल को देखा है और उससे बातचीत की हैं, तो किसी युक्ति से उसे मेरे पास ले आओ।" दमनक फिर बैल के पास गया और उसे सिंह के पास ले आया। शेर ने उसे अभयदान दिया और फिर वे दोनों बड़े मित्रभाव से वहां रहने लगे। धीरे-धीरे शेर इतना उस बैल के वश में हो गया कि और दूसरे जानवरों से बिल्कुल विमुख हो गया। तब दमनक ने एकांत में करटक से कहा, "यह दोष मेरा ही है कि इस बैल को यहां ले आया। सो, अब मैं ऐसा प्रयत्न करूंगा जिससे यह बैल नष्ट हो।" यह सुनकर करटक बोला, "अब तुम इन दोनों की मित्रता नष्ट नहीं कर सकते।" दमनक ने उत्तर दिया, "मैं बुद्धि के प्रभाव से अवश्य ही इन दोनों में भेद पैदा कर दूंगा। जिसकी बुद्धि आपत्ति के आने पर क्षीण नहीं होती, वह क्या नहीं कर सकता ? इस विषय में मैं तुम्हें एक कथा सुनाता हूं :

"पूर्वकाल में किसी तालाब में कोई बगुला रहता था। बहुत सी मछलियां उससे दूर भाग जाती थीं। इस कारण जब उसे मछलियां न मिलीं, तो उस बगुले उनसे झूठ-मूठ कहा, 'इस तालाब पर मछेरा जाल लेकर आनेवाला है। वह तुम सबको जाल में फंसाकर मार डालेगा। यदि तुम्हारा मुझ पर विश्वास है, तो मेरा

कहना मानो। इसी वन के एकांत भाग में एक स्वच्छ जलवाला तालाब है। मछेरे उस तालाब से अपरिचित हैं। मैं तुम सबको एक-एक करके वहा पहुंचा दूंगा।'

"यह सुनकर उन भयभीत जड़बुद्धि मछलियों ने कहा, 'हमारा तुम पर पूरा विश्वास है। तुम हमें दूसरे तालाब पर पहुंचा दो।' तब वह बगुला उनमें से एक-एक को ले जाकर मारकर खाने लगा। उन मछलियों को ले जाते हुए देखकर एक मगर ने बगुले से पूछा, 'तुम इन मछलियों को कहां ले जाते हो?' बगुले ने वही बात मगर से भी कह दी, जो मछलियों से कही थी। इससे डरकर मगर ने बगुले से कहा कि मुझे भी दूसरे तालाब पर पहुंचा दो। बगुला उस मगर को भी लेकर जब वध्यशिला पर पहुंचा, तो बुद्धिमान मगर ने जान लिया कि इस बगुले ने विश्वास पैदा करके सारी मछलियों को मार डाला है और अब मुझे भी मार डालेगा। सो उसने मृत्यु को सामने देखकर बुद्धिमत्ता से उसका गला पकड़ लिया और उसे मार डाला। फिर तालाब पर जाकर बाकी मछलियों से सब वृत्तांत कह दिया। वे मछलियां बहुत प्रसन्न हुईं। इसलिए बुद्धि ही मनुष्य का सबसे बड़ा बल है। इस विषय में शेर और खरगोश की एक और कथा सुनो :

"किसी वन में कोई बलशाली और अजेय सिंह रहता या। वह जिस किसी भी पशु को देखता, उसे ही मार डालता था। एक बार वन के समस्त जानवरों ने उसके पास जाकर कहा, 'हम आपके आहार के लिए प्रति दिन एक जानवर भेज दिया करेंगे, आप क्यों व्यर्थ में हम सबको मारते हैं?' उनकी इस बात को शेर ने मान लिया। इस समझौते के अनुसार प्रति दिन एक जानवर सिंह के पास पहुंच जाता और वह उससे अपना पेट भरता। एक दिन एक खरगोश की बारी आई। सिंह के पास जाते हुए मार्ग में वह सोचने लगा कि बुद्धिमान व्यक्ति को आपत्ति के समय भी धैर्य नहीं छोड़ना चाहिए। सो ऐसी युक्ति करनी चाहिए जिससे प्राण बचें। ऐसा सोचता वह सिंह के पास देर से पहुंचा। यह देखकर सिंह ने उससे कहा, 'तू देर करके क्यों आया है?' खरगोश ने उत्तर दिया, 'देव! इसमें मेरा कोई अपराध नहीं है। मार्ग में मुझे एक दूसरे बलवान शेर ने हठात रोक लिया और जब मैंने शीघ्र ही लौट आने का वचन दिया, तब जाकर उसने मुझे छोड़ा। यह सुनकर सिंह की आंखें क्रोध से लाल हो गईं और उसने पूंछ पटककर कहा, 'वह दूसरा शेर कहां है, मुझे दिखाओ।' 'हे देव! आइये और स्वयं देखिये!' यह कह-

कर खरगोश उसे लेकर एक कुएं के पास पहुंचा और बोला, 'वह इस किले में रहता है, आप स्वयं देख लीजिये।' शेर ने कुएं में झांककर देखा। जल में अपनी परछाईं को दूसरा शेर जानकर उसने क्रोध में भरकर जोर से दहाड़ मारी। कुएं से दुगुने जोर की प्रतिध्वनि निकली। अपने गर्जन की प्रतिध्वनि को दूसरे शेर का गर्जन समझकर शेर क्रोध से भर उठा और उसे मारने के लिए उसने कुएं में छलांग मारी। इस प्रकार वह वहीं गिरकर मर गया।

"खरगोश ने वहां से लौटकर सारा हाल वन के पशुओं को सुना दिया और सब प्रसन्नतापूर्वक रहने लगे। इसलिए बुद्धि ही सबसे बड़ा बल है—पराक्रम नहीं—जिसके प्रभाव से खरगोश ने शेर को भी मार डाला। सो, मैं भी बद्धि के प्रभाव से अपना अभीष्ट सिद्ध करूंगा।"

दमनक की ये बातें सुनकर करटक चुप हो गया। तब दमनक उदास मन से पिंगलक के पास पहुंचा। पिंगलक ने उससे उदासी का कारण पूछा। दमनक ने कहा, "सेवक को जान-बूझकर स्वामी के हित का व्याघात नहीं सहना चाहिए। सो, यदि आप मेरी बात सुनना पसंद करें, तो मैं आपसे कुछ कहूं। यह संजीवक बैल आपको मारकर राज्य हड़पना चाहता है। इसलिए अपने सींग-रूपी शस्त्र को पैनाता रहता है। इसने वन के दूसरे जानवरों को भी यह कहकर भड़का दिया है कि मुझ तृणभोजी के राजा होने पर तुम सब निर्भय होकर रहना। मैं इस मांसभोजी शेर को युक्ति से मार डालूंगा। सो हे राजन! आप सोच लीजिये कि इस बैल के होते हुए आपका कल्याण नहीं।" पिंगलक बोला, "यह बेचारा तृणभोजी बैल मेरा क्या करेगा? फिर मैंने इसे अभयदान दिया है,तब इस शरणागत को मैं कैसे मारूं?" दमनक बोला, "जब राजा किसीको अपने बराबर बना लेताहै, तब चंचला लक्ष्मी दोनों में से किसी एक को छोड़ देती है। इस बैल से आपका क्या मतलब सिद्ध होगा? जब यह आपसे द्रोह करता है, तो क्या स्नेह और क्या अभयदान या शरणागत की रक्षा! दुष्ट आदमी के पास रहने से, चाहे वह कुछ दोष न भी करे, संसर्ग से ही दोष पैदा हो जाता है। इस विषय में एक कथा सुनिये :

"किसी राजा के पलंग में एक मंद विसर्पिणी नाम की जूं छिपकर रहती थी। वहां अकस्मात कहीं से टीटिभ नाम का खटमल भी आ गया। उसने कहा, 'मैंने राजा का खून कभी नहीं पिया है, यदि आपकी कृपा हो तो मैं आज थोड़ा सा

राजा का खून पी लूं।' उसके बहुत अनुरोध करने पर मंद विसर्पिणी ने कहा, 'अच्छा तुम यहां रह सकते हो, किंतु जब राजा सो जाये, तब काटना।' जूं की अनुमति मिल जाने पर खटमल वहीं रहा। रात्रि में ज्यों ही राजा खाट पर आकर लेटा, त्यों ही खटमल ने उसे काट लिया। राजा एकदम 'अरे काट लिया! अरे काट लिया!!' कहता हुआ उठ खड़ा हुआ। तब खटमल तो शीघ्र ही वहां से भाग गया पर राजा के नौकरों ने जूं को पाकर मार डाला। इसलिए हे राजन! टीटिभ के संपर्क से मंद विसर्पिणी नामक जूं मारी गई, उसी प्रकार संजीवक का संपर्क भी आपके लिए कल्याणकारी नहीं है। यदि आपको मेरा विश्वास नहीं है, तो जब वह आपके पास आये तो देखना कि वह अपने सींगों को शूल की तरह गर्व से हिला रहा होगा।"

इस प्रकार दमनक ने पिंगलक के हृदय में संजीवक के प्रति विकार पैदा कर दिया। कुछ देर बाद मुंह लटकाये हुए दमनक संजीवक के पास पहुंचा। संजीवक ने उसे उदास देखकर पूछा, "मित्र, क्या बात है? तुम उदास-से क्यों हो? शरीर तो ठीक है?" दमनक ने उत्तर दिया, "सेवक की क्या कुशल? और राजा का प्रिय भी कौन है?" संजीवक के बहुत अनुरोध करने पर दमनक ने कहा, "तुम पर मेरा स्वाभाविक प्रेम होने के कारण मैं यह बताना चाहता हूं कि यह पिंगलक सिंह तुम्हें मारकर खाना चाहता है। इसका स्नेह झूठा है।" संजीवक ने पूर्व विश्वास के कारण दमनक की बात को सत्य मान लिया। उसने बहुत दुखी होकर कहा, "सेवा-भाव को धिक्कार है। भलीभांति सेवा करने पर भी क्षुद्र राजा सेवकों से शत्रुभाव रखने लगता है। इस विषय में मैं एक कथा सुनाता हूं:

"किसी वन में मदोत्कट नामक सिंह रहता था। उसके चीता, कौआ और गीदड़ तीन सेवक थे। उस सिंह ने एक बार वन में अपने झुंड से बिछुड़े हुए एक ऊंट को घूमते हुए देखा। उसे देखकर सिंह ने पूछा, 'यह कौन जानवर है?' कौए ने कहा, 'यह ऊंट है।' शेर ने कुतूहलवश उस ऊंट को अभयदान देकर अपने समीप रख लिया। एक बार वह शेर हाथी से लड़ता हुआ घायल हो गया और खाने के लिए पशु न मार सका। इससे स्वयं उसे तथा दूसरे सेवकों को उपवास रखना पड़ा। तब उसने एकांत में ऊंट को छोड़कर अपने साथियों से पूछा कि अब क्या करना चाहिए? उन्होंने कहा, 'ऊंट के साथ क्या मित्रता! आप उसीको मारकर क्यों नहीं खा लेते? यदि आप यह कहें कि मैंने उसे अभयदान दिया है,

अब उसे कैसे मारूं? सो आपको उससे कहने की आवश्यकता नहीं है। हम ऐसा वातावरण पैदा करेंगे कि वह स्वयं ही आपको अपना शरीर अर्पण कर देगा।'

"शेर ने उनकी बात मान ली। तब कौआ ऊंट के पास जाकर बोला, 'हमारे स्वामी भूख से पीड़ित होकर भी हमसे कुछ नहीं कहते। सो, हमने तय किया है कि स्वयं अपना शरीर उन्हें अर्पण करेंगे। तुम भी ऐसा ही करना।' ऊंट ने उसकी बात मान ली और उन सबके साथ सिंह के पास पहुंचा। पहले कौए ने शेर के सामने जाकर कहा, 'आप मेरे शरीर से अपनी प्राण-रक्षा कीजिये।' सिंह ने कौए से कहा, 'तुम्हारे छोटे शरीर के खाने से क्या लाभ?' तब गीदड़ ने कहा, 'आप मेरे शरीर से जीवित रहिये।' शेर ने उसको भी इसी प्रकार टाल दिया। तब चीते ने कहा, 'आप मुझे खा लीजिये।' शेर ने उसे भी अस्वीकृत कर दिया। तब ऊंट ने भी अपने-आपको सिंह के सुपुर्द कर दिया। ऊंट के ऐसा कहने पर शेर ने उसे मार डाला और सबने मिलकर उसे खा लिया। इसी प्रकार किसी पशु ने निष्कारण ही पिंगलक को मेरे पर नाराज कर दिया है। अब मुझे भाग्य का ही भरोसा है।" संजीवक के ये वचन सुनकर दमनक सरल भाव से बोला, "धैर्य से सब कुछ सिद्ध हो जाता है। इस विषय में मुझसे एक कथा सुनो :

"कोई टिट्टिभ पक्षी अपनी पत्नी के साथ समुद्र के किनारे पर रहता था। जब उसकी पत्नी गर्भवती हुई, तो उसने अपने पति से कहा, 'अब हमें यहां से कहीं अलग चलना चाहिए। कहीं हमारे बच्चों को समुद्र की लहरें बहाकर न ले जायें।' अपनी पत्नी की ये बातें सुनकर टिट्टिभ ने उससे कहा, 'समुद्र मेरे साथ विरोध नहीं कर सकता।' यह सुनकर टिट्टिभी बोली, 'आपकी समुद्र के साथ क्या तुलना! हितकारी बात अवश्य मान लेनी चाहिए, अन्यथा इससे विनाश होता है। इस पर मैं आपको एक कथा सुनाती हूं :

" 'किसी तालाब पर कंबुग्रीव नाम का कछुआ रहता था। वहीं पर संकट और विकट नाम के दो हंस भी रहते थे। वे उस कछुए के बड़े मित्र थे। एक बार अनावृष्टि के कारण वह तालाब सूख गया। तब वे हंस उस तालाब को छोड़कर अन्यत्र जाने लगे। कछुए ने भी उनके साथ ही जाने की इच्छा प्रकट की। हंसों ने कछुए से कहा, "यदि तुम हमारे साथ चलना चाहते हो, तो हमारा कहना मानो। हम एक लकड़ी ले आते हैं, तुम उसे बीच में मुंह से पकड़ लेना। हम दोनों उस लकड़ी के सिरों को पकड़कर तुम्हें उड़ाकर ले चलेंगे। किंतु याद रखना, यदि तुम

बीच में कुछ भी बोले, तो नीचे गिर कर मर जाओगे।' कछुए ने उनकी बात मान ली। तब उस लकड़ी के दोनों छोरों को अपनी चोचों से पकड़कर दोनों हंस बीच में लटकते हुए कछुए को आकाश मार्ग से ले चले। जब वे किसी नगर के ऊपर से उड़ रहे थे, तो वहां के निवासियों ने कोलाहल करना आरंभ कर दिया, "देखो-देखो, ये हंस क्या लिये जा रहे हैं?" इस कोलाहल को सुनकर चंचल कछुए ने ज्यों ही इसका कारण पूछने के लिए मुंह खोलना चाहा, त्यों ही वह नीचे जमीन पर आ गिरा और मर गया। मूर्ख मनुष्य इसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं। सो आपको मेरा हितकारी वचन मान लेना चाहिए।' टिट्टिभी के ये वचन सुनकर टिट्टिभ बोला, 'प्रिये! तुम्हारी यह बात सत्य है, किंतु एक कथा मैं भी तुम्हें सुनाता हूं:

" 'किसी तालाब में तीन मछलियां रहती थीं। उनके नाम अनागतविधाता, प्रत्युत्पन्नमति तथा यद्भविष्य थे। एक बार उन्होंने उस मार्ग से जाते हुए मछेरों की यह बातचीत सुन ली कि इस तालाब में बहुत सी मछलियां रहती हैं, उन्हें मारना चाहिए। यह सुनकर अनागतविधाता तो जल के प्रवाह के साथ दूसरे स्थान को चली गई। प्रत्युत्पन्नमति ने सोचा कि समय पड़ने पर जैसा होगा, वैसा कर कर लिया जाये। यद्भविष्य यह सोचकर वहीं रहती रही कि जो कुछ भाग्य में होगा वह होकर रहेगा, अतः कहीं जाना व्यर्थ है।

" 'इसके बाद अगले दिन मछेरों ने आकर उस तालाब में जाल डाला। जाल डालते ही प्रत्युत्पन्नमति ने एकदम अपने-आपको निस्पंद करके मरा हुआ जैसा दिखा दिया। तब मछेरों ने उसे, यह समझकर कि यह तो स्वयं मर गई, जाल से निकालकर अलग रख दिया। इस प्रकार वह वहां से उछलकर प्रवाह में चली गई। मंदबुद्धिवाली यद्भविष्य मछली जाल के अंदर ही तड़प-तड़पकर मर गई।

" 'इसलिए मैं समुद्र के भय से अन्यत्र नहीं जाऊंगा, वरन प्रत्युत्पन्नमति के समान समयोचित कार्य करूंगा।' ऐसा कहकर टिट्टिभ अपनी पत्नी-सहित वहीं अपने घोंसले में रहा। समुद्र ने टिट्टिभ के ये गर्वयुक्त वचन सुन लिये और जब उसकी पत्नी ने अंडे दिये, तो वह उन्हें अपनी लहरों से बहा ले गया। अंडों के बह जाने पर टिट्टिभी रोने लगी और टिट्टिभ से बोली, 'मैंने पहले ही कहा था कि हमें यहां से दूर चलना चाहिए, किंतु तुमने मेरा कहना न माना, उसका फल भुगतो।' तब धीर टिट्टिभ ने अपनी पत्नी से कहा, 'मैं शीघ्र ही इस पापी समुद्र को इसके अन्याय

का उचित दंड दिलाऊंगा।' ऐसा कहकर वह समस्त पक्षियों को इकट्ठा करके गरुड़ के पास पहुंचा और उनसे समुद्र की दुष्टता की बात कही। गरुड़जी ने भगवान विष्णु से जाकर कहा। भगवान ने आग्नेय अस्त्र से समुद्र को सोखकर टिट्टिभ के अंडे दिला दिये।"

यह कहानी कहकर दमनक संजीवक से कहने लगा, "बुद्धिमान को आपत्ति में भी धैर्य नहीं छोड़ना चाहिए। अब तुम्हारा पिंगलक के साथ युद्ध होना निश्चित है। इसलिए जब वह पूंछ ऊपर को उठाकर चारों पैरों से तुम्हें मारने के लिए तैयार खड़ा हो, तो तुम भी तैयार होकर नीचा सिर करके सींगों को उसके पेट में घुसा देना और उसे मार डालना।"

संजीवक और पिंगलक में भेद पैदा करके दमनक करटक के पास आया और उसे सारा हाल बता दिया। तब संजीवक शेर की चेष्टाओं को जानने के लिए उसके पास आया और उसने उसे पूंछ ऊपर को उठाये हुए युद्ध को तैयार देखा। पिंगलक ने संजीवक को देखते ही उस पर आक्रमण कर दिया। बैल भी उसके साथ सींगों से लड़ने लगा। उन दोनों का भयंकर युद्ध होता हुआ देखकर करटक दमनक से बोला, "तुमने अच्छा नहीं किया, जो तुमने स्वार्थ के लिए स्वामी के प्राण संकट में डाल दिये। स्वार्थों पर आधारित मित्रता कभी चिरस्थायी नहीं होती। अधिक क्या कहूं, जो व्यक्ति हित के वाक्य न माननेवाले को उपदेश करता है, वह उसीका द्वेष प्राप्त करता है, जिस प्रकार सूचीमुख नाम के पक्षी से बंदर द्वेष करने लगा था। यह कथा इस प्रकार है :

"किसी वन में बहुत से बंदर रहते थे। एक बार जाड़े में जुगनुओं को अग्नि समझकर उनमें तिनके-पत्ते डालकर वे अंग सेकने के लिए फूंक मारने लगे। यह देखकर सूचीमुख नाम के एक पक्षी ने उनसे कहा, 'यह अग्नि नहीं, जुगनू हैं, इसलिए आप व्यर्थ में इन्हें आग समझकर क्यों फूंक मार रहे हैं?' यह सुनकर एक बंदर उस पक्षी पर कुपित हो गया और एक पत्थर उठाकर उसे मारा, जिससे सूचीमुख मर गया। इसलिए जो अपनी बात न माने, उससे हितकारी बात न कहनी चाहिए। तुमने इन दोनों में जो भेद पैदा किया है, वह अच्छा नहीं है, क्योंकि दुष्टबुद्धि से जो काम किया जाता है, वह कदापि शुभकारी नहीं होता। इस संबंध में मैं तुम्हें धर्मबुद्धि और दुष्टबुद्धि की कथा सुनाता हूं :

"प्राचीन काल में किसी नगर में धर्मबुद्धि और दुष्टबुद्धि नाम के दो भाई रहते

थे। वे दोनों धन कमाने के लिए दिसावर गये। वहां से दो हजार अशर्फियां कमाकर जब दोनों लौट रहे थे, तो उन्होंने एक पेड़ के नीचे एक हजार अशर्फियां गाड़ दीं और एक हजार आपस में बांट लीं। एक दिन दुष्टबुद्धि ने अकेले छिपकर पेड़ के नीचे से खोदकर अशर्फियां निकाल लीं और एक महीने बाद धर्मबुद्धि के पास जाकर बोला, 'भाई, चलो, उन अशर्फियों को भी बांट कर ले लें।' तब दोनों ने वहां जाकर उस पेड़ के नीचे खोदा, जहां अशर्फियां दाबी थीं। वहां अशर्फियां न पाकर दुष्टबुद्धि धर्मबुद्धि से बोला, 'तुमने ही सारी अशर्फियां निकाल ली हैं, सो उनमें से आधी मुझे भी दो।' इस प्रकार आपस में कलह होने पर दुष्टबुद्धि ने अपना सिर पत्थर पर मार लिया और धर्मबुद्धि को राज-दरबार में पकड़कर ले गया। वहां दोनों ने राजपुरुषों के सामने अपने-अपने पक्ष को रखा। दुष्टबुद्धि ने न्यायाधिकारियों से यह भी कहा, 'जिस पेड़ के नीचे हमने अशर्फियां गाड़ी थीं, वह पेड़ मेरा साक्षी है कि अशर्फियां धर्मबुद्धि ने ही निकाली हैं।' दुष्टबुद्धि की यह बात सुनकर न्यायाधिकारी बड़े चकित हुए। उन्होंने कहा, 'हम सवेरे स्वयं चलकर उस पेड़ से पूछेंगे।' दुष्टबुद्धि ने घर आकर अपने पिता से सारा हाल बताया और उससे कहा, 'तुम अभी जाकर वृक्ष की खोल में बैठ जाओ और जब तुमसे पूछा जाये तो कह देना कि धन धर्मबुद्धि ने ही निकाला है।' पिता ने दुष्टबुद्धि की बात मान ली और वह रात में ही जाकर खोल में छिप गया। प्रातःकाल दोनों न्यायाधिकारियों के साथ पेड़ के पास पहुंचे। वहां जाकर पेड से पूछा गया कि अशर्फियां किसने निकाली हैं ? वृक्ष की खोल में बैठे हुए दुष्टबुद्धि के पिता ने कह दिया, 'अशर्फियां धर्मबुद्धि ने ही चुराई हैं।' इस असंभव बात को सुनकर न्यायाधिकारियों ने सोचा—निश्चय ही दुष्टबुद्धि ने इस पेड़ की खोल में किसीको बैठा दिया है। सो, उन्होंने उस पेड़ में आग लगा दी। तब दुष्टबुद्धि का पिता पेड़ की खोल से बाहर निकल आया और जमीन पर गिरकर मर गया।

"यह देखकर न्यायाधिकारियों ने वास्तविक स्थिति को समझ लिया और धर्मबुद्धि को दुष्टबुद्धि से अशर्फियां दिलवा दीं। यही नहीं, उन्होंने धर्मबुद्धि का सम्मान किया और दुष्टबुद्धि के हाथ काटकर उसे देश से निकाल दिया। इसलिए जो काम अन्याय-बुद्धि से किया जाता है, उसका परिणाम शुभकारी नहीं होता। ऐसा युक्तिसंगत कार्य करना चाहिए जैसाकि बगुले ने किया। यह कथा भी सुनो :

"एक बगुले की संतान को एक सर्प आकर खा जाया करता था। इससे बगुला

बहुत दुखी रहता था। एक दिन बगुले ने नेवले के बिल से लेकर सांप के बिल तक मछलियों का मांस बखेर दिया। नेवला अपने बिल से निकलकर मछलियों को खाता हुआ सर्प के बिल में पहुंच गया और बिल में घुसकर उसने सांप को मार डाला। इस प्रकार उपाय से कार्य सिद्ध करना चाहिए। इस विषय में एक और कथा तुम्हें सुनाता हूं :

"किसी वणिकपुत्र के पास उसके बाप-दादा की सवा मन लोहे की एक तराजू थी। वह उस तराजू को किसी दूसरे वैश्य के पास रखकर परदेश चला गया। वहां से लौटकर जब उसने अपनी तराजू वापस मांगी, तो दूसरे वैश्य ने कह दिया कि तुम्हारी उस तराजू को तो चूहे खा गये। उसकी इस बात को सुनकर वह अपने मन में हंसा और बोला, 'सच ही वह तराजू बड़ी स्वादिष्ट थी, इसीलिए चूहों ने खा ली होगी। कोई बात नहीं है। मैं आज आपके ही यहां भोजन करूंगा।' भोजन से पहले वणिकपुत्र उस वैश्य के पुत्र को साथ लेकर स्नान करने के लिए नदी पर गया। उसने बच्चे को अपने एक मित्र के यहां छिपाकर रख दिया और आकर कह दिया कि आपके पुत्र को तो एक बाज़ लेकर उड़ गया। वैश्य बोला, 'यह कैसे संभव हो सकता कि बाज बच्चे को लेकर उड़ जाये। आपने ही मेरे बच्चे को कहीं छिपाकर रख दिया है।' क्रोधित होकर वह वैश्य राज-दरबार में पहुंचा और अपने पुत्र के चुराये जाने की बात कही। यह सुनकर राजा के सभासद बोले, 'बच्चे को लेकर बाज़ का उड़ जाना संभव नहीं है।' वणिकपुत्र बोला, 'जिस देश में लोहे की तराजू को चूहे खा सकते हैं, उस देश में बाज़ हाथी को भी लेकर उड़ सकता है, बच्चे का तो कहना ही क्या!' यह सुनकर सभासदों ने कौतुक से सारा वृत्तांत पूछा और असली बात को जानकर सभा-सदों ने वणिकपुत्र को उसकी तराजू और उस वैश्य को उसका पुत्र दिलवा दिया।

"इस प्रकार बुद्धिमान मनुष्य उपाय से अपना अभीष्ट सिद्ध कर लेते हैं। तुमने तो केवल स्वार्थवश स्वामी के प्राण संकट में डाल दिये।"

करकट के इन वचनों को सुनकर दमनक हंसने लगा और बोला कि क्या तुम्हें बैल के साथ युद्ध में भी स्वामी की विजय में शंका है? करकट और दमनक के इस प्रकार बातचीत करते हुए ही पिंगलक ने संजीवक को मार गिराया। बैल के मर जाने पर करटक और दमनक पुनः मंत्रित्व पद को पाकर सुखपूर्वक रहने लगे।

नरवाहनदत्त इस नीतिपूर्ण तथा बुद्धि-सम्मत विचित्र कथा को सुनकर बहुत हर्षित हुआ।

: ५ :

# मूर्खों की कथाएं

इसके बाद गोमुख ने कहा, "आपने बुद्धिमानों की कथाएं सुन लीं अब कुछ मूर्खों की कथाएं भी सुनिये।" और उसने कुछ ऐसी ही कहानियां सुनाईं :

**अगरुदाही (चंदन जलानेवाले) की कथा :**

किसी धनाढ्य वैश्य का मूर्खबुद्धि नाम का पुत्र था। एक बार वह कटाह द्वीप में व्यापार करने गया। उसके जहाज में दूसरी वस्तुओं के साथ-साथ बहुत सा चंदन भी था। उसकी दूसरी वस्तुएं तो पर्याप्त मात्रा में बिक गईं, किंतु चंदन नहीं बिका, क्योंकि उस द्वीप का कोई भी व्यक्ति चंदन के गुणों से परिचित नहीं था। उसने देखा कि वहां के लोग लकड़ीवालों के यहां से खूब कोयले खरीद रहे हैं। उस मूर्ख ने अपने चंदन को जलाकर कोयले बना लिये और चंदन को कोयले के मूल्य बेचकर घर लौट आया। उसने घर आकर अपने इस कौशल की प्रशंसा की। लेकिन लोगों ने उसका खूब मजाक उड़ाया।

**तिलकार्षिक (भुने तिल बोनेवाले) की कथा :**

कोई ग्रामीण किसान था। उसने कभी भुने हुए तिल खाये, उसे वे बहुत स्वादिष्ट लगे। उसने सोचा कि यदि भुने हुए तिलों को ही खेत में बोया जाये तो ऐसे ही स्वादिष्ट तिल पैदा होंगे। किंतु एक भी तिल न उगा। उल्टे लोग उसकी मूर्खता पर खूब हंसे।

**अग्निक्षेपक (आग-पानी मिलाकर रखनेवाले) की कथा :**

किसी मूर्ख ने रात्रि में एक बार सोचा कि मुझे रोज सवेरे देवता की पूजा के लिए जल और अग्नि की आवश्यकता पड़ती है और इनके लिए मुझे इधर-उधर जाना पड़ता है। यदि मैं इन दोनों को एक साथ ही मिलाकर रख दूं, तो मेरा यह कष्ट दूर हो जायेगा। ऐसा सोचकर उसने पानी के घड़े में आग डाल

दी। सबेरे उठकर उसने देखा कि आग तो बुझ ही गई और पानी भी खराब हो गया। उसके इस काम से लोग उस पर खूब हंसे।

**नासिका रोपण की कथा :**

किसी स्थान में कोई मूर्ख रहता था। उसकी पत्नी की नाक चपटी थी और उसके गुरु की नाक सुंदर और ऊंची थी। उसने सोचा कि यदि गुरु की नाक को काटकर अपनी पत्नी की नाक की जगह लगा दूं तो कितना अच्छा हो। बस, जब रात को उसके गुरु सो रहे थे तो उसने उनकी नाक काटकर अपनी पत्नी की नाक पर लगानी चाही और पत्नी की नाक काटकर गुरु की नाक पर लगानी चाही, किंतु दोनों एक-दूसरे पर न जमी। इस प्रकार उसने अपने गुरु और पत्नी दोनों की नाक काटकर उनके रूप को विकृत कर दिया।

**वनवासी अहीर की कथा :**

किसी वन में कोई मूर्ख धनवान अहीर रहता था। उसके मित्रों ने सोचा कि इससे धन ऐंठना चाहिए। उन्होंने उससे कहा कि एक धनवान नगर-निवासी की सुंदर लड़की है। हमने उससे तुम्हारी शादी की बातचीत चलाई है और उसके पिता ने हमारी बात स्वीकार भी करली है। यह सुनकर उसने उन्हें खूब धन दिया। कुछ दिन बाद उन्होंने विवाह के खर्चे का नाम लेकर और धन ऐंठा और उससे कह दिया कि तुम्हारा विवाह हो गया। कुछ समय पश्चात उन्होंने उससे कहा कि तुम्हारे पुत्र उत्पन्न हुआ है उसकी खुशी में भी उसने खूब धन बांटा। अगले दिन उस मूर्ख ने उनसे कहा, "मैं अपनी पत्नी तथा पुत्र से मिलना चाहता हूं।"

उसकी बात सुनकर सब लोगों ने उसका खूब मजाक उड़ाया।

**अलंकारलंबक (जेवर लटकानेवाले) की कथा :**

किसी गांव के एक आदमी ने जमीन खोदते हुए बहुत से आभूषण पाये। वे आभूषण राजा के महल से चुराकर चोरों ने वहां गाड़ दिये थे। उन आभूषणों को लाकर उस मूर्ख ने अपनी स्त्री को पहनाया। तगड़ी को सिर पर बांध दिया, हार को कटि में पहना दिया, नूपुरों को हाथों में और कंगनों को कानों में पहना दिया। लोगों ने यह देखकर समझ लिया कि ये आभूषण राजा के ही हैं और उन्होंने राजा को इसकी सूचना दे दी। राजा ने उससे आभूषण ले लिये और उसे मूर्ख समझकर छोड़ दिया।

**तूलदाही मूर्ख की कथा :**

किसी मूर्ख मनुष्य के खेत में खूब रूई पैदा हुई। वह उसे बेचने नगर में गया। 'यह रूई साफ नहीं है' यह कहकर उसे किसीने भी न लिया। उसी समय एक आदमी एक सुनार के पास अपना सोना लेकर आया और कहने लगा कि मेरे इस खोटे सोने को शुद्ध कर दो। सुनार ने उस सोने को लेकर आग में डाल दिया और वह शुद्ध हो गया। इस प्रकार सोने के शुद्ध करने की विधि देखकर वह मूर्ख सोचने लगा कि मैं भी अपनी रूई को इसी प्रकार शुद्ध क्यों न करलूं? ऐसा सोचकर उसने रूई को जलती हुई अग्नि में डाल दिया। रूई तो जलकर भस्म हो गई और लोग उसकी इस मूर्खता पर खूब हंसे।

**खर्जूरी छेदकों (खजूर को काटनेवालों) की कथा :**

एक बार एक राजा ने अपने अधिकारियों से खजूर मंगवाने के लिए कहा। अधिकारियों ने गांव के कुछ मूर्खों को बुलाकर उन्हें खजूर लाने की आज्ञा दी। उन ग्रामीण मूर्खों ने एक गिरे हुए खजूर के पेड़ को देखा। उन्होंने सोचा कि गिरे हुए पेड़ से खजूर आसानी से लिये जा सकते हैं। इसलिए उन्होंने गांव के समस्त खजूर के पेड़ काट डाले और उनसे खजूर चुन लिये। फिर उन पेड़ों को उठाकर खड़ा करने लगे, किंतु कटे हुए पेड़ खड़े कैसे हों! राजा ने जहां खजूर लाने की प्रशंसा की, वहां यह जानकर कि इन्होंने सारे खजूर के पेड़ काट डाले हैं, उन्हें दंड दिया।

**निध्यालोकन (धन बतलानेवाले) की कथा :**

किसी राजा ने पृथ्वी में गड़े हुए धन को बतलानेवाले किसी मनुष्य को कहीं से बुलवाया। वह पृथ्वी के लक्षणों को देखकर यह बता देता था कि अमुक स्थान पर गुप्त धन है। उस राजा के मूर्ख मंत्री ने उस मनुष्य की आंखें इसलिए फुड़वा दीं कि वह कहीं और न भाग जाय। आंखों के नष्ट हो जाने पर वह पृथ्वी के लक्षणों को भी देखने में असमर्थ हो गया, गुप्त धन को बताना तो दूर रहा! उस आदमी को अंधा हुआ देखकर मनुष्यों ने उस मंत्री का खब उपहास किया।

**लवणाशन (नमक खानेवाले) की कथा :**

किसी गांव में एक नितांत जड़-मूर्ख मनुष्य था। एक बार वह अपने एक नगरवासी मित्र के यहां गया। वहां उसे स्वादिष्ट और चटपटे नमकीन पदार्थ खाने को मिले। इससे पूर्व उसने कभी भी इतने स्वादिष्ट और नमकीन पदार्थ

नहीं खाये थे। उसने अपने मित्र से पूछा कि ये पदार्थ किस वस्तु से इतने स्वादिष्ट हुए ? उसके मित्र ने कहा कि विशेषकर नमक से। उस मूर्ख ने निरे पिसे हुए नमक को ही मुट्ठी भरकर फांक लिया, जिससे उसके होंठ और दाढ़ी सफेद हो गये। दूसरे आदमी उसकी इस मूर्खता पर खूब हंसे।

**गो-दोहक (गाय दुहनेवाले) की कथा :**

गांव के किसी मूर्ख आदमी के यहां एक गाय थी। वह प्रति दिन पांच सेर दूध देती थी। एक बार उसके घर निकट-भविष्य में एक उत्सव होनेवाला था। उसने उस गाय को एक महीना पहले से इसलिए दुहना छोड़ दिया कि एक साथ ही सारे महीने का दूध दुह लूंगा। उत्सव के आने पर जब वह दूध दुहने बैठा, तो उसे एक बूंद भी दूध न मिला। लोगों ने उसका खूब मजाक उड़ाया।

**दो मूर्खों की कथा :**

एक बार कोई गंजा मूर्ख वन में फल खाने के लिए गया। वहां जब वह एक पेड़ के नीचे बैठा हुआ था, तो एक दूसरा नवयुवक मूर्ख आया। उसके हाथ में बहुत से बेल-फल थे, जिन्हें वह भूखा होने के कारण तोड़कर लाया था। उस तरुण मूर्ख ने उस गंजे के सिर पर मजाक में एक बेल-फल फेंक मारा। उसने उसे सहन कर लिया और कुछ न कहा, बल्कि बेल-फल उठाकर खाने लगा। तरुण मूर्ख ने सारे बेल-फल उस गंजे के सिर में मारे, जिससे उसका सिर खून से लथपथ हो गया और वह स्वयं भूखा ही वहां से चला गया। गंजा भी खून से लथपथ सिर से जब अपने घर लौटा तो घरवालों ने पूछा, "यह क्या हुआ।" उसने कहा, "क्या मीठे बेल-फलों के लिए मैं चोट सहन नहीं कर सकता था ?" उसकी इस बात से सब आदमी खूब हंसे।

इस प्रकार निर्बुद्धि मूर्ख मनुष्य हमेशा हंसी को प्राप्त करते हैं और बुद्धिमान मनुष्य सर्वत्र पूजित होते हैं। गोमुख से इन मूर्ख-कथाओं को सुनकर नरवाहनदत्त बहुत प्रसन्न हुआ।

## : ६ :

# बुद्धिमानी की कथाएं

रात्रि के समय नरवाहनदत्त ने फिर गोमुख से बुद्धिमानों की कथा सुनाने को कहा। गोमुख ने उसे यह कथा सुनाई :

किसी वन में एक बड़ा भारी सेमर का पेड़ था। उस पर लघुपाती नाम का एक कौआ रहता था। एक दिन उसने पेड़ पर बैठे-बैठे भयंकर आकृतिवाले, जाल और डंडे को हाथ में लिये हुए एक व्याथ को आते हुए देखा। उस व्याध ने जाल फैला दिया और चावलों को बखेरकर वह कहीं छिप गया। तभी वहां चित्रग्रीव नाम का कबूतरों का राजा अपने साथियों के साथ उड़ता हुआ वहां आ पहुंचा। वे सब कबूतर वहां चावलों को देखकर उन पर टूट पड़े और जाल में फंस गये। तब चित्रग्रीव ने अपने साथियों से कहा, "इस जाल को लेकर उड़ चलो।" कबूतर जाल को लेकर अकाश में उड़ गये। चित्रग्रीव ने उनसे कहा, "मेरा एक श्रेष्ठ मित्र हिरण्यक नाम का चूहा है। वह हमारे फंदों को काट देगा। सो उसके पास चलो।" वे सब हिरण्यक के बिल पर पहुंचे। हिरण्यक अपने बिल के भीतर घुसा हुआ था। चित्रग्रीव ने उसे पुकारा। उसने अंदर से निकलकर अपने मित्र को जाल में फंसा हुआ देखा। चित्रग्रीव ने उसे सारा वृत्तांत सुनाया और चूहे ने तुरंत उनके बंधन काट दिये। जाल से मुक्त होकर चित्रग्रीव हिरण्यक से स्नेहालाप करके साथियों-सहित अपने स्थान को चला गया और हिरण्यक अपने बिल में घुस गया।

लघुपाती कौआ भी कबूतरों के पीछे-पीछे ही उड़ आया था और उसने हिरण्यक के द्वारा चित्रग्रीव को बंधन-मुक्त करने की घटना देखी। हिरण्यक के बिल में प्रविष्ट हो जाने पर लघुपाती ने उसके बिल के द्वार पर आकर कहा, "मैं लघुपाती नाम का कौआ हूं और तुमसे मित्रता करना चाहता हूं। मैं तुम्हारे मित्र-प्रेम को देखकर बहुत प्रभावित हुआ हूं।" यह सुनकर चूहा बाहर निकलकर आया और बोला, "मैं तुम्हारा भक्ष्य हूं और तुम मेरे भक्षक, भक्ष्य और भक्षक की मित्रता कैसी ?" इस पर कौवे ने कहा, "यदि मैंने तुम्हें खा लिया, तो उससे मेरी क्षणिक भूख शांत होगी। मित्रता होने पर तो मेरी हमेशा जीवन-रक्षा होगी।" ऐसी बातें करके और कसम आदि खाकर कौए ने चूहे के हृदय में विश्वास पैदा कर लिया और दोनों मित्र बन गये। चूहा कौए को अन्न के कण लाकर देता और कौआ उसे

मांस आदि के टुकड़े लाकर कर देता। इस प्रकार वे दोनों बड़े प्रेम के साथ वहां रहने लगे। एक दिन लघुपाती कौआ हिरण्यक से बोला, "यहां से कुछ दूर पर वन के बीच में एक नदी है। उसमें मेरा मित्र मंथरक नाम का कछुआ रहता है। मैं उसके पास जाकर रहना चाहता हूं, क्योंकि इस स्थान पर मुझे भोजन नहीं मिलता और वहां मुझे मांस आदि खूब मिलेगा।" यह सुनकर चूहा बोला, "यदि तुम यहां से जाना चाहते हो, तो मैं भी तुम्हारे साथ चलूंगा। मुझे भी इस स्थान से बहुत विरक्ति हो गई है। इसका कारण तुम्हें वहीं चलकर बताऊंगा।" चूहे के ऐसा कहने पर कौआ उसे अपनी अपनी चोंच में दबाकर वहां ले गया। मंथरक कछुए ने उन्हें वहां आया देखकर उनका बहुत अतिथि-सत्कार किया और वे सब यहां मिलकर रहने लगे।

एक दिन कथा-प्रसंग में लघुपाती ने कछुए से हिरण्यक के साथ हुई अपनी मित्रता का वृत्तांत कह सुनाया। उसे सुनकर मंथरक ने चूहे से पूछा, "तुम्हारे शहर से वन में आने का कारण क्या है?" हिरण्यक ने उत्तर दिया :

"मैं नगर के पास एक बिल में रहता था। एक बार मैंने रात के समय राजा के महल से एक हार चुराकर अपने बिल में रख लिया। उस हार के होने से मुझमें बड़ा अभिमान और बल हो गया। मेरे बिल के पास ही एक संन्यासी की कुटी थी। वह संन्यासी भिक्षा मांगकर जो कुछ लाता, उससे अपना पेट भरता और खाने से बचे हुए अन्न को अपने कमंडल में रखकर उसे खूंटी पर लटका देता। मैं रात में उसके सो जाने पर उसके कमंडल से अन्न खा लेता। एक बार उस संन्यासी के पास उसका मित्र एक दूसरा संन्यासी आ गया। खाना खाने के बाद वे दोनों बैठे हुए बातचीत कर रहे थे। तभी मैं कमंडल से अन्न लेने के लिए कूदा। वह संन्यासी मुझे डराने के लिए फटे हुए बांस से बार-बार उस कडमंल को पीटने लगा। उसके मित्र ने उससे कहा, 'तुम मेरी बातों पर ध्यान न देकर यह क्या कर रहे हो?' संन्यासी ने उत्तर दिया, 'यह दुष्ट चूहा लटके हुए कमंडल से भी अन्न खा जाता है। मैं इसे डराने के लिए ही फटे हुए बांस से कमंडल को पीट रहा हूं।' यह सुनकर उसके मित्र ने कहा, 'प्राणियों के लिए लोभ बहुत दोषकारी है। इस विषय में म तुम्हें एक कथा सुनाता हूं:

" 'एक बार अनेकों तीर्थों में घूमता हुआ मैं एक नगर में पहुंचा। वहां एक ब्राह्मण के घर मैं भिक्षा मांगने गया। मेरी उपस्थिति में ब्राह्मण ने अपनी पत्नी से

कहा, "आज पर्व का दिन है, सो संन्यासी के लिए तिल पका दो।" उसकी पत्नी ने कहा, "तुम निर्धन के यहां तिल कहां से आये ?" तब वह ब्राह्मण उससे बोला, "हे प्रिये ! मनुष्य को संचय अवश्य करना चाहिए। किंतु अधिक संचय भी अच्छा नहीं होता।" इस विषय में उसने उसे एक कथा सुनाई :

" 'किसी वन में कोई शिकारी शिकार करके बाण चढ़ाये हुए लौट रहा था। उसे मार्ग में एक सूअर मिला। शिकारी ने उस पर बाण चलाया। बाण से बिंधकर सूअर ने शिकारी के मर्म-स्थल में अपना सिर दे मारा, जिससे वह शिकारी भी मर गया और सूअर भी। एक गीदड़ दूर से इस घटना को देख रहा था। वह बहुत भूखा था। उसने सोचा कि इस सामग्री से मेरा बहुत दिन का काम चलेगा। उसने शिकारी, सूअर तथा मांस में से कुछ भी न खाया और धनुष की तांत को चबाने लगा, जिससे बाण चल गया और उस बाण से बिंधकर वह गीदड़ भी मर गया। ब्राह्मण ने कहा कि इससे भी यही शिक्षा मिलती है कि अधिक संचय नहीं करना चाहिए। ब्राह्मण की इस बात को सुनकर ब्राह्मणी ने उसकी बात मान ली और तिलों को धूप में सूखने के लिए डाल दिया। जब वह अंदर घर में गई, तो एक कुत्ते ने आंगन में घुसकर उन पर पेशाब कर दिया। इससे उन तिलों को किसीने भी मोल नहीं लिया। इस प्रकार लोभ कदापि सुखकारी नहीं होता।'

"यह कहकर आगंतुक संन्यासी फिर बोला, 'यदि कुदाली हो, तो मुझे दो। मैं युक्ति से इस चूहे के उपद्रव को शांत कर दूंगा।' संन्यासी ने उसे कुदाली लाकर दे दी और वह आगंतुक संन्यासी उससे मेरे बिल को खोदने लगा। यह देखकर मैं वहां से भाग गया। उसने मेरा बिल खोदकर उसमें से हार तथा मेरी इकट्ठी की हुई दूसरी चीजें निकाल लीं और उस हार को गले में डालकर वह बोला, 'इस चूहे को इस हार के कारण ही इतना बल और गर्व था।'

"रात को जब वे दोनों संन्यासी सोने लगे, तो मैं उस हार को फिर लेने के लिए उनके पास गया। मेरी आहट पाकर मठ का स्वामी संन्यासी जाग गया और उसने पास में रखे हुए डंडे से मेरे सिर पर प्रहार किया। उससे मेरे सिर में बड़ा भारी घाव हो गया, केवल दैववश मरा नहीं। फिर मुझमें इतनी शक्ति न रही कि कूद-कर उसके कमंडल से अन्न खा सकता, क्योंकि धन ही जीव का यौवन है और उसका न होना ही बुढ़ापा है। धन के अभाव में बल, रूप और उत्साह सभी क्षीण हो जाते हैं। सो उस शहर से मुझे विरक्ति हो गई और मैं जंगल में

चला आया। वहां मुझे इस मित्र लघुपाती की मित्रता प्राप्त हुई और इसी के संपर्क से मैं आज तुम्हारे पास आया हूं।"

हिरण्यक के ऐसा कहने पर मंथरक बोला, "मित्र धैर्य धारण करो। यह तुम्हारा अपना ही स्थान है। गुणी मनुष्य के लिए कोई भी विदेश नहीं है।" कछुआ यह कह ही रहा था कि इतने में शिकारियों से डरा हुआ चित्रांग नामक हरिण भागता हुआ वहां आ गया। उसे देखकर उन्होंने उसके भय का कारण पूछा, किंतु जब देखा कि पीछे कोई भी शिकारी नहीं आ रहा है, तो वे आश्वस्त हो गये और उस हिरण के साथ उन्होंने मित्रता कर ली। वे सब मित्र भाव से वहां सुखपूर्वक रहने लगे।

एक बार चित्रांग बहुत देर होने पर भी वहां नहीं आया। लघुपाती ने पेड़ पर बैठकर देखा कि वह एक जाल में बंधा पड़ा है। उसने चूहे और कछुए को तुरंत सूचना दी। तब उन्होंने आपस में सलाह की और लघुपाती हिरण्यक चूहे को अपनी चोंच में उठाकर वहां पहुंचा, जहां हिरण्यक जाल में पड़ा हुआ था। हिरण्यक ने जाते ही उसके बंधन काट दिये। मंथरक कछुआ भी नदी के भीतर से निकलकर उनके पास पहुंच गया। तभी न जाने कहां से शिकारी वहां आ गया। हरिण, कौआ और चूहा तो उसे देखते ही भाग गये, किंतु उसने कछुए को पकड़ लिया और उसे जाल में डालकर अपने घर चल दिया। तब चित्रांग कुछ दूर पर जाकर मरा हुआ-सा बनकर लेट गया और लघुपाती उसके सिर पर बैठकर उसकी आंखें कुरेदने लगा। यह देखकर शिकरी ने समझा कि यह हरिण मरा हुआ पड़ा है, अतः वह नदी के किनारे पर अपना जाल रखकर उसे लेने के लिए उसकी ओर चला। उसके पास आने पर हरिण उठकर भाग गया और कौआ आकाश में उड़ गया। इसी बीच में चूहे ने आकर उसका जाल काट दिया, जिससे कछुआ निकलकर नदी में जा घुसा। जब शिकारी जाल के पास लौटा, तो उसने जाल को कटा हुआ पाया और कछुए को भी उसमें न पाकर अपने भाग्य को कोसता हुआ अपने घर चला गया।

यह कहानी सुनाकर गोमुख बोला, "इस प्रकार पशु-पक्षी भी बुद्धिमत्ता से अपने काम सिद्ध कर लेते हैं और आपत्ति के समय अपनी तथा मित्रों की रक्षा करते हैं। सो, मित्रों से स्नेह और अनुराग करना श्रेयस्कर है, ईर्ष्या की मूल स्त्रियों में आसक्त होना ठीक नहीं। इस विषय में मैं आपको एक कथा सुनाता हूं:

"किसी नगर में कोई ईर्ष्यालु प्रकृति का व्यक्ति रहता था। उसकी स्त्री बहुत रूपवती थी। वह उस पर विश्वास नहीं करता था और कभी भी उसे अकेली नहीं छोड़ता था। कभी किसी आवश्यक कार्य से उस आदमी को बाहर जाना पड़ा। वह अपनी स्त्री को भी साथ लेता गया। मार्ग में एक वन में भील रहते थे। कहीं भील उसकी स्त्री को न छीन लें, इस भय से उसने उसे एक वृद्ध ब्राह्मण के घर में रख दिया। वहां रहते हुए उस स्त्री ने उस मार्ग से आते हुए भीलों को देखा और उनमें से एक नवयुवक भील के साथ भाग गई। जब वह आदमी अपना काम करके उस ब्राह्मण के घर लौटा, तो उसने अपनी पत्नी को मांगा। बूढ़े ने कहा, 'एक दिन मेरी अनुपस्थिति में वह न जाने कहां भाग गई। मैंने तो इतना ही सुना कि वह किसी जवान भील के साथ चली गई है। भीलों का गांव यहां से पास ही है, सो तुम शीघ्र वहां चले जाओ, शायद वह तुम्हें मिल जाये।' यह सुनकर वह आदमी विलाप करता हुआ भीलों के गांव में पहुंचा। वहां उसने एक भील के घर में अपनी पत्नी को पाया। उसे देखकर भयभीत उसकी पत्नी ने कहा, 'मैं क्या करती ? यह भील मुझे जबरदस्ती यहां उठा लाया। सो चलो हम दोनों ऐसे स्थान को भाग चलें, जहां हमें कोई न देखे। किंतु उस भील के शिकार से लौटने का समय हो रहा है। यदि वह आ गया और हम दोनों को भागते हुए देख लिया, तो निश्चित ही मार डालेगा। इसलिए तुम इस गुप्त गुफा में छिप जाओ, रात में जब वह सो जाये, तब उसे मारकर मुझे ले चलना।' उस शठ स्त्री की बातों पर विश्वास करके उस आदमी ने ऐसा ही किया। भील के लौटने पर उस स्त्री ने उसे गुफा में छिपे हुए अपने पति को दिखा दिया, जिससे भील ने उसे प्रात:काल देवी पर बलि चढ़ाने के लिए बांध लिया। जब वह भील और स्त्री खा-पीकर सो गये, तो उस व्यक्ति ने देवी की स्तुति की, जिससे देवी उस पर प्रसन्न हुई और उसके बंधन काट दिये। बंधन से मुक्त होकर उसने भील को उसीकी तलवार से मार डाला। तब उसने अपनी पत्नी को जगाया और कहा, 'मैंने इस पापी को मार डाला है, चलो अब भाग चलें।' यह सुनकर वह स्त्री बहुत दुखित हुई। उसने छिपाकर उस भील का सिर अपने साथ ले लिया और उसके साथ चल दी। सुबह जब वे दोनों एक शहर में पहुंचे, तो उस स्त्री ने भील के सिर को दिखाकर शोर मचाना आरंभ कर दिया कि इस दुष्ट ने मेरे पति को मार डाला है, यह उसका सिर है। सिपाहियों ने उस आदमी को बंदी बना लिया और

राजा के सामने ले गये। राजा ने उस आदमी से सारी बात पूछी, तो उसने जो भी कुछ हुआ था, वह कह सुनाया। राजा को उसकी बात पर विश्वास हो गया और उसने उस स्त्री के नाक और कान काट लिये और उस आदमी को छोड़ दिया। हे राजन ! ईर्ष्या से वश में की हुई स्त्रियां इस प्रकार प्राण-घातक भी सिद्ध होती हैं। उन्हें ईर्ष्या से वशीभूत नहीं करना चाहिए। साथ ही स्त्रियों को कभी भी भेद की बात नहीं बतानी चाहिए। इस संबंध में आपको एक कथा और सुनाता हूं :

"एक बार कोई सर्प गरुड़ के भय से भागकर मनुष्य का रूप धारण करके किसी वेश्या के घर रहने लगा। वह अपने प्रभाव से प्रति दिन पांच सौ हाथी उस वेश्या को भाड़े के रूप में देता था। जब उस वेश्या ने पूछा कि आप कौन हैं और आपके पास इतने हाथी कहां से आते हैं, तो उस सर्प ने उसे अपना भेद बता दिया और कहा कि इस भेद को और किसीसे मत बताना। उस वेश्या ने इस बात को अपनी कुटनी से कह दिया। कुछ दिन के बाद गरुड़ पुरुष का वेष बनाकर उस सर्प को ढूंढ़ते हुए उस ही वेश्या के घर आ पहुंचे। उन्होंने कुटनी से कहा, 'मैं आज रात यहां रहना चाहता हूं, बताइये कितना भाड़ा लगेगा।' कुटनी ने कहा, 'इस वेश्या के पास एक सर्प गरुड़ के भय से छिपा हुआ रहता है, वह इसे नित्य पांच सौ हाथी देता है और तुम केवल एक रात रहोगे। सो यह वेश्या तुमको एक रात रखकर क्या करेगी?' गरुड़ ने इस भेद को जानकर उस सर्प को मार डाला और खा लिया। इसलिए बुद्धिमान मनुष्य को कभी भी अपना रहस्य स्त्री को नहीं बताना चाहिए।"

: ७ :

# मूर्खों की कुछ और कथाएं

बुद्धिमानी की इन कथाओं के बाद गोमुख ने नरवाहनदत्त को मूर्खों की कुछ कथाएं और सुनाईं :

**खल्वाट (गंजे) की कथा :**

किसी नगर में गंजे सिरवाला धनवान मूर्ख था। वह बालों के बिना बहुत लज्जित होता था। उसकी बड़ी इच्छा थी कि उसके सिर पर बाल उग आयें। एक दिन उसके एक धूर्त अनुयायी ने उससे कहा, "एक ऐसा वैद्य है, जो सिर पर

बाल उगाने की दवा जानता है।" यह सुनकर धनवान मूर्ख ने उससे कहा, "यदि तुम उस वैद्य को मेरे पास ले आओ, तो मैं तुम्हें और उस वैद्य को खूब धन दूंगा।" उस धूर्त ने वैद्य को लाने के बहाने से खूब धन ऐंठा और एक स्वयं गंजे बनावटी वैद्य को बुला लाया। उस वैद्य ने पहले उससे खूब धन ऐंठा और बाद में किसी बहाने से अपना गंजा सिर भी उसे दिखा दिया। उसके गंजे सिर को देखकर भी वह मूर्ख धनवान उसे खूब धन देता रहा। बाद में जब उसने वैद्य से बाल उगने की दवा मांगी, तो वैद्य ने उत्तर दिया, 'यदि मैं बाल उगाने की दवा जानता तो पहले अपने सिर के बाल ही न उगा लेता। मैंने तो पहले ही तुम्हें अपना सिर दिखा दिया था, इस पर भी तुमने धन खर्च किया यह तुम्हारी मूर्खता थी--मेरा क्या दोष है?'

इस प्रकार धूर्त आदमी हमेशा मूर्ख लोगों को उल्लू बनाते हैं।

**तैल मुग्ध (तेल गिरा देनेवाले मूर्ख) की कथा :**

किसी भले आदमी के यहां एक मूर्ख नौकर था। एक बार उस नौकर को उसके स्वामी ने बाजार से तेल खरीदने के लिए भेजा। वह बर्तन में तेल लेकर लौट रहा था। मार्ग में उससे किसी मित्र ने कहा, "बर्तन से तेल चू रहा है।" यह सुनकर वह मूर्ख बर्तन को उलटकर देखने लगा, जिससे समस्त तेल पृथ्वी पर गिर पड़ा। यह देखकर आदमी खूब हंसे और उसके स्वामी ने उसे घर से निकाल दिया।

**अस्थि मुग्ध (हड्डी चुगनेवाले मूर्ख) की कथा :**

किसी मूर्ख व्यक्ति की पत्नी व्यभिचारिणी थी। वह मूर्ख एक बार किसी कार्यवश बाहर चला गया। उसकी पत्नी अपनी विश्वासपात्र नौकरानी को सिखाकर अपने उप-पति के घर चली गई। जब वह मूर्ख परदेश से लौटा, तो अपनी पत्नी को वहां न पाकर उसने नौकरानी से उसके विषय में पूछा। नौकरानी ने कहा, "आपकी पत्नी मर गई है और उसका श्मशान में दाह-संस्कार कर दिया गया है।" यह कहकर उस नौकरानी ने श्मशान में ले जाकर किसी दूसरे व्यक्ति की हड्डियां उसे दिखला दीं। उस मूर्ख ने उन हड्डियों को चुना और तीर्थ स्थानों में बहा आया। घर लौटकर उसने अपनी पत्नी का श्राद्ध कर्म किया। श्राद्ध कराने के लिए नौकरानी उस ब्राह्मण को ही ले आई, जिसके पास उसकी पत्नी रहती थी। वह मूर्ख अपनी पत्नी का मासिक श्राद्ध करने लगा। भोजन के लिए वह

ब्राह्मण उसी स्त्री के साथ हर महीने आता था। दासी ने उस मूर्ख से कहा, "सती के प्रभाव को देखो, तुम्हारी पत्नी प्रति मास स्वर्ग से आकर ब्राह्मण के साथ स्वयं श्राद्ध ग्रहण करती है।" दासी के वचन में विश्वास रखकर उस मूर्ख ने उसे ठीक समझा। इस प्रकार दुष्ट स्त्रियां सरसता से मूर्ख आदमियों को ठग लेती हैं।

**चांडाल कन्या की कथा :**

एक बड़ी रूपवती चांडाल कन्या थी। वह बड़ी मूर्ख थी। उसने अपने मन में संकल्प किया कि मैं उसी मनुष्य को अपना पति बनाऊंगी, जो सबसे महान होगा। एक बार एक राजा नगर में घूमने निकला। उसे सर्वोत्तम जानकर वह चांडाल कन्या उसके पास पहुंची। उसी समय उस मार्ग से एक मुनि जा रहा था। राजा ने हाथी से उतरकर उस मुनि को प्रणाम किया। मुनि को राजा से भी बड़ा जानकर वह लड़की मुनि के पीछे-पीछे चली। जाते हुए मुनि ने मार्ग में एक शिवालय देखा और वहां जाकर शिव को प्रणाम किया। यह देखकर उस कन्या ने शिव को मुनि से भी उत्तम समझा और मुनि को छोड़कर शिवालय में ही रहने लगी। कुछ समय के बाद वहां एक कुत्ता आया और उसनें टांग उठाकर अपनी जाति की प्रकृति के अनुरूप शिव की प्रतिमा पर मूत्र कर दिया। यह देखकर उस कन्या ने कुत्ते को शिव से भी बढ़कर समझा और कुत्ते के पीछे-पीछे चली। वह कुत्ता एक चांडाल के घर पहुंचा और एक नवयुवक चांडाल के चरणों पर प्रेम से लोटने लगा। यह देखकर उस कन्या ने चांडाल पुत्र को सबसे बड़ा मानकर और अपनी जाति के अनुरूप संतुष्ट होकर उसे पति बना लिया। इस प्रकार मूर्ख आदमी कुछ दूर आगे बढ़कर भी अंत में अपने ही पैरों पर गिर पड़ते हैं।

**कृपण राजा की कथा :**

एक मूर्ख राजा वैभवशाली होकर भी महाकृपण था। एक बार उसके हितैषी मंत्रियों ने उससे कहा, "हे राजन! दान-पुण्य करने से मनुष्य को परलोक में सद्गति मिलती है। सो, आप दान-पुण्य कीजिये। आयु और धन तो क्षणभंगुर हैं।" यह सुनकर राजा बोला कि मैं दान-पुण्य तब करूंगा जब पहले मरकर यह देख लूंगा कि मुझे असद्गति मिली है। तब मंत्री लोग अंदर-ही-अंदर हंसते हुए चुप हो गये।

इसके बाद गोमुख ने दो मित्रों का हाल सुनाया :

कन्नौज में चंद्रापीड़ नाम का एक राजा था। उसके यहां धवलमुख नाम का

एक सेवक था। वह हमेशा घर से बाहर ही खा-पीकर आता था और घर में भोजन नहीं करता था। उसकी पत्नी ने उससे पूछा, "आप हमेशा कहां खा-पीकर आते हैं ?" धवलमुख ने उससे कहा, "प्रिये ! मेरे दो मित्र हैं। मैं सदा ही उनके पास खा-पीकर आता हूं। एक का नाम कल्याणवर्मा है, जो भोजन आदि से मेरा खूब सत्कार करता है और दूसरे का नाम वीरबाहु है, जो प्राणों से भी मेरा उपकार करने के लिए सदैव प्रस्तुत रहता है।" यह सुनकर पत्नी ने कहा, "आपने अपने दोनों मित्रों को मुझे कभी नहीं दिखाया। में उनके दर्शन करना चाहती हूं।" धवलमुख अपनी पत्नी को लेकर कल्याणवर्मा के घर गया। कल्याणवर्मा ने उसकी पत्नी की खूब खातिर की। अगले दिन धवलमुख वीरबाहु के घर गया। वीरबाहु उस समय जुआ खेल रहा था। उसने उन दोनों का केवल कुशल समाचार पूछा और फिर जुआ खेलने में लग गया। वहां से लौटकर धवलमुख की पत्नी ने उससे कहा, "कल्याणवर्मा ने आपका खूब आदर-सत्कार किया, किंतु वीरबाहु ने तो केवल कुशल समाचार पूछा। सो, आप उसको अपना बड़ा मित्र कैसे मानते हैं ?" यह सुनकर धवलमुख उससे बोला, "तुम झूठ-मूठ ही उन दोनों मित्रों के पास जाकर यह कहो कि राजा धवलमुख से नाराज हो गया है। तब तुम्हें वास्तविकता का पता चल जायेगा।" पत्नी ने ऐसा ही किया। कल्याणवर्मा से जब उसने अपने पति पर राजा के रुष्ट होने की बात कही तो उसने उत्तर दिया, "देवि ! मैं तो वैश्य पुत्र हूं, राजा का क्या कर सकता हूं ?" लेकिन वीरबाहु सुनते ही तलवार और ढाल हाथ में लेकर धवलमुख के पास पहुंचा। तब धवलमुख ने उसे समझा दिया कि मंत्रियों के कहने से राजा प्रसन्न हो गया है। यह सुनकर वीरबाहु अपने घर लौट गया। उसके चले जाने पर धवलमुख ने पत्नी से कहा, "देखा, दोनों मित्रों में कितना अंतर है ? एक मित्र केवल औपचारिक है और दूसरा वास्तविक। चिकनाई में दोनों बराबर हैं किंतु तेल, तेल ही है और घी, घी ही है।"

इस कथा को कहकर गोमुख फिर मूर्खों की कहानी कहने लगा :

**जलभीत (पानी से डरे हुए) मूर्ख की कथा :**

कोई मूर्ख प्यास से व्याकुल होकर नदी के किनारे पहुंचा, किंतु उसने जल न पिया, वरन टकटकी बांधकर उसे देखता रहा। किसी आदमी ने उससे पूछा, "तुम प्यासे होने पर भी पानी क्यों नहीं पीते ?" उसने उत्तर दिया, "मैं इतना पानी कैसे पीऊंगा ?" उस आदमी ने हंसकर कहा, "यदि तुम सारा पानी नहीं पिओगे, तो क्या

राजा तुम्हें दंड देगा ?" किंतु उस मूर्ख ने फिर भी पानी न पिया। इस प्रकार मूर्ख आदमी यदि पूरा काम नहीं कर सकते, तो यथाशक्ति अधूरा भी नहीं करते।

**पुत्रघाती (पुत्र को मारनेवाले) की कथा :**

एक मूर्ख दरिद्र आदमी के बहुत से पुत्र थे। उसका एक पुत्र मर गया; उस मूर्ख ने दूसरे पुत्र को भी मार डाला। जब लोगों ने उससे दूसरे पुत्र को मारने का कारण पूछा, तो उसने कहा, "बेचारा बालक इतनी दूर मार्ग में अकेला कैसे जाता ? इसलिए मैंने उसके साथ अपने दूसरे पुत्र को भी भेज दिया है।" तब लोग उसके इस कर्म पर खूब हंसे और उसकी निंदा करके गांव से बाहर निकाल दिया।

**मूर्ख भाई की कथा :**

एक बार कोई मूर्ख आदमियों के बीच खड़ा हुआ बातें कर रहा था। इसी बीच में उधर से एक सुंदर पुरुष आ निकला। उसे देखकर वह मूर्ख पुरुष बोला, "यह मेरा भाई है, इसलिए इसका धन मेरा धन है। किंतु क्योंकि यह मेरा कुछ भी नहीं लगता, अतः इसका ऋण मेरा ऋण नहीं है।' उसकी ये बातें सुनकर सब हंस पड़े।

**ब्रह्मचारी के पुत्र की कथा :**

एक बार कोई मूर्ख अपने मित्रों के बीच में बैठा हुआ अपने पिता की प्रशंसा कर रहा था। उसने कहा, "मेरे पिता बाल ब्रह्मचारी हैं।" यह सुनकर उसके मित्रों ने पूछा, "फिर तुम कैसे पैदा हुए ?" उसने उत्तर दिया, "मैं तो उनका मानस-पुत्र हूं।" इस पर उसके मित्रों ने उसकी खूब हंसी उड़ाई।

**मूर्ख ज्योतिषी की कथा :**

कोई मूर्ख ज्योतिष-विज्ञान से बिल्कुल शून्य था, किन्तु अपने को बड़ा भारी ज्योतिषी बताता था। अपने देश में आजीविका न मिलने पर वह स्त्री-पुत्र के साथ विदेश में चला गया। वहां उसने झूठ-मूठ अपने को बड़ा भारी ज्योतिषी प्रसिद्ध कर दिया। एक दिन उसने सब लोगों के सामने अपने पुत्र को पहले तो चूमा और बाद में वह खूब रोया। लोगों ने उससे रोने का कारण पूछा। उसने कहा, "मैं भूत, भविष्यत और वर्तमान तीनों का ज्ञाता हूं। सो आज से सातवें दिन यह यह मेरा पुत्र मर जायेगा। इसलिए रोता हूं।" इससे सब लोगों को बहुत अचंभा हुआ। उस मूर्ख ने सातवें दिन अपने पुत्र को मार डाला। बालक को मरा हुआ देखकर लोगों को उस पर बहुत विश्वास हो गया और उन्होंने उसे अद्भुत

ज्योतिषी समझकर बहुत सा धन दिया। इस प्रकार मूर्ख मनुष्य धन तथा प्रशंसा के लोभ में अपने पुत्र को भी मार डालते हैं।

**क्रोधी मनुष्य की कथा :**

किसी गांव में एक मूर्ख क्रोधी मनुष्य मकान के बाहर खड़ा हुआ था। मकान के अंदर उसका एक मित्र उसके गुणों की दूसरे आदमी से प्रशंसा कर रहा था। उस आदमी ने कहा कि उसमें और तो सब गुण हैं, किंतु साहस और क्रोध ये दो बड़े भारी अवगुण हैं। बाहर खड़ा हुआ वह मूर्ख ये बातें सुन रहा था। वह एक-दम अंदर पहुंचा और अवगुण बतानेवाले के गले में कपड़ा लपेटकर उससे बोला, "अरे दुष्ट बता, मैंने कब क्रोध और साहस किया है?" तब दूसरे लोग उस पर खूब हंसे और बोले, "तुम प्रत्यक्ष ही क्रोध और साहस दिखा रहे हो। प्रमाण की क्या आवश्यकता है!" इस प्रकार मूर्ख मनुष्य स्वयं अपने दोषों को प्रकट कर देते हैं।

**कन्या को बढ़ानेवाले राजा की कथा :**

किसी मूर्ख राजा के एक सुंदर कन्या उत्पन्न हुई। वह राजा चाहने लगा कि उसकी पुत्री शीघ्र बड़ी हो जाये। उसने वैद्यों को बुलाकर कहा, "आप कोई ऐसी औषधि दें, जिससे मेरी पुत्री शीघ्र बड़ी हो जाये और मैं उसका विवाह किसी सुयोग्य वर से कर सकूं।" यह सुनकर वैद्यों ने उससे धन ऐंठने के लिए कहा, "महा-राज! ऐसी औषधि अवश्य है, जिससे आदमी शीघ्र बड़ा हो सकता है; किंतु वह दूसरे देश में मिलती है और बहुत खर्च होता है।" राजा ने उन्हें खूब धन दे दिया। कुछ दिन बाद उन्होंने आकर कहा, "हम औषधि तो ले आये हैं, किंतु उस औषधि की सेवन-विधि यह है कि जब तक यह कन्या उसे खायेगी, तब तक उसको कहीं ऐसी जगह अलग छिपाकर रखा जायेगा, जहां उसे कोई न देख सके।" राजा ने उनसे कहा, "जहां आपकी इच्छा हो, वहां छिपाकर रखो।" आज्ञा पाकर वैद्यों ने उसे अलग छिपाकर रखा और औषधि के बहाने खूब धन पाते रहे। कुछ वर्षों के पश्चात जब वह कन्या स्वतः युवती हो गई, तो उन्होंने उसे राजा के सामने लाकर उपस्थित कर दिया। राजा उसे यौवनवती देखकर बहुत प्रसन्न हुआ और उसने वैद्यों को खूब धन देकर संतुष्ट किया।

**धेला वसूल करनेवाले मूर्ख की कथा :**

किसी शहर में अपने को बड़ा बुद्धिमान समझनेवाला मूर्ख रहता था। उसके यहां एक गांव का आदमी नौकरी करता था। एक साल तक नौकरी करने पर

जब उसे पूरा वेतन न मिला, तो वह अपने घर चला गया। उसके चले जाने पर उस मूर्ख ने अपनी पत्नी से पूछा, "वह नौकर कुछ ले तो नहीं गया ?" उस स्त्री ने कहा, "मुझसे एक धेला ले गया है।" तब वह दस पैसे खर्च करके उस नौकर के गांव से अपना धेला वसूल करके लाया। उसकी अर्थ-कुशलता की प्रशंसा करते हुए आदमी खूब हंसे।

**भंवर की पहचान करनेवाले की कथा :**

एक मूर्ख आदमी जहाज पर बैठकर समुद्र-यात्रा कर रहा था। उसका चांदी का लोटा उसके हाथ से छूटकर समुद्र में गिर पड़ा। समुद्र में उठती हुई भंवर को देखकर उस मूर्ख ने उसकी पहचान कर ली और सोचने लगा कि लौटते हुए समुद्र के जल से लोटे को निकाल लूंगा। पार जाकर वह मूर्ख किसी नदी में उठती हुई भंवर को देखकर उसमें गोता लगाने को तैयार हुआ। उसके दूसरे साथियों ने इसका कारण पूछा, तो उसने उत्तर दिया, "मेरा चांदी का लोटा समुद्र में ऐसी ही भंवर में डूब गया था। मैंने भंवर की पहचान कर ली थी। सो, अब इस भंवर से अपना लोटा निकालूंगा।" उसकी इस बात पर दूसरे लोग खूब हंसे और उसकी अक्ल को धिक्कार दिया।

**मांस के बदले मांस देनेवाले मूर्ख की कथा :**

किसी मूर्ख राजा की रसोई से एक आदमी ने पाव भर मांस चुरा लिया। राजा ने आज्ञा दी कि पाव भर मांस चुराने के बदले में इसके शरीर से इतना ही मांस काट लिया जाय। मांस कट जाने पर जब वह आदमी पीड़ा से तड़पने लगा, तो राजा ने उस पर दया करके अपने नौकर से कहा, "इसे बड़ी पीड़ा हो रही है। सो इसे पाव भर से भी अधिक मांस दे दो।" नौकर राजा की इस बात पर बाहर जाकर हंसने लगा, "भला, किसीका सिर काट लेने पर यदि उसे सौ सिर दे दिये जायें, तो क्या वह जीवित हो सकेगा ! स्वामी न तो दंड देना जानता है और न कृपा करना जानता है।"

**दूसरे पुत्र को चाहनेवाली स्त्री की कथा :**

किसी स्त्री के एक पुत्र था। उसकी बड़ी भारी इच्छा थी कि उसके दूसरा पुत्र भी हो। उससे एक धूर्त नीच तपस्विनी ने कहा कि यदि तू अपने इस पुत्र को मारकर देवता की बलि चढ़ा दे, तो तेरे निश्चित ही दूसरा पुत्र उत्पन्न होगा। यह सुनकर वह स्त्री ज्यों ही ऐसा करने के लिए तैयार हुई, त्यों ही किसी बूढ़ी

साध्वी स्त्री ने उसे रोक दिया और उससे कहा, "तू कितनी मूर्ख है कि प्राप्त पुत्र को तो मारती है और अप्राप्त की इच्छा करती है? यदि इस पुत्र को मारने पर भी तेरे दूसरा पुत्र उत्पन्न न हुआ तो क्या करेगी?" इस प्रकार वह स्त्री दुष्कर्म से निवृत्त हुई।

**आंवले लानेवाले मूर्ख की कथा :**

किसी आदमी के यहां एक मूर्ख नौकर रहता था। उस गृहस्थ ने उस नौकर को आज्ञा दी, "जाओ, बाग से मीठे-मीठे आंवले ले आओ।" वह मूर्ख एक-एक आंवले को दांतों से काट-काटकर, चख-चखकर ले आया और स्वामी से आकर बोला, "ये आंवले बहुत मीठे हैं। मैं चख-चखकर लाया हूं।" उस आदमी ने उन आंवलों को झूठा देखकर फिकवा दिया और उस मूर्ख नौकर को घर से निकाल दिया।

मूर्खों की ये कथाएं सुनाकर गोमुख ने दो भाइयों की एक कथा सुनाई :

प्राचीन काल में पटना में दो ब्राह्मण भाई रहते थे। बड़े भाई का नाम यज्ञसोम और छोटे का नाम कीर्तिसोम था। उन दोनों के पास पिता का बहुत सा धन था। कीर्तिसोम ने अपने धन को व्यापार से खूब बढ़ाया और यज्ञसोम ने अपना धन खाने-पीने और दान करने में नष्ट कर दिया। जब वह बिल्कुल निर्धन हो गया, तो उसने अपनी स्त्री से कहा, "बंधुओं के बीच में निर्धन होकर रहने से तो कहीं विदेश में जाकर मरना ही अच्छा है।" उसकी स्त्री ने कहा, "यदि अवश्य ही चलना है तो कीर्तिसोम से मार्ग-व्यय के लिए थोड़ा-सा धन मांग लाओ।" यज्ञसोम ने कीर्तिसोम के पास जाकर कुछ धन मांगा। कीर्तिसोम भाई को धन देना चाहता था, किंतु उसकी पत्नी ने मना कर दिया। अतः उसने धन न दिया। तब यज्ञसोम अपनी साध्वी पत्नी को लेकर चल दिया। मार्ग में उसे एक अजगर सर्प ने निगल लिया। यह देखकर उसकी स्त्री विलाप करती हुई पृथ्वी पर गिर पड़ी। उसे विलाप करती हुई देखकर अजगर मनुष्य की वाणी में बोला, "कल्याणी! तुम क्यों विलाप करती हो?" यज्ञसोम की पत्नी ने उत्तर दिया, "आपने विदेश में मुझ दुखिता का भिक्षा-पात्र छीन लिया, तब मैं विलाप क्यों न करूं?" यह सुनकर अजगर ने अपने मुंह से निकालकर उसे एक स्वर्ण-पात्र दिया और कहा, "तुम यह भिक्षा-पात्र लो।" स्त्री ने कहा, "मुझ मंद भाग्यवाली को कौन भिक्षा देगा?" अजगर ने कहा, "तुम इस पात्र को आगे करके जिससे भी भिक्षा मांगोगी, यदि वह

भिक्षा न देगा, तो उसका सिर तत्क्षण सौ टुकड़े हो जायेगा।" यह सुनकर उस स्त्री ने अजगर से कहा, "यदि यह सत्य है तो तुम ही मुझे मेरे पति की भिक्षा दो।" उस साध्वी स्त्री के ऐसा कहने पर अजगर ने अपने मुख से यज्ञसोम को ज़िंदा ही उगल दिया। उगलने के साथ ही वह अजगर एक दिव्य पुरुष बन गया और प्रसन्न होकर उन स्त्री-पुरुषों से बोला, "मैं कांचनवेग नाम का विद्याधरों का राजा हूं। गौतम महर्षि के शाप से मैं अजगर बन गया था। मेरे शाप की समाप्ति साध्वी स्त्री से बातचीत करने से ही थी। सो अब मेरे शाप का अंत हो गया है।" ऐसा कहकर उसने उस स्वर्ण-पात्र को रत्नों से भर दिया और वह विद्याधर की योनि को प्राप्त होकर आकाश में उड़ गया। वे दोनों पति-पत्नी भी रत्नों का ढेर पाकर अपने घर लौट आये और सुखपूर्वक रहने लगे। इस प्रकार परमात्मा सबको अपने कर्म के अनुसार देता है।

गोमुख बोला, "हे राजन ! एक मूर्ख की कथा और सुनाता हूं :

**'कुछ नहीं' मांगनेवाले मूर्ख की कथा :**

कोई आदमी गाड़ी पर बैठा हुआ कहीं जा रहा था कि उसकी गाड़ी ऊंचे-नीचे मार्ग में चली गई। उसने मार्ग में जाते हुए एक मूर्ख से कहा, "तुम जरा मेरी गाड़ी को समस्थल पर कर दो।" मूर्ख ने उस आदमी से कहा, "यदि मैं तुम्हारी गाड़ी को समस्थल पर ला दूं तो क्या दोगे ?" उस आदमी ने कहा, " 'कुछ नहीं' दूंगा।" वह मूर्ख गाड़ी को समस्थल पर करके उस आदमी से कहने लगा, "तुमने कहा कि 'कुछ नहीं' दूंगा, सो मुझे 'कुछ नहीं' दो।" उसकी इस बात पर सब लोग खूब हंसे।

"इस प्रकार हे राजन ! मूर्ख मनुष्य सदा उपहास, निंदा तथा आपत्ति को प्राप्त होते हैं।" गोमुख से ये कथाएं सुनकर नरवाहनदत्त सो गया।

: ८ :

# बुद्धिमान पक्षी और मूर्ख मनुष्य

दूसरे दिन रात्रि को शक्तियशा की प्राप्ति के लिए उत्सुक नरवाहनदत्त के लिए गोमुख ने यह कथा कही :

किसी वन में एक विशाल बरगद का पेड़ था। उसकी छाया में अनेक पथिक आकर विश्राम करते थे। उस पेड़ पर मेघवर्ण नाम का कौओं का राजा घोंसला बनाकर रहता था। उसका महाशत्रु अवमर्द नाम का उल्लूओं का राजा था। उसने मेघवर्ण के बहुत से कौओं को मारकर उसका तिरस्कार किया था। प्रातःकाल मेघवर्ण ने अपने सभासदों तथा मंत्रियों को बुलाकर इस संबंध में सलाह की। उसके पांच मंत्री थे, जिनके नाम उड्डीवी, आडीवी, संडीवी, प्रडीवी तथा चिरंजीवी थे। सब मंत्रियों ने अपना-अपना मत प्रकाशित किया। उड्डीवी बोला, "शत्रु के बलवान होने पर किसी दूसरे स्थान पर चला जाना या उसके सामने नम्र हो जाना ही श्रेयस्कर है।" आजीवी ने सलाह दी, "शत्रु से एकदम डरकर भाग जाना ठीक नहीं, पहले अपनी शक्ति तथा शत्रु की शक्ति का अनुमान लगा लेना चाहिए।" संजीवी ने कहा, "मर जाना अच्छा है, किंतु शत्रु के सामने झुकना अथवा देशत्याग करना बिल्कुल अनुचित है।" प्रडीवी ने संधि कर लेने की सलाह दी। चिरंजीवी ने कहा, "कैसी संधि ? और कैसा दूत ? कौओं और उल्लुओं का तो सहज वैर है। उसे कौन मिटा सकता है ? यह बात केवल मंत्र के द्वारा सिद्ध हो सकती है, जो राज्य का मूल है।" यह सुनकर कौओं के राजा मेघवर्ण ने चिरंजीवी से पूछा, "आप सबसे वयोवृद्ध हैं, यह बताइये कि कौओं और उल्लूओं में स्वाभाविक वैर क्यों है ? और वह कौनसा मंत्र है, जिससे राज्य की सिद्धि हो सकती है ?" यह सुनकर चिरंजीवी मेघवर्ण से कहने लगा, "इस वैर का कारण केवल वाणी का दोष है। क्या आपने गधे की कहानी नहीं सुनी ? सुनिये :

"किसी धोबी के पास एक बहुत ही कमजोर गधा था। वह उसे चीते की खाल पहनाकर दूसरे लोगों के खेतों में चरने के लिए छोड़ दिया करता था। खेतों के मालिक उसे चीता समझकर नहीं मारते थे। एक दिन हाथ म धनुष-वाण लिए हुए किसी किसान ने उसे देखा। वह उसे चीता समझकर अपने को काले कंबल से ढंककर घुटनों के बल चलने लगा। गधे ने उसे दूसरा गधा समझकर रेंकना आरंभ कर दिया। किसान ने वाणी से उसे गधा जानकर वाण से मार डाला। सो, वह गधा अपनी ही वाणी के दोष से मारा गया। इसी प्रकार हम कौओं की भी वाणी के दोष से ही उल्लूओं के साथ पुरानी शत्रुता है।

"प्राचीन काल में पक्षियों का कोई भी राजा न था। सबने मिलकर किसी एक को राजा बनाना चाहा। सो, सबने उल्लू को राजा बनाने का निश्चय किया। उसी

समय वहां एक कौआ भी उड़ता हुआ आ पहुंचा। उसने कहा, 'अरे मूर्ख पक्षियो ! किसे राजा बना रहे हो ? क्या हंस, कोयल आदि पक्षी नहीं रहे, जो तुम इस क्रूर और अप्रिय-दर्शन को राजा बनाने पर तुले हो ? राजा ऐसे व्यक्ति को बनाना चाहिए जो प्रभावशाली हो, तथा जिसके नाममात्र से कार्य सिद्ध हो जाये। यह उल्लू तो अमंगलकारी है। इस संबंध में मैं (काक) तुम्हें एक कथा सुनाता हूं :

" 'चंद्रसर नाम का एक बड़ा भारी तालाब था। उसके किनारे पर शिलीमुख नाम का खरगोशों का राजा रहता था। एक बार अनावृष्टि के कारण सारे जल-स्थान सूख गये। चतुर्दंत नाम के हस्ति-राज को जब और कहीं जल न मिला, तो वह इसी तालाब पर अपने झुंड के सहित पानी पीने पहुंचा। वहां उनके पैरों के नीचे बहुत से खरगोश दबकर मर गये। उनके चले जाने पर शशकराज शिलीमुख ने दुखित होकर अपने साथियों से कहा, "इस हाथियों के राजा को अब यहां आने का चस्का पड़ गया है, इसलिए यह अब हम सबको समाप्त कर देगा। अतः कोई ऐसा उपाय सोचना चाहिए, जिससे यह फिर कभी यहां न आये।" उसने सोच-विचारकर विजय नाम के खरगोश से कहा, "तुम उसके पास जाकर ऐसी युक्ति निकालो, जिससे उसका यहां आना बंद हो जाय। इस काम को तुम ही कर सकते हो और कोई नहीं; क्योंकि जहां-कहीं भी तुम गये हो, वहीं तुमने अपनी योग्यता का परिचय दिया है।"

" 'भेजने पर विजय प्रसन्नतापूर्वक उस हाथी के पास चला। हाथी को आते हुए देखकर वह पहाड़ की चोटी पर चढ़ गया और बोला, "मैं भगवान चंद्रमा का दूत हूं, उन्होंने मुझे तुम्हारे पास भेजा है और यह कहा है कि यह चंद्रसर नाम का तालाब मेरा निवास स्थान है, इसके चारों ओर रहनेवाले खरगोश मेरे सेवक हैं। मैं उनका स्वामी हूं। इसीलिए मेरा नाम शीतांशु तथा शशी पड़ा है। तुमने मेरे खरगोशों को मार डाला है और मेरे तालाब को भी नष्ट कर दिया है। इस बार तो मैं तुम्हें क्षमा किये देता हूं, किंतु यदि फिर कभी तुम इस तालाब पर आये, तो इसका फल पाओगे।" यह सुनकर हाथियों का राजा डरकर बोला, "मैं फिर कभी ऐसा नहीं करूंगा। भगवान चंद्रमा मेरे मान्य हैं।" विजय ने कहा, "चलो, तुम्हें चंद्रमा के दर्शन करा दें। तुम उन्हींसे क्षमा-याचना कर लेना।" यह कहकर वह खरगोश हाथी को तालाब पर ले गया और दूर से ही उसे चंद्रमा की परछाईं दिखा दी। हाथी उसे दूर से ही नमस्कार करके वन में चला गया और फिर कभी उस

तालाब पर नहीं आया। तब से सारे खरगोश उस तालाब पर खुशी से रहने लगे।'

"यह कहकर कौआ पक्षियों से फिर बोला, 'राजा ऐसा होना चाहिए, जिसके नाममात्र से ही भय दूर हो जायं। यह उल्लू दिन में तो अंधा रहता है, नीच है। अत: राज्य के योग्य नहीं है, क्योंकि क्षुद्र मनुष्य का कभी विश्वास नहीं करना चाहिए। इस संबंध में एक कथा सुना हूं :

" 'कभी मैं एक पेड़ पर रहता था। उस पेड़ के नीचे कपिंजल नाम का एक पक्षी भी रहता था। वह कपिंजल कुछ दिन के लिए अपना स्थान छोड़कर चला गया। उसके स्थान को खाली देखकर उसमें एक खरगोश आकर रहने लगा। कुछ दिनों के बाद जब कपिंजल वहां लौटा, तो उसने अपने स्थान पर खरगोश को पाया। इस पर उन दोनों में खूब झगड़ा हुआ। तब वे दोनों किसी मध्यस्थ की तलाश में चले, जो उनका फैसला कर दे। मैं भी कुतूहलवश छिपकर उनके पीछे-पीछे चल दिया। उन्होंने कुछ दूर जाकर नदी के किनारे पर झूठ-मूठ अहिंसा व्रत धारण किये, ध्यान लगाये और आधी आंखें खोले हुए एक बिलाव को देखा। "चलो, इसी धार्मिक से पूछें"—यह कहकर वे दोनों उसके पास गये। उन्होंने उसके सामने अपनी बात रखी। वह बोला, "मैं तपस्या के कारण बहुत कमजोर हो गया हूं। मुझे इतनी दूर से कुछ भी सुनाई नहीं पड़ता—सो, मेरे पास आकर अपना हाल सुनाओ।" उन दोनों के समीप आ जाने पर वह बिलाव उन दोनों को मारकर खा गया। सो, क्षुद्र व्यक्ति का कभी विश्वास नहीं करना चाहिए। इसलिए इस दुर्जन उल्लू को राजा मत बनाओ।'

"कौए की यह बात सुनकर सब पक्षी इधर-उधर चले गये और उल्लू को राजा न बनाया गया। उल्लू ने कहा, 'तुमने अकारण ही मेरे राज्याभिषेक में विघ्न डाला है। इसलिए आज से तुम और हम शत्रु हैं, याद रखना।' यह कहकर उल्लू वहां से चला गया। इस प्रकार तब से लेकर ही हमारी और उल्लुओं की शत्रुता है।"

यह कहकर चिरंजीवी फिर मेघवर्ण से बोला, "उल्लू संख्या में अधिक हैं और हमसे बलवान भी हैं। सो हम उन्हें कैसे जीत सकते हैं, क्योंकि युद्ध में वे ही लोग विजयी होते हैं, जो संख्या में अधिक होते हैं। इस संबंध में मैं तुम्हें एक कथा सुनाता हूं :

"कोई ब्राह्मण किसी गांव से एक बकरे को खरीदकर उसे कंधे पर रखकर कहीं

जा रहा था। उसे बहुत से धूर्तों ने देखा और आपस में कहा कि ऐसा उपाय करना चाहिए, जिससे यह बकरा हमें मिले। फिर सलाह करके वे मार्ग में कुछ-कुछ दूर के फासले पर जा बैठे। उनमें से एक ने ब्राह्मण के पास जाकर कहा, 'हे ब्राह्मण! तुमने इस कुत्ते को कंधे पर क्यों बैठा रखा है? इसे छोड़ दो।' ब्राह्मण ने उस धूर्त को फटकारा, 'देखते नहीं, यह बकरा है, कुत्ता नहीं!' जब वह ब्राह्मण कुछ दूर और आगे पहुंचा, तो दो और धूर्तों ने आकर उससे इसी प्रकार कहा। अब ब्राह्मण को संशय हुआ कि कहीं यह वास्तव में कुत्ता ही तो नहीं है। उसने बकरे को नीचे उतारकर अच्छी प्रकार देखा और फिर उसे कंधे पर रखकर चल दिया। कुछ दूर और आगे चलने पर शेष धूर्त उसे मिले और उन्होंने भी उसे कुत्ता ही बताया। अब तो ब्राह्मण को निश्चय यो गया कि निस्संदेह यह कुत्ता है। मुझे ही दृष्टि-भ्रम हो गया है, अन्यथा ये सब इसे कुत्ता क्यों बताते? यह सोचकर उस ब्राह्मण ने बकरे को कंधे से उतार दिया और स्नान करके अपने घर चला गया। धूर्तों ने उसे ले जाकर इच्छानुसार खा लिया।

"सो, हे काकराज! अधिक लोगों की विजय होती है। ये उल्लू अधिक हैं और हम कम हैं। इससे अब जो मैं आपसे कहूं, उसे मानो। तुम मेरे कुछ पंखो को नोचकर इसी पेड़ के नीचे मुझे घायल-सा छोड़कर दूसरे कौओं के साथ इस पर्वत पर चले जाओ। आगे मैं अपनी बुद्धि के प्रभाव से सफल होकर लौटूंगा।"

मेघवर्ण ने ऐसा ही किया। रात्रि में उल्लुओं का राजा अवमर्द अपने साथियों के साथ उस पेड़ के नीचे आया और उसने पेड़ के नीचे घायल पड़े हुए उस कौए को देखा। अवमर्द को देखकर चिरंजीवी भी मंद-मंद स्वर में कराहने लगा। उसके पास आकर अवमर्द ने पूछा, "तुम कौन हो और इस अवस्था को कैसे प्राप्त हुए?" चिरंजीवी बड़ी कराहती हुई वाणी में उससे बोला, "मैं कौओं के राजा मेघवर्ण का मंत्री चिरंजीवी हूं। मेघवर्ण मंत्रियों से तुम्हारे साथ युद्ध करने की सलाह कर रहा था। मैंने उससे कहा कि अवमर्द बड़ा बलवान है, नीति में विद्वान है, तुम्हें उसके साथ युद्ध नहीं करना चाहिए, वरन संधि कर लेनी चाहिए। यह सुनकर उसने 'यह शत्रु के पक्ष का है' कहकर मुझे खूब मारा और मेरी यह दशा करके यहां डाल गया और स्वयं अपने साथियों-सहित कहीं चला गया।"

चिरंजीवी की यह बात सुनकर अवमर्द ने अपने मंत्रियों से पूछा, "इस विषय में हमें क्या करना चाहिए?" उसका दीप्तनयन नाम का मंत्री बोला, "अपना उप-

कार करनेवाले अरक्ष्य व्यक्ति की भी रक्षा करनी चाहिए, जिस प्रकार वृद्ध वणिक ने उपकारी चोर की रक्षा की थी :

"प्राचीनकाल में एक वृद्ध वैश्य था। उसकी पत्नी मर गई थी। उसने पैसे के बल पर एक नवयुवती वैश्य-पुत्री से विवाह कर लिया। वह सदा उसकी ओर से पीठ फेरकर सोती थी। एक रात उनके घर में एक चोर घुस आया। चोर को देखकर वह स्त्री डर गई और मुंह फेरकर वृद्ध से लिपट गई। वैश्य ने चकित होकर चारों ओर दृष्टि डाली तो एक कोने में चोर को खड़े हुए देखा। उसने समझ लिया कि उसकी पत्नी इस चोर से डरकर ही उससे लिपट गई है। वह चोर से बोला, 'तुमने मेरा उपकार किया है। इसलिए मैं तुम्हें अपने नौकरों से नहीं मरवाऊंगा। तुम यहां से चले जाओ।' इसलिए हमें इस उपकारी चिरंजीवी की अवश्य रक्षा करनी शाहिए।"

दीप्तनयन के इस प्रकार कहने पर अवमर्द का दूसरा मंत्री वक्रनास बोला, "हमें इसकी रक्षा इसलिए भी करनी चाहिए कि यह शत्रु के पक्ष के मर्म को जानता है और अब तो इसका और मेघवर्ण का बैर हो गया है, इससे हमारा बड़ा उपकार होगा। इस प्रसंग में मैं तुम्हें एक कथा सुनाता हूं :

"किसी ब्राह्मण को दान में दो गाय मिलीं। उन्हें देखकर एक चोर ने उनको चुराना चाहा। उसी समय एक राक्षस ने उस ब्राह्मण को खाने की सोची। दैव-योग से वे दोनों एक ही समय उसके यहां पहुंचे। दोनों ने अपना-अपना आशय एक-दूसरे पर प्रकट कर दिया। रात्रि में जब ब्राह्मण सो गया, तो चोर ने कहा, 'पहले मैं गायों को चुराऊंगा। तुम ब्राह्मण को पकड़ोगे, तो यह जाग पड़ेगा और मैं उन्हें न चुरा सकूंगा।' राक्षस ने कहा, 'नहीं, पहले मैं इस ब्राह्मण को यहां से उठाकर ले जाऊं, तब तुम चुरा लेना। कहीं गायों के खुरों की आवाज से यह ब्राह्मण जग गया, तो मैं इसे न खा सकूंगा।' इस पर वे दोनों आपस में झगड़ने लगे। उनकी आवाज सुनकर ब्राह्मण जाग गया। वह हाथ में तलवार लेकर मंत्र का जप करने लगा, जिससे वे दोनों भाग गये। सो, जिस प्रकार चोर और राक्षस के विवाद से ब्राह्मण का कल्याण हुआ, उसी प्रकार मेघवर्ण और इस चिरंजीवी के आपसी झगड़े से हमारा लाभ होगा।"

तब अवमर्द ने प्राकारकर्ण नाम के तीसरे मंत्री से पूछा। उसने कहा, "शरणागत की रक्षा करना प्रथम धर्म है। जिस प्रकार राजा शिवि ने शरणागत की रक्षा

के लिए अपना मांस भी दे दिया था, उसी प्रकार हमें भी इसकी रक्षा करनी चाहिए।" चौथे मंत्री क्रूरलोचन ने भी उसकी रक्षा करने की ही सलाह दी। अंत में अवमर्द ने रक्ताक्ष नामक मंत्री से पूछा। उसने कहा, "हे राजन! शत्रुओं का कभी विश्वास नहीं करना चाहिए। मूर्ख मनुष्य झूठे बहाने से ही संतुष्ट हो जाते हैं। इस संबंध में आपको यह कथा सुनाता हूं:

"किसी बढ़ई की स्त्री उसे बहुत प्रिय थी। उसने दूसरे लोगों से सुना कि उसकी स्त्री किसी पुरुष से प्रेम करती है। वास्तविकता को जानने के लिए वह एक दिन अपनी पत्नी से बोला, 'हे प्रिये! मैं राजा की आज्ञा से किसी दूर देश में जाऊंगा। सो तुम मेरे मार्ग के खाने आदि का प्रबंध कर दो।' यह कहकर और खाना आदि लेकर वह अपने शिष्य-सहित घर से बाहर चला गया और सायंकाल चुपचाप अपने घर आकर शिष्य-सहित अपनी पत्नी की खाट के नीचे छिप गया। रात्रि में उसकी स्त्री का उप-पति जब उसके घर आया, तो खाट पर चढ़ती उस स्त्री का पैर अपने पति से छू गया। उसने समझ लिया कि मेरा पति छिपा हुआ बैठा है। जब उसके उप-पति ने उससे पूछा, 'तुम मुझे अधिक प्यार करती हो या अपने पति को?' तो वह स्त्री बात बनाकर कहने लगी, 'पति ही मुझे अधिक प्रिय है, मैं उसके लिए अपने प्राण तक त्याग सकती हूं।' उस कुलटा के ये बनावटी बचन सुनकर वह बढ़ई बहुत प्रसन्न हुआ हुआ और खाट के नीचे से निकलकर अपने शिष्य से बोला, 'तुमने देखा, मेरी पत्नी की मुझमें कितनी भक्ति है, तुम इसके साक्षी हो। इसे मैं अपने सिर पर उठाता हूं।' ऐसा कहकर उसने अपनी पत्नी को सिर पर उठा लिया। इस प्रकार मूर्ख लोग प्रत्यक्ष दोष देखकर भी बनावटी बातों से खुश हो जाते हैं। सो, यह चिरंजीवी हमारा शत्रु है, इसे मार डालना चाहिए, यदि इसकी उपेक्षा की गई तो यह रोग की भांति हमें शीघ्र ही मार डालेगा।"

रक्ताक्ष की ये बातें सुनकर अवमर्द बोला, "इस बेचारे ने हमारे लिए ही इतना कष्ट उठाया है, हमारे कारण ही इसकी यह दशा हुई है। अतः यह उचित नहीं कि अब हम इसकी रक्षा न करें।" इस भांति अवमर्द ने रक्ताक्ष मंत्री की बात न मानी और चिरंजीवी को सांत्वना दी। तब चिरंजीवी कहने लगा, "अब मेरे जीवित रहने से क्या लाभ? आप मुझे कुछ लकड़ियां दिला दें, जिससे मैं आग में जलकर इस संकल्प से अपना शरीर त्याग दूं कि अगले जन्म में उल्लू बनकर

मेघवर्ण से अपना बदला चुकाऊं।" यह सुनकर रक्ताक्ष हंसकर बोला, "हमारे स्वामी के प्रसाद से तुम सुरक्षित हो, अग्नि में जलने की आवश्यकता नहीं! और जब तक तुम्हारी कौए की मनोवृत्ति है, तब तक तुम उल्लू नहीं बन सकते, क्योंकि विधाता ने जिसे जैसा बना दिया है, वह वैसा ही रहता है। इस विषय में एक कथा सुनो:

"किसी मुनि की गोदी में बाज के मुंह से एक छोटी-सी चुहिया गिर पड़ी। उस मुनि ने कृपा करके तपस्या के बल से उसे कन्या बना दिया। मुनि के आश्रम में लालित-पालित होकर वह कन्या शीघ्र ही युवती हो गई। उसे विवाह योग्य देखकर मुनि ने सोचा कि इसका विवाह उससे करना चाहिए, जो सबसे अधिक बलवान हो। यह विचारकर मुनि ने सूर्य को बुलाया और अपना आशय कह सुनाया। सूर्य ने कहा, 'मुझसे अधिक बलवान मेघ है, वह मुझे क्षण भर में ढक देता है।' यह सुनकर मुनि ने सूर्य को भेजकर बादल को बुलाया और अपना विचार प्रकट किया। बादल ने उत्तर दिया, 'मुझसे भी बलवान वायु है, वह मुझे दिशाओं में इधर-उधर बिखरा देता है।' तब मुनि ने वायु को बुलाया। वायु ने कहा, 'मुझसे भी बलवान पर्वत है, जिसे मैं भी नहीं हिला सकता।' मुनि ने पर्वत को बुलाया। पर्वत ने कहा, 'मुझसे भी अधिक बलवान चूहे हैं, क्योंकि वे मुझ में छेद कर देते हैं।' तब मुनि ने वन के चूहे को बुलाया। उसने कहा, 'मैं इससे विवाह करने को तो प्रस्तुत हूं; किंतु यह मेरे बिल में कैसे रहेगी?' तब मुनि ने उसे पहले की भांति चुहिया बनाकर चूहे को दे दिया। इस प्रकार ऊंचे पद तक पहुंचकर भी, जो जैसा होता है; वह वैसा ही रहता है। सो हे चिरंजीवी तुम कौए होकर उल्लू नहीं बन सकते।"

रक्ताक्ष के ऐसा कहने पर चिरंजीवी मन में सोचने लगा कि यह मंत्री वास्तव में नीतिज्ञ है और अवमर्द ने इसका कहना नहीं माना, इससे मेरा काम सिद्ध होगा। इसके बाद अवमर्द चिरंजीवी के साथ अपने स्थान को चला गया। वहां अवमर्द के द्वारा दिये हुए मांस को खाकर वह कुछ ही दिनों में मोर की भांति शक्तिशाली हो गया। एक दिन चिरंजीवी अवमर्द से बोला, "हे राजन! यदि आपकी आज्ञा हो, तो मैं मेघवर्ण के पास जाकर, उसे विश्वास दिलाकर सपरिवार उसी बरगद के पेड़ पर ले आऊं, जिससे आप रात के समय उस पर आक्रमण करके मार डालें और मैं आपके ऋण से उऋण हो जाऊं। आप लोग दिन में अपने

घोंसलों को घास-फूंस से ढक लेना, जिससे कौए दिन में आकर आपको न मार सकें।"

ऐसा कहकर और उनके घोंसलों को घास-फूंस आदि से ढकवाकर वह अपने स्वामी मेघवर्ण के पास पहुंचा। चिरंजीवी की सलाह से मेघवर्ण एक-एक जलती हुई लकड़ी सब कौओं के मुंह में देकर उल्लूओं के घोंसलों के पास पहुंचा और सबने दिन में अंधे हुए उल्लूओं के घोंसलों में आग लगा दी। सारे उल्लू वहीं जलकर मर गये। अपने शत्रुओं का विनाश करके मेघवर्ण उसी बरगद के पेड़ पर आकर सुखपूर्वक रहने लगा। तब चिरंजीवी ने अपना शत्रुओं के बीच रहने का वृत्तांत सुनाते हुए मेघवर्ण से कहा, "अवमर्द का मंत्री रक्ताक्ष वास्तव में बड़ा ही बुद्धिमान और नीतिज्ञ था। उसके वचन का अनादर करने से ही उसका विनाश हुआ है। मैंने उस मूर्ख को बहाना बनाकर तथा विश्वास पैदा करके ही ठगा है। इस प्रसंग में चिरंजीवी ने यह कथा मेघवर्ण को सुनाई :

"एक बूढ़ा सर्प जीवों को पकड़ने में असमर्थ होकर एक तालाब के किनारे पर रहता था। एक दिन वह बिल्कुल निश्चल होकर बैठ गया। उसे इस प्रकार बैठा हुआ देखकर मेंढकों ने उससे दूर ही से पूछा, 'आप प्रति दिन की भांति आज हमें क्यों नहीं खाते? ऐसे क्यों बैठे हैं?' सर्प ने उत्तर दिया, 'मेंढकों पीछे दौड़ते हुए मैंने भ्रम से एक ब्राह्मण के पुत्र के अंगूठे में काट लिया था, जिससे वह मर गया। उसके पिता ने मुझे शाप दिया कि तुम मेंढकों के वाहन बनोगे। उसके शाप के कारण ही मैं यहां आया हूं। मैं तो तुम्हारा वाहक हूं। तुम्हें खाऊं कैसे?' यह सुनकर मेंढकों का राजा जल से निकलकर प्रसनतापूर्वक उसकी पीठ पर चढ़ गया। सर्प ने मंत्री और परिवार-सहित उस मेंढकों के राजा को अपनी पीठ पर चढ़ाकर खूब घुमाया। अगले दिन वह सर्प बहाने बनाकर मंद-मंद चलने लगा। जब मेंढकों के राजा ने उससे मंद चलने का कारण पूछा, तो उसने कहा, 'देव! मैं बिना भोजन के उतनी तीव्रता से नहीं चल सकता। मुझे खाना दीजिये, बिना आजीविका के नौकर कैसे जिंदा रह रहे?' यह सुनकर मेढकों के राजा ने उससे कहा, 'तुम मेरे कुछ थोड़े से अनुचरों को खा लिया करो।' तब वह सर्प मेढकों को इच्छानुसार खाने लगा। मेंढकों का राजा भी सवारी के अभिमान से अंधा होकर सब कुछ सहता रहा। इस प्रकार बुद्धिमान मूर्खों के बीच जाकर उन्हें ठग लेता है। मैंने भी इसी प्रकार उल्लूओं के बीच में जाकर उन्हें ठगा है। सो राजा को नीति-निपुण

होना चाहिए। नहीं तो उसे नौकर खूब लूटते हैं और शत्रु उसका विनाश कर देते हैं।" चिरंजीवी मंत्री के ये वचन सुनकर मेघवर्ण ने उसका खूब सम्मान किया और निष्कंटक होकर राज्य भोगने लगा।

यह कथा सुनाकर गोमुख फिर नरवाहनदत्त से कहा, "इस प्रकार पक्षी भी बुद्धि के बल से राज्य भोगते हैं, बुद्धिरहित मनुष्य भी लोगों के उपहास के पात्र बनते हैं।" इस प्रसंग में उसने राजा को यह कथा सुनाई :

मालव देश में दो भाई ब्राह्मण-पुत्र रहते थे। उनके पास पिता से प्राप्त बड़ी संपत्ति थी। जब वे दोनों अलग होने लगे, तो उन्होंने सोचा कि कोई ऐसा उपाय करना चाहिए, जिससे आपस में झगड़ा न हो। वे दोनों उपाध्याय के पास पहुंचे और उनसे कहा, "ऐसा उपाय बताओ जिससे बटवारा भी ठीक हो जाये और आपस में झगड़ा भी न हो।" उपाध्याय ने कहा, "वस्तुओं के दो समान भाग कर लो और आपस में बांट लो।" यह सुनकर वे उन दोनों ने घर, बर्तन, खाट, जानवर आदि सभी एक-एक के दो-दो भाग कर लिये। उनके पास एक दासी भी थी। इसको भी उन्होंने बीच से चीरकर दो भागों में कर लिया। यह जानकर राजा ने उन दोनों को खूब दंड दिया और उनका सब धन भी छीन लिया। इस प्रकार मूर्ख लोग मूर्खों के उपदेश से अपने दोनों लोकों को बिगाड़ लेते हैं। अतः बुद्धिमान को कभी भी मूर्खों के साथ न रहना चाहिए।

यह कथा कहकर गोमुख ने फिर राजा से कहा, "असंतोष भी मनुष्य के लिए बड़ा हानिकारक होता है। इस विषय में भी मैं आपको एक कथा सुनाता हूं :

"कुछ संन्यासी भिक्षा के अन्न से संतुष्ट होकर भी बड़े मोटे-ताजे थे। उन्हें देखकर कुछ मित्रों ने आपस में कहा, 'देखो, ये संन्यासी भिक्षा में प्राप्त रूखा-सूखा अन्न खाकर भी कितने प्रसन्न और मोटे-ताजे हैं!' उन मित्रों में से एक ने कहा, 'मैं आपको एक अचंभा दिखाऊंगा। इन साधुओं को मैं इन्हीं रोटियों से दुबला कर दूंगा।' ऐसा कहकर उसने एक दिन उन संन्यासियों को अपने घर आमंत्रित करके खूब स्वादिष्ट भोजन कराया। इसके बाद उन्हें भिक्षा का अन्न पसंद नहीं आया और कुछ ही दिनों में वे दुर्बल हो गये। तब उस आदमी ने अपने मित्रों को संन्यासियों के पास ले जाकर उन्हें दिखाया और कहा, 'देखो, ये वे ही संन्यासी हैं, जो इसी भिक्षान्न से संतुष्ट रहकर मोटे-ताजे रहते थे, किंतु एक दिन स्वादिष्ट भोजन करके उसके असंतोष से इतने दुर्बल हो गये हैं।' इसलिए सुख

चाहनेवाले बुद्धिमान मनुष्य को मन में संतोष रखना चाहिए। असंतोष दोनों लोक में अशांति और दुख देनेवाला होता है। इस संबंध में सुवर्ण-मूर्ख की कथा सुनो :

"कोई नवयुवक तालाब में पानी पीने गया। उस मूर्ख ने पेड़ पर बैठे हुए सुनहरे पक्षी की परछाईं तालाब में देखी। उसने इस परछाईं को सोना समझा और उसे लेने के लिए जल में घुसा, किंतु चंचल जल में वह परछाईं क्षण भर दीखती और क्षण भर के पश्चात छिप जाती। इस प्रकार बार-बार वह जल में घुसता, किंतु निष्फल रहता। इसी बीच में उसका पिता उधर से आ निकला। उसने अपने पुत्र की मूर्खता को समझा और पक्षी को उड़ा दिया, जिससे परछाईं दीखनी बंद हो गई। तब जाकर वह रुका। इस भांति मूर्ख मनुष्य मिथ्या ज्ञान के कारण उपहास को प्राप्त होते हैं।

"इसी प्रकार कोई व्यापारी वैश्य ऊंटों पर चमड़े में लिपटे हुए वस्त्रों के गट्ठे को लादे हुए अपने सेवकों के सहित कहीं जा रहा था। मार्ग में उसका एक ऊंट थक गया। वह वैश्य एक और ऊंट लाने के लिए चल दिया और अपने नौकरों से बोला, 'देखो, वर्षा के आने पर चमड़ा न भीगने पाये। मैं दूसरा ऊंट लेकर शीघ्र ही लौटूंगा।' उसके चले जाने पर पीछे से खूब वर्षा हुई। मूर्ख नौकरों ने उन चमड़े की पेटियों में बंद कपड़ों को निकालकर उनसे पेटियों को ढक दिया। इस प्रकार सारे कपड़े और चमड़े खराब हो गये। जब वह वैश्य लौटा, तो उसने यह सब देखा और नौकरों से पूछा, 'अरे दुष्टो! तुमने यह क्या किया?' वे बोले, 'आपने ही तो कहा था कि चमड़े की पेटियां न भीगने पायें। इसमें हमारा क्या दोष है?' इस प्रकार जिन कपड़ों की रक्षा के लिए उसने चमड़े को भीगने से बचाने के लिए कहा था, उन्हींको उन्होंने भिगो दिया। सो, मूर्ख मनुष्य वास्तविक बात को न समझकर उल्टा समझते हैं और मुख्य कार्य को नष्ट कर देते हैं।

"ऐसे ही एक मूर्ख को मार्ग में जाते हुए भूख लगी। उसने दूकान से आठ पूड़िया खरीदीं। उसने छः पूड़ियां खाईं, किंतु उससे उसकी भूख शांत न हुई। सातवीं पूड़ी खाने पर उसकी भूख शांत हो गई। यह देखकर वह मूर्ख रोने लगा और कहने लगा कि मैंने यह पूड़ी पहले ही क्यों न खाई? यदि मैं इसे पहले ही खा लेता, तो ये छः पूड़ियां व्यर्थ में क्यों खराब होतीं?

"अब एक और मूर्ख की कथा सुनो : एक दूकानदार वैश्य ने अपने नौकर से कहा कि मैं तनिक घर हो आऊं, तुम दुकान के दरवाजे की देख-भाल रखना।

उसके चले जाने पर वह मूर्ख नौकर दरवाजे को उखाड़कर और अपने कंधे पर रखकर नटों का तमाशा देखने चला गया। वैश्य ने लौटकर उस नौकर को फटकारा, 'तुमने यह क्या मूर्खता की?' वह बोला, 'आपने ही तो कहा था कि दरवाजे की देख-भाल रखना। सो, मैंने दरवाजे की रक्षा की है।' इस प्रकार मूर्ख मनुष्य तात्पर्य को बिना समझे ही केवल एक शब्द को लेकर ही अनर्थ कर डालते हैं।

"गांव के कुछ मूर्खों ने एक आदमी का भैंसा गांव के बाहर बड़ के पेड़ के नीचे मारकर खा लिया। उस भैंसे के मालिक ने राजा से जाकर इसकी शिकायत की। राजा ने उन लोगों को बुलाया, जिन्होंने भैंसे को मारकर खाया था। उनके सामने ही भैंसे के मालिक ने राजा से निवेदन किया, 'देव! इन लोगों ने मेरे सामने ही तालाब के पास, बड़ के पेड़ के नीचे, मेरा भैंसा मारकर खाया है।' यह सुनकर उन मूर्खों में से एक बोला, 'हमारे गांव के पास तालाब ही नहीं है, न ही कोई बड़ का पेड़ है। यह झूठ बोलता है, फिर हमने इसका भैंसा कहां मारकर खाया है?' भैंसे के मालिक ने कहा, 'वह तालाब गांव से पूर्व दिशा की ओर है और वह अष्टमी का दिन था।' उस मूर्ख ने उत्तर दिया, 'हमारे गांव में पूर्व दिशा ही नहीं है और न अष्टमी ही होती है।' यह सुनकर राजा हंसा और उस मूर्ख को उत्साह दिलाता हुआ बोला, 'तुम सत्यवादी हो—चतुर हो। सच बताओ, क्या तुमने भैंसा मारकर खाया है?' यह सुनकर वह मूर्ख कहने लगा, 'मैं अपने पिता की मृत्यु के तीन वर्ष बाद उत्पन्न हुआ था, उसीने मुझे ये चतुरताएं सिखाई हैं। इसलिए महाराज! मैं झूठ कभी नहीं बोलूंगा। अवश्य ही हमने इसका भैंसा मारकर खाया है। किंतु इसकी और सब बातें झूठी हैं।' यह सुनकर राजा अपनी हंसी न रोक सका। उनसे मालिक का भैंसा दिलाकर उनको दंड दिया। इस प्रकार मूर्ख आदमी न छिपाने योग्य बातों को छिपाते हैं और छिपाने योग्य बातों को प्रकट करते हैं।

"किसी दरिद्र मूर्ख की स्त्री बड़ी चंडिका थी। एक बार उसके पिता के घर कोई उत्सव था। उसको भी बुलाया गया। उस स्त्री ने अपने पति से कहा, 'मैं प्रात:काल अपने पिता के घर जाऊंगी। सो, तुम मुझे एक कमल की माला लाकर दो। यदि तुमने न लाकर दी, तो न तो मैं तुम्हारी पत्नी रहूंगी न तुम मेरे पति।' तब वह मूर्ख रात में ही राजा के तालाब पर गया और कमल के फूल तोड़ने के

लिए तालाब में घुस गया। उसे देखकर तालाब के रक्षकों ने पूछा, 'तुम कौन हो?' उसने उत्तर दिया, 'चकवा हूं।' वे उस मूर्ख को बांधकर राजा के पास ले गये। राजा के सामने जब उससे पूछा गया, तो वह चकवे की तरह बोलने लगा। परंतु जब राजा ने उसे विश्वास दिलाकर वास्तविकता पूछी, तब उसने अपना वृत्तांत राजा को सुना दिया। राजा ने उसे दया करके छोड़ दिया।

"ऐसे ही किसी ब्राह्मण ने एक मूर्ख वैद्य से कहा, 'तुम मेरे पुत्र का कूबड़ बैठा दो।' वैद्य ने कहा, 'मैं तुम्हारे पुत्र का कूबड़ ठीक कर दूंगा, किंतु दस पैसे लूंगा और यदि न बैठा सका, तो तुम्हें दस गुने पैसे दूंगा।'

"इस प्रकार शर्त लगाकर वह वैद्य बहुत दिनों तक उसकी चिकित्सा करता रहा, किंतु उसका कूबड़ ठीक न कर सका। तब उसने उसे दस गुने पैसे दिये। इस प्रकार मूर्ख मनुष्य अशक्य कार्य की प्रतिज्ञा करके अपना उपहास कराते हैं। सो बुद्धिमानों को मूर्खों का संसर्ग नहीं करना चाहिए।"

गोमुख से इन मूर्खों की कथाओं को सुनकर शक्तियशा को पाने के लिए उत्सुक नरवाहनदत्त सुखपूर्वक सो गया।

: ९ :

## मनोविनोद की कथाएं

दूसरे दिन सवेरे जब नरवाहनदत्त शक्तियशा के ध्यान में व्याकुल था, तब वत्सराज का मंत्री वसंतक आया और उसने यह विचित्र कथा सुनाई :

मालव देश में श्रीधर नाम के ब्राह्मण के दो जुड़वां पुत्र उत्पन्न हुए, जिनमें से बड़े का नाम यशोधर और छोटे का नाम लक्ष्मीधर था। युवावस्था प्राप्त होने पर दोनों भाई विद्या पढ़ने के लिए किसी दूसरे देश को चले। चलते-चलते वे एक गहन वन में पहुंचे, जिसमें न तो कहीं जल था और न ही पेड़ों की छाया। भूख और प्यास से व्याकुल दिन भर के थके हुए वे दोनों सायंकाल एक पेड़ के नीचे पहुंचे। उस पेड़ के समीप ही एक बावड़ी थी, जिसका जल बड़ा ही स्वच्छ, मधुर और शीतल था। उसमें अनेक प्रकार के कमल भी खिले हुए थे। उन दोनों भाइयों ने उस बावड़ी में स्नान किया और भोजन करके वे उस पेड़

पर चढ़कर विश्राम करने लगे। रात्रि में उन्होंने देखा कि बहुत से पुरुषों ने उस बावड़ी के अंदर से निकलकर उस जगह को साफ किया और वहां एक सुनहरी शैया बना दी। उन्होंने खाने-पीने और अंगरागादि की सामग्री भी इकट्ठी कर दी। उसके पश्चात उस बावड़ी से कामदेव के समान सुंदर एक दिव्य पुरुष तलवार हाथ में लिये निकला। उसके निकलते ही उसके समस्त नौकर बावड़ी में ही छिप गये। तब उस पुरुष ने अपने मुंह से दो स्त्रियां निकालीं। उनमें से एक तो विनीत वेषवाली तथा सौभाग्य के लक्षणों से युक्त थी और दूसरी अत्यंत रूपवती तथा दिव्य वस्त्रों और आभूषणों से अलंकृत थी। वे दोनों ही उस पुरुष की पत्नियां थीं, किंतु दूसरी उसे बहुत प्रिय थी। वह पुरुष खा-पीकर दूसरी स्त्री के साथ शैया पर लेट गया और पहली स्त्री उसके चरण दबाती रही। कुछ देर के बाद वह पुरुष तो सो गया, पर दूसरी स्त्री जागती हुई लेटी रही। उन दोनों भाईयों ने सोचा कि जो स्त्री चरण दबा रही है, इससे यह पूछना चाहिए कि यह पुरुष कौन है? बस वे दोनों पेड़ से उतरकर उसके पास पहुंचे। यशोधर को देखकर लेटी हुई स्त्री ने उसके साथ कुकर्म करने की इच्छा प्रकट की। यशोधर ने कहा "मैं पर पुरुष हूं। आपको मुझसे ऐसी बात शोभा नहीं देती।" उसने बहुत समझाया पर वह न मानी। अंत में वह बोला, "आप मेरी माता के समान हैं। मैं आपके साथ ऐसा दुराचार नहीं कर सकता। इस पर वह स्त्री कुपित हो गई और उसने अपने पति को जगाकर कहा, "यह व्यक्ति मुझे चरित्र-भ्रष्ट करना चाहता था।" यह सुनकर वह दिव्य पुरुष तलवार निकालकर यशोधर को मारने के लिए दौड़ा, तभी उसकी दूसरी स्त्री ने उसे रोककर कहा, "आप बिना वास्तविकता जाने ऐसा क्यों कर रहे हैं? इस दुराचारिणी ने स्वयं मेरे सामने इस पुरुष से दुराचार करने को कहा। जब इस सदाचारी ने उसका प्रस्ताव अस्वीकृत कर दिया, तो इसने आपको जगाकर झूठे ही इस पर दोष लगा दिया। इसने इससे पहले भी मेरे सामने सौ पुरुषों से दुराचार किया है। उन सब की सौ अंगुठियां इसके आंचल की छोर में बंधी हुई हैं। मैंने इससे पूर्व आपसे इसके दुराचार की बात इसलिए नहीं कही कि कहीं आप यह न समझें कि ईर्ष्यावश ऐसा कह रही हूं। इस समय भी मैंने आपको ब्रह्महत्या से बचाने के लिए पतिव्रत धर्म का पालन करके यह बात कही है।" यह कहकर उस सती स्त्री ने अपने सतीत्व का प्रभाव दिखाने के लिए उस वृक्ष की ओर क्रूर दृष्टि से देखा, जिससे वह भस्म होकर गिर

पड़ा और जब उसने उस वृक्ष की ओर प्रसाद-दृष्टि से देखा तो वह फिर हरा-भरा हो गया। इस सती के वचन में विश्वास करके उस पुरुष ने दूसरी स्त्री के आंचल को देखा और उसमें बंधी हुई सौ अंगुठियां पाईं। यह देखकर उसने सती स्त्री को छाती से लगा लिया और उस दुष्टा के नाक-कान काटकर वहां से निकाल दिया। तब उस पुरुष ने यशोधर से अपने अपराध के लिए क्षमा मांगी और दुखी होकर उन दोनों से बोला, "मैं इन दोनों स्त्रियों को अपने प्राणों से भी अधिक प्यार से रखता हूं, किंतु फिर भी इस दुष्टा ने ईर्ष्यावश अपने चरित्र को भ्रष्ट किया। वस्तुतः कुलटा चंचला स्त्री को कौन स्थिर रख सकता है? सती स्त्री ही मनुष्य को दोनों लोकों में पाप और शाप से सुरक्षित रखती हैं। आज इस साध्वी ने मुझे ब्रह्महत्या के शाप से बचा लिया।"

यह कहकर उसने उन दोनों भाइयों से उनका परिचय पूछा।

यशोधर ने भी विश्वास पाकर अपना वृत्तांत उससे कह दिया और पूछा, "कृपया आप भी अपना वृत्तांत हमें बताइये।"

उस पुरुष ने अपना वृत्तांत कहना आरंभ किया :

"पर्वत प्रदेश में कश्मीर नाम का एक देश है, जिसे विधाता ने प्राकृत सौंदर्य में दूसरा स्वर्ग बनाया है। मैं उस देश के एक गांव का रहनेवाला भवशर्मा नाम का ब्राह्मण हूं। पूर्व जन्म में मेरी दो पत्नियां थीं। एक बार मैंने शास्त्रोक्त नियमों के अनुसार उपोषण नाम का व्रत रखा। मेरा व्रत समाप्ति पर ही था कि मेरी एक पत्नी रात में हठात मेरे पास आकर सो गई। नींद में होने के कारण मेरा व्रत खंडित हो गया और मैं जल-पुरुष की योनि को प्राप्त हुआ। ये दोनों स्त्रियां मेरे पूर्व-जन्म की ही स्त्रियां हैं। यह कुलटा वही स्त्री थी, जिसने मेरा व्रत खंडित किया था। व्रत के खंडित होने पर भी उसके प्रभाव से मुझे अपने पूर्व-जन्म का वृत्तांत स्मरण है।" ऐसा कहकर उसने उन दोनों भाइयों का अतिथि-सत्कार किया। उसकी सती स्त्री ने भी अपने पूर्व-जन्म के वृत्तांत को याद करके जमीन पर घुटने टेककर प्रार्थना की, "हे लोकपालों! यदि मैं सच ही पतिव्रता हूं, तो उसके प्रभाव से मेरा पति इस जलवास से मुक्त होकर स्वर्ग को प्राप्त करे।" उसके ऐसा कहते ही स्वर्ग से एक विमान उतरा और उस पर चढ़कर वे दोनों पति-पत्नी स्वर्ग को चले गये।

इस प्रकार सती स्त्रियों के प्रभाव से असाध्य काम भी सिद्ध हो जाते हैं।

वे दोनों ब्राह्मण-पुत्र इस घटना को देखकर अत्यधिक चकित हुए। वहां से चलकर वे दोनों एक निर्जन वन में पहुंचे और एक पेड़ के नीचे विश्राम करने लगे। तभी उन्हें अलक्ष्य वाणी सुनाई दी : "हे ब्राह्मण पुत्रों! आज आप मेरे अतिथि हैं। मैं आपके खान-पान तथा शयन आदि का प्रबंध करूंगा।" यह कहकर वह वाणी चुप हो गई और वहां उसी क्षण एक बावड़ी प्रकट हो गई। उसीके किनारे खान-पान आदि की व्यवस्था भी थी। यह देखकर वे दोनों बहुत चकित हुए और वाबड़ी में स्नान करके भोजन आदि से निवृत्त हुए। तभी वहां एक दिव्य पुरुष प्रकट हुआ। उन दोनों भाइयों ने उसका स्वागत किया और पूछा, "आप कौन हैं?" वह पुरुष अपना वृत्तांत कहने लगा, "मैं पूर्व-जन्म में एक दरिद्र ब्राह्मण था। दैवयोग से मेरी एक साधु से संगति हो गई। उसने मुझसे उपोषण व्रत रखने को कहा। मैंने उस व्रत को नियमपूर्वक रखा, किंतु किसी धूर्त ने सायंकाल में मुझे धोखे से भोजन करा दिया, जिससे मेरा व्रत खंडित हो गया और मैं यक्ष बन गया। यदि मैं अपना व्रत पूरा कर लेता, तो देवता बन जाता।"

ऐसा कहकर उसने उन दोनों उनका परिचय पूछा। यशोधर ने कहा, "हम दोनों भाई विद्या प्राप्त करने के लिए आये हैं और इस विशाल वन में भटक रहे हैं।" यक्ष ने उनसे कहा, "मैं आपको अपने प्रभाव से समस्त विद्याएं देता हूं। आप अपने घर लौट जाओ। किंतु मैं आपसे इसके बदले में यह गुरु-दक्षिणा चाहूंगा कि आप मेरी सद्गति के लिए उपोषण व्रत रखें और उसका फल मुझे दे दें, जिससे मैं देवता बन जाऊं।"

उन दोनों भाइयों ने उस यक्ष की बात को नम्रतापूर्वक स्वीकार कर लिया। तब वे दोनों विद्याओं में निपुण होकर अपने घर लौट आये। वहां आकर समस्त वृत्तांत अपने पिता को सुनाया और यक्ष की दिव्यत्व-प्राप्ति के लिए उपोषण व्रत रखा, उसके प्रभाव से उनका वह यक्ष विमान पर बैठकर उनके घर आया और कहने लगा, "तुम्हारे व्रत से ही मुझे देवत्व प्राप्त हुआ है। सो, अब तुम इस व्रत को अपने लिए रखना, जिससे तुम्हें इस शरीर की समाप्ति पर देवत्व मिलेगा और मेरे प्रसाद से तुम्हें इस जन्म में अक्षय धन प्राप्त होगा।" ऐसा कहकर वह स्वर्ग को चला गया। यशोधर और लक्ष्मीधर भी इस व्रत को करके सुखपूर्वक रहने लगे। इस प्रकार जो मनुष्य धार्मिक कार्यों में प्रवृत्त रहते हैं और सदाचारी होते हैं, उनकी देवता भी रक्षा करते हैं और उन्हें अभीष्ट सिद्धि प्राप्त होती है।

वसंतक से इस अद्भुत और मनोविनोदकारी कथा को सुनकर नरवाहनदत्त अपने पिता के पास भोजन के लिए चला गया। वहां से लौटने पर रात में गोमुख ने उसके मनोरंजन के लिए यह कथा कही :

समुद्र के किनारे गूलरों के वन में, अपने झुंड से छूटा हुआ, एक बलीमुख नाम का बंदर रहता था। एक बार जब वह किनारे पर बैठा हुआ गूलर खा रहा था, तो एक गूलर जल में गिर पड़ा। उसे शिशुमार नाम के एक जलजंतु ने खा लिया। उस फल के स्वाद से प्रसन्न होकर उसने मनोहर शब्द किया। उस मनोहर शब्द को सुनकर बंदर ने उसके लिए बहुत से फल डाले। इस प्रकार नित्य वे दोनों एक-दूसरे को प्रसन्न करते रहे और कुछ ही दिन में आपस में बड़े मित्र हो गये। शिशुमार सारे दिन समुद्र के किनारे पर ही बंदर के पास बैठा रहता और शाम को अपने घर लौटता। इससे तग आकर उसकी पत्नी ने सोचा कि कोई ऐसा उपाय करना चाहिए जिससे इन दोनों की मित्रता टूटे। एक दिन वह बहाना बनाकर पड़ रही। जब शिशुमार ने इसका कारण पूछा, तो वह कुछ न बोली; लेकिन उसकी सखी ने उत्तर दिया, "यह तो तुमसे कहना नहीं चाहती, लेकिन मैं तुमसे कहे देती हूं कि तुम्हारी पत्नी को एक भयंकर गुप्त रोग हो गया है। वह रोग केवल बंदर के हृदय की औषधि से ही शांत हो सकता है।" यह सुनकर शिशुमार सोचने लगा कि बंदर का हृदय कहां से लाऊं? क्या मित्र के साथ द्रोह करना उचित है? बहुत सोचने पर वह इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि मित्र की बलि देकर भी अपनी पत्नी की रक्षा करनी चाहिए। यह विचारकर उसने अपनी पत्नी से कहा, "तुम दुखी क्यों होती हो? बंदर का हृदय तो क्या! मैं तुम्हारे लिए पूरा बंदर ही लाये देता हूं।" ऐसा कहकर वह बंदर के पास पहुंचा और बातों के प्रसंग में उसने बंदर से कहा, "मित्र! तुमने आज तक न तो मेरा घर देखा और न ही मेरी पत्नी से कभी मिले। सो, चलो, आज वहीं विश्राम करना। दोनों मिलकर वहीं खूब खायें-पीयेंगे।" इस प्रकार बहाना बनाकर और उसे अपनी पीठ पर चढ़ाकर शिशुमार अपने घर ले चला। रास्ते में बंदर ने उसे कुछ चिंताकुल देखकर पूछा, "मित्र! क्या बात है? आज तुम कुछ उदास हो।" जड़बुद्धि शिशुमार ने उसे अपने वश में देखकर कहा, "मित्र! मेरी पत्नी गुप्त रोग से पीड़ित है और बंदर का हृदय चाहती है। इस-लिए मेरा मन आज बहुत दुखी है।" यह सुनकर बंदर ने मन में विचारा तो यह दुष्ट इसीलिए मुझे यहां लाया है। अच्छा! वह शिशुमार से बोला, "अरे

मित्र ! तुमने मझसे वहीं क्यों नहीं कहा ? मेरा हृदय गूलर के पेड़ पर ही तो रखा है, मैं उसे लेता आता।" मूर्ख शिशुमार ने कहा, "मित्र ! यदि ऐसी बात है तो चलो, गूलर के पेड़ पर से उसे ले आयें।" शिशुमार ने उसे गूलर के पास लाकर छोड़ दिया। बंदर कूदकर एकदम पेड़ पर चढ़ गया और शिशुमार से बोला, "अरे मूर्ख ! क्या हृदय भी कहीं शरीर से अलग होता है ? मैंने यह बहाना करके तुमसे अपने प्राण बचाये हैं। मैं अब तुम्हारे पास नहीं आऊंगा। तुमने इस संबंध में मूर्ख गधे की कहानी नहीं सुनी ?

"किसी वन में कोई सिंह रहता था, उसका मंत्री एक गीदड़ था। एक बार शिकार खेलते हुए राजा ने उसे वाण से घायल कर दिया। वह घायल होकर जिंदा ही गुफा में घुस गया। उसके शरीर में इतनी पीड़ा थी कि वह चल-फिर भी न सकता था। दोनों भूख से व्याकुल थे। गीदड़ ने शेर से कहा, 'स्वामिन ! आहार अवश्य ढूंढना चाहिए। आहार के बिना तो आप और कमजोर हो जायेंगे।' सिंह ने उत्तर दिया, 'मित्र ! मैं चलने-फिरने में बिल्कुल असमर्थ हूं। यदि मुझे गधे के कान और हृदय खाने को मिल जायें, तो मैं शीघ्र स्वस्थ हो सकता हूं। सो, तुम कहीं से गधे को मेरे पास ले आओ। मैं उसे मारकर दोनों के लिए भोजन प्राप्त करूंगा।' यह सुनकर गीदड़ गधा ढूंढने निकला। घूमते-घूमते उसने जल के किनारे खड़े हुए धोबी के गधे को देखा। उसने गधे से पूछा, 'आप इतने दुर्बल क्यों हो रहे हैं ?' गधा बोला, 'मैं दिन भर धोबी का बोझा ढोता हूं, खाने-पीने को कुछ मिलता नहीं। इसीलिए इतना दुर्बल हूं।' गीदड़ ने कहा, 'आओ ! मेरे साथ चलो। मैं तुम्हें ऐसे वन में ले चलूंगा, जहां तुम्हें बोझा न ढोना पड़ेगा, बल्कि स्वर्ग का सुख पाओगे।' गधा तुरंत गीदड़ के साथ सिंह के पास पहुंचा। सिंह ने बड़े कष्ट से गुफा से निकलकर उसकी पीठ पर पंजा मारा, किंतु दुर्बलता के कारण वह पूरी तरह से जम न सका और गधा भाग आया। यह देखकर शेर को बहुत दुख हुआ। उसने गीदड़ से कहा, 'तुम किसी प्रकार उसे एक बार और ले आओ। मैं तैयार होकर बैठ जाता हूं, अबकी बार उसे अवश्य मार डालूंगा।" गीदड़ फिर गधे के पास पहुंचा और कहने लगा, 'मित्र ! तुम वहां से क्यों भाग आये ?' गधे ने कहा, 'मुझ पर किसी जानवर ने हमला कर दिया था। इसलिए मैंने भागकर अपने प्राणों की रक्षा की है।' गीदड़ बोला, 'भाई, तुम्हें व्यर्थ ही भ्रम हो गया है। वहां कोई वन-जंतु नहीं है। देखते नहीं, मैं भी तो वहां सुखपूर्वक रहता हूं। यदि कोई हिंसक

जंतु वहां होता, तो मेरे जैसा निर्बल जीव वहां कैसे रहता ? सो, आओ, मेरे साथ चलो। दोनों एक साथ मिलकर सुख से रहेंगे।' मूर्ख गधा फिर उसकी बातों में आकर उसके साथ हो लिया। वहां पहुंचते ही गधे को शेर ने मार डाला और गीदड़ को उसकी रक्षा के लिए छोड़कर स्नान करने के लिए चला गया। पीछे से गीदड़ ने उस गधे के कान और हृदय को खा लिया। शेर लौटा तो उसने शृगाल से पूछा, 'इसके कान और हृदय कहां गये ?' शृगाल ने कहा, 'देव ! इस गधे के कान और हृदय थे ही नहीं। यदि कान और हृदय होते, तो एक बार आपके पास से चले जाने पर यह फिर कैसे आ जाता ?' शृगाल की इस बात पर विश्वास करके शेर ने उसका मांस खा लिया।" यह कहानी कहकर बंदर फिर शिशुमार से कहने लगा, "मैं अब तुम्हारे पास नहीं आऊंगा।" बंदर की यह बात सुनकर शिशुमार अपने घर लौट गया। सो, बुद्धिमान मनुष्य को दुर्जनों का कभी विश्वास नहीं करना चाहिए।

• यह कथा कहकर गोमुख ने राजा के मनोविनोद के लिए फिर हास्यरस की कहानियां कहनी सुनाईं :

**गायक को पारितोषिक देनेवाले की कथा :**

किसी गायक ने एक धनवान मनुष्य को अपने गाने से संतुष्ट किया। गाना सुनकर धनवान ने अपने कोषाध्यक्ष से कहा, "इसे दो हजार रुपये दे दो।" "अभी देता हूं"—यह कहकर कोषाध्यक्ष वहां से चला गया। बहुत देर के बाद भी जब वह रुपये लेकर नहीं आया, तो गायक ने स्वयं उससे जाकर रुपये मांगे। किंतु कोषाध्यक्ष ने उसे फिर भी रुपये न दिये। गायक ने इसकी शिकायत धनवान से की। उसने उत्तर दिया, "तुमने मुझे गाना सुनाकर कानों को सुख दिया, उसी प्रकार मैंने भी रुपये देने को कहकर तुम्हारे कानों को सुख दिया। रुपया किस बात का ?" यह सुनकर निराश गायक हंसता हुआ वहां से चला गया।

**दो मूर्ख शिष्यों की कथा :**

किसी गुरु के दो मूर्ख शिष्य थे। वे आपस में एक-दूसरे से बहुत ईर्ष्या करते थे। उनमें से एक शिष्य गुरु का दायां पैर मलकर धोया करता था और दूसरा बायां। एक दिन दाहिने पैर को धोनेवाले शिष्य को गुरुजी ने कहीं बाहर भेज दिया और बायां पैर धोनेवाले से कहा, "आज दायें पैर को भी तुम ही धो दो।" उस शिष्य ने कहा, "यह मेरे प्रतिपक्षी का पैर है। मैं इसे नहीं धोऊंगा।"

गुरु के बहुत कहने पर वह पैर धोने लगा। उस मूर्ख ने गुरुजी के इस पैर को पत्थर मारकर तोड़ डाला। गुरुजी के चिल्लाने पर दूसरे शिष्य आ गये और उन्होंने उस मूर्ख को खूब पीटा। अगले दिन जब दायें पैर को धोनेवाला शिष्य बाहर से लौटा और उसे इस घटना का पता चला, तो उसने क्रोध में भर गुरुजी के अपने विरोधीवाले बायें पैर को तोड़ डाला। इस प्रकार गुरुजी के दोनों पैर उन मूर्खों ने तोड़ दिये।

**दो सिरवाले सांप की कथा :**

किसी सांप के दो सिर थे, एक अग्रभाग की ओर और दूसरा पूंछ की ओर। वह सर्प हमेशा आगेवाले मुंह से ही चला करता था। पूंछवाला मुंह अंधा था और और आगेवाले मुंह में नेत्र थे। एक बार उन दोनों मुंहों में झगड़ा हो गया। एक कहता कि मैं मुख्य हूं और दूसरा कहता कि मैं मुख्य हूं। सर्प आगेवाले मुंह से ही चलता रहा। एक दिन पूंछवाले मुंह ने एक लकड़ी से लिपटकर सांप को चलने से रोक लिया। सर्प ने उसी मुंह को बलवान समझा और अब वह अंधे मुंह से चलने लगा। चलते-चलते वह एक अग्निकुंड में गिर पड़ा और जलकर मर गया। इसलिए जो मूर्ख आदमी गुणों का अंतर नहीं जानते, वे नष्ट हो जाते ह।

**चावल खानेवाले मूर्ख की कथा :**

कोई मूर्ख पहली बार अपनी ससुराल गया। उसकी सास ने सफेद चावल पकाने के लिए निकालकर रखे और कार्यवश रसोई से बाहर चली गई। उस मूर्ख ने चावलों की एक मुट्ठी भरकर मुंह में डाल ली। इसी समय उसकी सास वहां आ गई। वह मूर्ख लज्जा से न तो उन चावलों को निगल ही सका और न उन्हें बाहर ही उगल सका। उससे उसका गला फूल गया और वह बोल भी न सका। यह देखकर उसकी सास बहुत चिंतित हुई और उसने अपने पति को बुलाया। वह उसकी यह हालत देखकर एकदम वैद्य के पास पहुंचा। वैद्य ने गले में फोड़े की आशंका से उसकी ठोढ़ी में सूराख करके मवाद निकालना चाहा। किंतु मवाद के स्थान पर चावल निकल पड़े। यह देखकर सब लोग खूब हंसे।

**गांव जानेवाले मूर्ख की कथा :**

किसी ब्राह्मण का एक मूर्ख पुत्र था। उसके पिता ने रात को उससे कहा, "तुम्हें सवेरे अमुक गांव को जाना है।" यह सुनकर वह सवेरे पिता से बिना कार्य पूछे ही गांव को चला गया और सायंकाल बिना काम किये ही लौट आया। पिता

के पूछने पर उसने उत्तर दिया, "आपने ही तो कहा था कि तुम्हें सवेरे गांव जाना है। सो, मैं वहां हो आया।" इस प्रकार मूर्ख मनुष्य बिना सोचे काम करते हैं और व्यर्थ परिश्रम करके कष्ट उठाते हैं।

इन शिक्षा देनेवाली तथा मन मोहनेवाली कथाओं को सुनकर राजा नरवाहनदत्त सो गया।

## : १० :

# और मनोरंजनकारी कथाएं

अगले दिन सवेरे गोमुख नरवाहनदत्त से फिर मनोविनोदकारी कथाएं कहने लगा :

**देवशर्मा ब्राह्मण की कथा** :

किसी नगर में देवशर्मा नाम का ब्राह्मण रहता था। उसकी पत्नी का नाम देवदत्ता था। कुछ दिन के बाद उसके एक पुत्र उत्पन्न हुआ। दरिद्र होते हुए भी उस ब्राह्मण ने उस पुत्र को बड़ी भारी निधि समझा। सूतक बीत जाने पर उसकी पत्नी अपने पति को बच्चे के पास रक्षा करने के लिए बैठाकर नदी पर स्नान करने के लिए चली गई। इसी बीच में राजा की दासी आई और बोली कि आपको अभी राजमहल में स्वस्ति-वाचन के लिए बुलवाया है। दक्षिणा के लोभ से वह अपने पालतू नेवले को पुत्र की रक्षा के लिए छोड़कर चला गया। उसके चले जाने पर अचानक एक सर्प बिल से निकलकर उस बालक की ओर चला। नकुल ने स्वामि-पुत्र की रक्षा के लिए उस सर्प के टुकड़े-टुकड़े कर दिये। जब देवशर्मा लौटा, तो उसने नेवले के मुंह पर खून लगा देखा। वह समझा कि इसने मेरे पुत्र को मार दिया है। अतः उसने भी पत्थर से नकुल को मार गिराया। अंदर जाकर जब उसने अपने पुत्र को सुरक्षित पाया और समीप ही सांप को मरा हुआ देखा, तो वह बहुत पछताया।

**लंबे बालवाले जीव को मारनेवाले मूर्ख की कथा** :

कोई जड़ बुद्धि मनुष्य अपने पुत्र के साथ वन में जा रहा था। उसका पुत्र उससे कुछ दूर रह गया। उसे किसी रीछ ने काट खाया। वह रोता हुआ अपने

पिता के पास पहुंचा और बोला, "मुझे लंबे बालवाले जानवर ने काटा है।" यह सुनकर उसका पिता क्रोध में भर तलवार लेकर उधर गया, जिधर से उसका पुत्र रोता हुआ आया था। वहां उसने एक जटाधारी तपस्वी को बैठे हुए देखा। उसने सोचा कि इसीने मेरे बेटे को काटा है। वह उसीकी ओर तलवार लेकर दौड़ा। तभी एक राहगीर ने उसे रोका और कहा, "तेरे पुत्र को तो मेरे सामने रीछ ने काटा है, इस तपस्वी ने नहीं।" इस प्रकार वह महापातक से बच गया।

**पर्व के चंद्रमा को देखनेवाले मूर्ख की कथा :**

किसी पर्व के दिन लोग नवोदित चंद्रमा का दर्शन कर रहे थे। उसमें से एक मूर्ख व्यक्ति भी था। एक आदमी ने चंद्रमा की ओर उंगली उठाकर मूर्ख से कहा, "देखो, यह रहा चंद्रमा!" वह मूर्ख चंद्रमा को न देखकर उसकी उंगली को देखने लगा। उसकी इस चेष्टा पर लोग बहुत हंसे।

**बुद्धिमती स्त्री की कथा :**

एक स्त्री किसी दूसरे गांव को जा रही थी। मार्ग में अकस्मात कहीं से आकर एक वानर उसे काटने को दौड़ा। वह स्त्री एक पेड़ की ओट लेकर इधर-उधर भागने लगी। यह देखकर उस बंदर ने उस पेड़ की दोनों बाहों से कौली भर ली। स्त्री ने बंदर के दोनों हाथ पकड़ लिये और उसे रगड़ने लगी, जिससे बंदर बहुत झल्ला उठा। इसी बीच में वहां एक अहीर आ गया। उस स्त्री ने उससे कहा, "क्षण भर के लिए बंदर की भुजाएं पकड़ लो, मैं अपने वस्त्र संभाल लूं।" अहीर ने उत्तर दिया, "यदि तुम मेरे साथ चलना स्वीकार करो, तो मैं बंदर की भुजाएं पकड़ सकता हूं।" स्त्री ने उसकी बात मान ली और अहीर ने बंदर को पकड़ लिया। तब उस स्त्री ने अहीर की छुरी निकालकर उससे बंदर को मार दिया और उस अहीर से बोली, "चलो, चलें!" यह कहकर वह उसे लेकर उसी मार्ग की ओर चल दी, जहां उसे जाना था। कुछ दूर पर उसे उसी गांव को जानेवाले दूसरे साथी मिल गये। बस, वह उस अहीर को छोड़कर उनके साथ चली गई। इस प्रकार उस स्त्री ने बुद्धि से अपने प्राणों तथा चरित्र दोनों की रक्षा की।

इस कथा को सुनकर नरवाहनदत्त सुख से सो गया।

## : ११ :

# कुछ और कथाएं

अगले दिन रात्रि के समय गोमुख ने नरवाहनदत्त के मनोविनोद के लिए यह कथा कही :

किसी नगर में एक धनाढ्य वैश्य का पुत्र था। उसकी माता मर गई थी। उसके पिता ने दूसरी स्त्री के प्रेम में फंसकर अपने पुत्र को उसकी पत्नी-सहित घर से निकाल दिया। वह इधर-उधर भटकता हुआ एक निर्जन और निर्जल वन-प्रदेश में पहुंचा। उसने भूख और प्यास से बेचैन अपनी पत्नी को सात दिन तक अपने खून और पसीने से जिलाया। आठवें दिन वह एक ऐसे वन में पहुंचा, जहां खूब फल-फूल थे और अनेक नदियां थीं। वहां वह अपनी पत्नी को फल-फूल से तृप्त करके स्नान करने के लिए नदी पर गया। उस नदी में उसने कटे हुए हाथ-पैरवाले एक पुरुष को बहते हुए देखा। बहुत दिन के उपवासों के कारण कमजोर होने पर भी उसने उस रुंड को कृपा करके नदी से निकाल लिया। फिर उसके घावों पर पट्टी बांधी, उसे खाना दिया। शीघ्र ही वह स्वस्थ हो गया। तब वह वैश्य-पुत्र अपनी पत्नी तथा उस रुंड के साथ उसी वन में तप करने लगा। एक दिन वह वैश्य-पुत्र फल आदि लेने के लिए गया हुआ था। उसकी पत्नी ने उस रुंड के प्रति प्रेम प्रकट किया। दोनों में इतना प्रेम हो गया कि उस स्त्री ने अपने पति को मार डालने का षड्यंत्र रचा। उस दुराचारिणी ने बीमार होने का बहाना बना लिया और कहा, "मुझे स्वप्न में देवता ने बताया है कि इस नदी के दुस्तर गड्ढे में जो औषधि है, उसके सेवन से मेरा रोग दूर होगा। यदि आप मुझे वह औषधि ला दें, तो मैं जीवित रह सकती हूं।" यह सुनकर वह वैश्य-पुत्र औषधि लेने के लिए घास की एक रस्सी को पेड़ से बांधकर और उसे पकड़कर जल में घुस गया। जब वह भयानक जल-प्रवाह के बीच था, तब उस स्त्री ने रस्सी को खोल दिया। उसका पति जल में बह गया। सौभाग्यवश दूर जाकर वह किनारे पर आ लगा। स्त्री की चेष्टाओं से दुखी होकर वह एक दिन घूमता हुआ नगर में पहुंचा। उस समय उस नगर का राजा मर गया था और एक मंगल हाथी शहर में इसलिए छोड़ दिया गया था कि वह जिस व्यक्ति को अपनी सूंड में उठाकर पीठ कर बैठा लेगा, वही राजा बना दिया जायेगा। हाथी ने वैश्य-पुत्र को सूंड में पकड़कर

अपनी पीठ पर बैठा लिया और वह राजा घोषित कर दिया गया। राजा बनने पर वह वैश्य-पुत्र चपल वृत्तिवाली स्त्रियों से सदैव अलग रहता था। इधर उसकी स्त्री भी अपने पति को मरा हुआ समझकर निशंक होकर उस रुंड को अपनी पीठ पर बैठाकर उसी नगर में पहुंची। वह यह कहकर भीख मांगने लगी कि मेरे इस पति के हाथ-पैर शत्रुओं ने काट दिये हैं। मैं भीख मांगकर अपना और इसका पेट पालती हूं। सब लोग उसे पतिव्रता समझकर खूब भिक्षा देते। इस प्रकार भिक्षा मांगती हुई वह एक दिन राजा के पास भी पहुंची और अपने को पतिव्रता बताकर अपनी बनावटी कथा सुनाई। उसके पति ने उस स्त्री को पहचान लिया, किंतु वह उसे न पहचान पाई। तब उस राजा ने हंसकर उससे कहा, "मैंने तेरा पतिव्रतापन देखा है। तूने अपने पति का खून और मांस खाकर भी उससे स्नेह नहीं किया। तेरा पति वह था, जिसे तूने नदी में बहा दिया या यह रुंड ? तू पति-व्रता नहीं है, राक्षसी है। मुझे विदित है कि तू उसी पाप से इस रुंड को अपनी पीठ पर लिये फिर रही है।" अपने वृत्तांत को प्रकट हुआ जानकर वह स्त्री भय से मूर्च्छित होकर गिर पड़ी। तब मंत्रियों ने उत्सुक होकर राजा से पूछा, "देव ! यह क्या घटना है ?" राजा ने उन्हें सारा वृत्तांत सुना दिया। तब मंत्रियों ने पति-द्रोह के अपराध में उस स्त्री के नाक-कान काटकर उसकी गोदी में उस रुंड को बैठाकर देश से बाहर निकाल दिया।

इसके बाद गोमुख ने एक और कथा सुनाई : किसी वन में कोई तपस्वी कुटी बनाकर रहता था। वह वन के जानवरों, राक्षसों तथा अन्य व्यक्तियों की यथा-शक्ति सेवा करता। एक बार वह परोपकारी तपस्वी वन में घूमता-घूमता किसी बड़े कुएं के पास पहुंचा। जब उसने कुएं के भीतर झांका, तो वहां से एक स्त्री बोली, "हे महात्मन ! मैं, एक सिंह, स्वर्णचूड नाम का एक पक्षी तथा एक सर्प—चारों इस कुएं में पड़े हैं। आप कृपा करके हम चारों को इस कुएं से निकाल दीजिये।" वह तपस्वी अपने तप के प्रभाव से ज्यों ही उन्हें निकालने लगा, त्यों ही उसका तप क्षीण हो गया और वह उन्हें न निकाल सका। तपस्वी ने सोचा कि यह स्त्री निश्चित पापाचारिणी है। इसके साथ बातचीत करने से मेरी सिद्धि नष्ट हो गई है। तब उस तपस्वी ने रस्सी डालकर उन्हें निकाल लिया। फिर शेर, पक्षी, सर्प और स्त्री से उनका वृत्तांत पूछा। सबसे पहले सिंह ने अपना वृत्तांत सुनाना आरंभ किया :

"हिमालय पर्वत पर वैदूर्यशृंग नाम का एक उत्तम नगर है। वहां पर पद्मवेग

नाम का विद्याधरों का राजा रहता है। उसके पुत्र का नाम वज्रवेग था। वज्रवेग बड़ा ही घमंडी था। वह हमेशा किसी-न-किसी का विरोध करता रहता था। जब वह बार-बार रोकने पर भी न रुका, तो उसके पिता ने उसे मृर्त्यलोक में पतित होने का शाप दिया। शाप पाकर उसे अपनी गलती का अनुभव हुआ और उसने अपने पिता की स्तुति करके शाप की समाप्ति की अवधि पूछी। पिता ने कहा, 'तुम मर्त्यलोक में एक ब्राह्मण के घर जन्म लोगे। वहां भी तुम गर्व करने के कारण पिता के शाप से सिंह बनकर कुएं में गिरोगे। तब एक महापुरुष आकर तुम्हें कुएं से निकालेगा। उसका प्रत्युपकार करके तुम्हारे शाप का अंत होगा। सो, मैं वही वज्रवेग हूं और पिता के शाप से सिंह बनकर कुएं में गिर पड़ा हूं। सो, आप मुझे कोई काम बताइये, जिसे करके मैं इस शाप से मुक्त हो जाऊं। अब मैं वन में जाता हूं। जब आप पर कोई आपत्ति आये, तो आप मुझे स्मरण करना।" ऐसा कहकर सिंह वन में चला गया।

सिंह के जाने के पश्चात स्वर्णचूड पक्षी अपनी कहानी कहने लगा, "हिमालय पर्वत पर वज्रदंष्ट्र नाम का विद्याधरों का राजा था। उसकी पत्नी से उसके लगातार पांच कन्याएं उत्पन्न हुईं। तब उसने शिव की आराधना कर पुत्र होने का वरदान पाया। पुत्र हुआ। बड़े स्नेह से उसका लालन-पालन होने लगा। एक दिन उसकी बड़ी बहन गौरी के सामने पिंजड़ा बजा रही थी। उसमें एक पक्षी था। उस बालक ने अपनी बहन को पिंजड़ा बजाते देखकर कहा, 'यह पिंजड़ा मुझे दे दो। मैं भी इसे बजाऊंगा।' उस लड़की ने उसे पिंजड़ा नहीं दिया। तब उस बालक ने पिंजड़ा छीनकर उससे पक्षी को उड़ा दिया। यह देखकर बहन ने उसे शाप दिया, 'तूने पिंजड़े से मेरा पक्षी उड़ाया है, इसलिए तू भी स्वर्णचूड नाम का पक्षी बन जा।' जब उस बालक ने बहन के चरणों में पड़कर शाप की समाप्ति की अवधि पूछी, तो उसने कहा, 'तू पक्षी बनकर एक अंध-कूप में गिरेगा, एक महात्मा आकर तुझे कुएं से निकालेगा, उसका उपकार करके तेरा शाप दूर होगा।' बहन के ऐसा कहने पर वह स्वर्णचूड पक्षी बन गया। वह स्वर्णचूड पक्षी मैं ही हूं। आपने मुझे कुएं से निकालकर बड़ा उपकार किया है। सो, मैं अब वन में उड़ जाता हूं। आप आपत्ति के समय मुझे याद करना, तभी आपका उपकार करके मैं शाप से मुक्त होऊंगा।" यह कहकर वह पक्षी भी उड़ गया।

इसके बाद सर्प ने अपना वृत्तांत सुनाया : "पूर्व जन्म में मैं कश्यप ऋषि

के आश्रम में मुनिकुमार था । वहां एक दूसरा मुनिकुमार भी मेरा मित्र था। एक बार मेरा मित्र मुनिकुमार तालाब में स्नान करने उतरा और मैं किनारे पर ही बैठा रहा । तभी मैंने अपनी ओर आते हुए तीन फनवाले एक सर्प को देखकर उसे मंत्र के बल से वस्त्र में इसलिए लपेट लिया कि इससे अपने मित्र मुनिकुमार को डराऊंगा । वह मुनिकुमार जब स्नान करके लौटा, तो मैंने उसे सांप से डरा दिया, जिससे वह मूर्च्छित हो गया । होश में आकर उसने मुझे शाप दिया : 'तुम भी तीन फनवाले महासर्प बन जाओ ।' मेरे बहुत अनुनय-विनय करने पर उसने मेरे शाप की अवधि बताई कि तुम सर्प बनकर एक कुएं में गिरोगे और एक महात्मा तुम्हें कुएं से निकालेंगे । उनका उपकार करने से तुम्हारा शाप छूटेगा । सो, आप आपत्ति पड़ने पर मुझे याद कीजिये ।" ऐसा कहकर वह सर्प भी चला गया।

अंत में स्त्री ने अपने वृत्तांत का वर्णन किया : "मैं एक राजा के नौकर क्षत्रियकुमार की पत्नी हूं । मेरा पति बड़ा शूरवीर, त्यागी, नवयुवक, सुंदर तथा मानी था। तब भी मुझ दुष्टा ने अन्य पुरुष के साथ प्रेम किया । इस बात का किसी प्रकार मेरे पति को पता लग गया । उसने मुझे बांध डालने का विचार किया । अपनी सखी से यह सुनकर मैं रात में अपने घर से भाग आई और वन में आकर इस कुएं में गिर पड़ी । आपकी कृपा से मैं जीवित निकल आई हूं । सो, आप मुझे कोई सेवा बताइये, जिससे मैं आपका प्रत्युपकार कर सकूं ।" तपस्वी के कहने पर वह स्त्री वहां से गोत्रवर्धन नाम के राजा के यहां चली गई और रानी के यहां दासी बनकर रहने लगी। उस कुलटा के साथ बातचीत करने के पाप से उस तपस्वी की सिद्धि क्षीण हो गई और वन में सभी फल-फूल नष्ट हो गये । उस तपस्वी ने भूख-प्यास से पीड़ित होकर एक दिन सिंह का स्मरण किया । स्मरण करते ही सिंह ने आकर उसके लिए बहुत सा हरिणों का मांस ला दिया । उसे खाकर तपस्वी तृप्त हुआ । तब सिंह ने तपस्वी से कहा, "मेरा शाप समाप्त हो गया, सो मैं जाता हूं ।" यह कहकर वह विद्याधर बनकर आकाश में उड़ गया। वह तपस्वी फिर भूखा मरने लगा। अबकी बार उसने स्वर्णचूड़ पक्षी को याद किया । पक्षी ने उसे रत्न-आभूषणों से युक्त एक पिटारी लाकर दी और कहा, "इससे तुम्हारी हमेशा आजीविका चलती रहेगी । अब मेरा शाप का अंत हो गया, मैं जाता हूं ।" यह कहकर वह भी विद्याधर कुमार बनकर स्वर्ग को चला गया । वह तपस्वी उन रत्नों और आभूषणों को लेकर शहर में बेचने गया। उन्हें एक बूढ़ी स्त्री के घर में रख-

कर वह ज्यों ही बाजार में निकला, त्यों ही वही स्त्री उसे सामने मिली, जिसे उसने कुएं से निकाला था। तपस्वी ने उससे पूछा, "तुम यहां कैसे ?" उस स्त्री ने बताया, "मैं रानी की सेविका बनकर रह रही हूं।" तपस्वी ने स्त्री के पूछने पर रत्न और आभूषणों को प्राप्त करने की बात बता दी और उसे बूढ़ी के घर ले जाकर वे आभूषण और रत्न दिखा भी दिये। उस स्त्री ने जाकर अपनी स्वामिनी रानी से कह दिया। वे आभूषण और रत्न रानी के ही थे। उन्हें स्वर्ण-चूड़ पक्षी ने पिटारी-सहित उठाकर तपस्वी को दे दिया था। रानी ने यह बात राजा से कह दी। राजा ने बूढ़ी के घर से वे रत्न और आभूषण मंगा लिये और तपस्वी को बांधकर डाल दिया। बंधन में पड़कर तपस्वी ने सर्प को स्मरण किया। वह सर्प ऋषिकुमार के रूप में तपस्वी के पास आया। तपस्वी ने उसे सारा वृत्तांत बता दिया। सर्प ने कहा, "मैं राजा को सिर से पैर तक लपेटे लेता हूं और जब तक तुम आकर न कहोगे, तब तक नहीं छोड़ूंगा। तुम्हारे कहने से मैं उसे छोड़ दूंगा। इससे प्रसन्न होकर राजा तुम्हें अपना आधा राज्य दे देगा।" ऐसा कहकर सर्प जाकर राजा से लिपट गया। सब लोग चिल्लाने लगे, "राजा को सर्प ने डस लिया।" तब तपस्वी ने लोगों से कहा, "मैं राजा को सर्प से बचा सकता हूं।" लोगों ने यह समाचार जाकर राजा से कह दिया। राजा ने तपस्वी को बुलाकर कहा, "यदि तुम मुझे सर्प से छुड़ा दोगे, तो मैं तुम्हें आधा राज्य दे दूंगा।" तब तपस्वी के कहने से सर्प ने राजा को छोड़ दिया। राजा ने भी अपने वचन के अनुसार उसे आधा राज्य दे दिया। राजा का तपस्वी के प्रति कोप शांत हो गया। सर्प भी शाप के नष्ट होने से मुनिकुमार बनकर और सभा में अपना वृत्तांत सुनाकर अपने आश्रम को चला गया।

इस प्रकार शुभात्मा व्यक्तियों को शुभ का फल अवश्य ही प्राप्त होता है और दुष्ट स्त्रियां कभी भी विश्वसनीय नहीं होतीं। उनके हृदय में प्राणदान का उपकार भी नहीं रहता।

इस कथा को सुनाकर गोमुख फिर मूर्खों की कथा सुनाने लगा :

**कुत्ते-काटे मूर्ख की कथा :**

किसी विहार में कोई मूर्ख साधु रहता था। एक दिन मार्ग में जाते हुए उसकी जांघ में एक कुत्ते ने काट लिया। विहार में लौटकर वह साधु सोचने लगा कि प्रत्येक साधु अलग-अलग आकर पूछेगा कि जांघ में क्या हुआ ? और मुझे

प्रत्येक को अलग-अलग बताना पड़ेगा। इसलिए कोई ऐसा उपाय करना चाहिए, जिससे मुझे बार-बार न बताना पड़े और सबको एक साथ सूचित कर सकूं। यह सोचकर वह विहार के ऊपर चढ़ गया और उसने तुरही बजाई, जिससे सब साधु इकट्ठे हो गये। उन्होंने पूछा, "क्या बात है?" उसने उत्तर दिया, "मेरी जांघ में कुत्ते ने काट लिया है। मैंने सोचा कि सब अलग-अलग आकर मुझसे पूछेंगे और मुझे सबको बताना पड़ेगा। अतः मैं आप सबको बुलाकर बता रहा हूं।" उसकी इस मूर्खता पर सब साधु खूब हंसे।

**टक्कमूर्ख की कथा :**

किसी स्थान में एक धनवान टक्कमूर्ख रहता था। वह इतना कंजूस था कि अपनी पत्नी के साथ हमेशा बिना नमक के सत्तू खाया करता था। वह और किसी स्वादिष्ट अन्न का स्वाद ही न जानता था। एक दिन दैव से प्रेरित होकर उसने अपनी पत्नी से कहा, "आज मेरा मन खीर के लिए कर रहा है। तुम मुझे खीर बना दो।' उसकी पत्नी ने खीर बनाई। कहीं कोई और न आ जाय, यह सोच-कर वह कंजूस मूर्ख अंदर घर में छिपकर बैठ गया। तभी उसका एक मित्र आ गया। उसने उसकी पत्नी से पूछा, "तुम्हारे पति कहां हैं?" वह अंदर गई और उसने अपने पति से कहा, "तुम्हारा एक मित्र आया है।" कंजूस मूर्ख ने उससे कहा, "मैं लेटे जाता हूं और तुम मेरे पांव पकड़कर रोने लगना और उसके पूछने पर कह देना कि मेरे पति मर गये हैं। यह सुनकर वह चला जायेगा, तब तुम और हम खूब खीर खायेंगे।" उसकी पत्नी ने ऐसा ही किया। उसे रोती हुई देखकर मित्र ने रोने का कारण पूछा। उसने कहा, "मेरे पति ने अभी मुझसे खीर बनाने को कहा था। इधर मैंने खीर बनाई और उधर यह मर गये।" मित्र ने सोचा कि निश्चय ही इस कंजूस ने इसलिए मरने का बहाना बनाया है कि कहीं मैं न इसके साथ खीर खा लूं। सो, मैं नहीं जाऊंगा। यह सोचकर वह भी "हाय मित्र! हाय मित्र!!" कहकर रोने-चिल्लाने लगा। उसके विलाप को सुनकर सभी बंधु-बांधव इकट्ठे हो गये और उसे मरा हुआ जानकर श्मशान ले जाने लगे। उसकी पत्नी ने उसके कान के पास मुंह ले जाकर कहा, "अब उठ जाओ, कहीं ऐसा न हो कि ये लोग तुम्हें ले जाकर जला डालें।" उसने उत्तर दिया, "नहीं! यह धूर्त मित्र मेरी खीर खाना चाहता है। यह नहीं हो सकता। जब तक यह चलनहीं जायेगा, तब तक मैं नहीं उठूंगा।" तब उसके उस कुमित्र ने और

बांधवों ने ले जाकर उसे जला डाला। जलता हुआ भी वह तनिक भी नहीं हिला-डुला। इस प्रकार उस मूर्ख ने तनिक-सी खीर के लिए अपने प्राण दे दिये। बाद में उस कंजूस के धन को दूसरे लोगों ने भोगा।

**बिलाव-मूर्ख की कथा :**

उज्जयनी के एक मठ में कोई मूर्ख उपाध्याय रहता था। उसके मठ में बहुत से चूहे थे। वे रात भर उपद्रव करते थे। उनके उपद्रव से उसे नींद भी न आती थी। एक दिन उसने खिन्न होकर चूहों के उपद्रव की बात अपने मित्र से कही। उसके मित्र ने कहा कि तुम एक बिलाव लाकर अपने मठ में रखो, वह सारे चूहों को मारकर खा जायेगा। उपाध्याय ने इससे पूर्व कभी बिलाव न देखा था। उसने मित्र से बिलाव की पहचान पूछी। मित्र ने बताया बिलाव के नेत्र भूरे, रंग पीला और मटमैला होता है। उसकी पीठ पर बाल होते हैं और वह गलियों में घूमता है। बिलाव की पहचान बताकर मित्र अपने घर चला गया। तब उपाध्याय ने अपने शिष्यों से कहा, "तुमने बिलाव की पहचान तो सुन ही ली है, सो, गलियों में से एक बिलाव को ढूंढ़कर लाओ।" गुरु की आज्ञा पाकर शिष्य बिलाव ढूंढ़ने चल दिये। उन्होंने खूब ढूंढ़ा, किंतु बिलाव न मिला। अंत में उन्होंने भूरी आंखोंवाला, सुनहरे बालोंवाला और पीठ पर बालोंवाला मृगचर्म धारण किये हुए, गलियों में घूमता हुआ एक ब्रह्मचारी देखा। वे उसीको बिलाव समझकर पकड़ लाये और उपाध्याय ने भी उसे बिलाव समझकर रात में बंद कर लिया। सवेरे वह मित्र फिर आया और उसने एक ब्रह्मचारी को बंद पाया। यह देखकर उसने इसका कारण पूछा। सब-कुछ जानकर उसने कहा, "मूर्ख, यह बिलाव नहीं है, यह तो ब्रह्मचारी है! बिलाव के चार टांग और एक पूंछ होती है।" यह सुनकर उन मूर्खों ने उस ब्रह्मचारी को छोड़ दिया। उनकी मूर्खता पर लोग खूब हंसे।

**स्वर्ग के लड्डू खानेवाले मूर्खों की कथा :**

किसी मठ में बहुत से मूर्ख रहते थे। उनमें से मुख्य मूर्ख बड़ा धनवान था। एक बार उसने किसी धार्मिक व्यक्ति से यह सुन लिया कि तालाब बनवाने का बहुत माहात्म्य होता है। उसने मठ के समीप ही एक तालाब बनवाया। एक दिन उस मुख्य मूर्ख ने जाकर देखा कि उस तालाब के किनारे किसीने उखाड़ रखे हैं। उसने अगले दिन भी तालाब के किनारे उखड़े हुए देखे। यह देखकर वह सोचने लगा कि नित्य प्रति कौन किनारे तोड़ डालता है? एक दिन उसने प्रातःकाल

आकर देखा कि एक दिव्य बैल आकाश से उतरा और उसने अपने सींगों से तालाब के किनारे तोड़ डाले। उसने सोचा कि यह बैल स्वर्ग से आया है, इसलिए मैं भी इसकी पूंछ पकड़कर स्वर्ग को क्यों न चला जाऊं? यह सोचकर उसने बैल की पूंछ पकड़ ली। वह बैल उड़ गया और उस मूर्ख को अपने निवास स्थान कैलाश पर्वत पर ले गया। वहां लड्डू तथा अन्य स्वर्गिक पदार्थ खाते हुए उसने बहुत से दिन बिताये। उस बैल को रोज आता-जाता हुआ देखकर उस मूर्ख ने दैव से मोहित होकर सोचा कि मैं इसकी पूंछ पकड़कर फिर मृत्युलोक में चलूं और वहां अपने मित्रों से मिलकर फिर यहीं आ जाऊं। यह सोचकर वह मूर्ख बैल की पूंछ पकड़कर फिर उसी मठ में आ गया। उसे आया देखकर उसके दूसरे मूर्ख साथियों ने उससे पूछा, "तुम कहां चले गये थे?" उसने अपना सारा वृत्तांत उन्हें बता दिया। यह सुनकर उसके साथियों ने उससे कहा, "हमें भी वहां ले चलो और लड्डू खिलवाओ।" उस मुख्य मूर्ख ने उन्हें युक्ति बता दी और एक दिन जब वह बैल तालाब पर आकर पानी पी रहा था, तो मुख्य मूर्ख ने दोनों हाथों से उसकी पूंछ पकड़ ली, दूसरे मूर्ख ने उसका पैर, तीसरे ने दूसरे का पैर और चौथे ने तीसरे का पैर पकड़ लिया। इस प्रकार उन्होंने एक-दूसरे का पैर पकड़कर एक जंजीर-सी बनाली। बैल उन्हें आकाश में ले उड़ा। आकाश में जाते समय दूसरे मूर्खों ने मुख्य मूर्ख से पूछा, "तुमने स्वर्ग में जो लड्डू खाये थे, वे कितने बड़े थे?" मुख्य मूर्ख ने लड्डुओं का परिमाण बताने के लिए ज्यों ही बैल की पूंछ से हाथ छोड़े, त्यों ही सब मूर्ख पृथ्वी पर गिरकर मर गये। इस प्रकार बिना विचारे प्रश्न पूछना और उसका उत्तर देना, दोनों ही हानिकारक हैं।

**वृक्षों की चोटी पर चलनेवाले मूर्ख की कथा :**

कोई मूर्ख रास्ता भूलकर गलत रास्ते से जा रहा था। उसने दूसरे राहगीरों से रास्ता पूछा। उन्होंने कहा, "नदी के किनारे पर खड़े हुए पेड़ के ऊपर के रास्ते से चले जाओ।" वह मूर्ख पेड़ के ऊपर चढ़कर चलने लगा। उसके बोझ से पेड़ की एक शाखा झुक गई, अतः वह उसे हाथों से पकड़कर लटक गया। उसी समय एक हाथी-सवार हाथी पर बैठा हुआ नदी में से जा रहा था। उस मूर्ख ने उससे कहा, "तुम मुझे बचा लो, नहीं तो मैं गिरकर मर जाऊंगा।" उस हाथी-सवार ने अपने हाथों से उसके पैर पकड़े ही थे कि हाथी चल पड़ा और वह भी उस मूर्ख के पैर पकड़े हुए लटका रहा। तब उस मूर्ख ने हाथी-सवार से कहा, "इस प्रकार लटके-

लटके तो हम दोनों नदी में गिरकर मर जायेंगे। सो, यदि तुम गाना जानते हो तो गाओ, जिससे हमारी आवाज सुनकर कोई-न-कोई आदमी यहां आ जाये और हमें बचा ले।" मूर्ख की यह बात सुनकर हाथी-सवार गाने लगा। उसके गाने से प्रसन्न होकर उसे साधुवाद देने के लिए ज्यों ही पेड़ की शाखा छोड़कर उस मूर्ख ने ताली बजानी चाही, त्यों ही वे दोनों गिरकर नदी में बह गये और मर गये। इस प्रकार मूर्खों की संगति भी घातक होती है।

यह कथा कहकर गोमुख ने नरवाहनदत्त से हिरण्याक्ष की यह कथा कही :

कश्मीर में हिरण्यपुर नाम का एक स्थान था। वहां कनकाक्ष नाम का प्रसिद्ध राजा राज्य करता था। उसकी पत्नी का नाम रत्नप्रभा था। शंकर भगवान की पूजा करने से उसके हिरण्याक्ष नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। एक बार जब हिरण्याक्ष गुल्ली खेल रहा था, तब उसकी गुल्ली उछलकर मार्ग में जाती हुई एक तापसी के जा लगी। उस तापसी ने क्रोध को रोककर हिरण्याक्ष से हंसकर कहा, "जब तुम्हें अभी अपने यौवन आदि का इतना गर्व है, तो यदि तुम मृगांकलेखा को प्राप्त कर लोगे, तब तो न जाने तुम्हारा क्या हाल होगा!" यह सुनकर हिरण्याक्ष ने तापसी से अपने अपराध की क्षमा मांगी और नम्रतापूर्वक पूछा, "यह मृगांकलेखा कौन है?" तापसी ने उत्तर दिया, "हिमालय पर्वत पर शशितेज नाम का महायशस्वी विद्याधरों का राजा है। मृगांकलेखा उसकी पुत्री है। वह तुम्हारे योग्य पत्नी है और तुम उसके योग्य पति हो।" हिरण्याक्ष ने पूछा, "देवी! बताइये, मैं उसे किस कार प्राप्त कर सकता हूं?" तापसी ने कहा, "मैं स्वयं उसके पास जाकर तुम्हारे गुणों का वर्णन करके उसे तुम पर अनुरक्त कर दूंगी और फिर तुम्हें उसके पास ले जाऊंगी। तुम प्रातःकाल मुझे शिव के मंदिर में मिलना।" यह कहकर तापसी मृगांकलेखा के पास चली गई और उसके सामने हिरण्याक्ष के गुणों का वर्णन करके उसे हिरण्याक्ष पर अनुरक्त कर दिया।

तापसी रात भर मृगांकलेखा के पास रही। उसी दिन प्रातःकाल पार्वती ने हिरण्याक्ष को स्वप्न में दर्शन देकर कहा, "तुम पूर्वजन्म में विद्याधर थे। मुनि के शाप से तुम इस जन्म में मानव योनि को प्राप्त हुए हो। तापसी के कर-स्पर्श से तुम शाप से मुक्त हो जाओगे और तुम्हारा शीघ्र ही मृगांगलेखा से विवाह हो जायेगा। तुम्हें इस बारे में कोई चिंता नहीं करनी चाहिए, क्योंकि मृगांकलेखा तुम्हारी पूर्वजन्म की पत्नी है।" यह कहकर पार्वती अदृश्य हो गई और हिरण्याक्ष ने भी जगकर स्नान-

आदि मंगल कार्य किये। फिर वह उसी शिवजी के मंदिर में पहुंचा, जहां तापसी ने मिलने को कहा था। इसी रात को मृगांकलेखा को भी स्वप्न में पार्वती के दर्शन हुए। पार्वती ने उससे कहा, "हिरण्याक्ष तापसी के कर-स्पर्श से शाप से मुक्त होकर पुनः विद्याधर योनि को प्राप्त होगा। वही तुम्हारा पूर्वजन्म का पति है। तुम उसे स्वीकार करो।" प्रातःकाल जगकर मृगांकलेखा ने रात का स्वप्न तापसी को बता दिया। तब तापसी शिवजी के मंदिर में पहुंची। वहां हिरण्याक्ष पहले से ही आया हुआ था। तापसी ने हाथ पकड़कर उसे उठाया और कहा, "पुत्र! आओ, मेरे साथ विद्याधर लोक को चलो।" उसके कर-स्पर्श मात्र से हिरण्याक्ष विद्याधर हो गया और अपनी पूर्वजन्म की जाति को स्मरण करके तापसी से बोला, "मैं हिमालय पर्वत पर स्थित वज्रकूट नाम के नगर का स्वामी अमृततेज नाम का विद्याधरों का राजा हूं। पूर्वजन्म में मैं मुनि के शाप से मनुष्य योनि को प्राप्त हुआ। मेरे शाप से दुखित होकर मेरी पत्नी भी मर गई और वही इस जन्म में मृगांकलेखा के रूप में उत्पन्न हुई है। सो, मैं आज आपके कर-स्पर्श से शाप-मुक्त होकर पुनः विद्याधर योनि को प्राप्त हुआ हूं।" यह कहता हुआ अमृततेज मृगांकलेखा के पास पहुंचा। दर्शन-मात्र से उन दोनों का प्राचीन प्रेम पुनः नवीन हो गया। तापसी के कहने से मृगांकलेखा ने सखी के द्वारा अपने पिता से हिरण्याक्ष के साथ विवाह करने का अपना मनोरथ कहलाया। पार्वती ने स्वप्न में उसके पिता को भी इस घटना से सूचित कर दिया था। इसलिए मृगांकलेखा के पिता शशितेज ने अमृततेज को अपने महल में ले जाकर उसके साथ अपनी पुत्री का विवाह कर दिया। विवाह के बाद हिरण्याक्ष मृगांकलेखा के साथ अपने वज्रकूट नगर में लौट आया। वहां तापसी के द्वारा उसने अपने पिता कनकाक्ष को बुलवाया और खूब धन-दौलत देकर पृथ्वी पर भेज दिया और उसके बाद मृगांकलेखा के साथ राज्य-सुख भोगने लगा। इस प्रकार पूर्वजन्म के कर्मों के अनुसार मनुष्य को बिना प्रयत्न के कठिन-से-कठिन कार्यों में सिद्धि प्राप्त होती है।

## : १२ :

# शक्तियशा का विवाह

अगले दिन रात्रि में गोमुख ने नरवाहनदत्त के मनोविनोद के लिए यह कथा सुनाई :

धारेश्वर नामक शिवजी के सिद्ध-क्षेत्र में कोई महामुनि अपने शिष्यों के सहित रहता था। मुनि ने अपने शिष्यों से कहा, "यदि तुम में से किसीने कोई अपूर्व बात देखी हो या सुनी हो, तो बताओ।" तब एक शिष्य ने कहा, "मैंने एक अपूर्व बात सुनी है। वह आपको सुनाता हूं। कश्मीर के विजय नामक महाक्षेत्र में कोई विद्याभिमानी संन्यासी रहता था। एक बार वह शास्त्रार्थ में दिग्विजय करने के लिए पटना की ओर चला। मार्ग में जब वह एक पेड़ के नीचे विश्राम कर रहा था, तो उसे एक धार्मिक व्यक्ति दिखाई दिया। संन्यासी ने उससे पूछा, 'तुम कहां से आ रहे हो?' धार्मिक ने कहा, 'मैं शास्त्रार्थ में कश्मीर के पंडितों को जीतने के लिए जा रहा हूं।' यह सुनकर संन्यासी ने सोचा, 'यदि मैंने इस व्यक्ति को ही न जीता, तो मेरा आगे जाना व्यर्थ है।' यह सोचकर वह उसकी धार्मिकता पर आक्षेप करता हुआ बोला, 'तुम कैसे धार्मिक और मुमुक्ष हो—क्या संसार को शास्त्रार्थ के द्वारा बंधन से मुक्त कराया जा सकता है? मोक्ष चाहनेवाले व्यक्ति को तो शांत और जितेंद्रिय होना चाहिए। इसलिए तुम शांति-रूपी कुठार से संसार-रूपी वृक्ष को काटो।' संन्यासी के ये वचन सुनकर धार्मिक बड़ा संतुष्ट हुआ और उसने संन्यासी को अपना गुरु स्वीकार कर लिया। धार्मिक अपने देश को वापस लौट आया। इसी पेड़ के नीचे विश्राम करते हुए संन्यासी ने कुछ दूर पर अपनी पत्नी के साथ बात-चीत करते हुए एक यक्ष को देखा। यक्ष ने पहले अपनी पत्नी को एक फूल की माला से पीटा। वह पुष्प-माला के प्रहार से झूठ-मूठ ही अचेत हो गई, फिर कुछ देर के बाद वह होश में आ गई। तब यक्ष ने उससे पूछा, 'तुमने क्या देखा?' वह स्त्री झूठ ही बहाना बनाकर कहने लगी, 'माला से ताड़ित होकर मैंने एक काले पुरुष को अपनी ओर आते देखा। उसके हाथ में जाल था। उसके नेत्र अग्नि की तरह जल रहे थे, बाल ऊपर को खड़े हुए थे और आकृति बड़ी ही भयंकर थी। वह दुष्ट मुझे पकड़कर यमलोक को ले गया। वहां अधिकारियों ने मुझे

उससे छुड़ा दिया।' यक्षिणी की इस बात को सुनकर यक्ष हंसता हुआ बोला, 'तूने तो स्त्रियों का पूरा इंद्रजाल फैला दिया। क्या फूलों की चोट से भी कभी किसी की मृत्यु सुनी है! क्या यम के द्वार से भी कभी कोई लौटा है! मूर्ख स्त्री! तूने तो इस समय पटना की स्त्रियों का अनुकरण किया है। वहां सिंहाक्ष नाम का राजा राज्य करता है। एक बार उसकी रानी, उसके मंत्री, सेनापति, पुरोहित तथा वैद्य की स्त्रियों के साथ शुक्ल पक्ष की त्रयोदशी के दिन सरस्वती के दर्शन करने गई। मार्ग में उन्हें बहुत से कुबड़े, अंधे तथा लंगड़े रोगी मिले। उन रोगियों ने उन स्त्रियों से प्रार्थना की कि हम असहाय हैं, आप हम रोगातुरों को औषध दिलाकर स्वस्थ कीजिये। उन पर कृपा करके वे स्त्रियां उन्हें अपने साथ ले आईं और एक-एक को अलग-अलग अपने-अपने घर ले गईं। उन्होंने अपने पतियों को प्रेरित करके उन रोगियों को औषधियां दिलाई और सेवा-शुश्रूषा करके स्वस्थ किया। कुछ दिनों बाद उनके स्वस्थ होने पर वे स्त्रियां उनसे कुकर्म करने लगीं। उनके पतियों को संदेह तो हुआ, पर पता कैसे लगाया जाय? राजा ने दूसरों से कहा, "तुम अभी अपनी पत्नियों से कुछ मत कहो, पहले आज मैं रानी से युक्तिपूर्वक पूछ लूं।" सबने राजा की बात मान ली; रात को राजा ने अपनी पत्नी से पूछा, तो उसने बनावटी उत्तर दिया, "मैं आपको क्या बताऊं? मुझे बताते हुए बड़ा संकोच होता है कि भीत पर अंकित गदा-चक्रधारी भगवान की मूर्ति से साक्षात भगवान निकलकर रात में मेरे पास आते हैं और प्रातःकाल फिर इसीमें विलीन हो जाते हैं।" उस मूर्ख राजा ने रानी की इस बनावटी बात पर विश्वास करके उसे ईश्वरीय माया समझकर रानी से कुछ नहीं कहा और मंत्री, सेनापति आदि से भी यही बात आकर कह दी। वे मूर्ख भी अपनी-अपनी पत्नी के पास विष्णु भगवान के आने की बात मानकर चुप हो गये। इस प्रकार झूठी बातें बनाकर दुष्ट स्त्रियां अपने मूर्ख पतियों को ठग लेती हैं, किंतु मैं वैसा मूर्ख नहीं हूं।' ये सारी बातें उस संन्यासी ने सुन लीं और वह यक्ष के पास जाकर हाथ जोड़कर बोला, 'भगवन! मैं आपकी शरण में आया हूं। मैंने इस पेड़ के नीचे बैठकर आपकी सब बातें सुन ली हैं। सो आप मेरे इस अपराध को क्षमा कीजिये।' संन्यासी के इस सत्य वचन से प्रसन्न होकर यक्ष ने उससे कहा, 'मैं तुमसे खुश हूं, जो चाहो, वर मांगो।' संन्यासी ने कहा, 'मैं केवल आपसे यही वर चाहता हूं कि आप अपनी पत्नी पर क्रोध न करें।' संन्यासी की ये बातें सुनकर यक्ष और अधिक प्रसन्न हुआ और बोला, 'मैंने

तुम्हें यह वर दे दिया, अब कोई और वर मांगो।' संन्यासी ने कहा, 'मैं आपसे दूसरा वर यह मांगता हूं कि आज से आप दोनों मुझे अपना पुत्र समझें।' उन दोनों ने संन्यासी से कहा, 'आज से तुम हमारे पुत्र हुए। हमारे प्रसाद से तुम्हें कभी विपत्ति का सामना न करना पड़ेगा; विवाद, कलह, जुआ आदि में तुम सर्वत्र विजयी होगे।' यह कहकर यक्ष-दंपत्ति अदृश्य हो गये। अगले दिन प्रातःकाल संन्यासी पटना पहुंचा। वहां उसने शास्त्रार्थ में समस्त पंडितों को हरा दिया और राजा के सामने ही दरबार में पंडितों से यह प्रश्न किया, 'भीत पर अंकित चित्र से निकलकर कोई गदा-चक्रधारी पुरुष रात में मुझसे मिलकर पुनः भीत में ही विलीन हो जाता है। सो, बताओ यह क्या है?' यह सुनकर पंडित आपस में एक-दूसरे का मुंह देखने लगे, क्योंकि वे वास्तविक घटना को जानते ही न थे। तब राजा सिंहाक्ष ने संन्यासी से कहा, 'आप स्वयं ही इसका उत्तर दीजिये। इस पर संन्यासी ने यक्ष से सुना हुआ वृत्तांत सुनाकर कहा, 'मनुष्यों को पाप की मूल स्त्रियों का संपर्क कभी न करना चाहिए।' यह सुनकर राजा सिंहाक्ष ने प्रसन्न होकर संन्यासी को अपना समस्त राज्य देना चाहा, किंतु संन्यासी ने उसे स्वीकार न किया। तब राजा ने उसे बहुत से रत्न दिये, उन्हें लेकर संन्यासी कश्मीर लौट आया और यक्ष के प्रसाद से सुखपूर्वक रहने लगा।"

यह कथा सुनाकर शिष्य ने मुनि से कहा, "मैंने यह कथा उसी संन्यासी से सुनी है।" इस कथा को सुनकर मुनि तथा उसके दूसरे शिष्य बहुत विस्मित हुए। गोमुख इस कथा को नरवाहनदत्त को सुनाकर बोला, "विधाता और दुष्ट स्त्रियों के विचित्र-चरित्रों को कोई नहीं जान सकता। इस विषय में आप एक और कहानी सुनिये :

"मालव देश में कोई ग्रामवासी कुटुंबी व्यक्ति रहता था। उनके दो-तीन पुत्रों के बाद एक कन्या उत्पन्न हुई। कन्या के उत्पन्न होते ही उसकी माता की मृत्यु हो गई। कुछ दिनों के बाद उस आदमी का एक पुत्र मर गया। इसके बाद बैल के सींगों से आहत होकर उसका दूसरा लड़का भी मर गया। उस आदमी ने उस लड़की का नाम त्रिमारिका (तीन को मारनेवाली) रख दिया। उस लड़की के जवान होने पर उस ही गांव के एक धनवान के पुत्र ने उस लड़की को उसके पिता से मांग लिया। उसके पिता ने उसकी शादी उस धनवान के पुत्र के साथ कर दी, लेकिन शीघ्र ही

उसका पति मर गया। कुछ दिन बाद उस लड़की ने दूसरे पुरुष के साथ विवाह कर लिया। थोड़े समय बाद उसकी भी मृत्यु हो गई। उस प्रकार क्रम से उसके दस पति मर गये। तब लोगों ने हंसी में उसका नाम दशमारिका (दस को मारनेवाली) रख दिया। जब उस लड़की ने एक और आदमी से विवाह करना चाहा, तो उसके पिता ने उसे रोक दिया और वह अपने पिता के घर पर ही रहने लगी। एक बार एक सुंदर आकृतिवाला नवयुवक राहगीर उसके मकान पर आ गया। उसके पिता ने एक रात के लिए उसे अपने यहां ठहरा लिया। उस लड़की ने उस पुरुष को देखकर उसके साथ विवाह की इच्छा की। वह नवयुवक राहगीर भी उसे देखकर विवाह के लिए उत्सुक हो गया। उस लड़की ने लज्जा त्यागकर अपने पिता से कहा, 'मैं केवल इस पुरुष से और विवाह करूंगी। यदि यह भी मर जायेगा, तो फिर मैं संन्यास ले लूंगी।' उसके पिता ने कहा, 'तुम्हारे दस पति मर गये हैं, यदि यह भी मर गया तो लोग बहुत मजाक उड़ायेंगे।' यह सुनकर वह नवयुवक राहगीर बोला, 'मैं नहीं मरूंगा, क्योंकि मेरी दस पत्नियां क्रम से मर चुकी हैं। सो, हम दोनों एक ही कोटि में आ गये हैं।' यह बात सुनकर सब लोगों के कहने से उस लड़की के पिता की आज्ञा से उन दोनों का विवाह हो गया। कुछ समय के पश्चात वह पुरुष भी शीत ज्वर से पीड़ित होकर मर गया। तब उस एकादशमारिका (ग्यारह को मारनेवाली) की सबने हंसी उड़ाई और उसने दुखित होकर संन्यास ग्रहण कर लिया।"

इस कथा को सुनकर नरवाहनदत्त भी हंस पड़ा। इसके बाद गोमुख ने उसे एक और कथा सुनाई :

किसी गांव में एक दरिद्र गृहस्थी आदमी था। उसके पास केवल एक बैल था। वही उसकी एकमात्र संपत्ति था। निर्धन होकर भूखा मरने पर भी उसने उस बैल को नहीं बेचा। अंत में उसने विंध्यवासिनी देवी के मंदिर में जाकर कठोर तपस्या की। देवी ने प्रसन्न होकर उससे कहा, "बेटा ! उठो, तुम्हारे पास हमेशा एक बैल रहेगा, इसलिए उसे बेचकर तुम सुख से रहो।" इस वर को पाकर वह आदमी अपने घर लौट आया, पर उसने अधीर होकर भी उस बैल को नहीं बेचा। उसने सोचा कि मेरे पास यही बैल तो एकमात्र धन है। यदि इसे भी मैंने बेच दिया, तो फिर क्या करूंगा ? एक बार उस दरिद्र किसान ने देवी के वरदान की बात अपने एक मित्र से कह दी। उस मित्र ने उसे समझाया, "देवी के वरदान का

अर्थ यह है कि तुम इस बैल को बेचकर अपने कुटुंब का पालन करो। तुम्हें इसके स्थान पर दूसरा बैल मिल जाया करेगा। इसी प्रकार एक के बेचने पर तुम्हें दूसरा बैल मिलता जायगा।" मित्र के कहने पर उसने ऐसा ही किया और कुछ ही दिनों में वह धनवान हो गया। इस प्रकार सत्त्वशाली व्यक्ति को ही भाग्य फलदायक होता है, निस्सत्त्व व्यक्ति के पास लक्ष्मी नहीं रहती।

इस कथा को कहकर गोमुख ने फिर एक धूर्त की कथा सुनाई : "दक्षिणा-पथ में पृथ्वीपति नाम का एक राजा था। उसके राज्य में दूसरों को ठगने-वाला एक महाधूर्त व्यक्ति रहता था। एक बार वह एक बड़े भारी सेठ का वेष बनाकर राजा के दरवाजे पर पहुंचा और द्वारपाल से बोला, 'मैं राजा से मिलना चाहता हूं।' द्वारपाल उसकी वेषभूषा से प्रभावित हो गया और उसे राज-दरबार में ले गया। उस बनावटी सेठ ने राजा को खूब भेंट दी। राजा भी उसकी भेंट तथा वेश से प्रभावित हो गया। तब उस धूर्त ने राजा से कहा, 'मुझे आपसे एकांत में कुछ कहना है।' राजा उठकर उसके साथ एकांत में चला गया। उस धूर्त ने राजा से कहा, 'मैं आपको प्रति दिन पांचसौ अशर्फियां भेंट में दिया करूंगा। आप मुझसे इसी प्रकार एकांत में थोड़ी देर बातचीत कर लिया करें।' राजा ने सोचा, 'इसमें मेरा क्या जाता है, उल्टे पांच सौ अशर्फियां रोज आती हैं!' बस उसने धूर्त की बात मान ली और उसके साथ एकांत में बात करने लगा। यह देखकर सारे अधिकारी तथा नगर निवासी उसे राजा का महामंत्री समझने लगे। एक दिन वह धूर्त राजा से बातचीत करते समय एक अधिकारी की ओर बार-बार साभिप्राय दृष्टि से देखने लगा। जब वह राजा से बात करके बाहर जाने लगा, तो वह अधिकारी उसके पास आया और पूछा, 'आप राजा से बात करते समय मेरी ओर कई बार साभिप्राय दृष्टि से क्यों देखा था?' उस धूर्त ने कहा, 'राजा तुमसे बहुत नाराज है और आज मुझसे कह रहा था कि इसने मेरे विरुद्ध राज्य हड़पने का षड्यंत्र रचा है। इसलिए मैंने तुम्हारी ओर देखा था। किंतु तुम डरो मत, मैं राजा को समझा दूंगा।' यह सुनकर उस डरे हुए अफसर ने उसे खुश करने के लिए उसके घर जाकर उसे एक हजार अशर्फियां दीं। अगले दिन राजा से बातचीत करने के बाद उस धूर्त ने उस अधिकारी से कहा, "मैंने राजा को समझा दिया है, अब वह तुमसे प्रसन्न हैं।" इस प्रकार उस धूर्त ने राजाओं, राजपुत्रों और सेवकों से युक्तिपूर्वक कुछ-न-कुछ बहाना बनाकर पांच करोड़ अशर्फियां कमा लीं। एक दिन वह धूर्त एकांत में राजा से

बोला, 'देव ! मैंने आपको प्रति-दिन पांच सौ अशर्शियां देते हुए भी आपके प्रसाद से पांच करोड़ अशर्फियां कमाई हैं। सो, आप इन्हें भी स्वीकार कीजिये।' यह कहकर उसने राजा के सामने सारी अशर्फियां रख दीं। उसके अत्यंत आग्रह करने पर राजा ने उनमें से आधी अशर्फियां ले लीं और प्रसन्न होकर उसे अपना महामंत्री बना लिया। इस प्रकार बुद्धिमान मनुष्य युक्तिपूर्वक पाप कर्म से भी धन कमाकर अंत में उसके दोष से मुक्त हो जाते हैं।"

यह कथा सुनाने पश्चात गोमुख राजा से फिर बोला, "मैं आपको एक और रोचक कथा सुनाता हूं :

"रत्नाकर नाम के नगर में बुद्धिप्रभ नाम का एक राजा राज्य करता था। उसके रत्नरेखा नाम की रानी से हेमप्रभा नाम की सुंदरी कन्या उत्पन्न हुई। वह पूर्वजन्म की विद्याधरी थी और किसी शापवश मनुष्य योनि में पैदा हुई थी। आकाश में विहार करने के प्राचीन संस्कारवश वह हमेशा झूले पर ही झूलती रहती थी। कहीं लड़की गिर न पड़े, इस डर से उसके पिता ने उसे कई बार झूलने से रोका भी, किंतु इतने पर भी जब वह न रुकी, तो एक दिन उसके पिता ने कुपित होकर उसके एक चांटा लगा दिया। इतने से अपने को अपमानित अनुभव करके वह राजपुत्री घूमने के बहाने वन में चली गई और फिर न लौटी। राजा के नौकरों ने उसे वन में जाकर खूब ढूंढ़ा, किंतु वह न मिली। वह वन में एक कुटी बनाकर शिव की पूजा करने लगी। राजा ने स्वयं जाकर ढूंढ़ा, किंतु उसको कहीं पता न लगा। कुछ समय बाद वह शिकार खेलने के लिए वन में गया। वहां उसने तप करती हुई अपनी पुत्री हेमप्रभा को देखा। हेमप्रभा ने भी पिता को देखा, तो उठकर प्रणाम किया। राजा ने उसे छाती से लगा लिया। दोनों बहुत देर तक आंसू भरकर रोते रहे। धीरे-धीरे आश्वस्त होकर राजा ने हेमप्रभा से घर लौटने को कहा। हेमप्रभा ने पिता को उत्तर दिया, 'मुझमें क्या शक्ति है जो मैं इतना कठोर तप कर सकूं ! यह तो कोई दैविक शक्ति ही मुझे तप की प्रेरणा दे रही है। इसलिए मैं तपस्या के सुख को छोड़कर सांसारिक सुख नहीं भोगना चाहती।' उसका यह निश्चय जानकर उसके पिता ने उसके लिए वहां एक सुंदर महल बनवा दिया और नित्य प्रति उसके लिए बहुत से खाद्य-पदार्थ तथा रुपया-पैसा भेजने लगा। हेमप्रभा ने उन सबका उपयोग अपने व्यक्तिगत सुख के लिए नहीं किया, बल्कि उनसे अतिथियों की सेवा करने लगी।

स्वयं वह पहले की तरह फूल-मूल खाकर ही रहती रही। एक दिन उस राजपुत्री के आश्रम में घूमती हुई एक बाल-ब्रह्मचारिणी संन्यासिनी आ गई। हेमप्रभा ने उसका सत्कार किया। बात-चीत करते-करते हेमप्रभा ने उस संन्यासिनी से संन्यास ग्रहण करने का कारण पूछा। उसने उत्तर दिया, 'एक बार अपने पिता के पैर दबाते हुए मेरे हाथ दुखने लगे और मैं ऊंघने लगी। पिता ने क्या सो रही है—यह कहकर मेरे एक लात मारी। इससे दुखी होकर मैं वन में चली आई और मैंने संन्यास ले लिया।' हेमप्रभा ने उस संन्यासिनी को समान शील और स्वभाववाली समझकर अपने पास रख लिया। एक दिन उसने भोर में जगकर संन्यासिनी से कहा, 'सखि! मैंने आज स्वप्न में देखा है कि मैं एक विशाल नदी को पार करके एक श्वेत हाथी पर चढ़ी और वहां से एक पर्वत पर पहुंची। वहां एक आश्रम में मैंने भगवान शंकर के दर्शन किये और उनके सामने वीणा लेकर गाने लगी। तभी मैंने वहां आये हुए एक दिव्य आकृतिवाले पुरुष को देखा। उसे देखकर मैं तुम्हारे साथ आकाश में उड़ गई। इतना स्वप्न देखकर मैं जग गई।' यह स्वप्न सुनकर संन्यासिनी बोली, 'सखि! निश्चय ही तुम कोई शाप-ग्रस्त देवी हो और तुम्हारे शाप का अंत निकट आ गया है।' इसके बाद सूर्य के निकल आने पर एक राजपुत्र घोड़े पर चढ़कर वहां आया। उसने तापस वेष-धारिणी हेमप्रभा को देखकर प्रेमपूर्वक उसे प्रणाम किया और घोड़े को बांध दिया। हेमप्रभा नें उसका आदर-सत्कार किया और पूछा, 'भगवन! आप कौन हैं?' उस राजपुत्र ने उत्तर दिया, 'प्रतापसेन नाम का एक प्रतापशाली राजा है। उसने शिव की आराधना करके यह वरदान पाया कि तुम्हारे शापग्रस्त विद्याधर का अवतार एक पुत्र होगा। वह तो शाप से मुक्त होकर अपने स्थान को चला जायगा, किंतु दूसरे पुत्र से तुम्हारा वंश चलेगा। शिवजी की आज्ञानुसार कुछ समय बाद उसके दो पुत्र उत्पन्न हुए, एक का नाम लक्ष्मीसेन और दूसरे का नाम शूरसेन था। मैं वही लक्ष्मीसेन हूं। आज शिकार खेलने वन में आया था कि यह घोड़ा मुझे यहां ले आया।' यह कहकर उस राजपुत्र ने हेमप्रभा से भी उसका वृत्तांत पूछा। अपना इस जन्म का वृत्तांत सुनाते-सुनाते हेमप्रभा को अपने पूर्वजन्म का वृत्तांत भी स्मरण हो आया। वह बोली, 'मैं और यह सखी दोनों शापभ्रष्ट विद्या-धरी हैं। तुम भी अपने मंत्री-सहित शापभ्रष्ट विद्याधर हो। तुम मेरे पूर्वजन्म के पति हो और तुम्हारा मंत्री मेरी सखी का पति है। अब हम दोनों का और तुम दोनों

का शाप समाप्त हो गया है। अब हम सबों का मिलन वहीं विद्याधर लोक में होगा।'

"यह कहकर हेमप्रभा अपनी सखी तपस्विनी-सहित विद्याधर लोक को चली गई। यह देखकर लक्ष्मीसेन कुछ समय तक आश्चर्य से चकित होकर वहीं खड़ा रहा। तभी उसका मंत्री भी उसे ढूंढ़ता हुआ वहां आ गया। लक्ष्मीसेन ने उसे सारा वृत्तांत सुनाया। इसी बीच में अपनी पुत्री से मिलने के लिए राजा बुद्धिप्रभ भी वहां आ गया। बुद्धिप्रभ के पूछने पर लक्ष्मीसेन ने उसे भी सारे वृत्तांत से अवगत करा दिया। यह सुनकर राजा बुद्धिप्रभ उदास हो गया। इतने में पूर्वजन्म का स्मरण करके लक्ष्मीसेन अपने मंत्री-सहित विद्याधर लोक को चला गया। लक्ष्मीसेन ने अपने लोक में पहुंचकर हेमप्रभा को पत्नी-रूप में पाया। तब दोनों राजा बुद्धिप्रभ के पास आये और उसे समझा-बुझाकर अपने नगर को भेज दिया। फिर लक्ष्मीसेन अपनी पत्नी हेमप्रभा के साथ अपने पिता प्रतापसेन के यहां पहुंचा और उसे सारा हाल सुनाया। उसने सारा राज छोटे भाई शूरसेन को दिला दिया और स्वयं अपने विद्याधर लोक को लौट आया।"

इस कथा को सुनते हुए नरवाहनदत्त ने उत्सुकतापूर्वक वह रात्रि बिताई। इस प्रकार दिनों के बीतने पर शक्तियशा के साथ विवाह होने का समय निकट आ गया। निश्चित विवाह के दिन स्फटिकयश नाम का विद्याधर अपने मंत्रियों तथा अपनी पुत्री शक्तियशा के साथ वत्सराज उदयन के पास स्वर्ग से उतरा। नरवाहनदत्त और उदयन ने उसका सत्कार किया। विद्याधर स्फटिकयश ने अपनी विद्या के प्रभाव से तत्काल वेदी उत्पन्न करके अपनी पुत्री शक्तियशा का विवाह नरवाहनदत्त के साथ कर दिया। नरवाहनदत्त भी शक्तियशा को पाकर इस प्रकार शोभायमान हुआ जिस प्रकार सवेरे सूर्य के निकलने पर कमल सुशोभित होता है। उसके बाद तब स्फटिकयश तो अपने लोक को चला गया और नरवाहनदत्त कौशांबीपुरी में सुखपूर्वक शक्तियशा के साथ रहने लगा।

# ग्यारहवां खंड

## : १ :

## बेला

शक्तियशा को पाकर नरवाहनदत्त अपनी दूसरी पत्नियों के सहित कौशांबी में सुखपूर्वक रह रहा था। एक दिन वह अपने उद्यान में घूमने गया। वहां उसके पास किसी देश से दो राजकुमार, जो सौतेले भाई थे, आये। उनमें से एक बोला, "हम दोनों वैशाख नामक नगर के राजा के पुत्र हैं। मेरा नाम रुचिरदेव और इस दूसरे का नाम पोतक है। मेरे पास तेज दौड़नेवाली हथिनी है और इसके पास दो घोड़े हैं। मैं कहता हूं कि मेरी हथिनी तेज दौड़ती है और यह कहता है कि इसके घोड़े तेज दौड़ते हैं। इस बात पर हम दोनों का विवाद हो गया है। यदि मैं हार गया तो इसे अपनी हथिनी दे दूंगा और यदि यह हार गया, तो मुझे अपने दोनों घोड़े दे देगा। हम दोनों की हार-जीत का निर्णय करने में आप ही समर्थ हैं, और कोई नहीं। इसलिए आप हमारे साथ हमारे घर चलकर हम दोनों का निर्णय कर दीजिये।" रुचिरदेव के बहुत अनुरोध करने पर नरवाहनदत्त ने उसकी बात मान ली और उसके साथ वैशाखपुर में पहुंचा। वहां वह रुचिरदेव के महल में जाकर ठहरा और अद्भुत रूप और सौंदर्यवाली उसकी बहन जयेंद्रसेना को देखकर उससे विवाह करने का निश्चय किया। अगले दिन रुचिरदेव की हथिनी और पोतक के घोड़ों में दौड़ हुई, जिसमें रुचिरदेव जीत गया और पोतक ने अपने दोनों घोड़े उसे दे दिये। इसी समय नरवाहनदत्त के पिता का एक दूत आया और प्रणाम करके कहने लगा कि आप उद्यान-विहार के लिए आये थे और बिना किसी-से कहे ही यहां चले आये। इसलिए घर के सब लोग बहुत बेचैन और चिंतित हो रहे हैं। आप शीघ्र चलिये। पिता के दूत से यह समाचार पाकर नरवाहनदत्त का

मन डांवाडोल हो गया कि एक ओर तो शीघ्र लौटने की पिता की आज्ञा, और दूसरी ओर जयेंद्रसेना की प्राप्ति की उत्सुकता—किसे पहले पूरा करूं ? उसी क्षण वहां एक व्यापारी आया और दूर से ही नरवाहनदत्त को प्रणाम करके बोला, "राजन ! आप विद्याधरों के भावी राजा हैं। आप की जय हो !" नरवाहनदत्त ने उससे पूछा, "तुम कौन हो ?" वह वैश्य-पुत्र अपना वृत्तांत सुनाने लगा, "मैं लंपा-पुरी के एक धनवान वैश्य कुसुमसार का एकमात्र पुत्र चंद्रसार हूं। एक बार मैं अपने मित्रों के साथ देव-यात्रा महोत्सव देखने गया। वहां मैंने दूसरे धनवान व्यक्तियों को दान देते हुए देखा। तब मेरे मन में भी खूब धन कमाने और दान करने की तीव्र इच्छा उत्पन्न हुई। यद्यपि मेरे पिता के पास बहुत धन था, तो भी मैं उससे असंतुष्ट होकर धन कमाने के लिए एक जहाज पर अनेक रत्न लादकर समुद्र के मार्ग से दूसरे द्वीप में चला। वायु के अनुकूल होने से मेरा जहाज शीघ्र ही उस द्वीप में पहुंच गया। वहां मुझे बिल्कुल अपरिचित और रत्नों का व्यापार करते देखकर राजा ने धन के लोभ से जेलखाने में डाल दिया। अनेक कष्ट और पीड़ाएं पाता हुआ मैं कुछ दिन जेल में रहा। तब वहीं के किसी एक वैश्य ने, जो हमारे कुल से भी परिचित था, राजा से कहकर मुझे छुड़ा दिया और मेरा सारा धन भी लौटवा दिया। फिर मैं उस मित्र के पास सुखपूर्वक रहने लगा। एक दिन वसंत के मेले में मैंने वहां के एक वैश्य शिखर की पुत्री को देखा। उसे देखते ही मैं उस पर मुग्ध हो गया और मैंने उसके पिता से उसे मांगा। उसके पिता ने उत्तर दिया, 'इस कन्या का विवाह इसके नाना करेंगे। तुम इसे उनसे ही मांगना। मैं कल इसे उनके पास सिंहल द्वीप भेज दूंगा।' इसके बाद मैं ज्यों ही उस द्वीप में जाने के लिए तैयार हुआ, त्यों ही मैंने विद्युत्पात की भांति यह दुखद समाचार सुना कि जिस जहाज से वह कन्या अपने नाना के यहां जा रही थी, वह सब यात्रियों-सहित मार्ग में ही समुद्र में डूब गया। यह बात सुनकर मेरा धैर्य टूट गया, परंतु फिर भी बहुत से गुरुजनों से आश्वासन पाकर मैं एक जहाज पर सवार होकर उस द्वीप को चला। दैवयोग से भयंकर तूफान आ जाने से मेरा जहाज भी समुद्र में डूब गया। भगवान की कृपा से उसी समय बहता हुआ एक लकड़ी का लट्ठा वहां आ गया और मैं उस पर बैठकर समुद्र पार हो गया। किनारे पर मुझे थोड़ा सा सोना पड़ा हुआ मिल गया, जिसे बेचकर मैंने वस्त्र खरीदे और पास के गांव में जाकर भोजन किया। फिर इधर-उधर घूमते हुए मैंने अकस्मात एक स्थान पर बालू के

शिवलिंग की पूजा करने में व्यस्त एक कन्या को देखा। मैं सोचने लगा कि कहीं यही तो शिखर की कन्या नहीं है ? तभी मेरी दाहिनी आंख भी फड़कने लगी। उसके पास जाकर मैंने उससे पूछा, 'देवि ! तुम कौन हो ?' पूजा में व्यस्त होने के कारण पहले तो वह मुझसे कुछ भी न बोली, किंतु पूजा समाप्त करके स्नेह-पूर्ण दृष्टि से मेरी ओर देखती हुई वह वहां से चली गई। उसे देखकर मेरी विचित्र दशा हो गई। तभी मतंग मुनि की कन्या यमुना साक्षात धैर्य की तरह मेरे पास आकर बोली, 'चंद्रसार ! धैर्य धारण करो। वह शिखर की पुत्री है। इसके उत्पन्न होने पर उसके मित्र एक ज्ञानी जैन साधु ने उससे कहा था कि स्वयं अपने हाथ से इस कन्या का विवाह न करना, अन्यथा तुम्हें दोष लगेगा। इसीलिए शिखर ने तुम्हारे मांगने पर इसे स्वयं न देकर इसके नाना द्वारा देना चाहा था। जब यह जहाज से आ रही थी, तो जहाज डूब गया, लेकिन दैवयोग से यह बच गई। मेरे पिता मतंगमुनि ने इसे समुद्र के किनारे पर पड़ी हुई पाया। दया करके मेरे पिता इसे अपने आश्रम में लाये और समुद्र की बेला (तट) पर पड़ी हुई मिलने के कारण इसका नाम बेला रख लिया। उन्होंने बड़े स्नेह से अपनी संतान की तरह इसे पाला-पोसा है। पिताजी की आज्ञा से मैं इसकी देख-भाल रखती हूं। इसे युवती देखकर मैं इसके योग्य वर पाने की चिंता में थी, किंतु आज अचानक तुम यहां आ गये, सो तुम इसे ग्रहण करो। यह तुम्हारी पूर्वजन्म की पत्नी है।' यह कहकर वह मुझे मतंगमुनि के आश्रम में ले गई। यमुना ने मुनि को मेरा परिचय दे दिया और उन्होंने मेरे साथ बेला का विवाह कर दिया। तब मैं उसके साथ सुखपूर्वक वहीं रहने लगा।

"एक दिन मैं बेला के साथ तालाब में जलक्रीड़ा कर रहा था। संयोगवश मुनि मतंग भी उसी समय वहां स्नान करने के लिए आ गये। जलक्रीड़ा में मस्त हम दोनों ने उन्हें नहीं देखा और उन पर जल के छींटे गिर पड़े। इससे कुपित होकर मुनि ने हम दोनों को शाप दिया, 'तुम दोनों का वियोग होगा।' हमारे अनुनय-विनय करने पर उन्होंने कहा, 'विद्याधरों के भावी राजा नरवाहनदत्त के दर्शन करके तुम्हारे शाप का अंत होगा।' यह कहकर मुनि हरि के दर्शन के लिए श्वेतद्वीप में चले गये। इसके बाद मैं बेला के वियोग से डरकर अपने देश की ओर चला। समुद्र के किनारे पर मैं एक जहाज में बेला को चढ़ाकर मैं ज्यों ही उस पर चढ़ने लगा, त्यों ही मुनि के शाप से जहाज को तीव्र वायु दूर बहाकर ले गई।

बेला से अलग होने पर मैं एकदम मूर्छित होकर वहीं गिर पड़ा। तभी वहां पर कोई तपस्वी आ गया और मुझे मूर्छित देखकर अपने आश्रम में ले गया। फिर अपनी पत्नी को ढूंढता हुआ मैं बहुत दिनों तक इधर-उधर देश-विदेशों में भटककर वैशाख नगर में आया। यहां आकर मैंने सुना कि आप यहां आये हुए हैं। आपको दूर से ही हथिनी पर चढ़े देखकर मेरा शाप छूट गया है और जहाज में आई हुई बेला भी मुझे व्यापारियों द्वारा मिल गई है। अब मैं केवल आपको प्रणाम करने के लिए आया हूं।"

यह कहकर चंद्रसार अपनी पत्नी के साथ चला गया। इसके बाद रुचिरदेव ने भी अपनी बहन जयेंद्रसेना का विवाह विधिपूर्वक नरवाहनदत्त के साथ कर दिया। इसके बाद वे दोनों कौशांबी को लौट आये। नरवाहनदत्त ने अपना सारा वृत्तांत अपने पिता वत्सराज को बताया और अपनी रानियों के साथ सुखपूर्वक रहने लगा।

# बारहवां खंड

## : १ :

## ललितलोचना

नरवाहनदत्त के यद्यपि बहुत सी पत्नियां थीं, किंतु मदनमंचुका उसे प्राणों से भी अधिक प्यारी थी। एक बार जब वह रात्रि में सो रहा था, तो उसने स्वप्न में देखा कि कोई दिव्य कन्या आकाश से आकर उसे उड़ाकर ले गई है। जगने पर उसने अपने को हिमालय पर्वत की चोटी पर रत्नों की शिला पर लेटे हुआ पाया और देखा कि पास में बैठी वह दिव्य कन्या उसे प्रेम-दृष्टि से निहार रही है। वह बोली, "आर्य पुत्र ! आप मुझे ग्रहण कीजिये, मैंने आपको पति रूप में वरण किया है।" उस कन्या की यह बात सुनकर नरवाहनदत्त ने उससे गंधर्व रीति से विवाह कर लिया और युक्तिपूर्वक उसके वंश का परिचय जानने के लिए उसे यह कथा सुनाई :

"किसी तपोवन में ब्रह्मसिद्धि नाम का एक मुनि रहता था। उसके आश्रम के पास ही गुफा में एक बूढ़ी शृगाली रहती थी। एक दिन जब वह भूख से व्याकुल होकर खाना तलाश करने के लिए अपनी गुफा से बाहर निकली, तो एक वन का हाथी उसे मारने के लिए उसे दौड़ा। यह देखकर ज्ञानी मुनि ने कृपा करके उसे शृगाली से हथिनी बना दिया। तब हाथी उस पर अनुरक्त हो गया। एक बार उस हथिनी के साथ घूमता हुआ वह हाथी उसके लिए कमल तोड़ने तालाब में प्रविष्ट हुआ और कीचड़ म धंस गया। उसे कीचड़ में धंसा देखकर वह हथिनी-रूपी शृगाली किसी दूसरे हाथी के साथ भाग गई। तभी उसकी बिछुड़ी हुई पहली हथिनी उसे ढूंढती हुई वहां आ गई और उसे इस प्रकार कीचड़ में धंसा देखकर आप भी उसी कीचड़ में धंस गई। उसी समय वही ब्रह्मसिद्धि मुनि

वहां आ निकले और इस प्रकार आपद्ग्रस्त उन हाथी-हथिनी को देखकर कृपा-वश योगसिद्धि के बल से उन्हें कीचड़ से निकाल दिया। तब वे दोनों सुखपूर्वक वन में विहार करने लगे। इस प्रकार उत्तम कुलोत्पन्न पशु भी आपत्ति पड़ने पर अपने स्वामी अथवा प्रिय मित्र को नहीं छोड़ते हैं और चंचल आत्मावाले नीच जाति के पशुओं में अपने लोगों के लिए तनिक भी स्नेह तथा सहानुभूति नहीं होती।"

नरवाहनदत्त से यह कथा सुनकर वह कन्या उसका अभिप्राय समझ गई और बोली, "इसमें कोई संदेह नहीं, किंतु आप मुझसे भी एक कथा सुनिये :

"कन्नौज में शूरदत्त नाम का एक ब्राह्मण रहता था। वह राजा बाहुशक्ति का बड़ा आदर-पात्र था और सौ गांवों का स्वामी था। उसकी पत्नी का नाम वसु-मती था। उससे उसके वामदत्त नाम का पुत्ररत्न उत्पन्न हुआ। वामदत्त शीघ्र ही समस्त विद्याओं में पारंगत हो गया और पिता ने उसका विवाह शशिप्रभा नाम की कन्या से कर दिया। कुछ समय पश्चात माता और पिता के मर जाने पर वह अपनी पत्नी के साथ रहने लगा। शशिप्रभा को कहीं से शाकिनी की सिद्धि प्राप्त हो गई और वह स्वेच्छाचारिणी बन गई। इधर वामदत्त राज-सेवा के लिए सेना में भरती हो गया। एक बार वामदत्त का चाचा घर से उसके पास आया और कहने लगा कि हमारा कुल तो नष्ट हो गया, क्योंकि तुम्हारी पत्नी तुम्हारे ही भैंसा चरानेवाले पर अनुरक्त हो गई है। चाचा से यह बात सुनकर वामदत्त हाथ में तलवार लेकर अपने घर गया और रात के समय गुप्त रीति से घर में घुसकर उसने अपनी पत्नी तथा महिषपाल को एक शय्या पर सोते देखा। ज्यों ही वामदत्त उन दोनों को मारने के लिए प्रस्तुत हुआ, त्यों ही उसकी पत्नी ने उसके मुंह पर धूल फेंक दी और शाकिनी के प्रभाव से उसे भैंसा बना दिया। वह भैंसा चरानेवाला उसे भी रोज चराने ले जाता और डंडों से खूब पीटता। बाद में उसने उस भैंसे को किसी वैश्य को बेच दिया। वह वैश्य उस भैंसे पर बोझा लादकर उसे गंगा के पास किसी गांव में ले गया। भैंसा बनकर भी वामदत्त की स्मृति नष्ट नहीं हुई थी, इसलिए वह अपनी दुर्दशा को याद करके आंसू बहाया करता था। किसी तापसी ने उसे रोता देखकर योगबल से उसका सारा हाल जान लिया और कृपा करके उसे मंत्रबल से मनुष्य बना दिया। फिर उस तापसी ने उसे अपने घर ले जाकर अपनी पुत्री कांतिमती से उसका विवाह कर दिया और उसे मंत्र से अभिषिक्त

सरसों देकर कहा, 'इनको शशिप्रभा पर डालकर तुम उसे घोड़ी बना देना।' इसके बाद वामदत्त अपनी पत्नी कांतिमती को लेकर अपने घर आया। वहां उसने शशिप्रभा पर अभिमंत्रित सरसों डालकर उसे घोड़ी बना दिया और अपनी घुड़साल में बांध दिया। उसने महिषपाल को भी मार डाला। तब से वामदत्त ने यह नियम बना लिया कि उस घोड़ी के प्रति दिन सात डंडे लगाकर भोजन करता। एक दिन वामदत्त के घर में कोई अतिथि आ गया। जब वे दोनों भोजन करने के लिए बैठे, तो वामदत्त भोजन छोड़कर बाहर चला गया और नियमानुसार घोड़ी के सात डंडे मारकर लौटा। अतिथि ने विस्मित होकर उससे पूछा, 'आप भोजन छोड़कर कहां गये थे?' वामदत्त ने उसे अपना सारा हाल सुना दिया। अतिथि ने वामदत्त से कहा, 'इससे क्या! अपनी सास की आराधना करके कोई सिद्धि प्राप्त क्यों नहीं करते?' अतिथि के चले जाने पर वामदत्त ने वैसा ही किया। उसने अपनी सास की पूजा करके उससे यह प्रार्थना की, 'आप मुझे कोई योग-सिद्धि प्रदान करें।' उस योगेश्वरी ने सपत्नीक वामदत्त को काल संकर्षिणी विद्या की दीक्षा दी। वामदत्त ने श्री पर्वत पर जाकर उस विद्या की सिद्धि की और उस सिद्धि के प्रताप से उसे उत्तम खड्ग प्राप्त हुई। खड्ग को प्राप्त करते ही वामदत्त अपनी पत्नी कांतिमती-सहित विद्याधर-योनि को प्राप्त हो गया और मलय पर्वत की रत्नकूट नाम की चोटी पर एक दिव्य नगर बसाकर उसमें रहने लगा। वहां उसके कांतिमती से ललितलोचना नाम की कन्या उत्पन्न हुई। उस कन्या के पैदा होते ही आकाशवाणी हुई, 'यह विद्याधरों के चक्रवर्ती नरवाहनदत्त की पत्नी बनेगी।' वह ललितलोचना मैं ही हूं। मैं अपनी विद्या के प्रभाव से यह सब हाल जानकर आपको यहां ले आई हूं।"

यह कथा सुनकर उसे सद्वंश में उत्पन्न जानकर नरवाहनदत्त ने उसका प्रसन्न मन से सम्मान किया और उसके साथ वहां रहने लगा।

## : २ :

# अनंगवती और विनयवती

एक दिन मलय पर्वत पर अपनी नवीन पत्नी ललितलोचना के साथ विहार करता हुआ नरवाहनदत्त एक स्वच्छ जलवाले तालाब पर आया। ललितलोचना वन में फूल चुनने के लिए दूर चली गई और बहुत देर तक वह नहीं लौटी। इसी बीच में नरवाहनदत्त ने उस तालाब में स्नान किया और देव पूजा करके एक पेड़ की छाया में बैठ गया। वहां मधुर बैनी राज हंसिनियों और चंचल दृष्टि-वाली हरिणियों को देखकर उसे अपनी प्रिया मदनमंचुका की याद आ गई और वियोगाग्नि संतप्त होकर वह मूर्च्छित हो गया। उसी क्षण उस तालाब पर स्नान करने के लिए एक मुनि आ गये। उन्होंने नरवाहनदत्त को मूर्च्छित देखकर शीतल उपचारों से सचेत किया और दिव्य दृष्टि से उसके हृदय की बात जानकर कहा, "पुत्र! धैर्य धारण करो, तुम्हारी इच्छा पूर्ण होगी। धैर्य से मनुष्य की कामनाएं पूरी होती हैं। तुम मेरे आश्रम में चलो, मैं वहां तुम्हें मृगांकदत्त की कथा सुना-ऊंगा।' मुनि के कहने से नरवाहनदत्त उनके आश्रम में गया। दैनिक कर्मों से निवृत्त होकर मुनि ने यह कथा कहनी आरंभ की:

अयोध्या नगरी में अमरदत्त नाम का राजा राज्य करता था। उसकी पत्नी सुरतप्रभा थी। उससे संपूर्ण गुणों से युक्त मृगांकदत्त नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। उसके प्रचंड शक्ति, स्थूल बाहु, भीम पराक्रम आदि दस निजी सलाहकार थे। ये सभी नवयुवक, शूरवीर, बुद्धिमान और स्वामिभक्त थे। इनके साथ सुखपूर्वक रहते हुए मृगांकदत्त ने योग्य पत्नी के साथ विवाह कर लिया। एक दिन भीम पराक्रम नाम के मंत्री ने एकांत में मृगांकदत्त से कहा, "देव! आज रात्रि में मेरे साथ जो घटना घटी, उसे सुनिये। मैं जब महल में निश्चिततापूर्वक सो रहा था, तो मैंने देखा कि एक तीव्र नख-दंतवाला सिंह मेरी ओर दौड़ा। मेरे हाथ में छुरी देख-कर वह सिंह भाग निकला। मैं भी उसके पीछे-पीछे तेजी से दौड़ा। नदी के पार जाकर ज्यों ही उस सिंह ने मुझे खाने के लिए अपनी जीभ फैलाई, त्यों ही मैंने छुरी से उसकी जीभ काट ली। जीभ कटने पर वह सिंह एक आदमी बन गया। जब मैंने उससे पूछा, 'तुम कौन हो?' तो वह बोला, 'मैं बेताल हूं और तुम्हारे इस परा-

क्रम से मैं संतुष्ट हूं।' यह सुनकर मैंने उससे कहा, 'यदि आप मुझसे संतुष्ट हैं, तो कृपया बताइये कि मृगांकदत्त की पत्नी कौन बनेगी ?' यह सुनकर वह बेताल बोला, 'उज्जयनी नगरी में कर्मसेन नाम का एक प्रसिद्ध राजा है, उसकी पुत्री शशांकवती सौंदर्य आदि समस्त गुणों से संपन्न है। वही तुम्हारे स्वामी की पत्नी बनेगी और उसे पाकर मृगांकदत्त समस्त पृथ्वी पर राज्य करेगा।' यह कहकर वह बेताल अदृश्य हो गया और मैं भी घर लौट आया। हे राजन ! रात को मेरे साथ यह घटना घटी है।" यह घटना सुनकर मृगांकदत्त में अपने सारे मंत्रियों को बुलाकर कहा, 'मैंने रात एक स्वप्न में देखा कि हम सब किसी निर्जन वन में पहुंच गये हैं। प्यास से व्याकुल होकर हमें बड़ी कठिनता से एक स्थान पर जल दिखाई दिया। ज्यों ही हम पानी के निकट पहुंचे, त्यों ही शस्त्रधारी पांच पुरुषों ने हमें रोक लिया। उन्हें मारकर हम जब पानी पीने के लिए उद्यत हुए, तो हमने देखा कि वहां न तो वे आदमी ही हैं और न जल ही है। यह देखकर हम बड़ी विषम स्थिति में पड़ गये। तभी बैल पर चढ़े हुए भगवान शंकर को हमने आते हुए देखा। हमारे प्रणाम करने पर उनकी दाहिनी आंख से आंसू का एक कण गिर पड़ा। उससे वहां एक समुद्र बन गया। उस समुद्र से प्राप्त शुभ मुक्तावली को अपने गले में बांधकर मैंने खून से सने हुए मानव-कपाल से उस समुद्र को पी लिया। उसी समय मेरी आंखें खुल गईं और मैंने देखा कि रात बीत चुकी है।"

मृगांकदत्त के इस आश्चर्ययुक्त स्वप्न को सुनकर मंत्री विमलबुद्धि बोला, "देव, धन्य हैं कि जो भगवान शिव आप पर प्रसन्न हैं। स्वप्न में मुक्तावली को पाकर जो आपने समुद्र को पी डाला है, उसका अर्थ यह है कि शशांकवती को प्राप्त करके आप समस्त पृथ्वी का राज्य भोगेंगे, किंतु इसके लिए आप को कुछ कष्ट उठाना पड़ेगा।"

तब मृगांकदत्त ने मंत्रियों से कहा, "यद्यपि जैसा मेरे स्वप्न का फल बताता है, और जैसा भीम पराक्रम ने बेताल से सुना है, वैसा ही होगा, तो भी मैं अपनी बुद्धि के बल से अभिमानी कर्मसेन की पुत्री शशांकवती को प्राप्त करने का प्रयत्न करूंगा, क्योंकि बुद्धि-बल ही सब बलों में श्रेष्ठ है। इस प्रसंग में मैं तुम्हें एक कथा सुनाता हूं : मगध देश में भद्रबाहु नाम का राजा था, उसके मंत्री का नाम मंत्रगुप्त था और वह बहुत बुद्धिमान था। एक दिन राजा ने अपने मंत्री से एकांत में कहा, 'बनारस के राजा धर्मगोप की पुत्री अनंगलीला तीनों लोकों में सबसे

सुंदर है। मैंने उसे धर्मगोप से कई बार मांगा है, किंतु वह द्वेष के कारण वह उसे नहीं देता। उस राजा के पास भटदत्त नाम का एक हाथी है, जिसके प्रभाव से वह दुर्जेय है। मैं अनंगलीला के बिना जीवित नहीं रह सकता। इसलिए तुम कोई ऐसा उपाय बताओ, जिससे अनंगलीला प्राप्त हो।' राजा भद्रबाहु के ऐसा कहने पर उसका मंत्री मंत्रगुप्त बोला, 'देव! पराक्रम की अपेक्षा बुद्धि-बल से कार्य की सिद्धि होती है, सो आप चिंता न कीजिये, मैं अपनी बुद्धि के प्रभाव से इस काम को सिद्ध करूंगा।' राजा से ऐसा कहकर मंत्री मंत्रगुप्त पांच-सात विश्वासपात्र पुरुषों को साथ लेकर बनारस गया और वहां आप तो उसने महाव्रती का भेस बना लिया और अन्य लोगों को अपना शिष्य बनाया। उन बनावटी शिष्यों ने सारे बनारस में यह प्रसिद्ध कर दिया कि यह महाव्रती बड़ा भारी सिद्ध पुरुष है। एक बार रात के समय अपने आदमियों-सहित वह कार्य-सिद्धि के लिए घूम रहा था, तब उसने देखा कि वहां के महावत की पत्नी को शस्त्र हाथ में लिये हुए तीन-चार पुरुष घर से निकालकर कहीं दूर ले जा रहे हैं। निश्चित ही ये इसे कहीं भगाकर ले जा रहे हैं, देखें कहां जाती है—यह सोचकर वह अपने आदमियों सहित उसके पीछे-पीछे चल दिया। वह स्त्री जिस स्थान में जाकर घुसी, उसे देखकर वह मंत्री अपने निवास स्थान पर आ गया। सवेरे उसने युक्ति से अपने आदमियों को महावत के पास भेजा। वहां जाकर उन्होंने देखा कि महावत ने अपनी पत्नी के चले जाने के दुख से दुखित होकर विष खा लिया है। अपनी विद्या के प्रभाव से उन आदमियों ने महावत का विष दूर कर दिया और उससे कहा, 'आप हमारे गुरु के पास चलिये। वह बड़े ज्ञानी हैं। वह सारी घटना को जानते हैं।' ऐसा कहकर वे उस महावत को मंत्री के पास ले आये। महावत ने उसे प्रणाम करके अपनी पत्नी का समाचार पूछा। उस बनावटी सिद्ध ने झूठ-मूठ ही ध्यान करके उस स्थान का पता बता दिया, जहां व आदमी उसे रात को ले गये थे। महावत ने सिपाहियों को ले जाकर उस स्थान को घेर लिया और दूसरे की पत्नी को हरनेवाले उन दुष्टों को मारकर आभूषण और धन-सहित अपनी पत्नी को प्राप्त कर लिया। फिर दूसरे दिन महावत ने उस बनावटी सिद्ध के पास जाकर अपने घर भोजन करने का निमंत्रण दिया। महाव्रती ने कहा, 'मैं न तो किसीके घर पर और न दिन ही में भोजन करता हूं।' तब महावत ने उसे हाथीखाने में सायंकाल के समय शिष्यों-सहित भोजन कराया। मंत्री ने मंत्रबल से बांस की नली में एक सांप छिपा रखा था। उसकोवह

अपने साथ ले आया था। रात्रि में जब सब सो गये और महावत अपने घर चला गया, तब उसने बांस की नली से सांप को भद्रदंत हाथी के कान में छोड़ दिया और आप प्रातःकाल होने पर शिष्यों-सहित अपने देश को चला आया। कुछ समय बाद उस सांप ने भद्रदंत हाथी को मार डाला। हाथी का मरना सुनकर राजा भद्रबाहु और मंत्री मंत्रगुप्त बहुत प्रसन्न हुए। अब राजा ने धर्मगोप के पास उसकी पुत्री अनंगलीला को मांगने के लिए अपने दूत को बनारस भेजा। उस हाथी के मर जाने से दुर्बल होकर राजा धर्मगोप ने भद्रबाहु के साथ अपनी पुत्री अनंगलीला का विवाह कर दिया। सो, जिस प्रकार मंत्री मंत्रगुप्त की बुद्धि के प्रताप से भद्र-बाहु ने अनंगलीला को प्राप्त किया, उसी प्रकार मैं भी बुद्धिबल से शशांकवती को प्राप्त करूंगा।"

मृगांकदत्त की यह बात सुनकर विचित्रकथ नाम का मंत्री बोला, "हे राजन! शिवजी की कृपा से आपका कार्य सिद्ध होगा—देवताओं के अमोघ प्रसाद से कौन-सा कार्य सिद्ध नहीं होता? इस संबंध में आप मुझ से एक कथा सुनिये :

"तक्षशिला नगरी में भद्राक्ष नाम का एक राजा था। वह पुत्र की कामना से अपने खड्ग में लक्ष्मी का आवाहन करके प्रति दिन एक सौ आठ श्वेत कमलों से पूजन करता था। एक दिन मौन धारण करके राजा के लक्ष्मी की पूजा करते हुए दैवयोग से एक कमल कम हो गया। तब उस राजा ने अपने हृदय-कमल को निकालकर देवी पर चढ़ा दिया। इससे लक्ष्मीजी उस पर प्रसन्न हुईं और उसे चक्रवर्ती पुत्र पैदा होने का वर दिया। फिर राजा को अक्षत-शरीर करके लक्ष्मी वहां से अदृश्य हो गई। इस वरदान से राजा के एक पुत्र उत्पन्न हुआ। वह पुत्र हृदय-रूपी कमल के समर्पित करने से उत्पन्न हुआ था, अतः राजा ने उसका नाम पुष्कराक्ष रखा। जब पुत्र जवान हुआ, तो राजा भद्राक्ष उसे राज्य देकर वन में चला गया। पुष्कराक्ष भी राज्य पाकर प्रति दिन शिव की पूजा किया करता था। एक दिन उसने शिव से योग्य पत्नी प्राप्त होने का वर मांगा। तब उसे यह आकाशवाणी सुनाई दी : 'पुत्र! तुम्हारी सारी इच्छाएं पूर्ण होंगी।' यह सुनकर पुष्कराक्ष बहुत प्रसन्न हुआ। एक बार वह शिकार खेलने वन में गया। वहां उसने सर्प के जोड़े को खाने के लिए उद्यत एक ऊंट के बच्चे को मार गिराया। वह ऊंट का बच्चा एकदम विद्याधर हो गया और प्रसन्नतापूर्वक उसने पुष्कराक्ष को अपनी कहानी सुनाई : 'तारावली और रंकुमाली विद्याधर की कन्या विनय-

वती का उसकी इच्छा के विरुद्ध अपहरण करने के कारण मुझे ऊंट होने का शाप मिला था। साथ ही शाप देनेवाले मुनि ने यह भी कहा था कि जब राजा पुष्कराक्ष मुझे वाण से मारेगा, तब मेरा शाप छूट जायेगा और वही पुष्कराक्ष इस विनयवती का पति बनेगा। मुनि के इस शाप से मैं ऊंट का बच्चा बना था। आज मेरे शाप का अंत हो गया। आप भी पश्चिमी समुद्र के पार सुरभिमारुत नाम के वन में जाकर उस दिव्य कन्या विनयवती को अपनी पत्नी बनाइये।' यह कहकर वह विद्याधर आकाश में उड़ गया। इसके बाद पुष्कराक्ष भी अपने नगर में पहुंचा। उसने राज्य का भार मंत्री को सौंप दिया और अकेला ही घोड़े पर चढ़कर चल दिया। चलते-चलते वह पश्चिमी समुद्र के किनारे पर पहुंचा। वहां पहुंचकर वह सोचने लगा कि समुद्र को कैसे पार करूं। तभी उसने वहां चंडी का एक मंदिर देखा और स्नान करके उसके अंदर प्रवेश किया। वहां उसे किसीके द्वारा रखी हुई एक वीणा मिली। राजा ने आदरपूर्वक उसे लेकर बजाया और गीतों से देवी को प्रसन्न किया। कुछ समय के बाद राजा को वहां नींद आ गई और देवी ने अपने भूतगणों द्वारा उसे समुद्र के पार पहुंचा दिया। प्रातःकाल जब राजा की नींद खुली, तो उसने अपने को समुद्र-पार वन में पाया। उठकर वह इधर-उधर घूमने लगा और एक मुनि के आश्रम में जा पहुंचा। वहां उसने शिष्यों-सहित मुनि को बैठे हुए देखकर उन्हें प्रणाम किया। मुनि ने भी ज्ञान के बल से सब-कुछ जानकर उसका अतिथि-सत्कार किया और कहा, 'हे पुष्कराक्ष! जिसके लिए तुम यहां आये हो, वह अभी लकड़ी चुनने चली गई है। बैठो, अभी आती होगी। तुम आज ही अपनी पूर्व-पत्नी को प्राप्त कर लोगे।' मुनि के ऐसा कहने पर पुष्कराक्ष सोचने लगा कि सौभाग्य से यह वही मुनि है और यह वही सुरभिमारुत वन है—निश्चित ही देवी ने मुझे समुद्र के पार किया है। बड़ी विचित्र बात है कि इस कन्या को मुनि ने मेरी पूर्व-पत्नी बताया है। यह विचारकर राजा ने प्रसन्नतापूर्वक मुनि से पूछा, 'महाराज! आपने इस कन्या को मेरी पूर्व-पत्नी कैसे बताया? कृपा करके यह रहस्य मुझे समझाइये।' तब मुनि ने उसके पूर्वजन्म की यह कथा सुनाई: 'प्राचीन काल में ताम्रलिप्ती नगरी में धर्मसेन नाम का एक वैश्य रहता था। उसकी पत्नी का नाम विद्युल्लेखा था। एक बार उस वैश्य के घर चोर आ घुसे और उसका सारा धन लूट लिया तथा उसे इतना मारा कि वह अधमरा हो गया। तब वह वैश्य अपनी पत्नी-सहित अग्नि में जलने के लिए घर से निकल पड़ा। चलते समय

उन्होंने आकाश म उड़ते हुए सुंदर आकृतिवाले हंसों के एक जोड़े को देखा। हंसों के जोड़े का ध्यान करते-करते ही वे दोनों जल कर मरे थे, इसलिए अगले जन्म में वे दोनों पति-पत्नी राजहंस बने। एक बार वर्षाकाल में तूफान के आ ` से उनका घोंसला नष्ट हो गया और वे एक-दूसरे से अलग हो गये। तूफान के शांत होने पर हंस ने अपनी हंसिनी को सब जगह ढूंढा, किंतु वह उसे कहीं न मिली। एक दिन हंस घूमता-घूमता मानसरोवर पर पहुंच गया और वहीं उसे हंसिनी भी मिल गई। तब वे दोनों विहार करने पहाड़ की चोटी पर चले गये। वहां एक शिकारी ने हंसिनी को मार डाला। यह देखकर भय और शोक से पीड़ित होकर हंस वहां से भाग गया। शिकारी ने उस मारी हुई हंसिनी को ले जाकर एक स्थान पर घास और तिनकों के तले ढक दिया। उन तिनकों में सौभाग्य से संजीवनी औषधि थी, जिसके लगने से वह जीवित होकर आकाश में उड़ गई। उधर उसका पति हंस एक तालाब के किनारे जाकर हंसों के झुंड में मिल गया। उसी समय किसी शिकारी ने वहां जाल लगाया और दूसरे पक्षियों के साथ वह भी उसमें फंस गया। वह हंसिनी भी अपने स्वामी को ढूंढती हुई वहीं आ गई, जहां उसका पति दूसरे पक्षियों के साथ जाल में पड़ा हुआ था। वह उसे छुड़ाने का प्रयत्न करने लगी। तभी उस तालाब पर एक पुरुष स्नान करने के लिए आया और उसने अपने वस्त्रों के साथ-साथ अपनी रत्नों की माला भी उतारकर किनारे पर रख दी। हंसिनी उस माला को चोंच में लेकर शिकारी को दिखाती हुई उसे एक ऊंचे स्थान पर रखकर वहां से उड़ गई। शिकारी लोभ से उस माला को लेने के लिए उस ऊंचे स्थान पर चढ़ने लगा। उधर हंसिनी ने उस पेड़ पर सोये हुए बंदर के चोंच मारी, जिससे कुपित होकर बंदर ने उस जाल को तोड़-फोड़ डाला और उसमें पड़े हुए सब पक्षी उड़ गये। तब ` हंस-हंसिनी फिर मिल गये और प्रसन्न होकर इच्छानुसार विहार करने लगे। वह शिकारी जब माला लेकर आया, तो उसी समय वह पुरुष भी वहां आ पहुंचा, जिसकी वह माला थी और उसने उससे वह माला ले ली।'

"'एक बार वे दोनों हंस मध्याह्न के समय एक कमल का छाता बनाकर आकाश में उड़ रहे थे। तभी उन पर किसी शिकारी ने बाण का प्रहार किया। उससे वे दोनों मरकर शिवजी की पूजा करने में लगे हुए एक मुनि के सामने गिर पड़े और उनका वह कमल शिवलिंग के मस्तक पर जा पड़ा। उधर व्याध ने

उस हंस को तो स्वयं ले लिया और हंसिनी को उस मुनि को दे दिया, जिसके मांस से उस मुनि ने शिवजी की पूजा की। हे पुष्कराक्ष ! वह हंस तुम ही हो और शिवलिंग के मस्तक पर गिरे हुए कमल के प्रभाव से अब राजवंश में उत्पन्न हुए हो। वह हंसिनी यह विनयवती है, जो विद्याधरों के वंश में उत्पन्न हुई है, क्योंकि इसके मांस से शिवजी की पूजा पूरी हुई थी। इस प्रकार तुम दोनों पूर्व-जन्म में पति-पत्नी थे।' मुनि से अपने पूर्वजन्म की यह कथा सुनकर राजा पुष्कराक्ष को और उत्सुकता हुई और उसने मुनि से पूछा, 'महाराज ! कृपया यह बताइये कि धर्मसेन और उसकी पत्नी विद्युल्लेखा जब अग्नि में जलकर मर गये थे और उनका पाप अग्नि-प्रवेश के कारण नष्ट हो गया, तो फिर वे पक्षि-योनि को क्यों प्राप्त हुए ?' यह सुनकर मुनि ने उत्तर दिया, 'प्राणी जिस भावना को हृदय में रखकर मरता है, अगले जन्म में उसी रूप को प्राप्त होता है। इस संबंध में एक कथा तुम्हें सुनाता हूं : प्राचीन समय में उज्जयनी नगरी में लावण्यमंजरी नाम की एक ब्रह्मचारिणी ब्राह्मण पुत्री थी। वह कमलोदय नामक किसी नवयुवक ब्राह्मणकुमार पर आसक्त हो गई, लेकिन तब भी उसने अपना नियम नहीं छोड़ा और उस ब्राह्मण कुमार का ध्यान करते हुए उसने गंधवती नदी के किनारे पर जाकर अपना शरीर त्याग दिया। उस मरणकाल की भावना से वह अगले जन्म में एकलव्य नाम की नगरी में रूपवती वेश्या बनी, किंतु उसे तीर्थ और व्रत के प्रभाव से पूर्व-जाति का स्मरण था। एक दिन उसने प्रसंगवश अपने पूर्वजन्म का गोपनीय रहस्य चोडकर्ण नाम के तपस्वी ब्राह्मण से कह दिया। वह वेश्या होने पर भी शुद्ध संकल्प होने के कारण अंत में सद्गति को प्राप्त हुई। इसलिए हे राजन ! जिसकी अंतिम समय की जैसी भावना होती है, वह उसे अवश्य प्राप्त करता है।' यह कथा सुनाकर मुनि ने राजा पुष्कराक्ष को स्नान करने के लिए भेज दिया और स्वयं भी मध्याह्न-क्रिया के लिए उठ खड़े हुए। राजा पुष्कराक्ष ने वन में नदी के किनारे पर जाकर फूल चुनती हुई विनयवती को देखा। उसे देखकर राजा पुष्कराक्ष ज्यों ही विचार करने लगा कि यह सुंदरी कौन है, त्यों ही विनयवती दुखित होकर अपनी सखी से कहने लगी, 'हे सखि ! जिस विद्याधर ने मुझे पहले हरना चाहा था, वह शाप मुक्त होकर आज आया था। उसने मुझसे कहा कि तुम्हें आज अपने पति की प्राप्ति होगी।' यह सुनकर उसकी सखी ने उत्तर दिया, 'यह ठीक है, आज मेरे सामने मुनि विजितासु ने अपने शिष्य मुंजकेश को बुलाकर कहा कि जाओ, तारावली और

रंकुमाली को लेकर शीघ्र आग्रो, क्योंकि आज उनकी पुत्री विनयवती का विवाह राजा पुष्कराक्ष के साथ होगा। यह सुनकर मुंजकेश उन्हें बुलाने चला गया। सो, हे सखि! चलो, अब आश्रम को चलें।'

"उन दोनों सखियों की बातचीत को राजा पुष्कराक्ष दूर छिपा हुआ सुन रहा था। वह भी शीघ्र नदी में स्नान करके आश्रम में लौट आया। तभी तारावली और रंकुमाली ने वहां आकर मुनि की उपस्थिति में राजा पुष्कराक्ष के साथ अपनी पुत्री विनयवती का विवाह कर दिया और उसे आकाशगामी दिव्य रथ भी दिया। महामुनि विजितासु ने राजा पुष्कराक्ष को यह वर दिया, 'तुम विनयवती के साथ चारों समुद्र पर्यंत विस्तृत पृथ्वी पर राज्य करो।' इसके बाद मुनि से आज्ञा पाकर और अपनी नववधू विनयवती को लेकर राजा पुष्कराक्ष आकाशगामी रथ द्वारा अपनी नगरी में पहुंचा। फिर समस्त पृथ्वी को जीतकर विनयवती के साथ सुख से रहने लगा। इस प्रकार देवताओं की कृपा होने पर मनुष्य के दुष्कर काम भी सिद्ध हो जाते हैं। सो हे राजन! स्वप्न में देखी पार्वती की प्रसन्नता से शीघ्र ही आपका अभीष्ट भी सिद्ध होगा।"

अपने मंत्री से इस विचित्र कथा को सनकर शशांकवती की प्राप्ति के लिए उत्सुक मृगांकदत्त ने अपने मंत्रियों-सहित उज्जयनी जाने का निश्चय किया।

: ३ :

## मृगांकदत्त का देश-निकाला

शशांकवती को प्राप्त करने के लिए मृगांकदत्त ने महाव्रती का वेष धारण करके गुप्तरूप से उज्जयनी में जाने की सलाह अपने मंत्रियों से की। मृगांकदत्त ने मंत्री भीम पराक्रम को महाव्रती वेश धारण करने की सामग्री एकत्र करने की आज्ञा दी। मृगांकदत्त के पिता के मुख्यमंत्री ने गुप्तचर के द्वारा इस वृत्तांत को जान लिया था। एक दिन मृगांकदत्त पान चबाता हुआ महल की छत पर टहल रहा था। उसी समय उसके पिता का मंत्री वहां घूमता हुआ आ गया। संयोगवश मृगांकदत्त ने उसी समय पान की पीक थूकी और वह उसके पिता के मंत्री के ऊपर जा पड़ी। मृगांकदत्त ने मेरे ऊपर पीक थूकी है—यह समझकर वह मंत्री मन में

उससे क्रुद्ध हो गया और बदला लेने का अवसर ढूंढ़ने लगा। एक बार दैववशात् राजा अमरदत्त को हैजा हो गया। तब मंत्री ने बदला लेने का उचित मौका जानकर राजा से एकांत में कहा, "हे स्वामी! मृगांकदत्त आपको मारकर राज्य ग्रहण करना चाहता है। इसलिए उसने भीम पराक्रम के घर में आप पर मारण प्रयोग कराना आरंभ कर दिया है। उसीसे आप इस आकस्मिक व्यधि से पीड़ित हो गये हैं। यह बात मैंने गुप्तचर के मुख से सुनी थी, किंतु अब तो यह प्रत्यक्ष दिखाई दे रही है।"

यह सुनकर अमरदत्त बहुत चकित हुआ और उसने इस बात की जांच करने के लिए अपने सेनापति को भीम पराक्रम के घर भेजा। उस सेनापति ने भीम पराक्रम के घर से महाव्रती वेश धारण करने की समस्त सामग्री लाकर राजा को दिखा दी। राजा ने उसे मारण प्रयोग की सामग्री समझ लिया और यह सोचकर कि मेरा पुत्र राज्य के लोभ से मुझसे द्रोह कर रहा है, मृगांकदत्त को उसके मंत्रियों-सहित देश से निकाल दिया। मृगांकदत्त भी मन में माता-पिता को प्रणाम करके प्रचंड-शक्ति आदि अपने दस मंत्रियों को साथ लेकर अयोध्या से दूर चला गया। मार्ग में उसने अपने मंत्रियों से कहा, 'शक्तिरक्षित नाम का किरातों स्वामी मेरा बचपन का मित्र है। सो, पहले हम उसके पास चलेंगे और वहां से शशांकवती को प्राप्त करने के लिए उज्जयनी चलेंगे।" मंत्रियों ने उसकी बात का समर्थन किया और वे किरात-देश की ओर चल दिये। चलते-चलते सायंकाल वे एक बीहड़ वन में पहुंचे, जहां न कोई पेड़ था और न जल। बहुत घूमने पर वे एक तालाब के किनारे पहुंचे, जहां एक सूखा पेड़ खड़ा हुआ था। उस सूखे पेड़ के नीचे विधि-पूर्वक संध्या करके और जल पीकर वे सब सो गये। रात में चंद्रमा के निकलने पर मृगांकदत्त की आंखें खुलीं और उसने देखा कि वह सूखा पेड़ फलों-फूलों से लदा हुआ है। उसके पके हुए फलों को नीचे गिरते देखकर मृगांकदत्त ने अपने मंत्रियों को जगाकर यह अद्भुत बात दिखाई। वे भी यह देखकर अत्यंत विस्मित हुए और भूखे होने के कारण उन्होंने भर पेट वे मीठे फल खाये। खा चुकने पर उनके देखते-ही-देखते वह सूखा पेड़ एक ब्राह्मण कुमार बन गया। यह देखकर विस्मित हुए मृगांकदत्त ने उस ब्राह्मण कुमार से पूछा, "तुम कौन हो?" वह बोला, "अयोध्या में दयार्ध नाम का ब्राह्मण रहता था। उसका मैं श्रुतधि नाम का पुत्र हूं। मेरा पिता एक बार दुर्भिक्ष के समय मेरे साथ इधर-उधर घूमता हुआ इस प्रदेश में आ

गया। यहां आकर उसे किसीने पांच फल दिये। हम दोनों ही भूख-प्यास से पीड़ित थे, इसलिए पिताजी ने तीन फल तो मुझे खाने को दे दिये और दो अपने लिए मेरे पास रखकर स्नान करने चले गये। उनके चले जाने पर मैंने उन दो फलों को भी खा लिया और सोने का बहाना करके लेट गया। जब वह स्नान करके लौटे और उन्होंने देखा कि मैं उनके भी दोनों फलों को खाकर छल से काष्ठ की भांति लेटा हुआ हूं, तो उन्होंने मुझे शाप दिया, 'तू इसी तालाब के किनारे पर सूखा पेड़ बन जा। रात्रि में चांदनी के समय तुझ पर फल-फूल आया करेंगे, किसी समय आये हुए अतिथियों को अपने फलों से तृप्त करके तू शाप से मुक्त हो जायेगा।' इस प्रकार पिता के शाप से मैं यहां सूखा पेड़ बन गया था और आज आपको अपने फल खिलाकर शाप से छूट गया हूं।" अपना वृत्तांत सुनाकर श्रुतधि ने मृगांकदत्त से उसका समाचार सुना। मृगांकदत्त ने वह रात्रि वहीं बिताई और प्रातःकाल श्रुतधि और मंत्रियों के साथ वहां से चल दिया। चलते हुए वे करिमंडित नाम के वन में पहुंचे और वहां उन्होंने लंबे-लंबे बालों और कुरूप आकृतिवाले पांच पुरुषों को देखा। वे नम्रतापूर्वक उसके समीप आकर बोले, "हम काशीपुरी में उत्पन्न हुए ब्राह्मण हैं, गोपालन ही हमारी जीविका है। एक बार वहां बड़ा दुर्भिक्ष पड़ा और अनावृष्टि के कारण गौओं को चारा न मिला, इसलिए हम अपनी गौओं के साथ यहां चले आये। यहां आकर हमें तथा हमारी गौओं को पर्याप्त भोजन एवं जल मिला। हमें यहां रहते हुए पांच वर्ष हो गये हैं। आप सौभाग्य से आज हमारे अतिथि बनकर आये हैं, सो हमारे आश्रम में चलिये। उनके अनुनय-विनय करने पर मृगांकदत्त अपने साथियों के साथ उनके आश्रम में गया और अगले दिन वे सब वहां से किरातों के देश में पहुंचे। मृगांकदत्त ने श्रुतधि को किरातों के राजा शक्तिरक्षित के पास अपने आने का समाचार लेकर भेजा। यह सुनकर शक्तिरक्षित ने मंत्रियों-सहित अपने नगर से बाहर निकलकर उसका बड़ा सत्कार किया। अपने आने का कारण बताये बिना मृगांकदत्त कुछ दिन तक वहां रहा और उससे अपनी सहायता के लिए उद्यत रहने के लिए कहकर वहां से शुभ मुहूर्त में उज्जयनी को चल दिया। मार्ग में उसने निर्जन वन में एक पेड़ के नीचे बैठे हुए भस्म, मृगचर्म और जटा धारण किये हुए एक तपस्वी को देखा। मृगांकदत्त ने उससे पूछा, "आप कौन हैं और इस निर्जन वन में अकेले क्यों बैठे हैं?" उस तपस्वी ने उत्तर दिया, "मैं शुद्धकीर्ति नाम के महागुरु का शिष्य हूं और

मुझे अनेक मंत्रों की सिद्धियां प्राप्त हैं। एक समय मैंने शुभ लक्षणों से युक्त एक क्षत्रिय बालक में अपने मंत्र का आवेश किया। जब उस बालक में मंत्र का आवेश हो गया, तो उसने मुझे अनेक सिद्धौषधि-रसों के क्षेत्र बताकर मुझसे यह कहा कि इस विंध्य वन में उत्तर दिशा में एक अकेला अशोक का पेड़ है, उसके नीचे एक बड़ा भारी सांपों का भवन है। उसमें पारावत नाम का एक बलवान सर्प रहता है। उसके पास देवासुर संग्राम में प्राप्त एक अनोखी तलवार है। उस तलवार का नाम वैदूर्यकांति है। जो व्यक्ति उस तलवार को पा लेता है, वह सिद्धों का स्वामी बनकर अजेय हो जाता है; किंतु वह तलवार वीर सहायकों की सहायता से ही प्राप्त हो सकती है। उस क्षत्रियकुमार से यह बात सुनकर मैं सहायकों की तालाश में सारी पृथ्वी पर घूमा, किंतु मुझे ऐसा कोई सहायक न मिला। अब मैं निराश होकर यहां मरने के लिए आया हूं।"

तपस्वी की यह बात सुनकर मृगांकदत्त ने कहा, "मैं मंत्रियों-सहित तुम्हारी सहायता करने के लिए तैयार हूं।" तब वह तपस्वी उन सबके साथ सर्पों के भवन पर पहुंचा। उसने अपने मंत्रों के बल से सारी दिशाओं को बांध दिया और सर्प को दमन करनेवाले मंत्रों से हवन करने लगा। मृगांकदत्त और उसके साथी उसकी रक्षा के लिए खड़े रहे। तपस्वी ने अनेक विघ्नों को तो अपनी मंत्र-शक्ति से जीत लिया, किंतु तभी अचानक उस अशोक वृक्ष से एक दिव्य स्त्री निकली और उसने उस तपस्वी का आलिंगन करके उसके हाथ से हवन का पात्र गिरा दिया। इसी बीच में मौका पाकर वह नाग बाहर निकला। उसने भयंकर फुफकार और गर्जना की। उसकी आंखों से एक ऐसी तीव्र ज्वाला निकली, जिसके भय से तपस्वी का हृदय फट गया। तपस्वी के मर जाने पर उस सर्प ने मृगांकदत्त और उसके साथियों को शाप दिया, "तुमने निष्प्रयोजन मेरे विनाश-कार्य में इसकी सहायता की है। इसलिए तुम कुछ काल तक एक-दूसरे से वियुक्त रहोगे।" सर्प ऐसा कहकर अदृश्य हो गया और उनकी दृष्टि अंधकार से रुद्ध हो गई और उनकी शब्द सुनने की शक्ति भी लुप्त हो गई, इसलिए वे न तो एक-दूसरे को देख सके और न ही एक-दूसरे का शब्द सुन सके। इस प्रकार शाप के प्रभाव से वे एक-दूसरे से जुदा होकर एक-दूसरे को पुकारने और ढूंढने लगे। तीन महीने तक वे ऐसा ही करते रहे। इसके बाद अकस्मात एक दिन मृगांकदत्त को श्रुतधि मिल गया। मृगांकदत्त ने उससे अपने मंत्रियों के विषय में पूछा। उसने कहा, "मैंने उन्हें देखा तो नहीं, किंतु

ऐसा विचार है कि वे उज्जयनी ही पहुंचेंगे। सो हमें भी उज्जयनी ही चलना चाहिए।" तब वे दोनों उज्जयनी की ओर चल दिये। मार्ग में विमलबुद्धि मिला। दूसरे मंत्रियों के विषय में पूछने पर उसने उत्तर दिया, "मैं यह तो नहीं जानता कि उनमें से सर्प के शाप से कौन कहां गया, किंतु वे हमें शीघ्र ही मिल जायेंगे। इस बात का मुझे जैसे पता लगा है, वह मैं बताता हूं: सर्प के शाप से आपसे विमुक्त होकर मैं घूमता हुआ दूर निकल गया। एक साधु मुझे महर्षि ब्रह्मदंडी के आश्रम में ले गया। मैं वहीं रहा। वहां चारों ओर घूमते हुए मैंने एक बड़ी भारी गुफा देखी। कुतूहलवश उस गुफा में प्रविष्ट होने पर मैंने उसमें एक मणिमय मंदिर पाया। उसमें झरोखे से झांककर मैंने देखा कि भीतर एक स्त्री भौंरों से युक्त चक्र घुमा रही है, उसमें एक बैल और एक गधा है, उन दोनों पर भौंरे गूंज रहे हैं। बैल तथा गधे के द्वारा उगले हुए मुंह के झागों को पीकर वे भौंरे सफेद और काले रंग की मकड़ी हो गये हैं। इन दो प्रकार की मकड़ियों ने अपनी विष्ठा से अनेक प्रकार के जाल बना दिये, जिनमें श्वेत मकड़ियों के जाल में सुंदर पुष्प और काली मकड़ियों के जाल में विष के फूल लगे हुए हैं। उन जालों में लिपटी हुई दो प्रकार की मकड़ियों को श्वेत और काले दो मुखवाले बड़े भारी सांप ने खा लिया। तब उस स्त्री ने अनेक प्रकार के घड़ों में उन्हें डाल दिया, जिससे वे मकड़ियां पुनः जीवित होकर उसी प्रकार जालों में घूमने लगीं। फिर विष के फूलों में पड़ी हुई मकड़ियां विष के वेग से चिल्लाने लगीं। उन्हें देखकर दूसरे जालों में पड़ी हुई मकड़ियां भी चिल्लाने लगीं। उनके चिल्लाने के शब्द से वहां पर समाधि लगाकर बैठे हुए किसी तपस्वी की समाधि टूट गई और उनके मस्तक से जो ज्वाला निकली, उससे वे सब मकड़ियां जाल-मुक्त हो गईं। वे मकड़ियां एक मूंगे के बने हुए डंडे में घुसकर उसके उपरिभाग में स्थित तेज ज्योति में विलीन हो गईं। तब वह स्त्री भी चक्र, बैल और गधे के साथ न जाने कहां चली गई। यह देखकर मैं विस्मित हो गया और वहीं घूमने लगा। इतने में मैंने वहां कमलों से युक्त एक वावड़ी देखी, जिसमें चारों ओर भौंरे मंडरा रहे थे। उस बावड़ी के भीतर मैंने एक वन देखा, जिसमें एक शिकारी ने दस भुजावाले एक शेर के बच्चे को पाल-पोसकर बड़ा किया था। किंतु जब वह बच्चा उसके वश से बाहर हो गया, तो उस शिकारी ने शेर को वन से बाहर निकाल दिया। वह शेर किसी दूसरे वन में शेरनी की आवाज सुनकर उसके पास चला। मार्ग में भयंकर आंधी

के आने से उसकी दसों भुजाएं कट गईं। तब किसी लंबे पेटवाले पुरुष ने उसकी भुजाएं जोड़ दीं और वह शेर शेरनी के लिए दूसरे वन में चला गया। वहां से शेरनी को साथ लेकर वह शेर फिर अपने पहले वन में आ गया। उसे शेरनी के साथ देखकर शिकारी उस शेर को वह वन सौंपकर वहां से चला गया। इस दूसरे आश्चर्य को देखकर मैं ब्रह्मदंडी के पास गया और दोनों घटनाएं उन्हें सुनाईं। त्रिकालज्ञ मुनि ने प्रेमपूर्वक मुझसे कहा, 'तुम धन्य हो, ईश्वर ने प्रसन्न होकर तुम्हें सब-कुछ दिखा दिया है। तुमने जिस स्त्री को देखा है, वह माया है, और वह जो चक्र घुमा रही है, वह संसार है, भौंरें प्राणी हैं। बैल और गधे का रूप धारण करनेवाले धर्म और अधर्म हैं। उनके उगले हुए दूध और खून पुण्य और पाप हैं। पुण्य करनेवाले प्राणी श्वेत मकड़ी हैं और पाप करनेवाले काली मकड़ी हैं। सुंदर पुष्प और विष-पुष्प सुख और दुख हैं। सर्प काल है, जो शुभ और अशुभ मुखों से प्राणियों को मारता है। घड़े अनेक प्रकार की योनियां हैं, जिनमें स्त्री-रूपी माया पुनः प्राणियों को डालती है। पुत्र आदि का ममत्व बड़ा भारी जाल है, जिसमें कभी सुख और कभी दुख होता है। फिर काली मकड़ियां-रूपी पापी प्राणी दुख-रूपी विष से पीड़ित होकर ईश्वर को पुकारते हैं। यह देखकर श्वेत मकड़ी-रूपी पुण्यात्मा व्यक्ति भी ईश्वर को पुकारने लगते हैं। अंत में वह ईश्वर-रूपी तपस्वी ज्ञान-रूपी अग्नि की ज्वाला से सबके जालों को काट देता है। तब वे सब मुक्त होकर मूंगे के डंडे-रूपी सूर्य-मंडल में प्रवेश करके परमधाम को प्राप्त करते हैं। उस ईश्वरीय ज्ञान की प्राप्ति के अनंतर यह चक्र रूपी संसार, माया रूपी स्त्री एवं बैल तथा गधा-रूपी धर्म एवं अधर्म—सभी लुप्त हो जाते हैं। इस प्रकार पुण्यात्मा और पापात्मा दोनों प्रकार के प्राणी संसार में घूमते हैं और अपने-अपने कर्मों के अनुसार ईश्वर भक्ति से मुक्ति प्राप्त करते हैं। तुम्हारी मोह-शांति के लिए ही ईश्वर ने तुम्हें यह सब दिखाया है।'

"इसके बाद मुनि ने फिर मुझसे कहा, 'तुमने बावड़ी के जल में जो कुछ देखा है, उसका तात्पर्य भी सुन लो। बावड़ी के जल की घटनाएं मृगांकदत्त के भावी भाग्य की सूचक हैं। वह दस भुजाओंवाला सिंह दस मंत्रियों से युक्त मृगांकदत्त है, जिसे वन-रूपी अपने देश में शिकारी-रूपी उसके पिता ने बचपन से पालकर बड़ा किया है और फिर कुपित होकर देश से निकाल दिया है। वह शशांकवती-रूपी

सिंहनी की ख्याति सुनकर उसे पाने के लिए निकल पड़ा है। सर्प के शाप-रूपी आंधी के आ जाने से उसके मंत्रीगणों का बिछुड़ना ही उसकी दस भुजाओं का कटना है। तब लंबे पेटवाले व्यक्ति-रूपी गणेशजी ने उसकी मंत्री-रूपी भुजाओं को फिर मिला दिया। तब वह मृगांकदत्त-रूपी शेर शशांकवती-रूपी शेरनी के साथ अपने देश में फिर लौटा, जिससे उसके पिता-रूपी शिकारी ने उसे राज्य सौंपकर तपोवन को प्रस्थान किया। इस प्रकार ईश्वर ने तुम्हें संसार चक्र दिखाकर मृगांकदत्त की भावी घटनाओं को दिखाया है।' सो हे स्वामी! आपका अन्य मंत्रियों से मिलन अवश्य होगा और इसके अनंतर आप अपनी प्रिया शशांकवती और राज्य भी अवश्य प्राप्त करेंगे।"

अपने मंत्री विमलबुद्धि से इस अद्भुत कथा को सुनकर मृगांकदत्त बहुत प्रसन्न हुआ और अपने दूसरे मंत्रियों को ढूंढता हुआ उज्जयनी की ओर चल दिया।

## : ४ :

## भीम पराक्रम की मुक्ति

इसके बाद मृगांकदत्त श्रुतधि और विमलबुद्धि के साथ शशांकवती को प्राप्त करने के लिए फिर उज्जयनी की ओर चला और नर्मदा नदी के किनारे पहुंचा। वहां मृगांकदत्त नर्मदा में स्नान करने के लिए उतरा। तभी वहां मायावटु नाम का भीलराज भी स्नान करने के लिए आया। ज्यों ही वह स्नान करने के लिए जल में उतरा, उसे तीन जल-मानुषों ने एकदम पकड़ लिया। उसके सेवक डरकर भाग गये। यह देखकर मृगांकदत्त ने तलवार निकालकर उन तीनों जल-मानुषों को मार गिराया और भीलराज को छुड़ा दिया। भीलराज ने मृगांकदत्त के चरणों में गिरकर पूछा, "आप कौन हैं? आपके वंश और पिता का क्या नाम है? आप किस देश से आ रहे हैं और कहां जायंगे? विधाता ने आपको मेरी रक्षा के लिए ही भेजा है। इसलिए कृपया अपना परिचय मुझे दीजिये।" तब श्रुतधि ने मृगांकदत्त का सारा हाल उसे बता दिया। भीलराज ने विनम्र होकर मृगांकदत्त से कहा, "मैं आपकी सहायता के लिए तैयार हूं। मेरा मित्र मातंगपति भी आपकी सहायता करेगा। आप मेरे घर चलने की कृपा करें।" भील-

राज के अनुरोध करने पर मृगांकदत्त उसके घर गया। भीलराज ने उसका खूब सत्कार किया। मृगांकदत्त कुछ दिन तक वहीं रहा। उसी समय मायावटु का मित्र मातंगपति भी वहां आया और कहने लगा, "आपने मेरे मित्र की प्राण-रक्षा की है, अतः मैं भी आपका दास हो गया हूं।" एक दिन मायावटु अपने प्रतिहार चंद्रकेतु के साथ जुआ खेल रहा था। तभी आकाश में बादल गरजने लगे और उनका गर्जन सुनकर मोर नाचने लगे। मायावटु उन नाचते हुए मोरों को देखने के लिए जुआ छोड़कर उठ खड़ा हुआ। इस पर प्रतिहार ने कहा, "हे स्वामी! नाचना न जानने-वाले इन मोरों के नाच को देखकर क्या करोगे? मेरे घर एक ऐसा मोर है, जैसा संसार में और कहीं न होगा।" मायावटु ने कहा, "मैं तुम्हारा मोर कल सुबह देखूंगा।" यह कहकर वह नित्यकर्म के लिए उठ खड़ा हुआ। मृगांकदत्त भी नित्य-कर्म से निवृत होकर रात्रि के समय नीले वस्त्र पहनकर घूमने के लिए निकला। मार्ग में अंधेरा होने के कारण उसका कंधा किसी दूसरे आदमी के कंधे से टकरा गया। इससे वह आदमी क्रुद्ध हो गया और उसने मृगांकदत्त को द्वंद युद्ध के लिए ललकारा। द्वंद में घायल होकर वह आदमी मृगांकदत्त से बोला, "इसमें न तुम दोषी हो, न मैं, वरन यह अंधकार ही दोषी है, जिसके कारण इस प्रकार लोग टकरा जाते हैं।" मृगांकदत्त ने उससे पूछा, "तुम कौन हो?" उस आदमी ने कहा, "मैं चोर हूं।" मृगांकदत्त ने झूठ-मूठ ही अपने को भी चोर बता दिया और दोनों में दोस्ती हो गई। दोनों साथ-साथ चल दिये और घास-फूस से ढके हुए एक अंधकूप पर पहुंचे। वह पुरुष उस कुएं में घुसकर सुरंग के द्वारा राजा मायावटु के राजमहल के रनिवास में पहुंच गया। मृगांकदत्त भी उसके साथ-साथ वहीं पहुंच गया। वहां दीपक के प्रकाश में मृगांकदत्त ने उस पुरुष को पहचान लिया—वह राजा का प्रतिहार चंद्रकेतु था, चोर नहीं। लेकिन प्रतिहार मंद प्रकाश और कोने में खड़े रहने के कारण मृगांकदत्त को न पहचान सका। तब चंद्रकेतु राजा मायावटु की पत्नी मंजुवती के पास गया। मंजुवती ने पूछा, "आज तुम अपने साथ किस आदमी को ले आये हो?" चंद्रकेतु ने उत्तर दिया, "यह मेरा विश्वास-पात्र मित्र है, तुम आश्वस्त रहो।" मंजुवती दुखी होकर बोली, "मुझ मंद भाग्य-वाली को विश्वास कहां? देखो, अभी उस दिन राजा को जल-मानुष मारे दे रहे थे, पर मृगांकदत्त ने आकर उसे बचा दिया।" यह सुनकर प्रतिहार ने कहा, "तुम निश्चित रहो, शोक न करो। मैं मायावटु और मृगांकदत्त दोनों को शीघ्र ही मार

दूंगा ।" उसकी इस गर्वोक्ति को सुनकर मायावटु की स्त्री बोली, "क्यों व्यर्थ में शेखी बघार रहे हो ? जब राजा को जल-मानुषों ने पकड़ लिया था, तब मृगांकदत्त ने ही उसे बचाया । तुम तो वहां से डरकर भाग आये थे । सो, चुप रहो । तुम्हारी इस बात पर कौन विश्वास करेगा कि तुम मृगांकदत्त से अधिक वीर हो और उसे मार डालोगे !" यह सुनकर वह प्रतिहार क्रोध में भरकर बोला, "दुष्टे ! तू निश्चय ही मृगांकदत्त से प्रेम करने लगी है, सो, ले ! तुझे अभी अपने तिरस्कार का फल चखाता हूं ।" यह कहकर वह छुरी उठाकर उसे मारने के लिए दौड़ा । तभी इस रहस्य को जाननेवाली एक दासी ने आकर उसका हाथ पकड़ लिया और मंजुवती को बचा दिया । प्रतिहार भी छुरी फेंककर मृगांकदत्त के साथ अपने घर लौट आया और अपने नौकर को बुलाकर कहा, "इन्हें उस कमरे में ले जाकर सुला दो, जहां वह मोर रहता है ।"

वहां जाकर मृगांकदत्त ने देखा कि एक मोर पिंजड़े में पड़ा हुआ है । उसने पिंजड़े का दरवाजा खोल दिया और वह मोर बाहर निकलकर मृगांकदत्त के चरणों पर लोटने लगा । उस मोर के गले में एक सूत बंधा हुआ था । मृगांकदत्त ने सोचा कि शायद इस मोर का सूत से गला घुट रहा है, इसीलिए यह मेरे चरणों पर लोट रहा है । यह सोचकर उसने मोर के गले में बंधे हुए धागे को तोड़ दिया । धागा टूटते ही वह मोर भीम पराक्रम बन गया । मृगांकदत्त ने विस्मित होकर उससे पूछा, "मित्र ! यह क्या !" भीम पराक्रम ने अपना वृत्तांत कहना आरंभ किया, "हे देव ! नाग के शाप से आपसे विमुक्त होकर मैं वन में घूमता हुआ एक सेमर के पेड़ के नीचे पहुंचा । उस पेड़ पर मैंने गणेशजी की मूर्ति खुदी हुई देखी । उसे प्रणाम करके मैं उस पेड़ के नीचे बैठ गया और सोचने लगा कि मुझे धिक्कार है, जो मैंने स्वामी को रात में बेताल का वृत्तांत सुनाकर उन्हें आपत्ति में डाल दिया । सो, मैं अपने अपराधी प्राणों को यहीं क्यों न त्याग दूं ? यह सोचता हुआ मैं उस प्रतिमा के सामने अनशन करके बैठ गया । मुझे इस प्रकार बैठे कुछ ही दिन बीते थे कि उस मार्ग से एक बूढ़ा पथिक आ निकला । उसने मुझसे मेरा परिचय पूछा । मैंने उसे अपना हाल सुना दिया । तब वह वृद्ध पथिक मुझसे प्रेमपूर्वक कहने लगा, 'तुम वीर होकर भी स्त्रियों की तरह आत्महत्या क्यों कर रहे हो ? स्त्रियां भी आपत्ति में धैर्य नहीं छोड़ती हैं ।' इस विषय में उसने मुझे एक कथा सुनाई :

"कोशल नगरी में विमलाकर नाम का राजा था । उसके कमलाकर नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। वह तेज, रूप, उदारता आदि गुणों से युक्त था। एक बार उस राजकुमार की बहुत से बंदी स्तुति कर रहे थे, तभी एक प्राचीन परिचित बंदी मनोरथसिद्ध ने उसकी प्रशंसा में एक श्लोक पढ़ा। वह बंदी इस श्लोक को बार-बार पढ़ता रहा। तब कमलाकर ने मनोरथसिद्ध से पूछा, 'तुम इस श्लोक को बार-बार क्यों पढ़ते हो ?' उसने कहना आरंभ किया, 'हे देव ! मैं घूमता हुआ राजा मेघमाली की नगरी विदिशा में चला गया। वहां दर्दुरक नाम के संगीताचार्य के घर में कुछ दिन रहा। एक दिन किसी प्रसंग में उस संगीताचार्य ने मुझसे कहा, "कल प्रातःकाल यहां के राजा की पुत्री हंसावली राजा के सामने अपना नवशिक्षित नृत्य दिखायेगी।" यह सुनकर अगले दिन मैं भी युक्ति से संगीताचार्य के साथ रंग-मंडप में पहुंच गया। वहां मैंने अत्यंत सुंदरी तथा सर्वगुणों से संपन्न उस राजपुत्री हंसावली को राजा के सामने नाचते हुए देखा। उसके रूप-सौंदर्य को देखकर मैंने सोचा कि कुमार कमलाकर के अतिरिक्त अन्य कौन इस सुंदरी का योग्य पति हो सकता है ? सो, मुझे ऐसा उपाय करना चाहिए, जिससे इसका मिलन कमलाकर के साथ हो। यह सोचता हुआ मैं नृत्य देखने के बाद राजकुल के द्वार पर गया। वहां मैंने घोषणा की कि मेरे समान कोई चित्रकार नहीं है, यदि कोई हो, तो सामने आये।'

" 'जब कोई चित्रकार मेरी समता करने के लिए नहीं आया, तो राजा ने मुझे बुलाया और अपनी पुत्री के महल में चित्र-रचना के लिए नियुक्त कर दिया। वहां मैंने दीवार पर हंसावली के सामने आपका चित्र बना दिया। मैंने सोचा कि यदि मैंने स्पष्ट रूप से प्रत्यक्ष ही राजकुमारी से आपके विषय में कुछ कहा, तो शायद यह मुझे धूर्त समझकर निकलवा दे, इसलिए मैंने युक्ति से काम लिया। मैंने अपने एक मित्र को सिखाकर और उन्मत्त-सा बनाकर उसे राजमहल के पास घूमने को भेज दिया। वह उन्मत्त बनकर वहां नाचने-गाने लगा और एक खिलौना-सा बन गया। क्रीड़ावश हंसावली ने उसे अपने महल में बुला लिया। उस उन्मत्त ने आपका चित्र देखकर उसकी स्तुति करनी आरंभ कर दी। तब राजपुत्री के पूछने पर मैंने बताया, "ऐसा प्रतीत होता है कि इस उन्मत्त ने इस चित्रलिखित व्यक्ति को कहीं देखा है। यह एक राजपुत्र का चित्र है, जो रूप, गुण और सौंदर्य में अनन्य है।" यह कहकर मैंने आपके गुणों का सविस्तार

वर्णन कर दिया। उन्हें सुनकर राजकुमारी के हृदय में आपके प्रति अनुराग पैदा हो गया। इसी समय राजकुमारी का पिता वहां आ गया। उसने क्रोधित होकर मुझे और उस उन्मत्त को वहां से निकलवा दिया। तब से वह हंसावली आपके प्रेम में नित्य प्रति क्षीण होती गई और बीमारी के बहाने से पिता की आज्ञा लेकर भगवान के मंदिर में जाकर रहने लगी। एक दिन मैं देव-दर्शन के बहाने वहां पहुंच गया। तब उसने वस्त्र और आभूषणों से मेरी पूजा की और चलते समय उसने मुझे एक वस्त्र के आंचल में आपके लिए एक श्लोक लिखकर दिया। वही श्लोक मैंने आपको सुनाया है। यह श्लोक और वस्त्र आप ले लीजिये।'

"तब राजकुमार कमलाकर ने उस श्लोक को स्वयं पढ़ा और हंसावली का मन में ध्यान करके बहुत हर्षित हुआ। वह उत्सुक होकर उसको प्राप्त करने का उपाय सोचने लगा। तभी दैवयोग से उसके पिता ने उसे बुलाया और अंगदेश के राजा को जीतने के लिए बहुत-सी सेना लेकर भेजा। कमलाकर भी अपने शत्रुओं को जीतने के साथ-साथ अपनी हंसावली को देखने की इच्छा से चल पड़ा। अंगदेश में जाकर कमलाकर ने अंगराज को युद्ध में जीतकर और बंदी बनाकर अपने सेनापति के द्वारा पिता के पास भेज दिया और यह कहला दिया कि मैं अन्य शत्रुओं को जीतने जा रहा हूं। तब वह अन्य शत्रुओं को जीतता हुआ क्रम से विदिशा नगरी में पहुंचा। वह स्वयं तो नगरी के बाहर ही ठहर गया, लेकिन उसने हंसावली को मांगने के लिए अपने दूत को राजा मेघमाली के पास भेजा। दूत से उसका आना सुनकर मेघमाली बड़े प्रेम से उसके पास आया और उसका बड़ा आदर-सत्कार करके अपने नगर में ले गया। फिर मेघमाली ने कमलाकर से कहा, 'मैं तो स्वयं ही हंसावली का विवाह आप से करना चाहता था। आपको स्वयं आने की क्या आवश्यकता थी? किसी दूत से ही कहलवा देते!' मेघमाली ने कमलाकर को ही हंसावली को देने के अपने निश्चय का कारण बताते हुए कहा, 'मैं हमेशा इसके योग्य वर की चिंता में रहता था, किंतु बहुत खोज करने पर भी जब कोई योग्य वर न मिला, तो मुझे रात में निद्रा भी आनी बंद हो गई और ज्वर रहने लगा। उस ज्वर की शांति के लिए मैंने भगवान की पूजा की। भगवान ने रात्रि में मुझसे स्वप्न में कहा, "जिसकी चिंता में तुम्हें ज्वर हुआ है, उसी हंसावली के हाथ के स्पर्श से तुम्हरा ज्वर शांत हो जायेगा, क्योंकि मेरे पूजन से वह इतनी पवित्र हो गई है कि वह जिस किसीका भी हाथ से स्पर्श करेगी, उसका

असाध्य ज्वर भी शांत हो जायेगा । तुम उसके विवाह की चिंता न करो, इसका पति राजपुत्र कमलाकर होगा, किंतु कुछ समय के लिए इसे थोड़ा सा कष्ट अवश्य उठाना पड़ेगा ।" यह कहकर भगवान अदृश्य हो गये और प्रातःकाल होने पर मैं हंसावली के स्पर्श से स्वस्थ हो गया । सो, इस प्रकार आप दोनों का मिलन तो दैव-निर्मित है । मैंने हंसावली को आपको दे दिया ।' विवाह की लग्न निश्चित करके राजा मेघमाली अपनी राजधानी में लौट आया । वहां उसने सारा समाचार हंसावली और अपनी पत्नी को सुना दिया । यह सुनकर हंसावली ने अपनी विश्वासपात्र सखी कनकमंजरी से एकांत में कहा, 'तुम कमलाकर के पास जाओ और यह देखकर आओ कि वह दीवार पर चित्रित कमलाकर से भिन्न तो नहीं है ।' कनकमंजरी एक तापसी का वेष बनाकर कमलाकर के पास पहुंची और उसके रूप-सौंदर्य को देखकर स्वयं उस पर मुग्ध हो गई । उसने सोचा कि यदि मैंने इस जैसे पति को न पाया, तो मेरा जन्म व्यर्थ है । सो, कोई ऐसा उपाय कर चाहिए जिससे यह मेरा पति बने । इसके बाद वह कमलाकर को आशीर्वाद तथा शत्रु के शस्त्र को स्तंभित करनेवाली एक मणि भेंट देकर लौट आई और हंसावली के पास आकर कुछ दुखित और उद्विग्न-सी होकर झूठमूठ बोली, 'सखि ! यद्यपि यह राज-रहस्य है और मुझे इस विषय में कुछ भी नहीं कहना चाहिए, किंतु फिर भी तुम्हारी भक्ति के कारण मैं इस रहस्य को तुम्हें बता रही हूं । जब मैं तापसी का वेष बनाकर कमलाकर की छावनी में पहुंची, तो मेरे वेष को देखकर एक पुरुष मेरे पास आकर बोला कि क्या आप भूत भगाने का कोई मंत्र या तंत्र जानती हैं । यह सुनकर मैंने उससे कहा कि हां, मैं भूत भगाने क मंत्रा जानती हूं । तुम मुझे उस पुरुष का नाम बताओ, जिस पर भूत चढ़ा हुआ है । मेरे ऐसा कहने पर वह आदमी मुझे कमलाकर के पास ले गया । वहां जाकर मैंने देखा कि कमलाकर पर भूत चढ़ा हुआ है और उसके नौकरों ने उसे बांध रखा है । तब मैं वहां से बहाना बनाकर चली आई ।' कनकमंजरी की इन बनावटी बातों पर विश्वास करके सरलहृदया हंसावली मूर्च्छित हो गई । बाद में होश में आकर वह बोली, 'मैंने कमलाकर को ही अपना पति स्वीकार किया है । उसे छोड़कर अन्य किसीको तो मैं पति बना नहीं सकती । इसलिए ऐसी स्थिति में या तो मेरा मरना ही श्रेयस्कर है या कहीं वन में चला जाना । सो, बताओ, अब मैं क्या करूं ?' मायाविनी कनकमंजरी उससे बोली, 'विवाह

के समय अपना-सा वेष बनाकर किसी अन्य सखी को बैठा देना और हम दोनों कहीं निकलकर भाग चलेंगे।' यह सुनकर राजपुत्री हंसावली उससे कहने लगी, 'तब तो तुम ही मेरा वेष बनाकर उससे विवाह कर लेना और मैं चुपचाप निकलकर चली जाऊंगी।' कनकमंजरी तो यह चाहती ही थी, फिर भी बहाना बनाती हुई बोली कि मैं युक्ति से ऐसा करूंगी, पर तुम्हें भी वह करना पड़ेगा जो कुछ मैं कहूंगी। हंसावली से ऐसा कहकर वह अपनी विश्वासपात्र सखी अशोकवती के पास पहुंची और उससे अपना रहस्य कह सुनाया। तब वे दोनों आकर हंसावली के पास रहने लगीं। विवाह के दिन कनकमंजरी ने स्वयं तो हंसावली का वेष बना लिया और अशोकवती को अपना वेष दिया। फिर रात्रि के समय हंसावली से बोली, 'तुम पश्चिमी दरवाजे से निकलकर एक कोस की दूरी पर स्थित पुराने सेमर के पेड़ की खोल में बैठकर मेरी प्रतीक्षा करना। मैं विवाह के कार्य से विवृत्त होकर शीघ्र ही तुम्हारे पास आऊंगी।' हंसावली एक सखी का वेष बनाकर छिपती हुई शहर से निकलकर उस सेमर के पेड़ के पास पहुंच गई, किंतु वहां अत्यंत अंधेरा होने के कारण वह उसकी खोल में न घुसी, वरन पास में ही खड़े हुए बढ़ के पेड़ पर चढ़ गई। वहां पेड़ के पत्तों में छिपकर वह कनकमंजरी की प्रतीक्षा करने लगी। उधर राजकुल में लग्न का समय आने पर राजा ने हंसावली का वेष धारण किये हुए कनकमंजरी का विवाह कमलाकर के साथ कर दिया। रात्रि के समय उसे कोई भी न पहचान सका। विवाह हो जाने पर कमलाकर ने कहा, 'आज ही शुभ नक्षत्र है, इसलिए हम आज ही अपनी छावनी में लौटेंगे।' अतः वह हंसावली का वेष धारण किये हुए कनकमंजरी तथा कनकमंजरी का वेष धारण किये हुए अशोकवती के साथ अपनी छावनी की ओर चल दिया। मार्ग में उस सेमर के वृक्ष के पास आकर कनकमंजरी डरी हुई जैसी बनकर कमलाकर के साथ लिपट गई। जब कमलाकर ने उसके डरने का कारण पूछा, तो वह आंसू भरकर बोली, 'आर्यपुत्र! मैंने आज रात स्वप्न में देखा कि इस सेमर के पेड़ से निकलकर एक राक्षसी मुझे खाने के लिए दौड़ी। तभी दौड़कर किसी ब्राह्मण ने मुझे बचा लिया और मुझे आश्वासन देकर कहा कि बेटी! तुम इस पेड़ को जला देना और इस पेड़ से जो कोई स्त्री निकले, उसे यहीं मार देना। ऐसा करने से तुम्हारा कल्याण होगा। यह कहकर वह ब्राह्मण अंतर्धान हो गया और मैं भी जग गई। सो, अब इस पेड़ को देखकर मुझे रात का स्वप्न याद आ गया

और मैं डर गई।' यह सुनकर कमलाकर ने अपने नौकरों को उस पेड़ को जला देने की आज्ञा दे दी। नौकरों ने भी उस पेड़ को जला दिया, किंतु जब उस पेड़ से हंसावली न निकली, तो कनकमंजरी ने समझ लिया कि वह जलकर मर गई और वह निश्चित हो गई। कमलाकर कनकमंजरी को ही वास्तविक हंसावली समझकर उसके साथ अपनी छावनी में आ गया और वहां से शीघ्र ही अपनी नगरी को लौट गया। उसके इस कार्य से संतुष्ट होकर पिता ने उसे राजगद्दी सौंप दी और स्वयं वन में चला गया और कमलाकर कनकमंजरी के साथ राज्य का सुख भोगने लगा। संयोगवश उन दिनों वह मनोरथसिद्धि नाम का भाट भी वहां नहीं था, जो हंसावली को पहचानता था। उधर हंसावली ने भी, जो बड़ के पेड़ पर चढ़ जाने के कारण बच गई थी, उस रात की सारी घटना को जान लिया कि कनकमंजरी ने उसे ठग लिया है। एक बार उसने सोचा कि अब जलकर मर जाने से ही मुझे इस कष्ट से मुक्ति मिलेगी, किंतु बाद में उसने सोचा कि मर जाने से तो यही अच्छा है कि कनकमंजरी से उसके इस विश्वासघात का बदला लिया जाय। फिर उसे अपने पिता की स्वप्न में सुनी यह बात याद आई कि हंसावली को कमलाकर अवश्य मिलेगा, किंतु कुछ समय के लिए उसे कुछ कष्ट उठाना पड़ेगा। अतः वह आत्महत्या का इरादा छोडकर इधर-उधर घूमती हुई एक वन में पहुंची। वहां फल-मूल खाकर वह कमलाकर की प्राप्ति के लिए भगवान का पूजन करने लगी। उधर इसी बीच में एक दिन कमलाकर को ज्वर आ गया। यह देखकर कनकमंजरी ने सोचा—'हंसावली के पिता ने सब आदमियों के सामने कहा था कि हंसावली के कर-स्पर्श से ज्वर नष्ट हो जाता है, अब यदि राजा मेरे हाथ से अपना स्पर्श करायेगा, तो वह ठीक नहीं होगा और मेरा सारा भेद खुल जायेगा। अतः अब मुझे किसी योगिनी के द्वारा बताई हुई ज्वरनाशक विधि की सिद्धि करनी चाहिए, किंतु इस के लिए एक मनुष्य की बलि देनी होती है। उसके लिए मैं युक्ति से अशोकवती की बलि दे दूंगी। इस प्रकार राजा के ज्वर के नष्ट होने के साथ-साथ अशोकवती का भेद खोल देने का खटका भी हमेशा के लिए जाता रहेगा।' यह सोचकर उसने अशोकवती से कहा, 'मैं ज्वरनाशक विधि की सिद्धि करना चाहती हूं, तुम पूजा की सामग्री लेकर मेरे साथ चलो।' तब वह रात्रि में अशोकवती के साथ हाथ में तलवार लेकर शून्य शिवमंदिर में गई। पहले शिव की पूजा करके उसने विधिपूर्वक मंत्र से ज्वर का आवा-

हन किया और अशोकवती से कहा, 'सखी ! तुम देवता के सामने झुककर प्रणाम करो, जिससे तुम्हारा कल्याण होगा।' जैसे ही अशोकवती ने पृथ्वी पर झुककर प्रणाम किया, कनकमंजरी ने उसकी गर्दन पर तलवार से प्रहार कर दिया, किंतु दैववश वह प्रहार उछटता-सा कंधे पर ही लगा। इससे अशोकवती डर-कर चिल्लाती हुई वहां से भागी। कनकमंजरी भी उसके पीछे-पीछे तलवार लिये हुए दौड़ी। अशोकवती के चिल्लाने को सुनकर रक्षक दौड़े और नग्न तलवार हाथ में लेकर दौड़ती हुई कनकमंजरी को राक्षसी समझकर शस्त्रों के प्रहार से उन्होंने उसे अधमरी कर दिया। फिर अशोकवती के मुंह से सारी घटना जानकर वे उन दोनों को राजा के पास ले गये। कनकमंजरी तो भय से तथा प्रहार की पीड़ा से तभी मर गई। कमलाकर ने घायल अशोकवती से पूछा कि यह सब क्या बात थी ? अशोकवती ने आरंभ से लेकर सारी घटना उसे सुना दी। वास्तविक बात को जानकर कमलाकर बहुत दुखी हुआ, किंतु तभी उसे हंसावली के पिता मेघमाली के स्वप्न की बात याद आ गई। उसने सोचा कि शायद वह कहीं जीवित हो, क्योंकि दैव की गति को कोई नहीं जान सकता।

"यह सोचकर कमलाकर अपने मंत्री को राज्य सौंपकर मनोरथसिद्धि भाट के साथ हंसावली को ढूंढ़ने के लिए चल पड़ा। वे दोनों अनेक आश्रमों तथा वनों में घूमते हुए उसी स्थान पर पहुंच गये, जहां हंसावली तप कर रही थी। उसे ध्यानस्थित देखकर मनोरथसिद्धि भाट ने कमलाकर से कहा, 'राजन ! तुम बड़े सौभाग्यशाली हो। यही तुम्हारी प्रियतमा हंसावली है।' ध्यान टूटने पर हंसावली ने उन दोनों को अपने सामने देखा और भाट को पहचान लिया। मनोरथसिद्धि ने उन दोनों का परस्पर परिचय करा दिया। आपस में मिलकर वे दोनों बहुत प्रसन्न हुए। फिर कमलाकर हंसावली के साथ अपनी राजधानी कोशल लौट आया और हंसावली के पिता मेघमाली को बुलाकर विधिपूर्वक दोनों ने विवाह कर लिया। इस प्रकार वे दोनों सुखपूर्वक रहने लगे।"

"यह कथा सुनाकर वह पथिक बोला, 'इसलिए जो व्यक्ति आपत्ति में धैर्य से काम लेते हैं, उनकी सारी इच्छाएं पूरी होती हैं। सो, तुम भी शरीर को न त्यागकर धैर्य धारण करो। तुम अवश्य ही अपने स्वामी को प्राप्त करोगे।' मुझे यह कथा सुनाकर और मरने से रोककर वह वृद्ध पथिक वहां से चला गया।"

भीम पराक्रम ने राजा मृगांकदत्त से फिर कहा, "इसके बाद मैं आपसे

मिलने की कामना में इधर-उधर घूमता हुआ उज्जयनी पहुंचा । वहां भी आपको न पाकर मैं थककर एक स्त्री को भोजन का मूल्य देकर उसके घर में एक रात विताने के लिए गया। थका हुआ होने के कारण थोड़ी देर सोकर जब मेरी आंखें खुलीं, तो मैं क्या देखता हूं कि उस स्त्री ने एक मुट्ठी जौ लेकर मंत्र पढ़कर उन्हें आंगन में ही बो दिया। वे जौ उसी समय उग आये और पक गये। उस स्त्री ने उन्हें तभी काट लिया और भूनकर तथा पीसकर उनके सत्तू बना लिये। उन सत्तुओं को एक बर्तन में रखकर वह स्त्री स्नान करने चली गई। मैंने उस स्त्री को शाकिनी समझकर उस सत्तू के पात्र को दूसरे पात्र से बदल दिया और फिर पूर्ववत लेट गया। स्नान से लौटकर उस स्त्री ने मेरे पात्र बदलने की क्रिया को न जानकर अभिमंत्रित सत्तू को तो अपने खाने के लिए रख लिया और दूसरे पात्र के सत्तू मुझे दे दिये। अभिसिक्त सत्तू को खाकर वह स्त्री तत्क्षण एक बकरी बन गई। उसे ले जाकर मैंने एक बधिक को बेच दिया। तब उस बधिक की स्त्री ने क्रोध नें भरकर मुझसे कहा, 'तुमने मेरी सखी के साथ धोखा किया है, सो तुम इसका फल पाओगे।' उसकी फटकार सुनकर मैं चुपचाप नगर से बाहर एक पेड़ के नीचे आकर सो गया। तभी बधिक की पत्नी दुष्ट योगिनी वहां आ गई और उसने मेरे गले में धागा बांध दिया। मैंने जागकर देखा कि मैं मोर बन गया हूं। कुछ दिनों तक तो मैं उसी वन में इधर-उधर उड़ता रहा। फिर एक दिन मुझे एक शिकारी ने पकड़ लिया। उसने मुझे भीलराज के प्रतिहार इस चंडकेतु को भेंट में लाकर दे दिया। चंडकेतु ने मुझे अपनी स्त्री को दे दिया और उसने मुझे इस कमरे में बंदकर दिया। आज दैवयोग से आप आ गये और आपने मेरे गले का धागा तोड़कर इस मोर-योनि से मुक्त करके मनुष्य बना लिया। अब हम दोनों को शीघ्र ही यहां से निकल भागना चाहिए, क्योंकि यह प्रतिहार रात्रि के समय बनाये हुए अपने मित्रों को सवेरे इस भय से मार डालता है कि कहीं वे उसका भेद न खोल दें। अब आप ऐसा कीजिये कि इस योगिनी सूत्र को अपने गले में बांधकर मोर बनकर इस झरोखे से बाहर निकल जाइये, मैं अपना हाथ फैलाकर आपके गले से यह धागा तोड़ लूंगा और फिर अपने गले में बांधकर में भी मोर बनकर इसी झरोखे से बाहर निकल आऊंगा। तब आप मेरे गले से इस धागे को तोड़ दें। फिर मैं भी मनुष्य बन जाऊंगा।" राजा मृगांकदत्त ने ऐसा ही किया और वे दोनों बाहर निकल गये। वहां से वे दोनों उस स्थान पर पहुंचे, जहां मृगांकदत्त अपने दो मंत्रियों—श्रुतधि और विमलबुद्धि—के

साथ ठहरा हुआ था।

सवेरा होने पर भीलराज मायावटु और प्रतिहार चंडकेतु मृगांकदत्त के पास जुआ खेलने आये। तब श्रुतधि ने कहा, "आज जुआ न खेलेंगे। क्या आप लोग भूल गये कि आज हमें प्रतिहार ने अपने मोर का नृत्य दिखाने को कहा था?" यह सुनकर भीलराज ने कौतुकवश प्रतिहार से कहा, "जाओ तुम अपना मोर ले आओ और उसका नृत्य सबको दिखओ।" तब प्रतिहार मोर लेने के लिए अपने घर चला और मार्ग में सोचने लगा कि प्रमादवश मैं आज उस चोर को मारना भूल गया था और मैंने उसे मोरवाले कमरे में डलवा दिया था। सो अब जाकर उस चोर को भी मार आऊंगा और मोर को ले आऊंगा। पर वहां जाकर उसने न तो उस चोर को पाया और न ही मोर को। तब डरा हुआ और दुखित चंडकेतु राजा के पास आकर बोला, "स्वामी! रात में कोई चोर मेरे मोर को चुराकर ले गया।" यह सुनकर मृगांकदत्त आदि आपस में एक-दूसरे को देखकर हंसने लगे। उन्हें हंसता हुआ देखकर मायावटु ने उनसे हंसमे का कारण पूछा। तब मृगांकदत्त ने रात की सारी घटना मायावटु को सुना दी। यह सुनकर मायावटु ने छुरी के प्रहार से घायल दासी से रात की सारी घटना की तहकीकात की। उसे ठीक पाकर प्रतिहार चंडकेतु को मार डाला और पापाचारिणी रानी मंजुवती को घर से निकाल दिया।

: ५ :

## विनीतमति की कथा

इस प्रकार मृगांकदत्त विमलबुद्धि आदि मंत्रियों के साथ भीलराज मायावटु के घर पर रहने लगा। इसी बीच एक दिन भीलराज के पास उसका सेनापति आकर बोला, "स्वामी, आपकी आज्ञा से ढूंढ़ते हुए हमने बलिदान के योग्य एक पुरुष पाया है। उसनें हमारे पांच सौ वीर सैनिकों को मार डाला है।" भीलराज ने उसे सामने लाने की आज्ञा दी। सेनापति ने बंधे हुए उस वीर को भीलराज के सामने उपस्थित किया। मृगांकदत्त ने देखा कि वह तो उसका मंत्री गुणाकर ही था। उसने तुरंत उसे अपने गले से लगा लिया। भीलराज ने सब-कुछ जानकर उसे बंधन से मुक्त कर दिया। सबके पूछने पर गुणाकर अपना वृत्तांत सुनाने लगा, "हे देव! सर्प के शाप

के कारण आपसे बिछुड़कर दुखी मन मैं निर्जन वन में बने हुए विंध्यवासिनी देवी के मंदिर में पहुंचा। आपके वियोग के कारण वहां मैंने अपना शरीर देवी को भेंट चढ़ाने का विचार किया। मैं ज्यों ही तलवार से अपना सिर काटने को उद्यत हुआ, त्यों ही एक दयालु बूढ़ी तापसी ने आकर मेरा हाथ पकड़ लिया और मरने का कारण पूछा। मैंने उसे सारा हाल सुना दिया। उसने कहा, 'पुत्र ! तुम दुखी मत हो, तुम अपने स्वामी से अवश्य मिलोगे। जब मरे हुए प्राणियों का भी आपस में मिलन हो जाता है, फिर जीवितों का कहना ही क्या !" इस संबंध में उसने मुझे एक कथा सुनाई :

"अहिच्छत्रा नाम की प्रसिद्ध नगरी में उदयतुंग नाम का राजा था। उसका कमलमति नाम का बहुत श्रेष्ठ प्रतिहार था। कमलमति के सर्वगुण-संपन्न विनीतमति नाम का पुत्र था। एक बार वह चंद्रमा की चांदनी में अकेला ही धनुष लेकर घूमने निकला। घूमता हुआ वह शहर से एक कोस दूर निकल गया। तब उसे अकस्मात रोने की आवाज़ सुनाई दी। उसका अनुसरण करते हुए वह वन में बहुत दूर चला गया। वहां उसने एक पेड़ के नीचे बैठी हुई सुंदर कन्या को रोते हुए देखा और उससे उसका परिचय तथा रोने का कारण पूछा। वह कन्या कहने लगी, 'मैं सर्पों के स्वामी गंधमाली की पुत्री विजयवती हूं। एक बार मेरे पिता युद्ध से भाग गये थे, तब सर्पराज वासुकि ने उन्हें शाप दिया कि तू शत्रु का दास बनेगा। उसके शाप से कालजिह्व नाम के शत्रु यक्ष ने मेरे पिता को जीतकर दास बना लिया। उनके इस दुख से दुखित होकर मैंने उन्हें शाप से मुक्ति दिलाने के लिए तपस्या करके भगवती गौरी को प्रसन्न किया। भगवती गौरी ने मुझे दर्शन देकर कहा, "बेटी, मानसरोवर के बीच में एक दिव्य कमल है। एक बार कुबेर मानसरोवर पर स्नान करने के लिए आये। उन्होंने उस कमल को देखकर उससे भगवान शिव की पूजा करनी आरंभ कर दी। दैवयोग से उसी समय तुम्हारे शत्रु कालजिह्व का बड़ा भाई विद्युज्जिह्व यक्ष अपनी पत्नी के साथ चकवे का रूप धारण करके उसी सरोवर में जलक्रीड़ा कर रहा था। उसके पंखों के फड़फड़ाने से कुबेर के हाथ का अर्घ्यपात्र गिर पड़ा। कुबेर ने क्रुद्ध होकर उसे तभी यह शाप दिया कि तुम सपत्नीक चकवा बन जाओ। कालजिह्व अपने भाई के प्रेम के कारण रात में उसकी प्रेयसी का रूप धारण कर लेता है और सवेरा होते ही फिर मनुष्य-रूप में प्रकट हो जाता है। आज वह कालजिह्व तुम्हारे पिता गंध-

माली के साथ यहीं आया हुआ है। सो, तुम मुझसे यह घोड़ा और तलवार ले लो, और अहिच्छत्रा नगरी के राजा के प्रतिहार के पुत्र विनीतमति को प्रेरित करो कि वह इनसे उस कालजिह्व यक्ष को जीतकर तुम्हारे पिता को मुक्त करा दे। वही तुम्हारे पिता को मुक्त कराने में समर्थ है। जो व्यक्ति इस तलवार को धारण करेगा, वह शत्रुओं को जीतकर समस्त पृथ्वी का राजा होगा।" ऐसा कहकर वह अंतर्धान हो गई और मैं भी इस तलवार और घोड़े को लेकर आपको प्रेरणा देने के लिए यहां आ गई। यह घोड़ा और तलवार आप ले लीजिये और मेरे पिता को मुक्त कराइये।'

"यह कहकर उस नागकन्या ने विनीतिमति को वह घोड़ा और तलवार दे दिये। विनीतमति तलवार को हाथ में ले और घोड़े पर चढ़कर विजयवती के साथ मानसरोवर पहुंचा। वहां उसने छोटे-छोटे यक्षों को मार भगाया। बाद में कालजिह्व लड़ने के लिए आया, विनीतमति ने कूदकर उसके केश पकड़ लिये और उसका सिर काटने के लिए तलवार उठाई। तभी कालजिह्व उसके चरणों पर गिर पड़ा। विनीतमति ने उसे छोड़ दिया। कालजिह्व ने उसे भेंट रूप में ईतिनाशक अपनी अंगूठी दी और गंधमाली को दासता से से मुक्त कर दिया। गंधमाली ने भी विनीतमति से प्रसन्न होकर उसे अपनी पुत्री विजयवती को दे दिया। विनीतमति भोर होते-होते तलबार, ईतिनाशक अंगूठी, घोड़ा और विजयवती को पाकर अपने घर लौट आया। उसके बाद विनीतमति ने राजा उदयतुंग की विदुषी पुत्री उदयवती को शास्त्रार्थ में पराजित करके उससे विवाह किया। अब विनीतमति नागपुत्री और राजपुत्री के साथ सुख से रहने लगा।

"एक दिन विनीतमति दूसरों के साथ बैठा हुआ जुआ खेल रहा था। तभी एक ब्राह्मण ने आकर उससे भोजन मांगा। विनीतमति उस समय जुए में हार रहा था। सो उसने खीझकर अपने नौकर के कान में यह कह दिया कि इस ब्राह्मण को एक बर्तन में रेत भरकर और उसे कपड़े से ढककर दे दो। नौकर ने ऐसा ही किया। ब्राह्मण ने उसे भारी देखकर समझा कि इसमें सोना भरा हुआ है और प्रसन्नतापूर्वक लेकर चला गया। जब एकांत में जाकर उसने उस पात्र को खोलकर देखा, तो उसमें रेत पाया। वह बहुत दुखित हुआ। विनीतमति ने इस घटना पर कोई ध्यान न दिया।

"राजा उदयतुंग के कोई पुत्र नहीं था। सो वृद्धावस्था में राज्य का भार अपने

जमाई विनीतमति को सौंपकर वह देहमुक्ति के लिए गंगा-किनारे चला गया। विनीतमति ने अश्व और खड्ग के प्रभाव से दसों दिशाओं को जीत लिया। ईति-नाशक अंगूठी के प्रभाव से उसके राष्ट्र में रोग और दुर्भिक्ष आदि बिल्कुल न थे। एक बार विनीतमति के पास किसी दूसरे देश से रत्नचंद्रमति नाम का कोई संन्यासी आया। उसने राजा से कहा, 'मैं आपसे इस शर्त पर शास्त्रार्थ करना चाहता हूं कि यदि आप हार जायं तो आपको जैन-मत स्वीकार करना पड़ेगा और यदि मैं हार गया, तो संन्यासी-वेश को छोड़कर ब्राह्मणों की सेवा करूंगा।' राजा विनीतमति ने उससे शास्त्रार्थ करना स्वीकार कर लिया और दोनों में सात दिन तक शास्त्रार्थ होता रहा। आठवें दिन संन्यासी ने राजा को जीत लिया। विनीतमति ने जैन-मत स्वीकार कर लिया और ब्राह्मणों तथा भिक्षुओं के लिए विहार बनवा दिये तथा सदावर्त जारी करा दिये। कुछ दिन बाद राजा विनीत-मति ने संन्यासी से कहा, 'आप मुझे बौद्ध धर्म की शिक्षा दीजिये।' यह सुनकर रत्नचंद्रमति संन्यासी ने उत्तर दिया, 'हे राजन! बौद्ध धर्म की दीक्षा निष्पाप व्यक्तियों को ही दी जा सकती है। हमें आपका कोई स्थूल पाप तो दिखाई नहीं देता, हो सकता है कि आपका कोई सूक्ष्म पाप हो। उस सूक्ष्म पाप का पता लगा-कर आप उसे शांत कीजिये। सूक्ष्म पाप का पता लगाने की युक्ति मैं आपको बताता हूं।' ऐसा कहकर संन्यासी ने उसे स्वप्नमाणव नाम की युक्ति बताई। राजा ने उस युक्ति से रात में स्वप्न देखा और भोर होने पर संन्यासी से कहा, 'आचार्य! आज रात मैं स्वप्न में स्वर्गलोक में पहुंचा। वहां मैंने भूख से व्याकुल होकर खाना मांगा, तो दंडधारी पुरुषों ने कहा कि तुमने जो भूखे ब्राह्मण को बालू दिया था, वही गर्म हुआ रखा है, उसे खा लो। दस करोड़ अशर्फियां दान देकर तुम इस पाप से मुक्त हो सकते हो।' इस प्रकार संन्यासी को स्वप्न का हाल बताकर विनीतमति ने दस करोड़ अशर्फियां दान कर दीं। अगली रात भी राजा ने स्वप्नमाणव रीति से स्वप्न देखकर भोर होने पर संन्यासी से कहा, 'आज भी स्वर्ग में मुझे वही रेत खाने को दिया गया। मैंने उन दंडधारियों से कहा कि जब मैंने तुम्हारी आज्ञा के अनुसार दस करोड़ अशर्फियां दान दे दी हैं, फिर भी मुझे रेत क्यों खाने को दिया जा रहा है? तो उन दंडधारियों ने उत्तर दिया कि तुम्हारा दिया हुआ दान व्यर्थ हो गया, क्योंकि तुम्हारी अशर्फियों में एक अशर्फी किसी ब्राह्मण की आ मिली थी।' यह स्वप्न संन्यासी को बताकर

विनीतमति ने फिर दस करोड़ अशर्फियां दान में दे दीं। तीसरी रात फिर राजा ने स्वप्नमाणव रीति से स्वप्न देखा और भोर होने पर संन्यासी से कहा, 'आचार्य, आज रात फिर मैं स्वर्ग में गया। फिर वही रेत मुझे खाने को दिया गया। जब मैंने उन दंडधारियों से इसका कारण पूछा, तो उन्होंने उत्तर दिया, "राजन! तुम्हारा यह दान भी निष्फल हो गया, क्योंकि तुम्हारे राज्य में आज किसी वन में चोरों ने एक ब्राह्मण का धन लूटकर उसे मार डाला है और तुमने उसकी रक्षा नहीं की। अब तुम इसका दुगना दान करो।" संन्यासी को यह स्वप्न सुनाकर विनीतमति ने उससे दुगना दान कर दिया। दान करके राजा ने संन्यासी से कहा, 'आचार्य! इस प्रकार के सूक्ष्म धर्म का पालन मुझ-जैसा व्यक्ति कैसे कर सकता है?' यह सुनकर संन्यासी ने उत्तर दिया, 'बुद्धिमान मनुष्यों को धर्म-पालन करने में अपना उत्साह क्षीण नहीं करना चाहिए। अपने धर्म का पालन करनेवाले धैर्यशाली और उत्साह-संपन्न व्यक्तियों की देवता रक्षा करते हैं तथा उन्हें इच्छानुसार फल देते हैं।' इस संबंध में उसने उसे भगवान बुद्ध की वाराह जातक कथा सुनाई :

"प्राचीन काल में विंध्याचल की एक गुफा में बुद्ध के अंश से उत्पन्न कोई वराह रहता था। उसकी एक बंदर से मित्रता थी। वह वराह बड़ा ही बुद्धिमान और अतिथि-पूजक था। एक बार पांच दिन तक लगातार पानी बरसता रहा। पांचवें दिन जब रात में वराह बंदर के साथ सो रहा था, तो गुफा के दरवाजे पर एक शेर अपनी पत्नी तथा बच्चों के साथ आया। शेर ने अपनी शेरनी से कहा, 'भोजन मिले बिना पांच दिन हो गये। सो, आज निश्चित ही भूख से मर जायंगे।' यह सुनकर शेरनी बोली, 'हम सब ही भूख से व्याकुल हैं। हम सब ही मरें, इसकी अपेक्षा यह अच्छा है कि आप सब मेरा मांस खाकर जीवित रहें।' शेर और शेरनी के इस वार्तालाप को गुफा में सोये हुए वराह ने सुना। उसने सोचा कि मुझे अतिथि-सेवा करने का इससे अच्छा और क्या अवसर मिलेगा! सो, मैं अपने इस शरीर से इन अतिथियों के प्राणों की रक्षा करूंगा। यह विचारकर वह गुफा से बाहर निकलकर स्नेहपूर्ण वाणी में शेर से बोला, 'तुम दुखी मत हो। मेरा मांस खाकर तुम सब अपने प्राण बचाओ।' यह सुनकर शेर शेरनी से बोला, 'इसके मांस को पहले बच्चा खायगा, इसके बाद मैं और फिर तुम खाना।' यह क्रम निश्चित हो जाने पर कुछ मांस बच्चे को खिलाकर शेर स्वयं

खाने लगा। शेर के खाते-खाते वराह का शरीर मांस-रहित हो गया, किंतु उसके प्राण न निकले। इसी बीच में शेरनी भूख से पीड़ित होकर मर गई और शेर अपने बच्चे को लेकर कहीं चला गया। भोर होने पर बंदर ने जगकर देखा कि वराह वहां नहीं है। वह बाहर गया और उसकी यह दशा देखकर पूछा, 'मित्र! यह क्या हुआ?' वराह ने सारा हाल उसे सुना दिया। उसे मरणासन्न देखकर बंदर ने पूछा, 'तुम्हारी अंतिम अभिलाषा क्या है, जिसे मैं पूर्ण करूं?' वराह ने कहा, 'मित्र! मैं चाहता हूं कि जो सिंहनी मेरे ही सामने भूख से तड़पकर मर गई, वह फिर जीवित हो जाय और मेरा मांस खाकर तृप्त हो।' वराह के ऐसा कहने पर धर्म ने प्रकट होकर उसे अपने हाथ से स्पर्श किया। छूते ही वह एक मुनि बन गया। धर्म ने उससे कहा, 'मैंने ही शेर का रूप बनाकर तुम्हारे अतिथि-प्रेम की परीक्षा ली थी। तुम उस परीक्षा में उत्तीर्ण हुए। तुमने मुझ धर्म पर विजय पाकर ही मुनि-रूप प्राप्त किया है।' यह सुनकर वराह ने उससे कहा, 'मैं अपने मित्र के बंदर रहते हुए मुनि बनने को तैयार नहीं।' तब धर्म ने बंदर को भी मुनि बना दिया। इसके बाद धर्म अंतर्धान हो गया और वह मरी हुई शेरनी भी वहां दिखाई न दी। यह कथा सुनाकर रत्नचंद्रमति ने कहा, 'हे राजन! उत्साहपूर्वक साहस करके धर्मानुकूल काम करनेवालों की इच्छाओं को देवता स्वयं सिद्ध करते हैं।'

"संन्यासी के ये वचन सुनकर दानवीर राजा विनीतमति ने फिर रात्रि में स्वप्न-माणव का प्रयोग किया। प्रातःकाल उसने उठकर संन्यासी से कहा, 'आचार्य! रात मैंने स्वप्न में देखा कि कोई दिव्य-मूर्ति मुझसे कह रहा है कि पुत्र! अब तुम निष्पाप हो और बौद्ध धर्म ग्रहण करो।' यह निवेदन करके राजा विनीतमति ने शुभ दिन में संन्यासी की आज्ञा से बौद्ध मत ग्रहण कर लिया। तब से लेकर विनीत-मति खूब दान-पुण्य करता हुआ सुख से रहने लगा। इसके बाद एक दिन कोई याचक उससे कहने लगा, 'देव! मैं पाटलिपुत्र का एक ब्राह्मण हूं। मेरी यज्ञशाला में एक ब्रह्म-राक्षस रहता है और मेरे यज्ञ में विघ्न उत्पन्न करता है। सो आप मुझे अपनी विघ्ननाशक अंगूठी दे दीजिये।' उसके मांगने पर विनीतमति ने अविचल भाव से उसे वह अंगूठी दे दी। कुछ दिन बाद उत्तरापथ से एक राजपुत्र उसके यहां आया। उसने कहा, 'मैं इंदुकलश नाम का राजपुत्र हूं। मेरे भाई कनककलश ने राज्य का मेरा भाग भी हड़प लिया है और मुझे देश से निकाल

दिया है। मैं आपके पास याचक बनकर आया हूं। मैं जानता हूं कि आपके पास कोई भी याचक विमुख होकर नहीं जाता। सो, कृपया आप मुझे अपना घोड़ा और तलवार दे दीजिये, जिनके प्रभाव से मैं अपने भाई को जीतकर उससे अपना राज्य ले लूं।' उसकी इस याचना को सुनकर यद्यपि उसके मंत्रियों ने नीचे मुंह करने ऊंचे सांस लेने शुरू कर दिये, किंतु विनीतमति ने बिना किसी हिचकिचाहट के उसे अपना घोड़ा और तलवार दे दिये। इन दोनों के प्रभाव से इंदुकलश ने अपने भाई कनककलश को जीत लिया और उसका राज्य छीनकर उसे राज्य से निकाल दिया। राज्यहीन होकर कनककलश विनीतमति की नगरी में आ गया और दुखी होकर अग्नि-प्रवेश करके मरने के लिए उद्यत हुआ। यह जानकर विनीतमति ने कनककलश को बुलाकर कहा, 'मेरे अपराध से ही तुम इस अवस्था को प्राप्त हुए हो। इसलिए तुम मेरा राज्य ले लो। मैं संतानरहित हूं, तुम्हें अपना पुत्र बनाकर मैं अपना राज्य सौंप दूंगा।' और उसे अपना राज्य देकर तथा स्वयं अपनी दोनों पत्नियों के साथ तप करने के लिए वन में चला गया। वन में उसके धैर्य की परीक्षा लेने के लिए विधाता ने एक निर्जल और निर्जन मरुभूमि बना दी। बहुत थककर और प्यास से व्याकुल होकर वे सब एक जगह बैठ गये और सो गये। जगकर वहां उन्होंने नंदन वन की तरह सुंदर बाग देखा, जिसमें अनेक फूलवाले वृक्ष थे। यह देखकर राजा बहुत अचंभे में पड़ा। उसी समय आकाश में हंस का रूप धारण किये हुए दो सिद्ध जा रहे थे। उन्होंने राजा से कहा, 'राजन! यह आपके त्याग और दान का प्रभाव है। आप इस बाग में स्वच्छंदतापूर्वक रहिये।' सिद्धों के इस वचन को सुनकर विनीतमति वहीं रहकर अपनी पत्नियों-सहित तपस्या करने लगा। एक दिन वह अपने आश्रम के पास एक शिला पर बैठा हुआ था। तभी उसने देखा कि एक पुरुष आत्महत्या करने के लिए उद्यत है। वह उसके पास गया और उसके मरने का कारण पूछा। वह पुरुष बोला, 'मैं सोमदेश का निवासी, नागशूर का पुत्र सोमशूर हूं। मेरे पिता ने मुझे खूब यत्न से धर्म-शास्त्रों का अध्ययन कराया था, किंतु फिर भी मैं दुष्ट संगति के कारण चोरी करने लगा। एक दिन चोरी करते हुए मुझे सिपाहियों ने पकड़ लिया और मुझे प्राणदंड मिला। जब वधिक मुझे मारने के लिए एक स्थान पर ले गये, तो वहां अचानक राजा का एक हाथी पागल होकर लोगों को मारता हुआ आ गया। उसे देखकर वधिक मुझे वहीं

छोड़कर भाग गये और मैं भी वहां से भाग आया। इसी बीच मैंने सुना कि मेरे पिता भी मेरे प्राणदंड की बात सुनकर शोक से मर गये और मेरी माता भी उनके साथ सती हो गईं। मैं दुखी होकर इधर-उधर घूमता हुआ इस वन में आ गया। यहां अचानक किसी दिव्य स्त्री ने दर्शन देकर मुझसे कहा, "बेटा! शोक मत करो! तुम राजर्षि विनीतमति के आश्रम में जाओ। वहां जाकर तुम्हें ज्ञान प्राप्त होगा और तुम्हारा पाप नष्ट हो जायगा।" यह कहकर वह स्त्री अंतर्धान हो गई और मैं उस राजर्षि को ढूंढ़ता हुआ यहां आया, परंतु उन्हें न पाकर मरने जा रहा था कि आपने मुझे देखकर मरने से रोक लिया।' यह सुनकर विनीतमति सोमशूर को अपनी कुटी में ले गया और अपना परिचय देकर उसका अतिथि-सत्कार किया। भोजन के बाद अनेक धार्मिक कथाएं सुनाकर विनीतमति ने कहा, 'हे वत्स! अज्ञान से मनुष्य के दोनों लोक बिगड़ जाते हैं और मनुष्य की बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है।' इस संबंध में एक शास्त्रीय कथा सुनाकर राजर्षि ने उसे एक दानवीर की यह कथा सुनाई :

"प्राचीन काल में कुरुक्षेत्र में मलयप्रभ नाम का राजा था। कभी उसके राज्य में दुर्भिक्ष पड़ा। उसने अपनी प्रजा को खूब धन दिया, परंतु बाद में मंत्रियों ने उसे रोक दिया। इसपर उसके पुत्र इंदुप्रभ ने उससे कहा, 'आप इन दुष्ट मंत्रियों के कहने से प्रजा को धन देना बंद न करें, क्योंकि प्रजा के लिए आप ही कल्पवृक्ष हैं और प्रजा ही आपके लिए कामधेनु है।' राजा मंत्रियों के वश में था। उसने कहा, 'मेरे पास इतना अक्षय धन नहीं है कि प्रजा को हमेशा बांटता रहूं। यदि ऐसी ही बात है, तो तुम ही प्रजा के लिए क्यों नहीं कल्पवृक्ष बन जाते?' पिता की इस बात को सुनकर इंदुप्रभ ने प्रतिज्ञा की—'या तो मैं प्रजा के लिए कल्पवृक्ष बन जाऊंगा, या तप करते हुए अपने प्राण दे दूंगा।' यह प्रतिज्ञा करके वह तपोवन में चला गया और वहां उसने इतनी कठोर तपस्या की कि इंद्रदेव ने प्रसन्न होकर प्रजा का दुर्भिक्ष दूर कर दिया। उसने इंद्र से यह वरदान मांगा—'मैं अपने नगर में कल्पवृक्ष बन जाऊं।' ऐसा ही हुआ और उस राजपुत्र ने कल्पवृक्ष बनकर प्रजा को सुखी और समृद्ध बना दिया। कुछ समय के बाद इंद्र ने आकर उसे लोभ दिखाते हुए स्वर्ग चलने को कहा। कल्पवृक्ष-रूपी राजपुत्र ने इंद्र को जवाब दिया, 'मैं इतने याचकों की आशा को भंग करके स्वर्ग नहीं जाना चाहता।' फिर इंद्र ने कहा, 'अच्छा, चलो, अपनी प्रजा को भी ले चलो।' तब कल्पवृक्ष-रूपी राज-

पुत्र ने उत्तर दिया, 'यदि आप मुझसे प्रसन्न हैं तो मेरी प्रजा को स्वर्ग ले जाइये और मुझे परोपकार की सिद्धि के लिए तप करने को छोड़ दीजिये।' उसके ये वचन सुनकर इंद्र सारी प्रजा को स्वर्ग ले गया और वह कल्पवृक्ष के रूप को छोड़कर पुनः राजपुत्र का रूप धारण करके महातप करते-करते बुद्ध-पद को प्राप्त हुआ। विनीतमति ने कहा कि इस प्रकार दानशील व्यक्तियों को सिद्धि प्राप्त होती है।

"इसके बाद विनीतमति ने सोमशूर को क्षमाशीलता की कथा सुनाई :

केदार पर्वत पर शुभनय नाम का महामुनि रहता था। तपस्या करते-करते बहुत कमजोर हो गया था। एक बार उसकी कुटी के पास चोर कुछ सोना गाड़ गये थे। उसे किसी दूसरे आदमी ने निकाल लिया। अगले दिन चोर वहां आये, तो उन्हें सोना न मिला। वे मुनि की कुटी में गये और कहने लगे, 'तूने ही हमारा सोना खोदकर निकाला है। तू ढोंगी है, मुनि का वेष बनाये बैठा है।' मुनि ने उत्तर दिया 'तुम्हारा सोना न तो मैंने देखा है, न चुराया है।' उन चोरों ने उस मुनि को डंडों से खूब पीटा। उसके हाथ-पैर काट डाले और आंखें फोड़ दीं। किंतु फिर भी वह सत्य ही बोलता रहा। तब चोर उसे निर्दोष मानकर और यह सोचकर कि धन किसी अन्य ने चुराया है, वहां से चले गये। सवेरे शेखरज्योति नाम का राजा वहां आया। वह उस मुनि का शिष्य था। उसने सारा हाल जानकर चोरों का पता लगाया। उनके पकड़े जाने पर वह उन्हें लेकर मुनि के पास आया और उन्हें मारने की आज्ञा दी। तब मुनि ने कहा, 'हे राजन! यदि तुम इन चोरों को मरवाओगे, तो मैं भी मर जाऊंगा। मेरा शरीर शस्त्रों ने काटा है, इसमें इनका क्या अपराध? यदि शस्त्र को चलानेवाले ये चोर हैं, तो इन चोरों का प्रेरक क्रोध है, और क्रोध का प्रेरक स्वर्ण-नाश है, स्वर्ण-नाश का प्रेरक मेरा कोई पुराना पाप है और पाप का प्रेरक मेरा अज्ञान है। अब आप इनका उपकार करके इनकी रक्षा करें।' इस प्रकार मुनि के वचनों से प्रबोधित होकर राजा ने उन चोरों को छोड़ दिया और वह मुनि भी क्षमा के प्रभाव से अक्षत-शरीर होकर सिद्धि को प्राप्त हुआ।

"इसके बाद विनीतमति ने सोमशूर को ध्यानशीलता की यह कथा सुनाई :

"प्राचीन समय में कर्णाटक में विजयमाली नाम का एक धनी वैश्य था। उसका मलयमाली नाम का पुत्र था। वह एक दिन अपने पिता के साथ राजा इंदुकेसरी

के दरबार में गया। वहां राजा की पुत्री इंदुयशा को देखकर वह उसको पाने को आतुर हो उठा। घर लौटकर उसने खाना-पीना छोड़ दिया और दिन-रात उसकी चिंता में रहने लगा। धीरे-धीरे वह बड़ा कमजोर और पीला पड़ गया। गूंगे की तरह वह कुछ भी न बोलता था। एक दिन उसका परम मित्र मंथरक नाम का चित्रकार एकांत में उसके पास आया और उससे इस विषाद का कारण पूछा। मलयमाली ने उसे सब हाल बता दिया। चित्रकार ने उसे बहुत समझाया कि कहां तुम और कहां वह राजपुत्री! तुम्हारा मिलन असंभव है, किंतु वह न माना। अंत में उस चित्रकार ने चित्रपट पर उस राजपुत्री का चित्र बनाकर उसे दे दिया। उस वैश्य-पुत्र ने भी उस चित्र को ही राजपुत्री समझ लिया। वह उसमें इतना तन्मय हो गया कि उसकी सारी क्रियाएं उस ही के लिए होने लगीं। एक बार रात में चंद्रोदय होने पर मलयमाली उस चित्र को लेकर बाग में विहार करने चला गया। वहां उस चित्र को एक पेड़ के नीचे रखकर वह उसके लिए फूल चुनने लगा। तभी विनयज्योति नाम के एक मुनि ने आकाश से उसके मोह को देखा। उस वैश्यपुत्र को उस मोह से छुड़ाने की इच्छा करके वह पृथ्वी पर उतरा और अपनी माया से उस पट पर एक सजीव जैसे काले सर्प की तस्वीर बनाकर स्वयं छिपकर बैठ गया। जब मलयमाली फूल चुनकर लौटा, तो काले सांप को देखकर उसने सोचा कि विधाता ने इसकी रक्षा के लिए यह काला सांप भेजा है। यह सोचकर उसने उस मूर्ति को सजाया और ज्यों ही उसका आलिंगन करने लगा, त्यों ही वह मुनि प्रकट होकर उससे बोला, 'इस राजपुत्री को तो काले सांप ने काट लिया है और यह मर गई है।' यह सुनकर मलयमाली विलाप करने लगा और मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। कुछ देर बाद होश में आने पर वह आत्महत्या करने के लिए एक पेड़ पर चढ़ गया और ऊपर से कूद पड़ा। मुनि ने तत्काल आकर उसे बीच में ही हाथों में संभाल लिया और कहा, 'अरे मूर्ख! क्या तू नहीं जानता कि वह राजपुत्री अपने महल में है। यह तो उसका चित्र है, फिर उसे सांप कैसे काटेगा! यह तेरा भ्रम है। तू इतनी तत्परता से तत्त्व की खोज क्यों नहीं करता, जिससे तेरे सारे दुख दूर हो जायंगे और तू योग्य बन जायेगा?' मुनि के इस उपदेश से मलयमाली का मोह दूर हो गया और फिर मुनि उसे बुद्ध-ज्ञान देकर अंतर्धान हो गये। वह मलयमाली भी तपस्या के प्रभाव से बुद्धत्व को प्राप्त हुआ। इस प्रकार ध्यानशाली व्यक्तियों का असत्य ध्यान भी सत्य हो जाता है।

"ध्यान-परायणता की कथा के बाद विनीतमति ने सोमशूर को बुद्धिमत्ता की यह कथा सुनाई :

"प्राचीन काल में सिंहल द्वीप में सिंहविक्रम नाम का एक चोर था। उसने आजन्म दूसरों का धन चुराकर ही अपने शरीर का पोषण किया था। जब वह बूढ़ा हुआ, तो उसने सोचा कि परलोक में मेरी रक्षा कौन करेगा ? किसकी शरण में जाऊं ? यदि विष्णु भगवान या शिव की शरण में जाता हूं, तो वहां मुझे कौन पूछेगा—वहां बड़ें-बड़े मुनियों और देवताओं की भी पूछ नहीं होती। सो मैं तो सब प्राणियों के पुण्य और पाप को लिखनेवाले चित्रगुप्त की ही शरण में जाऊंगा। वही अपनी युक्ति से मेरी रक्षा करेगा। यह सोचकर चित्रगुप्त को प्रसन्न करने के लिए उसने प्रति दिन एक ब्राह्मण को अपने घर भोजन कराना प्रारंभ कर दिया। एक दिन चित्रगुप्त उसकी भक्ति की परीक्षा लेने के लिए स्वयं ब्राह्मण का वेष बनाकर उसके घर आया। चोर ने उस अतिथि ब्राह्मण की खूब पूजा की, भोजन कराकर दक्षिणा दी और उससे कहा, 'तुम मुझे यह आशीर्वाद दो कि चित्रगुप्त मेरे ऊपर प्रसन्न हों।' ब्राह्मण वेषधारी चित्रगुप्त ने उससे कहा, 'तुम विष्णु, शिव, इंद्र आदि देवताओं को छोड़कर चित्रगुप्त की ही क्यों पूजा करते हो ?' चोर ने उत्तर दिया, 'मुझे अन्य देवताओं से कुछ प्रयोजन नहीं, मैं तो केवल चित्रगुप्त को प्रसन्न करना चाहता हूं।' तब ब्राह्मण-रूपधारी चित्रगुप्त ने कहा, 'यदि तुम अपनी पत्नी मुझे दे दो, तो मैं यह आशीर्वाद दे दूंगा।' सिंहविक्रम ने प्रसन्न होकर कहा, 'अभीष्ट देवता की प्रसन्नता के लिए स्त्री क्या चीज है ! मैंने तुम्हें अपनी स्त्री दे दी।' यह सुनकर चित्रगुप्त ने उसे दर्शन देकर कहा, 'मैं तुम पर प्रसन्न हूं। बोलो, तुम क्या चाहते ?' सिंहविक्रम ने कहा, भगवन ! कोई ऐसा उपाय बताइये जिससे मेरी मृत्यु न हो !' चित्रगुप्त ने उत्तर दिया, 'मृत्यु से कोई नहीं बच सकता, किंतु मैं तुम्हें एक उपाय बताता हूं। तरंगिणी नामक नदी के उस पार श्वेतमुनि का आश्रम है। उस तपोवन में मृत्यु का प्रवेश नहीं हो सकता। मैं तुम्हें वहां ले चलता हूं। तुम उस तपोवन से नदी के इस पार कभी मत आना, यदि आये, तो तुम्हारी मृत्यु हो जायेगी। यदि तुम्हारी कभी मृत्यु हो भी गई, तो परलोक में मैं तुम्हारी रक्षा कर लूंगा।' यह कहकर चित्रगुप्त ने सिंहविक्रम को श्वेतमुनि के आश्रम में पहुंचा दिया और स्वयं अदृश्य हो गया। सिंहविक्रम वहां बहुत समय तक रहा। जब काल ने उसे नदी पार लाने का कोई और उपाय न देखा, तो

उसने माया से एक सुंदरी स्त्री बनाकर सिंहविक्रम के पास भेजी। उस स्त्री ने वहां जाकर सिंहविक्रम को अपनी काम-चेष्टाओं से वश में कर लिया। कुछ समय बीतने पर वह स्त्री अपने बंधु-बांधवों से मिलने के बहाने नदी के पार उतरने लगी। सिंहविक्रम नदी के किनारे पर खड़ा होकर उसे देखता रहा। वह स्त्री नदी के बीच में जाकर स्वयं गिर पड़ी और जल-प्रवाह में पड़कर बहने लगी और चिल्लाने लगी, 'आर्यपुत्र! मैं मर रही हूं। मुझे बचाओ!' यह देखकर सिंहविक्रम उस स्त्री को बचाने के लिए नदी में कूद पड़ा। वह स्त्री उसे नदी के उस पार बहाकर ले गई। सिंहविक्रम के इस किनारे पर आते ही काल ने उसके गले में जाल डाल दिया और उसे यमराज की सभा में ले गया। उसे देखकर पूर्व-परिचित चित्रगुप्त ने उससे एकांत में कहा, 'यदि तुमसे यमराज यह पूछें कि तुम पहले स्वर्ग भोगना चाहते हो या नरक, तो कहना कि मैं पहले स्वर्ग में जाना चाहता हूं और स्वर्ग में जाकर वहां स्थिर रहने के लिए खूब पुण्य करना। जब वहां स्थिर हो जाओ, तो तपस्या से अपने पापों को नष्ट कर देना। इस प्रकार तुम्हें नरक न भोगना पड़ेगा।' चित्रगुप्त के ये वचन सुनकर सिंहविक्रम डरा हुआ-सा चुपचाप खड़ा रहा। क्षण भर के पश्चात धर्मराज ने आकर चित्रगुप्त से पूछा, 'क्या इस चोर का कुछ पुण्यांश भी है।' चित्रगुप्त ने कहा, 'हां, यह बहुत अतिथि-सेवी था। एक बार इसने अपने अभीष्ट-देव की सिद्धि के लिए एक अतिथि को अपनी पत्नी तक दे दी थी। सो, हे प्रभो! एक वर्ष तक स्वर्ग भोगने का इसका पुण्य है।' यह सुनकर धर्मराज ने सिंहविक्रम की ओर देखकर कहा, 'बताओ, तुम पहले शुभ कर्मों का फल भोगना चाहते हो या अशुभ कर्मों का।' सिंहविक्रम ने पहले शुभ कर्मों का फल भोगने की याचना की। अतः उसे स्वर्ग में भेज दिया गया। वहां उसने चित्रगुप्त के कथनानुसार खूब स्नान, जप, तप, व्रत, पुण्य आदि किये, जिससे नरक के दूत उसका मुंह भी न देख सके। वहां शंकर की आराधना करके उसे ज्ञान की प्राप्ति हुई और उसके सारे पाप नष्ट हो गये।

"यह कथा सुनाकर विनीतमति ने कहा, 'इस प्रकार बुद्धि के बल से चोर भी सिद्धि प्राप्त कर लेते हैं। हे वत्स! बुद्धजी द्वारा बताये हुए दान, शील, क्षमा, धैर्य, ध्यान और बुद्धि-गुणों से युक्त मनुष्य संसार-रूपी सागर को पार करते हैं।'

"इस प्रकार बहुत से उपदेश देकर विनीतमति ने सोमशूर को बुद्ध-मत में दीक्षित कर लिया। इसके बाद सोमशूर विनीतमति को अपना गुरु बनाकर वहीं

एक कुटी में रहने लगा। कुछ काल योग-साधना करते हुए गुरु-शिष्य दोनों परम बोधि-पद को प्राप्त हुए। इसी बीच में इंदुकलश ने विनीतमति के द्वारा दिये हुए अश्व और तलवार के प्रभाव से कनककलश से विनीतमति का भी राज्य छीनकर उसे वहां से भी निकाल दिया। तब दो-तीन मंत्रियों को साथ लेकर कनककलश इधर-उधर घूमता हुआ विनीतमति के आश्रम में आ गया। भूख और प्यास से व्याकुल होकर वह जैसे ही आश्रम में प्रविष्ट हुआ, इंद्र ने विनीतमति की परीक्षा लेने के लिए उसके सारे आश्रम को सुखाकर मरुभूमि में परिवर्तित कर दिया। यह देखकर विनीतमति बड़े आश्चर्य में पड़ गया। जब उसने भूख से व्याकुल कनककलश को मंत्रियों-सहित अतिथि रूप में आते देखा, तो पहले तो उसने उससे सारा वृत्तांत पूछा और फिर सत्कार करके कहा, 'यहां से आधे कोस की दूरी पर एक गड्ढे में मृग मरा हुआ पड़ा है, तुम सब वहां जाकर उसे भूनकर खा लो।' यह कहकर वह बोधिसत्व-योग के बल से स्वयं मृग बनकर उस गड्ढे में जा गिरा और मर गया। तब धीरे-धीरे कनककलश आदि वहां आये और उन्होंने उस मरे हुए मृग को भूनकर खा लिया। इतने में आश्रम को नष्ट हुआ देख और अपने पति को वहां न पाकर विनीतमति की दोनों पत्नियां विह्वल होकर सोमशूर के पास पहुंची और उसे सारा हाल सुनाया। सोमशूर ने योगबल से सारी घटना गुरु-पत्नियों को बता दी। तब वे सब उसी गड्ढे पर पहुंचे, जहां मृग-रूप विनीतमति की हड्डियां पड़ी हुई थीं। वे दोनों स्त्रियां अपने पति की हड्डियों के साथ चिता में भस्म हो गईं। यह देखकर कनककलश भी मंत्रियों के सहित अपने को इस पाप का भागी जानकर अग्नि में जलकर मर गया। ऐसा होने पर सोमशूर भी अपने गुरु का वियोग सहन न करके ज्यों ही अपनी कुटी में योगबल से प्राण त्यागने को उद्यत हुआ, त्यों ही इंद्र ने दर्शन देकर उससे कहा, 'तुम प्राण मत दो। मैंने तुम्हारे गुरु की परीक्षा लेने के लिए ही यह सब माया रची थी।'

"ऐसा कहकर इंद्र ने वहां जाकर उन मृत व्यक्तियों की हड्डियों पर अमृत छिड़क दिया और वे सब जीवित हो गये। उस समय ब्रह्मा, विष्णु आदि देवताओं ने वहां आकर उन्हें दिव्य वरदान दिये। इस प्रकार जलकर मरे हुए व्यक्तियों का भी आपस में पुनर्मिलन हो जाता है, फिर जीवित व्यक्तियों का तो कहना ही क्या! सो, तुम प्राण मत त्यागो। तुम्हारा मृगांकदत्त से मिलन अवश्य होगा।"

गुणाकर ने कहा, "वृद्ध तापसी के मुंह से यह कथा सुनकर मैं मरने से विरत

होकर घूमता-घूमता इस वन में आ गया। यहां बलि के लिए ढूंढ़ते हुए इन भीलों ने दैवयोग से मुझे पा लिया। यहां दो मंत्रियों के साथ आपके दर्शन हुए।"

गुणाकर से उसका वृत्तांत सुनकर मृगांकदत्त बहुत प्रसन्न हुआ और शशाकवती की प्राप्ति के लिए उज्जयनी में जाने की तथा शेष मित्रों को प्राप्त करने की कामना से कुछ दिन तक भीलराज के घर में रहा।

: ६ :

## मंत्री विचित्रकथ का वृत्तांत

जब गुणाकर के घाव ठीक हो गये, तब अपने कार्य में मायावटु की सहायता की बात तय करके एक शुभ दिन मृगांकदत्त ने शशांकवती की प्राप्ति के लिए उज्जयनी की ओर प्रस्थान किया। मंत्रियों के साथ चलता हुआ एक दिन वह विंध्य वन में जा पहुंचा। वहां उसने देखा कि एक पेड़ के नीचे एक आदमी मुंह ढककर सोया हुआ है। जब राजा ने उसे जगाया, तो देखा कि वह तो उसका मंत्री विचित्रकथ है। विचित्रकथ ने भी संभ्रमपूर्वक उठकर राजा के चरणस्पर्श किये। तब मृगांकदत्त ने उसे अपना वृत्तांत सुनाकर उसका हाल पूछा। विचित्रकथ ने कहा, "हे राजन! सर्प के शाप से आप सब लोगों से बिछुड़कर मैं अकेला घूमता हुआ एक निर्जन वन में पहुंच गया। वहां मैंने एक सुंदर नगर देखा। उसके अंदर से एक दिव्य पुरुष दो स्त्रियों के साथ बाहर निकला। मुझे परेशान देखकर वह सांत्वना देकर मुझे अपने महल के अंदर ले गया। वहां भोजनादि के उपरांत मैंने उसका परिचय पूछा और अपना हाल बताकर कहा, 'मैं अपने स्वामी से बिछुड़कर यहां शरीर त्यागने के लिए आया हूं।' तब उस व्यक्ति ने प्रेमपूर्वक मुझसे कहा, 'मैं यक्ष हूं और ये दोनों मेरी पत्नियां हैं। तुम दुखी मत हो। तुम्हारा अपने स्वामी से वियोग कुछ समय के लिए है। इसके बाद तुम्हारा मिलन अवश्य होगा। संसार में दुख और आपत्तियां सब पर आती हैं, पर उन्हें धैर्यपूर्वक सहना चाहिए। मैंने यक्ष होते हुए अनेक कष्ट उठाये हैं।'

"यह कहकर यक्ष ने मुझे अपनी यह कथा सुनाई :

"त्रिगर्ता नाम की एक सुंदर नगरी थी। उसमें पवित्रधर नाम का एक दरिद्र

किंतु कुलीन ब्राह्मण था। उसने सोचा कि धनवान व्यक्तियों के बीच में रहना ठीक नहीं है। इसलिए किसी एकांत में जाकर यक्षिणी को सिद्ध करना चाहिए।

"यह सोचकर वह वन में चला गया और उसने यक्षिणी को पत्नी रूप में सिद्ध कर लिया। अब वह सौदामिनी नाम की उस पत्नी के साथ सुख से रहने लगा। जब बहुत काल बीतने पर भी उसके कोई संतान न हुई, तो वह बहुत चिंतित हुआ। उसे चिताग्रस्त देखकर यक्षिणी सौदामिनी ने कहा, 'आर्य-पुत्र ! आप चिंता न करें, हमारे पुत्र अवश्य उत्पन्न होगा। इस विषय में तुम्हें एक कथा सुनाती हूं :

" 'दक्षिण दिशा में तमाल वन में पृथूदर नाम का प्रसिद्ध यक्ष रहता है। मैं उसकी एकमात्र पुत्री सौदामिनी हूं। एक दिन मैं अपने पिता के साथ पर्वत पर जाकर अपनी सखी के साथ खेल रही थी। वहां पर अट्टहास नाम का एक यक्ष कुमार भी आगया। उसे देखकर मेरे मन में उसके प्रति प्रेम पैदा हुआ। उसके साथ भी ऐसा ही हुआ। हम यह देखकर और ठीक जोड़ी समझकर पिता ने मेरा विवाह उसके साथ कर दिया। एक दिन मेरी सखी ने आकर मुझसे कहा, "सखि ! यद्यपि यह बात मुझे तुम से नहीं कहनी चाहिए, किंतु सखी-स्नेह के कारण बता रही हूं। आज जब मैं अपने घर लौट रही थी, तो मैंने देखा कि तुम्हारे पति अट्ट-हास को उसके मित्रों ने खेल में यक्षराज कुबेर बना दिया है और स्वयं मंत्री तथा अट्टहास के छोटे भाई दीप्तशिख को कुबेर का पुत्र नड़कूबर बनाकर मनोविनोद कर रहे हैं। इसी समय कुबेर का पुत्र नड़कूबर आकाश में उड़ता हुआ उधर से जा रहा था। यह देखकर वह बड़ा कुपित हुआ और तुम्हारे पति अट्टहास को शाप दिया, 'दुष्ट ! तू कुबेर महाराज का नौकर होकर उनका रूप धारण करके लीला कर रहा है। जा, तू मृत्युलोक में चला जा।' जब अट्टहास ने दुखित होकर उससे कहा, 'प्रभु ! मुझे तो मेरे मित्रों ने लीला के लिए कुबेर बना दिया था, मैंने किसी अधिकार के अभिमान से ऐसा नहीं किया।' तब नड़कूबर ने कहा, 'तू जिस यक्षिणी को प्रेम करता है, वही यक्षिणी तेरी पत्नी बनेगी और तेरा छोटा भाई दीप्तशिख तेरा पुत्र होगा। पुत्र का मुंह देखते ही तेरा शाप तो छूट जायेगा, किंतु तेरा भाई तेरा पुत्र बनकर राज्य करेगा और उसका शाप देर से छूटेगा।' यह कहकर नड़कूबर चला गया और उसके साथ ही तुम्हारा पति अट्ट-

हास भी न जाने कहां चला गया ?" सखी से यह समाचार सुनकर मैं बहुत दुखी हुई। पिताजी से सारा हाल बताया और तुम्हारे मिलने की प्रतीक्षा में समय बिताने लगी। सो, हे स्वामी ! वह अट्टहास तुम ही हो। तुम्हारा-मेरा मिलन इस जन्म में हुआ है। सो नड़कूबर के शाप के अनुसार हमारे पुत्र अवश्य उत्पन्न होगा।'

"सौदामिनी से यह वृत्तांत सुनकर पवित्रधर बहुत प्रसन्न हुआ। कुछ काल के बाद सौदामिनी से पवित्रधर के पुत्र उत्पन्न हुआ। पुत्र का मुंह देखते ही पवित्रधर एकदम दिव्याकृतिवाला अट्टहास यक्ष बन गया। तब वह यक्षिणी से बोला, 'प्रिये ! चलो, हम अपने लोक को चलें।' सौदामिनी ने उत्तर दिया, 'यह पूर्वजन्म का तुम्हारा भाई है और इस जन्म का पुत्र है। यह कैसे जीवित रहेगा ? इसकी क्या व्यवस्था होगी ? इस संबंध में भी तो कुछ सोचना चाहिए।' यह सुनकर अट्टहास ने ध्यान लगाकर देखा और उससे कहा, 'इसी नगरी में देवदर्शन नाम का एक ब्राह्मण है। उसके न तो धन था न ही कोई संतान थी। एक बार पुत्र और धन की प्राप्ति के लिए उसने कठोर तपस्या की, तब भगवान अग्नि ने प्रत्यक्ष होकर उससे कहा, "ब्राह्मण ! तुम्हारे भाग्य में औरस पुत्र तो नहीं है, किंतु कृत्रिम पुत्र तुम्हें मिलेगा और उस ही के साथ तुम्हें लक्ष्मी भी मिलेगी।" अग्नि से इस वरदान को पाकर वह ब्राह्मण पुत्र की प्रतीक्षा कर रहा है। सो, इसे उसे देकर अपने लोक को चलें।'

"ऐसी सलाह करके उस पुत्र को एक स्वर्ण से भरे कलश पर रखकर तथा उसके गले में एक दिव्य रत्नों की माला बांधकर वे उसे रात्रि के समय उस ब्राह्मण के घर रख आये और स्वयं अपने लोक को चले गये। भोर होने पर देवदर्शन ब्राह्मण तथा उसकी पत्नी ने उस पुत्र को पाया। उन्होंने उसे सादर ग्रहण किया और उसका नाम श्रीदर्शन रखा। श्रीदर्शन कुछ ही दिनों में शस्त्र विद्या और शास्त्र विद्या में निपुण हो गया। उसके युवा और समर्थ हो जाने पर उसका पिता देवदर्शन तीर्थ-यात्रा के लिए निकला और प्रयाग में आकर उसका शरीर पूरा हो गया। यह जानकर उसकी स्त्री भी सती हो गई। श्रीदर्शन ने उनकी शास्त्र विधि से सब क्रियाएं कीं। कुछ समय के बाद उसे जुआ खेलने का दुर्गुण लग गया। कुछ ही दिनों में उसकी सारी संपत्ति जुए में चली गई। एक दिन यहां तक नौबत आई कि उसे खाने और पहनने का भी टोटा हो गया। उसने घर से बाहर निकलना बंद कर दिया। तब उसके एक मित्र मुखरक ने आकर उससे कहा, 'तुम इस प्रकार घुट-घुटकर

अपने प्राण क्यों देते हो ? विद्वान होते हुए भी इतना शोक कर रहे हो ? उठो ! धैर्य धारण करके खाओ-पियो । जीवित रहने से मनुष्य के सब काम सिद्ध होते हैं। तुम तो श्रेष्ठ लक्षणोंवाले हो तथा तुम्हारा भविष्य कल्याणकारी है ।' अपने मित्र मुखरक की यह बात सुनकर श्रीदर्शन ने उससे कहा, 'यह ठीक है कि मैं कुलीन और सुलक्षण हूं, किंतु मैं लज्जा के कारण बाहर नहीं निकल सकता । यदि तुम इसी रात को किसी विदेश में जाने से मुझे न रोको, तो मैं भोजन कर सकता हूं।' मुखरक ने उसकी बात मान ली। खाना खाकर श्रीदर्शन को उसके माता-पिता सौदामिनी और अट्टहास ने आकाश से देखा और कहा, 'हे श्रीदर्शन ! देवदर्शन की पत्नी तथा तुम्हारी माता ने अपने घर में जो आभूरण पृथ्वी में गाड़ रखे थे, उन्हें लेकर तुम मालव देश में जाओ, जहां श्रीसेन नाम का राजा राज्य करता है । वहां तुम्हारा कल्याण होगा ।'

"इस आकाशवाणी को सुनकर श्रीदर्शन अपने घर गया और वहां से गड़े हुए आभूषण ले आया । तब वह अपने मित्र मुखरक के साथ मालव देश की ओर चला। बहुत दूर जाकर सायंकाल को वे एक गांव में पहुंचे। थककर उस गांव के पास ही वे एक तालाब के किनारे बैठ गये । वहां उसी क्षण कोई सुंदरी पानी भरनें आई। उसने श्रीदर्शन से कहा, 'आप दोनों यहां विपत्ति में पड़ने के लिए क्यों आये हैं ?' यह सुनकर मुखरक ने उस कन्या से पूछा, 'तुम कौन हो और यह क्या कह रही हो ?' वह कन्या बोली, 'अग्रहार नाम के एक नगर में पद्मगर्भ नाम का वेदों का विद्वान ब्राह्मण था। उसकी स्त्री का नाम शशिकला था। उसके दो संतान पैदा हुईं । एक पुत्र और एक पुत्री । पुत्र का नाम मुखरक और पुत्री का नाम पद्मिष्ठा था। वह पद्मिष्ठा मैं ही हूं । मेरा भाई मुखरक जुए का आदी था, सो वह बचपन में ही घर से निकल गया । उसके शोक में मेरी माता चल बसीं और मेरे दुखी पिता मुझे साथ लेकर मुखरक को ढूंढते हुए इधर-उधर घूमकर भाग्यवश इस गांव में आ गये । यहां वसुभूति नाम का चोर सेनापति रहता है । उस पापी ने मेरे पिता का धन और प्राण दोनों हर लिये तथा मुझे अपने पुत्र सुभूत से विवाह करने के लिए बंदी बना लिया। उसका पुत्र कहीं चोरी करने गया है और अभी तक नहीं लौटा । सो, यदि वह चोर तुम्हें देख लेगा, तो निश्चित ही मार डालेगा। इसलिए शीघ्र भागने का उपाय करो।' यह सुनते ही मुखरक ने उसे पहचान लिया और वे दोनों भाई-बहन माता-पिता के लिए

शोक करने लगे। श्रीदर्शन ने उन दोनों को तसल्ली देकर कहा, 'यह शोक का मौका नहीं है। चोर से बचने का उपाय करो।' तब उन सबने धैर्य रखकर आपस में सलाह की। फिर श्रीदर्शन बीमारी का बहाना बनाकर उस तालाब के किनारे पड़ गया और मुखरक उसके चरण पकड़कर रोता हुआ बैठ गया। पद्मिष्ठा दौड़कर चोरों के स्वामी के पास गई और बोली, 'तालाब के किनारे कोई बीमार राहगीर पड़ा है। दूसरा साथी उसकी सेवा कर रहा है।' यह सुनते ही चोरों के स्वामी ने वहां चोरों को भेजा और उन्होंने वहां जाकर ऐसा ही देखा। उन्होंने मुखरक से पूछा, 'प्यारे! तुम रो क्यों रहे हो?' मुखरक बोला, 'यह मेरा बड़ा भाई है। हम दोनों यात्रा करने के लिए निकले थे। यहां आकर यह अचानक बीमार हो गया। यह अब कहता है, "भाई, मैं अब बचूंगा नहीं। तुम किसी गुणी ब्राह्मण को ले आओ। मैं उसे अपना सर्वस्व दान करके शांति के साथ मर सकूंगा।" सो आप लोग किसी ब्राह्मण को ला दीजिये, जिससे यह मेरा भाई जीते-जी अपने हाथ से दान दे सके।'

"यह सुनकर उन चोरों ने अपने स्वामी से जाकर सारा हाल सुनाया और कहा, 'आप स्वयं जाकर दान क्यों नहीं ले लेते?' वसुभूति ने कहा, 'बिना मारे किसीसे धन लेना हमारे शास्त्र में अन्याय है।' उसके अनुयायियों ने कहा, 'व्यर्थ ही ब्रह्महत्या का पाप लेने से क्या लाभ? भोर तक तो वे दोनों मर ही जायेंगे।' उनकी यह बात ठीक मानकर वसुभूति दान लेने के लिए श्रीदर्शन के पास गया और उसने भी कुछ लंबे-लंबे सांस लेकर दान दे दिया। इसके बाद चोरराज अपने साथियों के साथ लौट गया। रात में सब चोरों के सो जाने पर पद्मिष्ठा श्रीदर्शन और मुखरक के पास गई और वे तीनों वहां से निकलकर मालव देश की ओर चल दिये। चलते-चलते वे लोग एक बीहड़ वन में पहुंचे। रात हो जाने पर भूख और प्यास से व्याकुल होकर वे एक पेड़ के नीचे बैठ गये। इसी समय उन्होंने दूर पर जलती हुई अग्नि की ज्वाला देखी। श्रीदर्शन उसे गांव समझकर उसकी ओर चला। पास पहुंचकर उसने देखा कि वह एक रत्नमय घर है। उस घर के अंदर घुसकर उसने एक दिव्य स्वरूपवाली यक्षिणी को देखा। यक्षिणी ने उसे भूखा जानकर उसे बहुत से दिव्य भोजन दिये, जिन्हें वह पद्मिष्ठा और मुखरक के पास लाया और उन सबने मिलकर खूब खाया-पिया। श्रीदर्शन के इस प्रभाव से संतुष्ट होकर तथा उसे किसी देवता का अंश समझकर मुखरक ने उससे कहा, 'मित्र, मैं

अपनी बहन पद्मिष्ठा को तुम्हें देना चाहता हूं।' श्रीदर्शन ने उसका कहना मान लिया और समय की प्रतीक्षा करने को कहा। भोर होने पर वे वहां से चलकर मालवराज श्रीसेन के नगर में पहुंचे और एक वृद्ध ब्राह्मणी के घर जाकर ठहरे। वहां बात-चीत के प्रसंग में उस ब्राह्मणी को उद्विग्न देखकर श्रीदर्शन ने उससे उसकी परेशानी का कारण पूछा। उसने कहा, 'मेरा नाम यशस्वती है। मेरा पति सत्यव्रत इस राजा का नौकर था। उसके मर जाने पर राजा मुझे मेरे पति के वेतन का चतुर्थांश देने लगा। अब राजा राजयक्ष्मा से पीड़ित है। सारी औषधियां व्यर्थ हो चुकी हैं। एक मंत्रवेत्ता ने राजा के सामने यह प्रतिज्ञा की कि यदि मुझे कोई वीर पुरुष सहायक मिल जाये, तो मैं बेताल की सिद्धि करके इस रोग को दूर कर सकता हूं, किंतु उसे अभी तक कोई वीर सहायक नहीं मिला है। मैं इसीलिए इतनी बेचैन हूं।' श्रीदर्शन ने कहा, 'मैं उस तांत्रिक का सहायक बनने को तैयार हूं।' इस पर वह ब्राह्मणी श्रीदर्शन को राजा के पास ले गई। राजा ने उसे देखते ही कहा, 'वीर, मेरा हृदय कहता है कि तुम्हारे प्रयत्न से मेरा रोग दूर होगा। सो तुम तांत्रिक की सहायता करो।' उसने मंत्रवेत्ता को बुलाकर श्रीदर्शन का उससे परिचय करा दिया। मंत्रवेत्ता ने श्रीदर्शन से कहा, 'आज ही कृष्ण-चतुर्दशी को रात्रि में मैं श्मशान में बेताल की सिद्धि करूंगा। तुम मेरे पास वहीं आ जाना।' यह कहकर मंत्रवेत्ता चला गया। श्रीदर्शन रात के समय तलवार हाथ में लेकर श्मशान में पहुंचा और मंत्रसाधक से पूछा, 'मुझे क्या करना है?' मंत्रसाधक ने उससे कहा, 'यहां से आध कोस की दूरी पर पश्चिम दिशा में शीशम का एक पेड़ है। उसके नीचे एक मुर्दा पड़ा हुआ है। तुम उसे यहां ले आओ।' श्रीदर्शन ने वहां जाकर देखा कि उस मुर्दे को कोई दूसरा आदमी उठाकर लिये जा रहा है। उसने दौड़कर वह मुर्दा उससे छीन लिया। दूसरे आदमी ने कहा, 'यह मेरा मित्र है। मैं इसे तुम्हें नहीं दूंगा।' तब दोनों उस मुर्दे को अपनी-अपनी ओर खींचने लगे। इतने में मुर्दे में प्रविष्ट हुए बेताल ने खूब भयंकर आवाज की, जिससे डरकर दूसरे आदमी का हृदय फट गया। श्रीदर्शन उस शव को लेकर चल दिया। तभी उस मरे हुए पुरुष के शरीर में घुसकर दूसरा बेताल श्रीदर्शन को उस शव को ले जाने से रोकता हुआ बोला, 'ठहरो! मेरे मित्र को लेकर कहां जाते हो?' श्रीदर्शन ने कहा, 'यह मेरा मित्र है, तुम्हारा नहीं।' बेताल ने कहा, 'नहीं, यह मेरा मित्र है, इस विषय में चाहो तो तुम इसीसे पूछ लो।' जब श्रीदर्शन ने उस शव से पूछा, तो

वह कहने लगा, 'जो कोई मुझे खाने को देगा, मैं उसीका मित्र हूं और वही मुझे अपने साथ ले जा सकता है।' श्रीदर्शन ने उसे भोजन देने का वचन दिया और उस दूसरे व्यक्ति पर तलवार से प्रहार किया। वह दूसरा बेताल उस शव के सहित तत्काल अंतर्धान हो यगा। तभी श्रीदर्शन के कंधे पर के उस शव ने उससे खाने को मांगा। श्रीदर्शन ने अपना मांस काटकर उसे दे दिया। उसके इस साहस से प्रसन्न होकर बेताल ने उससे कहा, 'मैं तुमसे प्रसन्न हूं। तुम्हारे शरीर का घाव ठीक हो जायगा। अब तुम मुझे वहां ले चलो। इससे तुम्हें ही सिद्धि मिलेगी, क्योंकि उस मंत्रसाधक तपस्वी में साहस नहीं है, वह तो नष्ट हो जायगा।' यह सुनकर श्रीदर्शन ने उस मुर्दे को ले जाकर मंत्रसाधक के सामने रख दिया। मंत्रसाधक उस मुर्दे की छाती पर बैठकर उसके मुंह में आग जलाकर हवन करने लगा। क्षण भर के बाद जब उस शव के मुंह से तीव्र ज्वाला निकलने लगी, तो साधक डर-कर कुछ पीछे हट गया। उसे साहसहीन देखकर बेताल उसे निगल गया। यह देखकर श्रीदर्शन तलवार लेकर ज्यों ही उस शव की ओर दौड़ा, बेताल उससे बोला, 'हे श्रीदर्शन! मैं तुम्हारे धैर्य और साहस से प्रसन्न हूं। तुम मेरे मुख से उत्पन्न हुई इन सरसों को ले लो। इनको सिर से बांधने पर तथा हाथ में लेने पर राजा निरोग हो जायगा।'

"श्रीदर्शन ने ऐसा ही किया और राजा स्वस्थ हो गया। इससे संतुष्ट होकर निस्संतान राजा ने श्रीदर्शन को अपना पुत्र मान लिया और उसे राज्य सिंहासन पर बैठा दिया। श्रीदर्शन ने प्रमिष्ठा के साथ विवाह कर लिया और मुखरक के साथ राज्य का पालन करता हुआ सुख से रहने लगा।

"कुछ समय के बाद एक दिन उपेंद्रशक्ति नामक एक वैश्य ने समुद्र के किनारे से आकर रत्नों से बनी हुई गणेशजी की मूर्ति श्रीदर्शन को दी। उस मूर्ति को अमूल्य जानकर युवराज ने भक्तिपूर्वक बड़े समारोह के साथ उसकी प्रतिष्ठा की। उसकी भक्ति से प्रसन्न होकर गणेशजी ने अपने गणों को आज्ञा दी, 'मेरे प्रसाद से राजा श्रीदर्शन समस्त पृथ्वी का सम्राट होगा। समुद्र के पार प्रसिद्ध एक हंस-द्वीप है। वहां के राजा अनंगोदय की पुत्री अनंगमंजरी स्त्रियों में रत्न की भांति है। उस कन्या ने भी योग्य पति की प्राप्ति के लिए मेरी बड़ी भक्ति की है। सो मैं श्रीदर्शन का विवाह उसके साथ करूंगा। इसलिए तुम श्रीदर्शन को वहां ले जाकर एक-दूसरे की मुलाकात करा दो, फिर शीघ्र ही यहां ले आओ। विवाह बाद

में होता रहेगा, क्योंकि उसके होने का अभी समय नहीं आया है।'

"गणेशजी की आज्ञा पाकर उनके गण सोये हुए श्रीदर्शन को अपनी सिद्धि के बल से हंसद्वीप में ले गये और वहां सोई हुई अनंगमंजरी की शय्या पर लिटा दिया। दोनों ने जागकर अचरज से एक-दूसरे को देखा। फिर परस्पर एक-दूसरे का परिचय प्राप्त किया और आभूषण बदल लिये। इसके बाद गणों ने उन्हें मोहित करके निद्रा के वशीभूत कर दिया और दोनों के सो जाने पर श्रीदर्शन को उसके घर पहुंचा दिया। भोर होने पर जब श्रीदर्शन ने अपने को स्त्री-आभूषणों में पाया तो सोचने लगा कि यह सत्य है या स्वप्न? कहां हंसद्वीप की राजकुमारी और उसका महल और कहां मैं! किंतु ये आभूषण कहां से आये? अहो! निश्चित ही विधि की लीला विचित्र है!

प्रात:काल उसने राजा श्रीसेन को सारा हाल बता दिया। अब श्रीदर्शन अनंगमंजरी के ध्यान में बेचैन रहने लगा। उधर हंसद्वीप में राजपुत्री अनंगमंजरी भी रात की बातें याद करके तथा अपने शरीर पर-पुरुष के आभूषण देखकर अत्यंत चकित हुई और श्रीदर्शन की प्राप्ति के लिए उत्सुक रहने लगी। उसी समय अचानक उसका पिता अनंगोदय भी उसके कमरे में आ गया और अपनी पुत्री को पुरुष-आभूषणों से युक्त देखकर इसका कारण पूछा। अनंगमंजरी ने सारी घटना अपने पिता को बता दी। यह सुनकर राजा भी अत्यंत विस्मित हुआ और उसने ब्रह्मसोम नाम के सुप्रसिद्ध सिद्ध योगी के पास जाकर इसका भेद पूछा। उस सिद्ध योगी ने ध्यान लगाकर बताया कि तुम्हारी पुत्री तथा श्रीदर्शन पर गणेशजी प्रसन्न हैं। उनकी कृपा से ही इन दोनों का मिलन हुआ है तथा वही तुम्हारी पुत्री के योग्य एकमात्र पति है और गणेशजी के प्रसाद से ही वह समस्त पृथ्वी का सम्राट बनेगा।

"यह सुनकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ। उसने उस सिद्ध योगी से कहा, 'कहां तो मालव देश और कहां हंसद्वीप! दोनों में इतना अंतर है तथा मार्ग भी बड़ा दुर्गम है। सो आप ही इस कठिन काम में मेरे मार्गदर्शक बनिये।' योगी ने उत्तर दिया, 'हां मैं इस काम को सिद्ध कर दूंगा।' यह कहकर वह योगी वहां से अदृश्य हो गया और क्षण भर में राजा श्रीसेन के नगर में जा पहुंचा। वहां श्रीदर्शन के बनाये हुए मंदिर में जाकर गणेशजी को प्रणाम किया और उनकी स्तुति करने लगा। तभी उपेंद्रशक्ति वैश्य का पुत्र महेंद्रशक्ति, जो पागल

होकर इधर-उधर घूमता रहता था, दैवयोग से वहां आ गया और उस योगी को पकड़ने लगा। इस पर उस योगी ने मंत्र पढ़कर उसके एक थप्पड़ मारा, जिससे उसका पागलपन जाता रहा। वह अपने घर चला गया। उसके पिता ने उसकी उन्मत्तता दूर के हो जाने का समाचार पाकर बड़ा आनंद मनाया और उस योगी को बहुत सा धन देना चाहा, किंतु उसने स्वीकार न किया। इसी बीच में यह समाचार पाकर श्रीदर्शन के साथ राजा श्रीसेन भी उस योगी के पास आया और प्रणाम तथा स्तुति करके कहने लगा, 'आपके आने से इस वैश्य-पुत्र का पागलपन दूर हो गया, सो आप मुझ पर भी कृपा कीजिये, जिससे मेरे पुत्र श्रीदर्शन का भी दुख दूर हो जाय।' राजा की यह प्रार्थना सुनकर वह तपस्वी हंसता हुआ बोला, 'हे राजन! मैं इस चोर राजकुमार की क्या इच्छाएं पूरी करूं! यह श्रीदर्शन हंसद्वीप के राजा की पुत्री अनंगमंजरी के हृदय तथा आभूषणों को चुराकर यहां आ बैठा है। तो भी मैं तुम्हारी बात पूरी करूंगा।' यह कहकर वह तपस्वी श्रीदर्शन का हाथ पकड़कर वहां से अंतर्धान हो गया और उसे हंसद्वीप में राजा अनंगोदय के पास ले गया। वह उन्हें देखकर बहुत प्रसन्न हुआ और उसने शुभ लग्न में श्रीदर्शन के साथ अपनी पुत्री अनंगमंजरी का विवाह कर दिया। इसके बाद उस तपस्वी की शक्ति से अपने जमाई को पुत्री-सहित मालव देश पहुंचा दिया। श्रीदर्शन वहां दोनों रानियों के साथ सुख से रहने लगा। कुछ काल के पश्चात राजा श्रीसेन का देहांत हो गया और सारा राज्य श्रीदर्शन को मिल गया। उसने सारी पृथ्वी को जीतकर बड़ा भारी साम्राज्य स्थापित किया। कुछ समय बाद श्रीदर्शन के उन दोनों रानियों से पद्मसेन और अनंगसेन नाम के दो पुत्र उत्पन्न हुए।

"एक दिन राजा श्रीदर्शन अपनी दोनों पत्नियों के साथ अंदर बैठा हुआ था। इतने में बाहर से एक ब्राह्मण के रोने की आवाज़ आई। उसे अंदर बुलाकर श्रीदर्शन ने उसके रोने का कारण पूछा। वह ब्राह्मण बड़े दुख के साथ बोला, 'हे राजन! मेरी जलती हुई अग्नि को अट्टहास करते हुए एक कालमेघ ने नष्ट कर दिया।' यह कहकर वह ब्राह्मण तत्क्षण वहीं अदृश्य हो गया। राजा आश्चर्य से सोचने लगा कि इस ब्राह्मण ने यह क्या बात कही? और यह कहां चला गया? उसी समय उसकी दोनों पत्नियां अचानक रोती हुई मर गईं। उनके वियोग में राजा ने बड़ा विलाप किया और किसी तरह से एक साल बिताया। इसके बाद

अपने दोनों पुत्रों को आधा-आधा राज्य देकर उसने वैराग्य ले लिया और वन में चला गया। वहां तपस्या करता हुआ वह एक दिन किसी बरगद के पेड़ के नीचे जा पहुंचा। अचानक उस पेड़ से दो दिव्य रूपवाली स्त्रियां निकलकर उससे बोलीं, 'हे राजन! आज हमारे फल-मूल स्वीकार करो।' राजा ने उनसे पूछा, 'आप दोनों कौन हैं?' उन्होंने उत्तर दिया, 'आइये, हमारे घर चलिये। वहां हम आपको अपना वृत्तांत बतायेंगीं।' वह उन दोनों के साथ उस पेड़ की खोल में घुस गया। अंदर उसने एक स्वर्णमय नगर देखा। वहां फल-मूल खाकर विश्राम करते समय उन स्त्रियों ने राजा से कहा, 'सुनिये! प्राचीन काल में प्रतिष्ठान देश में कमलगर्भ नाम का एक ब्राह्मण था। उसके दो पत्नियां थीं, एक का नाम पथ्या और दूसरी का नाम बला था। उन तीनों में आपस में बड़ा स्नेह था। जब वे बहुत बूढ़े हो गये, तो उन्होंने ईश्वर से प्रार्थना की कि हम आगामी जन्म में भी परस्पर पति-पत्नी बनें। फिर उन्होंने एक साथ अग्नि में प्रवेश करके शरीर-त्याग किया। आगामी जन्म में कमलगर्भ प्रदीप्ताक्ष नामक यक्ष का पुत्र और अट्टहास का छोटा भाई दीप्तशिख बना और उसकी पथ्या तथा बला नाम की दोनों पत्नियां धूमकेतु नामक यक्ष की पुत्री बनीं, जिनमें से एक का नाम ज्योति-र्लेखा और दूसरी का नाम धूमलेखा था। कुछ काल के बाद यौवन प्राप्त होने पर उन दोनों बहनों ने पति प्राप्त करने के लिए वन में जाकर तप से शिवजी को संतुष्ट किया। शिवजी ने दर्शन देकर उनसे कहा, "तुमने पूर्वजन्म में एक साथ अग्नि में प्रविष्ट होकर, जिसको आगामी जन्म में पति प्राप्त करने की कामना की थी, वह अट्टहास का छोटा भाई दीप्तशिख अपने स्वामी नलकूबर के शाप से पुनः मृत्युलोक में श्रीदर्शन नाम से उत्पन्न हुआ है। सो, तुम भी मर्त्यलोक में जाओ और उसकी पत्नी बनो। तुम्हारा शाप नष्ट हो जाने पर तुम सब पति-पत्नी फिर से यक्ष योनि को प्राप्त होगे।" शिवजी के इस आदेश के अनुसार वे दोनों पद्मिष्ठा और अनंगमंजरी नाम की यक्ष-कन्याएं बन गईं और उन्होंने श्रीदर्शन को अपना पति बनाया। जब अट्टहास ने ब्राह्मण का रूप धारण करके युक्ति से उन्हें अपने पूर्वजन्म का स्मरण दिला दिया, तो वे उस शरीर को छोड़कर पुनः यक्षिणी बन गईं। वे दोनों हम ही हैं और आप दीप्तशिख हैं। सौभाग्य से हम सबका फिर से पति-पत्नी रूप में मिलन हुआ है।'

"उन दोनों स्त्रियों की बात सुनकर श्रीदर्शन भी पूर्वजन्म को याद करके दीप्त-

शिख नाम का यक्ष हो गया और अपनी दोनों यक्षिणियों को पाकर बहुत प्रसन्न हुआ।

"यह कथा सुनाकर यक्ष ने मुझसे कहा, 'हे विचित्रकथ ! वह यक्ष मैं ही हूं और ये दोनों ज्योतिर्लेखा और धूमलेखा मेरी पत्नियां हैं। इस प्रकार मुझ-जैसे देववंश में उत्पन्न हुए प्राणियों को भी इतने सुख-दुख भोगने पड़ते हैं, तब मनुष्यों का तो कहना ही क्या ! सो, तुम्हारा भी अपने स्वामी से अवश्य मिलन होगा। तुम दुखी मत हो।' तब से मैं उस यक्ष के साथ रहने लगा और आज यह जानकर कि आप सब यहां आये हैं, वह यक्ष मुझे आपके बीच में रखकर अपने निवास स्थान कैलास को चला गया है। अब मैं आपके सामने हूं और आज तक की यह मेरी कथा है।"

यह सब सुनकर मृगांकदत्त बहुत प्रसन्न हुआ। उसने वह रात वहीं बिताई। अगले दिन सवेरे अपने शेष साथियों को ढूंढ़ने तथा शशांकवती को प्राप्त करने की आशा में वह उज्जयनी की ओर चल दिया।

: ७ :

# शीलधर की कथा

चलते-चलते मृगांकदत्त अपने साथियों के साथ विंध्याचल के वन में एक तालाब के किनारे पहुंचा। वहां स्नान करके उन्होंने फल खाये। तभी उन्होंने एक लताकुंज में दो व्यक्तियों को बात-चीत करते हुए सुना। वहां जाकर उसने देखा कि एक हाथी एक अंधे पुरुष को सांत्वना दे रहा है और अच्छे-अच्छे फल लाकर खिला रहा है। यह देखकर उनको बड़ा आश्चर्य हुआ। मृगांकदत्त ने अपने साथियों से कहा, "यह पुरुष तो प्रचंडशक्ति जैसा लगता है, किंतु अंधा है, सो हमें ध्यानपूर्वक देखना चाहिए कि अब क्या होता है ?"

यह कहकर मृगांकदत्त छिपकर उनकी बात सुनने लगा। हाथी ने उस अंधे से पूछा, "तुम कौन हो और यहां क्यों आये हो ?" उस अंधे ने कहा, "मैं अयोध्या-पुरी के राजा अमरदत्त के पुत्र मृगांकदत्त का प्रचंडशक्ति नाम का नौकर हूं और सर्प के शाप से उनसे बिछुड़ तथा अंधा होकर यहां भूखा-प्यासा भटक रहा हूं। आज तुम्हारी कृपा से मेरी भूख शांत हो गई है। मुझे जान पड़ता है कि तुम

कोई दैवी पुरुष हो। तुम्हारे प्रसाद से मेरा अंधापन भी दूर हो जायगा।" इसके बाद उसने हाथी से उसका वृत्तांत पूछा। हाथी ने कहा, "प्राचीनकाल में एकलव्य नाम की नगरी में श्रुतधर नाम का एक राजा था। उसकी दो पत्नियों के दो पुत्र हुए। राजा के मर जाने पर छोटे लड़के सत्यधर ने बड़े लड़के शीलधर को राज्य से निकाल दिया और सारा राज्य स्वयं हड़प लिया। इस व्यवहार से क्रुद्ध होकर शीलधर ने वन में जाकर कठोर तप किया और शिवजी को संतुष्ट करके यह वर मांगा—'मैं गंधर्व होकर अधिकार छीननेवाले अपने छोटे भाई को आसानी से मार डालूं।' यह सुनकर भगवान शंकर बोले, 'तुम्हारी यह इच्छा पूर्ण होगी, किंतु आज वह तुम्हारा शत्रु स्वयं मर गया है। अगले जन्म में वह राढा नगरी के राजा उग्रभट का समरभट नाम का पुत्र बनेगा और तुम उसके सौतेले बड़े भाई बनोगे। तुम उसे मारकर राज्य प्राप्त करोगे। किंतु तुमने क्रोधावेश में आकर जो यह तप किया है, उससे तुम मुनि के शाप से अपने पद से भ्रष्ट होकर वन के हाथी बनोगे। पर तुम्हें पूर्वजन्म का स्मरण रहेगा और तुम्हारी वाणी मनुष्य जैसी होगी। एक दिन किसी अंधे अतिथि को अपने यहां पाकर तुम उसका अतिथि-सत्कार करोगे। उससे बात-चीत करते ही तुम इस योनि से छूटकर गंधर्व बन जाओगे और उस अतिथि का अंधापन भी दूर हो जायगा।'

"यह कहकर शिवजी वहां से अदृश्य हो गये और शीलधर ने गंगा में डूबकर अपने शरीर को त्याग दिया। इधर राढा नगरी में राजा उग्रभट अपनी रानी मनोरमा के साथ सुखपूर्वक रहता था। कुछ समय पश्चात उसने लास्यवती नाम की नर्तकी से विवाह कर लिया। लेकिन बहुत समय तक उसके कोई संतान न हुई, इसलिए उसने पुत्र-प्राप्ति की कामना से पुत्रेष्टि यज्ञ किया। उसके दो पुत्र उत्पन्न हुए। बड़ी रानी मनोरमा के पुत्र का नाम भीमभट और लास्यवती के पुत्र का नाम समरभट रखा गया। दोनों बच्चे साथ-साथ पलने लगे। भीमभट अवस्था में बड़ा होने के साथ-साथ समरभट से गुणों में भी बढ़ा-चढ़ा था। समरभट उससे ईर्ष्या रखता था। इस प्रकार आपस में संघर्ष होते-होते उनमें शत्रुता हो गई। एक दिन दोनों बालक आपस में बाहु-युद्ध कर रहे थे। समरभट ने भीमभट पर घातक प्रहार किया। भीमभट ने भी क्रोध में आकर समरभट को पृथ्वी पर दे पटका, जिससे उसके माथे से खून बहने लगा। नौकर उसे उठाकर लास्यवती के पास ले गये। लास्यवती उसी अवस्था में अपने

पुत्र को राजा के पास ले गई और बोली, 'भीमभट प्रति दिन इसे इसी प्रकार मारता है, किंतु मैंने आजतक आपसे नहीं कहा। आज मैं यह सोचकर इसे आपके पास लाई हूं कि जब भीमभट आपके प्रिय पुत्र के प्रति यह द्रोह-बुद्धि रखता है, तो उसमें आपका भी कल्याण नहीं है। आप स्वयं सोच लें।' अपनी प्रिय पत्नी की यह बात सुनकर राजा उग्रभट को बहुत क्रोध आया और उसने भीमभट को अपने महल से निकलवा दिया और उसका जेब खर्च भी बंद कर दिया। तब उसकी माता मनोरमा ने उससे कहा, 'बेटा, तुम्हारा पिता नर्तकी के प्रेम-पाश बंधा हुआ है, इसीलिए उसने तुम्हारा निरादर किया है। सो, तुम अपने नाना के घर चले जाओ। उनके कोई पुत्र नहीं है, वह तुम्हें अपना राज्य दे देंगे। यहां समरभट कहीं तुम्हें मरवा न दे।' माता के यह वचन सुनकर भीमभट ने कहा, 'मैं क्षत्रिय हूं, नपुंसकों की भांति भय से अपना देश नहीं छोड़ूंगा। आप निश्चिंत रहें, कोई भी मुझे कष्ट नहीं पहुंच सकता।' तब मनोरमा ने उससे कहा, 'तुम मेरे धन से अपने मददगार एकत्रित कर लो।' भीमभट ने उत्तर दिया, 'पिता का विरोध करना उचित नहीं है। केवल आपका आशीर्वाद ही मेरा कल्याण करता रहेगा।' माता को यह आश्वासन देकर भीमभट वहां से चला गया। पुरवासी उसे गुप्त धन देकर उसकी सहायता करने लगे और उसके बहुत से साथी बन गये। इससे भीमभट सुखपूर्वक रहने लगा। उसके साथियों में शंखदत्त ब्राह्मण मुख्य था। इसी बीच में मणिदत्त नाम का कोई वैश्य देशांतर से एक अत्युत्तम श्वेत घोड़ा लेकर वहां आया। जब भीमभट ने उसे धन देकर खरीद लिया, तभी समरभट भी वहां आ गया और घोड़े के लिए दुगुना मूल्य देने लगा, किंतु वैश्य ने वह घोड़ा नहीं दिया। तब समरभट उसे जबरदस्ती छीनने लगा। इस पर दोनों राजपुत्रों की तलवारें निकल आईं और युद्ध शुरू हो गया। जब युद्ध में हारकर समरभट भागने लगा, तो शंखदत्त ने उसे पकड़ लिया और मारने को तैयार हुआ। तभी भीमभट ने उसे यह कहकर छुड़वा दिया कि इसे अभी मारने से पिताजी को दुख होगा। समरभट वहां से पिता के पास चला गया। कुछ समय के बाद एक ब्राह्मण भीमभट के पास आया और उसे एकांत में ले जाकर कहने लगा, 'तुम्हारी माता, यजुस्वामी पुरोहित और मंत्री सुमति ने मुझे तुम्हारे पास भेजा है और कहा है कि यदि तुम अपने प्राण बचाना चाहते हो, तो आज ही सूर्यास्त से पहले छिपकर अपने नाना के घर चले जाओ।' उस ब्राह्मण ने माता के द्वारा दिया हुआ एक स्वर्ण और रत्नों से

पूर्ण बर्तन भी भीमभट को दिया। भीमभट ने परिस्थिति की गंभीरता को जानकर वह बर्तन ले लिया और वहां से जाना स्वीकार कर लिया और वह शंखदत्त के साथ तलवार हाथ में लेकर और घोड़े पर चढ़कर चल दिया। चलते हुए वे दोनों एक वन में पहुंचे। वहां शेर के एक जोड़े ने अपने बच्चों-सहित उन पर हमला कर दिया और उनके दोनों घोड़ों को मार दिया। भीमभट ने उसी क्षण उन सिंहों को तलवार से मार गिराया। लेकिन घोड़ों को मरा हुआ देखकर वह बहुत दुखी हुआ और कहने लगा, 'अब हम इस बीहड़ वन से किस प्रकार पार होंगे?' शंखदत्त बोला, 'मनुष्य को आपत्ति में धैर्य धारण करना चाहिए, सो हम धैर्य-रूपी घोड़े पर चढ़कर वन को पार करेंगे।' इसके बाद दोनों वहां से चल दिये और घूमते-घूमते गंगा के किनारे पर पहुंचे। वहां विश्राम करके वे फिर किनारे-किनारे ही चल दिये और निर्जन वन में कुटी बनाकर रहनेवाले स्वाध्याय में तल्लीन एक ब्राह्मण कुमार के पास पहुंचे। पूछने पर उस ब्राह्मण कुमार ने कहा, 'मैं बनारसवासी श्रीकंठ ब्राह्मण का पुत्र नीलकंठ हूं। मैं गुरुकुल में विद्या पढ़ने गया था। जब समस्त विद्याएं पढ़कर घर लौटा, तो मैंने देखा कि मेरे माता-पिता तथा अन्य बंधु-बांधव मर गये हैं। तब मैं अनाथ और धनहीन होकर यहां वन में तीव्र तप करने लगा। स्वप्न में भगवती गंगा ने मुझे फल देकर कहा, "तुम इन फलों को खाकर जीवित रहो, कुछ समय बाद तुम्हारी इच्छाएं पूरी हो जायेंगी।" तब से मैं कुटी बनाकर यहीं रहता हूं और जो फल जल में बहकर आते हैं, उनसे ही अपना पेट भरता हूं।' तब भीमभट ने अपने मित्र शंखदत्त से सलाह की। फिर माता ने जो धन दिया था, वह ब्राह्मणकुमार को दे दिया। फिर वे दोनों गंगा को पार करने का उपाय सोचने लगे। उस समय गंगा में बाढ़ आई हुई थी। इसलिए वे दोनों तलवार को सिर पर बांधकर नदी को तैरकर पार करने लगे। भीमभट तो तैरते-तैरते पार हो गया, किंतु शंखदत्त न जाने कहां बह गया। उसे न पाकर भीमभट बहुत विलाप करने लगा और स्वयं भी गंगा में कूदकर शरीर त्यागने को तैयार हो गया। तभी गंगा ने स्वयं प्रकट होकर कहा, 'पुत्र! तुम ऐसा साहस मत करो। शीघ्र ही तुम्हारा शंखदत्त के साथ मिलन होगा। मैं तुम्हें प्रतिलोमा और अनुलोमा नाम की दो सिद्धियां देती हूं। इनमें से यदि अनुलोमा को तुम पढ़ोगे, तो अदृश्य हो जाओगे और यदि प्रतिलोमा को पढ़ोगे, तो जैसा चाहोगे वैसा रूप धारण कर लोगे। इस विद्या के

प्रभाव से तुम समस्त पृथ्वी के राजा बनोगे।' यह कहकर गंगा अदृश्य हो गई। भीमभट भी मित्र को ढूंढ़ता हुआ लाट देश में जा पहुंचा। वहां घूमते-घूमते वह द्यूतशाला में पहुंच गया और उसने सारे खिलाड़ियों का सारा धन जुए में जीत लिया। जब वे जुआरी अपने-अपने घरों को लौटने लगे, तो भीमभट ने उनसे कहा, 'मैं धन जीतकर अपने बांधवों को देता। आप सब भी मेरे बांधव हैं। आप इस धन को ले लीजिये।' पहले तो उन सब ने धन लेना बुरा समझा, किंतु जब अक्ष-क्षपणक नाम के एक जुआरी ने यह कहा कि चूंकि यह अपना बांधव मानकर हमें धन दे रहा है, इसलिए उसे लेने में कोई हानि नहीं है। तब उन्होंने उस धन को आपस में बांट लिया। शाम को उन्होंने भीमभट को दावत दी और उससे परिचय प्राप्त किया।

"इसके बाद अक्ष-क्षपणक और दूसरे जुआरियों ने अपना-अपना वृत्तांत सुनाया और वह उन जुआरियों के साथ सुखपूर्वक रहने लगा। इतने में वर्षा आ गई और विपाशा नदी बाढ़ के आ जाने से समुद्र के जल से टकराकर उल्टी बहने लगी। उसमें एक बड़ी भारी मछली समुद्र से उल्टी बहकर किनारे आ लगी और तुरंत पानी के घट जाने से फिर न बह सकी। वहां के लोगों नें उस मछली का पेट फाड़ा तो उसके अंदर से एक जीवित ब्राह्मण निकल पड़ा। अब तो सारे शहर में कोलाहल मच गया—सब उसे देखने के लिए दौड़े। भीमभट भी अपने मित्रों के साथ वहीं पहुंचा। वहां जाकर उसने देखा कि वह ब्राह्मण और कोई नहीं, इसका मित्र शंखदत्त ही है। उसे देखकर भीमभट ने उसका आलिंगन किया और अपने निवास स्थान पर ले जाकर उसका अपने मित्रों से परिचय कराया। भीमभट के पूछने पर शंखदत्त ने बताया, 'गंगा की लहरों में मुझे इस मछली ने निगल लिया था। मैं अपनी छुरी से इसका मांस खाकर ही इतने दिनों तक इसके पेट में जीवित रहा हूं। आज भाग्यवश यह मछली यहां आ गई और लोगों ने इसका पेट चीरकर मुझे निकाल लिया।'

"विधि की इस विचित्र लीला को देखकर सब लोग बड़े विस्मित हुए। शंखदत्त वहीं भीमभट के साथ रहने लगा। एक दिन भीमभट नागराज वासुकि का मेला देखने गया। वहां नागराज के मंदिर के दाहिनी ओर उसने एक विशाल तालाब देखा। उसी समय वहां के राजा चंद्रादित्य की पुत्री हंसावली भी स्नान करने उस तालाब पर आई। वह अत्यंत सुंदरी और गुणसंपन्न थी। भीमभट और हंसावली

ने एक-दूसरे को देखा। दोनों के मन में एक-दूसरे के प्रति आकर्षण और प्रेम पैदा हुआ। बाद में राजपुत्री ने अपनी दूती को भीमभट के पास भेजकर उसे अपने पास बुलवाया। भीमभट ने दूती से कहा, 'मैं रात्रि के समय विद्या के प्रभाव से अदृश्य होकर महल में आकर राजपुत्री से मिलूंगा।' यह सुनकर हंसावली बहुत प्रसन्न हुई। भीमभट रात के समय अनुलोमा विद्या के प्रभाव से अदृश्य होकर राजकुमारी के पास पहुंचा और रात-भर वहां रहकर भोर में वह अपने निवास-स्थान को चला आया। सवेरे राजकन्या को देखकर रक्षक सब कुछ समझ गये और उन्होंने राजा को सूचित कर दिया। राजा ने इस बात का पता लगाने के लिए गुप्तचरों को नियुक्त कर दिया। भीमभट रोज रात के समय अदृश्य होकर उसके पास जाता और दिन में अपने मित्रों के पास रहता। गुप्तचरों ने यह देखकर राजा से जाकर कहा, 'कोई पुरुष विद्या के प्रभाव से अदृश्य होकर राजकुमारी के पास आता है।' राजा ने उसे कोई दिव्य पुरुष जानकर रक्षकों से कहा, 'तुम विश्वास दिलाकर उसे मेरे पास ले आओ। उससे कहना कि तुम गुणवान हो। स्वयं आकर राजा से राजकुमारी को क्यों नहीं मांगते? वह तुम्हें दे देगा।' दूतों ने ऐसा ही किया। भीमभट समझ गया कि उसको देख लिया गया है। उसने कहा, 'मैं कल सवेरे स्वयं राजा के दरबार में उपस्थित होकर अपना परिचय दूंगा।' वहां से लौटकर उसने अपने मित्रों से सारा हाल कहा और फिर सुंदर वेष बनाकर उनके साथ राजा के दरबार में पहुंचा। राजा ने उन सबको बड़े आदर के साथ उचित आसन पर बैठाया। तब भीमभट के मित्र शंखदत्त ने राजा से कहा, 'हे राजन! यह राढा नगरी के राजा उग्रभट का ज्येष्ठ पुत्र भीमभट है और आपकी पुत्री के लिए आपके पास आया है। इसे अनेक विद्याएं सिद्ध हैं, इसलिए यह अविजेय और विक्रमशाली है।' राजा ने भी रात्रि के वृत्तांत को याद करके और उसे योग्य वर देखकर उसे अपनी पुत्री हंसावली दे दी। उसके कोई पुत्र न था, सो उसने भीमभट को ही राज्य देकर वानप्रस्थ ले लिया। तब भीमभट शंखदत्त आदि अपने सात वीर मित्रों के साथ राज्य करने लगा। कुछ दिनों के बाद उसने दूतों से यह समाचार सुना कि उसके पिता राजा उग्रभट ने प्रयाग में आकर शरीर त्याग दिया है और राढा राज्य पर नर्तकी-पुत्र समरभट को अभिषिक्त कर दिया है।

"पिता के मरने के समाचार से वह बहुत दुखी हुआ। फिर उसने समरभट के पास यह संदेश भेजा, 'तुम नर्तकी-पुत्र हो, तुम्हें क्षत्रियों के राज्य पर बैठने का अधिकार

नहीं है।' दूत से यह संदेश पाकर समरभट बहुत कुपित हुआ और उसने भी उत्तर में कहला भेजा, 'तुम अयोग्य थे, इसीलिए पिता ने तुम्हें राज्य से निकाल दिया था। उन्होंने योग्य समझकर ही मुझे राज्य दिया है। अपनी गुफा में तो गीदड़ भी अपने को शेर समझता है, किंतु उसकी असलियत का पता तो शेर के सामने आने पर लगता है।' इस संदेश को पाकर भीमभट हाथी पर चढ़कर राढा नगरी पहुंचा। समरभट अपनी सेना लेकर बाहर निकल आया। वहां दोनों की सेना में घमासान युद्ध हुआ, जिसमें समरभट की सारी सेना मारी गई। फिर द्वंद्व युद्ध में भीमभट ने समरभट को भी मार गिराया और अपने मित्रों के साथ नगरी में प्रविष्ट हुआ। प्रजा ने उसका बड़ा सत्कार किया। फिर शुभ दिन में उसने अपने मित्र शंखदत्त को लाट देश का राज्य दे दिया। अक्ष-क्षपणक आदि को भी बहुत साधन और ग्राम देकर उसने सम्मानित किया। इसके बाद वह अपने पिता के राज्य पर बैठा और उसने दिग्विजय करके एक विशाल साम्राज्य स्थापित किया। सम्राट बनकर भीमभट बहुत विलासी हो गया और राज-कार्य मंत्रियों को सौंपकर दिन-रात भोगों में लिप्त रहने लगा। एक दिन उत्तंक नाम के मुनि वहां स्वेच्छा से घूमते हुए आ गये। द्वारपाल ने राजा को मुनि के आने की सूचना की, किंतु राज्यमद और ऐश्वर्य के दर्प से अंधे होकर उसने कुछ न सुना और बाहर आकर मुनि का स्वागत न किया। इस पर मुनि ने क्रुद्ध होकर उसे यह शाप दिया, 'तू राज्य से भ्रष्ट होकर वन का हाथी बनेगा।' यह सुनकर शाप के भय से राजा बाहर निकला और मुनि के चरण पकड़कर क्षमा मांगने लगा। कोप के शांत होने पर महर्षि ने कहा, 'जब सर्प के शाप से बिछुड़कर मृगांकदत्त का मंत्री प्रचंड शक्ति अंधा होकर तेरे पास आयेगा, तब तू उसकी अतिथि-सेवा करके और उससे अपना वृत्तांत कहकर हाथी की योनि से मुक्त होगा और शिवजी की पूर्व आज्ञा के अनुसार गंधर्व-योनि को प्राप्त होगा। तभी प्रचंड शक्ति का अंधापन भी दूर हो जायेगा।' यह कहकर मुनि वहां से चले गये और भीमभट भी राज्य से भ्रष्ट होकर हाथी बन गया। वह भीमभट मैं हूं, जो हाथी बनकर तुमसे बात कर रहा हूं। मेरे विचार में वह प्रचंड शक्ति तुम्हीं हो। सो, आज मेरे शाप का अंत हो गया।"

यह कहकर उसने हाथी की योनि छोड़ दी और तत्क्षण गंधर्व-योनि को प्राप्त हो गया। तभी प्रचंड शक्ति का अंधापन भी दूर हो गया। यह कथा सुनकर मृगांकदत्त ने दौड़कर प्रचंड शक्ति को गले से लगा लिया। प्रचंड शक्ति भी अक-

स्मात स्वामी को देखकर उसके चरणों पर गिर पड़ा। दोनों चिरकाल के बाद मिले थे, सो खूब रोये। तब भीमभट गंधर्व ने उन्हें सांत्वना दी और मृगांकदत्त से कहा, "तुम शीघ्र ही अपने शेष मंत्रियों को प्राप्त करके शशांकवती को पाओगे।" यह सुनकर मृगांकदत्त बहुत प्रसन्न हुआ और उस दिन अपने मंत्रियों के साथ वहीं रहा।

: ८ :

# बेताल पच्चीसी

## पहला बेताल

अगले दिन फिर मृगांकदत्त उज्जयनी की ओर चला। मार्ग में उसने देखा कि उसका मंत्री विक्रमकेसरी एक अत्यंत कुरूप पुरुष के कंधे पर चढ़कर आकाश में उड़ता हुआ चला आ रहा है। उसी समय वह मंत्री आकाश से उसके पास उतर आया और आंखों में आंसू भरकर उसके चरणों पर गिर पड़ा। सब मंत्रियों-सहित मृगांकदत्त बड़ा प्रसन्न हुआ और उसको गले से लगाकर आलिंगन किया। विक्रमकेसरी ने उस पुरुष को यह कहकर विदा कर दिया कि जब मैं याद करूं तब फिर उपस्थित हो जाना।

इसके बाद एक स्थान पर बैठकर मृगांकदत्त ने उससे उसका वृत्तांत पूछा, तो उसने अपना यह हाल बताया, "सर्प के शाप से आप सब लोगों से बिछुड़कर बहुत दिन तक मैं इधर-उधर घूमता रहा, फिर यह सोचकर उज्जयनी की ओर चल दिया कि आप लोग वहां अवश्य पहुंचेंगे। वहीं आपसे मिलन हो जायेगा। चलते-चलते मैं ब्रह्मस्थल नाम के ग्राम में पहुंचा और वहां एक बावड़ी के किनारे वृक्ष की जड़ में बैठ गया। उसी समय एक बूढ़ा ब्राह्मण वहां आया और मुझसे बोला, 'बेटा! यहां से दूर चले जाओ, नहीं तो मेरी जैसी तुम्हारी हालत हो जायगी। यहां एक अत्यंत विषैला सांप रहता है, जिसने मुझे काट लिया है।' यह सुनकर मैंने अपनी विष-विद्या के प्रभाव से उसका विष दूर कर दिया। तब वह ब्राह्मण मुझसे बोला, 'तुमने मेरे प्राण बचाये हैं, इसलिए मैं तुम्हें यह बेताल सिद्ध करने का मंत्र देता हूं, जिसे मैंने अपने पिताजी से प्राप्त किया था।' मैंने उससे कहा, 'इस समय

तो मैं मृगांकदत्त से बिछुड़ा हुआ हूं, उससे मिलाइये। बेताल-मंत्र लेकर मैं क्या करूंगा?' वह ब्राह्मण हंसता हुआ बोला, 'क्या तुम नहीं जानते कि बेताल के सिद्ध होने पर सभी मनचाही वस्तुएं प्राप्त हो जाती हैं? क्या तुम्हें नहीं मालूम कि राजा त्रिविक्रमसेन ने बेताल के प्रसाद से विद्याधरों का ऐश्वर्य प्राप्त किया था?' फिर उस ब्राह्मण ने मुझे उसकी कथा सुनाई : गोदावरी नदी के किनारे पर प्रतिष्ठान नाम का एक देश था। वहां विक्रमसेन का पुत्र राजा त्रिविक्रमसेन राज्य करता था। वह बड़ा ही प्रतापशाली था। शांतिशील नाम का एक भिक्षुक प्रति दिन उसे एक फल लाकर भेंट में देता था। राजा त्रिविक्रमसेन भी उस फल को स्वीकार करके पास में बैठे हुए कोषाध्यक्ष को दे देता था। इस प्रकार दस वर्ष बीत जाने पर एक दिन जैसे ही उस भिक्षु ने फल लाकर राजा को दिया और राजा ने कोषाध्यक्ष को दिया, वहां एक बंदर आ गया और वह उस फल को झपटकर खाने लगा। उस फल को तोड़ने पर उसके अंदर से अनेक कीमती रत्न निकल पड़े। यह देखकर राजा ने कोषाध्यक्ष से पूछा, 'इससे पूर्व जो मैं फल तुम्हें देता था, उनका तुमने क्या किया?' यह सुनकर कोषाध्यक्ष डरता हुआ बोला, 'मैंने तो उन्हें बिना दरवाजा खोले ही झरोखे से कोठरी के अंदर फेंक दिया था। यदि आप आज्ञा दें तो अभी दरवाजा खोलकर उन्हें ढूंढूं।' राजा की आज्ञा पाकर कोषाध्यक्ष ने उन फलों को ढूंढ़ा और देखा कि वे सब फल तो सड़ गये हैं, किंतु उनके अंदर से वे ही चमकते हुए कीमती रत्न बाहर निकले पड़े हैं। कोषाध्यक्ष ने यह बात राजा से कही। राजा ने अगले दिन भिक्षुक से पूछा, 'तुमने इतना अधिक धन खर्च करके मेरी सेवा क्यों की है? मैं तब तक तुम्हारा फल नहीं लूंगा, जब तक तुम इसका कारण न बता दोगे।' राजा के कहने पर वह भिक्षुक राजा को एकांत में ले गया और बोला, 'मैं बेताल के मंत्र की सिद्धि करना चाहता हूं और वह मंत्र-सिद्धि किसी वीर सहायक के मिलने पर ही हो सकती है, सो मैं आपसे सहायता चाहता हूं।' राजा त्रिविक्रमसेन ने उसकी सहायता करना स्वीकार कर लिया। तब भिक्षु ने राजा से कहा, 'आप कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी की रात्रि में श्मशान में स्थित वटवृक्ष के नीचे आ जाना। मैं वहां आपकी प्रतीक्षा करूंगा।' राजा ने ऐसा करना स्वीकार कर लिया और ठीक समय पर निर्दिष्ट स्थान पर पहुंच गया। वहां उसने देखा कि वह भिक्षु श्मशान में मंडल बनाये हुए बैठा है। राजा ने उससे पूछा, 'मैं क्या करूं?' भिक्षु ने प्रसन्न होकर कहा, 'यहां से दक्षिण

दिशा की ओर कुछ दूरी पर शीशम के पेड़ पर मुर्दा टंगा हुआ है। आप उसे यहां ले आयें।' यह सुनकर राजा दक्षिण दिशा की ओर चल दिया और शीशम के पेड़ के पास पहुंचा। वहां उसने पेड़ पर लटकते हुए उस मुर्दे को देखा। पेड़ पर चढ़कर राजा ने उसकी रस्सी काट दी, जिससे वह मुर्दा जमीन पर गिर पड़ा। जमीन पर गिरते ही वह मुर्दा इस प्रकार चिल्लाया, जैसे कोई जीवित व्यक्ति चोट लगने पर चिल्लाता है। राजा ने उसे जीवित समझकर उसे अपने हाथ से छुआ, तो वह मुर्दा जोर से ठहाका मारकर हंसने लगा। राजा ने उसमें बेताल का प्रवेश मानकर निर्भीकतापूर्वक उससे कहा, 'हंसते क्या हो? चलो, चलें।' राजा के यह कहते ही वह मुर्दा जमीन से उठकर फिर पेड़ पर जा लटका। राजा ने फिर वृक्ष पर चढ़कर उसे उतारा और चुपचाप उसे अपने कंधे पर रखकर चल दिया। कंधे पर स्थित उस शव में प्रविष्ट बेताल ने चलते हुए राजा से कहा, 'हे राजन! मैं मार्ग में तुम्हारे मनोविनोद के लिए एक कथा कहता हूं, उसे सुनो।' और उसने राजा को यह कथा सुनाई:

"प्राचीनकाल में बनारस में प्रतापमुकुट नाम का राजा राज्य करता था, उसके रूप और शील से संपन्न वज्रमुकुट नाम का पुत्र था। बुद्धिशरीर नाम का मंत्रिपुत्र उसका परम मित्र था। एक बार वह राजपुत्र अपने मित्र बुद्धिशरीर के साथ शिकार खेलता हुआ बहुत दूर निकल गया। मार्ग में मिले हुए अनेक सिंहों के सिर काटता हुआ वह एक बीहड़ वन में पहुंचा। वहां उसने एक सुंदर तालाब देखा, जिसमें उसी समय एक सुंदर कन्या स्नान करने के लिए आई। उसे देखते ही राजपुत्र उस पर मुग्ध हो गया। उस कन्या की भी यही दशा हुई। उसने राजकुमार की ओर देखकर अपने स्वदेश आदि का परिचय देने के लिए कुछ चेष्टाएं कीं। पहले उसने एक कमल लेकर अपने कान में रखा, फिर वह अपने दांतों को मलने लगी। इसके बाद उसने एक कमल अपने सिर पर रखा और फिर अपनी छाती पर हाथ रखकर वह चली गई। राजपुत्र उसके इन संकेतों को न जान सका, किंतु बुद्धिमान मंत्रि-पुत्र समझ गया। उस कन्या के चले जाने पर राजपुत्र बेचैन होकर मंत्रि-पुत्र से बोला, 'अब इसको प्राप्त करना दुर्लभ है, क्योंकि जिसके नाम-ग्राम और वंश का कोई पता नहीं, उसका मिलना कैसे संभव हो सकता है?' मंत्रि-पुत्र ने उत्तर दिया, 'क्या आपने नहीं देखा कि उसने संकेतों द्वारा अपने नाम, ग्राम, वंश आदि का पूर्ण परिचय दे दिया है? कान में कमल रखने से उसका तात्पर्य यह है कि मैं

राजा कर्णोत्पल के राज्य में रहती हूं। दांत मलने का तात्पर्य यह है कि मैं दंतघाटक की पुत्री हूं। सिर पर कमल रखने का मतलब यह है कि मेरा नाम पद्मावती है। छाती पर हाथ रखने का तात्पर्य यह है कि मेरे प्राण तुझको चाहते हैं। इस कलिंग देश के राजा का नाम कर्णोत्पल है, उसके मंत्री दंतघाटक की पुत्री पद्मावती अत्यंत सुंदरी है। यह मैंने लोगों से सुना है। इसीलिए मैंने अनुमान द्वारा उसके संकेतों से यह बात जान ली है।'

"यह सुनकर वह राजपुत्र बहुत प्रसन्न हुआ। वह शिकार खेलने के बहाने कलिंग देश में पहुंचा और सारी सेना को छोड़कर मंत्रि-पुत्र के साथ दंतघाटक के घर के पास ही एक बूढ़ी स्त्री के यहां रहने लगा। एक दिन मंत्रि-पुत्र ने उस बूढ़ी स्त्री से पूछा, 'माता, क्या तुम दंतघाटक को जानती हो?' यह सुनकर वह वृद्धा बोली, 'मैं दंतघाटक की पुत्री पद्मावती की धाय हूं।' मंत्रि-पुत्र ने उसे वस्त्र-धनादि देकर संतुष्ट किया और कहा, 'तुम पद्मावती के पास जाकर यह कहो कि जिस राजकुमार को तुमने तालाब पर देखा था, वह यहां आया है। मैं तुम्हें यही बताने आई हूं।' उस वृद्धा ने ऐसा ही किया तो पद्मावती ने उसे फटकारकर उसके दोनों गालों पर कपूर से सने हुए दोनों हाथ मारे। इस पर वह बूढ़ी रोती हुई अपने घर लौट आई। उसकी बात सुनकर राजपुत्र बड़ा निराश हुआ। लेकिन मंत्रि-पुत्र ने कहा, 'इसमें निराशा की कोई बात नहीं है। उसने मुंह पर श्वेत कपूर से सनी हुई दस अंगुलियां मारकर यह भाव व्यक्त किया कि आप शुक्ल पक्ष में दस रात्रियों तक प्रतीक्षा करें।'

"दस दिन बीतने पर मंत्रि-पुत्र ने फिर उस बूढ़ी को धनादि से संतुष्ट करके पद्मावती के पास भेजा। अब की बार उसने महावर से सनी हुई तीन अंगुलियां बूढ़ी की छाती पर मारीं। मंत्रि-पुत्र ने इसका तात्पर्य यह बताया कि वह तीन दिन से रजस्वला है। तीन दिन के बाद मंत्रि-पुत्र ने फिर उस बुढ़िया को भेजा। इस बार पद्मावती ने उसको खूब खाने-पीने को दिया। शाम के समय जब वह बूढ़ी अपने घर लौटने को उद्यत हुई, तो शहर में यह शोर मच गया कि कोई मदमत्त हाथी सड़कों पर लोगों को कुचलता हुआ घूम रहा है। तब पद्मावती ने उस बुढ़िया को रस्सी के सहारे से गवाक्ष में से बाहर निकालकर घर भेज दिया। उस बूढ़ी ने घर पहुंचकर सारा हाल मंत्रि-पुत्र को बता दिया। मंत्रि-पुत्र ने राजपुत्र से कहा, 'आप आज उसी मार्ग से पद्मावती के महल में चले जायें, जिस मार्ग से बुढ़िया आई है।

उसने युक्ति से ही आपके प्रविष्ट होने का मार्ग भी स्वयं ही बता दिया है।' राजपुत्र उसी मार्ग से पद्मावती के पास पहुंचा। वहां कुछ दिन रहकर राजपुत्र ने पद्मावती से कहा, 'मैं अपने मित्र बुद्धिशरीर से मिलकर रात्रि के समय फिर आऊंगा।' यह सुनकर पद्मावती ने उससे पूछा, 'मैंने जो संकेत तालाब पर किये थे, उसका अर्थ तुमने स्वयं जान लिया था, या तुम्हारे मित्र ने बताया था?' राजपुत्र ने कहा, 'मेरा मित्र बहुत चतुर है, उसीने मुझे संकेतों का अर्थ बताया था।' तब पद्मावती बोली, 'तुमने आज तक मुझे क्यों नहीं बताया? जिसने हमारा इतना उपकार किया है, वह सबसे पहले हमारा मित्र एवं भाई है। मैं उसका पान आदि से अवश्य सत्कार करूंगी।' इसके बाद राजपुत्र पद्मावती से अनुमति लेकर अपने मित्र के पास आ गया और उसे सारा हाल बता दिया। मंत्रि-पुत्र ने उससे कहा, 'मेरा परिचय देकर आपने अच्छा नहीं किया।' अगले दिन सवेरे पद्मावती की सखी पकवान लेकर आई और राजकुमार से बोली, 'यह भोजन आपके मित्र के लिए है और आपके साथ भोजन करने के लिए पद्मावती प्रतीक्षा कर रही है, सो आप यह भोजन न खायें।' यह कहकर वह सखी चली गई। उसके चले जाने पर मंत्रिपुत्र ने राजपुत्र से कहा, 'मित्र, देखो! मैं तुम्हें एक आश्चर्य दिखाता हूं।' यह कहकर उसने अपने लिए आये हुए भोजन में से एक टुकड़ा तोड़कर कुत्ते के आगे डाल दिया। उस टुकड़े को खाते ही कुत्ता मर गया। राजपुत्र को यह देखकर बड़ा अचरज हुआ। तब मंत्रि-पुत्र मे कहा, 'संकेतों का अर्थ बताने से पद्मावती ने यह जान लिया था कि यह बुद्धिशरीर धूर्त है। इसके रहते हुए राजपुत्र मेरे वश में नहीं हो सकता। वह मुझे छोड़कर अपने देश को चला जायगा। इसलिए तुम्हें वश में करने के लिए ही उसने मुझे विष देकर मार डालना चाहा। सो अब तुम्हें ऐसा उपाय करना चाहिए, जिससे पद्मावती को तुम अपनी नगरी में ले जा सको।'

"इसी समय बाहर लोगों के रोने की आवाज सुनाई पड़ी। पूछने पर पता चला कि राजा का बालक पुत्र मर गया है। यह सुनकर मंत्रि-पुत्र प्रसन्न हुआ और राजपुत्र से बोला, 'तुम आज ही रात को पद्मावती के महल में जाओ और उसे खूब शराब पिलाकर निर्जीव-सी बना दो। फिर उसके सो जाने पर तपे हुए शूल से उसके कटि-तट पर चिह्न करके उसके सब आभूषण उतार लाओ।' राजपुत्र ने ऐसा ही किया और पद्मावती के सारे आभूषण लाकर मंत्रि-पुत्र को दे दिये। भोर होने पर

वह मंत्रि-पुत्र एक तपस्वी का वेष बनाकर और राजपुत्र को अपने शिष्य का रूप देकर आभूषणों-सहित श्मशान में पहुंचा। वहां उसने पद्मावती की मोतियों की माला राजपुत्र को दी और कहा, 'तुम इसी वेष में इस माला को लेकर बाजार में बेचने चले जाओ। यदि तुम्हें बेचते हुए कोई पकड़ ले, तो कह देना कि मेरे गुरु ने मुझे यह माला देकर बेचने भेजा है।' राजपुत्र उस माला को लेकर बाजार में बेचने चला गया। उसे बेचते हुए सिपाहियों ने पकड़ लिया और पुराधीश के पास ले गये। पुराधीश ने उस शिष्य रूपी राजपुत्र के साथ श्मशान में तापस वेष में बैठे हुए मंत्रि-पुत्र के पास पहुंचकर पूछा, 'महाराज! आपने यह मोतियों की माला कहां से पाई? यह तो दंतघाटक की पुत्री पद्मावती की माला है, जो रात में उसके महल से चुराई गई है।' यह सुनकर उस तापस रूपधारी बुद्धिशरीर ने एकांत में ले जाकर पुराधीश से कहा, 'मैं तपस्वी हूं, सदैव श्मशान में रहता हूं। गत रात जब मैं इस श्मशान में आया, तो मैंने देखा कि कुछ योगिनियां इस श्मशान में आईं। उनमें से एक योगिनी अपने साथ राजा कर्णोत्पल के पुत्र को लेकर आई और उसने उसका हृदय फोड़कर भैरव के सामने चढ़ा दिया। शराब में मस्त हुई वह योगिनी जब मेरी जपमाला को छीनने लगी तो मैंने क्रुद्ध होकर अपने त्रिशूल से उसकी जंघा पर चिह्न बना दिया और उसके कंठ से यह माला छीन ली। लेकिन यह मेरे लिए व्यर्थ थी, इसलिए मैंने इसे बेचने बाजार भेज दिया।' यह वृत्तांत सुनकर पुराधीश राजा के पास गया और उसे सब घटना सुना दी। राजा ने भी पद्मावती की जंघा पर त्रिशूल का चिह्न देखकर उसको योगिनी मान लिया और अपने नगर से निकाल दिया। तब बुद्धिशरीर तथा राजपुत्र तपस्वी का वेष त्यागकर अपने घोड़े पर चढ़कर, उसी वन में गये और वहां से पद्मावती को लेकर अपनी नगरी काशी को लौट आये। वहां राजपुत्र पद्मावती के साथ सुखपूर्वक रहने लगा। लेकिन पद्मावती का पिता दंतघाटक अपनी पुत्री के दुख से दुखित होकर मर गया और उसकी पत्नी उसके साथ सती हो गई।

"यह कथा कहकर बेताल ने राजा त्रिविक्रमसेन से पूछा, 'मेरे इस संदेह को दूर करो कि दंतघाटक और उसकी स्त्री के मरने का पाप किसको लगा? राजपुत्र को, या बुद्धिशरीर को अथवा पद्मावती को?' राजा त्रिविक्रमसेन ने उत्तर दिया, 'इसमें क्या बात है? इन तीनों को उनके मरने का कोई पाप नहीं लगा क्योंकि बुद्धि-शरीर ने तो अपने स्वामी का काम पूरा किया, इसलिए वह निर्दोष है। राजपुत्र

ग्रौर पद्मावती कामातुर होने के कारण विचार करने में ग्रसमर्थ थे, इसलिए वे भी दोषी नहीं हैं। पाप तो राजा कर्णोत्पल को लगा, क्योंकि उसने केवल दूतों के वचन पर विश्वास किया, नीति ग्रौर शास्त्र का विचार नहीं किया।' यह उत्तर सुनकर वह बेताल राजा के कंधे से उतरकर फिर उसी वृक्ष पर जा लटका।"

: ६ :

## दूसरा बेताल

"इसके बाद राजा त्रिविक्रमसेन उस बेताल को लाने के लिए फिर शीशम के पेड़ के पास गया। वहां उसने पृथ्वी में पड़े हुए ग्रौर कराहते हुए एक मुर्दे को देखा। राजा उस मुर्दे को कंधे पर उठाकर चुपचाप चल दिया। तब वह बेताल कंधे पर से ही फिर राजा से बोला, 'हे राजन ! ग्राप बड़े ग्रनुचित ग्रौर कष्टदायक कार्य में पड़ गये हैं। इसलिए मैं ग्रापके मनोविनोद के लिए एक कथा सुनाता हूं : यमुना के किनारे ब्रह्मस्थल नाम का एक नगर था, वहां समस्त वेदों में पारंगत ग्रग्निस्वामी नाम का एक ब्राह्मण था। उसकी ग्रत्यन्त रूपवती मंदारवती नाम की कन्या थी। उसके जवान होने पर कान्यकुब्ज के गुणसंपन्न तीन ब्राह्मणों ने इस कन्या को ग्रग्निस्वामी से मांगा, किंतु उसने उनमें से किसीको भी उस कन्या को न दिया। तब वे तीनों दिन-रात वहीं रहने लगे। इसी बीच ग्रकस्मात उस कन्या को दाहज्वर हो गया ग्रौर वह मर गई। तब उन तीनों ब्राह्मण-पुत्रों ने उसे श्मशान में ले जाकर जला दिया। उन तीनों में से एक तो वहीं मठ बनाकर तथा उसकी भस्म उस मठ में बिछाकर रहने लगा। दूसरा ब्राह्मण-पुत्र उसकी हड्डियां लेकर गंगा पर चला गया ग्रौर तीसरा तपस्वी बनकर देशांतरों में घूमने निकल गया। वह तपस्वी घूमता-घूमता वक्रोलक नाम के गांव में पहुंचा ग्रौर वहां किसी ब्राह्मण के घर में ग्रतिथि बनकर ठहरा। जब वह तपस्वी भोजन करने बैठा तो एक बच्चा वहां ग्राकर रोने लगा। बहुत मनाने पर भी जब वह बच्चा चुप न हुग्रा, तो ब्राह्मण की पत्नी ने उस बालक को पकड़कर जलती हुई ग्राग में डाल दिया। डालते ही वह बच्चा जलकर भस्म हो गया। यह देखकर वह तपस्वी भोजन से उठ खड़ा हुग्रा ग्रौर बोला, "मैं ऐसे ब्रह्मराक्षस के घर में भोजन नहीं करूंगा।" उसके ऐसा कहने पर वह गृहस्थ ब्राह्मण

बोला, "आप मेरी मंत्रसिद्धि का प्रताप देखिये, मैं इसे अभी जीवित किये देता हूं।" यह कहकर उस ब्राह्मण न मंत्र की पुस्तक खोलकर और उसमें से मंत्र पढ़कर धूलि उस राख में फेंकी। वह बालक तुरंत जीवित हो उठा। यह देखकर उस तपस्वी ने प्रसन्नतापूर्वक भोजन किया। वह ब्राह्मण भी उस पुस्तक को खूंटी पर लटकाकर और भोजन करके उस तपस्वी के साथ वहीं सो गया। गृह-स्वामी के सो जाने पर वह तपस्वी धीरे से उस पुस्तक को उतारकर अपनी प्रिया मंदारवती को जिलाने की इच्छा से श्मशान में पहुंचा। वहां उसने देखा कि वह ब्राह्मण-पुत्र भी, जो उसकी हड्डियां लेकर गंगा पर गया था, वहीं आया हुआ है। उस तपस्वी ने ब्राह्मण के घर देखी हुई विधि से मंदारवती की भस्म पर मंत्रों से अभिषिक्त धूलि डालकर उसे जीवित कर दिया। उसके जीवित हो जाने पर वे तीनों झगड़ा करने लगे और उस कन्या पर अपना-अपना अधिकार बताने लगे। अब हे राजा त्रिविक्रमसेन ! आप यह बताइये कि वह कन्या उन तीनों में से किसकी पत्नी होनी चाहिए? यदि आप जानते हुए भी इसका उत्तर न देंगे तो आपका सिर टुकड़े-टुकड़े हो जायगा।' बेताल की यह बात सुनकर राजा त्रिविक्रमसेन ने कहा, 'जिसने उस कन्या को कष्ट उठाकर भी मंत्रबल से जीवित किया, वह उसका पिता हुआ और जो उसकी हड्डियां लेकर गंगा में प्रवाहित करने गया, वह उसका पुत्र हुआ, इसलिए ये दोनों उसके पति नहीं हो सकते। किंतु जिसने उसकी भस्म अपनी कुटिया में बिछाकर श्मशान में तप किया, वही उसका पति बनने का अधिकारी है, क्योंकि उसने पति के प्रेम के अनुसार कार्य किया।' राजा त्रिविक्रमसेन से यह युक्ति-युक्त यथार्थ उत्तर पाकर बेताल फिर उसके कंधे से उतरकर उसी वृक्ष पर पहुंच गया।"

: १० :

## तीसरा बेताल

"इसके बाद राजा त्रिविक्रमसेन उस बेताल को लाने के लिए फिर उस शीशम के पेड़ पर पहुंचा और उस मुर्दे को वृक्ष से उतारकर फिर कंधे पर रखकर ले चला। मार्ग में बेताल कंधे पर से फिर राजा से बोला, 'हे राजन ! आप बड़े विचित्र हैं कि इस भयानक रात्रि में भी आते-जाते हुए दुखी नहीं होते हैं। आपके मनो-

विनोद के लिए मैं एक कथा कहता हूं : प्राचीन काल में पाटलिपुत्र में विक्रमकेसरी नाम का राजा था। उसके यहां किसी शाप से पक्षीयोनि में उत्पन्न, दिव्यज्ञान से संपन्न विदग्ध चूड़ामणि नाम का एक तोता था। विक्रमकेसरी ने उस तोते के द्वारा बताई हुई मगधदेश की राजपुत्री चंद्रप्रभा से विवाह किया। उस चंद्रप्रभा के पास विदुषी सोमिका नाम की एक मैना थी। वह तोता तथा मैना दोनों एक ही पिंजड़े में रखे गये। एक दिन तोते ने मैना से कहा, 'तुम मेरी पत्नी बन जाओ।' मैना ने उत्तर दिया, 'मैं कदापि पुरुष का संग न करूंगी, क्योंकि पुरुष बड़े दुष्ट और कृतघ्न होते हैं।' तोते ने कहा, 'नहीं, ऐसी बात नहीं है, वरन स्त्रियां ही दुष्ट तथा कठोर हृदयवाली होती हैं।' इस विषय को लेकर उन दोनों में विवाद छिड़ गया। अंत में उन दोनों ने यह शर्त लगाई कि यदि तोता हारेगा मैना का दास बनेगा और यदि मैना हारेगी तो तोते की पत्नी बनेगी। इस विवाद का निर्णय करने के लिए उन्होंने राजा को मध्यस्थ चुना। राजा ने मध्यस्थ बनकर मैना से पूछा, 'पहले तुम ही बताओ कि पुरुष कैसे दुष्ट और कृतघ्न होते हैं?' मैना ने अपने पक्ष के समर्थन में यह कथा कही :

"कामंदिका नाम की नगरी में अर्थदत्त नाम का एक धनवान वैश्य था। उसके धनदत्त नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। पिता के मर जाने पर वह नवयुवक बहुत उच्छृंखल होगया। दुष्टों की संगति में पड़कर उसे जुआ खेलने की लत पड़ गई, जिससे वह थोड़े ही समय में निर्धन होगया। तब वह अपना देश छोड़कर देशांतर के लिए निकल पड़ा। चलता-चलता वह चंदनपुर में भोजन की इच्छा से एक वैश्य के घर पहुंचा। उस वैश्य ने उसका परिचय पूछा। जब उसे पता लगा कि वह उच्चकुल का है, तो उसका खूब सत्कार किया और अपनी पुत्री रत्नावली का विवाह उसके साथ कर दिया। कुछ दिन श्वसुर के घर रहकर धनदत्त अपनी पत्नी रत्नावली और एक बूढ़ी दासी के साथ बहुत सा धन लेकर अपने देश को लौटा। मार्ग में उसने चोरों का भय दिखाकर रत्नावली के सारे आभूषण अपने हाथ में ले लिये और मौका पाकर उसे दासी-सहित एक गड्ढे में धकेल दिया। वह बूढ़ी दासी तो गिरते ही मर गई, परंतु रत्नावली लतागुल्म आदि में लिपट जाने से बच गई और किसी प्रकार बाहर निकलकर अपने पिता के घर पहुंची। माता-पिता के पूछने पर उसने यह कहा, 'मार्ग में चोर मेरे पति को लूटकर अपने साथ ले गये और मुझे तथा बूढ़ी दासी को गड्ढे में धकेल गये। वह दासी तो मर गई पर मैं किसी दयालु पथिक की कृपा से बच

गई। इधर-उधर भटकती हुई अब यहां आ गई हूं।' उसके वचन सुनकर माता-पिता ने उसे सुख से रखा। उधर धनदत्त कुछ काल में उस धन को उड़ाकर फिर निर्धन हो गया और सोचने लगा कि ससुराल में जाकर फिर धन ले आना चाहिए—यदि श्वसुर अपनी पुत्री के विषय में पूछेगा, तो कह दूंगा कि वह मेरे घर पर है। इस प्रकार हृदय में सोचकर धनदत्त फिर वहां पहुंचा। रत्नावली ने उसे दूर ही से आता हुआ देखकर मार्ग में जाकर उसके चरण छूए और बताया कि उसने अपने पिता से क्या कहा है। तब धनदत्त निर्भय होकर श्वसुर के पास पहुंचा। उसे वापस आया देखकर सबने खूब उत्सव किया। इसके बाद धनदत कुछ समय तक ससुराल में सुखपूर्वक रहा। फिर एक दिन वह अपनी पत्नी रत्नावली को मारकर और उसके आभूषण लेकर वहां से भाग गया। इस प्रकार पुरुष बड़े ही निर्दयी और कृतघ्न होते हैं।

"मैना की यह कथा सुनकर राजा ने तोते से कहा, 'अब तुम अपने पक्ष के समर्थन में जो कहना चाहते हो कहो।' तोता कहने लगा, 'स्त्रियां बड़ी दुस्साहसी और दुश्चरित्रा होती हैं।' इस संबंध में उसने निम्नलिखित कथा सुनाई :

"हर्षवती नगरी में धर्मदत्त नाम का एक करोड़पति वैश्य रहता था। उसकी वसुदत्ता नाम की अत्यंत सुंदर कन्या थी। धर्मदत्त ने उसका विवाह ताम्रलिपि नगर के निवासी समुद्रदत्त नामक एक सज्जन वैश्यकुमार के साथ कर दिया। वसुदत्ता जब अपने पिता के घर पर गई, तो वहां किसी नवयुवक से प्रेम करने लगी। एक दिन उसका पति अपने देश से उसके पिता के घर आया। रात्रि में जब वे दोनों सोने के लिए गये, तो वसुदत्ता नींद का बहाना करके करवट बदलकर चुपचाप लेट गई और समुद्रदत्त भी दूर से आने के कारण थककर सो गया। घर के सब आदमियों के सो जाने पर एक चोर सेंध लगाकर उनके शयनकक्ष में घुसा। वसुदत्ता ने चोर को न देखा और वह अपने घर से निकलकर प्रेमी के पास संकेत-स्थल की ओर चल दी। चोर भी, उत्सुकतावश यह जानने के लिए कि यह कहां जाती है, उसके पीछे-पीछे छिपकर चल दिया। वह वैश्य-पुत्री शहर से बाहर एक उद्यान में पहुंची और वहां उसने अपने प्रेमी को फांसी पर लटका हुआ पाया। रात्रि में उसे वहां छिपा हुआ देखकर रक्षकों ने उसे चोर समझकर फांसी पर लटका दिया था। उसे मरा हुआ देखकर वह विलाप करने लगी और उसको फांसी से उतारकर, फूलों से अलंकृत करके उसका आलिंगन करने लगी। प्रेम और

शोक से अंधी होकर उसने ज्यों ही उसका मुंह उठाकर चूमना चाहा, त्यों ही उस मुर्दे में प्रविष्ट हुए बेताल ने मुंह से उसकी नाक काट ली। तब वह तड़फती और बेचैन होती हुई अपने घर दौड़ गई। चोर भी उसके पीछे-पीछे उसके घर चला गया। वह अपने शयनस्थान में आकर ऊंचे स्वर से रोने-चिल्लाने लगी कि मेरे इस दुष्ट पति ने मेरी नाक काट ली है। उसका चिल्लाना सुनकर उसका पति तथा माता-पिता आदि सब जाग गये। चोर भी सबको जगा हुआ देखकर अपने घर चला गया। वसुदत्ता के पिता ने समुद्रदत्त को बंधवा दिया और सवेरे राजा के सामने उपस्थित कर दिया। राजा ने भी वसुदत्ता की नाक कटी देखकर तथा उसकी बात पर विश्वास करके पत्नी-द्रोह के अपराध में समुद्रदत्त को फांसी की सज़ा दे दी। जब ढोल बजाकर बधिक समुद्रदत्त को मारने के लिए वध्यभूमि में ले जा रहे थे, तो चोर उनके सामने आकर बोला, 'आप व्यर्थ ही इस निर्दोष को क्यों मार रहे हैं? वास्तविक घटना तो मैं जानता हूं। आप मुझे राजा के पास ले चलिये, मैं असली घटना उन्हें बताऊंगा।' बधिक उस चोर को राजा के सामने ले गये और उसने रात की सारी घटना राजा को सुना दी और कहा, 'यदि आपको मेरी बात का विश्वास न हो, तो आप स्वयं देख लीजिये कि इस स्त्री की नाक अब भी उस मुर्दे के मुंह में है।' यह सुनकर राजा ने अपने नौकरों को भेजकर मुर्दे के मुंह में दिखवाया तो वसुदत्ता की नाक उसमें पाई गई। तब राजा ने वास्तविक घटना को जानकर समुद्रदत्त को छोड़ दिया और वसुदत्ता के दोनों कान भी कटवाकर उसे देश से निकाल दिया। वह चोर की इस ईमानदारी से भी बहुत संतुष्ट हुआ और उसे शहर का कोतवाल बना दिया।

"तोता बोला, 'इस प्रकार स्त्रियां स्वभाव से ही धूर्त होती हैं।' इस कथा को कहते ही वह तोता शाप से मुक्त होकर चित्ररथ नाम का गंधर्व बन गया और मैना भी तत्काल तिलोत्तमा अप्सरा बन गई और वे दोनों अपने-अपने स्थान को चले गये।

"इस कथा को कहकर बेताल ने राजा त्रिविक्रमसेन से पूछा, 'उन दोनों पक्षियों के विवाद का निर्णय नहीं हुआ। अब आप बताइये कि वास्तव में स्त्रियां पापिनी हैं या पुरुष पापी? यदि आप नहीं बतायेंगे तो आपका सिर सौ-सौ टुकड़े हो जायेगा।' बेताल का यह वचन सुनकर राजा ने उत्तर दिया, 'हे योगेश्वर! वास्तव में स्त्रियां ही पापिनी होती हैं। पुरुष तो कोई-कोई ऐसा दुराचारी और दुष्ट होता है, किंतु स्त्रियां तो अधिकांश ऐसी ही होती हैं।'

"राजा का उत्तर सुनकर वह बेताल फिर राजा के कंधे से उतरकर अदृश्य हो गया।"

: ११ :

## चौथा बेताल

"इसके बाद राजा त्रिविक्रमसेन फिर उस मुर्दे को लाने के लिए वृक्ष के पास पहुंचा। राजा को देखते ही वह मुर्दा खिलखिलाकर हंस पड़ा, किंतु राजा ने निर्भय होकर उसे अपने कंधे पर उठा लिया और चुपचाप लेकर चल दिया। चलते हुए उस राजा से वह बेताल कंधे पर से ही बोला, 'हे राजन्! इस दुष्ट भिक्षु के लिए आप क्यों इतना परिश्रम कर रहे हैं, आपको अपने इस प्रयास में सफलता नहीं मिलेगी। पर मैं मार्ग में आपके विनोद के लिए एक कथा कहता हूं, उसे सुनिए।'

"तब बेताल ने राजा को वीरवर और राजा शूद्रक की कथा सुनाई।[1]

"इस कथा को कहकर बेताल ने राजा त्रिविक्रमसेन से पूछा, 'राजा शूद्रक और उसका सेवक वीरवर तथा उसकी पत्नी और पुत्र—सत्ववर, इन चारों में से कौन अधिक वीर है? यदि नहीं बताओगे तो तुम्हारा सिर खंड-खंड हो जायगा।' बेताल का यह प्रश्न सुनकर राजा ने उत्तर दिया, 'इन चारों में राजा शूद्रक ही अधिक वीर है, क्योंकि वीरवर तो ऐसे कुल में उत्पन्न हुआ था, जिसका व्रत ही अपने प्राणों तथा पुत्रादि से स्वामी की रक्षा करना था। सेवक ने जो कुछ किया, वह उसका कर्तव्य था। उसकी पत्नी ने अपने पतिव्रत धर्म का पालन किया, यही उसका धर्म था। वीरवर का पुत्र सत्ववर अपने माता-पिता की योग्य संतान था। जैसे तंतु होते हैं, वैसा ही कपड़ा बनता है। इसलिए उसके लिए यह स्वाभाविक बात थी। किंतु राजा शूद्रक तो अपने उन प्राणों को देने पर उतारू हो गया जिनकी सेवकों के प्राणों से रक्षा की जाती है। इसलिए शूद्रक ही

१. यह कथा नवें खंड के तीसरे अध्याय में आ चुकी है। अंतर केवल इतना है कि वहां राजा का नाम विक्रमतुंग है और नगरी का नाम विक्रमपुर है और यहां राजा का नाम शूद्रक और उसकी नगरी का शोभावती है।

अधिक वीर हुआ।' राजा के ये वचन सुनकर वह बेताल उसके कंधे से उतरकर फिर शीशम पर जाकर लटक गया।'

## : १२ :

## पांचवां बेताल

"राजा त्रिविक्रमसेन फिर उस शीशम के पेड़ के नीचे गया और मुर्दे को कंधे पर रखकर चल दिया। पहले की तरह मौन धारण करके चलते हुए राजा से बेताल ने फिर कहा, 'आप क्यों व्यर्थ में इस अप्रिय और कष्टकारी काम में पड़ गये हैं ? मैं आपके मनोविनोद के लिए एक कथा सुनाता हूं।"

'यह कहकर उसने यह कथा सुनाई :

"उज्जयिनी के राजा पुण्यसेन का मंत्री हरिस्वामी नाम का एक ब्राह्मण था। उसके योग्य और गुणवान देवस्वामी नाम का पुत्र और सोमप्रभा नाम की अत्यंत सुंदरी कन्या उत्पन्न हुई। जब वह कन्या विवाह योग्य हुई, तो अपनी माता के द्वारा उसने पिता और भाई से कहा, 'मेरा विवाह किसी शूरवीर या ज्ञानी या विज्ञानी से किया जाये, किसी और व्यक्ति से नहीं, नहीं तो मैं जीवित न रहूंगी।' पुत्री का यह निश्चय जानकर उसका पिता हरिस्वामी बहुत चिंतित हुआ। एक दिन किसी ब्राह्मण पुत्र ने हरिस्वामी के आकर उसकी पुत्री को मांगा। हरिस्वामी ने कहा, 'मेरी पुत्री किसी शूरवीर या ज्ञानी या विज्ञानी से विवाह करना चाहती है। इन तीनों में से कोई-सा गुण यदि तुममें विद्यमान हो, तो मैं विचार कर सकता हूं।' यह सुनकर उस ब्राह्मण-पुत्र ने कहा, 'मैं विज्ञान जानता हूं।' हरिस्वामी ने उससे कोई विज्ञान दिखाने को कहा। उसने अपनी विज्ञान-शक्ति से एक आकाश-गामी विमान बनाया और हरिस्वामी को उस पर बैठाकर स्वर्गादि लोकों की यात्रा कराई। हरिस्वामी ने उस विज्ञानी से अपनी पुत्री का विवाह करना स्वीकार कर लिया और सातवें दिन विवाह की तिथि भी निश्चित कर दी। इसी बीच में एक शूरवीर ब्राह्मण-पुत्र ने सोमप्रभा के भाई देवस्वामी से उसकी बहन को मांगा। देवस्वामी ने उसे शूरवीर देखकर उसकी बात मान ली और सातवें दिन ही विवाह की तिथि निश्चत कर दी। इसी प्रकार सोमप्रभा की माता ने भी

एक ज्ञानी ब्राह्मण-पुत्र को अपनी पुत्री देने की प्रतिज्ञा कर ली और वही सातवें दिन विवाह की तिथि निश्चित कर दी। जब हरिस्वामी ने लौटकर अपने पुत्र तथा पत्नी को यह समाचार सुनाया कि उसने सोमप्रभा का विवाह एक विज्ञानी से सातवें दिन करना निश्चित कर दिया है, तो उन दोनों ने भी अपनी-अपनी प्रतिज्ञा उसे कह सुनाई। यह सुनकर हरिस्वामी बहुत चिंतित हुआ। उधर विवाह के दिन ज्ञानी, विज्ञानी और शूर--तीनों सोमप्रभा से विवाह करने की इच्छा से उसके घर आये, किंतु तभी सोमप्रभा न जाने कहां अदृश्य हो गई! यह दृश्य देखकर हरिस्वामी बहुत परेशान हुआ। उसने ज्ञानी से कहा, 'तुम अपने ज्ञान के प्रभाव से बताओ कि सोमप्रभा कहां गई है?' यह सुनकर ज्ञानी ने बताया, 'उसे धूमशिख नामक राक्षस हरकर विंध्यवन में ले गया है।' हरिस्वामी ने उससे कहा, 'जब वह इतनी दूर है, तो विवाह कैसे हो सकता है?' इस पर विज्ञानी ने कहा, 'मैं अपने विज्ञान के प्रभाव से आज ही आपको वहां पहुंचा दूंगा।' सो, उसने एक शीघ्रगामी विमान बनाकर उसमें हरिस्वामी, ज्ञानी और शूर को बैठाया और विंध्यवन में पहुंचा दिया। वहां राक्षस क्रुद्ध होकर उन सबको मारने दौड़ा, किंतु शूर ने उसे युद्ध में मार गिराया। इसके बाद वे सब फिर विमान पर बैठकर हरिस्वामी के घर लौट आये। वहां आकर उनमें परस्पर विवाद आरंभ हुआ। ज्ञानी कहता था कि सोमप्रभा का विवाह उसके ही साथ होना चाहिए क्योंकि उसने अपने ज्ञान के प्रभाव से उसका पता लगाया था। विज्ञानी कहने लगा, 'मैं ही उसका अधिकारी हूं, क्योंकि मैं ही अपने विमान पर चढ़ाकर तुम सबको राक्षस के पास ले गया था।' शूर ने कहा, 'सोमप्रभा को मैंने राक्षस के हाथों से छुड़ाया है, इसलिए विवाह का अधिकारी मैं हूं।' उन सबकी बात सुनकर हरिस्वामी असमंजस में पड़ गया।

"इतनी कथा सुनाकर बेताल ने राजा त्रिविक्रमसेन से पूछा, 'बताओ इन तीनों में से कौन वास्तव में कन्या के साथ विवाह का अधिकारी है?' राजा ने उत्तर दिया, 'सोमप्रभा का विवाह शूर के साथ ही होना चाहिए, क्योंकि उसने ही अपने प्राणों की बाजी लगाकर राक्षस से सोमप्रभा को छीना था। ज्ञानी और विज्ञानी तो उसके सहायक-मात्र थे।' राजा का यह उत्तर सुनकर बेताल पहले की भांति फिर राजा के कंधे से उतरकर उसी शीशम के पेड़ पर पहुंच गया।"

: १३ :

# छठा बेताल

"राजा त्रिविक्रमसेन मुर्दे को पेड़ से उतारकर और अपने कंधे पर रखकर फिर चुपचाप चल दिया। तब बेताल राजा से कहने लगा, 'हे राजन! आप बड़े बुद्धिमान और पराक्रमी हैं, सो मेरे बहुत प्रिय हैं। मैं आपके चित्त को प्रसन्न करने के लिए कथा सुनाता हूं।' और उसने यह कथा सुनाई :

"शोभावती नाम की नगरी में यशकेतु नाम का राजा राज्य करता था। उस नगरी में पार्वती का एक सुंदर मंदिर था और उस मंदिर की दाहिनी ओर गौरी-तीर्थ नाम का एक तालाब था। आषाढ़ मास की शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी के दिन अनेक दिशाओं से बड़े-बड़े महाजन आकर उस तालाब में स्नान करते थे। एक बार उस तिथि में धवल नाम का एक नवयुवक धोबी पुत्र भी स्नान करने आया। वहां उसने शुद्धपट नाम के एक धोबी की पुत्री मदनसुंदरी को देखा। उसे देखते ही वह उसे चाहने लगा। बाद में उसका नाम-पता पूछकर अपने घर चला गया। वहां बिना खाये-पिये ही वह लेट गया। माता ने उससे इसका कारण पूछा, तो उसने अपनी इच्छा उसे बता दी। उसकी माता ने अपने पति से कहा। उसने आकर धवल से कहा, 'बेटा! दुखी क्यों होते हो? वह शुद्धपट मेरे मांगने पर अपनी पुत्री को तुम्हें दे देगा। हम कुल, संपत्ति और काम में उससे कम नहीं हैं, मैं उसे भली-भांति जानता हूं।' और सत्य ही उसके कहने पर शुद्धपट ने अपनी पुत्री मदनसुंदरी का विवाह धवल के साथ कर दिया। विवाह होने पर मदनसुंदरी अपने पति के घर चली गई। एक बार मदनसुंदरी के पिता के घर देवी-पूजा का उत्सव होनेवाला था। इसलिए उसका भाई मदनसुंदरी और अपने जीजा को निमंत्रण देने गया। अगले दिन धवल अपने साले तथा अपनी पत्नी के साथ श्वसुर के घर को चल पड़ा। शोभावती नगरी के पास पहुंचकर उसने विशाल देवी-मंदिर को देखा। तब धवल ने अपनी पत्नी तथा साले से कहा, 'तुम यहीं बैठो, मैं मंदिर में देवी के दर्शन करके अभी आता हूं।' यह कहकर धवल मंदिर में दर्शन करने चला गया। वहां जाकर और देवी को प्रणाम करके उसने सोचा कि लोग देवी को पशु आदि प्राणियों की बलि दिया करते हैं, मैं क्यों न अपना ही सिर चढ़ाकर देवी की सिद्धि करूं?

यह सोचकर उसने वहीं रखे हुए खड्ग से अपना सिर काटकर देवी पर चढ़ा दिया।

"जब बहुत समय बीतने पर भी धवल न लौटा, तो मदनसुंदरी का भाई उसे देखने मंदिर में गया। वहां अपने जीजा का सिर कटा देखकर उसने भी अपना सिर काट डाला। जब उन दोनों के आने में विलंब हुआ, तो मदनसुंदरी स्वयं घबड़ाई हुई मंदिर में गई और उन दोनों का सिर कटा देखकर विलाप करती हुई पृथ्वी पर गिर पड़ी। कुछ देर बाद उठकर उसने भी देवी को अपना शरीर समर्पित करने का विचार किया और देवी की स्तुति करती हुई बोली, 'हे देवि! भावी जन्म में मैं जहां-कहीं भी पैदा हूं, वहां ये दोनों मेरे भाई और पति बनें।' यह कहकर वह अशोकवृक्ष की शाखा में फांसी लटकाकर ज्यों ही मरने को उद्यत हुई, त्यों ही आकाशवाणी हुई, 'पुत्री! तुम इतना साहस न करो, मैं तुम्हारे तेज से प्रसन्न हूं, तुम इन सिरों को धड़ों से जोड़ दो, ये दोनों जी उठेंगे।' यह सुनकर मदनसुंदरी ने जल्दी से अपने बंधन खोलकर बिना विचारे शीघ्रता से भाई का सिर तो पति के धड़ से और पति का सिर भाई के धड़ से मिला दिया और वे दोनों जीवित हो गये। उन दोनों के गलत शरीरांगों के जोड़ने से मदनसुंदरी बड़े असमंजस में पड़ी।

"बेताल ने पूछा, 'हे राजन! आप यह बताइये कि उन दोनों में से कौन उसका पति होना चाहिए?' बेताल के इस प्रश्न को सुनकर राजा त्रिविक्रमसेन ने उससे कहा, 'जिस शरीर पर उसके पति का सिर लगा है, वही उसका पति है क्योंकि अंगों में सिर ही प्रधान होता है और उसके द्वारा ही मनुष्य की पहचान होती है।' राजा से यह उत्तर पाकर बेताल फिर राजा के कंधे से उतरकर उसी पेड़ पर चला गया।"

## : १४ :

# सातवां बेताल

"राजा त्रिविक्रमसेन फिर उस मुर्दे को पेड़ से उतारकर कंधे पर रख लिया और चुपचाप चल दिया। मार्ग में फिर बेताल ने उससे यह कथा कही:

"ताम्रलिप्ति नगरी में चंडसेन नाम का राजा था। एक बार दक्षिण देश का

निवासी सत्त्वशील नाम का कोई राजपुत्र, जो किसी कारण से निर्धन हो गया था, उसके दरबार में आया और दरवाजे पर पड़ा रहने लगा। चिथड़े पहने हुए वह राजपुत्र बहुत वर्षों तक राजा की सेवा करता हुआ वहां रहा, किंतु इसके बदले में उसे कुछ भी न मिला। एक दिन राजा शिकार खेलने को निकला। वह राजपुत्र भी हाथ में डंडा लेकर पैदल ही उसके आगे दौड़ता हुआ चला। वन में राजा चंडसेन एक सूअर का पीछा करता हुआ अपनी सेना से बिछुड़कर निर्जन वन में पहुंच गया। अकेला वह राजपुत्र ही उसके साथ-साथ रहा। वहां वह सूअर न जाने कहां छिप गया। राजा भी रास्ता भूल गया। उसने राजपुत्र से पूछा, 'क्या तुम रास्ता जानते हो?' उसने कहा, 'राजन! जानता तो हूं, पहले आप थोड़ा आराम कर लीजिये, तब चलेंगे।' राजा ने उससे पानी ढूंढ़ने के लिए कहा। तब उस राजपुत्र ने पेड़ पर चढ़कर एक नदी देखी। दोनों वहां पहुंचे। स्नान करने के बाद उस राजपुत्र ने अपने आंचल से खोलकर राजा को दो आंवले खाने को दिये। चंडसेन ने पूछा, 'ये आंवले तुम्हारे पास कहां से आये?' उसने हाथ जोड़कर उत्तर दिया, 'राजन! आंवले खाकर ही मैंने आपके दरवाजे पर दस वर्ष काट डाले हैं, यही मेरा भोजन है।' यह सुनकर राजा सोचने लगा कि मुझ जैसे राजाओं को धिक्कार है, जो अपने नौकरों के कष्टों को भी नहीं जानते और उन दरबारियों को भी धिक्कार है, जो ऐसे लोगों का राजाओं को पता भी नहीं देते।'

"यह सोचकर राजा ने उन दोनों आंवलों को लेकर खा लिया और पानी पीकर विश्राम किया। इसके बाद वह राजपुत्र चंडसेन को नगर में ले आया। वहां लौट-कर राजा ने उसे बहुत-सा धन देकर सम्मानित किया। वह राजपुत्र सत्वशील भी कृतार्थ होकर चंडसेन के पास ही रहने लगा। एक बार राजा चंडसेन ने सिंहल देश के राजा की पुत्री को अपने लिए मांगने के लिए सत्वशील को वहां भेजा। सत्वशील समुद्र मार्ग से सिंहल द्वीप की ओर चला। जब जहाज समुद्र के बीचों-बीच पहुंचा, तो उसके बीच से एक ध्वजा ऊपर उठी, जिसे देख लोगों को बड़ा विस्मय हुआ। तभी आकाश में बहुत जोर का बादल उठा। देखते-देखते जोर की वर्षा होने लगी और आंधी आ गई। इससे जहाज समुद्र में डूबने लगा। सब लोग भयभीत होकर चिल्लाने लगे। यह देखकर सत्वशील फेंटा बांध तथा तलवार हाथ में लेकर समुद्र में कूद पड़ा—इसी बीच में जहाज डूब गया। डुबकी लगाकर सत्वशील एक दिव्य नगरी में पहुंचा। वहां भगवती का एक स्वर्णमय मंदिर था और उस पर एक

ध्वजा लहरा रही थी। मंदिर में पहुंचकर सत्वशील ने देवी को प्रणाम किया, तभी उसने देखा कि एक अत्यंत सुंदरी दिव्य कन्या उस मंदिर का द्वार खोलकर प्रविष्ट हो रही है। पूजा करके वह बाहर निकली और प्रभा-मंडल में विलीन हो गई। सत्वशील भी उसके पीछे-पीछे चल दिया। वह कन्या एक दूसरे नगर के उत्तम महल में जाकर मणिजटित पलंग पर बैठ गई। सत्वशील भी उसके मुंह को देखता हुआ उसके पास ही बैठ गया। उस दिव्य कन्या का संकेत पाकर उसकी दासियों ने सत्वशील से कहा, 'आप हमारे अतिथि हैं। उठिये, स्नान करके भोजन कीजिये।' यह सुनकर उसे कुछ आशा बंधी और वह उनके द्वारा बताई हुई एक बावड़ी में स्नान करने के लिए उतरा। उस बावड़ी में गोता लगाते ही सत्वशील ताम्रलिप्ति में राजा चंडसेन के उपवन की बावड़ी में जाकर निकला। यह देखकर सत्वशील बड़ा चकित हुआ और सोचने लगा कि यह कौनसा नगर है, यह उपवन किसका है, वह सुंदरी दिव्य कन्या कहां गई? वह उस कन्या के वियोग में विलाप करता हुआ उपवन में घूमने लगा। उपवन के रक्षकों ने राजा चंडसेन से जाकर सब समाचार सुनाया। वह वहां आया और सब हाल सुनकर बोला, 'तुम शोक करना छोड़ो, मैं तुम्हें वहां पहुंचा दूंगा।' अगले दिन राज्य का समस्त कार्य-भार मंत्री पर सौंपकर राजा चंडसेन सत्वशील के साथ जहाज पर चढ़कर चल दिया। मार्ग में समुद्र के बीच में पहले की तरह उठी हुई ध्वजा को देखकर सत्वशील के साथ राजा समुद्र में कूद पड़ा। दोनों उस दिव्य नगरी में पहुंचे। वहां पार्वती के मंदिर में जाकर उन्होंने देवी को नमस्कार किया और वहीं बैठ गये। तभी वह कन्या अपनी सखियों के साथ उस उस प्रभा-मंडल से निकली। सत्वशील ने बताया कि यही वह कन्या है। उस कन्या ने भी राजा के शारीरिक शुभ लक्षणों को देखकर और उसे कोई बड़ा आदमी समझकर अपनी सखी से कहा, 'मालूम करो यह पुरुष कौन है और इससे कहो कि यह कृपा करके हमारा आतिथ्य स्वीकार करे।' सखी ने राजा के पास जाकर अपनी स्वामिनी का संदेश कह सुनाया किंतु राजा ने उपेक्षा भाव से कहा, 'यह कहना ही पर्याप्त अतिथि-सत्कार है।' तब वह असुर-कन्या स्वयं राजा के पास आई और उसने राजा से अतिथि-सत्कार ग्रहण करने की प्रार्थना की। राजा ने सत्वशील की ओर संकेत करके कहा, 'मैं तो इनके कहने से पार्वती देवी के दर्शन करने चला आया हूं।' उस कन्या ने कहा, 'चलिये मैं आपको अपना तीनों लोकों से अद्भुत दूसरा नगर दिखाऊंगी।' तब राजा और सत्वशील

दोनों उसके साथ-साथ प्रभा-मंडल में पहुंचे। उसके अंदर अपूर्व सुंदर नगर में प्रविष्ट होकर उस असुर कन्या ने राजा से कहा, 'मैं असुरराज कालनेमि की पुत्री हूं और ये दोनों नगर विश्वकर्मा के बनाये हुए मेरे पिताजी के हैं। इन नगरों में जरा और मरण नहीं होते। मेरे पिताजी को तो विष्णु भगवान ने मार डाला है। अब आप ही मेरे पिता हैं और ये दोनों नगर आपके आधीन हैं।' राजा ने उत्तर दिया, 'यदि तुम मेरी पुत्री हो, तो मैंने तुम्हें इस सत्वशील को दे दिया।' उस कन्या ने राजा की आज्ञा मान ली। राजा ने उन दोनों का विवाह कर दिया और वे दोनों नगर भी उन्हींको दे दिये। तब राजा ने सत्वशील से कहा, 'तुम्हारे एक आंवले का ऋण तो मैंने चुका दिया है, अब एक का और बाकी है।' इसके बाद राजा उनसे विदा होकर अपनी नगरी को लौटने लगा। तब उस दैत्य-पुत्री ने एक अपराजित नाम का खड्ग तथा जरा और मृत्यु को हरनेवाला खाने योग्य फल उसे लाकर दिया और राजा समस्त सिद्धियों से युक्त होकर अपने देश लौट आया। सत्वशील भी असुर-कन्या के साथ राज्य भोगने लगा।'

"यह कथा कहकर बेताल ने राजा से पूछा, 'बताओ सत्वशील और राजा चंड-सेन इन दोनों में से कौन अधिक पुरुषार्थी था?' राजा त्रिविक्रमसेन ने उत्तर दिया, 'इन दोनों में से सत्वशील ही अधिक पुरुषार्थी था क्योंकि जब वह पहली बार समुद्र में कूदा था, तो वह समुद्र के मर्म से बिल्कुल अनभिज्ञ था। राजा तो सब हाल जानकर उसके पीछे कूदा था।' राजा के इस वचन को सुनकर बेताल फिर उसी शीशम के वृक्ष पर पहुंच गया।"

## : १५ :

# आठवां बेताल

"राजा त्रिविक्रमसेन फिर उस मुर्दे को कंधे पर रखकर चल दिया। मार्ग में फिर बेताल ने उसे यह कथा सुनाई :

"अंग देश के वृक्षघट गांव में विष्णुस्वामी नाम का एक धनवान ब्राह्मण रहता था। उसके तीन पुत्र थे। एक बार विष्णुस्वामी ने यज्ञ करना आरंभ किया। यज्ञ में एक कछुए की आवश्यकता हुई। उसने तीनों भाइयों से कछुआ लाने को कहा।

वे तीनों समुद्र पर पहुंचे और वहां एक कछुआ पाया। बड़े भाई ने कहा, 'मैं तो भोजनचंग हूं, अतः कछुए को नहीं छूऊंगा। तुम दोनों इसे पिता के पास ले जाओ।' उसकी यह बात सुनकर मंझला भाई बोला, 'तुमसे भी बढ़कर मैं नारीचंग हूं, सो मैं भी इस कछुए को नहीं ले जाऊंगा, यह छोटा भाई ले जायेगा।' उन दोनों की बातें सुनकर छोटा भाई भी बोला, 'मैं तुम दोनों से बढ़कर तूलिकाचंग (शैयाचंग) हूं, सो मैं भी नहीं ले जाऊंगा।।' बस वे तीनों इस विवाद में पड़ गये कि उन तीनों में से कौन बढ़कर है। अंत में वे इसका निर्णय कराने के लिए विटंकपुर के राजा प्रसेनजित के पास पहुंचे। राजा ने कहा, 'आप लोग प्रतीक्षा कीजिये। मैं एक-एक की क्रमशः परीक्षा करूंगा।' यह सुनकर वे तीनों वहीं ठहर गये। भोजन के समय राजा ने उन तीनों को अपने साथ बैठाया और स्वादिष्ट भोजन मंगवाया। जब सब खाने लगे, तब बड़े भाई ने कहा, 'मैं इस भोजन को नहीं खाऊंगा। इसमें मुर्दे की-सी दुर्गंध आ रही है, इसलिए स्वादिष्ट होने पर भी मैं यह भोजन नहीं करूंगा।' यह कहकर वह नाक बंद करके वहां से उठ गया। राजा ने इसकी छान-बीन कराई, तो पता लगा कि वह भोजन श्मशान के पास के खेत में उपजे हुए अन्न का बना हुआ था। इस बात से अत्यंत विस्मित तथा संतुष्ट होकर राजा ने उससे कहा,'सच ही तुम भोजनचंग हो। तुम्हारे लिए दूसरा भोजन मंगाये देते हैं।' भोजन के बाद राजा ने उन्हें अलग-अलग स्थानों में ठहराया। रात के समय राजा ने अपनी एक उत्तम वेश्या को मंझले भाई के पास भेजा। उस सर्वांग सुंदरी वेश्या को लेकर राजा के नौकर ज्यों ही उस मंझले के पास पहुंचे, त्यों ही उसने कहा, 'इसको यहां से दूर हटाओ, अन्यथा मेरे प्राण निकल जायंगे। इसके शरीर में से बकरी की गंध आती है।' यह सुनकर नौकर उसे ले गये और राजा को जाकर यह हाल सुनाया। राजा के छानबीन करने पर यह पाया गया कि वह वेश्या बचपन में बकरी के दूध से पाली गई थी। इससे राजा बहुत विस्मित हुआ और उसने नारीचंग की प्रशंसा की। राजा ने तूलिकाचंग (शैयाचंग) को सोने के लिए सात गद्दों का पलंग दिया। वह उस बहुमूल्य पलंग पर थोड़ी देर लेटा ही था कि एकदम व्यथा से चिल्लाता हुआ उठ खड़ा हुआ। राज-पुरुषों ने देखा कि उसकी पीठ पर एक लाल रेखा खिंची हुई है। सेवकों ने राजा से जाकर कहा और राजा ने आकर उन बिछौनों को झड़वाकर देखा, तो उन सात गद्दों के नीचे से एक बाल निकला—उसीसे उसकी पीठ पर लाल रेखा हो गई थी। यह देखकर

राजा अत्यंत विस्मित हुआ और उसने उन तीनों को ही अद्भुत और विलक्षण जानकर प्रत्येक को एक-एक लाख सोने की अशर्फियां दीं। वे तीनों कछुए को ले जाना भूलकर सुखपूर्वक वहीं रहने लगे।

"यह कथा सुनाकर बेताल ने राजा से पूछा, 'बताओ! उन तीनों में से कौन सबसे बढ़कर था?' राजा ने उत्तर दिया, 'मेरे विचार में उनमें सबसे अधिक विशिष्ट तूलिकाचंग (शैयाचंग) था, क्योंकि उसकी पीठ पर बाल का निशान प्रत्यक्ष देखा गया था और ढूंढने पर बाल पाया भी गया। शेष दो के विषय में तो यह भी कहा जा सकता है कि शायद उन्होंने पहले किसी से जान लिया होगा।' राजा का यह उत्तर सुनकर बेताल फिर उसी वृक्ष पर जा लटका।"

## : १६ :

# नवां बेताल

"राजा त्रिविक्रमसेन फिर उस मुर्दे को शीशम के पेड़ से उतारकर और कंधे पर रखकर चल दिया। मार्ग में वह बेताल राजा से फिर बोला, 'हे राजन! कहां तो आपका राज्य और कहां रात के समय इस श्मशान में घूमना? आप इस भिक्षु के कहने में आकर व्यर्थ में परेशानी क्यों उठा रहे हैं? मैं आपके मनोविनोद के लिए एक कथा सुनाता हूं।'

"यह कहकर उसने राजा को अनंगरति के साथ विवाह करने के लिए आये हुए चार मनुष्यों की कथा सुनाई।[1]

"यह कथा सुनाकर बेताल ने राजा से पूछा, 'बताओ, उन आये हुए चारों पुरुषों में से कौनसा अनंगरति के योग्य पति था?' राजा ने उत्तर दिया, 'पंचपटिकशूद्र तो उसके योग्य पति इसलिए नहीं था कि क्षत्रिय कन्या शूद्र को नहीं दी जाती। भाषाज्ञ वैश्य के लिए भी यही बात है कि क्षत्रिया वैश्य को नहीं दी जा सकती, दूसरे उसकी भाषाविज्ञता से उसे लाभ भी क्या होता? जीवदत्त ब्राह्मण भी उसके योग्य न था, क्योंकि वह कर्महीन था और उसकी विद्या भी इंद्रजाल मात्र

१. यह कथा नवें खंड के दूसरे अध्याय में आई है। अंतर केवल इतना ही है कि वहां अनंगरति के पिता का नाम महावराह है और यहां वीरदेव।

थी। अतः खड्गधर क्षत्रिय ही उसके योग्य पति हो सकता है, क्योंकि वह विद्या और पराक्रम से संपन्न था।' यह सुनकर वह बेताल फिर उसके कंधों से उतरकर शीशम के पेड़ पर जा लटका।"

## : १७ :

# दसवां बेताल

"राजा त्रिविक्रमसेन फिर उस मुर्दे को शीशम के पेड़ से उतारकर और कंधे पर रखकर चल दिया। बेताल ने फिर कंधे पर से ही यह कथा कही :

"अनंगपुर नाम के नगर में वीरबाहु नाम का राजा राज्य करता था। उसके राज्य में अर्थदत्त नाम का एक धनाढ्य व्यापारी था। उसके धनदत्त नाम का एक पुत्र था और मदनसेना नाम की कन्या थी। वह एक दिन अपनी सखियों के साथ अपने उपवन में क्रीड़ा कर रही थी। तभी उसे उसके भाई के मित्र धर्मदत्त ने देख लिया। उसे देखते ही वह उससे प्रेम करने लगा। घर लौटकर वह सारी रात उसके लिए बेचैन रहा। अगले दिन वह फिर उपवन में गया। मदनसेना वहां अकेली बैठी थी। वह उससे बोला, 'मैं तुमसे प्रेम करने लगा हूं।' मदनसेना ने उत्तर दिया, 'मैं अभी कन्या अवश्य हूं, किंतु शीघ्र ही किसी दूसरे की पत्नी होनेवाली हूं, सो मैं तुम्हारी नहीं हो सकती, मेरे पिता ने मुझे समुद्रदत्त को दे दिया है।' धर्मदत्त ने कहा, 'मैं तुम्हारे बिना जीवित नहीं रहूंगा।' यह सुनकर मदनसेना डर गई। यह सोचकर कि न जाने यह क्या कर बैठे, वह बोली, 'अच्छा, मेरा विवाह हो जाने दो, मैं अपने पति के पास जाने से पहले तुमसे अवश्य मिलूंगी।' इस प्रकार मदनसेना उस वणिक-पुत्र को वचन देकर चली गई।

"विवाह हो जाने पर मदनसेना अपने पति के घर चली गई। रात में उसका पति समुद्रदत्त जब उसके पास आया, तो वह उदास होकर बोली, 'यदि आप मुझ पर विश्वास करें और अभय दान दें, तो मैं आपसे एक बात कहना चाहती हूं।' समुद्रदत्त के विश्वास दिलाने पर उसने धर्मदत्त का वृत्तांत सुनाकर कहा, 'मैंने उसे सत्य वचन दिया है, सो मैं अपना सत्य नहीं छोड़ूंगी। थोड़ी-सी देर के लिए उसके पास होकर अभी आती हूं।' यह सुनकर समुद्रदत्त ने सोचा

कि यह पर-पुरुष से प्रेम करती है, सो यह जायेगी अवश्य। तब, म सत्य को क्यों छोड़ूं ? और उसने उसे जाने की आज्ञा दे दी। मदनसेना भी वस्त्र-आभूषणों से सुसज्जित होकर धर्मदत्त के पास चल दी। रात में उसे अकेली जाती हुई देखकर एक चोर ने उसका आंचल पकड़कर रोका। मदनसेना ने कहा, 'तुम मुझे छोड़ दो और आभूषण आदि लेना चाहो, ले लो।' चोर ने कहा, 'मैं आभूषण नहीं, तुम्हें चाहता हूं।' तब मदनसेना ने उसे सारा हाल सुनाया और कहा, 'मैं अपना वचन पूरा करके अभी लौटूंगी और तब तुम्हारे पास आऊंगी।' उसकी सत्य-वाणी को सुनकर चोर ने उसे छोड़ दिया। वह धर्मदत्त के पास पहुंची। धर्मदत्त उसे देखकर बहुत प्रसन्न हुआ और पूछा, 'तुम किस प्रकार अपने पति से बचकर मेरे पास आई हो?' मदनसेना ने सारी बात सच-सच बता दी। उसकी इस सत्यता से प्रसन्न होकर धर्मदत्त ने उसे छोड़ दिया और कहा, 'अब तुम पर-स्त्री हो, इसलिए मैं तुम्हारा धर्म भ्रष्ट नहीं करूंगा।' वहां से लौटकर मदनसेना चोर के पास आई। वह भी सब कुछ जानकर बड़ा प्रभावित हुआ और उसके घर तक आकर उसे छोड़ गया। इस प्रकार वह अपने सतीत्व की रक्षा करके प्रसन्नचित्त घर लौटी। पूछने पर उसने अपने पति से सारा हाल सच-सच बता दिया। समुद्र-दत्त उसे चरित्रवती और सत्यपरायण पाकर बहुत प्रसन्न हुआ और उसके साथ सुख से रहने लगा।

"इस कथा को सुनाकर बेताल ने राजा से पूछा, 'राजन्! बताइये, समुद्रदत्त, धर्मदत्त और चोर, इन तीनों में से कौन अधिक त्यागी है?' राजा ने उत्तर दिया, 'इन तीनों में से चोर का ही त्याग प्रशंसनीय है, क्योंकि मदनसेना का पति समुद्रदत्त तो उसे पर-पुरुष से आसक्त जानकर स्वयं ही त्याग देता है। उसका त्याग महत्वपूर्ण नहीं है। धर्मदत्त ने उसे इसलिए त्याग दिया था कि उस समय उसका चित्त बदल गया था और उसे यह भी भय था कि जब इसके पति को मेरे नाम का पता लग गया है, तो शायद वह राजा से कहकर मुझे दंड दिलवाये। किंतु चोर का किसीको पता न था, वह पाप कर्म करने का आदी भी था, फिर भी उसने आभूषणों से युक्त रूपवती स्त्री को छोड़ दिया। इसलिए वह उन दोनों से अधिक त्यागी था, क्योंकि उसका त्याग निष्कारण और निरपेक्ष था।'

"राजा का यह उत्तर सुनकर बेताल फिर उसके कंधे से उतरकर पेड़ पर जा लटका।"

: १८ :

# ग्यारहवां बेताल

"राजा त्रिविक्रमसेन ने बेताल को फिर पेड़ से उतारा और कंधे पर रखकर चल दिया। बेताल ने फिर राजा को एक विचित्र कथा सुनाई :

"प्राचीनकाल में उज्जयनी नगरी में धर्मध्वज नाम का राजा था। उसकी इंदुलेखा,तारावली और मृगांकवती—ये तीन प्रिय रानियां थीं। उनके साथ वह वहां सुखपूर्वक, रहता था। एक बार वसंतकाल में वह अपनी प्रिय रानियों के साथ उपवन में गया। वहां जब राजा ने रानी इंदुलेखा के केश पकड़े, तो उसके कान में लगा हुआ कमल उसीकी जंघा पर गिर पड़ा। कमल के गिरते ही वह चिल्ला पड़ी और उसकी जंघा में घाव हो जाने के कारण मूर्च्छित होकर गिर पड़ी। राजा ने शीतल उपचारों से उसे होश में किया और वैद्यों की औषधियों से वह कुछ समय में ठीक हो गई। उसके कुछ दिन बाद एक दिन दूसरी रानी तारावली रात के समय महल के ऊपर सो रही थी। हवा से उसके शरीर से वस्त्र हट गया और चंद्रमा की किरणें उस पर पड़ने लगीं, जिनके स्पर्श से रानी के अंगों पर छाले पड़ गये और वह चिल्ला पड़ी। कुछ दिन उपचार करने के बाद वह भी स्वस्थ हो गई। इसके बाद एक दिन तीसरी रानी मृगांकवती अपने महल से राजा के पास जा रही थी। मार्ग में उसने किसी दूसरे घर में मूसलों से धान कूटे जाने का शब्द सुना। सुनते ही उसके हाथों में छाले पड़ गये और वह वेदना से चिल्लाने लगी। यह सुनकर राजा ने चंदन आदि शीतल-पदार्थों का लेप कराया और वह भी स्वस्थ हो गई। लेकिन राजा ने सोचा कि मेरी पत्नियों की सकुमारता गुण न होकर दोष बन गई है।

"यह कथा कहकर बेताल ने राजा से पूछा, 'बताइये, इन तीनों रानियों में से कौनसी सबसे अधिक सुकुमार है?' राजा ने उत्तर दिया, 'मृगांकवती सबसे अधिक सुकुमार है, क्योंकि दूसरी दोनों रानियों के अंगों में छाले या घाव कमल अथवा चंद्रकिरणों के छूने से हुए थे, किंतु मृगांकवती के हाथों में छाले तो मूसल के शब्द के सुनने मात्र से ही पड़ गये, छूना तो दूर रहा। इसलिए वही सबसे अधिक सुकुमार हुई।' राजा की यह बात सुनकर बेताल उसके कंधे से उतरकर फिर शीशम के पेड़ पर जा लटका।"

: १६ :

# बारहवां बेताल

"राजा त्रिविक्रमसेन फिर उस पेड़ के पास गया। उसने मुर्दे को उतारा और कंधे पर रखकर चल दिया। उसे चुपचाप चलते हुए देख बेताल ने उससे कहा, 'राजन ! आप इतने कष्ट पाकर भी दुखी नहीं होते, सो आप मेरे बहुत प्रिय बन गये हैं। मैं आपके हृदय को प्रसन्न करने के लिए यह कथा सुनाता हूं : प्राचीन-काल में अंगदेश में यशकेतु नाम का राजा हुआ है। उनका बृहस्पति की भांति बुद्धिमान दीर्घदर्शी नाम का मंत्री था। रूप और जवानी के मद से गर्वित होकर वह राजा राज्य का भार मंत्री पर डालकर विषयों में फंस गया। राजकार्य में अनेक बाधाएं आने पर भी राजा रनिवास से न निकला। दीर्घदर्शी बड़ी बुद्धिमत्ता से राज्य के कार्य को चलाता था और उसके शासन में किसी प्रकार की कमी न थी। इतने पर भी, न जाने क्यों लोगों में यह प्रवाद फैल गया कि मंत्री दीर्घदर्शी राजा को विषयासक्त बनाकर स्वयं राज्य हड़पना चाहता है। इससे दीर्घदर्शी को बड़ा दुख हुआ। उसने सोचा कि मैं निःस्वार्थ भाव से राज्य की सेवा करता हूं, किंतु फिर भी मेरी लोक-निंदा क्यों हो रही है ? इस अपयश को दूर करने के लिए उसने तीर्थयात्रा का बहाना किया। उसका विचार था कि उसके चले जाने पर राजा स्वयं राज्य का शासन संभाल लेगा। ऐसा होने पर उसकी निंदा दूर हो जायेगी और राजा भी विषयासक्ति से हट जायेगा।

"'उसने राजा से अपना आशय कहा और बड़ी कठिनता से आज्ञा पाकर वह यात्रा के लिए निकल पड़ा। चलते-चलते वह अकेला पुंड्र देश में पहुंचा। वहां वह एक गांव के समीप एक शिव-मंदिर में जाकर बैठ गया। इसी समय निधिदत्त नाम का एक वैश्य वहां शिवजी के दर्शन करने आया। निधिदत्त ने दीर्घदर्शी से उसका हाल पूछा। उसने कहा, "मैं अंगदेश का एक ब्राह्मण हूं। तीर्थयात्रा कर रहा हूं।" निधिदत्त बोला, "मैं सुवर्णद्वीप में व्यापार करने के लिए जानेवाला हूं, इसलिए तुम मेरे लौटने तक मेरे घर पर रह जाओ, क्योंकि तुम यात्रा करते-करते थक गये हो। जब मैं लौट आऊं तो फिर तीर्थयात्रा करने चले जाना।" यह सुनकर दीर्घ-दर्शी ने कहा, "तब तो मैं भी आपके ही साथ चलूंगा।" निधिदत्त इस बात पर राजी

हो गया और अगले दिन वे दोनों जहाज पर चढ़कर समुद्र मार्ग से स्वर्णद्वीप में पहुंचे वहां से खरीद-बेच करके निधिदत्त दीर्घदर्शी के साथ वापस आया। मार्ग में उसे समुद्र के बीच में एक कल्पवृक्ष दिखाई दिया। उसने देखा कि उस वृक्ष की मोटी-मोटी शाखाओं पर रत्नजटित पलंग बिछाकर एक अत्यंत रूपवती कन्या बैठी हुई वीणा बजाती हुई गा रही है। वह कन्या कुछ देर गाकर फिर कल्पवृक्ष के साथ जल में अदृश्य हो गई। वह बहुत चकित हुआ। नाविकों ने उसे बताया कि यह कन्या तो प्रतिदिन इसी प्रकार दिखाई देती है और अदृश्य हो जाती है।

" 'इसके बाद दीर्घदर्शी निधिदत्त के साथ उसके घर लौट आया और कुछ दिन वहां रहकर वह अपने देश लौट आया। उसका आना सुनकर यशकेतु बहुत प्रसन्न हुआ और स्वयं आकर उसे अपने महल में ले गया। विश्राम के अनंतर राजा ने उससे पूछा, "तुम किन-किन देशों में घूमे और तुमने कौन-कौन सी नई चीजें देखीं ?" दीर्घदर्शी ने राजा को सुवर्णद्वीप की यात्रा एवं उस कल्पवृक्ष पर वीणा बजाती हुई दिव्य सुंदरी का हाल सुनाया। कन्या का हाल सुनते ही राजा यशकेतु उसे प्राप्त करने के लिए बेचैन हो उठा और राज्य का भार दीर्घदर्शी पर डालकर अकेला ही तपस्वी का वेष बनाकर चल दिया। चलते-चलते मार्ग में राजा को कुशनाभ नाम के मुनि के दर्शन हुए। राजा के प्रणाम करने पर मुनि ने उससे कहा, "लक्ष्मीदत्त व्यापारी के साथ उसके जहाज में जब तुम समुद्र-यात्रा करोगे, तब तुम्हें अपनी वांछित कन्या मिलेगी।' यह सुनकर राजा बड़ा प्रसन्न हुआ और कुछ दिनों में समुद्र के किनारे पर जा पहुंचा। वहां उसे मुनि के द्वारा बताया हुआ लक्ष्मीदत्त वैश्य मिला, जो स्वर्णद्वीप को जा रहा था। राजा उसीके साथ जहाज पर बैठकर चल दिया। मार्ग में समुद्र के बीच में एक कल्पवृक्ष को निकलते हुए उसने देखा। उसी पर वह दिव्य कन्या बैठी हुई वीणा बजा रही थी। कुछ देर के बाद राजा के देखते-देखते ही वह जल में डूब गई। राजा भी उसके पीछे-पीछे ही समुद्र में कूद पड़ा। यह देखकर लक्ष्मीदत्त वैश्य ने समझा कि वह समुद्र में डूबकर मर गया है। तब वह भी आत्महत्या करने पर उतारू हुआ। तभी उसे यह आकाशवाणी सुनाई दी, "हे वैश्य, तुम मरने का साहस न करो, यह अंगदेश का राजा यशकेतु है और इस कन्या के लिए ही तपस्वी का वेष बनाकर आया है। यह कन्या इसकी पूर्वजन्म की पत्नी है। इसे पाकर यह फिर अपने देश को लौट जायगा।" यह आकाशवाणी सुनकर लक्ष्मीदत्त आत्महत्या करने से रुक गया और अपने व्यापार के लिए चला गया। उधर राजा यशकेतु ने समुद्र में

डुबकी लगाने पर अकस्मात एक दिव्य नगर देखा। उस नगर का प्रत्येक घर निर्जन था। उसे उसकी प्रिया न मिली। ढूंढ़ते-ढूंढ़ते उसने एक मणिमय सुंदर महल देखा, उसका द्वार खोलकर राजा अंदर घुसा। वहां उसने रत्नमय पलंग पर एक आदमी को सोये हुए देखा। राजा ने उसका मुंह उघाड़ा, तो देखा कि वह वही कन्या थी। वह सुंदरी भी राजा को देखकर स्तंभित रह गई। उसने राजा से पूछा, "आप कौन हैं और इस अगम्य रसातल में कैसे प्रविष्ट हुए हैं ?" राजा ने उसे अपना परिचय दिया। फिर अपना परिचय देते हुए उस कन्या ने कहा, "मैं विद्याधर-राज मृगांकसेन की मृगांकवती नाम की कन्या हूं। मेरे पिता मुझे इस नगर में अकेला छोड़कर अपनी सारी प्रजा के साथ न जाने कहां चले गये। अब मैं इस नगर में बिल्कुल अकेली रहती हूं और यंत्रमय कल्पवृक्ष पर चढ़कर अपने भाग्य की गाथा गाया करती हूं।" राजा ने मुनि के वचन याद करके उसके साथ गंधर्व विवाह कर लिया और उसके साथ रहने लगा। उस सुंदरी ने विवाह में शर्त रखी कि "मैं प्रत्येक मास के शुक्ल पक्ष तथा कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी और अष्टमी के दिन अपनी इच्छा के अनुसार जहां कहीं भी जाया करूंगी, आप न तो मुझे जाने से रोकेंगे और न ही कारण पूछेंगे।"

" 'राजा ने उसकी यह शर्त मान ली और दोनों के दिन सुख से बीतने लगे। एक दिन मृगांकवती ने राजा से कहा, "आर्यपुत्र ! आज कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी है। मैं किसी कार्य से जा रही हूं, आप यहीं रहना। यहीं रहकर भी आप इस स्फटिक ग्रह में मत जाना और न ही इस बावड़ी में प्रवेश करना, नहीं तो आप भूलोक में पहुंच जायंगे।" यह कहकर वह चली गई। राजा भी तलवार हाथ में लेकर उसके पीछे-पीछे छिपकर चल दिया। मार्ग में उसने अत्यंत काले आकार के एक भयानक राक्षस को आते हुए देखा। वह राक्षस एकदम मृगांकवती पर टूट पड़ा और उसे निगल गया। यह देखकर राजा ने उस राक्षस का सिर काट डाला। कुछ देर बाद मृगांकवती भी उस राक्षस का पेट फाड़कर जीवित ही बाहर निकल आई। इससे विस्मित होकर राजा ने मृगांकवती से पूछा, "प्रिये ! यह क्या है, स्वप्न अथवा सत्य ?" मृगांकवती ने उत्तर दिया, "हे आर्यपुत्र ! यह न तो स्वप्न है न कोई माया। बल्कि मेरे पिता का दिया हुआ शाप है। मेरे पिता के अनेक पुत्र होने पर भी वह मुझे बहुत अधिक स्नेह करते थे और मेरे बिना कभी भोजन न करते थे। मैं प्रत्येक अष्टमी तथा चतुर्दशी के दिन शिवजी का पूजन करने यहां आया करती थी। एक बार मैं चतुर्दशी के दिन यहां

पूजन करने आई और पूजन में इतनी अधिक रमी कि सारा दिन यहीं बीत गया। उधर मेरे पिता को भूखा रहना पड़ा। रात को जब मैं घर लौटी, तो उन्होंने क्रोधित होकर मुझे यह शाप दिया, 'तूने अपनी भक्ति के गर्व में मुझे आज सारे दिन भूखा रखा है। इसलिए अष्टमी तथा चतुर्दशी के दिन शिवजी का पूजन करने यदि तू नगर के बाहर जाया करेगी, तो कृतांत संत्रास नाम का राक्षस तुझे निगल जाया करेगा और तू उसका पेट फाड़कर निकल आया करेगी। तुझे इस शाप का स्मरण भी न रहेगा और तू इस व्यथा का अनुभव भी न करेगी। तू अकेली ही इस नगरी में रहा करेगी।' यह शाप देने के बाद बहुत अनुनय-विनय करने पर उन्होंने कहा,'जब अंग देश का राजा यशकेतु तेरा पति बनेगा और तुझे राक्षस से निगली हुई देखेगा,तब वह राक्षस को मार देगा, तभी तेरे शाप का अंत होगा।' यह कहकर मेरे पिता अपनी सारी प्रजा को लेकर तथा मुझे अकेली छोड़कर निषध पर्वत पर चले गये। आज मेरे शाप का अंत हो गया है। अब मैं अपने पिता के पास निषध पर्वत पर जाऊंगी।" यह सुनकर राजा ने दुखी होकर कहा, "हे प्रिये ! तुम सात दिन तक और मेरे साथ रहो, इसके बाद तुम अपने पिता के पास चली जाना और मैं अपने राज्य में चला जाऊंगा।" मृगांकवती ने राजा की यह बात स्वीकार कर ली। तब वे दोनों उद्यान और बावड़ियों में छः दिन तक खूब विहार करते रहे। सातवें दिन राजा युक्ति से मृगांकवती को उस घर में ले गया जहां भूलोक में पहुंचा देने वाली बावड़ी थी। वह मृगांकवती को लेकर बावड़ी में कूद पड़ा और अपने नगर की उद्यान-बावड़ी में आ निकला। उद्यान के रक्षकों ने राजा को पत्नी के सहित देखा तो मंत्री को सूचना दी। तब मंत्री तथा पुरवासियों ने बड़े उत्सव के साथ उनको नगर में प्रवेश कराया। मृगांकवती ने जब यह देखा कि राजा अपने राज्य में आ गया है, तो उसने एक सप्ताह बाद विद्याधर योनि को प्राप्त होना चाहा, किंतु अब उसकी उड़ने की शक्ति नष्ट हो चुकी थी। यह देखकर मृगांकवती बड़ी दुखी हुई। राजा ने उससे इस विषाद का कारण पूछा, तो उसने उत्तर दिया, "मैं शाप से मुक्त होने के बाद आपके स्नेह में बंधकर जो एक सप्ताह तक यहां ठहर गई हूं, उससे मेरी विद्या भ्रष्ट हो गई।" यह सुनकर राजा ने उस विद्याधरी को सिद्ध समझकर बड़ा उत्सव मनाया। तभी मंत्री दीर्घदर्शी का हृदय फट गया और वह मर गया। इससे राजा बहुत दुखी हुआ, परंतु शांति के साथ राज्य का भार संभालकर मृगांकवती के साथ सुख से रहने लगा।' "

"यह कथा सुनाकर बेताल ने राजा त्रिविक्रमसेन से पूछा, 'बताइये, स्वामी की इतनी खुशी के समय मंत्री का हृदय क्यों फट गया ? क्या इस शोक से कि यह दिव्य स्त्री उसे नहीं मिली ? अथवा इस दुख से कि राजा के आने से उसको स्वयं राज्य मिल जाने की आशा जाती रही ?' यह प्रश्न सुनकर राजा त्रिविक्रमसेन ने उत्तर दिया, 'दीर्घदर्शी जैसे श्रेष्ठ चरित्रवाले मंत्री के विषय में दोनों ही कारण नहीं हो सकते। उसके हृदय के फटने का कारण और ही था। उसने यह सोचा कि जब राजा ने मानुषी स्त्रियों पर अनुरक्त होकर तो राज्य की इतनी उपेक्षा की थी, अब इस विद्याधरी को प्राप्त करके तो न जाने क्या करेगा ?' राजा का यह उचित उत्तर सुनकर वह बेताल फिर अपने ही स्थान पर चला गया।"

## : २० :

# तेरहवां बेताल

"राजा त्रिविक्रमसेन उस मुर्दे को फिर पेड़ से उतारकर और कंधे पर रखकर चल दिया। मार्ग में बेताल ने राजा को यह कथा सुनाई :

"बनारस में देवस्वामी नाम का ब्राह्मण रहता था। उसका एक पुत्र हरिस्वामी था। उसकी स्त्री लावण्यवती अत्यंत सुंदरी थी। एक बार हरिस्वामी पत्नी के साथ महल के ऊपर चंद्रमा की शीतल किरणों में सो रहा था। उसी समय मदनवेग नाम का विद्याधर कुमार आकाश में विहार करता हुआ उधर आ निकला। उसने सोई हुई लावण्यवती को देखा। वह उस पर मुग्ध हो गया और उसे लेकर आकाश में उड़ गया। जागने पर हरिस्वामी ने उसे अपने पास न देखा तो वह बहुत व्याकुल हुआ और मरने के लिए तैयार हो गया। उसके बंधु-बांधुओं के बहुत समझाने पर उसने कुछ दिन तक धैर्य धारण किया। इसके बाद उसने सोचा कि अपना सब-कुछ ब्राह्मणों को दान देकर तीर्थों में घूम लूं—शायद पापों के नाश होने पर पत्नी से मिलन हो जाये। यह सोचकर वह अपना सर्वस्व दान देकर तीर्थयात्रा के लिए निकल पड़ा। अनेक तीर्थों में घूमते-घूमते वह ग्रीष्म ऋतु में एक गांव में पद्मनाभ ब्राह्मण के घर पर पहुंचा। ब्राह्मण की स्त्री ने उसे भूखा देखा, तो एक कटोरे में खीर भर कर दी और कहा, 'जाओ किसी बावड़ी के किनारे बैठकर खा लेना।' हरिस्वामी

उसे लेकर एक बावड़ी के किनारे बट के पेड़ के नीचे आया और कटोरे को वहां रखकर हाथ-मुंह धोने चला गया। इसी बीच में एक बाज किसी सर्प को पकड़-कर वहां आया और उसी पेड़ की शाखा पर बैठकर खाने लगा। उस मरे हुए सर्प के मुंह से विषैली लार निकल रही थी। वह उस खीर के पात्र में गिर पड़ी, जिससे वह सारी खीर विषाक्त हो गई। हरिस्वामी हाथ-मुंह धोकर आया और उसने उस खीर को खा लिया। खाते ही हरिस्वामी पर विष का असर हो गया और वह वेदना से तड़फड़ाने लगा। वह उसी अवस्था में उस ब्राह्मणी के पास पहुंचा और कहने लगा, 'तुम्हारी खीर में विष था, मैं उसकी वेदना से मर रहा हूं, कुछ उपाय करो, नहीं तो तुम्हें ब्रह्म-हत्या का पाप लगेगा।' यह कहते-कहते ही हरिस्वामी मर गया। उस स्त्री के पति ने उसे ब्रह्मघातिनी समझकर घर से निकाल दिया। इस प्रकार वह निर्दोष ब्राह्मणी शुभकर्म करने पर भी दुख को प्राप्त हुई। हरिस्वामी ब्राह्मण की हत्या का अपराधी कौन है, इस विषय को लेकर यमराज की सभा में विवाद हुआ, किंतु निर्णय न हो सका।

"यह कथा कहकर बेताल ने राजा से पूछा 'हे राजन! अब आप बताइये कि हरिस्वामी की हत्या का दोषी कौन है? सर्प, पक्षी या पद्मनाभ की स्त्री?' राजा ने उत्तर दिया, 'जो कोई इन तीनों को ब्रह्महत्या का दोषी ठहराता है, वह वास्तव में स्वयं दोषी है; क्योंकि सर्प तो इसलिए दोषी नहीं कि वह शत्रु के वश में था। बाज इसलिए दोषी नहीं है कि उसने भूख से पीड़ित होकर अचानक पाये हुए अपने भक्ष्य को खाया। ब्राह्मण की पत्नी इसलिए निर्दोष है कि उसने तो अपना धर्म समझ-कर हरिस्वामी को शुद्ध और निर्विष खीर दी थी। इसलिए जो व्यक्ति बिना विचारे इन तीनों में से किसी को दोषी बनाता है, वह जड़ है।' राजा त्रिविक्रमसेन का यह उत्तर सुनकर बेताल फिर पेड़ पर जा लटका।"

: २१ :

## चौदहवां बेताल

"राजा त्रिविक्रमसेन ने उस मुर्दे को फिर पेड़ पर से उतारा और कंधे पर रखकर चल दिया। बेताल ने राजा से यह कथा कहनी आरंभ की : अयोध्या

नगरी में राजा वीरकेतु राज्य करता था। उस नगर में रत्नदत्त एक बहुत धनिक वैश्य था। उसके रत्नवती नाम की एक पुत्री थी। जवान होने पर उसके रूप और लावण्य पर मुग्ध होकर केवल बड़े-बड़े धनिक वैश्यों ने ही नहीं, वरन राजाओं ने भी उस कन्या को रत्नदत्त से मांगा। वह कन्या पुरुष वेष में रहती थी और किसीसे भी विवाह करना नहीं चाहती थी। यदि उसके सामने विवाह की बात पर जोर दिया जाता, तो वह मरने पर उतारू हो जाती। इससे उसका पिता बहुत दुखी था। इसी बीच में उस नगरी में बहुत-सी चोरियां होने लगीं। इससे प्रजा बहुत पीड़ित थी। जब बहुत प्रयत्न करने पर भी रक्षक किसी चोर को न पकड़ सके, तो राजा स्वयं वेष बदलकर रात के समय घूमने लगा। एक बार जब राजा अकेला शस्त्र लिये हुए घूम रहा था, तो उसने शहर के परकोटे से बाहर निकलते हुए एक पुरुष को देखा। वह चुपचाप उसके पीछे-पीछे चल दिया। जब उसे यह निश्चय हो गया कि चोर यही है, तो वह उसके पास पहुंचा। चोर ने पूछा, 'तुम कौन हो?' राजा ने उत्तर दिया, 'मैं चोर हूं।' यह सुनकर चोर ने कहा, 'तब तो तुम मेरे हमराही हो, आओ मेरे घर चलो।' और वह चोर वन में जमीन के नीचे खुदे हुए एक घर में राजा को ले गया। उसे बाहर बैठाकर वह चोर किसी काम से अंदर गया। तभी एक दासी ने राजा से कहा, 'तुम यहां मृत्यु के मुंह में क्यों आ गये? यह चोर बड़ा विश्वासघाती है, तुम्हें मार डालेगा। सो, भाग जाओ।' यह सुनकर राजा वहां से निकल भागा। राजधानी में पहुंचकर उसने अपनी सेना ली और उस चोर के घर को चारों ओर से घेर लिया। जब चोर ने देख लिया कि उसका मरना निश्चित है, तो वह युद्ध के लिए बाहर निकल आया। राजा और चोर के बीच खूब लड़ाई हुई। अंत में चोर को राजा ने जीवित पकड़ लिया और उसे राजधानी में ले गया। वहां उसने उसे फांसी की आज्ञा दी। जब उस चोर को वध्य भूमि में ले जाया जा रहा था, तो रत्नवती ने उसे देखा और उस पर मुग्ध हो गई। उसने अपने पिता रत्नदत्त से कहा, 'मैं तो इस आदमी के साथ, जो वध्यभूमि में ले जाया जा रहा है, विवाह करूंगी। सो, आप इसकी रक्षा कीजिये, नहीं तो मैं भी इसके साथ मर जाऊंगी।' यह सुनकर रत्नदत्त ने अपनी पुत्री से कहा, 'बेटी, कहां तो तू राजा तक से विवाह नहीं करना चाहती और कहां आपत्ति में पड़े हुए इस चोर से विवाह करने को कहती है? यह ठीक नहीं।' किंतु वह अपने निश्चय पर स्थिर रही। तब रत्नदत्त ने अपना सर्वस्व देकर चोर

को छुड़ाने की प्रार्थना की, किंतु राजा ने उसकी प्रार्थना नहीं मानी। इस पर रत्नदत्त घर लौट आया और उसने पुत्री को सारी बात बता दी। तब रत्नवती भी चोर के साथ मरने के लिए वध्य स्थान में पहुंच गई। उसे मरने पर उतारू देखकर उसके माता-पिता भी रोने लगे। चोर को जब इन बातों का पता लगा, तो पहले तो वह कुछ रोया पर बाद में हंसता-हंसता फांसी पर चढ़कर मर गया। चोर के मरने पर वह कन्या उसका शव लेकर सती होने के लिए चिता में बैठी। उसी समय भैरव ने आकाश से अलक्षित होकर कहा, 'हे पतिव्रता स्त्री, मैं तेरी इस पतिभक्ति से प्रसन्न हूं। सो, तू मुझसे वर मांग।' यह सुनकर उस कन्या ने कहा, 'मेरे पुत्र विहीन पिता के सौ पुत्र हों।' भैरव ने कहा, 'तेरे पिता के सौ पुत्र उत्पन्न होंगे। अब कोई दूसरा वर मांग।' तब रत्नवती ने कहा, 'यदि आप मुझसे प्रसन्न हैं तो यह मेरा पति जीवित हो जाये और सदा धार्मिक रहे।' यह सुनकर भैरव ने उसके पति को भी जीवित कर दिया। तब रत्नदत्त प्रसन्न होकर उसे अपने घर ले गया और उन दोनों का विवाह कर दिया। राजा वीरकेतु ने भी चोर के जीवित होने का हाल सुनकर उसे अपना सेनापति बना दिया।

"यह कथा कहकर बेताल ने राजा त्रिविक्रमसेन से पूछा, 'बताइये, वह चोर क्यों तो पहले रोया और क्यों पीछे हंसता-हंसता मर गया ?' राजा ने उत्तर दिया, 'वह चोर रोया तो इसलिए, कि मैं रत्नदत्त का कुछ भी भला न कर सकूंगा और हंसा इसलिए, कि यह रत्नवती बड़े-बड़े धनिकों तथा राजाओं को छोड़कर मुझ पर मुग्ध होकर मरने को तैयार है; स्त्री के चित्त की गति कोई नहीं समझ सकता।'

"राजा का यह उत्तर सुनकर बेताल फिर पेड़ पर जाकर लटक गया।"

## : २२ :

## पंद्रहवां बेताल

"राजा त्रिविक्रमसेन उस मुर्दे को पेड़ से उतारकर और कंधे पर रखकर फिर चल दिया। मार्ग में बेताल राजा से यह कथा कहने लगा :

"प्राचीन काल में नेपाल देश के शिवपुर नाम के नगर में यशकेतु नाम का

राजा था उसके चंद्रप्रभा नाम की रानी से शशिप्रभा नामक पुत्री उत्पन्न हुई। जवान होने पर एक बार वह कन्या वसंत में यात्रा का उत्सव देखने के लिए उपवन में गई। वहां एक धनवान ब्राह्मण-पुत्र मनःस्वामी भी यात्रा के लिए आया था। वह उस राजपुत्री को देखकर उसे चाहने लगा। वह राजपुत्री भी उस पर अनुरक्त हो गई। तभी एक पागल हाथी बंधन तोड़कर मनुष्यों को रौंदता हुआ वहां आ गया। उसे देखकर राजकुमारी के सब अंगरक्षक वहां से भाग गये। असहाय और विपन्न देखकर मनःस्वामी उसको उठाकर दूर ले गया, जिससे उसकी प्राण-रक्षा हुई। हाथी के चले जाने पर शशिप्रभा के अंगरक्षक उसे राजमहल में ले गये। वहां पहुंचकर वह दिन-रात मनःस्वामी के ही ध्यान में मग्न रहने लगी। उधर मनःस्वामी भी उसके वियोग में बहुत दुखी रहने लगा। एक दिन वह अपने एक धूर्त किंतु सिद्ध गुरु मूलदेव के पास पहुंचा और उससे अपनी इच्छा कही। मूलदेव ने हंसकर उसकी कामना को सिद्ध करना स्वीकार कर लिया। उसने योग की एक गुटिका को अपने मुंह में रखकर वृद्ध ब्राह्मण का रूप धारण कर लिया। दूसरी योग-गुटिका को मनःस्वामी ने मुंह में रखा और वह एक सुंदरी कन्या बन गया। फिर वह धूर्त मूलदेव उस कन्या-रूपधारी मनःस्वामी को अपने साथ लेकर राजा यशकेतु के दरबार में पहुंचा और राजा से बोला, 'हे राजन ! मेरे एक ही पुत्र है। मैं उसके लिए इस कन्या को कहीं से मांगकर लाया हूं, किंतु वह न मालूम कहां चला गया है। इसलिए मैं उसे ढूंढ़ने के लिए जा रहा हूं। आप मेरी इस पुत्र-वधू को अपने पास रख लीजिये। जब मैं अपने पुत्र को ढूंढ़ लाऊंगा, तो इसे ले जाऊंगा।' यह सुनकर राजा ने अपनी पुत्री शशिप्रभा को बुलाकर कहा, 'बेटी, तुम इसकी रक्षा करना। हमेशा अपने पास ही रखना और अपने पास खाट बिछवाकर सुलाना।' पिता की आज्ञा के अनुसार शशिप्रभा उसे अपने साथ रखने लगी। मूलदेव भी अपने स्थान को चला आया। शशिप्रभा कन्या-रूप-धारी मनःस्वामी से खूब घुल-मिल गई और उसे अपनी विश्वासपात्र सखी बना लिया। एक दिन शशीप्रभा को दुखी देखकर उसने पूछा, 'सखि, क्या बात है ? तुम दिन-पर-दिन कमजोर क्यों होती जा रही हो ? यदि तुम मुझे अपना रहस्य न बताओगी तो मैं खाना-पीना छोड़ दूंगी।' शशिप्रभा बोली, 'सखि ! मैं एक दिन उपवन में गई थी, वहां मैंने एक सुंदर ब्राह्मण-कुमार को देखा। एक उन्मत्त हाथी से उसने मेरे प्राण बचाये। तभी से उसका स्वरूप मेरे हृदय में बस गया

है। किंतु मैं उसका नाम तथा पता आदि कुछ नहीं जानती। उसके वियोग में ही मेरी यह दशा हो गई है।' शशिप्रभा की इस प्रेमपूर्ण वाणी को सुनकर मनःस्वामी बहुत प्रसन्न हुआ और उसने अपने मुंह से वह गुटिका निकाल ली। अब वह पुरुष बन गया और बोला, 'मैं ही वह ब्राह्मण-कुमार हूं, जिसे तुमने अपने दर्शनों से खरीद लिया है। मैंने तुम्हें प्राप्त करने के लिए ही यह माया रची है।' शशि-प्रभा एकदम अपने प्रिय को सामने देखकर चकित रह गई और उन दोनों ने गंधर्व रीति से विवाह कर लिया। इस प्रकार मनःस्वामी दिन में गुटिका मुंह में रखकर कन्या-रूप धारण कर लेता और रात को मुंह से गुटका निकालकर पुरुष का रूप। कुछ दिनों के बाद राजा यशकेतु के साले मृगांकदत्त की पुत्री मृगांकदत्ता का विवाह महामंत्री प्रज्ञासागर के पुत्र के साथ होना निश्चित हुआ। राजपुत्री शशिप्रभा भी निमंत्रित होकर कन्या-रूपधारी मनःस्वामी के साथ मामा के घर गई। वहां मंत्री का पुत्र कन्या-रूपधारी मनःस्वामी के रूप-सौंदर्य पर रीझ गया। वह विवाह होने पर मृगांकदत्ता को तो अपने घर ले गया, किंतु कन्या-रूपधारी मनःस्वामी के लिए बेचैन रहने लगा। उसकी इस दशा को देखकर उसका पिता प्रज्ञासागर भी बहुत चिंतित हुआ। इस समाचार को सुनकर राजा यशकेतु भी वहां आ गया। उसके सामने यह विषम समस्या खड़ी हुई कि वह धरोहर में रखी हुई ब्राह्मण-कन्या को उसे कैसे दे दे? और दूसरी ओर यह कि यदि मंत्री-पुत्र को कन्या न दी गई, तो वह मर जायेगा। उसके मरने पर उसका पिता भी मर जायगा।

"अंत में लोगों ने राजा को यही सलाह दी कि इस समय ब्राह्मण-कन्या का विवाह मंत्री-पुत्र के साथ करके उसे मरने से बचाया जाय। जब ब्राह्मण उसे मांगने आयेगा, तब जैसा होगा, वैसा देखा जायेगा। राजा ने यह सलाह मान ली। यह जानकर कन्या-रूपधारी मनःस्वामी ने कहा, 'दूसरे के लिए लाई हुई मुझे यदि आप किसी दूसरे को देते हैं, तो मैं इस शर्त पर विवाह करूंगी कि छह महीने तक मेरा पति तीर्थ-यात्रा करे। इसके बाद मैं उससे बात करूंगी।' मंत्री-पुत्र ने उसकी यह शर्त मान ली और उन दोनों का विवाह हो गया। तब वह मंत्री-पुत्र कन्या-रूपधारी मनःस्वामी को अपनी नवविवाहिता पत्नी मृगांक-वती पास छोड़कर तीर्थ-यात्रा करने चला गया। मनःस्वामी भी कन्या-वेष में मृगांकवती के साथ एक ही मकान में रहने लगा। मनःस्वामी ने मृगांकवती के

साथ रहते हुए उसे ऐसी-ऐसी कथाएं सुनाईं कि वह पुरुषों के लिए उत्कंठित हो उठी। मृगांकवती उसे अपनी विश्वस्त सखी मानकर उससे पुरुष के मिलने का उपाय पूछने लगी। कन्यारूप मनःस्वामी ने उससे कहा, 'मुझे एक देवता का ऐसा वरदान प्राप्त है कि मैं अपनी इच्छा के अनुसार जब चाहे पुरुष और जब चाहे स्त्री बन सकती हूं। सो मैं तुम्हारे लिए अभी पुरुष बन जाती हूं।' यह कहकर उसने अपने मुंह से योग-गुटिका को निकालकर अपना पुरुष-रूप प्रकट किया। इस प्रकार वह दिन में कन्या रूप में और रात्रि में पुरुष-रूप में मृगांकवती के साथ रहने लगा। जब छः महीने की अवधि निकट आ गई, तो वह एक रात मृगांकवती को साथ लेकर भाग आया। इसके कुछ दिन बाद उसका गुरु मूलदेव पुनः बूढ़े ब्राह्मण का वेष बनाकर और अपने मित्र शशि को अपना युवा पुत्र बनाकर राजा यशकेतु के पास आया और उस कन्या को मांगा। शाप के भय से डरकर राजा ने ब्राह्मण से कहा, 'हे ब्राह्मण! आपकी वह पुत्र-वधू तो न जाने कहां चली गई? सो, आप मेरी पुत्री से अपने पुत्र का विवाह कर लीजिये।' मूलदेव ने उसकी बात मान ली। तब राजा ने अपनी पुत्री शशिप्रभा का विवाह वृद्ध ब्राह्मण रूपधारी धूर्त मूलदेव के बनावटी पुत्र शशि के साथ कर दिया। शशिप्रभा को साथ लेकर अपने घर आने पर मनःस्वामी और शशि में शशिप्रभा के लिए विवाद उठ खड़ा हुआ। मनःस्वामी कहता था कि यह मेरी पत्नी है, क्योंकि मैंने इसके साथ पहले गंधर्व रीति से विवाह किया है और शशि कहता था कि मैं इसका पति हूं, क्योंकि मैंने सबके सामने विधिपूर्वक इसके साथ विवाह किया है। इस प्रकार उन दोनों के विवाद का कोई निर्णय न हो सका।

"बेताल ने कहा, 'हे राजन, आप इसका निर्णय करो कि शशिप्रभा किसकी पत्नी होनी चाहिए?'

"बेताल के इस प्रश्न को सुनकर राजा विक्रमसेन ने उत्तर दिया, 'मेरे विचार में शशिप्रभा शशि की पत्नी है, क्योंकि उसके पिता ने उसको ही विधिपूर्वक सबके सामने दिया है। मनःस्वामी का गंधर्व विवाह पहले होते हुए भी चोरी है और चोरी की वस्तु पर चोर का अधिकार नहीं होता।' राजा का यह उत्तर सुनकर बेताल फिर राजा के कंधे से उतरकर पेड़ पर जा लटका।"

## : २३ :

## सोलहवां बेताल

"पहले की तरह राजा त्रिविक्रमसेन फिर उस मुर्दे को शीशम के पेड़ पर से उतारकर कंधे पर उठाकर चल दिया। मार्ग में बेताल ने राजा को जीमूतवाहन[1] और शंखचूड़ नामक सर्प की कथा सुनाई और फिर पूछा, 'बताइये, जीमूतवाहन और शंखचूड़ दोनों में से कौन अधिक साहसी और पराक्रमी था?' बेताल का यह प्रश्न सुनकर राजा ने उत्तर दिया, 'जीमूतवाहन तो अनेक जन्मों से सिद्ध और दयालु स्वभाववाला था, सो दूसरों के लिए उसका प्राण दे देना कोई महत्व नहीं रखता। प्रशंसनीय तो वह शंखचूड़ है जो मरने से बच कर भी स्वयं गरुड़ के पास पहुंचा और बोला, 'आप इसे मत खाइये, यह सर्प नहीं है। सर्प मैं हूं मुझे खाइए।' राजा के इस उत्तर को सुनकर बेताल फिर कंधे से उतरकर पेड़ की शाखा पर जा लटका।"

## : २४ :

## सत्रहवां बेताल

"राजा त्रिविक्रमसेन उस मुर्दे को लाने के लिए फिर शीशम के पेड़ पर गया और उसे कंधे पर रखकर चल दिया। मार्ग में बेताल ने उसे राजा यशोधन[2] और उन्मादिनी की कथा सुनाई। फिर पूछा, 'बताइये सेनापति बलधर और राजा यशोधन में से कौन अधिक साहसी है?' राजा ने कहा, 'राजा यशोधन ही

**१. यह कथा चौथे खंड के दूसरे अध्याय में आई है।**

**२. यह कथा तीसरे खंड के पहले अध्याय में आई है। अंतर केवल इतना है कि वहां राजा का नाम देवसेन और उसकी राजधानी श्रावस्ती है और यहां राजा का नाम यशोधन और राजधानी कनकपुर है। जिस सेनापति के साथ उन्मादिनी का विवाह हुआ है, वहां उसका नाम नाम नहीं दिया है, यहां उसका नाम बलधर है।**

अधिक साहसी हैं, क्योंकि उसने राजधर्म पर दृढ़ रहने के लिए उन्मादिनी को उसके पति के कहने पर भी स्वीकार न करके अपने प्राणों को त्याग दिया। सेनापति सत्कुल में उत्पन्न होने के कारण कुलीन सेवक था, उसके लिए अपने स्वामी की भलाई में प्राण दे देना कोई आश्चर्य नहीं। प्रशंसनीय तो राजा का चरित्र है कि उसने अपने प्राण देकर भी राजधर्म नहीं छोड़ा। अक्सर राजा लोग राजधर्म छोड़कर विषयी और विवेकहीन हो जाते हैं। इस प्रकार का धीर और न्यायशील राजा पृथ्वी पर केवल यशोधन ही हुआ है, जिसने उन्मादिनी जैसी स्त्री के लिए अपने प्राण तो दे दिये, किंतु राजधर्म न छोड़ा।' राजा का यह उत्तर सुनकर बेताल फिर पेड़ पर जा लटका।"

## : २५ :

# अठारहवां बेताल

"राजा त्रिविक्रमसेन फिर उस शीशम के पेड़ के नीचे पहुंचा। वहां जाकर उसने देखा कि बहुत से बेताल की आकृति के विरूप शव उस पेड़ पर लटक रहे हैं। राजा बड़ी शंका में पड़ा कि उनमें से कौनसे शव को लेकर वह जाये। उसने मन में सोचा कि या तो यही बेताल अथवा अन्य कोई मायावी मेरी इस सिद्धि में बाधा डालने के लिए व्यर्थ समय नष्ट कर रहा है और यदि मुझे इस रात्रि में सिद्धि प्राप्त न हुई, तो मैं सवेरे लोगों की हंसी का पात्र बनने की अपेक्षा अग्नि में जलकर मर जाऊंगा। राजा का यह निश्चय जानकर और उसके साहस से प्रसन्न होकर बेताल ने अपनी माया समेट ली। अब वहां एक ही मुर्दा रह गया। राजा उसे लेकर चल दिया। मार्ग में वह बेताल राजा से यह कथा कहने लगा :

"उज्जयनी में राजा चंद्रप्रभ का मंत्री देवस्वामी बड़ा ही बुद्धिमान, धनी और यज्ञशील था। कुछ समय के बाद उसके चंद्रस्वामी नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। वह नवयुवक विद्याएं पढ़कर भी जुआरी हो गया। जुए के व्यसन में पड़कर वह एक दिन द्यूतशाला में अपना सारा धन तो हार ही गया, कुछ धन किसी जुआरी से उधार लेकर भी हार गया। जब उस जुआरी ने उससे अपना धन वापस मांगा तो वह न दे सका। इसलिए जुआरियों ने मिलकर उसके सब कपड़े उतार लिये

और उसे लाठियों से मारकर एक निर्जन स्थान में डाल दिया। सौभाग्यवश वह मरा नहीं और उन जुआरियों के चले जाने पर उठकर चुपचाप पास में किसी सूने शिव-मंदिर में चला गया। वह सोचने लगा कि मैं अब अपने घर कैसे जाऊंगा ? मेरे माता-पिता और बंधु-बांधव क्या कहेंगे ? सो वह लज्जा के मारे घर पर न गया और वहीं पड़ा रहा। रात्रि के समय वहां एक तपस्वी आया, जो जटा और त्रिशूल धारण किये हुए साक्षात शिवजी-सा प्रतीत होता था। तपस्वी ने चंद्रस्वामी से उसका परिचय पूछा, तो उसने अपना सारा हाल तपस्वी को बता दिया। तपस्वी ने कहा, 'लो, तुम मेरे भिक्षान्न में से कुछ खा लो।' चंदस्वामी बोला, 'महाराज ! मैं ब्राह्मण-पुत्र हूं। आपकी भिक्षा में से कैसे खा सकता हूं ?' यह सुनकर उस तपस्वी ने मठ में जाकर इष्टसंपादिनी-सिद्धि का स्मरण किया। स्मरण करते ही सिद्धि उपस्थित हुई। तपस्वी ने उससे कहा, 'हमारे इस अतिथि का खूब सत्कार करो।' तब सिद्धि के प्रभाव से एक स्वर्णमय महल बन गया। उसमें से श्रेष्ठ और सुंदर स्त्रियों ने निकलकर चंद्रस्वामी से कहा, 'उठिये ! स्नान और भोजन कीजिये।' वे उसे महल में ले गईं, अच्छे वस्त्र पहनने को दिये और दिव्य भोजन कराकर उसे उत्तम शयन-स्थान में भेज दिया। एक दिव्य स्त्री भी उसके पास भेज दी। चंद्रस्वामी रात भर वहां सुख से सोया और सवेरे उसने जगकर देखा कि वह फिर उसी सूने शिवालय में पड़ा है। तब उसने तपस्वी से कहा, 'महाराज, मैं आपके प्रताप से रात भर सुख से रहा, किंतु मेरे प्राण उस स्त्री के बिना न बचेंगे, जिसे मैंने रात उस स्वर्णगृह में देखा था।' यह सुनकर तपस्वी ने हंसते हुए कहा, 'अच्छा तुम यहीं रहो, रात को इसी प्रकार तुम्हें फिर सुख भोगने को मिलेंगे।' इस प्रकार चंद्रस्वामी बहुत दिनों तक सुख भोगता हुआ वहां रहा। एक दिन उसने तपस्वी से कहा, 'यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं, तो कृपा करके यह विद्या मुझे भी बता दीजिये।' तपस्वी ने कहा, 'इस विद्या का सिद्ध होना बहुत कठिन है। इसे सिद्ध करने के लिए जल के अंदर खड़ा होकर मंत्र जपना पड़ता है। माया से साधक को ऐसा मालूम होता है कि मेरा जन्म हुआ और जवान होने पर स्त्री, पुत्र, बंधु-बांधव सब मिले। वह माया में इतना लिप्त हो जाता है कि वह अपने इस जन्म को और विद्या की सिद्धि-क्रिया को भी भूल जाता है। जो अड़तीस वर्ष का होकर गुरु की विद्या से प्रबोधित होकर उसी जन्म में माया की अग्नि में प्रवेश करता है, उसीको यह विद्या सिद्ध होती है। यदि यह विद्या किसी अपात्र शिष्य को दे दी जाय तो

उसके गुरु की भी विद्या नष्ट हो जाती है। सो, तुम्हें मेरी सिद्धि से ही जब फल मिल रहा है, तो स्वयं सिद्ध करने की क्या आवश्यकता है? कहीं ऐसा न हो कि तुम सिद्धि न कर पाओ और मेरी सिद्धि भी नष्ट हो जाय?' तपस्वी के समझाने पर भी जब चंद्रस्वामी न माना, तो उसने नदी के किनारे पर ले जाकर उसे सिद्ध करने की विधि और मंत्र बता दिये और कहा, 'जब तुम इस विद्या का जप करते हुए माया से मोहित होगे, तो मैं ुम पर प्रबोधिनी विद्या का प्रयोग करूंगा, उससे बोधित होकर तुम अग्नि में प्रवेश कर जाना। मैं तबतक यहीं तुम्हारे पास नदी के किनारे पर बैठा रहूंगा।' चंद्रस्वामी तपस्वी के द्वारा बताये हुए नियम के अनुसार विद्या को जपने लगा। जपते-जपते वह एकदम माया से मोहित हो गया। उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि वह किसी ब्राह्मण के पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ है, समस्त विद्याएं पढ़कर उसका विवाह हो गया है और संतान भी हो गई हैं। चंद्रस्वामी को अपने इस जन्म की स्मृति जाती रही। तभी उस तपस्वी गुरु ने प्रबोधिनी विद्या का प्रयोग किया। उस विद्या के प्रभाव से प्रबोधित होकर और माया रहित होकर वह अग्नि में प्रवेश करने को उद्यत हुआ। उसने देखा कि उसे मरने के लिए तैयार देखकर उसके माता-पिता, भाई-बंधु, स्त्री-पुत्र आदि रो रहे हैं और उसे अग्नि-प्रवेश से रोक रहे हैं। वह फिर मोह के वश होकर सोचने लगा कि मेरे मरने पर ये मेरे सभी संबंधी-कुटुंबी मर जायेंगे और न जाने गुरु का वचन सत्य है अथवा नहीं? सो, अग्नि में प्रवेश करूं या नहीं?

"इस प्रकार सोचता हुआ वह अग्नि में प्रविष्ट हुआ। किंतु उसने अनुभव किया कि वह अग्नि शीतल हो गई है और वह माया भी शांत हो गई है। वह विस्मित होकर नदी से निकला और किनारे पर गुरु के पास आया। उसने गुरु को बताया, 'मैं ज्यों ही अग्नि में प्रविष्ट हुआ, त्यों ही अग्नि ठंडी हो गई।' तपस्वी ने कहा, 'वत्स, मालूम पड़ता है कि तुम्हारे करने में कोई कसर रह गई है।' चंद्रस्वामी ने कहा, 'महाराज, मैंने जान-बूझकर कोई कसर नहीं छोड़ी।' तब तपस्वी ने स्वयं सिद्धि का स्मरण किया, किंतु वह याद न आ सकी। न तो वह गुरु पर ही प्रगट हुई न शिष्य पर ही। वे दोनों विद्या के नष्ट हो जाने से बहुत दुखी हुए।

"यह कथा कहकर बेताल ने राजा से पूछा, 'राजन, मेरे इस संदेह को दूर कीजिये कि दोनों की वह विद्या क्यों नष्ट हो गई?' राजा ने उत्तर दिया, 'तुम व्यर्थ में क्यों समय नष्ट कर रहे हो? इसका उत्तर तो स्पष्ट है कि निर्मल और शुद्ध संकल्प

वाले लोगों को ही सिद्धि प्राप्त होती है। चंद्रस्वामी के हृदय में यह शंका उत्पन्न हुई थी कि गुरु का वचन सत्य है अथवा नहीं। इस विकल्प मात्र के दोष से उसे सिद्धि प्राप्त नहीं हुई। तपस्वी की सिद्धि इसलिए नष्ट होगई कि उसने अपात्र को विद्या का उपदेश दिया था।'

"राजा का यह उत्तर सुनकर बेताल फिर उसी पेड़ पर चला गया।"

## : २६ :
## उन्नीसवां बेताल

"राजा त्रिविक्रमसेन उस बेताल को शीशम के पेड़ पर से उतारकर और कंधे पर रखकर फिर चल दिया। मार्ग में बेताल ने राजा को यह कथा सुनाई :

"वक्रोलक नाम के नगर में राजा सूर्यप्रभ राज्य करता था। समस्त संपत्तियों से युक्त होने पर भी उसके कोई पुत्र न था। उसी समय ताम्रलिप्ति नगरी में धनपाल नाम का एक धनाढ्य वैश्य रहता था। उसकी पत्नी का नाम हिरण्यवती था। धनपाल के केवल धनवती नाम की एक पुत्री थी। उस लड़की के युवती होने पर धर्मपाल मर गया और उसका धन उसके भाई-बंधुओं ने हथिया लिया। उसकी पत्नी हिरण्यवती उसके भाइयों से डरकर अपनी पुत्री धनवती के साथ अपने छिपे हुए रत्न आभूषणों को लेकर रात के समय नगर छोड़कर चली गई। मार्ग में उन्होंने एक चोर को शूली पर लटके हुए देखा। वह अभी तक मरा नहीं था। हिरण्यवती ने उससे पूछा, 'तुम कौन हो?' उसने कहा, 'मैं चोर हूं।' तब चोर ने उनका परिचय पूछा और हिरण्यवती ने अपना सब हाल बता दिया। चोर ने हिरण्यवती के साथ कन्या को देखकर कहा, 'तुम मेरी एक प्रार्थना मान लो : मैं तुम्हें एक हज़ार अशर्फियां देता हूं, तुम इस कन्या को मुझे दे दो।' हिरण्यवती ने कहा, 'तुम तो अभी मरनेवाले हो, इस कन्या को लेकर क्या करोगे?' चोर ने उत्तर दिया, 'मेरे कोई भी पुत्र नहीं है और अपुत्र मनुष्य को परलोक में सद्गति नहीं प्राप्त होती। सो मेरी आज्ञा से किसी अन्य पुरुष से भी इसके जो पुत्र उत्पन्न होगा, वह मेरा क्षेत्रज पुत्र होगा और उससे ही मुझे सद्गति प्राप्त होगी।' यह सुनकर उस वैश्य-पत्नी ने लोभवश उसकी बात स्वीकार कर ली। वह कहीं से जल

लाई और संकल्प करके उसने धनवती को उसे दे दिया। तब चोर ने उससे कहा, 'इस बड़ के पेड़ के नीचे से जमीन खोदकर अशर्फियां ले लो और मेरे प्राण निकलने पर विधिपूर्वक मेरा दाह-संस्कार करके तुम अपनी पुत्री के साथ वक्रोलक नगर में चली जाना, वहां सूर्यप्रभ राजा के राज्य में तुम सुख से रहोगी।' यह कहकर वह चोर मर गया। तब हिरण्यवती ने पेड़ के नीचे से जमीन खोदकर गड़ा हुआ धन निकाल लिया और उस चोर का शव जलवाकर उसकी अस्थियां तीर्थ-स्थानों में डलवा दीं। इसके बाद वह वक्रोलक नगर में एक मकान लेकर अपनी पुत्री के साथ रहने लगी। वहां अध्यापक वसुदत्त का मनःस्वामी नामक अत्यंत रूपवान नवयुवक ब्राह्मण-शिष्य रहता था। वह विद्या-संपन्न होते हुए भी हंसावली वेश्या के पीछे पागल था किंतु वह वेश्या पांच सौ अशर्फियां मांगती थी और वह ब्राह्मण-कुमार इतनी अशर्फियों के न होने से बहुत दुखी रहता था। एक दिन मनःस्वामी को धनवती ने अपने मकान के ऊपर से देख लिया और वह देखते ही उसको चाहने लगी। जब हिरण्यवती को अपनी पुत्री की यह इच्छा मालूम हुई, तो उसने रहस्य जानने वाली एक दासी को मनःस्वामी के पास उसे बुलाने के लिए भेजा। उस दासी ने मनःस्वामी से जाकर सारा हाल कहा। मनःस्वामी ने उत्तर दिया, 'यदि मुझे हंसा-वली के लिए पांच सौ अशर्फियां दी जायें, तो मैं केवल एक रात के लिए धनवती से मिल सकता हूं।' हिरण्यवती ने चोर की आज्ञानुसार धनवती से पुत्र उत्पन्न कराने के लिए उसे धन देना स्वीकार कर लिया। धन लेकर मनःस्वामी एक रात धनवती के साथ रहा। समय पाकर धनवती ने राजलक्षणों से युक्त एक पुत्र उत्पन्न किया। उसी रात को भगवान शिव ने उन दोनों को स्वप्न में दर्शन देकर कहा, 'तुम इस बालक को एक हजार अशर्फियों के साथ राजा सूर्यप्रभ के दरवाजे पर रख आओ। इससे इस बालक का कल्याण होगा।' जगने पर दोनों ने एक-दूसरे से अपना स्वप्न कहा और वे उस बालक को एक हजार अशर्फियों के साथ राजा सूर्यप्रभ के महल के दरवाजे पर रख आईं। उसी समय शिवजी ने राजा सूर्यप्रभ को भी स्वप्न में दर्शन देकर कहा, 'हे राजन! तुम्हारे द्वार पर किसीने धनयुक्त एक भव्य बालक रख दिया है, तुम उसे ग्रहण करो।' जगकर राजा ने अपने नौकरों को द्वार पर भेजा। वहां उन्हें एक बालक और एक हजार अशर्फियां मिलीं। उसे पाकर राजा ने खूब उत्सव मनाये और उसका नाम चंद्रप्रभ रखा। चंद्रप्रभ विद्याएं पढ़कर एक सर्वगुणसंपन्न नवयुवक बना और तब राजा ने उसे राज्य

संभालने के योग्य जानकर सिंहासन पर बैठा दिया। स्वयं वृद्ध होने के कारण वह काशी चला गया और कुछ दिन बाद वहां शरीर त्याग दिया। राजा की मृत्यु का समाचार पाकर चंद्रप्रभ पिता के ऋण से उऋण होने के लिए राज्य का भार मंत्रियों पर छोड़कर तीर्थ-यात्रा और गया में पिंड-दान के लिए निकला। वह पुरोहित के साथ गंगा पहुंचा और वहां पिता की अस्थियों को जल में प्रवाहित किया। फिर प्रयाग तथा काशी में जाकर शास्त्रोक्त विधि से श्राद्ध आदि किये। अंत में वह गया पहुंचा। वहां गयाकूप में जाकर वह जब अपने पिता के लिए पिंड देने लगा तो उसमें से तीन हाथ बाहर निकले। उन्हें देखकर राजा चंद्रप्रभ बहुत चकित हुआ और उसने ब्राह्मणों से पूछा, 'मैं किस हाथ में पिंड दूं ?' उन्होंने उत्तर दिया, 'लोहे की कीलवाला हाथ तो निश्चित ही चोर का है। जिस हाथ में पवित्री है, वह ब्राह्मण का है और अंगूठीवाला तीसरा सुंदर हाथ राजा का है। सो, हम कुछ नहीं कह सकते कि पिंड कौनसे हाथ में दिया जाये ?' यह सुनकर राजा बड़े भ्रम में पड़ गया।

"यह कथा सुनाकर बेताल ने राजा त्रिविक्रमसेन से पूछा, 'राजन ! आप बताइये कि चंद्रप्रभ को कौनसे हाथ में पिंड देना चाहिए ?' बेताल का प्रश्न सुनकर राजा ने उत्तर दिया, 'चंद्रप्रभ को चोर के हाथ में पिंड देना चाहिए क्योंकि उसी का वह क्षेत्रज पुत्र है। मनःस्वामी ब्राह्मण उसका पिता इसलिए नहीं हो सकता कि वह तो केवल एक रात के लिए पैसे से खरीदा हुआ था। राजा सूर्यप्रभ इसलिए उसका पिता नहीं है कि उसे पालने का मूल्य इस बालक के साथ ही शिवजी की आज्ञा से दे दिया गया था। इसलिए वही उसका वास्तविक पिता है, जिसको उसकी मां का हाथ विधिपूर्वक जल-सहित दिया गया था और वही पिंड पाने का अधिकारी है।' राजा के इस उत्तर को सुनकर बेताल फिर राजा के कंधे से उतरकर शीशम के पेड़ चला गया।"

## : २७ :

# बीसवां बेताल

"राजा त्रिविक्रमसेन फिर शीशम के पेड़ के पास गया। मुर्दे को उतारा और कंधे पर रखकर चल दिया। मार्ग में बेताल फिर यह कथा सुनाने लगा :

"चित्रकूट नगर में राजा चंद्रावलोक राज्य करता था। एक दिन मनोविनोद के लिए वह कुछ घुड़सवारों के साथ शिकार खेलने वन में गया। वहां अनेक पशुओं का शिकार करता हुआ वह अकेला बहुत दूर बीहड़ वन में पहुंच गया। जब घोड़ा थककर ठहर गया, तब उसे पता चला कि वह मार्ग भूल गया है। इधर-उधर भटकते हुए उसे पास ही एक विशाल तालाब दिखाई दिया। वहां जाकर राजा ने स्नान किया और जल पिया। थोड़ी देर विश्राम करने के बाद जब उसने इधर-उधर दृष्टि डाली, तो अशोक के पेड़ के नीचे उसने सखी के साथ एक सुंदरी मुनि-कन्या को देखा। उसने भी राजा को देखा और दोनों एक दूसरे के प्रति आकर्षित हो गये। राजा ने सखी से उस कन्या का परिचय पूछा। उसने कहा, 'यह मेनका अप्सरा से उत्पन्न महर्षि कण्व की पालिता पुत्री है, इसका नाम इंदीवरप्रभा है। पिता की आज्ञा पाकर यह यहां स्नान करने आई है। इसके पिता कण्व का आश्रम यहां से थोड़ी ही दूरी पर है।'

"यह सुनकर राजा उसे मांगने के लिए कण्व मुनि के आश्रम में गया और महर्षि को प्रणाम करके बैठ गया। महर्षि ने उसका अतिथि-सत्कार किया और उसे उपदेश देते हुए बोले, 'तुम पशुओं की हिंसा करना छोड़कर अपने शस्त्र का प्रयोग प्रजा की रक्षा में करो। राज्य के सुख को भोगो, किंतु दरिद्रों को धन दो और यश कमाओ।' महर्षि कण्व का यह उपदेश सुनकर चंद्रावलोक ने विनीत होकर कहा, 'भगवन! मैं आपके इस उपदेश के लिए अनुगृहीत हूं, मैं ऐसा ही करूंगा।' यह सुनकर मुनि बोले, 'तुम्हारी इस प्रतिज्ञा से मैं बहुत प्रसन्न हूं। तुम मुझसे यथेच्छ वर मांगो।' राजा ने कहा, 'महाराज! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं, तो मुझे अपनी पुत्री इंदीवरप्रभा दे दीजिये।' राजा की यह प्रार्थना सुनकर मुनि ने उसके साथ इंदीवरप्रभा का विवाह कर दिया। विवाह के बाद राजा इंदीवरप्रभा के साथ घोड़े पर चढ़कर अपने नगर की ओर चला। मार्ग में चलते-चलते अंधेरा हो गया। वह एक बावड़ी के

पास पहुंचकर घोड़े से उतरा और रात भर वहीं एक पेड़ के नीचे रहा। सवेरे उठकर वह ज्यों ही वहां से चलने को तैयार हुआ, त्यों ही एक महाभयंकर ब्रह्म-राक्षस क्रोध से लाल आंखें किये वहां आया और राजा से बोला, 'अरे पापी! क्या तू मुझ ज्वालामुख नाम के ब्रह्मराक्षस को नहीं जानता? यह वृक्ष मेरा निवास स्थान है। देवता भी इसको नहीं लांघ पाते हैं और तू रात भर यहां स्त्री के साथ रहा है। सो, तू इसका फल भोग। मैं अभी छाती फाड़कर तेरा खून पीता हूं।' ब्रह्मराक्षस की ये बातें सुनकर और उसे अवध्य मानकर राजा ने भय से विनम्र होकर कहा, 'महाराज! मैंने अनजाने में यह अपराध किया है, अतः मुझे क्षमा कीजिये। मैं आपकी शरण में हूं। आप मुझे छोड़ दीजिये, इसके अतिरिक्त आप जिसे भी पशु या मनुष्य की भेंट चाहेंगे, मैं दूंगा।' राजा की यह बात सुनकर ब्रह्मराक्षस शांत हो गया और बोला, 'अच्छा, आज से सात दिन के अंदर अंदर तुम अपने हाथ से एक ऐसे सात वर्ष के विवेकी और साहसी ब्राह्मण-पुत्र का बलिदान करो, जो तुम्हारे लिए अपनी इच्छा से अपने को दे और उसके माता-पिता उसे मारते समय उसके हाथ-पैर पकड़ें। यदि तुम ऐसा नहीं करोगे, तो मैं सपरिवार तुम्हारा नाश कर दूंगा।' राजा ने भय से उसकी यह बात मान ली और वहां से अपने नगर को लौट आया। प्रजा ने उसका खूब सत्कार किया और उत्सव मनाये, किंतु राजा का मन बड़ा उदास था। अगले दिन उसने अपने मंत्रियों को एकांत में यह वृत्तांत सुनाया, तो उनमें से सुमति नाम के एक मंत्री ने कहा, 'राजन! आप दुखी न हों; मैं ऐसे उपहार को ढूंढ़कर लाऊंगा, यह पृथ्वी बड़ी विचित्र है।' राजा को यह आश्वासन देकर मंत्री ने सात वर्ष के बालक की एक सोने की प्रतिमा बनवाई और उसे रत्नों से अलंकृत करके नगर-नगर में और गांवों में घुमवाया। साथ ही यह घोषणा भी की कि जो सात वर्ष का ब्राह्मण पुत्र अपनी खुशी से ब्रह्मराक्षस के बलिदान के लिए अपने को उपहार रूप में देगा और उसके माता-पिता उस समय उसके हाथ-पैर पकड़ेंगे, उसे राजा की ओर से बालक की यह प्रतिमा तथा सौ गांव भेंट में दिये जायेंगे।

"इस घोषणा को सुनकर सात वर्ष के अत्यंत धीर तथा अद्भुत आकृतिवाले एक ब्राह्मण पुत्र ने यह घोषणा करनेवालों से कहा, 'मैं राजा के लिए अपना शरीर दूंगा। अपने माता-पिता से आज्ञा लेकर मैं अभी तुम्हारे पास आता हूं।' बालक ने घर जाकर अपने माता-पिता से सब हाल सुनाया और कहा, 'मैं

आपकी दरिद्रता को दूर करने के लिए तथा राजा की भलाई के लिए अपना शरीर दूंगा। आपकी दरिद्रता दूर हो जाने पर आपको बहुत से पुत्र मिल जायेंगे।' बेटे की यह बात सुनकर माता-पिता बोले, 'पुत्र ! तुम कैसी बात करते हो ? क्या कहीं धन के लिए कोई अपने पुत्र को भी मरवाता है ?' ब्राह्मण-पुत्र ने उत्तर दिया, 'शरीर नश्वर है, आज न सही कल, उसे नष्ट होना है। सो क्यों न पितृ-भक्ति तथा राज-भक्ति के लिए उसका उपयोग किया जाय ?' इस प्रकार उस बालक ने अपने माता-पिता को राजी कर लिया। तब राजा उस बालक तथा उसके माता-पिता को हाथी पर चढ़ाकर ब्रह्मराक्षस के पास ले गया। वहां पुरोहित ने उस ब्रह्मराक्षस का आवाहन किया और वह राक्षस प्रकट हुआ। उसे देखकर राजा चंद्रावलोक ने कहा, 'आज सातवां दिन है। मैं आपके लिए यह उपहार लाया हूं। आप इसे स्वीकार कीजिये।' तब माता-पिता ने उस बालक के हाथ-पैर पकड़े और राजा हाथ में तलवार लेकर उसे ब्रह्मराक्षस के सामने मारने को तैयार हुआ। राजा के तलवार उठाते ही वह बालक बड़े जोर से खिलखिलाकर हंसा। यह देखकर ब्रह्मराक्षस सहित वे आश्चर्य चकित होकर उसके मुंह की ओर देखने लगे।

"यह कथा सुनाकर बेताल ने राजा त्रिविक्रमसेन से पूछा, 'हे राजन ! वह बालक क्यों हंसा ? मेरे प्रश्न का उत्तर दो नहीं तो तुम्हारे सिर के टुकड़े-टुकड़े हो जायेंगे।' यह प्रश्न सुनकर राजा ने उत्तर दिया, 'उस बालक के हंसने का अभिप्राय यह था कि प्रत्येक प्राणी भय के कारण अपने प्राणों की रक्षा के लिए मां-बाप को पुकारता है, माता-पिता के अभाव में राजा पीड़ितों की रक्षा के लिए बनाया गया है, यदि राजा भी रक्षा करने में असमर्थ हो, तो अंत में मनुष्य देवता को याद करता है; किंतु यहां तो सभी विपरीत हो रहा है। माता-पिता ने तो पैसे के लोभ में हाथ-पैर पकड़ रखे हैं। राजा रक्षक होने की अपेक्षा स्वयं मार रहा है और देवता भक्षक बन रहा है। यह शरीर नश्वर है फिर भी प्राणी इसके लिए कितने मोह में पड़ा हुआ है ! यह आश्चर्य है। किंतु वह ब्राह्मण-पुत्र परोपकार के लिए अपना शरीर दे रहा था। इसी हर्ष और आश्चर्य से वह बालक हंसा था।'

"राजा के इस उत्तर को सुनकर बेताल फिर कंधे से उतरकर पेड़ पर लटक गया।"

: २८ :

# इक्कीसवां बेताल

"पहले की तरह त्रिविक्रमसेन फिर उस शीशम के पेड़ से मुर्दे को उतारकर ले चला। मार्ग में वह बेताल फिर राजा से एक कथा कहने लगा :

"विशाला नाम की नगरी में पद्मनाभ नाम का विख्यात राजा था। उसकी नगरी में अर्थदत्त नाम का बहुत धनपति वैश्य रहता था। उसकी एकमात्र कन्या अनंगमंजरी बड़ी रूपवती थी। अर्थदत्त ने उसका विवाह ताम्रलिप्ती नगरी के एक धनवान वैश्य पुत्र मणिवर्मा के साथ कर दिया। अनंगमंजरी के एकमात्र संतान होने के कारण अर्थदत्त ने मणिवर्मा को अपने घर पर रख लिया। मणिवर्मा अनंगमंजरी को बहुत प्यार करता था, किंतु अनंगमंजरी को वह बिल्कुल प्रिय न था। एक बार मणिवर्मा अनंगमंजरी को उसके पिता के घर पर ही छोड़कर अपने माता-पिता से मिलने ताम्रलिप्ती गया। इसी बीच वर्षाऋतु आरंभ हो गई और मार्ग के खराब होने के कारण वह कुछ दिन के लिए वहीं ठहर गया। एक दिन अनंगमंजरी शृंगार करके अपने महल के ऊपर चढ़ी और उसने नीचे से जाते हुए राजपुरोहित के पुत्र कमलाकर को देखा। कमलाकर ने भी उसे देखा। दोनों एक-दूसरे को चाहने लगे। कमलाकर का मित्र, जो उसके साथ था, उसकी यह दशा देखकर उसे घर ले गया। उधर अनंगमंजरी ने भी अपनी सखी से उसका परिचय प्राप्त कर लिया। रात के समय सबके सो जाने पर अनंगमंजरी मरने का निश्चय करके चुपचाप अपने महल की उद्यान बावड़ी में पहुंची। वहां कुलदेवी चंडी के सामने प्रणाम करके वह स्तुति करने लगी, 'यदि मुझे कमलाकर इस जन्म में पति के रूप में न मिले, तो अगले जन्म में मैं उसे पति-रूप में प्राप्त करूं।' इसके बाद वह अशोक के पेड़ की शाखा में अपने दुपट्टे की फांसी बनाकर मरने को उद्यत हुई। तभी दैवयोग से उसकी सखी मालतिका उसे ढूंढ़ती हुई वहां आ गई। उसने आते ही उसके गले की फांसी को हटा दिया और उसके मरने का कारण पूछा। अनंगमंजरी ने उसे बताया कि वह कमलाकर के वियोग में मर रही है। फिर वह मालतिका से बोली, 'सखि! यदि मेरे प्राणों की रक्षा चाहती हो, तो मुझे कमलाकर से मिला दो।' मालतिका ने उसे अगले दिन कमलाकर को मिलाने का वचन दिया और

उपहार में अनंगमंजरी का हार लेकर अपने घर चली गई। सवेरे कमलाकर के घर जाकर उसने देखा कि कमलाकर भी अनंगमंजरी के वियोग में पीड़ित है। तब उसने युक्तिपूर्वक अगले दिन उपवन में उनके मिलने का प्रबंध कर दिया। वहां पहुंचकर कमलाकर ने जब अनंगमंजरी को देखा और उससे मिलने को दौड़ा, तो हर्ष की अधिकता से अनंगमंजरी के हृदय की गति बंद हो गई और वह तत्काल मर गई। उसे मरा हुआ देखकर कमलाकर का भी हृदय शोक की अधिकता से फट गया और वह भी मर गया। सवेरे उद्यान रक्षकों ने आकर उन दोनों को ऐसी स्थिति में मरा हुआ पाकर इसकी सूचना अर्थदत्त को दी। उसी समय मणि-वर्मा भी ताम्रलिप्ती से आ गया और अपनी पत्नी को जार के साथ मरी हुई देख-कर अत्यंत शोकाकुल हुआ। किंतु वह उसे बहुत प्रेम करता था, इस कारण वह भी वहीं मर गया। यह देखकर वहां भयंकर हाहाकार मच गया। वहां की यह करुण दशा देखकर अर्थदत्त के द्वारा स्थापित चंडी देवी के गणों ने देवी से कहा, 'अर्थदत्त आपका परम भक्त है, उस पर आपत्ति आई है, अतः उस पर दया कीजिये।' यह सुनकर देवी ने उन तीनों को जीवित कर दिया। इससे सब लोग प्रसन्न हुए और कमलाकर लज्जित होकर अपने घर चला गया।

"यह कथा कहकर बेताल ने राजा त्रिविक्रमसेन से पूछा, 'बताओ, इन तीनों में से कौन अधिक रागांध था?' राजा ने उत्तर दिया, 'मेरे विचार में तो मणि-वर्मा ही अधिक रागांध था, क्योंकि वह अपनी पत्नी को परपुरुष में अनुरक्त देखकर भी शोक से मर गया। अनंगमंजरी और कमलाकर की मृत्यु तो वियोग से अत्यंत पीड़ित होने के बाद अचानक मिलने के हर्ष के कारण हुई। इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। किंतु मणिवर्मा तो क्रोध के समय शोक से मर गया, अतः वही अधिक रागांध है।'

"यह सुनकर बेताल फिर राजा के कंधे से उतरकर पेड़ पर चला गया।"

## : २६ :

# बाईसवां बेताल

"राजा त्रिविक्रमसेन ने फिर बेताल को पेड़ से उतारा और कंधे पर लेकर चल पड़ा। मार्ग में बेताल ने उसे यह कथा सुनाई :

"कुसुमपुर नगर में राजा धरणीवराह का राज था। उसके राज्य में विष्णुस्वामी ब्राह्मण के चार पुत्र उत्पन्न हुए। उन पुत्रों के नवयुवक होने पर विष्णुस्वामी का देहांत हो गया और उसकी पत्नी भी उसके साथ सती हो गई। तब उसके भाई-बंधुओं ने सारा धन छीन लिया और वे चारों पुत्र दुखी होकर अपने नाना के घर चले गये। ननिहाल में मामाओं ने उन्हें आश्रय दिया, किंतु कुछ समय के बाद वे भी उनके साथ अपमानजनक व्यवहार करने लगे। तब उन सब भाइयों ने एकांत में सलाह की कि क्या करना चाहिए ? बड़े भाई ने कहा, 'बिना भाग्य के कछ नहीं होता। मैं आज दुखी होकर घूमता-घूमता श्मशान में पहुंच गया। वहां मैंने एक मरे हुए पुरुष को देखा और सोचा कि यह पुरुष कितना भाग्यशाली है जो दुनिया के दुख-भार से मुक्त होकर निश्चित विश्रांत कर रहा है। यह सोचकर मैंने भी मरने का निश्चय किया। मैंने पेड़ में फांसी लगाई। बेहोश होकर मैं जमीन पर गिर भी पड़ा, किंतु प्राण नहीं निकले। तब किसी दयालु पुरुष ने आकर मुझे होश दिलाया और आश्वासन देकर कहा, "तुम विद्वान होकर भी इतने खिन्न हो रहे हो ? आत्म-हत्या करना महापाप है।" यह कहकर वह पुरुष कहीं चला गया और मैं भी आत्महत्या का विचार छोड़कर यहां चला आया। सो, बिना भाग्य के तो मृत्यु भी नहीं मिलती।'

"तब उन सबों ने मिलकर यह निश्चय किया कि चारों ओर घूमकर कोई अद्भुत विज्ञान सीखना चाहिए। यह निश्चय करके वे सब अलग-अलग दिशाओं में चल दिये। चलते समय उन्होंने अपने मिलने का भी एक स्थान निश्चित कर लिया। कुछ काल के पश्चात वे नियत स्थान पर मिले और किसने क्या सीखा यह आपस में बताया। उनमें से एक ने कहा, 'मैंने एक ऐसा विज्ञान सीखा है, जिसके प्रभाव से मैं मरे हुए प्राणी की हड्डियों को मिलाकर उसमें मांस उत्पन्न कर सकता हूं।' दूसरे ने कहा, 'मैं खाल और बाल उत्पन्न कर सकता हूं।' तीसरा बोला, 'मैं उसी प्राणी के योग्य सब अंग उत्पन्न कर सकता हूं।' चौथा बोला,

'मैं उसमें जीवन डाल सकता हूं।' यह कहकर वे अपने-अपने विज्ञान की परीक्षा लेने के लिए किसी वन में गये। वहां उन्होंने एक मरे हुए शेर की हड्डियां पाईं। उन्होंने उन्हें बिना पहचाने ही उठा लिया। तब एक ने हड्डियों में मांस डाल दिया, दूसरे ने खाल और बाल, तीसरे ने संपूर्ण अंगों की रचना कर दी और चौथे ने उसमें प्राण डाल दिये। इस पर उस शेर ने उठकर उन सबको खा लिया।

"यह कथा सुनाकर बेताल ने राजा से प्रश्न किया, 'बताइये, इन चारों में से कौनसा व्यक्ति शेर के बनाने का अपराधी है?' यह सुनकर राजा ने उत्तर दिया, 'जिसने उसमें प्राणों का संचार किया, वही उनमें पाप का भागी है, क्योंकि उसने शेर का आकार देखकर भी उसमें प्राण डाले, शेष तीन तो यह जानते ही न थे कि हम शेर बना रहे हैं। इसलिए वे दोष के भागी नहीं हैं।'

"राजा का यह उत्तर सुनकर बेताल फिर उसके कंधे से उतरकर पेड़ पर जा लटका।"

: ३० :

## तेईसवां बेताल

"राजा त्रिविक्रमसेन ने पहले की तरह उस बेताल को पेड़ से उतारा और लेकर चल दिया। मार्ग में बेताल ने उससे यह कथा कही:

"कलिंग देश की शोभावती नगरी में राजा प्रद्युम्न राज करता था। उसके राज्य में एक यज्ञसोम ब्राह्मण वेदों का पारंगत, धनवान और अग्निहोत्री था। प्रौढ़ावस्था में उसके एक पुत्र उत्पन्न हुआ। वह पुत्र बड़ा ही सुलक्षण था। उसका नाम देवसोम रखा गया। समस्त विद्याएं पढ़ने पर सोलह वर्ष की अवस्था में देवसोम अचानक ज्वर से पीड़ित होकर मर गया। स्नेहवश यज्ञसोम और उसकी पत्नी उससे लिपटने लगे और उन्होंने उसे दाह के लिए भी न छोड़ा। बूढ़े लोगों के बहुत समझाने पर उसने बड़ी मुश्किल से उस शव को छोड़ा। तब बंधु-बांधव उसे लेकर श्मशान में पहुंचे। वहां भी बड़ा रोना-पीटना हुआ। उसे सुनकर श्मशानवासी एक वृद्ध योगी अपनी कुटिया से बाहर निकला। उसने उस मृत ब्राह्मण कुमार को देखा। उसे देखते ही वह योगी एकांत में पहले तो मुक्तकंठ से रोया और फिर प्रसन्न

होकर नाचा। तब वह योग बल से अपने जीर्ण शरीर को छोड़कर उस ब्राह्मण पुत्र के शरीर में प्रवेश कर गया। इस पर वह ब्राह्मण कुमार जंभाई लेता हुआ उठ खड़ा हुआ। उसे जीवित हुआ देखकर सब प्रसन्न हो गए। तब उसके शरीर में प्रविष्ट हुए योगी ने कहा, 'मरने पर मैं दूसरे लोक में पहुंचा। वहां शिवजी ने मुझे इस शर्त पर जीवित किया कि मर्त्यलोक में जाकर मैं पाशुपत व्रत ग्रहण करूं। यदि ऐसा नहीं करूंगा तो फिर मेरी मृत्यु हो जायगी। सो, आप लोग अपने घर चले जाइये। मैं यहां एकांत में रहकर व्रत धारण करूंगा।' उसका यह निश्चय जानकर सब अपने घर लौट गये। तब उस योगी ने अपने पूर्व शरीर को किसी गड्ढे में डाल दिया और स्वयं युवा बनकर तपस्या में लग गया।

"यह कहानी सुनकर बेताल ने राजा से पूछा, 'हे राजन ! यह बताइये कि वह योगी क्यों तो रोया और क्यों प्रसन्न होकर नाचा ?' यह सुनकर राजा ने उत्तर दिया, 'तपस्वी के रोने का अभिप्राय यह था कि जिस शरीर को माता-पिता ने बचपन में पाला-पोषा और जिससे मैंने अनेक सिद्धियां प्राप्त कीं, उसी शरीर को मैं आज छोड़ रहा हूं। योगी हंसकर नाचा इसलिए कि नये शरीर में प्रवेश करके, मैं अधिक सिद्धियां प्राप्त कर सकूंगा।' राजा का यह उत्तर सुनकर बेताल फिर कंधे से उतर कर पेड़ पर चला गया।"

## : ३१ :

## चौबीसवां बेताल

"उस अंधेरी रात्रि में वीर राजा त्रिविक्रमसेन फिर जलती हुई चितावाले श्मशान में पहुंचा। उसने पेड़ से मुर्दे को उतारा और कंधे पर रखकर चल दिया। मार्ग में वह बेताल राजा से बोला, 'राजन ! आने-जाने से मैं तो उद्विग्न हो गया हूं, किंतु आप नहीं उकताये। सो, मैं आपसे एक बड़ा भारी प्रश्न करता हूं, सुनिये। और सोचकर उत्तर दीजिये।

" 'दक्षिण पक्ष में धर्म नाम का एक मांडलिक राजा था। मालव देश की लड़की चंद्रवती उसकी पत्नी थी। उससे उसके लावण्यवती नाम की एक पुत्री उत्पन्न हुई। जब वह लड़की विवाह योग्य हुई, तो उस राजा के भाई-बंधुओं ने उसका राज्य छीन-

कर उसे देश से निकाल दिया। वह अपनी पत्नी तथा पुत्री को लेकर अपनी ससुराल मालव देश को चल दिया। मार्ग में रात उन्होंने विंध्य वन में बिताई। प्रातःकाल वहां से चले और चलते-चलते वे भीलों की नगरी में पहुंचे। वहां दूर से भीलों को आता देखकर राजा धर्म ने अपनी पत्नी तथा पुत्री से कहा, 'तुम दोनों वन में जाकर कहीं छिप जाओ, नहीं तो ये तुम्हें भ्रष्ट कर देंगे।' उन्होंने ऐसा ही किया। तब भी भीलों ने राजा पर आक्रमण कर दिया। राजा ने भी उनके बहुत से आदमियों को मार गिराया। अंत में वे सब अकेले राजा पर टूट पड़े और उसे मार दिया। जब भील राजा के आभूषण आदि लेकर चले गये, तब वे दोनों माता-पुत्री वन से निकलकर उसके पास आईं और उसे मरा हुआ देखकर बड़ी भयभीत हुईं। शोक से व्याकुल रोती हुई वे दोनों एक तालाब के किनारे पहुंची और बैठ गईं। तभी उसी प्रदेश का निवासी एक धनवान व्यक्ति चंडसिंह अपने पुत्र सिंहपराक्रम के साथ घोड़े पर चढ़कर शिकार खेलने के लिए उधर आ निकला। उन दो स्त्रियों के पैरों के निशान देखकर चंडसिंह ने अपने पुत्र सिंहपराक्रम से कहा, "यदि इन चरण-चिह्नोंवाली स्त्रियां मिल जायें, तो इनमें से जो तुम्हें पसंद हो, उसके साथ तुम विवाह कर लेना।" सिंहपराक्रम ने उत्तर दिया, "छोटे पैरवाली स्त्री छोटी अवस्था की होगी, वही मुझे पसंद है, मैं उसके साथ विवाह करूंगा। बड़े पैरवाली स्त्री, बड़ी अवस्था की होगी, उसके साथ आप विवाह कीजिये।" चंडसिंह ने स्वयं विवाह के प्रति अरुचि दिखाई, किंतु पुत्र के ज़िद करने पर वह राजी हो गया। तब वे दोनों उन्हें ढूंढते-ढूंढते उस तालाब पर पहुंचे, जहां वे दोनों स्त्रियां बैठी हुई थीं। पहले तो उन दोनों माता-पुत्रियों ने उन्हें भी भील समझा, किंतु बाद में उनके सभ्य वेष को देखकर वे आश्वस्त हुईं। चंडसिंह ने उनसे पूछा, "तुम कौन हो और इस निर्जन वन में क्यों बैठी हो?" यह सुनकर लज्जा और शोक से युक्त होकर रानी चंद्रवती ने उनसे अपना हाल कह दिया। तब उन्हें आश्वस्त करके चंडसिंह अपने स्थान पर ले गया। वहां जाकर बड़े पैर वाली कन्या लावण्यवती के साथ तो चंडसिंह ने विवाह किया और छोटे पैरवाली रानी चंद्रवती के साथ सिंहपराक्रम को विवाह करना पड़ा। इस प्रकार पुत्री सास बनी और माता पुत्र वधू। फिर उन दोनों के अनेक पुत्र तथा पुत्रियां उत्पन्न हुईं।'

"यह कथा कहकर बेताल ने राजा त्रिविक्रमसेन से पूछा, 'बताइये, उन दोनों

माता-पुत्रियों से जो संतान उत्पन्न हुईं, उनका आपस में क्या रिश्ता हुआ ? यदि आप जानते हुए भी उत्तर न देंगे तो आपका सिर टुकड़े-टुकड़े हो जायेगा।' बेताल का यह प्रश्न सुनकर राजा त्रिविक्रमसेन ने खूब विचारा, किंतु उसे इसका उत्तर समझ में न आया। अतः वह चुपचाप विचारता हुआ चलता रहा। तब उस मुर्दे में स्थित बेताल ने हृदय में हंसते हुए विचारा कि राजा इस समय महाप्रश्न को नहीं जानता इसीलिए चुपचाप चल रहा है। यह महापुरुष है, मुझे ठगेगा नहीं। यह विचारकर उसने कहा, 'राजन ! मैं तुम्हारे धैर्य और पराक्रम से प्रसन्न हूं। सो, मैं अब इस मुर्दे से निकला जाता हूं, तुम इसे भिक्षु के पास ले जाओ। किंतु म तुमसे एक हितकारी बात कहता हूं, उसे अवश्य करना। वह भिक्षु इस मुर्दे में मेरा आवाहन करके तुमसे प्रणाम करने को कहेगा, तब तुम उससे कहना कि पहले आप मुझे प्रणाम करके बताओ—मैं उसी प्रकार प्रणाम करूंगा। जब वह प्रणाम करके बताये, तो तुम उसका सिर काट डालना। इससे तुम्हें विद्याधरों के ऐश्वर्य की सिद्धि हो जायेगी और उसके बलिदान करने से तुम समस्त भूमंडल के सम्राट बन जाओगे। यदि तुम उसका सिर नहीं काटोगे, तो वह तुम्हारी बलि देकर सिद्धि प्राप्त करेगा। इसीलिए मैंने तुम्हारे मार्ग में विघ्न डालकर इतना विलंब किया है।' यह कहकर वह बेताल उस मुर्दे से निकलकर चला गया और राजा भी उसे लेकर भिक्षु के पास चल दिया।"

## : ३२ :

## पच्चीसवां बेताल

"राजा त्रिविक्रमसेन उस मुर्दे को कंधे पर रखकर उस क्षांतिशील भिक्षु के पास पहुंचा। राजा को देखते ही वह भिक्षु बहुत प्रसन्न हुआ और हर्ष से खड़ा होकर राजा से बोला, 'हे राजन ! आपने यह दुष्कर काम करके मुझ पर बड़ा अनुग्रह किया है। सत्य ही आप समस्त राजाओं में श्रेष्ठ हैं।' यह कहकर उसने राजा के कंधे पर से मुर्दे को उतार लिया और उसे स्नान कराकर तथा पुष्प-मालाओं से सज्जित करके मंडल के बीच में रख दिया। तब उस मुर्दे में उसने अपने मंत्र-बल से बेताल का आवाहन करके उसकी पूजा की। पूजा के बाद भिक्षु

ने राजा से कहा, 'हे राजन ! तुम इस बेताल के आगे झुककर प्रणाम करो। इससे तुम्हारा कल्याण होगा।' यह सुनकर राजा को बेताल की बात याद आ गई। उसने कहा, 'हे भगवन ! मैं नहीं जानता। आप पहले मुझे करके बता दीजिये, फिर मैं उसी प्रकार कर दूंगा।' उस भिक्षु ने ज्यों ही पृथ्वी पर झुककर प्रणाम करके दिखाया, त्यों ही राजा ने तलवार से उसका सिर काट डाला और उसका हृदय निकालकर बेताल के समर्पित कर दिया। इस पर प्रसन्न होकर सारे भूतों ने राजा को साधुवाद दिया। तब बेताल उस मनुष्य शरीर से निकलकर बोला, 'हे राजन ! यह भिक्षु विद्याधरों का स्वामित्व चाहता था। वह अब तुम्हें मिलेगा। मैंने जो तुम्हें कष्ट दिया था, उसके बदले में तुम जो वर चाहो, मुझसे मांग लो।' राजा ने कहा, 'यदि आप मुझसे प्रसन्न हैं, तो मैं आपसे यह प्रार्थना करता हूं कि आपने जो चौबीस कहानियां सुनाई हैं, वे तथा पच्चीसवीं यह—ये सब कथाएं संसार में प्रसिद्ध और पूजनीय हों।' राजा की यह प्रार्थना सुनकर बेताल ने कहा, 'ऐसा ही होगा, ये कथाएं "बेताल-पच्चीसी" के नाम से दुनिया में प्रसिद्ध होंगी। जो मनुष्य इन्हें पढ़ेंगे अथवा सुनेंगे, उनके पाप नष्ट हो जायेंगे।' यह कहकर वह बेताल वहां से चला गया। तब देवताओं के साथ साक्षात शिवजी राजा के सामने प्रकट हुए और बोले, 'पुत्र! तुमने अच्छा किया जो इस दुष्ट भिक्षु को मार डाला। यह जबरदस्ती विद्याधरों का स्वामी बनना चाहता था। तुम मेरे ही अंश हो। मैंने पहले तुम्हें विक्रमादित्य के रूप में राक्षसों का विनाश करने के लिए उत्पन्न किया था और अब तुम्हें त्रिविक्रमसेन के रूप में राजाओं का सम्राट बनाकर भेजा है। तुम शीघ्र ही सातों द्वीपों और पाताल-सहित पृथ्वी पर अखंड साम्राज्य स्थापित करके विद्याधरों के राजा बनोगे और अंत में स्वर्गीय भोग भोगकर मेरे में मिल जाओगे। मैं तुम्हें यह अपराजित नाम का खड्ग देता हूं, इसके प्रसाद से तुम सब कुछ प्राप्त कर लोगे।' इसके बाद तलवार देकर शिवजी अदृश्य हो गये। राजा भी भोर होने पर सब काम समाप्त करके श्मशान से अपनी नगरी में आ गया। कुछ ही दिनों में अपराजित तलवार के प्रभाव से समस्त पृथ्वी को जीतकर सम्राट बन गया और शिवजी के प्रसाद से विद्याधरों का स्वामी बनकर अंत में भगवान में विलीन हो गया।"

ये कथाएं सुनाकर विक्रमकेसरी मंत्री मृगांकदत्त से बोला, "उस गांव में उस

वृद्ध ब्राह्मण ने यह बेताल पच्चीसी सुनाकर मुझसे कहा, 'हे पुत्र! बेताल के प्रसाद से राजा त्रिविक्रमसेन को क्या नहीं मिला ? सो, तुम भी मुझसे बेताल-सिद्धि का मंत्र सीखकर बेताल को सिद्ध करो, फिर तुम्हारा मृगांकदत्त से संगम होगा। तुमने मुझे सर्प के विष से बचाया है, इसलिए मैं तुम्हें बेताल-सिद्धि का मंत्र सिखाता हूं।' इसके बाद उसने मुझे मंत्रोपदेश दिया। मैंने भी उज्जयनी के श्मशान में जाकर बेताल को सिद्ध किया। मेरी सिद्धि से संतुष्ट होकर बेताल ने मुझसे कहा, 'वर मांगो।' मैंने कहा, 'मुझे मेरे स्वामी मृगांकदत्त से मिला दो।' तब वह मुझे अपने कंधे पर बैठाकर आपके पास ले आया। सर्प के शाप से आपसे बिछुड़कर अब मिलने तक का मेरा यह वृत्तांत है।"

विक्रमकेसरी से उसका सारा हाल सुनकर मृगांकदत्त को शशांकवती से मिलने तथा शेष मंत्रियों के प्राप्त होने की आशा उत्पन्न हो गई।

## : ३३ :
## मंत्रियों से मिलन

इस प्रकार विक्रमकेसरी को पाकर राजा मृगांकदत्त अपने सब साथियों के साथ उज्जयनी की ओर चल दिया। चलते-चलते वे एक निर्जन और बीहड़ वन में पहुंचे। वह वन हिंस्र जंतुओं से भरा हुआ और जल-वृक्ष आदि से रहित था। उस वन को पार करके वे एक तालाब के किनारे पहुंचे। उस तालाब के पश्चिम की ओर राजा ने एक दिव्य वृक्ष देखा। उस पर लटकते हुए फलों को देखकर राजा के छहों मंत्री भूख और प्यास से व्याकुल होकर फल तोड़ने के लिए उस पेड़ पर चढ़ गये और वहीं फल बनकर लटक गये। यह देखकर मृगांकदत्त बड़ा बेचैन हुआ और विलाप करता हुआ पृथ्वी पर गिर पड़ा। श्रुतधि ब्राह्मण पेड़ पर नहीं चढ़ा था, इसलिए उसने राजा की यह हालत देखकर उसे सांत्वना दी और कहा, "आप विद्वान होकर भी धैर्य छोड़ रहे हैं? वही मनुष्य कल्याण प्राप्त करता है, जो आपत्ति में धैर्य नहीं त्यागता। जिस प्रकार ये मंत्री पहले आपसे मिले थे, उसी प्रकार फिर भी मिलेंगे।" किंतु श्रुतधि के वचनों से राजा को तसल्ली नहीं हुई और वह तालाब में डूबकर आत्महत्या करने पर उतारू हो गया। इसी

समय आकाशवाणी सुनाई दी : "हे राजन ! तुम मरने का साहस न करो। इस वृक्ष पर स्वयं गणेशजी का निवास है। अज्ञानवश तुम्हारे मंत्री बिना हाथ-पैर धोये हुए फल तोड़ने के लिए चढ़ गए। इसलिए गणेशजी के शाप से वे फल बनकर लटक गये हैं। तुम्हारे शेष चार मंत्री भी इसी प्रकार इस पेड़ पर फल बनकर लटके हुए हैं। सो, तुम तपस्या करके गणेशजी को प्रसन्न करो। उनके प्रसाद से तुम्हारी अभीष्ट सिद्धि होगी।"

इस आकाशवाणी को सुनकर मृगांकदत्त आत्महत्या करने से रुक गया और उसने तालाब में स्नान करके गणेशजी की पूजा-स्तुति करनी आरंभ कर दी। स्तुति करते-करते राजा को दस दिन बीत गये। ग्यारहवें दिन रात में गणेशजी ने राजा को स्वप्न में दर्शन देकर कहा, "हे राजन ! मैं तुमसे प्रसन्न हूं। शाप से बिछुड़े तुम्हारे सभी मंत्री तुम्हें मिल जायेंगे और इसके बाद मृगांकवती से भी तुम्हारा मिलन होगा। तब तुम समस्त पृथ्वी का राज्य प्राप्त करोगे।" भोर होने पर राजा ने श्रुतधि को रात का स्वप्न सुनाया। उसकी सलाह से राजा ने स्नान के बाद गणेशजी की पूजा करके उस वृक्ष की प्रदक्षिणा की। तभी वे दसों मंत्री वृक्ष से उतरकर राजा के चरणों में आ गिरे और राजा ने उन सबका आलिंगन किया।

## : ३४ :

## व्याघ्रसेन की कथा

इसके बाद उसी तालाब के किनारे पर बैठकर उन सबने भोजन किया, फिर राजा मृगांकदत्त ने अपने चारों मंत्रियों से उस दिन तक का सारा वृत्तांत पूछा। उनमें से व्याघ्रसेन ने कहा, "हे राजन ! सर्प के शाप से बिछुड़कर मैं एक वन में मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। फिर होश में आने पर इधर-उधर घूमता रहा। मैंने सोचा कि आप शशांकवती को प्राप्त करने के लिए उज्जयिनी अवश्य जायेंगे। इसलिए म उज्जयिनी की ओर ही चल दिया। चलते-चलते मैं एक तालाब पर पहुंचा। वहां स्नान करके और जल पीकर ज्योंही मैं विश्राम करने लगा, त्योंही ये तीनों भी वहीं आ गये। किंतु कोई भी आपका समाचार नहीं जानता था। सो आप पर किसी कष्ट की आशंका करके हम सबने आपके विरह से पीड़ित होकर

मरने का निश्चय किया। तभी वहां स्नान करने के लिए दीर्घतप नाम के महर्षि का पुत्र महातप आ गया। उसके साथ और मुनिकुमार भी थे। हमें उस तालाब में शरीर त्यागने के लिए उद्यत देखकर महातप बोला, 'आप लोग यह क्या कायरों का काम कर रहे हैं? धीर मनुष्य इस प्रकार के निंदनीय कार्यों में प्रवृत्त नहीं होते। आप भव्य आकृतिवाले हैं, आपका निश्चित ही कल्याण होगा। बताइये, आपको क्या दुख है?' मैंने आरंभ से लेकर अपना वृत्तांत उसे सुना दिया। सब कुछ सुनकर उसने हम सबको धैर्य बंधाया और अपने पिता के आश्रम में ले गया। वहां जाकर उस मुनि-पुत्र ने आश्रम के एक-एक पेड़ से भिक्षा मांगी। पेड़ों से अपने आप फल टूट-टूटकर उसके भिक्षा-पात्र में गिर पड़े। उसने उन फलों से हमारा अतिथि सत्कार किया। रात्रि के समय हम सब मुनियों के दर्शन करने गये। वहां उस मुनिकुमार ने मुनि से हमारा हाल कह सुनाया। ज्ञानी मुनि कण्व ने हमसे कहा, 'आप लोग वीर होकर इतनी कायरता क्यों दिखाते हैं? महापुरुष धैर्यपूर्वक कष्टों को सहन करके महत्व प्राप्त करते हैं। इस संबंध में मैं आपको एक कथा सुनाता हूं :

" 'निषध देश में अलका नाम की एक नगरी है। वहां राजा महासेन राज्य करता था। उसके महामंत्री का नाम गुणपालित था। उस राजा के शशिप्रभा नाम की रानी से सुंदरसेन नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। उस राजपुत्र के अवस्था और गुण में समान चंडप्रभ, भीमभुज, व्याघ्र पराक्रम, विक्रमशक्ति तथा हठबुद्धि नाम के पांच मंत्री थे। इनके साथ राजपुत्र अपने पिता के घर में सुख से रहता था। सुंदरसेन ने युवा होने पर भी अपने अनुकूल स्त्री के न मिलने के कारण अपना विवाह नहीं किया। एक बार सुंदरसेन अपने मंत्रियों के साथ शिकार खेलने के लिए शहर से बाहर गया। जाते हुए उसे दूर देश से आई हुई एक तपस्विनी ने देखा। उसके रूप-सौंदर्य को देखकर वह तपस्विनी अत्यंत विस्मित हुई और उसके पास जाकर प्रणाम करके जयकार करने लगी। सुंदरसेन अपने साथियों के साथ बातचीत करता जा रहा था, सो उसने उस तपस्विनी को न तो देखा ही, न ही उसकी जयकार सुनी। तब वह तपस्विनी ऊंचे स्वर में उसे सुनाती हुई बोली, "हे राजपुत्र! तुम मेरे आशीर्वाद को भी नहीं सुनते हो, पृथ्वी में किस राजा और राजपुत्र ने मेरा सम्मान नहीं किया? किंतु तुम्हें अपने रूप-सौंदर्य का कितना गर्व है? जब तुम्हें अपने यौवन का अभी से इतना घमंड है, तो हंस द्वीप के राजा की

पुत्री मंदारवती को पत्नी बना लेने पर तो तुम्हें न जाने कितना गर्व हो जायेगा ?" यह सुनकर सुंदरसेन ने उससे अपने अपराध की क्षमा मांगी और पूछा, "हे भगवति ! यह मंदारवती कौन है ?" तापसी ने कहा, "वह हंसद्वीप के राजा मंदारदेव की पुत्री है और रूप तथा सौंदर्य में अतुलनीय है ।" तापसी से मंदारवती के सौंदर्य की प्रशंसा सुनकर सुंदरसेन ने उससे पूछा, "देवि ! कोई ऐसा उपाय बताओ, जिससे मैं उसको देख सकूं ।" तापसी ने उत्तर दिया, "मैं उस राजकुमारी का चित्र बनाकर ले आई हूं, यदि तुम चाहो तो देख सकते हो ।" यह कहकर उसने सुंदरसेन को मंदारवती का चित्र दिखा दिया । चित्रलिखित उस राजकुमारी को देखकर वह मुग्ध हो गया । मंत्रियों के कहने से उस तापसी ने सुंदरसेन का चित्र भी मंदरावती के चित्र के साथ बना दिया । उसके चले जाने पर सुंदरसेन उस चित्र को लेकर अपने महल में चला गया और उसी दिन से उसके वियोग में पीड़ित रहने लगा । उसको अस्वस्थ देखकर उसके माता-पिता ने इसका कारण उसके मित्रों से पूछा । उन्होंने तापसी का सारा हाल राजा महासेन को बता दिया । तब महासेन ने सुंदरसेन से कहा, "बेटा ! तुम इतने दुखी क्यों होते हो ? वास्तव में मंदारवती कन्याओं में श्रेष्ठ है और तुम्हारे योग्य है । उसका पिता मंदारदेव मेरा मित्र है । वह मेरे कहने से उसका विवाह तुमसे कर देगा ।" यह कहकर राजा महासेन ने अपने एक दूत को हंसद्वीप में राजा मंदारदेव के पास उस चित्र को लेकर भेजा और मंदारवती का विवाह सुंदरसेन के साथ कर देने को कहा । दूत ने राजा मंदारदेव के पास जाकर उन्हें वह चित्र देकर राजा महासेन का संदेश कहा । मंदारवती भी सुंदरसेन का चित्र देखकर प्रसन्न हुई । राजा मंदारदेव ने सुंदरसेन को अपनी पुत्री के योग्य वर देखकर अपनी कन्या का विवाह करना स्वीकार कर लिया और राजा महासेन से पुछवाया कि आपका पुत्र यहां आयेगा या मैं ही अपनी पुत्री को वहां भेज दूं ? यह संदेश पाकर राजा महासेन ने ज्योतिषियों को बुलाकर विवाह का लग्न पूछा । उन्होंने तीन महीने बाद कार्तिक मास की शुक्ल पक्ष की पंचमी के दिन शुभ लग्न बताया । इस सूचना के साथ राजा महासेन ने मंदारदेव को कहला भेजा कि मेरा पुत्र ही वहां आ जायेगा । मंदारदेव ने यह लग्न स्वीकार कर लिया । उधर मंदारवती ने जबसे सुंदरसेन के चित्र को देखा, वह तभी से परेशान रहने लगी । यह देखकर उसके माता-पिता ने सलाह करके उसे जलयान द्वारा शुभ दिन में विवाह के लिए हंसद्वीप से अलका को भेज

दिया। समुद्र में कई दिन चलते-चलते बीते। तब एक दिन अचानक भयंकर तूफान के आने से वह जहाज डूब गया। मंदरावती समुद्र की लहरों से उछलती-उतराती किनारे पर आ लगी और उस वन में विलाप करती हुई घूमने लगी। तभी वहां अकस्मात मतंग नाम के महर्षि आ गये और वह उसे सांत्वना देकर अपने आश्रम में ले गये। वहां वह उनकी पुत्री यमुना के साथ रहने लगी। उधर अलका से सुंदरसेन भी विवाह लग्न के निकट आने पर शुभ दिन में अपने साथियों के साथ जलयान में बैठकर हंसद्वीप की ओर चल दिया। चलते-चलते वह कई दिन पश्चात शशांकपुर में राजा महेंद्रादित्य के पास पहुंचा। एक दिन वहां विश्राम करके सुंदरसेन अपनी सेना को वहीं छोड़कर समुद्र तट पर आया और वहां से एक जलयान में स्वयं तथा दूसरे में अपने साथियों को चढ़ाकर वह हंसद्वीप की ओर चल दिया। दो-तीन दिन तक समुद्र में चलने के पश्चात वे दोनों जहाज भयंकर तूफान के आ जाने से डूब गये। तब सुंदरसेन फेंटा बांधकर समुद्र में कूद पड़ा और उसके साथी भी उसके पीछे-पीछे समुद्र में कूद पड़े। तैरते हुए वे सब बिछुड़ गये। तभी सौभाग्यवश एक छोटी नाव बहती हुई उधर आ निकली। उसी पर मंत्री दृढ़ बुद्धि सहित चढ़कर सुंदरसेन तीन दिन में किनारे पर लगा। वहां अपने अन्य मंत्रियों और साथियों को न पाकर सुंदरसेन बहुत विलाप करने लगा और मरने के लिए तैयार हो गया। तब मंत्री ने उसे समझाते हुए कहा, "जिस प्रकार हम एक छोटी-सी नाव के मिल जाने से किनारे आ लगे हैं, शायद वे भी किसी प्रकार से समुद्र पार हो गये हों। दैव की गति को कौन जान सकता है?' इसी समय स्नान कर` के लिए वहां दो तपस्वी आ गये। उस राजपुत्र को देखकर और उसका समाचार जानकर वे बोले, "हे सुबुद्धि! तुम शोक मत करो, तुम्हारे लक्षण कल्याणकारी हैं, तुम्हारा अवश्य ही शुभ होगा।" कुछ दिन तक वे दोनों वहीं रहे।

"'इसी बीच में भीमभुज, विक्रमशक्ति, चंडप्रभ और व्याघ्र-पराक्रम नाम के मंत्री बाहुबल से समुद्र पार कर निकल आये। वे सब सुंदरसेन को ढूंढते हुए शोक संतप्त होकर शशांकपुर आये और वहां से सब फौज लेकर अलकानगरी लौट गये। वहां जाकर उन्होंने राजा महासेन को सारा समाचार सुनाया। पुत्र को मरा हुआ जानकर राजा महासेन भी अपनी रानी के सहित मरने के लिए प्रस्तुत हो गया किंतु मंत्रियों ने बड़े यत्न से उसे रोका। तब राजा अपने पुत्र की प्राप्ति के लिए नगरी के बाहर शिव के मंदिर में तपस्या करने लगा। उधर राजा मंदारदेव ने भी

जब अपनी पुत्री तथा जमाता के समुद्र में डूबने का समाचार सुना, तो वह भी बहुत दुखी हुआ और मंत्रियों को राज्य का भार सौंपकर अपनी पत्नी कंदर्पसेना के साथ अलकापुरी आया और महासेन के साथ ही तपस्या करने लगा। उधर दैवयोग से एक दिन सुंदरसेन घूमता हुआ मतंग मुनि के उस आश्रम के पास पहुंच गया जहां मंदारवती रहती थी। वहां उसने एक नदी के किनारे शिव-मंदिर के पास फूल चुनती हुई बहुत-सी मुनि-कन्याओं को देखा। उसमें से एक कन्या अत्यंत सुंदरी थी। उसे देखकर सुंदरसेन को यह आशंका हुई कि कहीं यह मंदारवती तो नहीं है ? यह सोचकर वह उनके पास गया। तभी वे सब कन्याएं जलक्रीड़ा के लिए नदी में उतर गईं। उस समय दैवात् एक ग्राह ने आकर उसी दिव्य कन्या को पकड़ लिया। उसका चिल्लाना सुनकर सुंदरसेन ने वहां जाकर ग्राह को मार दिया और उसे बचा लिया। मंदारवती उस प्राण बचानेवाले महापुरुष को ललचाये हुए से देखने लगी और मन में सोचने लगी कि यह तो चित्र में देखे हुए कुमार के समान ही है, कहीं यही तो सुंदरसेन नहीं है ? तभी सुंदरसेन ने उसकी सखी से उसका परिचय पूछा। उसने सब-कुछ बता दिया। ये सब बातें सुनकर दृढ़बुद्धि बड़ा प्रसन्न हुआ और सुंदरसेन से बोला, "हे राजपुत्र ! तुम्हारा भाग्य धन्य है, जो तुम्हें तुम्हारी भावी पत्नी यहीं मिल गई।" मंदारवती को जब यह पता चला कि यही उसका सुंदरसेन है, तो वह उसके चरणों पर गिरकर रोने लगी। सुंदरसेन ने भी उसे उठाकर गले से लगा लिया। तब मुनि-कन्याओं ने दौड़कर मतंग मुनि से यह सब समाचार सुनाया। वह अपनी पुत्री यमुना के साथ वहां आये और उन्हें अपने आश्रम में ले गये और सुंदरसेन को मंदारवती देते हुए बोले, "मैंने इसे पुत्री के समान पाला है, सो मैं तुम्हें इसे पत्नी रूप में देता हूं।" फिर उसे आशीर्वाद दिया, "तुम इसके साथ चिरकाल तक पृथ्वी का राज भोगोगे।" यह आशीर्वाद देकर मतंग मुनि अपनी पुत्री यमुना के साथ चले गये। तब सुंदरसेन मंदारवती को लेकर दृढ़बुद्धि के साथ समुद्र तट पर आया। वहां उसने एक वैश्य के जलयान को देखा। सुंदरसेन ने इस वैश्य से प्रार्थना की कि वह अपने जहाज में किराया लेकर उन्हें समुद्र पार करा दे। वैश्य मंदारवती के रूप सौंदर्य को देखकर उस पर मोहित हो गया था। इसलिए उसने उन्हें अपने जहाज पर ले चलना स्वीकार कर लिया। सुंदरसेन मंदारवती को पहले जहाज पर चढ़ाकर ज्यों ही दृढ़बुद्धि सहित स्वयं चढ़ने लगा, त्यों ही वैश्य ने इशारा करके अपने नाविक से जहाज चलवा दिया और वह क्षण भर में समुद्र में दूर निकल गया।

सुंदरसेन किनारे पर खड़ा होकर खूब चिल्लाया कि वह चोर मेरी स्त्री को हठात हरकर लिये जा रहा है, किंतु वहां कौन सुननेवाला था ! तब सुंदरसेन विलाप करता हुआ मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। दृढ़बुद्धि ने उसे तसल्ली दी और वे दोनों निरुद्देश्य घूमते हुए वन में पहुंचे। वहां भगवती को बलि देने के लिए किसी पशु या मनुष्य को ढूंढ़ते हुए निषादों ने उन्हें पकड़ना चाहा, किंतु सुंदरसेन ने उन्हें मार भगाया। तब निषादों के राजा विंध्यकेतु ने उन्हें पकड़ने के लिए एक बड़ी सेना भेजी। उस सेना से भी वे दोनों बड़ी वीरता से लड़े, किंतु घायल होकर मूर्च्छित हो जाने पर निषादों ने उन्हें कैद कर लिया और जेल में डाल दिया। जेल में जाकर सुंदरसेन ने देखा कि उसके दो अन्य मंत्री भीमभुज और विक्रमशक्ति भी उसी जेल-खाने में बंद हैं। जब उन सबको यह पता चला कि आगामी चतुर्दशी को देवी की प्रसन्नता के लिए उनका बलिदान किया जायेगा, तो वे सब एक-दूसरे के गले मिलकर रोने लगे। चतुर्दशी के आने पर वे देवी के मंदिर में बलि देने के लिए ले जाये गये। वहां सुंदरसेन ने देवी को प्रणाम करके स्तुति की। उसी समय निषादराज विंध्य-केतु देवी की पूजा करने के लिए वहां आ गया। सुंदरसेन ने उसे तुरंत पहचान लिया और अपने साथियों से कहा, "यह वही विंध्यकेतु है, जो मेरे पिता की कृपा से इस वन का राजा बना है तथा जो हमेशा पिताजी के पास भेंट आदि लेकर जाया करता है; किंतु मैं इससे भी अपनी रक्षा की याचना नहीं करूंगा।" तभी विंध्यकेतु ने भी उसे देखा और कुछ-कुछ पहचानकर उसका परिचय पूछा, किंतु उसके थोड़ा बोलते ही उसने सुंदरसेन को पहचान लिया। भीलराज सुंदरसेन की यह दशा देखकर बड़ा विलाप करने लगा और उसका आलिंगन करके रोने लगा। उसने उसके चरणों में गिरकर क्षमा मांगी और उसके सभी साथियों को बंधन-मुक्त कर दिया। वह सम्मानपूर्वक उसे अपने घर ले गया और उसका सब समाचार जानकर उसे सांत्वना दी, "आप मंदारवती के चिंता न कीजिये, क्योंकि विधि ने जिस प्रकार उसका छिनवाया है, उसी प्रकार वह उसे मिला भी देगा।" तभी विंध्यकेतु का सेनापति दौड़ता हुआ उसके पास आया और बोला, "हे स्वामी ! एक व्यापारी वैश्य बहुत-सा धन और एक सुंदरी स्त्री को लेकर इसी वन में आया है, मैं उसे पकड़कर आपके पास ले आया हूं।"

"'यह सुनकर सुंदरसेन और विंध्यकेतु दोनों ने सोचा कि कहीं यह वैश्य मंदारवती को छीन ले जानेवाला वैश्य तो नहीं है ? जब वे आये, तो दृढ़बुद्धि ने उन्हें देखते ही

पहचान लिया। सुंदरसेन ने दौड़कर मंदारवती को गले से लगा लिया। विंध्यकेतु ने उस वैश्य को खूब फटकारा और अपने सेवकों को उसे मार डालने की आज्ञा दी, किंतु सुंदरसेन के कहने पर उसका धन छीनकर छोड़ दिया। फिर वह सुंदरसेन और मंदारवती को अपने महल में ले गया और वहां उनका खूब आदर-सत्कार किया। अगले दिन सुंदरसेन ने विंध्यकेतु से कहा, "अब हम अपनी नगरी अलका को लौटेंगे, क्योंकि पिताजी हमारे अभाव में बड़े चिंतित होंगे, सो आप अपने सेवक के द्वारा उन्हें हमारे लौटने की सूचना भिजवा दीजिये।" राजपुत्र की आज्ञा पाकर विंध्यकेतु ने ऐसा ही किया। विंध्यकेतु का नौकर जब पत्र लेकर अलका नगरी में पहुंचा तो उसने देखा कि राजा महासेन अपनी पत्नी के सहित सुंदरसेन के डूब जाने का समाचार पाकर नगरी से बाहर अग्नि में जलकर मरने के लिए उद्यत हो रहे हैं और सारे नगर निवासी उन्हें घेरकर शोक कर रहे हैं।

"'यह देखकर वह नौकर दौड़ता हुआ दूर से ही बोला, "हे राजन! आपकी जय हो! आपका पुत्र सुंदरसेन मंदारवती के साथ समुद्र से सुरक्षित निकल आया है और हमारे राजा विंध्यकेतु के साथ शीघ्र ही लौट रहा है।" यह कहकर उसने वह पत्र राजा को दे दिया। उसे पढ़कर सब लोग बड़े प्रसन्न हुए और राजा महासेन भी अपनी नगरी को लौट गये। अगले दिन वह राजा मंदारदेव के साथ उसकी अगवानी करने के लिए चला। उधर सुंदरसेन ने अपने पिता को आते हुए देखा, तो घोड़े से उतरकर उसकी चरण-वंदना की। राजा महासेन ने उसे उठाकर छाती से लगा लिया। फिर मंदारवती को अपनी पुत्रवधू के रूप में पाकर अपने को धन्य माना। सुंदरसेन ने अपने श्वसुर मंदारदेव को भी प्रणाम किया। फिर वे सब बड़े समारोहपूर्वक अलका आये। मंदारदेव ने ज्योतिषियों से शुभ विवाह-लग्न का निश्चय कराकर अपनी पुत्री का विधिपूर्वक विवाह सुंदरसेन से कर दिया और पुत्रहीन होने के कारण अपना समस्त राज्य भी उसे दे दिया। तब महासेन से सम्मानित होकर राजा मंदारदेव, महेंद्रादित्य और विंध्यकेतु अपने-अपने देश को लौट गये। महासेन भी अपने पुत्र को राज्य सिंहासन पर बैठाकर रानी समेत तप करने के लिए वन में चला गया। सुंदरसेन ने राज्य पाकर अपनी पत्नी मंदारवती और मंत्रियों के साथ न्यायपूर्वक प्रजा का पालन किया और कुछ ही दिनों में पृथ्वी को जीतकर चक्रवर्ती हो गया।'

"यह कथा कहकर कण्व मुनि ने फिर हम सब लोगों को समझाया, 'आप

धैर्य धारण करें। शीघ्र ही आपका मिलन मृगांकदत्त से होगा और वह राजा शशांकवती को पाकर चिरकाल तक राज्य भोगेगा।' उस मुनि के कहने से हमारे मन में धैर्य हुआ और हम वहां से चलकर इस वन में आये। हम भूख-प्यास से व्याकुल हो रहे थे। पर इस वृक्ष पर फलों को देखकर ज्यों ही तोड़ने के लिए ऊपर चढ़े, त्यों ही गणेशजी के शाप से फल बनकर लटक गये। आज आपके तप से हम फिर मनुष्य योनि को प्राप्त हुए हैं।"

व्याघ्रसेन से यह समाचार सुनकर राजा मृगांकदत्त बहुत प्रसन्न हुआ और शशांकवती की आशा में उसने वह रात वहीं बिता दी।

## : ३५ :

## दूत-कार्य

भोर होने पर वे फिर उज्जयनी की ओर चल दिये। मार्ग में अनेक वनों, पर्वतों और नदियों को पार करते हुए वे उज्जयनी के निकट पहुंच गये। वहां गंधवती नाम की नदी में स्नान करके उन्होंने एक अत्यंत भयानक महा श्मशान को पार किया। फिर उन्होंने राजा कर्मसेन के द्वारा रक्षित युगों की पुरानी उज्जयनी नगरी को देखा, जिसके मुख्य दरवाजों पर शस्त्रधारी रक्षक खड़े हुए थे तथा पर्वत की चोटियों की तरह ऊंचा जिसका परकोटा था। इस प्रकार की अत्यंत दुर्गम उज्जयनी को देखकर मृगांकदत्त अपने साथियों से बोला, "अनेक कष्ट उठाकर हम यहां आये, पर इस नगरी में तो प्रवेश भी नहीं किया जा सकता। शशांकवती की प्राप्ति तो दूर की बात है।" यह सुनकर उसके साथियों ने उत्तर दिया, "राजन ! हमें ऐसा प्रतीत होता है कि यह नगरी बल-साध्य है, इसलिए कोई उपाय सोचना चाहिए और वह उपाय अवश्य मिलेगा। क्या आप भूल गये कि देवताओं ने हमें शशांकवती को प्राप्त होने का आशीर्वाद दे रखा है ?" साथियों की इस बात से कुछ आश्वस्त होकर मृगांकदत्त कुछ दिनों तक उज्जयनी के बाहर घूमता रहा। तभी विक्रमकेसरी ने अपने सिद्ध किये हुए बेताल को इसलिए याद किया कि वह शशांकवती को उसके निवास स्थान से निकालकर ले आये। स्मरण करते ही बेताल उपस्थित हुआ, किंतु वह भी शिव से सुरक्षित उस नगरी में प्रवेश न कर सका। यह देखकर मृगांक

दत्त तथा उसके साथी बहुत ही खिन्न और निराश हुए। तब नीति को जाननेवाले श्रुतधि ने कहा, "हे राजन! यह तो निश्चित है कि इस नगरी में थोड़े साधनों से प्रवेश नहीं किया जा सकता। सो आप अपने बल को क्यों नहीं इकट्ठा करते? भीलों के राजा मायावटु, उनके मित्र अत्यंत बलशाली मातंगराज तथा आपके बचपन के मित्र किरातराज बलशाली शक्तिरक्षित को आपने पहले ही सहायता के लिए तैयार रहने को कह दिया है। आप इन सबकी सेना की सहायता लेकर अपना कार्य सिद्ध कीजिये। किरातराज शक्तिरक्षित के दूत ने तो अभी आपको आकर सूचना दी है कि वह आपकी प्रतीक्षा में तैयार बैठा है और यह भी पता चला है कि मातंग के साथ मायावटु भी तैयार होकर उसके पास आ गये हैं। अब आप यहां से मातंगराज के देश में चलिये, वहीं सब दलों को एकत्रित कर लिया जायगा।" श्रुतधि की इस बात को सब लोगों ने पसंद किया और वे अगले दिन ही उस दिशा की ओर चल दिये। अनेक वनों में घूमते-घूमते वे विंध्याचल में पहुंचे और एक पेड़ के नीचे उन्होंने विश्राम किया। लेकिन प्रश्न यह था कि मातंगराज के निवास स्थान का पता कैसे चले? तभी सामने से आते हुए उन्होंने एक मुनिकुमार को देखा और नमस्कार करके उससे मातंगराज का पता पूछा। उसने बताया, "यहां से एक कोस की दूरी पर पंचवटी है। उसके अत्यंत समीप ही अगस्त्य मुनि का आश्रम है। उस आश्रम से कुछ दूरी पर ही करमग्रीव नाम का दुर्गम कोट है, जिसमें मातंगराज दुर्गपिशाच रहता है।" बस वे सब वहीं पहुंचे। मायावटु भी वहां पहले से ही आ गया था। मृगांकदत्त को देखकर उन्होंने उसका खूब स्वागत किया, फिर साथियों सहित उसे डेरे पर ले गया। वहां मातंगराज ने मृगांकदत्त को मोती और कस्तूरी आदि भेंट में दिये। फिर खा-पीकर बातचीत करते हुए उसने मृगांकदत्त से पूछा, "मायावटु आपकी प्रतीक्षा में बहुत दिनों से यहां आकर ठहरा हुआ है, आप इतने समय तक कहां रहे?" मृगांकदत्त ने उसे सारा हाल सुना दिया। फिर कहा, "हम शशांकवती को प्राप्त करने की इच्छा से उज्जयनी में पहुंचे, किंतु उसकी सुरक्षा का प्रबंध देखकर हम उसमें प्रवेश भी न कर सके, शशांकवती को पाना तो दूर रहा। सो, अब हमें क्या करना चाहिए, यह विचारने के लिए हम तुम्हारे पास आये हैं।" मृगांकदत्त की यह बात सुनकर मातंगराज और मायावटु ने कहा, "आप धैर्य धारण कीजिये। हमारे लिए यह कौन कठिन बात है? आप कहें तो हम राजा कर्मसेन को ही बांध

कर यहां ले आयें अथवा शशांकवती को ही जबरदस्ती छीन लायें।" मृगांकदत्त ने कहा, "आप वीर हैं। आप लोगों के लिए क्या दुस्साध्य है? किंतु फिर भी हमें युक्तिपूर्वक कोई उपाय सोचना चाहिए।" तब मृगांकदत्त ने अपना दूत भेजकर भीलराज शक्तिरक्षित को भी वहीं बुलवा लिया। सब साथियों को इकट्ठा करके उसने कहा, "हमारी सारी सेनाएं तैयार हैं। अब समय बिताने से क्या लाभ? हमें आज ही उज्जयनी पर धावा बोल देना चाहिए।" मृगांकदत्त की यह बात सुनकर नीतिविज्ञ श्रुतधि ने कहा, "राजन! हमें आक्रमण करने से पूर्व कर्तव्य और अकर्तव्य का निर्णय कर लेना चाहिए। साम, दाम, दंड, भेद—इन चार उपायों में से पहले हमें साम का आश्रय लेना चाहिए। राजा कर्मसेन के पास अपना दूत भेजकर हमें उसकी पुत्री मांगनी चाहिए। यदि वह हमारी प्रार्थना स्वीकार न करे, तो आगे अन्य उपायों का आश्रय लिया जाना चाहिए।" श्रुतधि की इस सलाह की सबने प्रशंसा की और सुविग्रह नाम का दूत राजा कर्मसेन के पास संदेश पत्र लेकर भेजा गया। इस पत्र में लिखा था: "मैं अयोध्यापुरी के महाराजाधिराज अमरदत्त का पुत्र मृगांकदत्त आपसे आपकी पुत्री शशांकवती को मांगता हूं। यदि आप उसे मुझे दे देंगे तो हमारा पुराना वैर समाप्त हो जायगा, और हम लोग परस्पर मित्र बन जायेंगे, अन्यथा मैं हठात अपने भुजबल से उसे ले लूंगा।"

दूत ने यह पत्र राजा कर्मसेन की सभा में जाकर दिया, जिसे उसके मंत्री प्रज्ञाकोष ने पढ़ा। इस संदेश को सुनकर राजा कुपित हो उठा। उसने अपने मंत्रियों से कहा, "हमें इस पत्र का उत्तर भी नहीं देना चाहिए, कन्या की बात तो दूर रही।" और दूत से कहा, "तुम अपने राजा से कह देना कि जैसा उसके मन में आये, वैसा करे।" राजा का वचन सुनकर दूत ने भी उसे मुंहतोड़ उत्तर दिया। इस पर सारी सभा कुपित हो गई और सभासद उसे मारने दौड़े। किंतु राजा कर्मसेन ने दूत को अवध्य जानकर उन्हें मारने से रोक दिया। वहां से लौटकर दूत मृगांकदत्त के पास पहुंचा। उससे सारा हाल सुनकर मृगांकदत्त ने सारी सेना को उज्जयनी की ओर चलने की आज्ञा दे दी। वह स्वयं भी अपने दल-बल तथा मंत्रियों के साथ चला।

## : ३६ :

# युद्ध और विवाह

मृगांकदत्त सेना समेत उज्जयनी के निकट आ पहुंचा है, यह सुनकर राजा कर्मसेन भी अपनी सेना लेकर युद्ध के लिए बाहर निकल पड़ा। पास आकर दोनों की सेनाओं में भयंकर युद्ध आरंभ हो गया। इस युद्ध में अनेकों वीर मरने लगे और खून की नदियां बहने लगी।

इस प्रकार पांच दिन तक लगातार युद्ध हुआ। पांचवें दिन सायंकाल के समय श्रुतधि ने राजा मृगांकदत्त से कहा, "आप लोग तो इधर युद्ध में व्यस्त रहे और में एक भिक्षुक का रूप बनाकर चुपचाप उज्जयनी में चला गया। वहां की जो बातें हैं, वे में आपको सुनाता हूं। जिस दिन राजा कर्मसेन युद्ध के लिए निकला, उसी दिन शशांकवती अपनी माता से आज्ञा पाकर पिता के कल्याण के लिए नगरी में स्थित गौरी के मंदिर में आकर एकांत में पूजा करने लगी। वहां वह अपनी विश्वासपात्र सखी से बोली, 'सखि! मेरे लिए पिताजी को यह युद्ध लड़ना पड़ रहा है। इस युद्ध में यदि पिताजी हारने लगे, तो वह मुझे अवश्य ही मृगांकदत्त को दे देंगे। सो, उसके हाथ लगने से पूर्व मैं यह जान लेना चाहती हूं कि वह कुरूप तो नहीं है। यदि वह कुरूप है, तो मैं उसके साथ विवाह करने की अपेक्षा मरना अधिक पसंद करूंगी। इसलिए तुम युक्तिपूर्वक उसकी सेना में जाकर उसे देखकर आओ कि उसका रूप कैसा है?' शशांकवती की यह बात सुनकर चतुरिका नाम की वह सखी यहां आई और आपको देखकर शशांकवती से बोली, 'सखि! वह अत्यंत सुंदर है। मैंने इतना सुंदर आदमी आज तक नहीं देखा। वह बिल्कुल तुम्हारे योग्य वर है।' सखी से यह समाचार पाकर शशांकवती आपको चाहने लगी। उसी क्षण से शशांकवती आपके तथा अपने पिता दोनों के कल्याण के लिए तीव्र तप कर रही है। आपके वियोग में वह अत्यंत कमजोर हो गई है। सो आप आज ही रात में चुपचाप छिपकर गौरी के मंदिर में पहुंच जायें और उस राजपुत्री को छिपकर ले आयें। इससे युद्ध बंद हो जायगा और दोनों ओर की सेना का विनाश रुककर दोनों पक्षों का कल्याण होगा।"

श्रुतधि की यह बात सुनकर मृगांकदत्त अपने मंत्रियों के साथ सब लोगों के सो जाने पर गौरी के मंदिर में पहुंचा। वहां शशांकवती चिंतित होकर सोच रही थी,

"मेरे लिए ही दोनों पक्षों के वीर व्यर्थ ही कट-कटकर मर रहे हैं। रात को स्वप्न में देवी ने दर्शन देकर मुझसे कहा है कि यह राजपुत्र मृगांकदत्त मेरा पति बनेगा। मेरे पिताजी अपनी जिद पर डटे हुए हैं, वह मुझे उसे नहीं देंगे। ये सब उपद्रव मेरे ही कारण हो रहे हैं। सो, जब तक पिताजी तथा मृगांकदत्त का कोई अप्रिय नहीं होता, तब तक मैं ही क्यों न अपने प्राणों को त्याग दूं ?"

यह सोचकर वह अशोक के पेड़ में अपने दुपट्टे से फांसी लगाकर मरने के लिए उद्यत हुई। तभी मृगांकदत्त अपने मित्रों के साथ वहां आ गया और उसके रूप-सौंदर्य को देखकर विचारने लगा कि यह सुंदरी कौन है ? तभी शशांकवती ने देवी के सामने हाथ जोड़कर प्रार्थना की, "हे माता ! यदि मैं इस जन्म मे मृगांकदत्त को अपना पति न पा सकी, तो अगले जन्म में वह मुझे पति रूप में प्राप्त हो।" यह प्रार्थना करके वह ज्यों ही अपने गले में फंदा लगाने लगी, त्यों ही उसकी सखियां वहां आ गईं और उन्होंने उसके गले से फंदा हटा दिया। उसी समय मंदिर के अंदर से आवाज आई, "बेटी ! तुम दुखी मत हो, मेरा वचन वृथा नहीं जायेगा। मृगांक-दत्त, जिसे मैंने पहले से ही तेरा पति नियुक्त कर दिया है, तेरे पास ही आ गया है। तू उसके पास जा और समस्त पृथ्वी का राज्य भोग।" यह वाणी सुनकर शशांकवती चकित रह गई। उसी क्षण मृगांकदत्त का मंत्री विक्रमकेसरी उसके पास आया और कहने लगा, "हे देवि ! भवानी ने जो अभी वाणी की है, वह सत्य है, मृगांकदत्त अभी आपके पास ही आनेवाले हैं।" तभी मृगांकदत्त वहां आ पहुंचा और उससे प्रेमपूर्ण वार्तालाप करके उसे अपने साथ चलने के लिए राजी कर लिया।

फिर शशांकवती को सखियों समेत वहां से लेकर मृगांकदत्त उज्जयनी के बाहर आ गया और वहांसे उसे मायावटु के नगर कांचनपुर में ले गया। शशांक-वती के हरे जाने का समाचार सुनकर नगरी में कोलाहल मच गया। राजा ने यह समाचार सुनकर आज्ञा दी कि मृगांकदत्त को या तो मार डालो अथवा पकड़ लो। सेनापति ने बहुत सी सेना मृगांकदत्त का पीछा करने के लिए भेजी, किंतु उसे दूतों से पता चला कि मृगांकदत्त शशांकवती को लेकर भाग चुका है। उसने लौट-कर राजा को सब हाल सुना दिया। राजा ने वह सारी रात चिंता और बेचैनी में बिताई। उसने मन में सोचा कि जब मृगांकदत्त शशांकवती को चुराकर ले ही गया, तो अब लड़ने से क्या लाभ ? अब तो उसे दे देना ही श्रेयस्कर है। प्रातःकाल होते ही उसने अपना दूत मृगांकदत्त के शिविर में भेजा और उसके सब साथियों से कहल-

वाया, "यद्यपि मृगांकदत्त ने छल से मेरी पुत्री को हरा है, फिर भी कोई बात नहीं। यदि वह तुम सबके साथ मेरे पास आ जायेगा तो मैं उसके साथ विधिवत शशांकवती का विवाह कर दूंगा।" दूत के मुख से ये बातें सुनकर श्रुतधि आदि ने उसकी बातों पर विश्वास किया और दूत से कहा, "तुम राजा से जाकर कहो कि हम सब प्रातःकाल उसे लेकर आपकी सभा में उपस्थित होंगे।" तब वे सब मिलकर मायावटु के घर पहुंचे और राजा कर्मसेन का संदेश सुनाया। इस पर सब लोगों ने मिलकर सलाह की कि राजा कर्मसेन के पास विवाह के लिए जाना चाहिए अथवा नहीं ? सभी मंत्रियों और साथी राजाओं की यह सम्मति थी कि उज्जयनी में नहीं जाना चाहिए। क्या पता कहीं राजा कर्मसेन छल न कर बैठे ? मृगांकदत्त ने श्रुतधि से पूछा, "आप अपनी सलाह दीजिये।" उसन कहा, 'मेरे विचार में तो राजा कर्मसेन के पास अवश्य जाना चाहिये क्योंकि राजा अपनी पुत्री का विवाह विधिपूर्वक करना चाहता है, उसका आशय बुरा नहीं है।" सब लोगों ने श्रुतधि की सलाह का समर्थन किया। तब मृगांकदत्त न कहा, "यदि मेरा विवाह शशांकवती के साथ होना है, तो यह अच्छा नहीं लगता कि इस अवसर पर मेरे माता-पिता उपस्थित न हों। इसलिए उनको बुलाने के लिए किसीको भेज दो। उनका अभिप्रांय जानकर ही मैं यथोचित काम करूंगा।" तब सबने सलाह करके भीमपराक्रम को अयोध्यापुरी में राजा अमरदत्त के पास भेजा। उधर राजा अमरदत्त को सब घटनाओं का पता चल गया था कि मंत्री विनीतमति ने झूठे ही मृगांकदत्त की चुगली करके उसे देश से निकलवा दिया है। उसे अपने किये का बड़ा पश्चात्ताप हुआ और उसने विनीतमति को सपरिवार मरवा दिया। फिर मृगांकदत्त के वियोग से दुखी होकर वह राज्य का समस्त भार मंत्रियों पर छोड़कर नंदीग्राम में रानी समेत तपस्या करने लगा। मृगांकदत्त का मंत्री भीमपराक्रम पहले सीधा अयोध्या ही पहुंचा, पर जब उसे यह पता चला कि राजा नंदीग्राम में तपस्या कर रहे हैं, तो वह वहीं पहुंचा और सारा हाल कह सुनाया। राजा अमरदत्त यह जानकर कि उसका पुत्र सुरक्षित और सकुशल है तथा उसका विवाह उज्जयनी के राजा कर्मसेन की पुत्री से हो रहा है, बहुत प्रसन्न हुआ और अगले दिन ही रानी-सहित भीलराज मायावटु के नगर कांचनपुर को चल दिया। कुछ ही दिनों में वह वहां पहुंच गया। जब मृगांकदत्त ने माता और पिता का आना सुना, तो वह प्रसन्न होकर उनका स्वागत करने गया। उनके चरणों पर लेटकर

उसने प्रणाम किया। उन्होंने उठाकर उसे छाती से लगा लिया। तब मृगांकदत्त ने अपने सब नये साथियों से उनका परिचय कराया। उधर राजा कर्मसेन ने निश्चित दिन मृगांकदत्त को न आया देखकर अपने दूत को भेजा और कहलवाया, "यदि आप उज्जयनी में नहीं आना चाहते, तो मैं अपने पुत्र सुषेण को आपके पास भेज दूंगा। वह विधिपूर्वक अपनी बहन का विवाह आपके साथ कर देगा।" राजा कर्मसेन का यह संदेश सुनकर मृगांकदत्त के पिता ने उत्तर दिया, "यही उचित है कि आप अपने पुत्र को ही यहां भेज दें।" दूत के चले जाने पर उसने फिर कहा, "यह विवाह अयोध्या नगरी में ही शोभा देता है। वहीं पर सुषेण का स्वागत सत्कार भी अच्छी प्रकार हो सकेगा। सो हम सब वहां चलकर विवाह की तैयारियां करें और मायावटु यहीं रहकर सुषेण की प्रतीक्षा करें। उसके आने पर ये दोनों भी अयोध्या चले आयें।" सबने यह बात मान ली और अगले दिन राजा अमरदत्त अपनी रानी, पुत्र, शशांकवती एवं उसके साथियों के साथ अयोध्या को चल दिया। मार्ग में किरातराज शक्तिरक्षित के घर होते हुए वे अयोध्या पहुंच गये। वहां प्रजा ने उनका मुक्त हृदय से स्वागत किया। फिर राजा ने ज्योतिषी को बुलाकर विवाह की तिथि निश्चित की। उधर कुछ दिन बाद सुषेण भी मायावटु के साथ अयोध्या आ पहुंचा। इसके बाद निश्चित लग्न में सुषेण ने अपनी बहन का विवाह मृगांकदत्त से कर दिया। उसने बहुत सा सोना, रत्न आदि भेंट में दिया। इस खुशी में नगर में कई दिनों तक खूब उत्सव मनाये गये। बाद में राजा अमरदत्त ने मायावटु, मातंगराज, श्रुतधि, शक्तिरक्षित आदि को हाथी-घोड़े आदि देकर उनका सत्कार किया। इसके बाद वे अपने-अपने स्थानों को लौट गये। सुषेण भी कुछ दिन रहकर उज्जयनी को लौट गया। फिर राजा अमरदत्त ने अपने मंत्रियों की सलाह से राज्य मृगांकदत्त को दे दिया और स्वयं रानी के साथ तीर्थों में तपस्या करने चला गया। मृगांकदत्त राज्य पाकर और दिग्विजय करके समस्त पृथ्वी का सम्राट बन गया और धर्मानुसार प्रजा का पालन करने लगा।

इस प्रकार मलयवन में मुनि पिशंगजट ने राजा नरवाहनदत्त को यह कथा सुनाई और कहा, "हे राजपुत्र! जिस प्रकार मृगांकदत्त को शशांकवती प्राप्त हुई थी, उसी प्रकार तुम्हें भी मदनमंचुका मिलेगी।" पिशंगजट मुनि का यह वचन सुनकर नरवाहनदत्त मुनि को णाम करके ललितलोचना नाम की विद्याधरी को ढूंढने के लिए चला गया।

# तेरहवां खंड

## : १ :

## मदिरावती

इसके बाद मदनमंचुका के विरह से व्याकुल होकर नरवाहनदत्त मलय पर्वत तथा उसके समीप के वनों में घूमता हुआ गंगा के समीप के वन में एक तालाब के किनारे पहुंचा। वहां उसने देखा कि एक पेड़ के नीचे बैठे हुए दो ब्राह्मण-पुत्र बातचीत कर रहे हैं। नरवाहनदत्त को देखकर वे दोनों खड़े हो गये और प्रणाम करके उन्होंने उसका परिचय पूछा। नरवाहनदत्त ने उन्हें अपना वृत्तांत सुना दिया और फिर उनसे उनका परिचय पूछा। उन दोनों में से एक ने नम्रतापूर्वक कहा, "हे राजन्! कलिंग देश में शोभावती नाम की एक नगरी है। वहां यशस्कर नाम का विद्वान तथा यज्ञ करनेवाला एक ब्राह्मण रहता था। उसकी पत्नी का नाम मेखला था। मैं उन दोनों का पुत्र हूं। उन्होंने यथासमय मेरे यज्ञोपवीत आदि संस्कार किये और मुझे पढ़ने बैठा दिया। उसी समय वहां बड़ा दुर्भिक्ष पड़ा। अतः मेरे माता-पिता मुझे साथ लेकर विशाला नगरी में चले आये और वहां अपने एक वैश्य मित्र के यहां रहने लगे। मैं गुरु के घर अपने दूसरे साथियों के साथ विद्या पढ़ने जाने लगा। उनमें मेरा एक साथी विजयसेन नाम का धनी क्षत्रिय कुमार था। एक दिन उसकी बहन कुमारी मदिरावती उसके साथ गुरु के घर आई। वह अत्यंत सुंदरी थी। उसे देखते ही मैं उसे चाहने लगा। उसकी चाल-ढाल से भी ऐसा ही लगा। वह कुछ समय गुरु के घर में रहकर अपने घर चली गई। उसके चले जाने पर मैं बेचैन रहने लगा। एक दिन विजयसेन ने मुझसे कहा, 'मदिरावती से तुम्हारे गुणों की प्रशंसा सुनकर मेरी माता ने तुम्हें घर बुलाया है।' मैं उसके साथ उसके घर गया और वहां मदिरावती तथा उसकी माता ने मेरा बड़ा सत्कार किया।

इसके बाद विजयसेन के साथ मदिरावती भी कभी-कभी मेरे घर आने लगी और हम दोनों प्रेम के सूत्र में पूरी तरह से बंध गये। एक दिन मदिरावती की धाय ने मुझसे आकर कहा, 'मदिरावती ने तुम्हारे प्रेम में पड़कर खाना-पीना छोड़ रखा है, वह तुम्हारे बिना जीवित नहीं रह सकती। सो, तुम शीघ्र ही कुछ उपाय करो।' मैंने उससे कहा, 'मैं स्वयं उसके प्रेम में बंध गया हूं। तुम जैसा चाहो, वैसा करो।' यह सुनकर धाय चली गई और मुझे विश्वास हो गया कि मुझे मदिरावती अवश्य मिलेगी, किंतु अगले दिन ही मैंने सुना कि उसके पिता ने उसका विवाह उज्जयनी के एक क्षत्रिय कुमार के साथ निश्चित कर दिया है। यह सुनकर मैं स्तब्ध रह गया और सोचने लगा कि मुझे अब क्या करना चाहिए? कुछ दिन बाद पता लगा कि उसके विवाह की लग्न भी निश्चित कर दी गई है और माता-पिता ने उसका घर से निकलना बंद कर दिया है। यह सुनकर मैं निराश हो गया और नगर से बाहर एक पेड़ की शाखा में फांसी बनाकर मरने चला, किंतु क्षण भर में ही बेहोश होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। होश में आने पर मैंने देखा कि मैं एक नवयुवक की गोदी में पड़ा हूं। 'अवश्य ही इसने मुझे मरते ने बचा लिया है', यह सोचकर मैंने उससे कहा, 'हे महापुरुष! तुमने मेरे प्राण बचाकर यह दयालुता क्यों दिखाई? वियोग से पीड़ित होकर जीने की अपेक्षा मृत्यु ही मुझे पसंद है।' मेरा सारा हाल सुनकर उसने मुझसे कहा, 'तुम बुद्धिमान होकर भी इतने मूर्ख क्यों बन रहे हो? मरने से तुम्हारा क्या कार्य सिद्ध होगा? जीवित रह-कर उसकी प्राप्ति का प्रयत्न करो। इस संबंध में मैं तुम्हें अपना ही वृत्तांत सुनाता हूं,' यह कहकर उसने मुझे अपनी यह कथा सुनाई :

"मैं निषध देश के निवासी शीलश्रुत नाम के एक ब्राह्मण का पुत्र हूं। मैं दूसरे देशों को देखने की इच्छा से घर से निकल पड़ा और अनेक देशों में घूमता हुआ तथा अनेक उपाध्यायों के पास विद्या पढ़ता हुआ शंखपुर नाम के नगर में पहुंचा। वहां नागराज शंखपाल का पवित्र और स्वच्छ जलवाला शंखह्रद नाम का एक प्रसिद्ध तालाब है। मैं उस तालाब के निकट एक गुरु के घर में विद्या पढ़ने और रहने लगा। किसी पर्व के दिन मैं उस तालाब पर नहाने गया। वहां मैंने एक सुंदर कन्या को फूल चुनते हुए देखा। इसी समय एक मस्त हाथी दौड़ता हुआ उधर ही आ गया, जिससे डरकर उस सुंदरी के रक्षक उसे अकेली छोड़कर इधर-उधर भाग गये। मैंने दौड़कर उसे

उठा लिया और सांत्वना देकर उसके परिजनों के पास ले गया। तभी वह हाथी भी उधर ही दौड़ता हुआ आ गया और उसके परिजन उस कन्या को न जाने किधर ले गये और मैं उसका नाम और पता भी न जान पाया। मैं दुखी होकर गुरु के घर लौट आया। मेरे एक मित्र ने मुझे उदास देखकर बड़ी सांत्वना दी, किंतु मैं धैर्य धारण न कर सका। वहां किसी प्रकार रात बिताकर मैं यहां इसलिए चला आया हूं कि कहीं वह इस नगरी में ही न आ गई हो ? किंतु अभी तक मुझे उसका कुछ पता नहीं लगा। इसी समय यहां मैंने तुम्हें मरने के लिए उद्यत देखा। सो, हे मित्र ! तुम्हें मदिरावती का पता तो है, मुझे तो उस सुंदरी का स्थान और नाम तक मालूम नहीं, फिर भी मैं उसे प्राप्त करने का उद्योग कर रहा हूं जबकि तुम पूरी जानकारी रखकर भी मरने पर उतारू हो रहे हो।

"मेरा मित्र यह कह ही रहा था कि इतने में मदिरावती अपनी सखियों के साथ वहां मंदिर में पूजा करने के लिए आई। मेरे मित्र ने कहा, 'चलो हम दोनों इस मंदिर में देवी की प्रतिमा के पीछे छिपकर देखें, शायद कोई उपाय निकल आये।' सो, हम दोनों वहां छिप गये। मदिरावती ने वहां आकर अपने नौकरों और सखियों को अलग कर दिया और अकेली ही मंदिर में प्रवेश करके देवी की पूजा करके कहने लगी, 'हे माता ! मैं इस जन्म में तो अपने प्रिय को न पा सकी, किंतु अगले जन्म में आपकी कृपा से वही मेरा पति बने।' यह कहकर मदिरावती हमारे ही सामने अपने गले में दुपट्टे से फांसी लगाकर मरने के लिए उद्यत हुई। तब मेरे मित्र ने कहा, 'तुम जाकर इसे बचाओ।' मैंने एकदम उसके गले से फंदा हटा दिया और कहा, 'मरने का साहस मत करो ! मैं तुम्हारा दास उपस्थित हूं।' मुझे अचानक वहां पाकर वह भौंचक्की रह गई। तब मेरे मित्र ने कहा, 'तुम इसे मेरे दुपट्टे से ढककर मंदिर के पिछले दरवाजे से कहीं चले जाओ। मैं मदिरावती के कपड़े पहनकर इसके परिजनों के साथ चला जाऊंगा, सायंकाल होने के कारण कोई मुझे पहचान न सकेगा।' उसकी सलाह के अनुसार मैं मदिरावती को मंदिर के पिछले दरवाजे से लेकर चला आया और वह मदिरावती का वेष बनाकर सखियों के साथ चला गया। फिर मैं मदिरावती को लेकर इधर-उधर घूमता हुआ अचलपुर नामक नगर में पहुंचा और वहां एक ब्राह्मण के घर मदिरावती के साथ विवाह करके रहने लगा। किंतु मुझे अपने उस अकारण मित्र की चिंता हमेशा बनी रहती थी। मैं आज यहां गंगा-स्नान करने आया था, तभी अचानक यह मेरा मित्र

यहां मुझे मिल गया और हम दोनों बैठ कर बातें करने लगे। इसी समय हमें आपके दर्शन हो गये।"

उससे यह वृत्तांत सुनकर नरवाहनदत्त ने दूसरे आदमी से पूछा, "अब आप बताइये कि आप उस संकट से कैसे मुक्त हुए?" उसने कहा, "मैं मदिरावती के वेष में पालकी में बैठकर उसके घर पहुंचा। वहां मैंने देखा कि विवाह की सब तैयारियां हो चुकी हैं। सब सखियां मेरा श्रृंगार करके और घूंघट निकालकर मुझे एक कमरे में ले गईं। तभी वहां एक सुंदरी कन्या आई और वह मुझे अपनी प्यारी सखी मदिरावती समझकर मेरे पास बैठ गई। मैंने देखा कि यह तो वही कन्या थी जिसे मैंने शंखह्रद नामक तालाब पर देखा था और पागल हाथी से बचाया था। उसे देखते ही मैं अकस्मात मिलने से प्रफुल्लित हो उठा। वह मुझे मदिरावती ही समझकर दूसरी सखियों से बोली, 'मैं अपनी प्यारी सखी से कुछ बातें एकांत में करना चाहती हूं।' यह सुनकर सब सखियां बाहर चली गईं और हम दोनों ही उस कमरे में रह गये। वह कहने लगी, 'सखी! यद्यपि तुम किसी दूसरे से प्रेम करती हो और तुम्हारे पिता तुम्हारा विवाह किसी और के साथ कर रहे हैं, किंतु फिर भी तुम उसका नाम और पता तो जानती हो। हो सकता है कि कभी-न-कभी तुम्हारा उसके साथ मिलन हो जाय। पर मुझे तो देखो कि मैं जिसको चाहती हूं, उसका नाम और पता तक मुझे मालूम नहीं है! जिस नवयुवक ने तालाब के निकट पागल हाथी से मुझे बचाया था, मैं हमेशा उसीका चिंतन करती रहती हूं, पर, उसका नाम और पता भी नहीं जानती। सो, सखी, बस मेरा तो मरण ही निश्चित है। मैंने सोचा कि अच्छा, एक बार जाती हुई तुम्हारा अंतिम दर्शन तो कर लूं।'

"यह कहकर उसने ज्यों ही मेरा घूंघट उघाड़ा, त्यों ही मुझे देखकर चकित रह गई। मैंने उससे कहा, 'मैं तुम्हारा वही क्रीतदास हूं। सारा हाल विस्तार से फिर बताऊंगा, अब तो शीघ्र मुझे यहां से निकालकर ले चलने का उपाय सोचो।' उसने कहा, 'आओ पिछले द्वार से हम चुपचाप निकल चलें, क्योंकि इस ओर बाहर मेरे पिता का घरेलू बगीचा है, उसीसे निकलकर हम कहीं चले चलेंगे।" मैं उसके साथ निकलकर एक निर्जन वन में पहुंचा। इधर-उधर भटकते हुए हम थककर एक पेड़ की छाया में बैठ गये। तभी वहां अचानक एक धनुषधारी आदमी घोड़े पर चढ़कर आ निकला और उसने एक ही भाले के प्रहार से बड़े भारी भैंसे को मार गिराया। उससे बातें करने पर पता चला कि वह वनचरों का स्वामी है और

शिकार खेलने आया है। हमारा हाल सुनकर वह हमें अपने घर ले गया और मैंने वहां उस कन्या से गंधर्व विवाह कर लिया। फिर कुछ दिन वहां रहकर मैं अपनी पत्नी के साथ इधर-उधर घूमता हुआ आज यहां गंगा में स्नान करने चला आया। संयोगवश यह मित्र भी मुझे यहां मिल गया और आपके भी दर्शन हो गये।"

यह कहकर वह ब्राह्मण चुप हो गया। इस कथा को सुनकर नरवाहनदत्त ने उनकी बड़ी प्रशंसा की। तभी नरवाहनदत्त के गोमुख आदि मंत्री उसे ढूंढते हुए वहां आ पहुंचे और ललितलोचना भी उसे मिल गई। इसके बाद राजा नरवाहनदत्त उन सबके साथ अपनी नगरी कौशांबी को चला गया।

# चौदहवां खंड

## : १ :

## वेगवती

अब नरवाहनदत्त अनेक सुंदरी पत्नियों तथा प्रधान रानी मदनमंचुका के साथ कौशांबी नगरी में सुखपूर्वक रहने लगा। एक दिन जब वह रनिवास में पहुंचा, तो उसने देखा कि उसकी प्रधान रानी मदनमंचुका तथा उसकी दासियां वहां नहीं हैं। वह बेचैन हो उठा और सोचने लगा कि क्या वह मेरे प्रेम की परीक्षा लेने के लिए कहीं जा छिपी है अथवा मेरे किसी अपराध से कुपित होकर कहीं चली गई है या कहीं किसीनें माया से उसे अदृश्य तो नहीं कर दिया है? इधर-उधर बहुत ढूंढ़ने पर भी जब उसका कोई पता न लगा, तो वह बहुत संतप्त हुआ। तभी रनिवास की एक दासी ने कहा, "महाराज कहीं वह नवयुवक विद्याधर मानसवेग उसे आकाश मार्ग से हरकर न ले गया हो? उसने पहले स्वयं मदन-मंचुका को मांगा था, किंतु वह उसे नहीं दी गई थी।" यह सुनकर रुमण्वान नामक मंत्री ने कहा, "यह नगरी चारों ओर से सुरक्षित है, शिव के प्रसाद से इसमें किसी का कोई अनिष्ट नहीं हो सकता। मुझे तो ऐसा लगता है कि वह प्रणय-कोप से कुपित होकर ही कहीं चली गई है। इस संबंध में मैं तुम्हें एक कथा सुनाता हूं :

"प्राचीन काल में अंगिरा मुनि ने अष्टावक्र से उनकी कन्या सावित्री को विवाह के लिए मांगा। अष्टावक्र ने सावित्री का विवाह पहले ही किसी और से निश्चित कर दिया था, सो वह विवश थे। तब अंगिरा ने अष्टावक्र के भाई की लड़की अश्रुता के साथ विवाह कर लिया और सुख से रहने लगे। अश्रुता को यह विदित था कि अंगिरा पहले सावित्री को चाहते थे। एक दिन अंगिरा चुपचाप बैठे हुए ध्यान लगाकर जप कर रहे थे। अश्रुता ने प्रेमपूर्वक उनसे पूछा, 'हे आर्यपुत्र! आप क्या चिंतन

कर रहे हैं ?' उन्होंने उत्तर दिया, 'हे प्रिये ! मैं सावित्री का ध्यान कर रहा हूं ।' अश्रुता ने समझा कि वह अष्टावक्र मुनि की पुत्री सावित्री का चिंतन कर रहे हैं । इसलिए वह कुपित होकर वन में चली गई और वहां गले में फांसी लगाकर मरने लगी । तभी भगवती गायत्री ने प्रकट होकर कहा, 'पुत्री ! मरने का साहस मत करो । तुम्हारे पति मेरा ध्यान कर रहे थे न कि अष्टावक्र की पुत्री सावित्री का ।' तभी मुनि अंगिरा उसे वन में ढूंढकर घर ले आये । इस प्रकार कहीं वह भी किसी अपराध से कुपित होकर छिप न गई हो ?"

मंत्री रुमण्वान के इस वचन से नरवाहनदत्त को तसल्ली न हुई । वह उसे ढूंढने के लिए वन में निकल पड़ा । उसके मंत्री भी उसके साथ हो लिये । इसी समय वेगवती नाम की विद्याधरी मदनमंचुका का रूप धारण करके उसी वन में एक पेड़ के नीचे बैठ गई । ढूंढते-ढूंढते मंत्री मरुभूति ने उसे देखा । दौड़ता हुआ वह नरवाहनदत्त के पास गया और उससे बोला, "मैंने एक पेड़ के नीचे मदनमंचुका को बैठे देखा है ।" नरवाहनदत्त तुरंत वहां आया और उसे मदनमंचुका समझकर उसकी ओर बढ़ा । तभी मदनमंचुका का वेष धारण किये हुए वह वेगवती बोली, "अभी आप मेरा स्पर्श न करें, पहले मेरी बात सन लें । मैंने विवाह से पहले आपको पाने की इच्छा से यक्षों की पूजा की थी और यह प्रतिज्ञा की थी कि विवाह के बाद में उन्हें अपने हाथ से बलि दूंगी, किंतु समय पर मैं उनको भूल गई । इसलिए कोप करके वे यक्ष मुझे यहां उठा लाये । सो, अब मैं फिर आपके साथ विधिवत विवाह करके उन्हें बलि दूंगी ।" यह सुनकर नरवाहनदत्त ने वैसा ही किया । बनावटी मदनमंचुका ने उस विवाह में यक्षों को खूब बलि दी । विवाह के बाद उस मदनमंचुका-रूपधारिणी वेगवती ने राजा से कहा, "आप मेरे सो जाने पर कभी भी मेरा मुंह उघाड़कर न देखना ।" यह सुनकर राजा ने उसके सोने पर कौतुकवश उसका मुंह उघाड़कर देख लिया । तब उसे पता चला कि वह तो मदनमंचुका न होकर कोई और स्त्री है, क्योंकि सोते समय उसका नकली रूप जाता रहता था । इतने में वह जाग पड़ी । राजा ने उससे पूछा, "सच बताओ, तुम कौन हो ?" वह बोली, "मैं आषाढ़पुर नाम के एक पर्वतीय प्रदेश के विद्याधर राजा वेगवान की पुत्री वेगवती हूं । मानसवेग मेरा भाई है और मुझसे अत्यंत द्वेष रखता है । उसने द्वेषवश ही मुझे विद्याधर-विद्याएं नहीं सिखाईं । तब मैंने स्वयं पिताजी के पास वन में जाकर तपस्या करके उन्हें बड़े परिश्रम से सीखा है । मानस-

वेग ही आपकी प्रिया मदनमंचुका को हरकर आषाढ़पुर में ले गया है। वह मदनमंचुका की इच्छा के विरुद्ध उसका सतीत्व भ्रष्ट नहीं कर सकता है। अनुनय-विनय से ही उसे समझाया करता है। उसे किसी मुनि का यह शाप है कि यदि वह वह किसी स्त्री के साथ बलात्कार करेगा तो उसकी मृत्यु हो जायेगी। मदनमंचुका से ही आपके गुणों की कथा सुनकर मैंने रूप बदलकर आपसे विवाह किया। अब चलिये मैं आपको मदनमंचुका के पास ले चलती हूं।" यह कहकर वह उसे अपनी विद्या के प्रभाव से आषाढ़पुर में ले गई। इधर सवेरा होने पर नरवाहनदत्त आदि को महल में न पाकर राजा उदयन और समस्त परिवार बड़ा बेचैन हुआ। तभी आकाश से महामुनि नारद वहां उतरे और राजा के पास आकर बोले, "तुम्हारे पुत्र को वेगवती विद्याधरी अपने स्थान पर ले गई है। वह सुरक्षित है और शीघ्र ही यहां आ जायेगा। मुझे यह संदेश लेकर भगवान शंकर ने आपके पास भेजा है।"

उधर जब मानसवेग को यह पता चला कि नरवाहनदत्त वेगवती के साथ आषाढ़पुर में आ गया है, तो वह उसे मारने को दौड़ा। तब वेगवती ने उसके पाथ युद्ध किया और उसे अपनी माया से मूर्च्छित करके अग्नि-पर्वत पर डाल दिया। फिर नरवाहनदत्त को भी गंधर्वपुर में ले जाकर एक अंधे कुएं में रख दिया। उसने कहा, "जब तक मैं विद्याओं को पुनः सिद्ध करके न आऊं, तब तक आप यहीं रहना, क्योंकि बड़े भाई के साथ युद्ध करने से मेरी सारी विद्याएं क्षीण हो गई हैं। मैंने यहां सुरक्षा के लिए आपको रखा है। मैं शीघ्र ही विद्याएं सिद्ध करके लौटूंगी।"

यह कहकर वेगवती चली गई।

: २ :

## मानसवेग से युद्ध

एक दिन वीणादत्त विद्याधर ने अंधकूप में पड़े हुए नरवाहनदत्त को देखा और उसे कुएं से निकालकर पूछा, "तुम मनुष्य होकर यहां विद्याधर लोक में कैसे आये?" नरवाहनदत्त ने उसे सब कुछ बता दिया। वीणादत्त उसे चक्रवर्ती के चिह्नों से युक्त देखकर अपने शहर ले गया। वहां जाकर नरवाहनदत्त

ने देखा कि उस शहर के सभी आदमी अपने हाथों में वीणा लिए हुए हैं। वीणादत्त ने बताया,"यहां के राजा सागरदत्त की पुत्री गंधर्वदत्ता वीणा बजाने में अत्यंत निपुण है। उसने यह प्रतिज्ञा की है कि यदि कोई भी विष्णु की स्तुति के गीतों को तीनों ग्रामों में वीणा पर बजाकर उसे सुना देगा, उसीके साथ वह विवाह करेगी। राजपुत्री का यह निश्चय जानकर सभी विद्याधर उसे पाने के लिए वीणा का अभ्यास कर रहे हैं।" यह सुनकर नरवाहनदत्त ने कहा कहा, "मैं तीनों लोकों की सारी गायन विद्याओं को जानता हूं।" इस पर वीणादत्त उसे राजा सागरदत्त के पास ले गया। जब भरी सभा में नरवाहनदत्त ने राजपुत्री गंधर्वदत्ता को वीणा बजाकर सुनाई, तो सारी सभा स्तब्ध रह गई। गंधर्वदत्ता ने भी उसे अपना पति स्वीकार कर लिया। विवाह करके नरवाहनदत्त वहीं गंधर्वदत्ता के साथ रहने लगा। एक दिन नरवाहनदत्त नगर की शोभा देखने के लिए गया और घूमता हुआ एक उपवन में पहुंच गया। वहां अपनी पुत्री सहित एक दिव्य स्त्री आकाश से उतरी और अपनी पुत्री से बोली, "बेटी यही वह नरवाहनदत्त हैं, जो तेरे पति बनेंगे।" यह सुनकर नरवाहनदत्त ने उससे पूछा, "आप कौन हैं?" उस स्त्री ने उत्तर दिया, "म देवसिंह विद्याधर की पत्नी धनवती हूं। यह मेरी पुत्री अजिनावती है। इसके भाई का नाम चंडसिंह है। एक बार आकाशवाणी ने मुझे बताया कि तुम इसके पति बनोगे। वेगवती तुम्हें यहां लाई है, यह जानकर मैं अपनी विद्या के प्रभाव से तुम्हारे पास आई हूं। तुम्हारा यहां रहना उचित नहीं है, क्योंकि तुम विद्याधरों के स्वामी होनेवाले हो। ये विद्याधर ईर्ष्यावश तुम्हें मार डालेंगे। सो, तुम मेरे साथ चलो, मैं तुम्हें सुरक्षित स्थान में पहुंचा दूंगी। समय आने पर मेरी पुत्री के साथ तुम्हारा विवाह हो जायेगा।" धनवती उसे आकाश मार्ग द्वारा श्रावस्ती नगरी में ले गई और एक उपवन में उसे उतार दिया।

वहां राजा प्रसेनजित शिकार खेलता हुआ आ पहुंचा और सुंदर लक्षणवाले उस राजपुत्र को देखकर अपने घर ले गया। फिर जब उसे उसके कुल-आदि का पता लगा, तो उसने अपनी पुत्री भगीरथयशा का विवाह उसके साथ कर दिया। अब फिर नरवाहनदत्त बड़े सुख से रहने लगा। एक बार रात के समय भगीरथयशा के सो जाने पर वह अपने माता-पिता, मंत्रियों तथा पत्नियों के विषय में सोचने लगा। इसी समय उसने किसी स्त्री की कातर वाणी सुनी। ऊपर को मुंह उठाकर उसने दीपक के प्रकाश

में देखा कि एक स्त्री झरोखे में से अपना मुंह निकालकर उसे अपने पास बुलाने के लिए उसकी ओर अंगुली का संकेत कर रही है। नरवाहनदत्त भगीरथयशा को सोती हुई छोड़कर महल से बाहर निकला और उस स्त्री के पास पहुंचा। उसने उस सुंदरी से पूछा, "तुम कौन हो और यहां क्यों आई हो?" उस स्त्री ने कहा, "मैं पुष्करावती नगरी के स्वामी पिंगलगांधार विद्याधर की पुत्री हूं। मेरा नाम प्रभावती है। आषाढ़पुर की राजकुमारी वेगवती मेरी सखी है। मैं उससे मिलने के लिए आषाढ़पुर गई थी, किंतु मुझे पता चला कि वह कहीं तपस्या करने चली गई है। तब मैंने वहां तुम्हारी पत्नी मदनमंचुका को देखा। वह तुम्हारे वियोग में अत्यंत कमजोर हो गई है। मुझे उसके साथ सहानुभूति हो गई। तुम्हें ढूंढ लाने की प्रतिज्ञा करके मैं वहां से चली आई और विद्या के प्रभाव से तुम्हें यहां देखा। किंतु मुझे यह जानकर अत्यंत दुख हुआ कि वह तो तुम्हारे वियोग में मर रही है और तुम उसे भूलकर यहां अन्य स्त्री में अनुरक्त हो।" नरवाहनदत्त ने उससे कहा, "तुम मुझे तुरंत मदनमंचुका के पास ले चलो।"

इस पर वह नरवाहनदत्त को आकाश-मार्ग से आषाढ़पुर में मदनमंचुका के पास ले गई। यही नहीं, अपनी विद्या के प्रभाव से उसने ऐसा कर दिया कि नरवाहनदत्त को मदनमंचुका के अतिरिक्त और कोई नहीं देख सकता था। इस प्रकार कुछ दिन तक वह उसके साथ रहा। फिर प्रभावती ने उसका अपना जैसा रूप बना दिया और स्वयं अदृश्य हो गई। अब राजा प्रभावती के वेष में मदनमंचुका के पास रहने लगा। दूसरे लोगों ने समझा कि वेगवती की सखी प्रभावती ही मदनमंचुका के साथ रहती है। एक दिन बातचीत के प्रसंग में मदनमंचुका ने उसे मानसवेग के हरने से लेकर अब तक सारा वृत्तांत बता दिया और बोली, "प्रभावती की विद्या के बल से तुम मुझे सौभाग्य से मिल गये। किंतु मेरी चिंता अभी तक नहीं मिटी, क्योंकि जिस दिन भी प्रभावती यहां से चली जायेगी, उसी दिन तुम्हारा असली रूप प्रकट हो जायेगा।" मदनमंचुका की यह बात सुनकर नरवाहनदत्त ने उसे धैर्य बंधाया और कहा, "तुम चिंता न करो। मैं सब देख लूंगा।"

एक दिन प्रभावती अपने पिता के घर चली गई और नरवाहनदत्त अपने असली रूप में प्रकट हो गया। जब इस बात का पता मानसवेग को चला, तो वह अपना दल-बल लेकर उसे मारने आया। उसकी माता पृथ्वीदेवी ने सारा हाल जानकर मानसवेग से कहा, "यह वत्सराज उदयन का पुत्र नरवाहनदत्त है और अपनी पत्नी

के पास आया है। तुम इसके साथ मत झगड़ो। इसमें इसका कोई अपराध नहीं है। दूसरे तुम्हारी बहन वेगवती ने इसके साथ विवाह किया है—यह मुझे विद्या के बल से पता चल गया है। सो यह हमारा दामाद है और पूज्य है।" किंतु मानसवेग ने माता की एक भी बात न सुनी और उससे लड़ने लगा। नरवाहनदत्त ने मानसवेग के बहुत से नौकरों को मार गिराया। अंत में मानसवेग उसे अपनी विद्या के प्रभाव से बांधकर विद्याधरों के राजा वायुपथ की सभा में ले गया। वहां सब सभासदों और राजा के सामने मानसवेग ने कहा, "इस दुष्ट ने मेरे रनिवास में घुसकर मेरी पत्नी को भ्रष्ट कर डाला है। यह मुझसे शत्रुता रखता है और विद्याधरों का स्वामी बनना चाहता है।" मानसवेग का यह आरोप सुनकर सभासदों ने नरवाहनदत्त से पूछा, "आप उत्तर में क्या कहना चाहते हैं?" नरवाहनदत्त बोला, "इसने मुझे माया के बल से बांध रखा है। पहले मुझे इससे मुक्त कराइये, तब मैं आपसे अपनी बात कहूंगा।" राजा के कहने से उसे मुक्त कर दिया गया। तब उसने कहा, "इस दुष्ट ने मेरी पत्नी मदनमंचुका को छल से हरा है। मैं अपनी पत्नी से मिलने आया था। इसकी बहन वेगवती ने स्वयं मेरी पत्नी मदनमंचुका का वेष बनाकर मुझसे विवाह किया है, फिर इसमें मेरा क्या दोष है? जहां तक विद्याधरों के स्वामी बनने की कामना का प्रश्न है, यह कोई अनुचित बात नहीं है। कौन व्यक्ति अपनी उन्नति का प्रयत्न नहीं करता?" नरवाहनदत्त का यह उत्तर सुनकर सारी सभा और राजा ने उसकी बात को उचित माना। उन्होंने मानसवेग से कहा, "तुम अनुचित मार्ग पर जा रहे हो, इनका कथन न्याय और धर्म के अनुकूल है।"

किंतु मानसवेग नहीं माना और मोहांध होकर अपनी सेना के साथ लड़ने आया। राजा वायुपथ ने नरवाहनदत्त का पक्ष लिया। ज्योंही मानसवेग नरवाहनदत्त से लड़ने लगा, त्योंही एक खंभे से भैरवनाथ निकले और मानसवेग से बोले, "मूर्ख! विद्याधरों के भावी सम्राट को तू नहीं जीत सकता।" यह सुनकर मानसवेग ने गर्दन नीची करली और भैरवनाथ नरवाहनदत्त को अपनी भुजाओं में उठाकर ऋष्यमूक पर्वत पर ले गये। मानसवेग भी मदनमंचुका को साथ लेकर हर्ष और विषाद दोनों से मुक्त होकर अपने घर लौट गया।

## : ३ :

# शिव का वरदान

नरवाहनदत्त को ऋष्यमूक पर्वत पर छोड़कर भैरवनाथ अदृश्य हो गये। नरवाहनदत्त वहां अकेला रहने लगा। एक दिन प्रभावती वहां आई और बोली, "मेरी अनुपस्थिति के कारण ही मानसवेग तुम्हें सभा में ले जा सका था। जब मुझे इस बात का पता चला, तो मैं अपनी विद्या के प्रभाव से भैरवनाथ के रूप में प्रकट हुई और तुम्हें उठाकर यहां ले आई। यह स्थान विद्याधरों के माया-प्रपंच से बिल्कुल अछूता है। यह सिद्ध-क्षेत्र है, यहां किसीकी विद्या काम नहीं कर सकती। मैं भी अपनी माया से यहां तुम्हारे लिए सुख-सुविधा के साधन न जुटा सकूंगी और तुम्हें वन्य-फलों से ही काम चलाना होगा।" यह सुनकर नरवाहनदत्त वहीं पर अपना समय बिताने लगा और प्रभावती उसके मनोविनोद के लिए वहां पर घटी हुई रामायण की घटनाओं का ब्यौरा देने लगी। एक दिन जब नरवाहनदत्त पंपा सरोवर के निकट बैठा था, तब धनवती अपनी पुत्री अजिनावती के साथ आकाश से वहां उतरी। प्रभावती और अजिनावती बड़े प्रेम से आपस में मिलीं। धनवती ने नरवाहनदत्त से कहा, "मैंने पहले तुम्हारे साथ अपनी पुत्री अजिनावती का विवाह करने को कहा था। अब तुम इसके साथ विवाह कर लो, क्योंकि अब तुम्हारी उन्नति का समय निकट आ गया है।" उसकी बात दोनों ने मान ली और उसने विधिवत अपनी पुत्री का विवाह नरवाहनदत्त से कर दिया। अगले दिन वह नरवाहनदत्त से बोली, "हे पुत्र! अब तुम्हारा यहां रहना उचित नहीं है। तुम प्रभावती और अजिनावती के साथ अपनी नगरी कौशांबी को लौट जाओ। मैं अपने पुत्र चंडसिंह तथा अपने अन्य विद्याधरों के साथ शीघ्र ही कौशांबी आऊंगी।"

यह कहकर धनवती वहां से चली गई। नरवाहनदत्त भी प्रभावती और अजिनावती के साथ कौशांबी में पहुंच गया। उसका आना सुनकर सारी प्रजा, मंत्री, माताएं, पत्नियां तथा राजा उदयन बहुत प्रसन्न हुए। सबने मिलकर उसका अपूर्व स्वागत किया। तभी वेगवती भी समस्त विद्याओं को सिद्ध करके वहां आ गई। उसके बाद अपने पुत्र चंडसिंह तथा दूसरे विद्याधरों को साथ लेकर अजिनावती की माता धनवती भी आ गई। कुछ समय बाद चंडसिंह का भाई अमितगति, प्रभावती

का पिता पिंगलगांधार, राजा वायुपथ और गंधर्वदत्ता का पिता सागरदत्त आदि दूसरे राजा भी वहां आ गये। वत्सराज उदयन ने उन सबका स्वागत-सत्कार किया। फिर एक सभा हुई, जिसमें प्रभावती के पिता पिंगलगांधार ने नरवाहनदत्त से कहा, "आप देवताओं के द्वारा बनाये हुए हम विद्याधरों के चक्रवर्ती राजा हैं। आपकी सास धनवती बड़े दिव्य ज्ञान से संपन्न है, इसकी सहायता से आपके सब काम सिद्ध होंगे। हम सब भी आपकी सहायता के लिए उपस्थित हुए हैं। मैं आपसे कुछ निवेदन करना चाहता हूं। यहां हिमालय पर्वत पर विद्याधरों के दो सिंहासन हैं—एक उत्तर दिशा का और दूसरा दक्षिण दिशा का। उत्तर का सिंहासन लेने के लिए इस अमितगति ने कठोर तप करके शिवजी को प्रसन्न किया था। तब उन्होंने यह वर दिया, 'चक्रवर्ती नरवाहनदत्त तुम्हारी इच्छा पूरी करेगा, तुम उसके पास जाओ।' सो, यह इसी इच्छा से आपके पास आया है। आजकल उस उत्तर के सिंहासन का मुख्य अधिकारी मंदरदेव नाम का एक दुष्ट राजा है। वह बलवान होने पर भी दुसाध्य नहीं है। किंतु दक्षिण सिंहासन का मुख्य अधिकारी गौरिमुंड है। वह राजा विद्या के प्रभाव से बड़ा ही दुर्जय और दुष्ट है। आपका परम शत्रु मानसवेग उसका परम मित्र है। जब तक आप उसे वश में नहीं कर लेते, तब तक आपका कार्य सिद्ध नहीं हो सकता। इसलिए आप इसके लिए भारी विद्या-बल प्राप्त करें।" पिंगलगांधार की यह बात सुनकर धनवती ने कहा, "हे पुत्र! पिंगलगांधार ने जो कुछ कहा है वह सत्य है। अतः तुम विद्या-सिद्धि के लिए सिद्ध-क्षेत्र में जाकर तपस्या करो। हम सब मिलकर वहां तुम्हारी रक्षा करेंगे।"

नरवाहनदत्त माता-पिता आदि से आज्ञा लेकर तपस्या के लिए सिद्ध क्षेत्र की ओर चल दिया। वहां वह कठोर तप करने लगा। तपस्या करते हुए उसे विद्याधरों की पुत्रियां बड़ी उत्सुकता से देखती थीं। उसके रूप और गुणों पर रीझकर पांच विद्याधर-कन्याओं ने आपस में यह प्रतिज्ञा की कि हम पांचों एक ही साथ विवाह करेंगी। यदि कोई भी एक इसके साथ अकेली विवाह करेगी, तो शेष आग में जलकर मर जायेंगी। इसी समय अचानक उस तपोवन में भयंकर उत्पात होने लगे। एकाएक बड़ा भारी तूफान आ गया, जिससे बड़े-बड़े पेड़ भी जमीन पर गिरने लगे, पृथ्वी कांपने लगी, पर्वतों के शिखर टूट-टूटकर गिरने लगे। किंतु इस पर भी नरवाहनदत्त अडिग होकर तप करता रहा। ये उत्पात देखकर नरवाहनदत्त के सभी सहायक गंधर्वराज और विद्याधर सावधान हो गये। अगले दिन अचानक

बड़ी भारी सेना लेकर मानसवेग के साथ गौरिमुंड ग्रा पहुंचा ग्रौर नरवाहनदत्त के सहायकों को मारने के लिए दौड़ा। उन सबने मिलकर उसका मुकाबला किया। इस प्रकार दोनों सेनाग्रों में घोर युद्ध हुग्रा। जब गौरिमुंड ने देखा कि उसकी सारी सेना उन्होंने मार डाली है ग्रौर वह स्वयं भी मारा जानेवाला है, तो उसने ग्रपनी सिद्ध की हुई गौरी-विद्या को स्मरण किया। उस विद्या ने नरवाहनदत्त के सभी वीरों को मोहित कर दिया। तब गौरिमुंड नरवाहनदत्त से बाहुयुद्ध करने के लिए दौड़ा ग्रौर उसे गोदी में उठाकर ग्राकाश में उड़ गया, किंतु धनवती की विद्या के प्रभाव से उसे मार न सका। तब उसने नरवाहनदत्त को ग्रग्निपर्वत पर फेंक दिया। मानसवेग ने भी उसके मित्र गोमुख-ग्रादिकों को ग्राकाश में लेजाकर धरती पर पटक दिया, किंतु धनवती ने ग्रपनी विद्या के प्रभाव से उन्हें भी बीच में ही बचा लिया ग्रौर ग्रलग-ग्रलग स्थानों में रख दिया। तब धनवती की विद्या सबको यह ग्राश्वासन दिलाकर कि तुम्हारा स्वामी शीघ्र ही सिद्धि प्राप्त करके सकुशल लौटेगा—ग्रंतर्धान हो गई। मानसवेग ग्रौर गौरिमुंड यह समझकर कि हमारी जीत हो गई, ग्रपने-ग्रपने स्थान को चले गये। धनवती के प्रभाव से नर-वाहनदत्त के पक्ष-समर्थक गंधर्व ग्रौर विद्याधर भी मोह रहित होकर ग्रपने-ग्रपने स्थान को चले गये। धनवती भी ग्रपनी पुत्री ग्रजिनावती तथा उसकी दूसरी सौतों को साथ लेकर ग्रपने घर लौट गई। उधर मानसवेग ने मदनमंचुका के पास जाकर कहा, "तेरा पति मर गया है, इसलिए ग्राज तू मुझसे विवाह कर ले।" मदनमंचुका ने हंसते हुए उससे कहा, "वही तुम सबको मारनेवाला है, उसे कोई नहीं मार सकता।"

उधर गौरिमुंड ने जब नरवाहनदत्त को ग्रग्निपर्वत पर फेंका था, तो शिवजी की ग्राज्ञा से ग्रमृतप्रभ विद्याधर ने उसे बीच में ही संभाल लिया ग्रौर सुरक्षित कैलास पर्वत पर पहुंचा दिया था। वहां भी ग्रमृतप्रभ के कहने से उसने शिवजी तथा पार्वती की प्रसन्नता के लिए कठोर तपस्या की। उस तपस्या से पसन्न होकर शिवजी ने पार्वती सहित उसे दर्शन देकर कहा, "पुत्र! ग्रब तुम विद्याधरों के चक्रवर्ती बन गये। सारी विद्याएं तुम्हें प्राप्त हो जायेंगी। मेरे प्रभाव से तुम शत्रुग्रों को जीत लोगे ग्रौर तुम पर किसी भी शस्त्र का प्रहार न हो सकेगा। तुम्हें देखने पर तुम्हारे शत्रुग्रों की विद्याएं ग्रसफल हो जायेंगी। ग्रतः ग्रब जाग्रो, गौरी-विद्या भी तुम्हारे ग्रधीन हो जायगी।" यह वरदान देकर शिवजी ने उसे ब्रह्मा

का बनाया हुआ महापद्म विमान दिया। नरवाहनदत्त गौरी और शिवजी को प्रणाम करके उस विमान में बैठकर वक्रपुरी में अमितगति के पास पहुंचा। अमितगति ने उसका बड़ा सत्कार किया और अपनी पुत्री सुलोचना का उसके साथ विवाह कर दिया।

## : ४ :

## मानसवेग और गौरिमुंड की पराजय

उन दिनों, जब नरवाहनदत्त वक्रपुर में राजा अमितगति के पास रह रहा था, तो एक दिन बेंत हाथ में लिये हुए एक नवयुवक ने आकर उसे प्रणाम किया और कहा, "मैं पौररुचि नाम का विद्याधर हूं और परंपरा से मैं चक्रवर्ती राजाओं का प्रतीहार होता चला आया हूं। अब आपकी सेवा में उपस्थित हुआ हूं।" यह सुनकर नरवाहनदत्त ने उसे अपने पास रख लिया। तभी धनवती भी अपने पुत्र चंडसिंह तथा वेगवती आदि नरवाहनदत्त की पत्नियों के साथ वहां आई। कुछ समय बाद पिंगलगांधार, वायुपथ, सागरदत्त, चित्रांगद आदि विद्याधर भी अपनी सेना के साथ वहां आ गये। नरवाहनदत्त ने अपनी सास धनवती के चरणों में गिरकर प्रणाम किया और दूसरे राजाओं का स्वागत किया। फिर उसने सबको अपनी सिद्धि का वृत्तांत सुनाया। परंतु मंत्रियों को न देखकर उसने धनवती से पूछा, "मेरे मंत्री कहां है!" धनवती ने बताया, "मानसवेग ने उन्हें आकाश में उछाल दिया था, पर मैंने उनकी रक्षा करली है और वे भिन्न-भिन्न स्थानों में रहते हैं।" नरवाहनदत्त के कहने से धनवती ने अपनी विद्या से उन्हें वहां बुला दिया। उनके प्रणाम करने पर राजा ने उनसे पूछा, "तुमने इतने दिन कहां बिताये?" सबने उसे अपना-अपना हाल सुनाया। सबसे प्रथम गोमुख ने कहा :

"जब मुझे शत्रु ने आकाश में उछाल दिया, तो किसी देवी ने मुझे बीच में ही पकड़ लिया और वह मुझे दूर वन में रखकर छिप गई। मैंने आपके वियोग से दुखी होकर ऊंचे स्थान से गिरकर देह त्यागने का निश्चय किया। तभी एक तपस्वी वहां आ गया और मुझे आत्महत्या से रोककर बोला, 'तुम मरो मत, शीघ्र ही तुम सिद्धि-प्राप्त अपने स्वामी से मिलोगे।' मैंने उस तपस्वी से पूछा, 'आप कौन हैं और यह कैसे जानते हैं?' उसने उत्तर दिया, 'मेरे साथ आश्रम में चलो,

वहीं तुम्हें विस्तार से अपना हाल सुनाऊंगा ।' तब मैं उसके साथ शिवक्षेत्र नाम के उसके आश्रम में चला गया । वहां मेरा अतिथि-सत्कार करके उसने मुझे अपना हाल सुनाया वह बोला,'मैं कुंडिननगर का नागस्वामी नाम का ब्राह्मण हूं । पिता की मृत्यु के बाद मैं पटना जाकर जयदत्त उपाध्याय के पास विद्या पढ़ने लगा। लेकिन बहुत सीखने पर भी जब मुझ मूर्ख को विद्या न आई और सब मेरा खूब मजाक उड़ाने लगे, तब मे वहां से विध्यवासिनी देवी के दर्शन करने चल दिया । आधे मार्ग में वक्रोलक नगर में पहुंचा। वहां मैं भीख मांगने के लिए एक ब्राह्मण के घर गया। उसकी पत्नी ने भिक्षा के साथ एक लाल कमल भी मुझे दिया। उसे लेकर मैं दूसरे घर भीख मांगने गया। उस घर की स्त्री ने उस फूल को देखकर मुझसे कहा, "तुम पर किसी योगिनी ने जादू कर दिया है, अब वह तुम्हें हर रात आकर सताया करेगी। देखो, तुम्हारे हाथ में यह कमल का फूल नहीं है, वरन किसी मनुष्य का हाथ है ।" जब मैंने उसे देखा, तो वास्तव में वह तो एक पुरुष का हाथ था । मैंने उसे छोड़ दिया और उस स्त्री के चरणों पर गिरकर प्रार्थना की, "आप किसी प्रकार मेरी इस आपत्ति से रक्षा करें ।" यह सुनकर उस स्त्री ने कहा, "यहां से तीन योजन की दूरी पर करभक गांव में देवरक्षित ब्राह्मण है। तुम वहां जाओ। उस ब्राह्मण के घर एक कपिला गौ है, वह इस रात तुम्हारी रक्षा करेगी।" यह सुनकर मैं दौड़ता हुआ सायंकाल के समय उस ब्राह्मण के घर पहुंचा और उस गौ को प्रणाम करके बोला, "आप मेरी योगिनी से रक्षा करो।" इसी समय वह योगिनी दूसरी योगिनियों के साथ मेरा खून पीने के लिए वहां आ गई। उस गौ ने मुझे अपने खुरों के बीच में बैठा लिया और सारी रात अपने सींगों से उन योगिनियों के साथ लड़ती रही। प्रातःकाल होने पर वे योगिनियां चली गईं, तो गौ ने मुझसे कहा, "पुत्र ! आज रात को मैं तुम्हारी रक्षा नहीं कर सकती। यहां से पांच योजन की दूरी पर एक वन में एक शिवालय है। उसमें चले जाओ। वहां भूतिशिव नाम का ज्ञानी शिवभक्त रहता है, वह तुम्हारी रक्षा करेगा।" यह सुनकर मैं दौड़ता हुआ उसके पास पहुंचा । रात होने पर वे योगिनियां फिर आ गईं। उन्हें देखकर भूतिशिव ने मुझे मंदिर के अंदर भेज दिया और स्वयं द्वार पर बैठकर अपने त्रिशूल से उन्हें दूर भगाता रहा। भोर होने पर भूतिशिव ने मुझसे कहा, "हे ब्राह्मण ! आज मैं भी तुम्हारी रक्षा नहीं कर सकता। तुम यहां से दस योजन की दूरी पर संध्यावास गांव में वसुमति ब्राह्मण के पास चले जाओ। वह तुम्हारी रक्षा

करेगा।" तब मैं उसे प्रणाम करके चल दिया। रास्ता लंबा होने के कारण मार्ग में ही दिन छिप गया और वे योगिनियां आ पहुंची। वे मुझे पकड़कर आकाश में अपने स्थान को चल दीं। मार्ग में दूसरी तरफ से और दूसरी योगिनियां भी आ रही थीं। उन दोनों समूहों में लड़ाई हो गई, जिससे मैं उनके हाथ से छूटकर जमीन पर एक निर्जन प्रदेश में आ गिरा। वहां मैंने एक मकान देखा। मैं डरकर जल्दी से उसके अंदर घुस गया। वहां एक अद्भुत सुंदरी स्त्री बैठी थी और अनेकों नारियां उसकी सेवा कर रही थीं। उसने मुझे धीरज बंधाया। मैंने उसका परिचय पूछा। वह बोली, "मैं सुमित्रा नाम की यक्षिणी हूं। शाप के कारण यहां रहती हूं। मनुष्य के साथ संपर्क से मेरे शाप की समाप्ति होगी। सो, तुम निर्भय होकर मेरे साथ रहो।" तब मैं कुछ दिन उसके साथ रहा। एक दिन वह मुझसे बोली, "अब मेरे शाप का अंत हो गया है। मैं अपने लोक को जाऊंगी। मेरे प्रसाद से तुम्हें दिव्य ज्ञान की प्राप्ति होगी। तुम तपस्या करते हुए संपूर्ण सिद्धियों को पाओगे और निर्भय होकर रहोगे, किंतु यहां रहते हुए तुम इस घर की बीच की मंजिल में कभी मत जाना।" यह कहकर वह यक्षिणी अदृश्य हो गई। मैं कुतूहल-वश उस मकान की बीच की मंजिल में चला गया। वहां मैंने एक घोड़ा देखा। ज्यों ही मैं उसके पास गया, उसने लात मारकर मुझे इस मंदिर में फेंक दिया। तबसे मैं यहीं रह रहा हूं, सिद्ध होने के कारण मैं मनुष्यों के तीनों कालों का ज्ञान रखता हूं। सो, तुम भी यहीं रहो, भगवान तुम्हारी इच्छा पूरी करेंगे।' उस तपस्वी के यह कहने पर मैं वहीं रहने लगा। आज रात मुझे भगवान शिव ने स्वप्न में बताया कि आप चक्रवर्ती हो गये हैं। आज ही कोई दिव्य स्त्री फिर मुझे वहां से उठाकर यहां ले आई।"

गोमुख अपना यह वृत्तांत सुनाकर चुप हो गया। उसके बाद मरुभूति ने अपना वृत्तांत सुनाना आरंभ किया :

"जब मानसवेग ने मुझे आकाश में उछाल दिया, तो किसी देवी ने मुझे बीच में ही संभाल लिया और दूर किसी निर्जन वन में मुझे रखकर वह अदृश्य हो गई। तब मैं आपके वियोग से दुखी होकर मरने का उपाय सोचने लगा और एक नदी पर पहुंचा। वहां मैंने एक आश्रम देखा। आश्रम में शिला पर एक तपस्वी बैठा था। उसको मैंने प्रणाम किया। उस तपस्वी ने मुझसे पूछा, 'तुम कौन हो और यहां क्यों आये हो ?' मैंने उसे सारा हाल बता दिया। तब उसने ध्यान लगाकर

मुझसे कहा, 'तुम आत्महत्या मत करो। तुम्हें यहीं अपने स्वामी का सारा समाचार मिल जायेगा।' यह सुनकर मैं वहीं रहने लगा। एक दिन वहां नदी में स्नान करने के लिए बहुत सी दिव्य स्त्रियां आईं। उस तपस्वी ने मुझसे कहा, 'तुम इनमें से किसी एक का वस्त्र उठा लाओ, तुम्हें अपने स्वामी का समाचार मालूम हो जायेगा।' मैंने वैसा ही किया। तब वह स्त्री गीले वस्त्रों में ही मेरे पीछे-पीछे चल दी। तपस्वी ने उससे कहा,'इन्हें तुम नरवाहनदत्त का समाचार बता दो, तुम्हें तुम्हारा कपड़ा मिल जायेगा।' उस स्त्री ने उत्तर दिया, 'वह कैलास पर्वत पर भगवान शिव की आराधना कर रहा है और कुछ ही दिनों में विद्याधरों का चक्रवर्ती हो जायेगा।' यह कहते ही वह विद्याधरी शाप-वश उस तपस्वी की पत्नी बन गई। कुछ दिन बाद उसके बच्चा पैदा हुआ। तब उसने तपस्वी से कहा, 'अब मेरे शाप की समाप्ति हो गई है, मैं अपने लोक को जाऊंगी। यदि तुम्हें फिर कभी मुझसे मिलने की इच्छा हो, तो चावलों के साथ इस बच्चे को पकाकर खा लेना, मैं तुम्हें फिर मिल जाऊंगी।' यह कहकर वह अदृश्य हो गई। कुछ दिन बाद उस तपस्वी ने चावलों के साथ उस बालक को पकाकर खा लिया और विद्याधर होकर आकाश में उड़ गया। उस तपस्वी ने पहले मुझसे भी थोड़े चावल खाने को कहा था, किंतु मैंने नहीं खाये। लेकिन उसकी यह सिद्धि देखकर मैंने भी पात्र में लगे हुए दो चावल खा लिये। उन दो चावलों के प्रभाव से ही मैं जहां-कहीं भी थूकता, वहीं सोना बन जाता। इस प्रकार धनवान होकर घूमता हुआ मैं एक शहर में पहुंचा। वहां मैं एक वेश्या के घर में रहने लगा और उस सिद्धि के प्रभाव से सोना बनाकर खूब खर्च करने लगा। यह देखकर उस वेश्या ने छल से मुझे वमन करा दिया, जिससे वे चावल बाहर निकल पड़े। उन्हें उस वेश्या ने खा लिया। इस कारण वह मेरी स्वर्ण-सिद्धि नष्ट हो गई। इस घटना से खिन्न होकर मैं वहां से चला आया और देवी के मंदिर में जाकर आपको प्राप्त करने की इच्छा से तप करने लगा। तीन रात के बाद देवी ने मुझसे स्वप्न में कहा, 'तुम्हारा स्वामी चक्रवर्ती हो गया है, अब तुम उसके पास जाओ।' यह सुनकर ज्यों ही मैं जागा, कोई देवी मुझे उठाकर यहां ले आई।"

मरुभूमि के पश्चात हरिशिख ने अपना वृत्तांत सुनाया :

"मुझे कोई देवी उठाकर उज्जयनी में रख आई। वहां आपके वियोग से व्याकुल होकर मैं चिता बनाकर जलने को तैयार हुआ। तभी तालजंघ नाम का एक

भूतराज वहां आ गया और मुझसे बोला, 'तुम जलकर क्यों मर रहे हो? तुम्हारे स्वामी को शीघ्र ही सिद्धि मिलनेवाली है और तुम भी उससे शीघ्र ही मिलोगे।' इस प्रकार उसने मुझे मरने से रोक लिया। तब मैं वहीं रहकर तप करने लगा। आज कोई देवी मुझे उठाकर यहां फिर ले आई।"

हरिशिख के इस वृत्तांत के बाद दूसरे मंत्रियों ने भी अपने-अपने वृत्तांत सुनाये। फिर नरवाहनदत्त ने धनवती से कहकर सब मंत्रियों को सारी विद्याएं दिलवा दीं, जिससे वे सब विद्याधर हो गये। इसके बाद धनवती ने नरवाहनदत्त से कहा, "अब शुभ लग्न आ गया है। अब तुम्हें शत्रुओं को जीतना चाहिए।" यह सुनकर नरवाहनदत्त ने शत्रुओं पर आक्रमण करने की आज्ञा दे दी और पद्मविमान पर अपनी सभी पत्नियों तथा साथियों को चढ़ाकर धनवती के घर पहुंचा। वहां से एक दूत मानसवेग और गौरिमुंड के पास युद्ध का संदेश लेकर भेजा। अगले दिन अपनी समस्त पत्नियों को वहीं छोड़कर बड़ी भारी सेना के साथ नरवाहनदत्त ने शत्रुओं पर आक्रमण कर दिया। गोविंदकूट पर्वत पर दोनों की सेनाओं में भयंकर युद्ध हुआ। इस संग्राम में नरवाहनदत्त ने मानसवेग और गौरिमुंड दोनों को मार डाला। बची हुई सेना या तो भाग गई या उससे आकर मिल गई। इस पर देवताओं ने आकाश से पुष्प-वृष्टि की। नरवाहनदत्त अपने साथियों सहित गौरिमुंड की राजधानी में गया और धनवती के कहने से गौरिमुंड की कन्या आत्मनिका के साथ उसने विवाह कर लिया। अगले दिन वेगवती और प्रभावती मदनमंचुका को लाने के लिए गईं। भगीरथयशा को भी वहीं बुलवा लिया गया। इस प्रकार समस्त पत्नियों और साथियों के साथ नरवाहनदत्त गौरिमुंड के शहर में रहने लगा।

एक दिन दो विद्याधर उसके पास आये और बोले, "महाराज! हमें धनवती ने उत्तरी सिंहासन के अधिकारी मंदरदेव की चेष्टाएं जानने के लिए भेजा था। वहां जाकर हमने देखा कि वह सभा में बैठकर यह कह रहा है, 'मैंने सुना है कि नरवाहनदत्त ने मानसवेग और गौरिमुंड को मार दिया है और स्वयं चक्रवर्ती बन गया है। अब हमें इसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए और उसे मार डालना चाहिए।' यही बात कहने के लिए हम आपके पास आये हैं।" दूतों के मुख से यह सुनकर नरवाहनदत्त अपने साथियों सहित उससे लड़ने के लिए चला। मार्ग में उन्हें एक सुंदर तालाब मिला। वायुपथ के कहने से नरवाहनदत्त ने उसमें स्नान किया। उसी समय आकाशवाणी हुई, "हे राजन! अब आपको चक्रवर्तित्व की सिद्धि हो गई है,

क्योंकि इस तालाब में वही स्नान कर सकता है, जो चक्रवर्ती हो।" इसके बाद वे सब वहां से वायुपथ के नगर में पहुंचे। वहां वायुपथ की बहन वायुवेगयशा को देखकर नरवाहनदत्त उस पर रीझ गया, किंतु वह उसे देखकर अनुरक्त होती हुई भी अदृश्य हो गई। तब नरवाहनदत्त ने वायुवेगयशा के मन का पता लगाने के लिए मरुभूति को भेजा। उसके साथ शहर में घूमते हुए वायुपथ ने उससे कहा, "मैं अपनी बहन का विवाह नरवाहनदत्त से करना चाहता हूं, क्योंकि उसे यह वर प्राप्त है कि वह चक्रवर्ती की पत्नी बनेगी।" मरुभूति ने कहा,"इसके लिए मैं उन्हें तैयार कर लूंगा।"

तब वायुपथ ने अपनी बहन की इच्छा के विरुद्ध उसका विवाह नरवाहनदत्त से कर दिया। इसी समय बाहर कुछ कोलाहल सुनाई दिया। गोमुख ने बाहर जाकर देखा कि कुछ विद्याधर कुमारियां अग्नि में प्रवेश करने के लिए उद्यत हैं। जब उसने उनसे इसका कारण पूछा, तो उन्होंने उत्तर दिया, "वायुवेगयशा ने वायदे का उल्लंघन किया है।" गोमुख ने यह बात नरवाहनदत्त से कह दी। यह सुनकर नरवाहनदत्त बड़ा विस्मित हुआ और वायुवेगयशा को साथ लेकर उनके पास गया। वायुवेगयशा ने उन्हें मरने से रोककर राजा से कहा, "ये चारों मेरी सखियां हैं। इनमें से एक तो कालकूट के स्वामी की पुत्री कालिका है, दूसरी विद्युत्पुंज की पुत्री विद्युत्पुंजा है, तीसरी राजा मंदर की पुत्री मतंगिनी है और चौथी महादंष्ट्र की कन्या पद्मप्रभा है। हम पांचों ने जब आपको सिद्धक्षेत्र में तपस्या करते हुए देखा था, तो प्रतिज्ञा की थी कि हम पांचों एक साथ ही आपसे विवाह करेंगी। यदि किसी भी एक ने पहले विवाह किया, तो शेष चारों जलकर मर जायेंगी। इसी प्रतिज्ञा के कारण मैं आपसे विवाह नहीं करना चाहती थी, किंतु जब मेरे भाई ने जबरदस्ती मेरा विवाह कर दिया, तो इसमें मेरा क्या दोष ? विवाह होने पर भी मैंने अभी तक आपको आत्म-समर्पण नहीं किया है। ये मेरी सखियां इसी कारण जलकर मरना चाहती हैं।"

यह सुनकर नरवाहनदत्त ने उनके साथ भी विवाह करना स्वीकार कर लिया और उनके पिताओं ने विधिपूर्वक अपनी कन्याओं का विवाह उसके साथ कर दिया। कुछ दिन बाद सेनापति हरिशिख ने उससे कहा, "अब शत्रुओं को जीतने के लिए चलना चाहिए।" लेकिन उसके श्वसुर मंदर ने कहा, "जब तक चक्रवर्तित्व के सब रत्न सिद्ध नहीं कर लिये जाते, तब तक मंदरदेव को नहीं जीता जा सकता। इसलिए आप पहले इस भूमि में लगे हुए चंदन के पेड़ की सिद्धि कीजिये।" यह

बात सुनकर नरवाहनदत्त ने उस पेड़ के पास जाकर तप किया। इससे चंदन का वह पेड़ हाथ जोड़कर उसके सामने उपस्थित हुआ और बोला, "मैं आपको सिद्ध हो गया हूं। आप जब भी मुझे याद करेंगे, मैं उपस्थित हो जाऊंगा। अब आप मंदरदेव पर आक्रमण कर सकते हैं। आप उसे आसानी से जीत लेंगे।" तब नरवाहनदत्त अपने सब साथियों के सहित पद्मविमान पर बैठकर मंदरदेव को जीतने तथा अन्य सिद्धियों को प्राप्त करने के लिए गोविंदकूट पर्वत को चल दिया।

# पंद्रहवां खंड

## : १ :

## महाभिषेक

नरवाहनदत्त गोविंदकूट पर्वत पर सभा के बीच में बैठा हुआ था। तभी विद्याधर अमृतप्रभ आया। जब नरवाहनदत्त को अग्निपर्वत पर फेंका गया था, तब इसीने उसकी रक्षा की थी। वह बोला, "दक्षिण दिशा में मलय पर्वत पर एक वामदेव ऋषि हैं। उन्होंने आपको अकेले ही किसी काम से बुलाया है।" नरवाहनदत्त तुरंत उसके साथ आश्रम में पहुंचा। वामदेव ने राजा से कहा, "मैंने आपको शिवजी की आज्ञा से बुलवाया है। मेरे इस आश्रम में गुफा के अंदर बहुत से रत्न हैं, आप उन्हें सिद्ध कीजिये। उनकी सिद्धि के बाद आप मंदरदेव को जीत सकेंगे।" यह सुनकर नरवाहनदत्त ने ऋषि की बताई हुई विधि से गफा में प्रवेश किया और वहां जाकर हस्तिरत्न, खंगरत्न, चंद्रिकारत्न, कामिनीरत्न और विध्वंसिनी विद्यारत्न को सिद्ध किया। गुफा से बाहर आकर राजा ने मुनि को सारा हाल सुना दिया। मुनि ने कहा, "पुत्र! अब तुम्हें सब रत्न सिद्ध हो गये हैं। अब तुम मंदरदेव को जीतो और उत्तर तथा दक्षिण के दोनों साम्राज्यों को भोगो।"

नरवाहनदत्त मुनि से आज्ञा पाकर फिर गोविंदकूट प ॅत पर आ गया। उसने सब लोगों को अपनी रत्न-सिद्धि की बात बताई। फिर वे पद्मविमान पर चढ़कर मंदरदेव को जीतने चले। उसके सभी साथी विशाल सेना लेकर उसके साथ चल दिये। कैलास के निकट गंगाजी के किनारे वे उतरे। राजा मंदर ने नरवाहनदत्त से कहा, "आज हम यहीं ठहरें, क्योंकि कैलास पर्वत को लांघना उचित नहीं है। जो कैलास को लांघता है, उसकी विद्याएं नष्ट हो जाती हैं। हमें उत्तर की ओर त्रिशीर्ष गुफा से जाना चाहिए, किंतु इस गुफा की रक्षा राजा देवमाय करता है। उसे जीते

बिना इसमें नहीं घुसा जा सकता।"

राजा मंदर की यह बात सुनकर नरवाहनदत्त ने वह दिन गंगा के किनारे ही बिताया। अगले दिन उसने अपना दूत देवमाय के पास भेजा, किंतु उसने गुफा में घुसने की आज्ञा न दी। तब नरवाहनदत्त ने उसके साथ युद्ध किया और उसको जीतकर उससे इस गुफा का वृत्तांत पूछा। देवमाय ने कहा, "प्राचीनकाल में कैलास पर्वत के उत्तरी और दक्षिणी भाग के विद्याधरों के दो साम्राज्य थे, जिनके पृथक-पृथक चक्रवर्ती थे। एक बार ऋषभ चक्रवर्ती ने शिव की आराधना की, जिससे प्रसन्न होकर शिवजी ने उस अकेले को दोनों साम्राज्यों का चक्रवर्ती बना दिया। एक बार वह कैलास को लांघकर उत्तरी भाग में जाने लगा, तो नीचे बैठे हुए शिवजी के क्रोध से उसकी सारी विद्याएं नष्ट हो गईं और वह गिर पड़ा। किंतु उसने फिर शिवजी की कठोर आराधना की और उन्होंने उसे फिर दोनों साम्राज्यों का चक्रवर्ती बना दिया। तब उसने शिवजी से कहा, 'भगवन! जब मैं कैलास को नहीं लांघ सकता, तो फिर कौन से मार्ग से जाकर दोनों भागों पर शासन करूं?' यह सुनकर शिवजी ने उत्तर की ओर जाने के लिए कैलास को फोड़कर एक गुफा बनादी। इस पर कैलास ने खिन्न होकर शिवजी से कहा, 'भगवन! मेरा उत्तरी भाग मनुष्यों के लिए अगम्य था, इस गुफा के बन जाने से तो सब लोग उधर चले जाया करेंगे। कोई ऐसा उपाय कीजिये जिससे मेरी मर्यादा भंग न हो।' कैलास की यह बात सुनकर शिवजी ने गुफा के मध्य में दिग्गज, विषैले सांप तथा गुह्यकों को रक्षक नियुक्त कर दिया। दक्षिणी द्वार पर महामाय नाम के विद्याधर को और उत्तरी द्वार पर कालरात्रि चंडिका को रक्षक बना दिया। इस प्रकार गुफा की रक्षा करके उन्होंने बहुत से रत्नों को उत्पन्न किया और यह व्यवस्था कर दी कि बिना उन्हें सिद्ध किये कोई इधर-उधर नहीं जा सकता। उधर वही जा सकता है, जो चक्रवर्ती हो या जिनको उस चक्रवर्ती की आज्ञा प्राप्त हो गई हो अथवा जो उसके दूत, सहायक हों। यही इस गुफा की कहानी है। मैं महामाय का पुत्र देवमाय हूं, आजकल यह गुफा मेरे अधिकार में है। अब आप इसमें प्रविष्ट होकर शत्रु को जीतिये।"

इसके बाद नरवाहनदत्त अपने साथियों के सहित गुफा में प्रविष्ट हुआ और गुफा के अंधकार को चंद्रिका रत्नों से, सर्पों को चंदनरत्न से, दिग्गजों को हस्तिरत्नों से तथा गुह्यकों को खंगरत्नों से जीतता हुआ वह गुफा को पार करके उत्तरी द्वार पर भगवती कालरात्रि के पास पहुंचा। वहां पहुंचते ही कालरात्रि के प्रभाव

से उसे छोड़कर उसकी सारी सेना तथा साथी मूर्च्छित होकर गिर पड़े। यह देखकर नरवाहनदत्त ने कालरात्रि की अराधना की, जिसके प्रसाद से नरवाहनदत्त की सेना तथा साथी सचेत हो गये।

कालरात्रि की पूजा करके वे शत्रु को जीतने चले। पहले मंदरदेव के प्रधान सेनापति धूमशिख ने उनका मुकाबला किया। उसके पराजित हो जाने पर अगले दिन मंदरदेव स्वयं युद्ध करने के लिए आया। दोनों की सेनाओं में भयंकर युद्ध हुआ। मंदरदेव के एक सैनिक कांचनदंष्ट्र ने गदा के प्रहार से चंडसिंह को गिरा दिया। अपने पुत्र को गिरा हुआ देखकर धनवती ने अपनी विद्या के बल से दोनों सेनाओं के वीरों को चेतना-रहित कर दिया। केवल नरवाहनदत्त और मंदरदेव ही सचेत रहे। तब उन दोनों में मल्लयुद्ध हुआ, जिसमें नरवाहनदत्त ने मंदरदेव को भूमि पर गिरा दिया। फिर वह उसके बाल पकड़कर तलवार से सिर काटने को उद्यत हुआ, तभी उसकी बहन मंदरदेवी उससे बोली, "तपोवन में तपस्या करते समय मैंने आपको अपना पति स्वीकार कर लिया था। मंदरदेव मेरा भाई है, इसलिए यह आपका साला हुआ। आप इसे न मारें।" यह सुनकर नरवाहनदत्त ने मंदरदेव को छोड़ दिया। मंदरदेव ने कहा, "एक स्त्री ने मेरी रक्षा की है। अब मेरा क्या जीवन! मेरे पिता वन में तपस्या कर रहे हैं। मैं भी वहीं जाता हूं। अब आप ही उत्तर और दक्षिण भागों के चक्रवर्ती हो गये।"

यह कहकर वह चला गया। तब धनवती ने अपने पुत्र तथा सारी सेना को सचेत कर दिया। इसके बाद मंदरदेव के समर्थक विद्याधरों ने नरवाहनदत्त का शासन स्वीकार कर लिया।

अगले दिन मंदरदेव के साथी कांचनदंष्ट्र के कहने पर नरवाहनदत्त मंदरदेव के विमल नामक शहर को देखने गया। वहां उसे पता चला कि मंदरदेव के वन चले जाने के कारण उसकी रानियां अग्नि में प्रवेश कर रही हैं। नरवाहनदत्त ने उन्हें मरने से रोका और उन्हें अपनी बहन बनाकर रखा। फिर उसने अमितगति विद्याधर को पूर्व प्रतिज्ञा के अनुसार मंदरदेव के राज्य पर अभिषिक्त किया और कांचनदंष्ट्र आदि राजाओं को उसके आधीन कर दिया। इसके बाद उसने सुमेरु पर्वत को भी जीतने का इरादा किया, किंतु नारद मुनि ने आकर उसे रोक दिया। उनकी आज्ञा से वह वन में मंदरदेव के पिता अकंपन का दर्शन करने गया। तपस्वी ने उसका अतिथि-सत्कार किया और कहा, "राजन! तुमने

यहां आकर बड़ा ही उचित काम किया। यदि तुम न आते तो ऋषि तुम्हें शाप दे देते।"

उसी समय मंदरदेव भी अपनी बहन मंदरदेवी के साथ वहां आ गया। नरवाहनदत्त ने मंदरदेव को गले से लगा लिया। अकंपन ऋषि ने नरवाहनदत्त से कहा, "यह मेरी पुत्री है। इसके विषय में आकाशवाणी ने कहा था कि यह चक्रवर्ती राजा की रानी बनेगी। सो, तुम इसे स्वीकार करो।" पिता के यह कहने पर मंदरदेवी ने कहा, "मैं अकेली इनके साथ विवाह नहीं करूंगी। मेरी चार और सहेलियां हैं, जिनमें से एक कांचनदंष्ट्र की पुत्री कनकवती, दूसरी कालजिह्व की पुत्री कालवती, तीसरी दीर्घदंष्ट्र की पुत्री श्रुता और चौथी पोअराज की पुत्री अंबरप्रभा है। हम पांचों ने यह प्रतिज्ञा की थी कि हम पांचों एक साथ ही विवाह करेंगी, यदि कोई भी पहले विवाह कर लेगी, तो शेष चारों अग्नि में जलकर मर जायेंगी।" मंदरदेवी की यह बात सुनकर अकंपन ऋषि ने उन विद्याधर-पुत्रियों के पिताओं को भी वहीं बुला लिया और पांचों का विवाह नरवाहनदत्त के साथ एक ही समय कर दिया। इसके बाद अकंपन ऋषि ने नरवाहनदत्त से कहा, "राजन ! अब आप ऋषभ पर्वत पर जाइये, जहां आपका महाभिषेक होगा। दूसरे विद्याधर राजा वहां पहुंच चुके हैं।"

यह सुनकर नरवाहनदत्त ऋषियों को प्रणाम करके ऋषभ पर्वत की ओर चल दिया। अमितगति आदि विद्याधरों के साथ त्रिशीर्ष गुफा के रास्ते से होता हुआ वह कैलास पर भगवान शिव के दर्शन करने गया। वहां पहुंचकर शिव और पार्वती के चरणों में प्रणाम करके वह बैठ गया। शिवजी ने कहा, "तुमने अच्छा किया जो यहां चले आये। अब तुम्हारी विद्याएं कभी नष्ट नहीं होंगी। अब तुम शीघ्र ही ऋषभ पर्वत पर चले जाओ, क्योंकि तुम्हारे महाभिषेक का समय निकट आ गया है।" शिवजी की आज्ञा पाकर वह अपनी समस्त रानियों तथा मंत्रियों के सहित पद्मविमान द्वारा ऋषभ पर्वत पर चला गया। वहां विद्याधरों के स्वामी अनेक प्रकार की सामग्रियां तथा भेंट लिये हुए पहले से ही उपस्थित थे। सबने उसका स्वागत किया और शुभ लग्न में महाभिषेक का कार्यक्रम आरंभ हुआ। विद्याधरों ने नरवादनदत्त से पूछा, "महाराज ! महाभिषेक के समय आधे सिंहासन पर कौनसी रानी को महादेवी का पद दिया जायेगा ?" नरवाहनदत्त ने कहा, "मदनमंचुका ही मेरी महादेवी है।" यह सुनकर विद्याधर कुछ सोचने

लगे। तभी आकाशवाणी हुई : "अरे विद्याधरो ! यह मदनमंचुका नारी नहीं है। नरवाहनदत्त पूर्व जन्म का कामदेव है और मदनमंचुका उसकी पत्नी रति है।" यह सुनकर सब विद्याधरों ने उसको महादेवी बनाना स्वीकार कर लिया। तब महर्षियों ने नरवाहनदत्त और मदनमंचुका को सिंहासन पर बैठाकर महाभिषेक किया।

अभिषेक के अनंतर उसके सब शत्रु शांत हो गये और माला तथा सद्वस्त्रों से सुसज्जित दोनों इस प्रकार सुशोभित हुए जैसे इंद्र और इंद्राणी। चारों ओर खुशियां मनाई जाने लगीं। देवताओं ने स्वर्ग से पुष्पवर्षा की। अप्सराओं ने सुंदर नृत्य किये। नरवाहनदत्त ने अपने पिता वत्सराज उदयन को बुलाने के लिए वायुपथ को विमान में भेजा। उसने कौशांबी में जाकर उदयन को सारा हाल सुनाया और कहा, "आपके पुत्र विद्याधरों के चक्रवर्ती हो गये हैं। उनका महाभिषेक ऋषभ पर्वत पर हो रहा है, आपको अभी याद किया है। इसलिए आप रानियों-सहित मेरे साथ चलिये।" यह सुनकर उदयन अपनी रानियों समेत विमान में बैठकर ऋषभ पर्वत पर पहुंचा और उसने विद्याधरों और अनेक रानियों से घिरे हुए तथा दिव्य सिंहासन पर बैठे हुए नरवाहनदत्त को देखा।

पिता और माताओं को आते हुए देखकर नरवाहनदत्त सिंहासन छोड़कर उठ खड़ा हुआ और रानियों समेत जाकर उनका स्वागत किया तथा चरण-वंदना की। उन्होंने भी प्रेमालिंगन करके उसे आशीर्वाद दिया। रानी पद्मावती और वासवदत्ता को नरवाहनदत्त की सभी पत्नियों ने प्रणाम किया और उन्होंने सबको उचित आशीर्वाद दिये तथा अपनी सभी पुत्र-वधुओं के नाम और कुल को पूछकर परिचय प्राप्त किया। सायंकाल होने पर सबने भोजन और विश्राम किया। वत्सराज उदयन ने भी अपनी रानियों तथा मंत्रियों के साथ वहां दिव्य भोग भोगते हुए कुछ दिन बिताये। फिर एक दिन उसने नरवाहनदत्त से कहा, "पुत्र ! इन दिव्य भोगों का उपभोग किसको अच्छा नहीं लगता ? किंतु हमें अपनी जन्मभूमि का स्नेह अपनी ओर खींच रहा है। सो तुम यहां विद्याधरों के चक्रवर्ती बनकर राज्य करो और हम अपनी नगरी को जाते हैं। फिर समय पड़ने पर हमें बुलवा लेना। तुम्हारी उन्नति और लक्ष्मी को देखकर हम बहुत प्रसन्न हैं।" पिता के इन वचनों को सुनकर नरवाहनदत्त ने अपने माता-पिता का वस्त्र-आभूषण आदि से सत्कार किया और वायुपथ तथा देवमाय को आज्ञा दी कि वे उन्हें विमान पर बैठाकर

कौशांबी ले जायें। वह स्वयं भी उन्हें छोड़ने के लिए बहुत दूर तक साथ गया। विदा के समय सबकी आंखों में आंसू भर आये। उन्हें विदा करके नरवाहनदत्त अपने स्थान पर लौट आया और गोमुख आदि मंत्रियों तथा विद्याधरों के साथ सुखपूर्वक चक्र र्ती पद का उपभोग करता रहा।

# सोलहवां खंड

## : १ :

## सुरतमजरी

ऋषभ पर्वत पर रहते हुए एक बार नरवाहनदत्त पत्नियों और मंत्रियों सहित वसंत की शोभा देखने के लिए गंगा के किनारे सुंदर उपवन में गया। वहां वह एक विशाल चंद्रकांत पत्थर की शिला पर महादेवी मदनमंचुका के साथ बैठा हुआ था। मंद-मंद हवा बह रही थी। पक्षियों के मधुर संगीत से वन-प्रदेश गूंज रहा था। पुष्पों की सुगंधि से दिशाएं सुगंधित हो रही थीं। इस सुंदर वातावरण को देखकर नरवाहनदत्त ने कहा, "वसंत ऋतु अत्यंत सुखदायक है, किंतु इस ऋतु में अपने प्रिय लोगों का वियोग बड़ा ही दुस्सह है।" सम्राट की यह बात सुनकर गोमुख ने कहा, "आपकी बात यथार्थ है। इस समय में समस्त प्राणियों को वियोग दुस्सह हो जाता है।"

यह सुनकर नरवाहनदत्त का मन अचानक बड़ा उदास हो गया। वह वहां से सायंकाल होते ही घर लौट आया और अपने शयन-स्थान में जाकर सो गया। भोर के समय उसने स्वप्न में देखा कि एक काली स्त्री उसके पिता उदयन को दक्षिण दिशा की ओर खींचे लिये जा रही है। यह स्वप्न देखते ही वह एकदम जाग गया और पिता के अनिष्ट की आशंका से व्याकुल हो उठा। उसने विज्ञप्ति नाम की विद्या को स्मरण किया और उसके आने पर उससे पूछा, "पिताजी का समाचार बताओ। मैं एक बुरा स्वप्न देखने के कारण चिंतित हूं।" विज्ञप्ति ने कहा, "एक दिन कौशांबी में आपके पिता के पास उज्जयनी से महाराज चंडमहासेन की मृत्यु का समाचार आया और उन्होंने यह भी सुना कि महादेवी अंगारवती उनके साथ सती हो गई हैं। यह सुनकर आपके पिता

वासवदत्ता-सहित मूर्च्छित हो गये। होश आने पर उन्होंने बड़ा शोक किया। मंत्रियों के कहने पर राजा ने अपने श्वसुर को तिलांजलि दी। फिर उन्होंने अपने साले गोपालक से, जो इस समय उन्हींके पास थे, उज्जयनी में जाकर राज्य का भार संभालने को कहा। गोपालक ने रोते हुए उत्तर दिया, 'मैं आपको तथा बहन को छोड़कर कहीं नहीं जाऊंगा। मैं पिताजी से शून्य अपनी नगरी को देख भी नहीं सकता। आप मेरी आज्ञा से छोटे भाई पालक को राजा बना दीजिये।' गोपालक का यह निश्चय जानकर आपके पिता ने रुमण्वान को उज्जयनी में भेजा उसने पालक को राज्य सिंहासन पर बैठा दिया। इसके बाद इस घटना से विरक्त होकर महाराज ने अपनी रानियों तथा मंत्रियों से सलाह करके कालंजर पर्वत पर जाकर इस नश्वर शरीर को छोड़ने का निश्चय किया और आपके मामा गोपालक से कौशांबी का राज्य संभालने को कहा। इसके लिए भी उन्होंने मना कर दिया, किंतु पिताजी ने उसे जबरदस्ती राज्य दे दिया और स्वयं दोनों महारानियों तथा मंत्रियों सहित कालंजर पर्वत की ओर चल दिये। उनको कौशांबी छोड़कर जाता देख प्रजा ने बड़ा विलाप किया। किंतु उन्होंने प्रजा को तसल्ली दी और कालंजर पर पहुंच कर उन्होंने हाथ में अपनी प्रिय वीणा घोषवती ली। फिर मंत्रियों और महारानियों सहित ऊपर से कूद पड़े। उनके कूदते ही देव-दूतों ने उन्हें विमान पर संभाल लिया और सबको स्वर्ग ले गये।"

विद्या के मुख से पिता के स्वर्गवासी होने का समाचार सुनकर नरवाहनदत्त मूर्च्छित हो गया। मंत्रियों के समझाने-बुझाने पर उसने अपने माता-पिता को जल दिया और विद्या से फिर पूछा, "अब मेरे मामा गोपालक कहां हैं और उन्होंने क्या किया है?" विद्या ने फिर कहा, "आपके पिता तथा माताओं के स्वर्गवास की बात सुनकर गोपालक ने बड़ा शोक मनाया और अपने छोटे भाई पालक को उज्जयनी से लाकर उसे कौशांबी का राज्य भी दे दिया। फिर स्वयं असित पर्वत पर कश्यप मुनि के आश्रम में तपस्या करने चले गये। अब वह वहीं पर तपस्या कर रहे हैं।"

यह सुनकर नरवाहनदत्त उससे मिलने के लिए उत्सुक हो उठा और तुरंत अपने परिवार सहित विमान पर चढ़कर कश्यप मुनि के आश्रम में पहुंचा। वहां उसने जटाधारी मुनियों से घिरे हुए अपने मामा गोपालक को तपस्या में लीन देखा।

भानजे को आया देखकर गोपालक उठ खड़ा हुआ और उसके प्रणाम करने पर उसे छाती से लगा लिया। दोनों मिलकर खूब रोये। शांत होने पर नरवाहनदत्त ने मामा से अपने राज्य में चलने को कहा, किंतु उसने मना कर दिया, और कहा, "मेरे लिए तो तुम्हारा दर्शन ही पर्याप्त है।" फिर गोपालक के कहने पर नरवाहनदत्त उसी समय आरंभ होनेवाली वर्षाऋतु तक अपने दल-बल सहित कश्यप मुनि के आश्रम में ही रहा।

: २ :

## सुरतमंजरी का हरण

जिन दिनों नरवाहनदत्त कश्यपमुनि के आश्रम में ठहरा हुआ था, एक दिन सेनापति हरिशिख वहां आया और बोला, "महाराज! आज में रात के समय महल के ऊपर चढ़कर नगर की देख-भाल कर रहा था। तभी मैंने आकाश में एक स्त्री के रोने की आवाज सुनी। आंख उठाकर देखा तो पाया कि एक दिव्य पुरुष किसी स्त्री को जबरदस्ती उठाये लिये जा रहा है। मैंने उसे फटकारकर नीचे उतारा, तो पता चला कि वह पुरुष महादेवी मदनमंचुका का भाई आपका साला इत्यक है और वह स्त्री विद्याधर मतंगदेव की पुत्री तथा आपके मामा पालक के पुत्र अवंतिवर्धन की पत्नी सुरतमंजरी है। इत्यक कहता है कि अवंतिवर्धन से विवाह होने के पूर्व ही इसकी माता अशोकमंजरी ने इसे वाणी द्वारा मुझे दे दिया था। वह स्त्री कहती है कि यह दुष्ट मुझे बलात उज्जयनी से अवंतिवर्धन के महल के ऊपर से हरकर लिये जा रहा है। मैं उन दोनों को बंदी बनाकर यहां ले आया हूं। अब आपकी जैसी आज्ञा हो, वैसा करूं।"

सेनापति हरिशिख से यह समाचार सुनकर नरवाहनदत्त अपने मामा गोपालक के पास गया और उसे सारा हाल बताया। गोपालक ने कहा, "मेरे सामने तो अवंतिवर्धन ने इसके साथ विवाह नहीं किया था, अब कर लिया हो तो मैं नहीं जानता। इसलिए उज्जयनी से कुमार अवंतिवर्धन तथा मंत्री भरतरोह को बुलवा लो, उनसे सारा हाल मालूम हो जायेगा।" गोपालक की सलाह मानकर नरवाहनदत्त ने धुमशिख विद्याधर को भेजकर उज्जयनी से अवंतिवर्धन तथा मंत्री

भरतरोहक को बुलवा लिया। फिर सुरतमंजरी, इत्यक तथा अवंतिवर्धन के सामने नरवाहनदत्त ने भरतरोहक से पूछा, "तुम सुरतमंजरी और अवंतिवर्धन के विवाह के विषय में क्या जानते हो ?"

इसके उत्तर में मंत्री भरतरोहक ने कहा, "एक बार उज्जयनी की समस्त प्रजा ने राजापालक से जाकर कहा कि आपके पिता महाराज चंडमहासेन के समय से आपकी माता अंगारवती के पिता अंगारक को जल देने के लिए जो 'उदकदान' नाम का समारोह मनाया जाता है[१], उसे आप क्यों नहीं मनाते ? प्रजा की इस प्रार्थना को उचित मानकर राजा पालक ने इस समारोह को मनाना आरंभ कर दिया। जलदान महोत्सव के आरंभ होने पर उस मेले में एक हाथी बिगड़ गया और उसने अनेकों मनुष्यों को मार डाला। कोई भी आदमी उसे वश में न कर सका। इस प्रकार जनता को कुचलता हुआ वह हाथी एक चांडाल के घेरे में चला गया। वहां एक अत्यंत सुंदरी चांडाल कन्या ने उसे पुचकारा। उसके पुचकारते ही वह हाथी बिल्कुल शांत हो गया और उसकी ओर आंख उठाकर देखने लगा। वह कन्या उसके दांत पकड़-कर ऊपर चढ़ गई और वह हाथी चुपचाप एक पेड़ की छाया में जाकर खड़ा हो गया। इस विचित्रता को देखकर नागरिकों ने कहा, 'निश्चित ही यह चांडाल की पुत्री नहीं, कोई दिव्य कन्या है, जिसको देखकर इतना भयंकर पशु भी वश में हो गया।' इस समाचार को सुनकर कुमार अवंतिवर्धन भी उस अद्‌भुत कन्या देखने आये। उसे देखते ही कुमार उसके रूप पर मुग्ध हो गये। उस कन्या का भी यही हाल हुआ। अवंतिवर्धन ने वहां से लौटकर अपने मित्रों से उस कन्या के विषय में पूछा, तो उन्होंने बताया कि वह उत्पलहस्त नाम के एक चांडाल की पुत्री सुरत-मंजरी है। कुमार ने कहा, 'वह चांडाल की पुत्री नहीं हो सकती—उसका रूप, आकृति और सौंदर्य यह बताता है कि वह कोई उच्चकुलोत्पन्न दिव्य कन्या है। यदि वह मेरी पत्नी नहीं बनती तो मेरा जीना व्यर्थ है।' राजा पालक और महारानी को भी जब इस बात का पता लगा, तो वे बड़े बेचैन हुए। रानी ने कहा, 'राजवंश का पुत्र एक चांडाल कन्या को क्यों प्रेम करता है ?' राजा पालक बोले, 'देवि ! निश्चय ही यह कोई दिव्य कन्या है। उस पर मेरे पुत्र का मन रीझा है, इसलिए वह चांडाल की पुत्री नहीं हो सकती।

---

१ यह कथा दूसरे खंड के तीसरे अध्याय में आई है।

इसका कोई-न-कोई कारण है। ऐसे कार्यों में सज्जनों की चित्तवृत्ति ही प्रमाण होती है।'

"इस विषय में राजा पालक ने महारानी को यह कथा सुनाई :

"प्राचीन काल में सुप्रतिष्ठित नगर के राजा प्रसेनजित के कुरंगी नाम की एक अत्यंत रूपवती पुत्री थी। एक बार वह बगीचे में घूमने गई, तभी बंधन तोड़कर आये हुए एक मत्त हाथी ने उसे अपने दांतों पर उठा लिया। यह देखकर सारे नौकर तथा सखियां दूर भाग गईं। तब एक चांडाल कुमार तलवार हाथ में लेकर दौड़ा और उसने हाथी को मारकर उस राजकन्या को छुड़ा लिया। इसके बाद वह अपनी सखियों के साथ अपने महल को चली गई, किंतु चांडाल युवक के शौर्य और रूप पर उसका मन मुग्ध हो गया था। वह उसके लिए बेचैन रहने लगी। अंत में उसने निश्चय किया कि या तो वह युवक, जिसने मुझे हाथी से बचाया है, मेरा पति बनेगा नहीं तो मेरे लिए मृत्यु ही अच्छी है। उधर वह चांडाल कुमार भी उसके रूप का चिंतन करता हुआ अपने घर पहुंचा और सोचने लगा कि कहां तो मैं एक शूद्र-पुत्र और कहां वह राज-कन्या ? हम दोनों का मिलन इस जन्म में असंभव है। इसलिए, अब तो मृत्यु ही मेरा सहारा है। यह सोचकर वह श्मशान में आत्महत्या करने के लिए पहुंचा। वहां अग्नि जलाकर वह जैसे ही उसमें प्रविष्ट होने लगा, साक्षात अग्निदेव प्रकट होकर उससे बोले, 'पुत्र ! तुम मरने का साहस मत करो। वह राजपुत्री तुम्हारी पत्नी बनेगी, तुम चांडाल-पुत्र नहीं हो, वरन मेरे ही पुत्र हो। मैं यहां के कपिल शर्मा ब्राह्मण के घर के अग्निशाला में साकार रूप से रहता हूं। कभी उसकी पुत्री के रूप पर मुग्ध होकर मैंने उसे अपनी पत्नी बनाया था, जिससे तुम्हारा जन्म हुआ। उस ब्राह्मण पुत्री ने लोकलज्जा के भय से तुम्हें गली में डाल दिया। तब तुम्हें इस चांडाल ने उठा लिया और बकरी का दूध पिलाकर पाल लिया। इस प्रकार तुम ब्राह्मण-पुत्र हो, अपवित्र नहीं हो। तुम्हें वह राजपुत्री कुरंगी अवश्य प्राप्त होगी।'

"यह कहकर अग्निदेव अदृश्य हो गये और वह युवक भी अपने घर लौट आया। तभी राजा प्रसेनजित को अग्निदेव ने रात्रि में स्वप्न में दर्शन देकर यह प्रेरणा दी कि तुम अपनी पुत्री का विवाह उसके साथ कर दो, जिसने इसे हाथी से बचाया है। राजा प्रसेनजित ने अग्निदेव की आज्ञा के अनुसार अपनी पुत्री का विवाह उसके साथ कर दिया।

"यह कथा सुनाकर राजा ने कहा, 'सो, देवि ! इस प्रकार छिपे हुए दिव्य-व्यक्ति भी इस दुनिया में होते हैं। यह सुरतमंजरी भी कोई दिव्य नारी ही है।'

"राजा पालक की इस बात का समर्थन मैंने भी किया और यह कथा भी सुनाई :

"प्राचीनकाल में राजा मलयसिंह के एक अत्यंत सुंदरी मायावती नाम की पुत्री थी। एक बार वह उद्यान में खेल रही थी। तब उसे सुप्रहार नामक एक धीवर-कुमार ने देख लिया। वह उसे इतना चाहने लगा कि खाना-पीना, सोना आदि सब कुछ छोड़कर दिन-रात उसके ही ध्यान में डूबा रहता। उसकी माता रक्षितिका ने उससे कहा, 'पुत्र ! तुम चिंता मत करो। खूब खाओ-पीओ। मैं युक्ति से तुम्हें उस राजपुत्री से मिला दूंगी।' माता के इस आश्वासन पर उसने खाना खाया। उसकी माता नित्य ताजी-ताजी मछलियां लेकर राजपुत्री के पास जाने लगी। इस प्रकार उसने राजपुत्री की खूब सेवा करके उसे अपने वश में कर लिया। कभी प्रसंगवश राजपुत्री ने उस धीवरी से कहा 'तुम जो कुछ भी दुष्कर-से-दुष्कर काम मुझे बताओगी, मैं करूंगी।' एक दिन मौका पाकर उसने राजपुत्री से कहा, 'मेरे पुत्र ने जब से आपको उद्यान में देखा है, वह बहुत बेचैन है। मैंने किसी प्रकार आशा दिलाकर उसे बचा रखा है, नहीं तो वह कभी का मर गया होता। इसलिए यदि आप कृपा कर सकें, तो मेरे पुत्र का एक बार स्पर्श कर दीजिये, जिससे वह जीवित रह सके।' राजकुमारी ने लज्जा से मस्तक झुकाकर कहा, 'तुम उसे आज रात को छिपाकर मेरे महल में ले आना।' राजपुत्री की आज्ञा पाकर धीवरी अपने पुत्र को रात के समय ले आई। राजपुत्री ने उसका हाथ पकड़कर अपने पलंग पर बैठाया और उसके मस्तक पर चंदन-आदि शीतल पदार्थों का लेप किया, जिससे वह सो गया। उसके सोने पर वह राजपुत्री दूसरी शैया पर जाकर सो गई। कुछ देर बाद जब उस धीवर-पुत्र की आंख खुली और उसने राजपुत्री को अपने पास न पाया, तो उसका हृदय फट गया और वह मर गया। यह देखकर राजपुत्री भी अपनी निंदा करती हुई प्रातःकाल उसके साथ अग्नि में जलने को उद्यत हुई। जब इस बात का समाचार राजा मलयसिंह को मिला, तो उसने आकर पुत्री को जलने से रोका और आचमन करके यह प्रार्थना की कि 'यदि मैं शंकर का सच्चा भक्त हूं, तो हे लोकपालो ! मुझे बताओ कि मैं क्या करूं ?' उसी समय आकाशवाणी हुई: 'हे राजन! आपकी यह पुत्री इस धीवरपुत्र की पूर्वजन्म की

पत्नी है। पूर्वजन्म में यह नागस्थल गांव के महीधर ब्राह्मण का पुत्र बलधर था। पिता के मर जाने पर इसका सारा धन इसके कुलवालों ने छीन लिया, जिससे यह विरक्त होकर अपनी पत्नी के साथ गंगा के किनारे अनशन करके आत्महत्या करने के लिए गया। जब यह वहां बैठा हुआ था, तो कुछ धीवर मछलियां पकड़कर वहां लाये। उन मछलियों को देखकर उन्हें खाने की इच्छा करते ही इसके प्राण निकल गये। तब इसकी पत्नी भी शुद्ध संकल्प से इसके साथ ही मर गई। मरते समय इसका ध्यान मछलियों के खाने में था, सो इस जन्म में यह धीवर के घर पैदा हुआ और इसकी पत्नी शुद्ध संकल्प से मरने के कारण इस जन्म में आपकी पुत्री बनी। आपकी पुत्री अपने इस पूर्वजन्म के पति को अपनी आधी आयु देकर जीवित कर सकती है। पूर्वजन्म की तपस्या के प्रभाव से यह आपका दामाद बनकर राज्य का अधिकारी होगा।' इस दिव्य वाणी को सुनकर राजपुत्री मायावती ने अपनी आधी आयु से सुप्रहार को जीवित कर लिया और राजा मलयसिंह ने उसे अपनी पुत्री दे दी तथा राजा भी बना दिया।

"मैंने कहा कि इस प्रकार पूर्वजन्म के संबंधों से भी मनुष्यों का हृदय-बंधन हो जाता है। अपनी बात को पुष्ट करने के लिए मैंने चोर और वैश्य-पुत्री की कथा[1] भी सुनाई। उसके बाद मैंने कहा, 'हे राजन! आपके पुत्र अवंतिवर्धन तथा इस कन्या सुरतमंजरी का कोई पूर्वजन्म का बंधन अवश्य है। नहीं तो इतने बड़े राजघराने के कुमार की इतने छोटे चांडाल की पुत्री में कैसे आसक्ति होती? इसलिए आप इस कन्या के पिता उत्पलहस्त से इस कन्या को मांगिये, देखें वह क्या कहता है?'

"मेरी सलाह मानकर राजा पालक ने उस कन्या को मांगने के लिए उत्पलहस्त के पास अपने दूत भेजे। उसने उत्तर दिया कि जो कोई मेरे घर पर इस नगरी के अट्ठारह हज़ार ब्राह्मणों को भोजन करायेगा, मैं उसीके साथ इसका विवाह कर दूंगा। उसकी बात को दूतों ने राजा पालक से आकर कहा। 'इसमें अवश्य ही कोई-न-कोई रहस्य है' यह सोचकर राजा ने नगरी के ब्राह्मणों से कहा, 'तुम अट्ठारह हज़ार ब्राह्मण उत्पलहस्त शूद्र के घर जाकर भोजन करो।' इस बात को सुनकर ब्राह्मण बड़े असमंजस में पड़े। किंकर्तव्यविमूढ़ होकर उन्होंने भगवान शिव की आराधना की। शिव ने स्वप्न में उन्हें आदेश दिया कि तुम लोग निःशंक

[1] यह कथा बारहवें खंड के इक्कीसवें अध्याय में है।

होकर उत्पलहस्त के घर भोजन खा लो, क्योंकि वह चंडाल नहीं, विद्याधर है। शिवजी की यह आज्ञा पाकर ब्राह्मणों ने राजा से कहा, 'अगर उत्पलहस्त अपने घर से अलग शुद्ध भोजन बनवा दे, तो हम खा लेंगे।' राजा ने उसे अलग मकान दे दिया और उत्पलहस्त के सामने बैठकर ब्राह्मणों ने भोजन कर लिया। इसके बाद उत्पलहस्त ने प्रणाम करके सबके सामने राजा पालक से कहा, 'राजन! मैं विद्याधरों के स्वामी गौरिमुंड का सेवक मतंगदेव हूं। जब मेरे यहां यह पुत्री सुरतमंजरी उत्पन्न हुई, तब गौरिमुंड ने मुझसे गुप्त रूप से यह कहा था, "देवताओं ने कहा है कि वत्सराज उदयन का पुत्र नरवाहनदत्त विद्याधरों का चक्रवर्ती बनेगा, सो जबतक यह मारा नहीं जाता, तबतक हमारा चक्रवर्तित्व निष्कंटक नहीं है, इसलिए तुम जाओ और अपनी माया से उसे मारकर लौट आओ।" गौरिमुंड की आज्ञा से मैं आकाश मार्ग कौशांबी की ओर चला। मार्ग में मैंने शिवजी को देखा। उन्होंने क्रुद्ध होकर मुझे शाप दिया, "दुष्ट! तू महात्मा और निरपराध व्यक्ति पर अत्याचार करने के लिए जा रहा है, सो, जा, तू इसी शरीर से अपनी पत्नी तथा पुत्री के साथ उज्जयनी में चांडालों के बीच रह। जब कोई वहां के रहनेवाले अट्ठारह हज़ार ब्राह्मणों को तेरी पुत्री के लिए तेरे घर भोजन करायेगा, तब तेरे शाप का अंत होगा। तू उसे अपनी पुत्री दे देना।" यह कहकर भगवान शिव अदृश्य हो गये और मैं इस नगरी में आ गया। आज आपके पुत्र के प्रसाद से मेरे शाप का अंत हो गया। इसलिए मैं अपनी इस पुत्री को आपके पुत्र को देता हूं और मैं अब नरवाहनदत्त की सेवा के लिए विद्याधर होकर जाता हूं।'

"यह कहकर वह मतंगदेव अपनी पुत्री अवंतिवर्धन को देकर अपनी पत्नी के साथ आपके पास चला आया। राजा पालक ने इसका विवाह विधिपूर्वक अपने पुत्र के साथ कर दिया।

"एक बार कुमार अवंतिवर्धन सुरतमंजरी के साथ अपने महल पर सो रहा था। भोर होने पर उसने देखा कि सुरतमंजरी वहां नहीं है। तब वह विलाप करने लगा। माता-पिता भी बड़े बेचैन हुए। सबने कहा, 'इस सुरक्षित नगरी में कोई शत्रु तो घुस नहीं सकता, अतः निश्चय ही उसे कोई आकाशचारी उठाकर ले गया है।' हम सब ये बातें कर ही रहे थे कि आपका भेजा हुआ विद्याधर धूमशिख पहुंच गया और मुझे तथा कुमार अवंतिवर्धन को यहां ले आया। यहां सुरतमंजरी के माता-पिता भी मौजूद हैं, इससे आगे आप उनसे पूछ लीजिये।"

तब सभासदों ने मतंगदेब से पूछा, "तुमने सुरतमंजरी किसे दी थी ?" उसने उत्तर दिया, "अवंतिवर्धन को।" फिर सबने इत्यक से पूछा, "अब तुम बताओ कि इसे क्यों हरकर लिये जाते थे ?" इत्यक ने कहा, "इसकी माता ने मुझे पहले ही सुरतमंजरी को वाणी मात्र से दे दिया था।" सभासदों ने कहा, "पिता के होने पर माता को अपनी पुत्री देने का कोई अधिकार नहीं है। दूसरे, इस बात की भी कोई साक्षी तुम्हारे पास नहीं है कि इसकी माता ने तुम्हें इसे देने को कहा था, इसलिए तुम दूसरे की स्त्री को हरने के अपराधी हो।" सभासदों का यह उत्तर सुनकर इत्यक निरुत्तर हो गया और नरवाहनदत्त ने उसको मारने की आज्ञा दे दी, लेकिन कश्यप आदि मुनियों ने उसे यह कहकर छुड़ा दिया कि यह आपका साला है, इसका एक अपराध क्षमा कर दीजिये।

ऐसा ही हुआ। उसके बाद नरवाहनदत्त ने वायुपथ के द्वारा अवंतिवर्धन, सुरतमंजरी और मंत्री भरतरोहक को उज्जयनी पहुंचा दिया।

: ३ :

## तारावलोक

इस घटना के बाद महर्षि कश्यप ने नरवाहनदत्त से कहा, "हे राजन ! तुम जैसा चक्रवर्ती न तो अब तक हुआ है और न होगा। तुम्हारे राज्य में सर्वत्र धर्म, न्याय और सदाचार का बोल-बाला है। अब तक तुमसे पूर्व जितने भी चक्रवर्ती हुए, उनमें कोई-न-कोई दोष अवश्य था। इसीलिए वे साम्राज्य से भ्रष्ट हो गये। एक तारावलोक अवश्य ऐसा था, जो मनुष्य होकर भी अपने सुकर्मों से विद्याधर बना और अंत में चक्रवर्ती बन गया। उसमें कोई दोष न था। उसने चिरकाल तक साम्राज्य भोगा। वैराग्य हो जाने पर स्वयं राज्य छोड़कर तप करने के लिए वन में चला गया। हे राजन ! तुम भी इसी प्रकार धर्म और न्यायपूर्वक प्रजा का पालन करना।"

महर्षि कश्यप की यह बात सुनकर नरवाहनदत्त ने श्रद्धापूर्वक उनसे पूछा, "भगवन ! यह बताइये कि तारावलोक ने मनुष्य होकर भी किस प्रकार विद्याधरों का चक्रवर्तित्व प्राप्त किया ?" इस पर महर्षि ने उसे यह कथा सुनाई :

प्राचीन काल में शिवि वंश में चंद्रावलोक नाम का एक राजा था। उसकी पत्नी का नाम चंद्रलेखा था। चंद्रावलोक के पास कुवलयापीड़ नाम का एक हाथी था, जिसके प्रभाव से वह बलवान-से-बलवान शत्रु से भी नहीं जीता जा सकता था। उस हाथी के कारण कोई शत्रु उस पर चढ़ाई करने की हिम्मत ही नहीं करता था। राजा चंद्रावलोक के एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका नाम तारावलोक रखा गया। समस्त विद्याओं में निपुण होकर वह राजकुमार दान, धर्म और विवेक आदि उच्च गुणों से संपन्न हो गया। राजा चंद्रावलोक ने उसका विवाह मद्र-देश के राजा की पुत्री माद्री के साथ कर दिया और विवाह के बाद उसे राज-सिंहासन पर भी बैठा दिया। राजा बनकर तारावलोक ने अपने राज्य में भूखे-नंगों को अन्न आदि देने के लिए सत्र खुलवा दिये। वह स्वयं भोर होने पर सबसे पहले उन दान-पात्रों को देखने जाता। उससे जो-जो मांगता, वह उसे वही दे देता। धीरे-धीरे उसके दान का यश दशों दिशाओं में फैल गया। इसी बीच उसके दो जुड़वां पुत्र पैदा हुए जिनका उसने राम और लक्ष्मण नाम रखा।

तारावलोक के शत्रुओं ने अपने ब्राह्मणों से कहा, "तुम उसके पास जाकर कुवलयापीड़ हाथी को मांगो, यदि वह दे देगा, तो हम सब मिलकर उसे जीत लेंगे और यदि नहीं देगा तो उसका यश कलंकित होगा।" यह सुनकर ब्राह्मणों ने उसके पास आकर कुवलयापीड़ हाथी को मांगा। तारावलोक सब-कुछ समझ गया, किंतु फिर भी उसने बिना किसी हिचकिचाहट के वह हाथी उन्हें दे दिया। यह सुनकर सारे नगरनिवासी राजा चंद्रावलोक के पास पहुंचे और बोले, "आपके पुत्र ने अब राज्य छोड़ दिया है और संन्यास ग्रहण कर लिया है, क्योंकि उसने कुवलयापीड़ जैसे हाथी को भी दान में दे दिया। सो, आप या तो उसे राज्य से हटाकर वन में तपस्या के लिए भेज दीजिये या हाथी को वापस मंगवा लीजिये, नहीं तो हम उसे राज्य से हटाकर दूसरा राजा चुन लेंगे।" चंद्रावलोक ने अपने दूत के द्वारा यह समाचार तारावलोक के पास पहुंचा दिया। तारावलोक ने पिता से कहा, "राजा मैं हूं। मैंने हाथी दान में दिया है। मेरे लिए कोई भी वस्तु अदेय नहीं है। मैं ऐसे राज्य को स्वीकार नहीं करूंगा, जिसमें प्रजा इस प्रकार हस्तक्षेप करे।"

यह कहलाकर वह अपनी पत्नी तथा पुत्रों के साथ रथ में बैठकर वन को चल दिया। मार्ग में किसी ब्राह्मण ने रथ के घोड़ों को मांग लिया। तारावलोक ने घोड़े

उसे दे दिये और बच्चों को बैठाकर दोनों पति-पत्नी रथ को खींचकर ले चले। आगे चलकर उस रथ को भी किसीने मांग लिया। तब वे सब पैदल ही वन में पहुंचे। वहां कुटी बनाकर वे रहने लगे। एक दिन माद्री फल-फूल आदि लेने के लिए आश्रम से बाहर गई हुई थी, तब एक ब्राह्मण ने आकर उन बच्चों को मांग लिया। तारावलोक ने उन बच्चों को भी दे दिया। बच्चों को ले जाते समय ब्राह्मण उन्हें पीटने लगा और वे बच्चे मुड़-मुड़कर पिता को देखने और रोने लगे, किंतु फिर भी तारावलोक नहीं डिगा। लौटकर माद्री को जब यह पता लगा कि उसके पुत्र भी दान में दे दिये गये हैं, तो उसने कोई बुरा नहीं माना, बल्कि बोली, "अच्छा ही हुआ कि याचक घर से निराश होकर न लौटा।"

उसके इस त्याग से इंद्र विचलित हो उठा और उसने तारावलोक की अंतिम परीक्षा लेने के लिए स्वयं ब्राह्मण का रूप धारण किया। वह तारावलोक के पास आया और उनकी पत्नी माद्री को मांगा। तारावलोक ने उसे भी दे दिया और बोला, "महाराज! यह तो पत्नी है, ब्राह्मण के लिए तो मेरे प्राण भी हाजिर हैं।" इस दान से प्रसन्न होकर इंद्र अपने असली रूप में प्रकट हुआ और बोला, "राजन! मैंने तुम्हारी परीक्षा लेने के लिए ही यह रूप धारण किया था। अब आप शीघ्र ही विद्याधरों के चक्रवर्ती बनेंगे।" यह कहकर वह अदृश्य हो गया।

इसी बीच में वह ब्राह्मण, जो बच्चों को ले गया था, मार्ग भूलकर घूमता हुआ दैवयोग से चंद्रावलोक के शहर में पहुंच गया और उन बच्चों को बेचने लगा। प्रजा ने उन बच्चों को पहचान लिया और राजा चंद्रावलोक से जाकर कह दिया। अपने पोतों को देखकर राजा की आंखों से आंसू बरसने लगे और उसने मूल्य देकर ब्राह्मण से बच्चों को खरीद लिया और तारावलोक के आश्रम में पहुंचा। तारावलोक ने पिता को देखा, तो उठकर प्रणाम किया और पूछा, "ये बच्चे आपके पास कहां से आये?" चंद्रावलोक ने सारी घटना उसे सुना दी। उसी समय वहां आकाश से चार दांतवाला एक हाथी, विद्याधरों की राज्यलक्ष्मी और अनेक विद्याधरों के स्वामी उतरे। लक्ष्मी ने तारावलोक से कहा, "राजन! आप इस हाथी पर चढ़कर विद्याधर-लोक को चलिये और अपने दान के प्रभाव से प्राप्त साम्राज्य लक्ष्मी को भोगिये।" तारावलोक अपने पिता को प्रणाम करके आश्रमवासियों के सामने ही पत्नी और पुत्रों के साथ उस हाथी पर चढ़कर विद्याधर-लोक को चला गया। उसन बहुत समय तक साम्राज्य सुख भोगा और अंत में वैराग्य उत्पन्न

होने कारण वन में तपस्या करने चला गया। इस प्रकार तारावलोक ने मनुष्य होते हुए भी विद्याधरों का चक्रवर्तित्व प्राप्त किया था। दूसरे राजाओं ने भी चक्रवर्तित्व तो प्राप्त किया, किंतु अपने दोषों के कारण उनका पतन हो गया।

कह कथा सुनाकर महर्षि कश्यप ने कहा, "हे राजन ! तुम धर्म और न्यायपूर्वक प्रजा का पालन करना और प्रजा को अधर्म से बचाना।"

कश्यप मुनि से यह कथा सुनकर नरवाहनदत्त ने अपने साम्राज्य में यह घोषणा करा दी कि यदि कोई भी व्यक्ति अधर्म के मार्ग पर चलेगा, तो उसे मृत्यु दंड मिलेगा।

# सत्रहवां खंड

## : १ :

## पद्मावती

इस प्रकार असित पर्वत पर कश्यप मुनि के आश्रम में नरवाहनदत्त वर्षाकाल बिताने के लिए ऋषियों के साथ अनेक कथा-वार्ताएं कहता-सुनता रहने लगा। एक बार समस्त ऋषियों तथा उनकी पत्नियों ने नरवाहनदत्त से पूछा, "जब मानस-वेग आपकी पत्नी मदनमंचुका को हरकर ले गया, तो आपने उस विरह को किस प्रकार सहा ? आपका मनोविनोद किसने और कैसे किया ?"

नरवाहनदत्त ने उत्तर दिया, "तब मैंने क्या-क्या कष्ट सहन नहीं किये ? कोई शहर, कोई बगीचा, कोई घर ऐसा नहीं बचा, जहां मैंने उसे न ढूंढा हो। अंत में एक पेड़ के नीचे विश्राम करते समय गोमुख ने मुझसे कहा, 'आप इतने बेचैन न हों, आपको देवी मदनमंचुका शीघ्र ही मिलेंगी, क्योंकि देवताओं का वरदान है कि आप देवी के साथ विद्याधरों के चक्रवर्ती बनगे और देवताओं के वचन व्यर्थ नहीं जाते। आप उसी प्रकार देवी मदनमंचुका को प्राप्त करेंगे, जिस प्रकार प्राचीनकाल में विद्याधरों के चक्रवर्ती मुक्ताफलकेतु ने बहुत समय के उपरांत पद्मावती को प्राप्त किया था।' और उसने मुझे उनकी कथा बताई।'

यह कहकर नरवाहनदत्त ने गोमुख द्वारा कही यह कथा सुनाई :

प्राचीनकाल में वाराणसी नगरी में शिवजी का परमभक्त, शूरवीर और दानशील ब्रह्मदत्त राजा राज करता था। उसकी पत्नी का नाम सोमप्रभा और मंत्री का नाम शिवभूति था। एक बार वह रात के समय चंद्रमहल पर सोते समय उसने आकाश में उड़ता हुआ सोने के हंसों का जोड़ा देखा। उनके उड़कर दूर चले जाने पर राजा उत्कंठित होकर फिर उनके देखने की इच्छा करने लगा। वह रात भर जागता रहा, किंतु वे फिर लौटकर नहीं आये। सवेरे उठकर

उसने मंत्री शिवभूति को रात को देखे हंसों के विषय में बताया और कहा, "यदि वे हंस मुझे फिर देखने को न मिलेंगे, तो मुझे राज्य और जीवन का कोई मोह नहीं है।" शिवभूति ने उत्तर दिया, "राजन! आप कमलों से युक्त एक ऐसा विशाल तालाब बनवाइये, जिसमें बहुत से हंस आश्रय ले सकें। उसमें पक्षियों के लिए रुचिकर अन्न डलवा दीजिये और उसके चारों ओर पहरा लगवा दीजिये। तब तालाब पर अनेक दिशाओं से जलपक्षी आयेंगे। उनमें वे सुंदर स्वर्ण हंस भी आ जायेंगे।"

मंत्री की बात सुनकर राजा ने ऐसा ही किया और कुछ समय बाद स्वर्णमय हंसों का जोड़ा वहां आकर बैठ गया। पहरेदारों ने राजा को जाकर इसकी सूचना दी। उसने तुरंत आकर वह सुंदर जोड़ा देखा। अब वह हमेशा उन हंसों को देखता हुआ वहीं तालाब के किनारे रहने लगा। एक दिन उसने घूमते हुए एक स्थान पर न मुरझानेवाले फूलों को पड़े हुए देखा। उन्हें देखकर राजा ने रक्षकों से पूछा, "ये फूल कहां से आये?" रक्षकों ने उत्तर दिया, "राजन! बड़े आश्चर्य की बात है कि ये दोनों हंस तीनों समय स्नान करके पूजा करते हैं और ध्यान लगाकर बैठते हैं।" यह सुनकर राजा ने सोचा कि अवश्य ही इसका कोई-न-कोई कारण है। मुझे तपस्या करके जानना चाहिए कि ये दोनों कौन हैं? यह विचारकर राजा ने पत्नी और मंत्री के साथ शिव की आराधना की। बारह दिन तक बिना खाये-पिये तप करने पर रात में उन दोनों हंसों ने स्वप्न में राजा से कहा, "आप सवेरे उठकर व्रत का पारणा कर लीजिये। हम आकर आपको स्वयं अपना वृत्तांत बतायेंगे।" राजा ने ऐसा ही किया। सवेरे उन हंसों ने आकर राजा को अपना यह वृत्तांत सुनाया:

एक बार मंदराचल पर पार्वती को छोड़कर भगवान शिव देवताओं के किसी कार्य से कहीं चले गये। पार्वती एक पेड़ के नीचे शिव की चिंता में बैठी हुई थीं। जया की पुत्री कुमारी चंद्रलेखा उन पर चामर ढाल रही थी। साथ-ही-साथ वह और समीप में बैठा हुआ मणिपुष्प नाम का शिवजी का गण, दोनों परस्पर अनुरक्त होकर एक-दूसरे को अनुराग की दृष्टि से देख रहे थे। उनकी इन चेष्टाओं को देखकर पास में खड़े हुए पिंगेश्वर और गुहेश्वर नाम के दो गण हंस पड़े। उन्हें हंसते देखकर पार्वती ने कारण जानने के लिए इधर-उधर दृष्टि डाली, तो उन्हें परस्पर सानुराग पाया। इस पर क्रुद्ध होकर उन्होंने उन दोनों को

यह शाप दिया, "तुम दोनों पृथ्वी में जाकर काम-वासनाओं में लिप्त स्त्री-पुरुष बनो।" हंसनेवाले पिंगेश्वर और गुहेश्वर को यह शाप दिया, "तुम दोनों पृथ्वी में जाकर अनेक कष्ट भोगो। पहले तुम ब्राह्मण बनोगे, फिर ब्रह्म-राक्षस, इसके बाद पिशाच, तब चांडाल, फिर चोर, इसके बाद पूंछ कटे हुए कुत्ते और फिर अनेक प्रकार के पक्षी बनोगे।" पार्वती के इस शाप को सुनकर धूर्जट नाम के गण ने प्रार्थना की, 'देवि! इतने छोटे से अपराध पर इन्हें इतना बड़ा दंड देना उचित नहीं है।" यह सुनकर पार्वती ने उसे भी मनुष्य योनि में जाने का शाप दे दिया। तब चंद्रलेखा की माता जया ने पार्वती के चरणों पर गिरकर कहा, "देवि! आप प्रसन्न होइये। इनके शाप का अंत कब होगा, कृपया यह तो बता दीजिये।" पार्वती ने कहा, "जब ये ज्ञान प्राप्त करके एक जगह मिलेंगे, तब ब्रह्मादिकों के तपःक्षेत्र में जाकर सिद्धीश्वर के दर्शन करेंगे और शाप से मुक्त होकर यहीं चले आयेंगे। मनुष्य लोक में जाकर चंद्रलेखा, मणिपुष्प और धूर्जट तो सुखी रहेंगे, लेकिन पिंगेश्वर और गुहेश्वर दुखी रहेंगे।"

यह कहकर पार्वती चुप हो गईं। इसी समय शिवजी को अनुपस्थित जानकर अंधक नाम का राक्षस पार्वती को हरने के लिए आया, लेकिन सब गणों ने मिलकर उसका मुकाबला किया और उसे भगा दिया। उसकी इस दुश्चेष्टा को योग-दृष्टि से जानकर भगवान शिव ने उसे मार दिया और पार्वती के पास लौटकर उन्हें सब हाल बता दिया।

इसके बाद शिव तो वहीं विहार करने लगे और वे पांचों पार्वती के शाप के कारण पृथ्वी पर उतर आये। उनमें से पिंगेश्वर और गुहेश्वर का वृत्तांत इस प्रकार है:

यज्ञस्थल नाम के गांव में यज्ञसोम नाम का एक धनवान और गुणवान ब्राह्मण था। वे दोनों शिवजी के गण उसके यहां पुत्र रूप में उत्पन्न हुए। उनका नाम हरिसोम और और देवसोम रखा गया। उनका बचपन बीतने पर यज्ञोपवीत के समय पिता की सारी संपत्ति नष्ट हो गई और कुछ दिन बाद उनके माता-पिता दोनों का देहांत हो गया। वे दोनों अनाथ होकर इधर-उधर घूमते हुए अपने नाना के घर की ओर चले। मार्ग में उन्हें पता चला कि नाना-नानी दोनों मर गये हैं। वहां पहुंचने पर उनके मामाओं ने उनका खूब सत्कार किया। किंतु उनके आने के कुछ दिन बाद ही मामाओं की संपत्ति भी नष्ट हो गई। अब

नौकर के अभाव में उन दोनों को ही गौओं को चराने के लिए वन में जाना पड़ा। गौओं को चराते-चराते कुछ दिन बाद उनकी गौएं या तो हिंसक जानवरों ने खा डालीं या स्वयं मर गईं। इस प्रकार लगभग सारी गौएं नष्ट हो गईं, केवल यज्ञ के लिए एक गाय और एक बकरा शेष बचा। एक दिन वे दोनों पशु भी न जाने कहां खो गये। उन्हें ढूंढ़ते हुए वे दोनों भाई वन में दूर निकल गये। एक जगह उन्हें शेर का आधा खाया हुआ बकरा मिला। उन्होंने सोचा कि यदि इस आधे खाये बकरे को लेकर मामाओं के पास गये, तो मामा बहुत क्रुद्ध होंगे। सो इस आधे बकरे को भूनकर हम स्वयं खा लें और यहां से कहीं दूर भाग चलें। लेकिन वे उस बकरे को भूनकर खा ही रहे थे कि उनके मामा ढूंढ़ते हुए वहीं आ पहुंचे। उन्हें आया देखकर वे उठकर भाग लिये। उनको भागते देखकर मामाओं ने शाप दिया, "तुमने यज्ञ के बकरे का मांस खाकर राक्षस कर्म किया है। इसलिए तुम दोनों ब्रह्मराक्षस बनोगे।" तब वे दोनों ब्रह्मराक्षस बन गये। एक दिन वे एक तपस्वी योगी को मारने के लिए दौड़े और उसके शाप से पिशाच बन गये। पिशाच बनकर उन दोनों ने एक दिन एक ब्राह्मण की गाय मारने के लिए चुरा ली। तब उस ब्राह्मण ने अपने मंत्र के प्रभाव से उन्हें चांडाल बना दिया। वे धनुष हाथ में लेकर, भूख से पीड़ित, भोजन की इच्छा से घूमते हुए चोरों के गांव में पहुंच गये। चोरों ने उनके नाक-कान काट लिये और अपने स्वामी के पास ले गये। उसने उनका हाल पूछा और खिला-पिलाकर अपने पास रख लिया। वे भी चोरों के साथ चोरी करने जाने लगे और कुछ दिन बाद चोरों के महासेनापति बन गये। एक बार वे अपनी सेना लेकर शैव-क्षेत्र में वहां के निवासियों को लूटने गये। वहां के नागरिक मिलकर शिवजी की शरण में पहुंचे। शिवजी ने कुपित होकर चोरों को अंधा कर दिया। अब तो नगर-निवासियों ने उन्हें डंडे और पत्थर आदि से खूब पीटा। लेकिन जब वे उनके सेनापतियों को मारने लगे, तो वे मनुष्य-योनि को छोड़कर पूंछ कटे कुत्ते बन गये। तब वे अपनी पूर्व योनि को याद करके शिवजी के सामने नाचने लगे और उन्हींकी शरण में रहने लगे। यह देखकर वे नागरिक बड़े विस्मित हुए और हंसते हुए अपने-अपने घर चले गये। वे दोनों अपने पाप की शांति के लिए खाना-पीना छोड़कर शिवजी के ध्यान में लीन रहने लगे। बहुत दिनों के बाद शिवजी के गणों ने शिवजी से कहा, "देव! ये दोनों पिंगेश्वर और गुहेश्वर नाम के आपके गण हैं। भगवती पार्वती के शाप से ये इस अवस्था

को प्राप्त हुए हैं।" तब शिवजी ने उन्हें कौआ बना दिया। कौए बनकर भी वे शिवजी की पूजा में ही लगे रहे। फिर वे कौए से मोर और मोर से स्वर्णमय हंस बन गये, किंतु शिवजी की पूजा और ध्यान उन्होंने न छोड़ा।

इतनी कथा सुताकर हंसों ने कहा, "हे राजन! स्वर्णमय हंसों के रूप में हम ही शिवजी के वे गण हैं। आप मणिपुष्प नामक गण हैं, आपकी पत्नी सोमप्रभा जया की पुत्री चंद्रलेखा है और आपका यह मंत्री शिवभूति वही धूर्जट है। हमने आत्मबोध होने पर ही आपको रात के समय दर्शन दिये थे और इस प्रकार अब हम मिल गये हैं। हमारा शाप अब समाप्त होनेवाला है। अब हम आपको भी ज्ञान देंगे। अब आप देव-पर्वत पर चलिये, जहां देवताओं ने विद्युद्ध्वज राक्षस के विनाश के लिए सिद्धीश्वर के आगे तप किया था और शिवजी के प्रसाद से विद्याधरों के स्वामी मुक्ताफलकेतु की सहायता से उस राक्षस को मारा था और शिव के प्रताप से पद्मावती को प्राप्त किया था। उस क्षेत्र में हम शिव को प्रणाम करके शाप से मुक्त होंगे और फिर अपनी गति को प्राप्त होंगे।"

उन दिव्य हंसों से यह सुनकर राजा ब्रह्मदत्त के हृदय मुक्ताफलकेतु का वृत्तांत सुनने की इच्छा हुई।

## मुक्ताफलकेतु

राजा ब्रह्मदत्त ने दिव्य हंसों से पूछा, "पहले आप यह बताइये कि मुक्ताफलकेतु ने विद्युद्ध्वज को किस प्रकार मारा और किस प्रकार शाप से मनुष्य बनकर पद्मावती को प्राप्त किया ?" इस पर हंसों ने उसे यह कथा सुनाई :

विद्युत्प्रभ नाम का एक दैत्य-राज था। उसने पुत्र की कामना से पत्नी सहित गंगा पर जाकर सौ वर्षों तक तपस्या करके ब्रह्मा की आराधना की। उससे संतुष्ट होकर ब्रह्मा ने उसे यह वर दिया कि तुम्हारे एक ऐसा पुत्र उत्पन्न होगा जिसे देवता भी न मार सकेंगे। इस वर से उसके विद्युद्ध्वज नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। वह बच्चा बचपन में ही बड़ा बलशाली था। एक बार उसने सेना के द्वारा चारों ओर से रक्षित अपने नगर को देखकर अपने एक मित्र से पूछा, "ये सैनिक किसके

भय से नगर की रक्षा करते हैं ?" मित्र ने बताया, "इंद्र हमारा शत्रु है, उससे ही डरकर यह इतनी बड़ी सेना रखी गई है ।" इतनी विशाल सेना को देखकर बालक विद्युद्ध्वज अपने मित्र से बोला, "ऐसे राज्य को धिक्कार है, जिसकी रक्षा अपनी भुजाओं से न की जाकर सैनिकों से की जाय। मैं तीव्र तप करके ऐसा भुज बल प्राप्त करूंगा, जिससे कभी भी शत्रु का भय न रहे।" यह कह कर बालक विद्युद्ध्वज मित्र के रोकने पर भी, बिना पिता की आज्ञा के तपस्या करने वन में चला गया। वहां उसने सौ वर्ष तक कठोर तप करके ब्रह्मा को संतुष्ट किया। ब्रह्मा ने उसे बहुत से अस्त्र दिये और अंत में ब्रह्मास्त्र देकर कहा, "इसका प्रतिरोध केवल पाशुपतास्त्र ही कर सकेगा, किंतु इसका प्रयोग बिना अवसर के न करना।" यह कहकर ब्रह्मा अदृश्य हो गये और विद्युद्ध्वज भी अस्त्रों को लेकर अपने घर लौट आया। कुछ दिन बाद विद्युद्ध्वज अपने पिता के साथ बड़ी भारी सेना लेकर इंद्र को जीतने के लिए निकल पड़ा। उसका आना जानकर इंद्र भी अपने मित्र विद्याधरों के स्वामी चंद्रकेतु, गंधर्वों के राजा पद्मशेखर और सारे देवता तथा लोकपालों के साथ युद्ध के लिए निकल पड़ा। दोनों सेनाओं में घमासान युद्ध हुआ। इंद्र ने विद्युद्ध्वज के पिता विद्युत्प्रभ को मार डाला। इससे क्रुद्ध होकर विद्युद्ध्वज ने इंद्र पर ब्रह्मास्त्र चलाया और उसका प्रतिरोध करने के लिए इंद्र ने पाशुपत-अस्त्र का प्रयोग किया, जिससे विद्युद्ध्वज की सारी सेना भस्म हो गई। केवल विद्युद्ध्वज ही बालक होने के कारण बच गया, क्योंकि अस्त्र बालकों, बूढ़ों और युद्ध न करनेवालों को नहीं मारते।

इस प्रकार विजयी होकर देवता अपने स्थानों को चले गये और विद्युद्ध्वज अपने मंत्री की सलाह से शिवजी की आराधना करने के लिए गया और कैलास पर गंगा के किनारे तप करने लगा। एक हज़ार वर्षों तक कठोर तपस्या करके उसने शिवजी को प्रसन्न किया। उन्होंने दर्शन देकर कहा, "पुत्र! वर मांग।" विद्युद्ध्वज ने कहा, "भगवन! ऐसा वर दीजिये कि मैं युद्ध में इंद्र को मार सकूं।" शिवजी ने कहा, "मारना और जीतना बराबर है। सो, तुम युद्ध में इंद्र को जीतकर स्वर्ग में राज्य करोगे।" यह कहकर शिवजी अंतर्धान हो गये और विद्युद्ध्वज अपने घर लौट आया। कुछ दिन बाद तैयारी करके उसने फिर इंद्र पर आक्रमण कर दिया। इंद्र भी अपने दल-बल सहित युद्ध के लिए आ गया। दोनों की सेनाओं में बीस दिन तक भयंकर युद्ध हुआ। इक्कीसवें दिन राक्षसों ने देवताओं को

भगा दिया। तब इंद्र स्वयं अपने हाथी ऐरावत पर चढ़कर युद्ध के लिए आया। दोनों में बहुत समय तक युद्ध होता रहा। अंत में विद्युद्ध्वज कूदकर इंद्र के हाथी पर चढ़ गया। उसने इंद्र के मुग्दर मारा, जिससे इंद्र मूच्छित होकर नीचे गिरने लगा, तभी वायु ने आकर उसे अपने रथ पर संभाल लिया और सुरक्षित स्थान पर ले गया।

इस प्रकार युद्ध में इंद्र की हार और विद्युद्ध्वज की जीत हुई। विद्युद्ध्वज ने स्वर्ग पर अधिकार कर लिया। देवताओं के गुरु बृहस्पति इंद्राणी को वहां से निकालकर ब्रह्मलोक में ले आये। इंद्र भी असमय देखकर देवताओं के साथ ब्रह्मलोक में रहने लगा। ब्रह्मा ने इंद्र को आश्वासन दिया कि इस समय विद्युद्ध्वज शिवजी के वर के कारण ही इतना प्रतापशाली हो रहा है। समय आने पर तुम्हें फिर अपना पद प्राप्त होगा। इसके बाद इंद्र की आज्ञा से विद्याधर तो वायुलोक को और गंधर्व सोमलोक को चले गये।

इधर विद्युद्ध्वज मर्यादा-रहित होकर स्वर्ग में राज्य करने लगा। इसी बीच में गंधर्वों का स्वामी पद्मशेखर विद्युद्ध्वज के विनाश के लिए सोमलोक से शिवपुर में तपस्या करने के लिए चला गया। तपस्या करके शिवजी से उसने यह वर प्राप्त किया कि तुम्हारे एक उत्तम पुत्र उत्पन्न होगा, इसके बाद राज्य प्राप्त करके तुम्हारे एक कन्या उत्पन्न होगी और जो वीर उस कन्या का पति होगा, वही विद्युद्ध्वजको मारेगा। यह बात बताने के लिए पद्मशेखर इंद्र के पास आया। उसी समय विद्याधरों का राजा चंद्रकेतु भी आया हुआ था। शिवजी के वरदान की बात सुनकर चंद्रकेतु ने कहा, "मैं भी अपने दुखों की शांति के लिए तप करूंगा।" और वह अपनी पत्नी मुक्तावली के साथ तपस्या करने के लिए शिवजी के दिव्य क्षेत्र में चला गया। पद्मशेखर भी सोमलोक को लौट गया।

इसके बाद इंद्र ने बृहस्पति से कहा, "शिवजी ने संतुष्ट होकर पद्मशेखर को जो वरदान दिया है, वह बहुत दीर्घकालीन है, सो मैं स्वयं तपस्या करने जाऊंगा।" बृहस्पति की सलाह से इंद्र उनके साथ ब्रह्मा के पास गया। ब्रह्मा ने कहा, "विद्युद्ध्वज को शिवजी का वरदान है, वह ही उसे दूर कर सकते हैं, मैं नहीं कर सकता।" फिर ब्रह्मा, इंद्र और बृहस्पति तीनों विष्णु भगवान के पास पहुंचे। विष्णु भगवान ने उत्तर दिया, "शिवजी के द्वारा दिये गये वरदान का प्रत्युपचार शिव ही कर सकते हैं, किंतु मैं आपको उपाय बताता हूं। सिद्धीश्वर नाम

के दिव्य क्षेत्र में शिव स्वयं हमेशा उपस्थित रहते हैं। हम सब वहां चलकर तपस्या से उन्हें प्रसन्न करें।" तब विष्णु भगवान, ब्रह्मा, इंद्र और बृहस्पति—चारों सिद्धीश्वर क्षेत्र में जाकर तप करने लगे।

इसी बीच में चंद्रकेतु की तपस्या से प्रसन्न होकर शिवजी ने उसे यह वरदान दे दिया कि तुम्हारे एक वीर पुत्र उत्पन्न होगा, वही युद्ध में विद्युद्ध्वज को मारेगा। फिर वह शाप के कारण मनुष्य योनि में अवतीर्ण होगा और अपने तपोबल से गंधर्वराज की पुत्री पद्मावती से विवाह करेगा। अंत में उस पत्नी के साथ अपने पद को प्राप्त करके दस कल्पों तक विद्याधरों का चक्रवर्ती रहेगा।

यह वर पाकर चंद्रकेतु वायुलोक में लौट आया। उधर सिद्धीश्वर क्षेत्र में तप करते हुए विष्णु, ब्रह्मा, इंद्र और बृहस्पति को दर्शन देकर शिवजी ने कहा, "मैंने चंद्रकेतु को यह वरदान दे दिया कि मेरे अंश से उसके घर एक पुत्र उत्पन्न होगा, वही विद्युद्ध्वज को मारेगा। सो, आप जाइये और थोड़े दिन तक उसके उत्पातों को और सहिये।" यह सुनकर विष्णु आदि अपने-अपने स्थानों को चले गये। तब कुछ दिन बाद चंद्रकेतु की पत्नी मुक्तावली के गर्भ से एक ुत्र उत्पन्न हुआ। उसका नाम मुक्ताफलकेतु रखा गया। उसके उत्पन्न होते ही यह आकाशवाणी हुई कि यह बालक विद्युद्ध्वज को मारनेवाला होगा। कुछ समय बाद ही गंधर्वराज पद्मशेखर के घर पुत्रोत्पत्ति के अनंतर एक कन्या का जन्म हुआ। उसका नाम पद्मावती रखा गया। मुक्ताफलकेतु बचपन से ही बड़ा बुद्धिमान और शिव-भक्त था। एक बार बारह दिन तक निराहार रहकर उसने शिवजी की तपस्या की। शिवजी ने दर्शन देकर कहा, "मैं तुमसे संतुष्ट हूं, तुम्हें मेरे प्रताप से समस्त अस्त्र विद्याएं तथा कलाएं प्राप्त होंगी और यह अपराजित नामक खड्ग मैं तुम्हें देता हूं। इसके प्रभाव से तुम विपक्षियों को जीतकर विशाल-साम्राज्य स्थापित करोगे।" यह वर देकर शिवजी अदृश्य हो गये और मुक्ताफलकेतु भी शीघ्र ही शस्त्रास्त्र में निपुण हो गया।

इसी बीच में एक बार विद्युद्ध्वज स्वर्ग में जल-क्रीड़ा कर रहा था। गंगा के जल को पुष्प की धूलि से पीला तथा मद से सुगंधित देखकर वह घमंड में भरकर अपने नौकरों से बोला, "देखो, इस पानी को कौन गंदा कर रहा है?" नौकरों ने जाकर देखा कि शिवजी का बैल तथा इंद्र का ऐरावत हाथी दोनों जलक्रीड़ा कर रहे हैं। नौकरों ने यही बात विद्युद्ध्वज से आकर कह दी। उसने आज्ञा दी कि दोनों

को बांधकर हमारे पास ले आओ। जब नौकर उन्हें बांधने गये तो उन्होंने नौकरों को मार डाला। उसके बाद बैल तो शिवजी के पास चला गया और ऐरावत इंद्र के पास। इस वृत्तांत को जानकर इंद्र ने सोच लिया कि अब विद्युद्ध्वज का अंत निकट आ गया है। शिवजी के बैल को पकड़ने की आज्ञा देकर उसने उनका अपमान किया है। इंद्र ने यह सब हाल ब्रह्मा को सुनाया और अपनी सेना लेकर विद्युद्ध्वज को मारने के लिए चल दिया।

: ३ :

## विद्युद्ध्वज की मृत्यु

इंद्र ने जाकर स्वर्ग को चारों ओर से घेर लिया। यह देखकर विद्युद्ध्वज भी अपनी सेना के साथ युद्ध के लिए निकला। उसके निकलते समय अनेक प्रकार के अपशकुन हुए, किंतु उसने उनकी परवाह नहीं की। अब इंद्र और विद्युद्ध्वज की सेना में युद्ध शुरू हो गया। चंद्रकेतु भी अपनी सेना के साथ आया। इंद्र ने उससे पूछा, "मुक्ताफलकेतु क्यों नहीं आया ?" चंद्रकेतु ने कहा, "वह मेरे पीछे आता ही होगा।" इस पर इंद्र और चंद्रकेतु ने अपने अलग-अलग रथ उसे लेने के लिए भेजे। उधर पिता को युद्ध में गया हुआ सुनकर मुक्ताफलकेतु भी चल दिया। उसके चलने पर देवताओं ने पुष्पवृष्टि की। मार्ग में उसने मेघवन नाम का पार्वती का विशाल मंदिर देखा। वह देवी को प्रणाम करने अंदर गया। उसी समय गंधर्वराज पद्मशेखर पुत्री पद्मावती अपनी सखियों के साथ पार्वती की पूजा करने वहां आई। वह मंदिर के निकट एक भव्य तालाब में स्नान करने के लिए प्रविष्ट हुई। तभी दो राक्षसियां उसे उठाकर आकाश में ले गईं। यह देखकर इसकी सखियां रोने-चिल्लाने लगी। उसी समय पार्वती की पूजाकर मुक्ताफलकेतु मंदिर से बाहर निकल रहा था। स्त्रियों का चिल्लाना सुनकर वह उनके पास गया। उसने भी आकाश में पद्मावती को ले जाती हुई राक्षसियों को देखा। इस पर मुक्ताफलकेतु ने आकाश में जाकर और राक्षसियों को मारकर पद्मावती को बचाया। पृथ्वी पर आकर दोनों एक-दूसरे के प्रेम-पाश में पड़ गये। मुक्ताफलकेतु ने उसकी सखियों से पूछा, "यह कौन है ?" सखियों ने पद्मावती का परिचय दिया और कहा, "इसका विवाह विद्याधरों के

स्वामी चंद्रकेतु के पुत्र मुक्ताफलकेतु के साथ होगा। वह इंद्र का सहायक बन कर विद्युद्ध्वज को मारने गया है। यह अपने भावी पति तथा पिता की विजय की कामना से पार्वती की पूजा करने आई है।" यह सुनकर मुक्ताफलकेतु के नौकरों ने पद्मावती से कहा, "देवि! सौभाग्य से वह आपके भावी पति यही हैं।" यह जानकर वे दोनों ही बहुत प्रसन्न हुए। उसी समय इंद्र और चंद्रकेतु के दूत वहां आकर मुक्ताफलकेतु से बोले, "'आप शीघ्र चलिये। इंद्र ने आपको बुलाया है। राक्षसों के साथ युद्ध आरंभ हो गया है।" वह तुरंत उनके साथ चला गया। युद्धस्थल में उसको आया हुआ देखकर सब दैत्य उसीसे युद्ध करने दौड़े। उसने उन सबको तनिक सी देर में मार भगाया। तब विद्युद्ध्वज स्वयं युद्ध करने आया। दोनों में घमासान युद्ध होने लगा। चौबीस दिन तक लगातार वह युद्ध होता रहा। पच्चीसवें दिन दोनों ओर की लगभग सारी सेना के नष्ट होने पर मुक्ताफलकेतु और विद्युद्ध्वज का द्वंद्व युद्ध शुरू हुआ, जिसमें अनेकानेक अस्त्रों का प्रयोग किया गया। अंत में विद्युद्ध्वज आकाश में उड़कर माया-युद्ध करने लगा, तब मुक्ताफलकेतु ने अभेद्य और अचूक मंत्रों से अभिषिक्त ब्रह्मास्त्र उस पर फेंका। वह तुरंत निष्प्राण होकर पृथ्वी पर आ गिरा। उसके मारे जाने पर देवताओं ने पुष्पवृष्टि की। अपने-अपने आभूषण मुक्ताफलकेतु को पहनाये और बड़ा उत्सव मनाया। देवताओं को अपने अधिकार फिर प्राप्त हो गये। तब गंधर्वराज पद्मशेखर ने अपनी पुत्री पद्मावती मुक्ताफलकेतु को देने की इच्छा से ब्रह्मा की ओर साभिप्राय दृष्टि से देखा। उसका आशय समझ कर ब्रह्मा ने कहा, "अभी थोड़ा-सा काम और शेष है, कुछ दिन और प्रतीक्षा करो।"

इसके बाद मुक्ताफलकेतु पिता के साथ राजधानी में आ गया। लेकिन पद्मावती के बिना उसे सब कुछ व्यर्थ लगता था।

: ४ :

## मुक्ताफलकेतु को शाप

दैत्यों का विनाश हो जाने पर गंधर्वराज पद्मशेखर अपने नगर में लौटा। वहां आकर उसे पता चला कि उसकी पुत्री पद्मावती उसकी विजय के लिए पार्वती

के आश्रम में जाकर तप कर रही है। उसने पद्मावती को वहां से बुलवाया। पद्मावती ने आकर पिता के चरणों की वंदना की और पिता ने उसे मुक्ताफलकेतु को पति रूप में प्राप्त करने का आशीर्वाद दिया। उसके मुख से मुक्ताफलकेतु के शौर्य और पराक्रम की कथा सुनकर पद्मावती उससे मिलने के लिए बेचैन हो उठी। मन बहलाने के लिए वह नगर के उपवन में चली गई, किंतु वहां के प्राकृतिक सौंदर्य में उसकी वियोगाग्नि शांत होने की अपेक्षा और अधिक उद्दीप्त हो गई। फिर उसने अपनी विद्या के प्रभाव से सामग्री एकत्रित करके मुक्ताफलकेतु का सुंदर चित्र बनाया और उससे बात-चीत करती हुई रोने लगी। तभी उसकी सखी मनोहारिका उसे ढूंढती हुई वहां आ गई और छिपकर उसका प्रलाप सुनने लगी। उसे अत्यधिक बेबस देखकर मनोहारिका ने उसे बहुत समझाया, परंतु पद्मावती बेसुध थी। वह बोली, "सखि! मैं उनके बिना एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकती, मैं क्या करूं? यदि तुम मेरा कल्याण चाहती हो, तो उन्हें ही शीघ्र यहां ले आओ। उनके यहां आने पर मेरे पिता स्वयं उनसे मेरा विवाह कर देंगे। इसलिए तुम अभी चली जाओ।" मनोहारिका उसे सांत्वना देकर चंद्रपुर पहुंची। वहां मुक्ताफलकेतु को ढूंढ़ती हुई वह नगर के एक बगीचे में पहुंची। उसने देखा कि पारिजात के पेड़ के नीचे फूलों की शैया पर वह लेटा हुआ है और उसका मित्र संयतक उसके पास बैठा है। मनोहारिका ने छिपकर उनकी बातचीत सुनी। मुक्ताफलकेतु पद्मावती के वियोग में बेचैन होकर अपनी वियोग-गाथा संयतक को सुना रहा था। उसे इस प्रकार पद्मावती के वियोग में बेचैन देखकर मनोहारिका ने उसके पास जाकर कहा, "मैं पद्मावती के पास से ही आई हूं और वह भी आपके वियोग में पीड़ित है।" यह सुनकर मुक्ताफलकेतु बहुत प्रसन्न हुआ। उसने ब्रह्मा का दिया हुआ अपने सिर का चूड़ामणि पद्मावती के लिए और इंद्र का दिया हुआ गले का हार मनोहारिका के लिए देकर कहा, "मैं आज ही पार्वती के मंदिर में पहुंच जाऊंगा। तुम भी अपनी सखी को वहीं ले आना।" मनोहारिका ऐसा ही करने की बात कहकर चली गई।

इसी बीच में दैवयोग से पार्वती के उस मंदिर में एक तपोधन मुनि आये और अपने शिष्य दृढ़व्रत को दरवाजे पर बैठाकर बोले, "मैं मंदिर में जाकर समाधि लगाऊंगा, तुम इस बीच में किसीको भी अंदर मत आने देना।" यह कहकर वह अंदर चले गये और शिष्य मंदिर के दरवाजे पर बैठ गया। उसी समय मुक्ताफलकेतु भी अपने मित्र के साथ वहां पहुंच गया। मुनि के शिष्य ने उनको

अंदर जाने से रोक दिया। मुक्ताफलकेतु ने सोचा कि कहीं पद्मावती पहले से ही आकर अंदर न बैठ गई हो। इसलिए वह मुनि के शिष्य से छिपकर अपने मित्र के साथ अंदर चला गया और मंदिर में बैठकर पद्मावती की प्रतीक्षा करने लगा। उधर तपोधन मुनि अपने शिष्य से बिना कहे ही पूजा समाप्त करके अपने मठ में चले गये थे। अपने गुरु को आने में बहुत विलंब होता हुआ देखकर दृढ़व्रत अंदर गया। वहां उसने अपने गुरु को न पाकर, उन दोनों को बैठे हुए पाया। इस पर उसने मुक्ताफलकेतु से कहा, "तुम दोनों ने मेरे गुरु को यहां से भगा दिया है, इसलिए मैं तुम्हें शाप देता हूं कि तुम दोनों मनुष्य-योनि को प्राप्त हो।" इसी समय पद्मावती भी अपनी सखी के साथ वहां आ गई। मुक्ताफलकेतु ने कहा, "प्रिये! तुम्हारा मनोरथ सिद्ध होकर भी पूरा न हो सका।" और उसने पद्मावती को सारा हाल बताया। इसके बाद वे सब शाप देनेवाले शिष्य के गुरु के पास गये और अपना हाल बताकर शाप का अंत पूछा। मुनि ने कहा, "मेरे इस मूर्ख शिष्य ने बिना सोचे-समझे ही जल्दी में तुम्हें शाप दे दिया है। मैं तो स्वयं ही उठकर चला आया था। किंतु यह तो शाप देने का बहाना-मात्र है। तुम्हें अभी मनुष्न-योनि में जाकर देव-कार्य सिद्ध करना है। इसके बाद तुम फिर इसी योनि को प्राप्त करके इसी पद्मावती को अपनी पत्नी बनाकर सुख भोगोगे। मनुष्य-योनि में जाकर जब तुम इस पद्मावती को सकाम दृष्टि से देखोगे, तभी तुम्हारे शाप का अंत होगा।"

यह सुनकर पद्मावती ने आंखों में आंसू भरकर मुनि से कहा, "मैं तो आर्यपुत्र के बिना जीवित नहीं रह सकती।" मुनि ने कहा, "तुम तपस्या करती हुई थोड़े दिन और प्रतीक्षा करो, यह शीघ्र ही शाप से मुक्त होकर तुमसे विवाह करेंगे। फिर तुम दोनों विद्याधरों और राक्षसों के साम्राज्य को दस कल्पों तक भोगोगे।" मुक्ताफलकेतु ने मुनि से प्रार्थना की, "हे मुनि! मनुष्य-योनि में जाकर मुझे इसके वियोग का कष्ट अनुभव न हो। मैं दूसरी स्त्री में अनुरक्त न होऊं और भगवान शिव में सदा मेरी भक्ति रहे।" मुनि ने उसे आशीर्वाद दिया, "ऐसा ही हो।"

फिर पद्मावती ने दुखित होकर उस शिष्य को शाप दिया, "मूर्ख! तूने व्यर्थ ही आर्यपुत्र को शाप दिया है, इसलिए मनुष्य-योनि में तू ही इनका वाहन बनकर रहेगा।" इसके बाद मुनि अपने शिष्य के साथ अदृश्य हो गये और मुक्ताफलकेतु अपने मित्र के साथ अपनी राजधानी में लौट गया। पद्मावती भी सखी के साथ अपने घर लौट गई। वहां आकर वह तीनों काल शिव-पार्वती की पूजा करती हुई तप

करने लगी। जब उसके माता-पिता को इस शाप का पता चला, तो वे बहुत दुखी हुए। कुछ समय पश्चात फिर पद्मावती ने सिद्धीश्वर क्षेत्र में जाकर तपस्या करने का निश्चय किया। तब उसकी माता कुवलयावती ने राजा से कहा, "इसे तो यह तप करना ही था। इसका कारण है। एक बार मैं इसके साथ शिवपुर में भगवान शिव के दर्शन करने गई। वहां देवप्रभा नाम की सिद्धराज की कन्या अभीष्ट पति प्राप्त करने के लिए बड़ा कठोर तप कर रही थी। उसे देखकर यह पद्मावती हंसकर बोली, 'तुम्हें पति के लिए तप करते हुए लज्जा नहीं आती ?' यह सुनकर उस सिद्धकन्या ने इससे कहा, 'मूर्ख, तू मुझे क्या हंसती है, तुझे भी इसी प्रकार पति की प्राप्ति के लिए तप करना होगा।' सो, इसे पति की प्राप्ति के लिए तप करना ही पड़ेगा। विधि की बात कौन टाल सकता है ?" यह सुनकर उसके माता-पिता ने उसे तप की अनुमति दे दी और पद्मावती सिद्धीश्वर क्षेत्र में जाकर तप करने लगी।

: ५ :

## मुक्ताफलकेतु मनुष्य-रूप में

मुक्ताफलकेतु भी अपने नगर में पहुंचकर शाप के फल की प्रतीक्षा करता हुआ शिवजी की पूजा में लग गया। उस समय पूर्व दिशा में देवसम नाम का एक नगर था, जिसका मेरुध्वज नाम का प्रतापशाली राजा था। उसने देवताओं और राक्षसों के युद्ध में इंद्र की सहायता की थी। समस्त सुख-संपन्न होते हुए भी उसके हृदय में दो चिंताएं थीं। एक तो यह कि उसके कोई पुत्र न था; और दूसरी यह कि पहले देवासुर-संग्राम में हारकर भागे हुए राक्षस कभी-कभी धार्मिक कार्यों में विघ्न पैदा करते रहते थे। एक बार इंद्र ने उसे वर्षारंभ के उत्सव में बुलाया। वहां उसे चिंताकुल देखकर इंद्र ने उसके मन की बात जान ली और कहा, "राजन ! आपके दुखी होने की आवश्यकता नहीं है। शीघ्र ही आपके दो पुत्र उत्पन्न होंगे। बड़ा पुत्र मुक्ताफलध्वज शिवजी का अंशावतार होगा और दूसरा उनका गणावतार मलयध्वज होगा। दोनों भाई तपोधन मुनि से विद्याएं, कामरूप वाहन तथा अनेक अस्त्र प्राप्त करेंगे। बड़ा भाई अंत में पाशुपत अस्त्र पाकर अजेय हो जायेगा और सारे राक्षसों

को मारकर पृथ्वी को वश में कर लेगा। अभी मैं आपको आकाश में विचरण करनेवाले कांचनगिरि और कांचनशेखर नाम के दो हाथी तथा बहुत से अस्त्र दे रहा हूं, इन्हें आप स्वीकार कीजिये।"

यह कहकर इंद्र ने उसे दो हाथी और अस्त्र दिये। उन्हें लेकर मेरुध्वज अपने नगर में लौट आया। फिर वह तपोधन मुनि के आश्रम में गया और उनसे इंद्र का आदेश कहा। मुनि ने राजा से कहा, "आप पत्नी सहित शिवजी का व्रत और पूजन करें।" राजा ने तप करके शिवजी को संतुष्ट किया और यह वर पाया कि उसके शीघ्र ही राक्षसों का विनाश करनेवाले, और कभी भी परास्त न होनेवाले दो पुत्र पैदा होंगे। राजा खुशी-खुशी अपने नगर लौट आया। यथासमय उसके एक पुत्र पैदा हुआ और उसका नाम मुक्ताफलध्वज रखा गया। एक साल बाद दूसरा पुत्र उत्पन्न हुआ और उसका नाम मलयध्वज रखा गया। संयतक ने शाप के कारण मेरुध्वज के मंत्री के घर पुत्र रूप में जन्म लिया और उसका नाम महाबुद्धि रखा गया। वे दोनों राजकुमार मंत्री के पुत्र के साथ बढ़ने लगे। आठ वर्ष बीतने पर मुनि तपोधन ने आकर उन बच्चों का यज्ञोपवीत संस्कार किया। सोलह वर्ष की अवस्था तक उन्होंने सारी विद्याओं, कलाओं और अस्त्र-विद्या में निपुणता प्राप्त कर ली। मेरुध्वज ने तपोधन को दक्षिणा देनी चाही, किंतु मुनि ने कहा, "बस मेरी यही दक्षिणा है कि समय पड़ने पर आप उन्हें अपने साथ लेकर मेरे यज्ञ की रक्षा करें।" राजा ने उनकी बात स्वीकार कर ली। तब मुनि ने कहा, "जब मैं अपने शिष्य दृढ़व्रत को पक्षी के रूप में दूत बनाकर आपके पास भेजूं, तब आप मुक्ताफलध्वज को उस पर चढ़ाकर भेज दें। आप और मलयध्वज इंद्र के द्वारा दिये गये हाथियों पर चढ़कर आयें।"

अपने आश्रम में लौटकर उन्होंने यज्ञ की तैयारी आरंभ कर दी। राक्षस भी उत्पात मचाने के लिए पाताल से आ गये। तब मुनि ने अपने शिष्य दृढ़व्रत को पक्षी बनाकर राजा मेरुध्वज के पास भेजा। जैसा मुनि कह गये थे, उसी तरह वे सब आश्रम में पहुंचे। तुरंत उनकी और राक्षसों की सेनाओं में युद्ध आरंभ हो गया। देखते-देखते मुक्ताफलध्वज ने सारे राक्षसों को मार भगाया। तब उनका स्वामी त्रैलोक्यमाली क्रुद्ध होकर युद्ध करने आया और दोनों सेनाओं में पुनः युद्ध आरंभ हो गया। मुक्ताफलध्वज और त्रैलोक्यमाली ने परस्पर अनेक अस्त्रों का प्रयोग किया। फिर एक-दूसरे ने विरोधी अस्त्रों से उन्हें काट भी डाला। अंत

में मुक्ताफलध्वज ने मोहनास्त्र का प्रयोग करके त्रैलोक्यमाली और शेष राक्षसों को मोहित करके वासनास्त्र से बांध लिया। मुनि तपोधन ने कहा, "इनको मारो मत, बल्कि देवसम के पास श्वेतशैल की गुफा में रख दो।" इस पर राजा मेरुध्वज ने राक्षसों से कहा, "मैं तुमको मारूंगा नहीं। तुम मुक्ताफलध्वज और मलयध्वज के शासन में रहो।" कुछ राक्षसों ने राजा की बात मान ली और जिन्होंने नहीं मानी, उन्हें राजा ने श्वेत पर्वत की गुफा में ले जाकर बंद कर दिया। इसके बाद उसने अपने पुत्रों से कहा, "मैं तो यहीं यज्ञ की रक्षा के लिए ठहर जाता हूं। तुम दोनों इन सैनिकों के साथ पाताल में जाकर वहां के निवासियों को वश में करके फिर यहीं लौट आओ।"

पाताल में जाकर दोनों भाइयों ने समस्त राक्षसों को वश में कर लिया। एक दिन उन्होंने त्रैलोक्यमाली की पत्नी स्वयंप्रभा को अपने पति के कल्याण के लिए तथा त्रैलोक्यप्रभा और त्रिभुवनप्रभा नाम की उसकी दो कन्याओं को अपने पिता के कल्याण के लिए तप करते देखा। कुछ दिन तक पाताल में रहकर वे दोनों भाई अपने पिता के पास तपोधन के आश्रम में चले आये। तभी मुनि का यज्ञ भी समाप्त हो गया और देवता अपने-अपने स्थानों को चले गये। इंद्र पहले तो राजा के नगर में गये, फिर उसे स्वर्ग ले गये। वहां से लौटकर राजा मेरुध्वज ने मुक्ताफलध्वज से कहा, "अब समय आ गया है, तुम्हें विवाह कर लेना चाहिए।" मुक्ताफलध्वज ने कहा, "मेरी इच्छा विवाह करने की नहीं है। मैं तो शिवजी को प्रसन्न करने के लिए तप करना चाहता हूं। हां, मलयध्वज को विवाह कर लेना चाहिए।" मलयध्वज ने कहा, "मैं आपके विवाह किये बिना विवाह नहीं करूंगा।" जब दोनों ने विवाह करना स्वीकार न किया, तो राजा उस समय चुप हो गया। फिर एक बार वह सबके साथ हाटकेश्वर में शिवजी की पूजा करने गया। वहां उसने पापरिपु-तीर्थ के किनारे वन के अंदर उठते धुएं को देखा। पता चला कि वहां त्रैलोक्यमाली की पत्नी और पुत्रियां एक साथ तप कर रही हैं। राजा अपनी पत्नी तथा पुत्रों के साथ वहां गया और देखा कि त्रैलोक्यमाली की पत्नी अपनी पुत्रियों के साथ आग में जल-मरने के लिए प्रस्तुत है। पुत्रियों ने आग की पूजा करके कहा, "शिवजी ने स्वप्न में हमें यह आदेश दिया है कि तुम दोनों मेरुध्वज के पुत्र मुक्ताफलध्वज और मलयध्वज की पत्नियां बनोगी, किंतु हमारा पिता उनके साथ विवाह करने पर राजी नहीं है। इसलिए हे अग्निदेव! यदि हम

इस जन्म में उन दोनों को अपना पति न बना पायें, तो अगले जन्म में वे अवश्य ही हमारे पति बनें।' राजा ने उनके पास जाकर और अपना परिचय देकर कहा, "मैं तुम्हारा कष्ट दूर करूंगा। तुम मरो मत और अपने महल में जाओ।" तब त्रैलोक्यमाली की पत्नी स्वयंप्रभा ने कहा, "आपकी आज्ञा से हमने मरने का निश्चय तो छोड़ दिया, किंतु जब तक आप मेरे पति को कारागार से मुक्त न करेंगे, तब तक हम अपने महल में नहीं जायेंगीं। आप मेरे पति को बंधन से मुक्त कर दीजिये और मैं आपको विश्वास दिलाती हूं कि वह हमेशा आपकी इच्छा से ही राज्य करेंगे; यदि आप चाहेंगे तो राज्य भी आपको दे देंगे। इन सब बातों की जिम्मेदारी मैं लेती हूं।" राजा ने कहा, "मैं जैसा उचित समझूंगा, करूंगा; किंतु तुम अपना वायदा याद रखना।"

यह कहकर राजा हाटकेश्वर की पूजा करने चला गया। जब त्रैलोक्यमाली की दोनों लड़कियों ने राजा मेरुध्वज के पुत्रों को देखा, तो वे उन पर रीझ गईं। मुक्ताफलध्वज धैर्यशाली था, वह विचलित नहीं हुआ। किंतु मलयध्वज छोटी कन्या त्रिभुवनप्रभा को देखकर व्याकुल हो गया।

कुछ दिन बाद मेरुध्वज अपने पुत्रों तथा रानी के साथ अपने नगर में लौट आया। वह जान गया कि मलयध्वज छोटी कन्या के लिए बेचैन है, किंतु त्रैलोक्यमाली अपनी पुत्री का विवाह करने को तैयार नहीं है। इस विषम समस्या को सुलझाने के लिए वह बड़े असमंजस में पड़ गया।

## : ६ :

# शाप-मुक्ति

नगर लौटने के बाद मेरुध्वज ने अपनी रानी से कहा, "यदि मेरे पुत्रों का विवाह त्रैलोक्यमाली की पुत्रियों से नहीं हुआ, तो मैंने कुछ भी न किया। छोटा पुत्र तो त्रिभुवनप्रभा के वियोग में सूखता जा रहा है। इसके लिए मैंने त्रैलोक्यमाली की पत्नी से उसे छोड़ने की प्रतिज्ञा करली है, किंतु अभी तक इसलिए नहीं छोड़ा है कि कहीं वह बाद में अपनी पुत्रियों का विवाह मेरे पुत्रों से करने से इन्कार न कर दे। इसके लिए अब मुझे कोई शांतिपूर्ण उपाय सोचना चाहिए।" अपनी पत्नी से यह बात कहकर राजा ने प्रतीहार से कहा, "तुम मेरी ओर से त्रैलोक्यमाली से

जाकर कहो कि मैंने उसे बहुत कष्ट दिया है । अब यदि वह अपनी पुत्रियों का विवाह मेरे पुत्रों से कर दे, तो मैं उसे छोड़ दूंगा और उसका राज्य भी लौटा दूंगा ।" प्रतिहार ने त्रैलोक्यमाली के पास जाकर राजा का संदेश सुनाया, किंतु उसने अपने छूटने से पूर्व कोई वायदा करने से इन्कार कर दिया । इधर त्रैलोक्यमाली की पत्नी स्वयंप्रभा ने अपनी दूती इंदुमती को मेरुध्वज की रानी के पास यह संदेश लेकर भेजा कि आपके पति ने अभी तक मेरे पति को नहीं छोड़ा है । जब तक आप उन्हें छोड़ नहीं देते, तब तक भला वह कैसे अपनी कन्याएं दे सकते हैं ? यदि आप छोड़ देंगे, तो वह उपकार मानकर अवश्य अपनी कन्याएं देने पर राजी हो जायेंगे । रानी ने राजा से यह कहा । राजा ने उत्तर दिया, "यदि त्रैलोक्यमाली की आज्ञा से स्वयंप्रभा आदि राक्षस-स्त्रियां अपने पति के चरणों की शपथ खाकर मुझे यह लिखकर दे दें और पातालवासियों की जमानत कर दें कि वे मेरे आधीन रहेंगे, कोई उपद्रव नहीं करेंगे और हाटकेश्वर का जल पियेंगे, तो मैं उन्हें छोड़ सकता हूं ।" स्वयंप्रभा ने यह शर्त स्वीकार कर ली । तब मेरुध्वज ने त्रैलोक्यमाली को छोड़ दिया और अपने घर लाकर सम्मानपूर्वक उसका राज्य लौटा दिया । त्रैलोक्यमाली पाताल में जाकर राज्य करने लगा । कुछ दिन बाद वह विवाह का प्रस्ताव लेकर राजा मेरुध्वज के पास आया, लेकिन मुक्ताफलध्वज ने विवाह करना अस्वीकार कर दिया । उसने वन में जाकर शिवजी की पूजा करने की इच्छा प्रकट की । बड़े भाई के विवाह न करने पर छोटे भाई मलयध्वज ने भी विवाह करना स्वीकार न किया । यह सुनकर त्रैलोक्यमाली अपने घर लौट गया । जब दोनों कन्याओं को इस बात का पता चला, तो वे निराहार रहकर शिवजी की आराधना करने लगीं और यह प्रतिज्ञा की कि यदि बारह दिन में भगवान हमारे विवाह की व्यवस्था न करेंगे, तो हम अग्नि में जलकर मर जायेंगी । पुत्रियों का यह निश्चय जानकर उनके माता-पिता भी भोजन छोड़कर शिवजी की पूजा करने लगे । उधर इंदुमती की दासी से यह समाचार पाकर राजा मेरुध्वज और उसकी पत्नी ने भी खाना-पीना छोड़ दिया । माता और पिता की सहानुभूति म मुक्ताफलध्वज और मलयध्वज भी निराहार रहकर शिवजी की भक्ति करने लगे । इस प्रकार दोनों राजगृहों में संकट उपस्थित हो गया । छः दिन बीत जाने पर सातवें दिन सुबह उठकर मुक्ताफलध्वज ने अपने मित्र महाबुद्धि से, जो पूर्वजन्म में संयतक था, कहा, "मित्र, मैंने आज रात स्वप्न में यह देखा कि मैं अपने इस कामरूप वाहन पर चढ़-

कर यहां से बहुत दूर सुमेरु पर्वत के पास शिवजी के एक मंदिर में घुस गया। वहां जाकर मैंने तपस्या करती हुई एक दिव्य कन्या को देखा। उसे देखते ही मेरा हृदय उसकी ओर आकृष्ट हो गया और मैं अतृप्त नयनों से उसे देखता रहा। इतने में ही मेरी आंख खुल गई। सो, मैं उस कन्या को प्राप्त करने के लिए जाता हूं। यदि मैं उसे नहीं पा सकूंगा, तो अग्नि में जलकर मर जाऊंगा।" और वह अपने मित्र के साथ उस कामरूप वाहन पर चढ़कर सुमेरु पर्वत पर पहुंचा और शिवजी के मंदिर में प्रणाम करके समीप ही सिद्धोदक नाम के तीर्थस्थान में स्नान करने के लिए चला गया। उधर सब लोगों को इस बात का पता लगा तो वे चिंतित हुए। उन्होंने निश्चय किया कि यदि वह आज शाम तक नहीं लौटेगा, तो कल सब मिलकर वहीं उसीके पास चलेंगे।

उधर पद्मावती को भी स्वप्न दिखाई दिया कि अब तुम्हारा कष्ट दूर हो गया है और तुम्हारा पति शीघ्र ही मिलनेवाला है। अतः वह भी अपनी सखी के साथ उसी स्थान पर चली गई। वहां दूर से ही सिद्धोदक में स्नान करते हुए मुक्ताफलध्वज को उसने देखा। विस्मित होकर उसने अपनी सखी से कहा, "यह आदमी तो बिल्कुल मेरे पति जैसा है।" सखी ने कहा, "यह तुम्हारे पति के समान ही नहीं वरन साक्षात तुम्हारा ही पति है। इसका मित्र भी बिल्कुल संयतक ही है।" वे दोनों शिवजी का पूजन करके मुक्ताफलध्वज का वृत्तांत जानने के लिए छिपकर बैठ गईं। इसी बीच में मुक्ताफलध्वज स्नान करके शिवजी का पूजन करने के लिए उस मंदिर में आया और अपने मित्र महाबुद्धि से बोला, "यहां के सब स्थान वैसे ही हैं जैसे मैंने स्वप्न में देखे थे, किंतु वह कन्या यहां दिखाई नहीं देती। मैं उसे न पाकर निश्चय ही अपना शरीर त्याग दूंगा।" उन दोनों की बातें सुनकर छिपी हुई सखी ने पद्मावती से कहा, "निश्चित ही यह तुम्हें स्वप्न में देखकर यहां आया है और तुम्हें पाये बिना प्राणों को त्यागना चाहता है। चलो, हम दोनों छिपकर ही देखें कि अब ये आगे चलकर क्या करते हैं?"

मुक्ताफलध्वज शिवजी की पूजा करके बाहर निकला और भक्तिपूर्वक अपने मित्र के साथ प्रदक्षिणा करने लगा। तभी उन दोनों को अपनी पूर्वजन्म की जाति का स्मरण हो आया। वे दोनों पूर्वजन्म का वृत्तांत याद करके प्रसन्नतापूर्वक बातचीत कर रहे थे कि इतने में उन्हें पद्मावती आती हुई दिखाई दी। उसे देखते ही मुक्ताफजध्वज हर्ष से प्रफुल्लित होकर बोला, "यह वही पद्मावती है, जिसे मैंने

स्वप्न में देखा था।" और वह उसके पास जाकर कहने लगा, "मैं तुम्हारा वही प्रिय मुक्ताफलकेतु हूं, जो दृढ़व्रत के शाप के कारण मनुष्य-योनि में आ गया था।"

लेकिन वह ज्यों ही उसकी ओर बढ़ा, वह अदृश्य हो गई। उसे वहां न पाकर मुक्ताफलध्वज मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा और होश आने पर विलाप करने लगा। उसके मित्र ने उसे धीरज बंधाकर कहा, "तुमने दैत्यराज की पुत्री त्रैलोक्यप्रभा को स्वीकार नहीं किया, उसी पाप का तुम्हें यह फल मिल रहा है।" यह सुनकर पद्मावती की सखी ने उससे कहा, "इसने पूर्व जन्म में मुनि तपोधन से यह वर मांगा था कि मैं पद्मावती को छोड़कर और किसी स्त्री से प्यार न करूं, इसी कारण यह त्रैलोक्यप्रभा से विवाह नहीं करना चाहता।"

मुक्ताफलध्वज भी विलाप में कहने लगा, "हे प्रिये ! हे पद्मावती ! ! तुम कहां अदृश्य हो गईं ? क्या तुम्हें याद नहीं कि मैं पूर्वजन्म में मुक्ताफलकेतु नाम का विद्याधर था। तुम्हारे ही कारण मुझे पूर्वजन्म में शाप मिला था और तुम्हारे ही कारण मैं आज मर रहा हूं ?" उसके इस विलाप को न सुनती हुई पद्मावती अपनी सखियों के साथ पार्वती के मंदिर में चली गई। मुक्ताफलध्वज भी अनुमान से वहीं चला आया और अपने मित्र से बोला, "देखो, मैंने इसी स्थान पर पद्मावती को दो राक्षसियों से बचाया था और यहीं पर तपोधन मुनि के शिष्य दृढ़व्रत ने मुझे शाप दिया था। मेरी पद्मावती के शाप से ही वह शिष्य मेरा कामचारी वाहन बना है।" यह सुनकर पद्मावती ने अपनी सखियों से कहा, "यद्यपि अब मुझे यह निश्चय हो गया है कि यही मेरे पति मुक्ताफलकेतु हैं, किंतु इनके मनुष्य शरीर में होने से मेरा इनके पास जाना उचित नहीं।" तब वह अपनी सखियों के साथ सिद्धेश्वर के मंदिर में गई और बोली, "हे शिव ! या तो मेरा इनके साथ मिलन कराओ या मैं अपना शरीर त्यागती हूं।" इसी समय मुक्ताफलध्वज भी वहीं आ गया और विलाप करने लगा। तब पद्मावती ने अदृश्य होकर उससे कहा, "हे राजपुत्र ! यद्यपि तुम मेरे पूर्व-पति हो, किंतु इस समय अन्य शरीर में होने के कारण मेरे लिए पर-पुरुष हो।" पद्मावती के ये वचन सुनकर मुक्ताफलध्वज ने अपने शरीर को आग में जला दिया। अपने मित्र को जलता हुआ देखकर महाबुद्धि भी उसके साथ जलकर मर गया। उन दोनों को जलता हुआ देखकर पद्मावती भी गले में फांसी लगाकर मरने को उद्यत हुई। तभी वहां पर तपोधन मुनि आ गये। उन्होंने पद्मावती को रोककर कहा, "बेटी, तुम मरो मत। तुम्हारा

पति तुम्हें अभी प्राप्त होगा। तुम्हारे ही तप से उसका शाप शीघ्र नष्ट हो गया है।"

इसके बाद मनुष्य शरीर के जल जाने से मुक्ताफलकेतु पहले की तरह विद्याधर बन गया और अपना पहला रूप धारण करके वह अपने मित्र के साथ वहां आ गया। उसे देखकर पद्मावती अत्यंत प्रमुदित हुई। तब उन दोनों ने शाप से मुक्त होकर मुनि के चरणों की वंदना की। अगले दिन राजा मेरुध्वज भी अपने छोटे पुत्र मलयध्वज और त्रैलोक्यमाली के परिवार के साथ मुक्ताफलध्वज को ढूंढते हुए वहां आ गया। उन सबको तपोधन मुनि ने मुक्ताफलकेतु और पद्मावती का सारा हाल सुनाया। उसी समय त्रैलोक्यप्रभा को भी अपने पूर्वजन्म का स्मरण हो आया। तब वह सिद्धों के स्वामी की पुत्री देवप्रभा थी, जिसने विद्याधरों के स्वामी मुक्ताफलकेतु को पति बनाने की कामना से तप किया था और पद्मावती के हंसने पर अपने शरीर को अग्नि में भस्म कर दिया था। यह सब स्मरण करके उसने सोचा कि जब यह राजपुत्र अपने को जलाकर आज विद्याधर योनि को प्राप्त हो गया है, तब मैं भी क्यों न इसी अग्नि में अपना शरीर भस्म कर दूं?

यह विचार कर वह भी उसी अग्नि में जल गई। तब अग्निदेव ने उसे उसका पूर्व-शरीर देकर और स्वयं प्रकट होकर मुक्ताफलकेतु से कहा, "इसने तुम्हारे लिए अपना शरीर जला डाला है, इसलिए सिद्धों के स्वामी की पुत्री इस देवप्रभा को तुम अपनी पत्नी बनाओ।" यह कहकर अग्निदेव अदृश्य हो गये। इसी समय देवताओं तथा इंद्र के साथ ब्रह्मा और विद्याधरों के स्वामी चंद्रकेतु के साथ गंधर्वराज पद्मशेखर वहां आगये। देवताओं की आज्ञा से पद्मशेखर ने पद्मावती और देवप्रभा का विवाह मुक्ताफलकेतु के साथ कर दिया। उसी समय त्रैलोक्यमाली ने भी अपनी छोटी पुत्री त्रिभुवनप्रभा मलयध्वज को दे दी। मेरुध्वज भी अपना सारा राज्य उसे देकर तपोवन में चला गया। तभी आकाशवाणी हुई: "मुक्ताफलकेतु विद्याधरों के ऐश्वर्य को भोगे और देवता अपने-अपने स्थानों को चले जायें।" यह सुनकर सब देवता अपने-अपने स्थानों को चले गये। तपोधन मुनि भी शाप से मुक्त हुए अपने शिष्य दृढ़व्रत के साथ अपने आश्रम लौट आये। इसके बाद विद्याधरों के स्वामी चंद्रकेतु ने अपना राज्य मुक्ताफलकेतु को दे दिया और स्वयं रानी के साथ तपस्या के लिए वन में चला गया।

हंसों ने यह कथा सुनाकर राजा से कहा, "इस प्रकार मुक्ताफलकेतु विद्याधरों

तथा असुरों का राज्य पाकर चक्रवर्ती बन गया और बहुत काल तक पद्मावती के साथ सुख भोगता रहा। अंत में वह भी वन में तपस्या करके शिवजी में विलीन हो गया।"

गोमुख बोला, "हंसों के मुख से इस कथा को सुनकर राजा ब्रह्मदत्त ज्ञान और दिव्य गति को पाकर सबके साथ सिद्धीश्वर क्षेत्र में गया। वहां तपस्या करते हुए शरीर त्यागकर वे सब शिवजी के गण हो गये।"

कश्यप मुनि के आश्रम-निवासी मुनियों को यह कथा सुनाकर नरवाहनदत्त उनसे बोला, "गोमुख से इस कथा को सुनकर मदनमंचुका के वियोग में व्याकुल मेरे हृदय को कुछ शांति मिली।"

राजा नरवाहनदत्त से यह कथा सुनकर गोपालक तथा अन्य ऋषि बहुत संतुष्ट हुए।

# अठारहवां खंड

## : १ :

## विषमशील

असित पर्वत पर कश्यप मुनि के आश्रम में रहते समय ही एक बार नरवाहन-दत्त ने मुनियों से कहा :

"मदनमंचुका से बिछुड़कर जब मैं बहुत व्याकुल हुआ, तो वेगवती मुझ पर अनुरक्त होकर अपनी विद्या के प्रभाव से मुझे ले आई और मेरे प्राणों की रक्षा की। मदनमंचुका के वियोग में एक बार वन में जाकर शरीर त्यागने के लिए उद्यत हुआ, तभी कण्व मुनि घूमते हुए वहां आ गये और मुझे अपने आश्रम में ले गये। वहां अपने योगबल से मेरा दुख जानकर मुझसे बोले, 'तुम सोमवंश में उत्पन्न होकर भी इतने अधीर हो रहे हो? धीरज रखो, तुम्हें तुम्हारी प्रिया अवश्य मिलेगी, क्योंकि संसार में मनुष्य का मिलन असंभव नहीं होता। इस संबंध में मैं तुम्हें विक्रमादित्य की कथा सुनाता हूं।'

यह कहकर राजा नरवाहनदत्त ने मुनियों को कण्व मुनि द्वारा सुनाई गई राजा विक्रमादित्य की यह कथा सुनाई :

प्राचीन काल में उज्जयनी नगरी में महेंद्रादित्य नाम का प्रतापी राजा था। उसकी रानी का नाम सौम्यदर्शना, मंत्री का नाम सुमति और प्रतीहार का नाम वज्रायुध था। राजा महेंद्रादित्य को समस्त सुख प्राप्त होते हुए भी पुत्र का सुख प्राप्त न था। इसके लिए उसने अनेक व्रत-पूजन किये। इसी बीच में म्लेच्छों के उपद्रवों से दुखी होकर देवता शिवजी के पास पहुंचे और बोले, "आपके और विष्णु के द्वारा मारे हुए राक्षस पृथ्वी पर म्लेच्छ-रूप धारण करके हमारी यज्ञादि क्रियाओं में विघ्न उपस्थित करते हैं। इसलिए आप किसी ऐसे वीर पुरुष को पृथ्वी पर भेजिये, जो उनका विनाश करे।" शिवजी ने उन्हें शीघ्र ही इसका उपाय करने का आश्वा-सन दिया। उनके चले जाने पर उन्होंने अपने गण माल्यवान को आज्ञा दी, "तुम

उज्जयनी में राजा महेंद्रादित्य के घर जाकर वीर पुत्र के रूप में जन्म ग्रहण करो। वह राजा मेरा ही अंश है और उसकी पत्नी पार्वती का अंश है। उनके घर जन्म लेकर तुम देवताओं का कार्य सिद्ध करोगे और वैदिक धर्म में विघ्न डालनेवाले म्लेच्छों का विनाश करके तुम मेरे प्रसाद के सातों द्वीपों के स्वामी बनोगे। यक्ष, राक्षस और बेताल भी तुम्हारे वश में रहेंगे और तुम मानवीय भोगों को भोगकर फिर मेरे ही पास आ जाओगे।" शिवजी की यह आज्ञा सुनकर माल्यवान वहां से अदृश्य हो गया। उसी समय शिवजी ने राजा महेंद्रादित्य को रात में स्वप्न में दर्शन देकर कहा, "राजन ! मैं तुमसे संतुष्ट हूं। तुम्हारे एक ऐसा पुत्र होगा, जो अपने पराक्रम से सारी पृथ्वी को जीतेगा और अंत में यक्ष, राक्षस, पिशाच आदि को वश में करके म्लेच्छों का विनाश करेगा। उसका नाम विषमशील होगा, किंतु शत्रुओं में विक्रम प्रदर्शित करने के कारण उसका नाम विक्रमादित्य ही पड़ेगा।"

कुछ समय बाद भगवान शिवजी ने जैसा कहा था, राजा महेंद्रादित्य के घर वैसा ही एक पुत्र उत्पन्न हुआ। थोड़े ही दिनों में मंत्री सुमति के घर महामति नाम का पुत्र, वज्रायुध प्रतीहार के घर भद्रायुध नाम का पुत्र और महीधर पुरोहित के घर श्रीधर नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। राजपुत्र विक्रमादित्य इन तीनों के साथ बढ़ने लगा। यज्ञोपवीत आदि संस्कारों ने अनंतर उसने गुरुओं से समस्त विद्याएं और कलाएं सीख लीं। शस्त्रास्त्र विद्या में भी वह निपुण होगया। तब बहुत से राजाओं ने उसके साथ अपनी पुत्रियों का विवाह कर दिया। उसके युवा होने पर राजा महेंद्रादित्य उसे राजगद्दी सौंपकर अपनी रानी के साथ काशी में जाकर भगवान शिव की आराधना करने लगा। राज्य पाकर विक्रमादित्य ने अपने पराक्रम से बेताल, राक्षस आदि को अपने वश में कर लिया और उसका प्रताप संपूर्ण दिशा में व्याप्त हो गया।

एक बार जब विक्रमादित्य अपने दरबार में बैठा हुआ था, तो अनंगदेव नामक एक दूत ने आकर कहा, "राजन ! मैं आपकी आज्ञा पाकर सेनापति विक्रमशक्ति के पास गया था। उसने आपके प्रताप से मध्यदेश, सौराष्ट्र, अंग, बंग, काश्मीर आदि प्रदेशों को जीतकर वहां के दुर्गों को अपने वश में कर लिया है। अब वह म्लेच्छों का विनाश करके बहुत से राजाओं के साथ लौट रहा है। एक दो दिन में आने ही वाला है।" यह समाचार सुनकर राजा विक्रमादित्य ने उस दूत को इनाम दिया और पूछा, "इस बीच तुमने क्या-क्या कौतुक देखे, यह बताओ।" उसने

कहा, "मैं आपकी आज्ञा पाकर यहां से विक्रमशक्ति के पास पहुंचा। वहां एक दिन सिंहलद्वीप के राजा का एक दूत आया और बोला, 'आपके पास राजा का विश्वासपात्र अनंगदेव नाम का दूत आया है, उसे आप शीघ्र ही हमारे राजा के पास भेज दें, उन्हें उससे आपके राजा के कल्याण की ही एक बात कहनी है।' तब मैं उस दूत के साथ सिंहलद्वीप के राजा वीरसेन के पास पहुंचा। राजा ने ने मेरा बड़ा सत्कार किया और अपने मंत्रियों के सामने मुझसे कहा, 'मेरी पुत्री मदनलेखा तुम्हारे राजा विक्रमादित्य के अनुरूप है। इसका पति बस वही बन सकता है। मैंने इसीलिए तुम्हें बुलाया है कि तुम अपने राजा से मेरी ओर से निवेदन करो कि वह इस कन्या को स्वीकार करलें। मेरा दूत तुम्हारे साथ जायगा, मैं पीछे से अपनी कन्या को भी उनके पास भेज रहा हूं।' यह कहकर उसने, धवलसेन नाम के दूत को मेरे साथ भेज दिया और हम दोनों जहाज पर चढ़कर चल दिये। वहां समुद्र के बीच में एक टापू पर हमने अद्भुत रूपवाली दो कन्याएं देखीं, जिसमें से एक श्याम रंग की और दूसरी चंद्रमा की भांति गोरे रंग की थी। वे अपने-अपने रंग के अनुकूल उचित वस्त्र और आभूषण धारण किये हुए थीं तथा हरिण के बच्चे के साथ खेल रही थीं। उन्हें देखकर हम दोनों बड़े विस्मित हुए औ सोचने लगे कि यह स्वप्न है या माया? इसी बीच में भयंकर तूफान के आ जाने से हमारा जहाज डूब गया। उसमें बैठे हुए सभी मनुष्य भी डूब गये। किंतु हम दोनों को वे कन्याएं अपनी भुजाओं में उठाकर किनारे पर ले आईं। फिर तसल्ली देकर एक गुफा में ले गईं। वहां जाकर हमने एक दिव्य वन देखा, किंतु न वह समुद्र ही, न वह हरिण और न वे कन्याएं ही वहां दिखाई दीं। हम दोनों विस्मित-विमूढ़ उसमें इधर-उधर घूमते रहे। कुछ समय बाद हमने वहां एक तालाब देखा। उस पर स्नान करने के लिए एक दिव्य कन्या आई। तालाब में स्नान करके उसने भगवान का ध्यान किया और उसमें से एक शिव-लिंग पैदा करके उसकी पूजा की। उसके बाद उसे फिर उसी तालाब में विसर्जित कर दिया। फिर वह अपनी सखियों के साथ वहां से चल दी। तब उसे आपके चरणों की शपथ दिलाकर मैंने पूछा, 'हमें बताइये कि आप कौन हैं?' वह बोली, 'मैं तुम्हें राजा विक्रमादित्य के कुछ कार्य के लिए ही माया से यहां लाई हूं। वह राजा मेरा मान्य है, क्योंकि एक बार उसने मुझे बड़े भारी संकट से बचाया था। सो, तुम मेरे घर पर चलो, मैं वहीं तुम्हें सारा वृत्तांत सुनाऊंगी।' यह सुनकर

हम उसके साथ उसके घर चले गये।"

## : २ :

## मदनमंजरी की कथा

अनंगदेव ने आगे राजा विक्रमादित्य से कहा, "खाना खाने के बाद उस स्त्री ने हम दोनों को अपना यह हाल सुनाया :

"मैं धनदेव कुबेर के भाई मणिभद्र की पत्नी तथा यक्षराज दुंदुभि की पुत्री मदनमंजरी हूं। एक बार मैं अपने पति के साथ उज्जयनी के मकरंद उपवन में गई। वहां दैवयोग से एक नीच खंड-कापालिक आ गया। मुझे देखते ही उसके मन में खोट पैदा हो गई और मुझे अपनी पत्नी बनाने के लिए वह श्मशान में जाकर हवन से मंत्र-सिद्धि करने लगा। मैंने उसकी इन चेष्टाओं को देखा और अपने पति से सब हाल कहा। मेरे पति ने जाकर अपने बड़े भाई कुबेर से कहा। कुबेर ब्रह्माजी के पास पहुंचे और उन्हें उस नीच खंड-कापालिक की बात सुनाई। ब्रह्माजी ने ध्यान करके कुबेर से कहा, सच ही वह कापालिक तुम्हारे भाई की पत्नी को हरने के लिए मंत्र-सिद्धि कर रहा है। इसका एकमात्र उपाय यही है कि जब वह दुष्ट उसको मंत्र के द्वारा आकर्षित करे, तब मदनमंजरी राजा विक्रमादित्य को रक्षा के लिए पुकारे। राजा आकर उसकी रक्षा करेगा।' यह सुनकर कुबेर ने ब्रह्माजी का वचन मेरे पति को सुनाया और मेरे पति ने मुझे बताया। जब उस कापालिक ने श्मशान में मंत्र-साधना के द्वारा मुझे खींचा, तो मैं वहां श्मशान में उसके पास चली गई। मैंने जाकर देखा कि वह कापालिक हवन-क्रिया में लगा हुआ है। मुझे देखकर वह आचमन करने के लिए नदी पर गया। तभी मैंने राजा विक्रमादित्य को पुकारा। वह तुरंत वहां उपस्थित हुआ और बोला, 'भद्रे! तुम डरो मत! मैं इस दुष्ट कापालिक से तुम्हारी रक्षा करूंगा। मेरे राज्य में कोई भी अधर्म का आचरण नहीं कर सकता।' यह कहकर उसने अग्निशिख नामक बेताल को बुलाया और उसके आने पर उससे कहा, 'तुम दूसरे की पत्नी का हरण करनेवाले इस दुष्ट कापालिक को मारकर खा जाओ।' यह सुनकर अग्निशिख ने उस कापालिक को मार डाला। उसी समय यमशिख नाम का एक दूसरा बेताल भी वहां आ गया। उस कापालिक के शरीर के लिए उन दोनों में झगड़ा होने लगा। अग्निशिख बेताल ने

यमशिख से कहा, 'अरे ुष्ट ! मैंने इसे राजा विक्रमादित्य की आज्ञा से मारा है। क्या तू उसके प्रभाव को नहीं जानता जो इस कापालिक के शरीर पर अपना अधिकार जता रहा है ?' यमशिख ने उत्तर दिया, 'तुम मुझे राजा विक्रमादित्य के प्रभाव का हाल सुनाओ।' इस पर अग्निशिख ने राजा विक्रमादित्य के प्रभाव का वर्णन करते हुए कहा, 'इस नगर में डाकिनेय नाम का एक जुआरी रहता था। एक बार वह जुए में अपना सर्वस्व हार बैठा और कुछ धन उधार लेकर भी हार गया। जब वह ऋण न चुका सका, तो दूसरे जुआरियों ने उसे डंडों से मारकर एक अंधे कुए में डाल दिया। उस गहरे कुएं में जाकर डाकिनेय ने देखा कि दो और उग्र पुरुष उसमें पड़े हुए हैं। उन दोनों ने उसे देखकर डर से पूछा कि तुम कौन हो और इस कुएँ में तुम्हें किसने और क्यों डाला है ? जुआरी ने अपना सारा हाल बताकर उन दोनों का समाचार पूछा। उन दोनों ने कहा कि हम इसी नगर के श्मशान में रहनेवाले ब्रह्मराक्षस हैं। एक बार हमने इस नगर में दो कन्याओं को पकड़ लिया था, उन्हें हमसे कोई भी न छुड़ा सका। तब राजा विक्रमादित्य ने अपने तेज से हमें बांधकर एक साल के लिए इस कुएं में डाल दिया। अब हमारी एक साल की अवधि पूरी होने में केवल आठ दिन बाकी हैं। यदि तुम हमें इन आठ दिनों तक भोजन देने का वचन दो, तो हम तुम्हें इस कुएं से बाहर फेंक सकते हैं। यदि तुमने बाहर जाकर अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार हमें भोजन नहीं दिया, तो बाहर आने पर हम तुम्हें खा जायेंगे।

"उस जुआरी ने उनकी बात स्वीकार करली और ब्रह्मराक्षसों ने उसे कुएं से बाहर फेंक दिया। बाहर निकलकर वह जुआरी उन ब्रह्मराक्षसों को खाना देने का और कोई उपाय न देखकर श्मशान में जाकर मांस बेचने लगा। उसी समय मैं श्मशान में पहुंच गया और मैंने मांस का मूल्य पूछा। जुआरी ने मुझसे कहा, 'तुम मुझे अपना रूप और प्रभाव दे दो।' मैंने पूछा, 'तुम मेरे रूप और प्रभाव का क्या करोगे ?' इसके उत्तर में उस जुआरी ने अपना सारा हाल सुनाया और बोला, 'तुम्हारे प्रभाव और रूप से मैं जुआरियों को मारकर उनके मांस से ब्रह्मराक्षसों को भोजन कराऊंगा।' मैंने सात दिन के लिए अपना रूप और प्रभाव उसे दे दिया और वह मेरे प्रभाव से जुआरियों को मारकर ब्रह्मराक्षसों को भोजन देता रहा। आठवें दिन जब मैंने अपना रूप और प्रभाव उससे ले लिया, तो वह उन ब्रह्मराक्षसों के लिए भोजन न जुटा सका। अंत में वह फिर मेरे पास आकर बोला,'मैं

अब क्या करूं ? आज आठवां दिन है। यदि मैं आज उन्हें भोजन न दे सका, तो वे निकलकर मुझे खा जायेंगे।' उसकी बेचैनी देखकर मुझे दया आ गई। मैंने उससे कहा, 'डरो मत, आज तक तो उन ब्रह्मराक्षसों ने जुआरियों को खाया है। आज मैं तुम्हारी रक्षा के लिए उन्हें खा जाऊंगा। चलो, तुम मुझे वह कुआं दिखाओ।' जुआरी मुझे उस कुएं के पास ले गया और ज्यों ही मैं उस कुएं में झांककर उन्हें देखने लगा, उस जुआरी ने मुझे पीछे से कुएं में धकेल दिया। मुझे देखकर वे ब्रह्मराक्षस पहले तो मुझे अपना भक्ष्य समझकर पकड़ने लगे, किंतु जब मैंने बाहु-युद्ध में उन्हें हरा दिया, तो वे मुझसे पूछने लगे कि तुम कौन हो और यहां क्यों आये हो ? मैंने उन्हें सारा हाल बता दिया। मेरा हाल सुनकर उन ब्रह्मराक्षसों ने मुझसे मित्रता करली और बोले, 'देखो, उस जुआरी ने तुम्हारी, हमारी और उन जुआरियों की क्या दशा की है ? जुआरियों पर कभी विश्वास न करना चाहिए। इनमें न तो मित्रभाव होता है, न दया, न उपकार। केवल साहस ही इन लोगों में मुख्य होता है। तब इस प्रसंग में उन्होंने मुझे एक और जुआरी की यह कथा सुनाई :

"इसी उज्जयनी में ठिंठाकराल नाम का एक जुआरी था। वह जुए में अपना सब-कुछ हार गया। तब कृपा करके जीतनेवाले जुआरी उसे सौ-सौ कौड़ी देने लगे, जिससे वह आटा आदि खरीद लेता और श्मशान में जाकर खप्पर में आटा सानता, चिता की अग्नि में रोटियां सेंकता और दीपक के घी से उन्हें चुपड़कर खा लेता और बाद में वहीं महाकाल के मंदिर में रात को सो जाता। एक दिन उस जुआरी ने सोचा कि इस प्रकार तो बड़ा कष्ट उठाना पड़ता है। इसलिए क्यों न यहां रहकर महाकालेश्वर को सिद्ध कर लिया जाय ? यह सोचकर उसने देवताओं को जुआ खेलने के लिए आमंत्रित किया और उन्हें हरा दिया। जब देवताओं ने उसे धन न दिया, तो वह आरा लेकर उनका मांस काटने दौड़ा। इस पर देवताओं ने उसे धन दे दिया। उसके इस उत्पात से परेशान होकर देवी ने उसे वहां से निकाल दिया। तब वह भैरव की शरण में गया और तपस्या करने लगा। भैरव ने उससे संतुष्ट होकर कहा, हे' ठिंठाकराल ! तुम यहीं मेरे पास रहो। मैं तुम्हें सब प्रकार के भोग यहीं दे दूंगा।' वह भैरव की कृपा से वहीं सुख भोगने लगा। एक दिन महाकाल-तीर्थ में कुछ अप्सराएं स्नान करने के लिए आईं। जब वे अपने कपड़े अलग रखकर स्नान करने लगीं, तो भैरव ने

ठिंठाकराल से कहा कि तू इन अप्सराओं के कपड़े उठाकर ले आ और जब ये कपड़े मांगे, तो कहना कि पहले मुझे कलावती दो तब मैं तुम्हारे कपड़े दूंगा। उसने ऐसा ही किया। अप्सराओं ने अलंबुषा की पुत्री कलावती के शाप को याद करके कलावती उसे देदी। इसके बाद ठिंठाकराल कलावती के साथ वहीं रहने लगा। कलावती दिन में तो इंद्र की पूजा करने के लिए स्वर्ग में चली जाती और रात को उसीके पास रहती। एक दिन ठिंठाकराल ने कलावती से उसके शाप का कारण पूछा। कलावती ने कहा, 'मैंने एक बार इंद्र के सामने मनुष्यों की प्रशंसा कर दी थी। इससे अप्रसन्न होकर देवराज ने मुझे यह शाप दिया कि जा, तेरा विवाह मनुष्य के ही साथ होगा। मैं उसी शाप के कारण तुम्हारी पत्नी हूं।'

"एक दिन कलावती ने उससे कहा, 'मैं आज स्वर्ग से कुछ देर में आऊंगी। तुम मेरे लिए अधीर न होना, क्योंकि आज वहां अप्सरा रंभा का नवीन नाच होगा, मैं उसके समाप्त होने पर ही यहां आऊंगी।' यह सुनकर ठिंठाकराल ने उससे बड़े प्रेम से अनुरोध किया, 'मुझे भी ले चलो।' कलावती ने उत्तर दिया, 'यदि तुम्हारे वहां जाने का हाल इंद्र को मालूम हो गया, तो बड़ा अनिष्ट हो जायगा।' परंतु जब ठिंठाकराल ने अपनी जिद न छोड़ी, तो वह उसे अपने कान के कमल में छिपाकर इंद्र की सभा में ले गई। वहां रंभा के नाच के बाद कई देवताओं ने अपने बनाये हुए बाजे बजाकर सुनाये। अंत में एक दिव्य भांड ने बकरे की आकृति बनाकर नाच दिखाया। उत्सव की समाप्ति पर ठिंठाकराल कलावती के साथ उज्जयनी लौट आया।

"दूसरे दिन वही भांड उज्जयनी में तमाशा दिखाने आया। उसे देखकर ठिंठाकराल ने उससे कहा, 'वैसा ही बकरे की आकृति का नाच दिखाओ, जैसा तुमने इंद्र की सभा में दिखाया था।' जब भांड ने उसका कोई उत्तर न दिया, तो ठिंठाकराल ने उसे लाठियों से पीटा। तब वह खून से सना हुआ इंद्र के पास गया और उसने सारा वृत्तांत इंद्र को सुनाया। इंद्र ने भी अपने दिव्य ज्ञान से यह जान लिया कि कलावती ठिंठाकराल को छिपाकर उत्सव में ले आई थी। इससे अप्रसन्न होकर इंद्र ने कलावती को यह शाप दिया, 'तुम एक रागोन्मत्त पुरुष को छिपाकर यहां लाईं, अतः तुम मृत्युलोक में नागपुर के राजा नरसिंह के बनवाये हुए देव-मंदिर के खंभे में पुतली बनोगी और जब वह मंदिर टूटकर गिर पड़ेगा तब अपने शाप से मुक्त होगी।'

"इस प्रकार इंद्र से शापित होकर कलावती मृत्युलोक में आई और उसने सारा हाल ठिंठाकराल को सुनाया। फिर वह अपने समस्त आभूषण उसे सौंपकर अदृश्य हो गई और नागपुर के देव-मंदिर में खंभे की पुतली बन गई।

"ठिंठाकराल अपनी मूर्खता पर बहुत पछताया और कलावती को शीघ्र शाप से छुड़ाने का उपाय सोचने लगा। वह एक संन्यासी का वेष बनाकर नागपुर पहुंचा और कलावती के आभूषणों को पांच कलशों में रखकर वन में चारों दिशाओं में गाड़ आया। पांचवां कलश उसने रात में नगर के अंदर देव-मंदिर के आंगन में गाड़ दिया। ऐसा करके वह नदी के किनारे पर कुटिया बनाकर तप करने का बहाना करके रहने लगा। कुछ ही दिनों में उसकी बड़ी ख्याति फैल गई। नगर-वासियों से उसके तप की प्रशंसा सुनकर राजा भी उसके पास गया। शाम को जब वह राजा वहां से चलने लगा, तो अचानक एक गीदड़ बोल उठा। उसे सुनकर तपस्वी वेषधारी ठिंठाकराल हंस पड़ा। राजा के पूछने पर उसने उत्तर दिया, 'यह गीदड़ कह रहा है कि इस नगर में पूर्व दिशा की ओर वन में पेड़ के नीचे रत्नजटित आभूषणों से भरा हुआ एक कलश गड़ा हुआ है, उसे तुम निकाल लो।'

"राजा तुरंत उसके साथ वहां पहुंचा और उसने जमीन को खोदकर आभूषणों का वह कलश निकाल लिया, जिसे ठिंठाकराल ने पहले ही वहां गाड़ दिया था। अब तो राजा ने उसे बड़ा ज्ञानी और उच्च कोटि का महात्मा मान लिया। ठिंठाकराल ने भी किसी-न-किसी पक्षी के बोलने के बहाने राजा को शेष तीन दिशाओं में गड़े हुए कलावती के आभूषणों से भरे कलश भी दिखा दिये। फिर एक दिन राजा उसे अपना मंदिर दिखाने ले गया। तभी वहां एक कौआ बोलने लगा। ठिंठाकराल ने राजा से कहा, 'यह कौआ कहता है कि इस मंदिर के आंगन में रत्नों से जड़े हुए आभूषणों का एक कलश गड़ा हुआ है, उसे खोदकर निकाल लो।' राजा ने ऐसा ही किया और उसे वहां भी कलश मिल गया। उसके बाद वे मंदिर के अंदर गये। वहां अपने पति को दुखी देखकर पुतली के रूप में खड़ी हुई कलावती रोने लगी। राजा ने रोने का कारण पूछा, तो ठिंठाकराल ने कहा, 'यह मूर्ति इसलिए रोती है कि आपने इस मंदिर को बड़े अशुभ मुहूर्त में बनवाया है। आज से तीसरे दिन आपका बड़ा अनिष्ट होगा। यदि आप अपना कल्याण चाहते हैं, तो इस मंदिर को तुड़वाकर फिर से शुभ लग्न में बनवाइये।' राजा उस पर

विश्वास तो करता ही था। उसने इस मंदिर को तुड़वा दिया और खंभे के गिरने के कारण कलावती शाप से मुक्त होकर इंद्र के पास पहुंच गई। वह उसे देखकर चकित रह गया और उसके इतनी जल्दी शाप मुक्त होने का कारण पूछा। उसने अपने पति की चतुरता का हाल इंद्र को सुना दिया। ठिंठाकराल की इस चतुरता से प्रसन्न होकर इंद्र ने उसे भी स्वर्ग में बुला लिया और अपने पास रख लिया। वहां वह कलावती के साथ सुखपूर्वक रहने लगा।

"तब इंद्र के पास बैठे हुए बृहस्पति ने कहा, 'सच ही इन जुआरिओं की माया बड़ी विचित्र होती है।' और इस विषय में बृहस्पति ने इंद्र को यह कथा सुनाई :

"प्राचीन काल में एक नगर में एक कुट्टिनीकपट नाम का जुआरी था। जब वह मरकर धर्मराज के पास पहुंचा तो उन्होंने उससे कहा, 'तुमने इतने अधिक पाप किये हैं कि तुम्हें कल्प-पर्यंत नरक में रहना पड़ेगा, किंतु तुम्हारे भाग्य में एक दिन इंद्र बनना लिखा है, क्योंकि तुमने एक ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण को सोने का दान किया था। बताओ तुम पहले इंद्र बनना चाहते हो या नरक में जाना चाहते हो?' जुआरी ने पहले इंद्र बनने की प्रार्थना की। धर्मराज ने एक दिन के लिए इंद्र को हटाकर उस जुआरी को स्वर्ग-राज्य पर अभिषिक्त कर दिया। राज्य पाते ही उसने अपने जुआरी मित्रों और वेश्याओं को स्वर्ग में ही बुला लिया और सारे देवताओं को आज्ञा दी, 'आज ही हम सबको तीर्थ स्थानों में स्नान कराओ और खूब दान-पुण्य भी हमारे लिए करो।' देवताओं ने ऐसा ही किया। परिणाम यह हुआ कि उसके पाप धुल गये और वह इंद्र की स्थिर पदवी को प्राप्त हो गया। उसके मित्र और वेश्याएं भी स्वर्ग में ही देवता बनकर रहने लगे। उसके इस सुचरित्र से धर्मराज बड़े विस्मित हुए और कहने लगे, 'इस जुआरी ने एक दिन के लिए इंद्रत्व मांगकर हम सबको ठग लिया।' सो, ये जुआरी ऐसे चालाक होते हैं।

"यह कथा कहकर बृहस्पति चुप हो गये और ठिंठाकराल सुख से स्वर्ग में रहने लगा। इस प्रकार जुआरियों की माया का वर्णन करके ब्रह्मराक्षसों ने मुझसे कहा, 'तुमको डाकिनेय जुआरी ने छल करके इस अंधकूप में धकेल दिया है, इसलिए अब तुम्हें हम यहां से निकाले देते हैं।' मैं उनके सहयोग से उस अंधकूप से निकल आया। रात को एक शहर में पहुंचकर मैं भूखा होने के कारण एक राहगीर ब्राह्मण को खाने के लिए दौड़ा। उस ब्राह्मण ने एकदम राजा

विक्रमादित्य को पुकारा। वह तुरंत वहां आये और मुझे फटकारते हुए बोले, 'अरे दुष्ट! इस निरपराधी ब्राह्मण को मत मार।' और साथ ही वह धरती पर एक पुरुष की आकृति बनाकर उसकी गर्दन काटने लगे। उससे मेरी गर्दन कटने लगी। तब मैं उस ब्राह्मण को छोड़कर राजा के पैरों पर गिर पड़ा और उन्होंने मुझे क्षमा करके छोड़ दिया। सो, राजा विक्रमादित्य का ऐसा प्रभाव है। मैंने उसीकी आज्ञा से इस खंड-कापालिक को मारा है। यह मेरा भक्ष्य है, तुम इसे छोड़ दो।

"लेकिन यमशिख नहीं माना और अग्निशिख से यह कथा सुनकर भी कापालिक के शरीर को उससे छीनने लगा। इस पर राजा विक्रमादित्य ने प्रकट होकर एक पुरुष की तस्वीर जमीन पर बनाई और उसका हाथ काट दिया, जिसके प्रभाव से यमशिख का भी हाथ कटकर अलग गिर पड़ा। तब वह डर के मारे कापालिक के शरीर को छोड़कर भाग गया और अग्निशिख ने उस शरीर को खा लिया।

"यह कथा कहकर वह यक्ष-वधू मदनमंजरी मुझसे फिर बोली, 'इस प्रकार उन्होंने मेरी रक्षा की थी। तब से मैं उनके इस उपकार का बदला चुकाने का उपाय सोचती रहती हूं। आज मुझे मालूम हुआ है कि सिंहल के राजा ने अपनी पुत्री को राजा विक्रमादित्य के पास भेजा है और शत्रु राजाओं ने यह षड्यंत्र किया है कि विक्रमशक्ति को मारकर उस कन्या को छीन लिया जाय। इसलिए तुम शीघ्र ही जाकर सेनापति विक्रमशक्ति को सावधान कर दो और मैं भी ऐसा प्रयत्न करूंगी कि जिससे सारे शत्रुओं को मारकर राजा विक्रमादित्य विजय प्राप्त करें। इसी रहस्य को बताने के लिए मैंने अपनी माया से तुम दोनों को यहां बुलाया है। मैं भी तुम्हारे स्वामी को ऐसी भेंट भेजूंगी, जिससे उनका बड़ा कल्याण होगा और मैं अपने ऋण से उऋण हो सकूंगी।'

"यक्षिणी के ऐसा कहने पर श्याम और गोरे रंग की वे दोनो कन्याएं, जिन्हें हमने समुद्र में देखा था, मृग के सहित वहीं आ गईं। उन दोनों के बैठ जाने पर मैंने उससे पूछा, 'ये दोनों कन्याएं और यह सोने का मृग कौन है?' वह बोली, 'प्राचीन समय में भयंकर घंट और निघंट नाम के दो दुर्जय दैत्य ब्रह्माजी की सृष्टि में विघ्न डालने के लिए आये। ब्रह्माजी ने उन दोनों का विनाश करने के लिए संसार को अपने रूप से उन्मत्त बना देनेवाली ये दो कन्याएं बनाईं। इन दोनों के अद्भुत रूप को देखकर वे दोनों, राक्षस इन्हें हरने के लिए आपस में

युद्ध करते हुए मारे गये। तब ब्रह्माजी ने इन दोनों को कुबेर को दे दिया और कुबेर ने इन्हें अपने छोटे भाई अर्थात मेरे पति को दे दिया। मेरे पति ने इन दोनों को मेरे सुपुर्द कर दिया है। मैंने इन दोनों के योग्य स्वामी विक्रमादित्य को ही निश्चित किया है, क्योंकि वह देवता का अवतार है। इस मृग की कहानी यह है कि एक बार इंद्र का प्रिय पुत्र जयंत आकाश में दैवी स्त्रियों के साथ विहार कर रहा था। वहां से उसने पृथ्वी पर मृग के बच्चों से खेलते हुए राजपुत्रों को देखा। यह देखकर वह भी पिता के सामने जाकर मृग के बच्चे के लिए रोने लगा। इंद्र ने उसके लिए विश्वकर्मा से यह सोने का मृग बनवाया। जयंत इसे पाकर बड़ा प्रसन्न हुआ। कुछ दिन बाद रावण का पुत्र इंद्रजित इंद्र से इस मृग को छीनकर लंका में ले गया। जब राम और लक्ष्मण ने रावण और इंद्रजित को मारकर लंका का राज्य विभीषण को दिया, तब यह मृग कुछ दिनों तक उसके घर में रहा। फिर किसी उत्सव में विभीषण ने इसे हमारे पूर्ववर्ती बंधु-बांधवों को दे दिया। तब से यह दिव्य मृग हमारे यहां है। मैं इसे भी तुम्हारे स्वामी विक्रमादित्य को भेंट करना चाहती हूं।'

"इसके बाद रात हो जाने पर हम दोनों सो गये। सबेरे हमने अपने को विक्रमशक्ति के पास पाया। जिस समय वह हमसे कुशल-वृत्तांत पूछ रहा था, वे दोनों दिव्य कन्याएं और वह स्वर्ण-मृग एक बड़ी यक्ष-सेना के साथ वहां आ गये। उन्हें देखकर विक्रमशक्ति ने मुझसे पूछा, 'यह क्या है?' तब मैंने सिंहलद्वीप के राजा वीरसेन के पास जाने से लेकर यक्षिणी के मुंह से सुना हुआ सारा हाल बता दिया और कहा, 'शत्रु तुमको मार कर मदनलेखा को छीन लेना चाहते हैं।' मेरी यह बात सुनकर विक्रमशक्ति युद्ध के लिए तैयार हो गया। कुछ क्षण बाद ही बहुत से म्लेच्छ राजा अपनी विशाल सेना लेकर विक्रमशक्ति से युद्ध करने आ गये। दोनों सेनाओं में भयंकर युद्ध हुआ। अंत में यक्षों की सेना ने म्लेच्छ-सेना को मार भगाया। युद्ध की समाप्ति पर वह यक्षिणी भी वहीं आ गई और विक्रमशक्ति से बोली, 'आप मेरी ओर से अपने स्वामी को यह संदेश दें कि मैंने यथाशक्ति आपका कल्याण किया है। आप इन दोनों कन्याओं के साथ विवाह कर लें और इस मृग को भी स्वीकार करें। मेरी ओर से यह भेंट है।' यह कहकर और बहुत से रत्न देकर वह यक्षिणी अदृश्य हो गई। अगले ही दिन अपनी बहुत-सी सखियों तथा धन-वैभव के साथ सिंहलद्वीप के राजा की पुत्री मदनलेखा भी वहां आ गई। उन सबको लेकर

सेनापति विक्रमशक्ति बहुत ही पास आ गया है। यही निवेदन करने के लिए मैं आपकी सेवा में उपस्थित हुआ हूं।"

यह सुनकर राजा विक्रमादित्य अपने बहुत से साथी राजाओं के साथ विक्रमशक्ति का स्वागत करने के लिए नगर से बाहर चल दिया।

: ३ :

# मलयवती का विवाह

राजा विक्रमादित्य सेनापति विक्रमशक्ति से मार्ग में मिला और उसके साथ आये हुए अनेक देशों के राजाओं समेत उसे अपने शहर में ले आया। वहां विक्रममक्ति ने अपने साथ आये हुए राजाओं का विक्रमादित्य से परिचय कराया। राजा विक्रमादित्य ने उन सबका खूब सत्कार किया। वे विदेशी राजा कुछ दिन उज्जयनी में रहकर अपने-अपने स्थानों को लौट गये। उसके बाद राजा सिंहलद्वीप के राजा की पुत्री मदनलेखा, उन दोनों गोरी और श्यामा कन्याओं तथा स्वर्णमय मृग के साथ सुख से रहने लगा। वसंतऋतु के आने पर उसने मदनलेखा और उन उन दोनों कन्याओं से विवाह कर लिया। विवाह के समय मदनलेखा के बड़े भाई सिंहवर्मा और यक्षिणी मदनमंजरी ने राजा को बहुत से रत्न भेंट दिये।

अब राजा विक्रमादित्य सातों द्वीपों पर निष्कंटक राज्य करने लगा। उसका आश्रित नगरस्वामी नाम का एक चित्रकार था। एक बार किसी उत्सव के समय भेंट के लिए वह कोई चित्र न बना पाया। वह राजा को दी जानेवाली भेंट के बारे में बहुत चिंतित था। तभी एक दिन अचानक कोई राहगीर आया और नगरस्वामी के हाथ में पुस्तक देकर तुरंत ही वहां से चला गया। नगरस्वामी ने उत्सुकता से उस पुस्तक को खोलकर देखा, तो उसमें एक अत्यंत सुंदरी कन्या का चित्र पाया। वह प्रसन्नता से नाच उठा और उसे राजा के पास ले गया और उस चित्र का सारा वृत्तांत भी राजा से कह सुनाया। उस चित्रलिखित कन्या को देखकर राजा उस पर आसक्त हो गया। एक रात को उसने स्वप्न में किसी दूसरे द्वीप में उस कन्या को देखा, लेकिन उत्सुक होकर वह उससे ज्यों ही मिलने लगा, त्यों ही जगानेवाले नौकर ने राजा को जगा

दिया। इससे क्रुद्ध होकर राजा ने उस सेवक को शहर से निकाल दिया और स्वयं अत्यंत बेचैन हो उठा। यह देखकर द्वारपाल भद्रायुध ने पूछा, "राजन ! क्या बात है ? आप इतने बेचैन क्यों हैं ? और आपने जगानेवाले सेवक को क्यों निकाल दिया ?" राजा ने उससे कहा, "सुनो ! चित्रकार नगरस्वामी ने मुझे एक कन्या का चित्र दिया था। उस कन्या का चिंतन करता हुआ मैं सो गया। स्वप्न में मैंने देखा कि मैं समुद्र पार करके किसी अत्यंत सुंदर नगर में प्रविष्ट हुआ हूं। वहां मुझे देखकर बहुत-सी कन्याएं हाथ में शस्त्र लिये हुए मुझे पकड़ने के लिए दौड़ीं। तभी वहां अचानक एक तपस्विनी स्त्री ने मुझे अपने घर में छिपा लिया और बोली, 'पुत्र ! यहां की राजपुत्री मलयवती पुरुष-मात्र को देखकर इन कन्याओं से मरवा डालती है। उसे पुरुषों से स्वाभाविक बैर है, इसलिए मैं तुम्हें यहां रक्षा के लिए ले आई हूं।' यह कहकर उस तपस्विनी ने मेरा स्त्री-वेष बनाकर अपने पास रख लिया। कुछ देर में मलयवती स्वयं वहीं आ गई और बोली, 'हमने यहां एक पुरुष को घुसते हुए देखा है, वह कहां है ?' तपस्विनी ने उत्तर दिया, 'यहां पुरुष तो कोई नहीं आया, हां यह मेरी नातिन (धेवती) अवश्य आई है।' यह कहकर उसने मुझे दिखा दिया। मैंने देखा कि वह तो वही चित्रलिखित कन्या थी, जिसकी खोज में मैं वहां पहुंचा था। उधर मलयवती मुझे स्त्री-वेष में देखकर भी मुझ पर रीझ गई और तापसी से बोली, 'यह जैसी आपकी रिश्तेदार है, वैसी ही मेरी भी। सो, यह मेरे साथ मेरे घर पर ही रहेगी।' यह कहकर वह मुझे अपने महल में ले गई। मैं वहां उसके साथ रहने लगा। वहां उसने खेल में मुझे तो दूल्हा बनाया और स्वयं दुलहिन बन गई। हम दोनों का सखियों ने विवाह कर दिया। विवाह के बाद हम दोनों को एकांत में रखा गया। तब मैंने अपने को उसके सामने प्रगट कर दिया। वह बहुत प्रसन्न हुई, लेकिन जैसे ही वह मेरी ओर बढ़ी त्यों ही इस दुष्ट सेवक ने मुझे जगा दिया।" अपने स्वप्न की यह कथा सुनाकर राजा ने कहा, "हे भद्रायुध ! अब उस मलयवती के बिना मेरा जीवित रहना कठिन है।"

भद्रायुध ने राजा से कहा, "आप धैर्य धारण कीजिये। मैं उसका पता लगाने का प्रयत्न करूंगा। आपको स्वप्न में देखे नगर तथा स्थान की जो कुछ याद है, आप उसे एक कपड़े पर चित्रित करके मुझे दे दीजिये।" राजा ने उस नगर का चित्र बनाकर भद्रायुध को दे दिया। उस चित्रपट को भद्रायुध ने एक नये बने हुए मठ की दीवार पर टंगवा दिया और दूर देशों से आये हुए

यात्रियों के लिए वहां एक सत्र खुलवा दिया। उसने मठ के रक्षक को यह हिदायत कर दी कि यदि कोई यात्री ऐसा आये कि जो इस चित्र में अंकित नगर का पता जानता हो, तो उसे मेरे पास ले आना।

कुछ दिन बाद वर्षाकाल में शंबरसिद्धि नाम का एक भाट उस मठ में आया और दीवार पर टंगे हुए उस चित्र को देखकर बोला, "अरे! इस नगर का चित्र किसने बनाया है? मैं तो सोचता था कि इस नगर को अब तक मैंने ही देखा है, किंतु आज विदित हुआ कि मुझसे पहले भी किसी और ने इस नगर को देखा है।" उसकी यह बात सुनकर उस मठ के रक्षक ने भद्रायुध को सूचना दे दी। भद्रायुध उसे राजा के पास ले गया। राजा ने शंबरसिद्धि से पूछा, "क्या सच ही तुमने यह नगर देखा है?" भाट ने उत्तर दिया, "हां, मैंने यह नगर देखा है। यह समुद्र के बीच में एक द्वीप में स्थित मलयपुर नाम का नगर है। इस नगर में मलयसिंह नाम का राजा राज्य करता है। उसकी मलयवती नाम की एक अनुपम कन्या है। वह पुरुषों से द्वेष करती थी, लेकिन एक दिन स्वप्न में उसने किसी महापुरुष को देखा। उसे देखते ही वह उस पर रीझ गई और अपने भवन में लाकर उसने उससे विवाह कर लिया। लेकिन उसके बाद ही उसे उसकी सेविका ने जगा दिया। इससे कुपित होकर उसने उस नौकरानी को निकाल दिया और तभी से उस पुरुष के वियोग में पीड़ित है। उसने यह प्रतिज्ञा करली है कि यदि छः महीने के अंदर-अंदर वह उस पुरुष को न पा लेगी, तो आग में जलकर मर जायेगी। उसकी इस प्रतिज्ञा को सुनकर उसके माता-पिता बहुत परेशान हैं। अब इस प्रतिज्ञा को पांच महीने बीत गये हैं।"

शंबरसिद्धि से यह समाचार सुनकर राजा बड़ा प्रसन्न हुआ। उसे निश्चय हो गया कि यही उसकी प्रियतमा है। तभी भद्रायुध ने राजा से कहा, "अब आपका कार्य सिद्ध हो गया है। अब आप इसके साथ उस देश में शीघ्र चले जायें। कहीं ऐसा न हो कि छः मास बीत जायें और मलयवती आग में जलकर मर जाये।"

राजा विक्रमादित्य तुरंत शंबरसिद्धि के साथ मलयपुर जा पहुंचा। वहां पहुंचते ही उसे पता चला कि मलयवती आज अग्नि में प्रवेश कर रही है। राजा उसी स्थान पर पहुंचा, जहां मलयवती ने अपनी चिता बना रखी थी। मलयवती उसे देखकर खिल उठी और अपनी सखियों से उसने कहा, "यही मेरा स्वप्न में चुना हुआ पति है। तुम पिताजी को जाकर यह समाचार दो।" राजा यह

समाचार पाकर बहुत प्रसन्न हुआ और तुरंत वहां आया। जब उसे यह पता चला कि राजा विक्रमादित्य ही वह पुरुष है, जिसे उसकी पुत्री ने अपना पति चुना है और वह यहां आया हुआ है, तो उसने विक्रमादित्य के चरण पकड़ लिये। फिर अपने महल में लाकर उसका बड़ा सत्कार किया और शुभ लग्न में अपनी पुत्री का उससे विवाह कर दिया। वहां बड़ा सम्मान तथा अनेक राजाओं से बहुत सी भेंट पाकर राजा विक्रमादित्य अपनी नगरी उज्जयनी में लौट आया। इस पर प्रजा ने बड़ा उत्सव मनाया।

: ४ :

## धनदत्त वैश्य की कथा

एक बार बातचीत के प्रसंग में विक्रमादित्य की रानी कलिंगसेना ने अपनी सौतों से कहा, "राजा ने मलयवती के लिए जो कुछ किया है, उसमें कोई आश्चर्य नहीं है, क्योंकि इन अद्भुत कामों से ही उनका नाम संसार में विषमशील प्रसिद्ध है। वैसे तो मेरे चित्र-मात्र को देखते ही राजा मुझ पर रीझ गये थे और मुझे बलपूर्वक हरण कर लाये थे, किंतु मुझसे विधिपूर्वक विवाह क्यों नहीं किया? एक बार मैंने बहुत दुखी होकर देवसेन कार्पटिक से इसका कारण पूछा था। तब उसने तसल्ली देते हुए मुझसे कहा, 'देवि! आप दुखी न हों, राजा ने आपसे बड़ी श्रद्धा के साथ अत्यंत आवेग में विवाह किया है।' और इस बारे में उसने मुझे यह कथा सुनाई :

"एक बार मैं राजा की सेवा करता हुआ उसके साथ वन में शिकार खेलने गया। शिकार करते-करते राजा बहुत दूर चले गये। वहां उन्होंने एक विचित्र सूअर देखा और उसका पीछा किया। बहुत दूर जाकर वन में वह सूअर न जाने कहां छिप गया। राजा के सब साथी पीछे रह गये। केवल मैं ही उसके साथ-साथ रहा। राजा ने मुझसे पूछा, 'क्या तुम्हें मालूम है कि हम कितनी दूर चले आये हैं?' मैंने उत्तर दिया, 'राजन! हम तीन सौ योजन दूर आ गये हैं।' राजा ने बड़े आश्चर्य से पूछा, 'तुम इतनी दूर पैदल कैसे दौड़ते हुए आ गये?' मैंने कहा, 'देव! मेरे पैरों पर एक लेप लगा हुआ है। एक बार मैं अपनी पत्नी से बिछुड़कर तीर्थ-यात्रा के लिए निकला और एक दिन

सायंकाल को रात बिताने के लिए एक मंदिर के बगीचे में पहुंचा। वहां बैठी हुई एक स्त्री ने मेरा सत्कार किया। रात के समय उसने अपना एक ओंठ आसमान तक और दूसरा जमीन तक फैलाकर मुझसे कहा, 'क्या कभी तुमने किसीका ऐसा मुंह देखा है?' मैंने तलवार खींचकर और निर्भीक होकर भौहें चढ़ाते हुए उससे कहा, 'क्या कभी तुमने ऐसा पुरुष भी देखा है?' मेरी यह बात सुनते ही उस स्त्री ने सौम्य रूप धारण कर लिया और बोली, 'मैं चंडी नाम की यक्षिणी हूं। तुम्हारे इस धैर्य से मैं संतुष्ट हूं। मुझसे इच्छानुसार वर मांगो।' मैं बोला, यदि आप मुझसे प्रसन्न है, तो मुझे ऐसा वर दीजिये कि मैं बिना कष्ट के संपूर्ण तीर्थों में घूम सकूं।' मेरी यह प्रार्थना सुनकर उसने मुझे पैरों में लगाने का एक लेप दिया, जिसे लगाकर मैं समस्त तीर्थों में घूमा हूं और आज यहां तक पैदल ही आपके साथ दौड़ता हुआ चला आया हूं। मैं हर रोज इस वन में आता हूं और अच्छे-अच्छे फल खाकर फिर उज्जयनी में आपकी सेवा में उपस्थित हो जाता हूं। यदि आप चाहें तो मैं आपके लिए अच्छे-अच्छे फल लाऊं?' राजा ने कहा, 'नहीं, मुझे भूख नहीं है, मैं आराम करता हूं, तुम खाओ।' मैंने एक ककड़ी तोड़कर खाली। उसे खाते ही मैं अजगर बन गया। यह देखकर राजा बहुत ही दुखी और विस्मित हुए। उन्होंने भूतकेतु नाम के बेताल को याद किया और उसके आने पर उससे कहा, 'मेरा यह कार्पटिक अजगर बन गया है, तुम इसे फिर मनुष्य बना दो।' बेताल ने उत्तर दिया, 'राजन! मुझमें इतनी शक्ति नहीं है।'

"तब राजा मुझे लेकर उस बेताल के साथ भीलों के गांव की ओर यह सोचकर चले कि शायद वे कोई मुक्ति का उपाय जानते हों। मार्ग में हमें बहुत से चोर भीलों ने घेर लिया। राजा ने अपने बाणों की वर्षा से पांच सौ भीलों को मार गिराया और धूमकेतु बेताल ने राजा की आज्ञा से उन्हें खा लिया। यह देखकर बाकी बचे हुए भील भाग गये और एकाकिकेसरी नाम के अपने सेनापति से जाकर यह समाचार कहा। वह सेनापति क्रोध में भरकर बहुत-सी सेना लेकर लड़ने आया, किंतु जब उसे पता लगा कि वह तो राजा विक्रमादित्य है तो उसने राजा के चरण पकड़ लिये। कुशल-क्षेम पूछने के बाद राजा ने सेनापति से कहा, 'मेरा यह कार्पटिक वन में ककड़ी खाकर अजगर बन गया है। इसे किसी उपाय से इस योनि से छुड़ाओ।' सेनापति ने उत्तर दिया, 'मैं अपने पुत्र को भेजता हूं, वह इसे इस योनि से छुड़ा देगा।' कुछ देर बाद सेनापति के पुत्र ने आकर मुझे एक औषधि

सुंघाई, जिससे मैं अजगर-योनि से मुक्त हो गया। इसके बाद वह सेनापति बड़े अनुनय-विनय से राजा को अपने घर ले गया और उसका खूब सत्कार किया।

"राजा ने देखा कि उसके लड़के तो बूढ़े हैं, लेकिन वह स्वयं तथा उसकी पत्नी तरुण हैं। वह बड़ा विस्मित हुआ और उसने सेनापति से इसका कारण पूछा। सेनापति ने उत्तर दिया,'राजन ! इसके पीछे एक बड़ी विचित्र कथा है, वह मैं आपको सुनाता हूं। मैं वास्तव में चंद्रस्वामी नाम का ब्राह्मण हू। प्राचीनकाल में मैं मायापुरी में रहता था। एक बार में अपने पिता की आज्ञा से लकड़ी लेने वन में गया। वहां एक बंदर ने मेरा रास्ता रोक लिया और मुझे घेरकर एक जामुन के पेड़ के नीचे ले गया। वह उस पेड़ पर चढ़ गया। मैंने ऊपर आंख उठाकर देखा कि उस पेड़ पर लताओं में उसकी बंदरिया फंसी हुई है और इसीलिए वह मुझे घेरकर यहां ले आया है। मैंने पेड़ पर चढ़कर उसकी बंदरिया को लताओं के जाल से छुड़ा दिया। नीचे उतरकर वह बंदर और बंदरिया मेरे पैरों पर लोटने लगे। फिर बंदर ने मुझे एक दिव्य फल लाकर दिया। उस फल को तथा ईंधन को लेकर मैं घर लौट आया और अपनी पत्नी के साथ वह फल खा लिया। उसके प्रभाव से मैं और मेरी पत्नी बुढ़ापे और रोग से मुक्त हो गये।

" 'कुछ दिन बाद उस नगर में दुर्भिक्ष पड़ गया और वहां के आदमी या तो मर गये या कहीं दूसरी जगह चले गये। में अपनी पत्नी के साथ यहां चला आया। उस समय इस देश का राजा कांचनदंष्ट्र था। मैं उसका शस्त्रधारी नौकर बन गया। कुछ दिन बाद मेरी कुशलता को देखकर राजा ने मुझे अपना सेनापति बना दिया। उसके कोई पुत्र न था, इसलिए उसने मेरी भक्ति से संतुष्ट होकर मुझे ही अंतकाल में राज्य का अधिकारी बना दिया। यहां रहते हुए मुझे सत्ताइस सौ वर्ष बीत गये हैं, किंतु उस फल के खाने से मैं अभी तक तरुण हूं, यह भी उस फल का ही प्रताप है कि मैंने आज आपके दर्शन किये।'

"अपनी यह कथा सुनाने के बाद सेनापति ने कहा, 'राजन ! मेरी एक प्रार्थना है। मेरी क्षत्रिय पत्नी से उत्पन्न मदनसुंदरी नामक अत्यंत रूपवती पुत्री है। आप उसे स्वीकार कीजिये।' राजा ने उसकी प्रार्थना मान ली और एकाकिकेसरी ने मदनसुंदरी का उसके साथ विधिपूर्वक विवाह कर दिया। सात रात वहां रहकर राजा मदनसुंदरी के साथ वहां से चल दिये। उधर वन में छोड़ी हुई सेना भद्रायुध के समझाने से विक्रमादित्य की बाट देख रही थी। राजा मदनसुंदरी को

भील सैनिकों के साथ छोड़कर और मुझे तथा बेताल को साथ लेकर वन में उस सूअर को ढूंढ़ने चले। कुछ दूर चलने पर वह सूअर फिर दिखाई दिया। राजा ने पांच बाण मारकर उसे गिरा दिया। बेताल ने उस सूअर का पेट फाड़ डाला। पेट फाड़ते ही उसमें से अचानक एक सुंदर पुरुष निकल आया। उसी समय एक पागल बनैला हाथी भी वहां आ गया। राजा ने उसे भी मार गिराया। बेताल ने जब उसका पेट फाड़ा, तो उसके अंदर से एक दिव्य पुरुष और सुंदर स्त्री निकली। राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ। पूछने पर सूअर के पेट से निकले हुए पुरुष ने अपना यह वृत्तांत सुनाया :

"हे राजन ! हम दोनों देवकुमार हैं, मेरा नाम भद्र है इस दूसरे का नाम शुभ। हम दोनों ने एक बार वन में ध्यान-स्थित कण्व मुनि को हाथी और सूअर का वेष बनाकर डराया था, जिससे अप्रसन्न होकर मुनि ने हमें शाप दिया था कि तुम दोनों वन में हाथी और सूअर बनकर घूमोगे और जब राजा विक्रमादित्य तुम्हें मारेगा, तभी तुम शाप से मुक्त होगे। इस प्रकार मुनि के शाप से हम दोनों सूअर और हाथी बन गये थे, आज आपके प्रताप से मुक्त हुए हैं। यह स्त्री अपना वृत्तांत स्वयं आपको बतायेगी। आप इस सूअर के गले को और हाथी की पीठ को छू दीजिये। ये दोनों दिव्य तलवार और ढाल बन जायेंगे। यह कहकर वे दोनों अदृश्य हो गये और राजा के छूने से सूअर और हाथी दोनों तलवार और ढाल बन गये। इसके बाद उस स्त्री ने अपना वृत्तांत सुनाया :

"'मैं उज्जयनी के एक वैश्य धनदत्त की पत्नी हूं। एक बार मैं अपने महल के निचले भाग में सो रही थी कि इस हाथी ने आकर मुझे निगल लिया। लेकिन तब तो इसके पेट में कोई आदमी नहीं था। पता नहीं पेट फाड़ने पर यह अचानक मेरे साथ कहां से निकल आया?' राजा ने उस स्त्री को धीरज बंधाते हुए कहा, 'मैं तुम्हें तुम्हारे पति के पास भिजवा दूंगा। अभी तुम मेरी रानियों के साथ रहो।' और उन्होंने उसे बेताल के साथ मदनसुंदरी के पास भेज दिया।

"जब बेताल लौट आया, तो हमने उस वन में अचानक दो दिव्य राजकन्याओं को सेवकों के साथ देखा। राजा ने उनसे पूछा, 'ये कन्याएं कौन है और कहां से आई हैं?' सेवकों ने उत्तर दिया, 'कटाह द्वीप के गुणसागर नाम के राजा की यह गुणवती नाम की पुत्री है। सिद्धों ने इसके विषय में बताया था कि इसका पति सातों द्वीपों का स्वामी होगा। इसके पिता ने अपने मंत्रियों से सलाह की और

राजा विक्रमादित्य को ही इसके योग्य पति ठहराया और नौकरों और सखियों के साथ जहाज द्वारा उनके पास रवाना कर दिया। स्वर्ण द्वीप के निकट आकर दैव-योग से एक मछली उस जहाज को निगल गई। लेकिन सौभाग्य से वह किनारे पर आ लगी। उसे देखकर लोगों ने अनेक शस्त्रों के प्रहारों से उसका पेट फाड़ डाला, जिससे सभी प्राणी और जहाज बाहर निकल आये। इस आश्चर्यजनक घटना को सुनकर वहां का राजा चंद्रशेखर उस मछली को देखने आया। वह राजा गुणवती का मामा था। वह अपनी भानजी को अपने घर ले गया। अगले दिन उसने अपनी पुत्री चंद्रवती को भी शुभ मुहूर्त में जहाज पर बैठाकर गुणवती के साथ राजा विक्रमादित्य को देने के लिए उसके पास भेज दिया। ये दोनों राजपुत्रियां समुद्र को पार करके आज यहां आई हैं। हम उनके सेवक हैं। यहां पहुंचने पर एक सूअर और हाथी हमें मारने के लिए दौड़े, तब हम खूब जोर से चिल्लाये, "हे लोक-पालो! ये दोनों कन्याएं राजा विक्रमादित्य को अपना पति बनाने के लिए यहां आई हैं, तुम हमारी रक्षा करो।" हमारी यह पुकार सुनकर हाथी और सूअर ने कहा, "तुम डरो मत। राजा विक्रमादित्य का नाम लेने से कोई भय रहता है। राजा यहीं आया हुआ है और तुम्हें शीघ्र ही उसके दर्शन होंगे।" यह कहकर वे दोनों अदृश्य हो गये। यही हमारा वृत्तांत है।'

"तब मैंने उन्हें बताया कि यह ही राजा विक्रमादित्य हैं। यह जानकर सेवकों ने उन दोनों कन्याओं को राजा को सौंप दिया। राजा ने उन्हें स्वीकार करके बेताल के साथ मदनमंजरी के पास भेज दिया और बेताल के लौट आने पर राजा फिर हमारे साथ वन में चल दिये। चलते-चलते मार्ग में ही सूर्य छिप गया और तभी हमने बाजों की आवाज सुनी। बेताल ने बताया कि यहां पास ही विश्वकर्मा का बनाया हुआ एक देव-मंदिर है, उसमें प्रति दिन सूर्य छिपने पर संगीत हुआ करता हैं। हम सब उस मंदिर में पहुंचे। वहां सुंदरी दिव्य स्त्रियां नाच-गा रही थीं। नाच-गाने के बाद वे सब मंदिर के खंभों के चित्रों में विलीन हो गईं। बेताल से विदित हुआ कि यह विश्वकर्मा की माया है और वहां प्रति दिन ऐसा ही होता है। उस मंदिर में घूमते हुए हमने एक विशेष पुतली देखी। उसे देखते ही राजा उस पर मुग्ध हो गये और कहने लगा, 'यदि ऐसी सुंदर स्त्री मुझे न मिली, तो मेरा राज्य और जीना बेकार है।' बेताल ने कहा, 'इसे प्राप्त करना कठिन नहीं है। यह पुतली कलिंग देश के राजा की पुत्री कलिंगसेना को देखकर बनाई

गई है। सो, आप उज्जयनी चलकर वहां से या तो उस राजा से इसे मांग लीजिये या इसका हरण कर लीजिये।'

"राजा तुरंत हमारे साथ उज्जयनी की ओर चल दिये। मार्ग में हमने एक पेड़ के नीचे बैठे हुए दो भव्य पुरुषों को देखा। पूछने पर उन दोनों में से एक ने बताया, 'मैं उज्जयनी का धनदत्त नाम का एक वैश्य हूं। मैं एक बार अपनी पत्नी के साथ महल में सो रहा था। सवेरे जागकर मैंने देखा कि मेरी पत्नी वहां नहीं है। तब मैं उसे ढूंढता हुआ और विलाप करता हुआ एक देव-मंदिर में पहुंच गया और ब्राह्मणों को भोजन कराता हुआ वहां रहने लगा।

" 'कुछ दिन बाद यह ब्राह्मण वहां आया और मेरे दुख का कारण जानकर मुझसे बोला, "तुम दुखी न हो। उद्योग से सब काम सिद्ध हो जाते हैं। जिस प्रकार केसर ने अपनी पत्नी को बड़े कष्टों के बाद पाया था, उसी प्रकार तुम भी अपनी पत्नी अवश्य प्राप्त करोगे। मैं तुम्हें उसकी कथा सुनाता हूं। पटना में केसर नाम का एक अत्यंत सुंदर ब्राह्मण पुत्र रहता था। वह अपने अनुकूल पत्नी की तलाश में माता-पिता से बिना कहे ही घर से निकल पड़ा। घूमते-घूमते वह नर्मदा नदी के किनारे पहुंचा। वहां उसने उधर से जाती हुई एक बारात को देखा। केसर को देखकर उस बारात में से एक बूढ़ा ब्राह्मण उसके पास आया और एकांत में प्रेमपूर्वक बोला, "तुम मेरा एक काम सिद्ध कर दो, तुम्हारे लिए वह बहुत आसान है। उससे मेरा बड़ा उपकार होगा।" केसर ने उत्तर दिया, "यदि मुझसे आपका कुछ भला हो सकता है तो मैं अवश्य करूंगा।" बूढ़े ब्राह्मण ने कहा, "मेरा पुत्र बड़ा ही कुरूप है। मैंने उसे बड़ा रूपवान बताकर रत्नदत्त नामक ब्राह्मण से उसके लिए रूपवती नाम की कन्या मांगली है। आज उन दोनों का विवाह होगा। मेरे पुत्र के स्थान पर दूल्हा तुम बन जाओ और उस कन्या से विवाह कर लो। बाद में उसे मेरे पुत्र को दे देना।" केसर ने उसकी बात मान ली और उसके साथ नर्मदा के पार एक नगर में पहुंचा। वहां सायंकाल के समय केसर संध्या करने के लिए नदी के किनारे गया। वहां एक भयंकर राक्षस उसे खाने के लिए दौड़ा। केसर ने उससे कहा, "मैंने एक ब्राह्मण का कार्य सिद्ध करने की प्रतिज्ञा करली है। सो, मैं उसका काम पूरा करके तुम्हारे पास आऊंगा, तब तुम मुझे खा लेना।" राक्षस ने उसकी बात मान ली। इसके बाद केसर दूल्हा बनकर बारात के साथ रत्नदत्त के घर पहुंचा। वह सुंदर तो था ही, विवाह हो गया। रूपवती

भी ऐसा सुंदर पति को पाकर बड़ी प्रसन्न हुई। आधी रात के समय जब वह सो रही थी, केसर चुपचाप उठा और अपने सत्य का पालन करने के लिए राक्षस के पास पहुंचा। रूपवती वास्तव में सो नहीं रही थी, उसे जाते देखकर वह भी चुपके से उठी और उसके पीछे-पीछे चल दी। राक्षस ने केसर को देखा तो उसकी प्रशंसा की और फिर उसे खाने को तैयार हुआ। तभी रूपवती उसके पास जाकर बोली, "मेरे पति के बदले तुम मुझे खालो, क्योंकि इसके खा लेने पर मेरी क्या गति होगी ?" राक्षस ने कहा, "तुम भिक्षा से अपना निर्वाह करना।" रूपवती ने उत्तर दिया, "मुझे कौन भिक्षा देगा ?" राक्षस ने कहा, "जो कोई मांगने पर तुम्हें भिक्षा न देगा, उसका सिर सौ टुकड़े हो जायेगा।" तब रूपवती ने राक्षस से कहा, "पहले मैं तुमसे ही भिक्षा मांगती हूं कि मेरे पति को छोड़ दो।" लेकिन रूपवती के मांगने पर भी राक्षस ने केसर को न छोड़ना चाहा। अतः उसका सिर सौ टुकड़े हो गया और वह मर गया। केसर रूपवती को लेकर घर आ गया। सवेरा होने पर बारात बिदा होकर नर्मदा के किनारे पर आ गई। फिर सब लोग वधू-सहित एक नाव पर सवार हो गये और केसर को उस बूढ़े ब्राह्मण ने दूसरी नाव पर चढ़ाकर नदी में बहा दिया। वे सब तो नदी पार कर गये, लेकिन केसर की नाव लहरों से टकराती हुई समुद्र के किनारे आ लगी। वह नाव से उतरकर दुखी मन एक जगह पड़ गया। रात भर उसे चिंता और बेचैनी से नींद न आई। रात के अंतिम पहर में उसने आकाश से उतरते हुए एक सुंदर पुरुष को देखा। केसर ने उससे पूछा, "आप कौन हैं ?" उस पुरुष ने कहा, "पहले तुम अपना हाल सुनाओ फिर मैं भी सुनाऊंगा।" केसर ने अपनी सारी दुख गाथा उसे सुना दी। तब वह पुरुष बोला, "हम दोनों का एक-सा ही दुख है। मैं तुम्हें अपनी कहानी सुनाता हूं; वेणा नदी के तट पर रत्नपुर नाम का एक नगर है, मैं वहां के एक धनाढ्य ब्राह्मण का पुत्र कंदर्प हूं। एक बार मैं सायंकाल में जल लेने के लिए नदी पर गया। वहां मेरा पैर फिसल गया और मैं नदी में बहने लगा। बहते-बहते मैं प्रातःकाल नदी के किनारे लगा और पेड़ों से घिरे हुए एक मातृ-मंदिर में जाकर पड़ रहा। वहां मैंने देवी की स्तुति की और विश्राम करने लगा। रात के समय अंदर से निकलकर कुछ योगिनियां आपस में यह बातचीत करने लगीं कि यह व्यक्ति हमारी शरण में आया है, इसलिए इसे हिंसक जानवरों से भरे इस बन से निकालकर किसी सुरक्षित स्थान में पहुंचा देना चाहिए। यह सलाह करके वे मुझे अच्छे वस्त्र

पहनाकर आकाश मार्ग से किसी नगर में ले गईं और वहां एक धनाढ्य ब्राह्मण के घर पर रखकर चली आईं। वहां मैंने देखा कि उस ब्राह्मण की कन्या का विवाह होनेवाला है। लग्न निकट आ गया था, किंतु अभी तक बारात नहीं आई थी। सब लोगों ने सुंदर और अलंकृत देखकर मुझे ही वर मान लिया और उस कन्या सुमना का विवाह मेरे साथ कर दिया। विवाह होने पर में उसके साथ रात को मकान पर सो रहा था कि वे योगिनियां लौट आईं और मुझे वहां से उठाकर ले आईं। मार्ग में उन योगिनियों का दूसरी योगिनियों से साथ युद्ध होने लगा और मैं उनके हाथों से छूटकर यहां गिर पड़ा। मैं अब अपने भविष्य के विषय में कुछ नहीं जानता। मुझे उस शहर का नाम भी नहीं मालूम, जहां मैंने सुमना के साथ विवाह किया था।

" 'केसर ने उसे धैर्य बंधाते हुए कहा, "योगिनियां तुम्हारा कुछ न करेंगी, तुम मेरे साथ रहो।" अगले दिन वे नदी पार करके भीमपुर नगर में पहुंचे। वहां नदी के किनारे पर कोलाहल हो रहा था। कौतूहलवश उन्होंने जाकर देखा कि एक बड़ी भारी मछली किनारे पर पड़ी है और लोग उसका पेट चीर रहे हैं। पेट चीरने के बाद उसके अंदर से एक सुंदर स्त्री निकली। उसे देखते ही कंद ने केसर से कहा, "यह तो वह सुमना है, जिसके साथ मेरा विवाह हुआ था! किंतु यह इस मछली के पेट में कहां से आ गई? चलो, हम छिपकर इसकी बात सुनें, देखें यह क्या कहती है?" लोगों ने उस स्त्री से पूछा, "तुम कौन हो और इस मछली के पेट में कैसे आ गई?" उसने कहा, "मैं रत्नाकर नगर के निवासी जयदत्त ब्राह्मण की पुत्री हूं। मेरा नाम सुमना है। मेरा विवाह एक सुंदर ब्राह्मण युवक के साथ किया गया था। रात में जब मैं उसके साथ अपने मकान की छत पर सो रही थी, तो न जाने वह ब्राह्मण युवक मुझे छोड़कर कहां चला गया? अपने पति के वियोग में बेचन होकर आत्महत्या करने के लिए मैं नदी में कूद पड़ी। वहां इस मछली ने मुझे निगल लिया।" तभी जन-समूह के बीच से यज्ञस्वामी नाम का एक ब्राह्मण निकलकर उसके पास आया और बोला, "बेटी! में तेरा मामा हूं। मेरा नाम यज्ञस्वामी है। तुम घर चलो।" तभी मामा को देखकर सुमना उससे लिपटकर रोने लगी और बोली, "आर्यपुत्र के वियोग में आग ही मेरी शरण है। आप मुझे अग्नि में जलने दीजिये और लकड़ियों का प्रबंध कर दीजिये।" उसके मामा ने उसे बहुत समझाया, किंतु वह अपने निश्चय से न डिगी। तब

उसका अग्नि-प्रवेश का निश्चय जानकर कंदर्प उसके पास गया। उसे देखते ही सुमना ने पहचान लिया और उसके चरणों पर गिर पड़ी। फिर उसने सब लोगों और अपने मामा को बता दिया कि यही मेरे पति ह। यह जानकर सब लोग प्रसन्न हुए और यज्ञस्वामी कंदर्प तथा केसर के साथ उसे अपने घर ले गया।

" 'कुछ दिन बीतने पर केसर ने कंदर्प से कहा, "तुम्हें अपनी पत्नी मिल गई है, इसलिए तम अपन नगर रत्नपुर को चले जाओ और मैं तीर्थों में घूमता हुआ शरीर छोड़ दूंगा।" यह सुनकर यज्ञस्वामी ने केसर से कहा, "तुम ऐसा क्यों कहते हो? जीवित रहने पर मनुष्य को सब-कुछ प्राप्त हो जाता। इस प्रसंग में मैं तुम्हें एक कथा सुनाता हूं : चंडपुर नगर में देवस्वामी नाम का एक ब्राह्मण था। उसकी कमललोचना नाम की अत्यंत सुंदरी कन्या थी। देवस्वामी के पास कुसुमायुध नाम का एक शिष्य भी विद्या पढ़ता था। वे दोनों एक-दूसरे को चाहने लगे थे, किंतु कमललोचना के पिता ने उसका विवाह किसी दूसरे के साथ निश्चित कर दिया। कमललोचना ने यह समाचार अपनी सखी के द्वारा कुसुमायुध को सुनाया और कहा, 'मैंने तुम्हें ही अपना पति बनाने का संकल्प किया है, सो मुझे किसी युक्ति से यहां से निकाल ले चलो।'

"कुसुमायुध ने रात के समय अपने एक नौकर को घोड़ी के साथ निश्चित स्थान पर भेज दिया और कहा, "मैं अमुक स्थान पर तुम्हारी प्रतीक्षा करूंगा, तुम कमललोचना को लेकर वहां आ जाना।" कमललोचना निःशंक होकर उस नौकर के साथ घोड़ी पर चढ़कर चल दी, किंतु वह नौकर उसे कुसुमायुध के पास न ले जाकर कहीं और ले गया। कमललोचना ने उससे पूछा, "मेरा स्वामी कहां है? ।ुम मुझे उसके पास क्यों नहीं ले जा रहे हो?" तो वह दुष्ट नौकर बोला, "अब मैं ही तुम्हारे साथ विवाह करूंगा, तुम्हारा स्वामी अब यहां नहीं है।" उसकी यह बुद्धि देखकर उस बुद्धिमती ने बात बदलकर उससे कहा, "वास्तव म तुम ही मुझे प्रिय हो। तुम मेरे साथ इसी समय विवाह क्यों नहीं कर लेते?" वह मूर्ख कमललोचना को नगर के उद्यान में बैठाकर विवाह की सामग्री लेने के लिए बाजार चला गया। इसी बीच में कमललोचना घोड़ी पर चढ़कर एक बूढ़े माला के घर पहुंच गई और उसे सारा हाल सुना दिया। जब वह दुष्ट नौकर बाजार से लौटा, तो वहां कमललोचना को न पाकर कुसुमायुध के पास पहुंचा। कुसमायुध न उससे कमललोचना के विषय में पूछा। उसने उत्तर दिया, "आप

स्त्रियों के कुटिल मन को नहीं जानते। वह अपने घर से निकलकर आई ही नहीं और लोगों ने मुझे वहां खड़ा देखकर घोड़ी छीन ली। मैं बड़ी मुश्किल से अपने प्राण बचाकर आपके पास आया हूं।" यह सुनकर कुसुमायुध चुप हो गया और अपने घर लौट आया। घर लौटने पर उसके पिता ने उस पर विवाह करने के लिए जोर डाला। वह मान गया और बारात लेकर उसी नगर में आया, जहां कमललोचना रहती थी। बारात उस माली के घर के समीप एक बगीचे में ठहरी। उसमें कमललोचना ने अकेले घूमते हुए कुसुमायुध को देख लिया और सारा वृत्तांत उस माली से जाकर कहा। वह माली कुसुमायुध को वहां बुला लाया और उन दोनों का विवाह कर दिया।

"इसके बाद कुसुमायुध ने कमललोचना से सारा हाल जानकर उस दुष्ट नौकर को दंड दिया। फिर जिस कन्या से विवाह करने के लिए वह आया था, उससे भी विवाह करके कुसुमायुध अपनी दोनों पत्नियों के साथ अपने देश को लौट गया। अतः हे केसर! बिछुड़ों का इस प्रकार कभी-कभी अचानक मिलन हो जाता है। तुम्हारा भी अपनी पत्नी से मिलन अवश्य होगा।'

"यज्ञस्वामी के यह कथा सुनाने पर कंदर्प, सुमना और केसर कुछ दिनों तक उसके घर पर रहे और फिर अपने देश को चल दिये। लेकिन मार्ग में एक जंगली हाथी के आ जाने से वे एक-दूसरे से बिछुड़ गये। केसर कुछ दिन इधर-उधर भटकता हुआ काशी नगरी में फिर अपने मित्र कंदर्प से मिला और उसके साथ अपने नगर पटना आ गया। वहां कुछ दिन माता-पिता के साथ रहा। उधर सुमना कंदर्प और केसर से बिछुड़कर वन में इधर-उधर घूमने लगी। इन दोनों के न मिलने पर अग्नि में जलने के लिए तैयार हुई। तभी वे योगिनियां, जो कंदर्प को उठाकर लाई थीं, दूसरी योगिनियों पर विजय पाकर उधर आ निकलीं। उन्होंने अपनी विद्या से यह बात जान ली कि यह कंदर्प की पत्नी है और उससे बिछुड़कर प्राण देना चाहती है। अतः वे उसे उठाकर कंदर्प के नगर रत्नपुर में छोड़ आईं। वहां सुमना ने लोगों से सुना कि कंदर्प के माता-पिता तथा उसकी पत्नी अनंगवती उसके वियोग में अग्नि में जलकर मरने के लिए उद्यत हैं। यह सुनकर सुमना उनके पास पहुंची और उन्हें कंदर्प की दी हुई अंगूठी दिखाकर सांत्वना दी और सारा वृत्तांत सुना दिया।

"सुमना की बात से कंदर्प के माता-पिता तथा पत्नी अनंगवती आश्वस्त हुए

ग्रौर कंदर्प का पिता अपनी दोनों वधुओं को घर ले आया। उधर कंदर्प केसर से बिना कहे ही सुमना को ढूंढने के लिए पटना से चला आया और केसर भी उसके चले जाने से दुखी होकर रूपवती को ढूंढने के लिए अपने माता-पिता से बिना कहे घर से निकल गया। दैवयोग से कंदर्प घूमता हुआ उसी नगर में पहुंच गया, जहां केसर ने रूपवती के साथ विवाह किया था। वहां कोलाहल सुनकर उसने लोगों से इसका कारण पूछा। एक आदमी से उसे पता चला कि उसके मित्र केसर की पत्नी रूपवती अपने पति को न पाकर मरने के लिए तैयार है। उस आदमी ने उसे रूपवती से सुना हुआ सारा हाल भी सुनाया कि जब वृद्ध ब्राह्मण केसर को ठगकर बारात के साथ रूपवती को ले गया, तब मार्ग में रूपवती ने केसर को न देखकर उस ब्राह्मण से पूछा, 'आर्यपुत्र कहां है?' ब्राह्मण ने अपने पुत्र को दिखाकर कहा, 'यही तुम्हारा पति है।' यह सुनकर रूपवती बहुत क्रुद्ध हुई और फटकारती हुई बोली, 'मैं इस कुरूप को अपना पति नहीं बना सकती। मेरा तो वही पति है जिसके साथ कल मेरा विवाह हुआ था।' यह कहकर उसने खाना-पीना छोड़ दिया। तब वह ब्राह्मण उपद्रव के भय से उसे उसके पिता के घर छोड़ आया। रूपवती ने अपने माता-पिता को सारा हाल सुनाया। उन्होंने पूछा, 'तुम्हारे पति का पता कैसे लग सकता है?' रूपवती ने उत्तर दिया, 'मैंने एक राक्षस के मुंह से यह सुना था कि मेरा पति पटना के देसर नाम के ब्राह्मण का पुत्र केसर है।' उसके माता-पिता केसर को ढूंढने के लिए पटना में उसके पिता के पास अपने आदमी भेजे। उन्होंने पटना से लौटकर यह उत्तर दिया कि हमने देसर के घर जाकर केसर के विषय में मालूम किया, तो उसके पिता ने कहा कि वह अपने मित्र कंदर्प के साथ यहां आया था, किंतु कंदर्प के चले जाने पर वह भी रूपवती को ढूंढने के लिए कहीं चला गया है।

"इसके बाद केसर का समाचार न पाकर उसके वियोग से पीड़ित होकर रूपवती अग्नि में जलकर मरने के लिए तैयार हो गई। उसके साथ ही उसकी सखियां शृंगारवती और अनुरागवती भी मरने के लिए चल दीं, क्योंकि उन दोनों ने भी केसर के रूप पर मुग्ध होकर उससे विवाह करने का संकल्प किया था।

"लोगों से यह समाचार सुनकर कंदर्प उनकी चिता के पास पहुंचा और उनसे बोला, 'तुम प्राण मत दो। केसर जीवित है। मैं उसका मित्र कंदर्प हूं।' उसने उन्हें सारा हाल भी उनको बताया। उसकी बातों पर विश्वास करके

रूपवती ने मरने का विचार छोड़ दिया और सपनी सखियों के साथ घर लौट गई। उसका पिता कंदर्प को अपने घर ले गया और उसके अनुरोध से कंदर्प कुछ दिन वहीं रहा। इसी बीच में केसर घूमता हुआ दैवयोग से कंदर्प के शहर रत्न-पुर पहुंच गया और वहां मकान की छत से कंदर्प की पत्नी सुमना ने उसे देख लिया। हर्षित होकर वह अपने श्वसुर के पास गई और बोली, 'आर्यपुत्र का मित्र केसर आज-कल इसी नगर में है। उसे बुलाकर पूछिये। उससे आर्यपुत्र का पता अवश्य ही चल जायेगा।' यह सुनकर कंदर्प के पिता ने केसर को बुला भेजा। सुमना को देखकर केसर अत्यंत प्रसन्न हुआ और उसने हाथी के भय से बिछुड़ने से लेकर सारा हाल उसे सुना दिया। फिर कंदर्प के पिता और पत्नी सुमना से सत्कृत होकर केसर कुछ दिन तक वहीं रहा। इसी बीच में एक दिन कंदर्प का एक पत्र लेकर एक आदमी वहां आया। उस पत्र म लिखा था कि जिस नगर में केसर ने रूपवती के साथ विवाह किया था, उसी नगर में वह अब है। यह पत्र पाकर कंदर्प का पिता बहुत प्रसन्न हुआ और उसने कंदर्प को बुलवाने के लिए अपने दूत को तथा केसर को भेज दिया। वहां जाकर केसर अपनी पत्नी रूपवती से मिला और उसने उसकी सखियों अनुरागवती तथा शृंगारवती के साथ भी विवाह कर लिया। फिर अपने मित्र कंदर्प से विदा होकर और अपनी पत्नियों के साथ केसर अपने देश को लौट आया। कंदर्प भी अपने पिता के दूत के साथ अपने नगर आ गया और अपनी दोनों पत्नियों सुमना और अनंगवती के साथ सुखपूर्वक रहने लगा।

"इस प्रकार बिछुड़े प्रेमियों का मिलन अवश्य होता है। तुम भी ढूंढ़ने से अपनी पत्नी को अवश्य पाओगे। विधाता की गति को कौन जानता है ? मैंने स्वयं अपनी मरी हुई पत्नी को जीवित पाया है।' धनदत्त वैश्य बोला।

"अपने इस मित्र द्वारा उत्साहित होकर मैं अपनी पत्नी को ढूंढ़ता हुआ यहां आया हूं। यहां आकर मैंने सूअर और हाथी दोनों को देखा और इस हाथी ने मेरी पत्नी को अभी उगल भी दिया।"

धनदत्त वैश्य के ये वचन सुनकर राजा विक्रमादित्य ने बेताल के द्वारा अपनी रानी के पास से उसकी पत्नी को बुलवाकर धनदत्त को दे दी। इस विचित्र संयोग से प्रसन्न होकर उन दोनों स्त्री-पुरुषों ने राजा विक्रमादित्य की बड़ी प्रशंसा की।

: ५ :

# पूर्णाहुति

रानी कलिंगसेना को उसके विवाह की कथा सुनाते हुए कार्पटिक ने उसे यह कथा सुनाई :

इसके बाद राजा विक्रमादित्य ने धनदत्त वैश्य के साथ आये हुए उसके मित्र से पूछा, "तुमने अपनी मरी हुई पत्नी को किस प्रकार जीवित पाया ?" उसने उत्तर दिया, "मैं ब्रह्मस्थल गांव के एक ब्राह्मण का पुत्र चंद्रस्वामी हूं। मेरे घर में अत्यंत रूपवती स्त्री है। एक बार मैं पिता की आज्ञा से कार्यवश किसी दूसरे गांव में चला गया। मेरे पीछे एक कापालिक मेरे घर भिक्षा मांगने आया और उसने मेरी पत्नी को ऐसी दृष्टि से देखा कि वह ज्वर से पीड़ित होकर सायंकाल के समय मर गई। मेरे भाई-बंधुओं ने उसे ले जाकर श्मशान में चिता पर रख दिया। उसी समय गांव से लौटकर मैं श्मशान में पहुंचा। तभी वह कापालिक अपने कंधे पर खट्वांग रखे हुए वहां आया और उसने चिता की अग्नि पर राख फेंककर उसे शांत कर दिया। ऐसा करते ही आग में से मेरी स्त्री जीवित निकल पड़ी। वह कापालिक उसे अपनी सिद्धि से खींचकर अपने साथ ले चला और वह बचारी भी विवश होकर उसके पीछे-पीछे भाग ली। मैं भी धनुष हाथ में लेकर उसके पीछे-पीछे चल दिया। वह कापालिक गंगा के किनारे पर एक गुफा के निकट पहुंचा और अपने खट्वांग को द्वार पर रखकर मेरी स्त्री को उसके अंदर ले गया। मैं भी उसके पीछे-पीछे गुफा में घुस गया। वहां उस कापालिक ने पहले से मौजूद दो कन्याओं से कहा, 'जिस स्त्री के बिना मैंने तुम्हें प्राप्त करके भी नहीं भोगा, वह आज मेरे हाथ में आ गई है।' यह कहकर उसने मेरी पत्नी को दिखा दिया। इसी बीच मैंने बाहर जाकर उसका खट्वांग गंगा में फेंक दिया। उसके चले जाने से उसकी सिद्धि नष्ट हो गई और वह उन स्त्रियों को छोड़कर भागने लगा। मैंने बाण से उसे मार डाला और अपनी पत्नी तथा उन दोनों कन्याओं को लेकर अपने घर चला आया। मेरी पत्नी को देखकर बंधु-बांधव बड़े चकित हुए। मैंने उन्हें सारा हाल बताया। फिर उन दोनों कन्याओं से मैंन उनके माता-पिता का नाम पूछा। उन्होंने कहा, 'हम काशी के राजा सार्थवाह की पुत्रियां हैं। यह कापालिक हमें अपनी सिद्धि से यहां खींच लाया था।

आज तुम्हारे प्रभाव से हमें मुक्ति मिली है।' मैं उन कन्याओं को लेकर काशी गया और वहां मैं उन्हें उनके माता-पिता के पास छोड़कर लौट रहा था कि मार्ग में धनदत्त वैश्य से मुलाकात हो गई। फिर मैं आपके पास चला आया। इस प्रकार मैंने अपनी मरी हुई अपनी पत्नी को पाया।"

इसके बाद वे दोनों राजा से विदा होकर अपने-अपने स्थान को चले गये और राजा विक्रमादित्य भी गुणवती, चंद्रवती तथा मदनसुंदरी के साथ अपनी नगरी उज्जयिनी लौट आया। वहां आकर उसने चंद्रवती और गुणवती के साथ विवाह कर लिया। फिर उसने विश्वकर्मा के बनाये हुए देव-मंदिर की खंभे की पुतली को याद करके प्रतिहार को बुलाया और कहा, "राजा कलिंगसेन के पास उस कन्या को मांगने के लिए, जिसकी मूर्ति मैंने देवमंदिर में देखी थी, दूत भेजो।"

ऐसा ही किया गया, लेकिन तुम्हारे पिता ने उस दूत से स्पष्ट कह दिया, "मैं विक्रमादित्य के साथ अपनी पुत्री का विवाह नहीं करूंगा।" जब यह समाचार राजा को मिला, तो वह बड़ी भारी सेना लेकर तुम्हारे पिता के पास पहुंचा। वहां दोनों ओर की सेनाओं को युद्ध के लिए तैयार देखकर राजा विक्रमादित्य ने मन में सोचा कि इस कलिंगसेन की पुत्री के बिना मैं जीवित नहीं रह सकता। लेकिन अपने भावी श्वसुर को मारने से क्या लाभ ? क्यों न किसी युक्ति से काम निकालूं ? यह विचारकर वह बेताल के साथ अदृश्य होकर रात के समय तुम्हारे पिता के कमरे में पहुंचा। वहां बेताल ने तुम्हारे पिता को जगाकर हँसते हुए कहा, 'राजन् ! विषयशील से शत्रुता करके भी तुम सो रहे हो!' यह सुनकर तुम्हारे पिता एकदम उठ खड़े हुए और बेताल के साथ राजा विक्रमादित्य को सामने खड़े हुए देख वह सब-कुछ समझ गये और बोले, "अब मैं आपके आधीन हूं। जैसा आप कहेंगे, वैसा ही करूंगा।' बेताल के कहने से तुम्हारे पिता ने तुम्हारा विवाह विक्रमादित्य के साथ विधिपूर्वक कर दिया।

यह कथा सुनाकर कार्पटिक ने कलिंगसेना से कहा, "हे रानी ! राजा विक्रमादित्य ने तुम्हारे साथ बड़ी श्रद्धा और अनुराग से अपने प्राणों की भी बाजी लगाकर विधिपूर्वक विवाह किया है।"

कार्पटिक द्वारा कही गई इस कथा को सुनाकर रानी बोली, "इस प्रकार देवसेन कार्पटिक से अपने विवाह की बात सुनकर मैंने अपना क्रोध छोड़ दिया। हे सखियो ! राजा विषमशील के चरित्र का पता कौन पा सकता है ?"

इस प्रकार कलिंगसेना से विक्रमादित्य के प्रभाव का वर्णन सुनकर सब रानियां बहुत प्रसन्न हुईं और राजा विक्रमादित्य अपनी दूसरी रानियों तथा मलयवती के साथ सुख से साम्राज्य भोगने लगा।

एक बार दक्षिण देश से कृष्णशक्ति नाम का कोई राजपुत्र विक्रमादित्य के पास आया। उसके संबंधियों ने उसका राज्य छीनकर उसे निकाल दिया था। तब पांच सौ राजपुत्रों को साथ लेकर उसने यह प्रतिज्ञा की कि मैं बारह वर्ष तक राजा विक्रमादित्य की सेवा करूंगा। इस निश्चय से वह विक्रमादित्य के द्वार पर कार्पटिक के वेष में अपने साथियों के साथ रहने लगा। वहां अपने साथियों के साथ रहते हुए उसे ग्यारह वर्ष बीत गये। बारहवें वर्ष में उसकी पत्नी ने वियोग से पीड़ित होकर एक पत्रिका उसके पास भेजी। उसमें लिखा था कि "बस केवल तुम्हारे आने की आशा से मेरे प्राण नहीं निकले हैं।" रात के समय एकांत में जाकर वह उस पत्रिका को पढ़ने लगा। उसी समय राजा विक्रमादित्य भी नगर देखने के लिए आया था। उसने छिपकर उस पत्रिका को सुन लिया। वापस जाकर वह सोचने लगा कि यदि यह बारहवें वर्ष में अपनी पत्नी के पास न लौटा, तो कहीं वियोग से ये दोनों न मर जायें। यह सोचकर राजा ने कार्पटिक को बुलाया और एक आज्ञापत्र देकर कहा, "तुम उत्तर दिशा की ओर ओंकारपीठ के रास्ते से जाओ। पूछते-पूछते तुम खंडवटक नाम के एक गांव में पहुंचोगे। वहां मेरे इस आज्ञापत्र से तुम शासन करना, मैं वह गांव तुम्हें देता हूं।" राजपुत्र में ऐसा ही किया और वह खंडवटक पहुंच गया। वहां वह एक सुंदर राजमहल में जाकर रत्नजटित सिंहासन पर बैठ गया। तभी बेंत हाथ में लिये एक राक्षस आकर उससे बोला, "तुम इस राजसिंहासन पर कैसे बैठ गये?" राजपुत्र ने उसे आज्ञापत्र दिखा दिया। उसे देखकर राक्षस ने कहा, "ठीक है, अब तुम हमारे राजा हो और हम तुम्हारी प्रजा हैं। मैं यहां का प्रतीहार हूं।" यह कहकर उसने अन्य लोगों से भी उसका परिचय करा दिया। वह राजपुत्र उस राज्य को पाकर अत्यंत प्रसन्न हुआ। फिर वह अपने मित्रों के साथ अपने देश गया और अपना राज्य फिर पा लिया। इसके बाद अपनी पत्नी को लेकर खंडवटक लौट आया और सुखपूर्वक राज्य करने लगा।

एक बार राजा विक्रमादित्य ने एक ऐसे ब्राह्मण को देखा, जिसके रोंगटे खड़े हुए थे। उसने पूछा, "हे ब्राह्मण! तुम्हारा सारा शरीर रोमांचित क्यों है?" वह

बोला, "मैं पटना के अग्निस्वामी ब्राह्मण का पुत्र देवस्वामी हूं। मेरा विवाह एक दूर देश की ब्राह्मण-पुत्री से हुआ था। विवाह के समय वह कन्या बहुत छोटी अवस्था की थी। सो, मैंने उसे उसके पिता के घर पर ही रहने दिया। जब वह युवती हो गई, तो मैं अपने एक नौकर के साथ घोड़े पर चढ़कर उसे लेने के लिए ससुराल गया। मेरे ससुर ने उसे एक दासी-सहित मेरे साथ विदा कर दिया। हम सब घोड़ों पर सवार होकर चल दिये। मार्ग में मेरी पत्नी पानी पीने के बहाने नदी-तट पर गई। जब बहुत समय बीतने पर भी वह न आई, तो मैंने अपने नौकर को उसे देखने के लिए भेजा। पर वह नौकर भी लौटकर न आया। तब मैं स्वयं देखने गया। जाकर क्या देखता हूं कि मेरी पत्नी नौकर को मारकर खा रही है। यह देखकर मैं डर गया और भागकर दासी के पास आया, किंतु देखा कि वह दासी भी घोड़े को मारकर खा रही है। डर के मारे मैं वहां से भाग आया हूं। इसीलिए मेरे रोंगटे खड़े हुए हैं।" राजा ने उसे आश्वस्त किया और कहा, "स्त्रियां बड़ी दुस्साहसी और दुष्ट होती हैं। उन पर विश्वास न करना चाहिए।" एक मंत्री बोला, "आप ठीक कहते हैं कि स्त्रियां विश्वासपात्र नहीं होतीं। इस विषय में मैं आपको एक कथा सुनाता हूं :

इसी नगर में सोमशर्मा का पुत्र अग्निशर्मा ब्राह्मण था। वह माता-पिता का बहुत प्यारा, किंतु अनपढ़ था। उसका विवाह वर्धमान नगर के एक धनवान ब्राह्मण की पुत्री के साथ हुआ। वधू की अवस्था छोटी होने के कारण उसके पिता ने कन्या को कुछ समय तक अपने ही घर पर रखा। उसके युवती होने पर अग्निशर्मा माता-पिता की आज्ञा से उसे विदा कराने के लिए ससुराल चला। मार्ग में अनेक अपशकुन हुए, किंतु उनको उस मूर्ख ने शकुन समझा और 'जीओ ! जीओ ! पुकारा। शकुन देवता उसकी नासमझी को जान गये और उस पर प्रसन्न होकर उसकी रक्षा का निश्चय कर लिया। जब वह ससुराल में पहुंचा, तो उसका बड़ा सम्मान हुआ। रात के समय जब वह सो रहा था, तो उसकी पत्नी चुपचाप अपने उपपति के पास चली गई। उसका उपपति एक चोर था। इस कारण उसे फांसी पर लटका दिया गया था। यह देख वह विलाप करके उसका मुंह चूमने लगी। बस तभी उस चोर के शरीर में प्रविष्ट हुए भूत ने उसकी नाक काट ली। इस पर वह तुरंत अपने पति के पास लौट आई और शोर मचाने लगी कि इस दुष्ट ने मेरी नाक काट ली है।

"यह सुनकर उसके सगे-संबंधी वहां आ गये और उन्होंने अग्निशर्मा को खूब पीटा। सुबह होने पर अग्निशर्मा को राजा के सामने लाया गया और राजा ने उसे फांसी लगाकर मारने की आज्ञा दे दी। जब बधिक अग्निशर्मा को श्मशान में ले जाकर मारने के लिए उद्यत हुए, तो शकुन देवता ने अलक्ष्य वाणी में कहा कि यह निर्दोष है। अपनी पत्नी की नाक इसने नहीं काटी; और रात की घटना सुना दी। जब राजा को इसका पता लगा, तो उसने इसकी छानबीन कराई और अग्निशर्मा को निर्दोष पाकर छोड़ दिया और उसकी दुष्ट पत्नी को दंड दिया।"

मंत्री से यह कथा सुनकर राजा विक्रमादित्य ने उसकी बात का समर्थन किया। तब राजा के पास बैठे हुए मूलदेव ने कहा, "राजन् ! ऐसी बात नहीं है। स्त्रियां साध्वी भी होती हैं। इस संबंध में मैं आपको एक कथा सुनाता हूं :

"एक बार मैं अपने मित्र शशि के साथ पटना नगर की सुंदरता देखने और वहांके निवासियों की चतुराई से स्वयं परिचित होने के लिए वहां गया। वहां मैंने तालाब पर कपड़े धोती हुई एक स्त्री को देखा और उससे पूछा, 'यहां राहगीर लोगों के ठहरने का स्थान कहां है ?' उस स्त्री ने उत्तर दिया, 'यहां चकवा-चकवी किनारों पर, मछलियां जल में और भौंरे कमलों में रहते हैं। राहगीर लोगों के ठहरने का स्थान तो मैंने यहां नहीं देखा।' उस स्त्री के इस वाक्-चातुर्य से चकित होकर हम दोनों आगे चल दिये। मार्ग में हमने आम के पेड़ पर चढ़ी हुई एक सुंदर कन्या को देखा। उसकी दूसरी सखियां पेड़ के नीचे खड़ी थीं। हमने उस सुंदरी से कुछ आम मांगे। उसने हमसे पूछा, 'बताओ, गर्म आम खाओगे या ठंडे ?' मैंने कहा, 'पहले गर्म और बाद में ठंडे आम खिलाओ।' यह सुनकर उस लड़की ने कुछ आम धूल में फेंक दिये। हमने उन आमों को धूल से उठाकर फूंक मार-मारकर धूल-रहित करके खाया। यह देखकर वे सब हंस पड़ीं और पेड़ पर चढ़ी हुई वह लड़की बोली, 'देखो, ये तो गर्म आम थे, जिन्हें तुमने फूंक मारकर खाया। अब ठंडे आम खाने हैं, तो अपना कपड़ा फैलाओ।' हमने अपने आंचल फैला दिये। तब उसने कई आम हमारी झोली में डाल दिये।

"उसकी इस चतुराई पर मुग्ध होकर हम उन आमों को खाते हुए चल दिये। मार्ग में मैंने शशि से कहा, 'यदि मैंने इस चतुर कन्या के साथ विवाह न किया, तो मेरी धूर्तता क्या हुई ?' फिर हम वेष बदलकर उस कन्या के पिता यज्ञस्वामी के घर के सामने जाकर वेद पढ़ने लगे। उसने हमसे पूछा, 'आप कौन हैं और यहां

क्यों आये हैं ?' हमने उत्तर दिया, 'हम मायापुरी नामक स्थान से यहां विद्या पढ़ने के लिए आये हैं।' उसने कहा, 'आप इस चौमासे-भर मेरे ही घर पर रहिये।' यह सुनकर हम बोले, 'हे ब्रह्मण ! हम आपका वचन मान सकते हैं, किंतु इस शर्त पर कि चार महीने बाद हम जो वस्तु मांगें, आप वह दे दें।' यज्ञस्वामी बोला, 'जो कुछ मेरे घर में है, सब आपके लिए हाजिर है।'

"उसके ऐसी प्रतिज्ञा कर लेने पर हम उसके घर में रहने लगे। चार महीने पूरे होने पर हमने उससे कहा, 'अब हम अपने देश को लौटेंगे। आप अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार हमारी अभीष्ट वस्तु दीजिये।' उसने कहा, 'आप जो चाहेंगे, सो दूंगा।' तब मेरे मित्र शशि ने मेरी ओर संकेत करके उससे कहा, 'आप अपनी पुत्री का विवाह मेरे इस मित्र के साथ कर दीजिये।' प्रतिज्ञाबद्ध उस ब्राह्मण ने अपनी पुत्री का विवाह मेरे साथ कर दिया।

रात के समय एकांत में सोते वक्त मैंने अपनी उस पत्नी से कहा, 'क्या तुम्हें याद है कि तुमने आम गर्म खाओगे या ठंडे कहकर मेरी हँसी उड़ाई थी ?' यह सुनकर वह मुस्कराती हुई बोली, 'हम शहर के लोग गांववालों का इसी प्रकार मजाक उड़ाते हैं।' तब मैंने तुनककर उत्तर दिया, 'तुम्हें शहर में सुख होगा। मैं तो ग्रामीण हूं, तुम्हें शहर में ही छोड़कर गांव में चला जाऊंगा। यह मेरी प्रतिज्ञा है।' तब वह बोली, 'यदि तुम ऐसा करोगे, तो मेरी भी यह प्रतिज्ञा है कि मैं तुम्हारे द्वारा उत्पन्न हुए अपने पुत्र से बंधवाकर तुम्हें यहां मंगवा लूंगी।'

"इस तकरार के बाद हम दोनों एक दूसरे की ओर पीठ करके सो गये। उसके सो जाने पर मैंने अपनी अंगूठी उसे पहना दी और उसे छोड़कर उज्जयिनी चला आया। सुबह उठकर ब्राह्मण पुत्री ने अंगूठी देखी, तो सब-कुछ समझ गई। तब उसने अपने मन में कहा कि उन्होंने तो अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर दी, अब मुझे अपनी प्रतिज्ञा पूरी करनी है। उसने अंगूठी पर अंकित मेरे नाम को पढ़ा तो वह समझ गई कि मैं उज्जयिनी का प्रसिद्ध धूर्त मूलदेव हूं। तब उसने बहाना बनाकर अपने पिता से कहा, 'मेरे पति मुझे छोड़कर कहीं चले गये हैं। उनके बिना मैं सुख से नहीं रह सकती। इसलिए आप मेरे लिए तीर्थयात्रा का प्रबंध कर दीजिये।' पिता ने उसके बहुत आग्रह पर उसकी बात मान ली और बहुत-सा धन देकर नौकरों के साथ उसे भेज दिया।

"वहां से चलकर वह उज्जयिनी पहुंची और वेश्या बनकर रहने लगी। उसन

अपना नाम सुमंगला रखा और अपने विषय में यह प्रसिद्ध कर दिया कि वह कामरूप देश की प्रसिद्ध वेश्या है और बहुत-सा रुपया खर्च करनेवाले लोगों से ही मिलती है। जब मेरे मित्र शशि ने उसकी बहुत प्रशंसा सुनी, तो वह एक दिन उसके घर गया और उसके मूल्य आदि के बारे में पूछताछ की। उसने अपने नौकर से कहलवा दिया, 'मैं पैसे पर रीझनेवाली नहीं हूं, वरन् जो मनुष्य मेरे नियमों के अनुसार मेरे पास आयेगा, मैं बिना पैसे भी उससे मिलने को तैयार हूं।'

तब उसके रूप पर मुग्ध होकर शशि रात को उसके घर गया। द्वारपाल ने उससे कहा, 'आप पहले स्नान कर लीजिये।' फिर उसकी दासियों ने स्नान करने में ही पहला पहर बिता दिया। दूसरा पहर वस्त्र आदि पहनाने तथा सजाने में बिता दिया और तीसरा पहर खाने-पीने में। चौथे पहर में द्वारपाल ने कहा कि अब आप यहां से चले जाइए, क्योंकि चौथे पहर में वेश्याओं से नहीं मिला जाता है। इस प्रकार वहां से तिरस्कृत होकर शशि लौट आया। इसी तरह उसने अन्य कामुकों को भी ठगा। शशि ने आकर मुझसे कहा, 'उस वेश्या के नियम ऐसे हैं कि कोई व्यक्ति उससे मिल ही नहीं सकता।'

"शशि की बात सुनकर अगले दिन मैं अपने ही घर पर स्नान करके व अच्छे वस्त्र पहनकर तथा खा-पीकर उसके घर पहुंचा और उसके नौकरों को कुछ धन देकर उससे मिला। देखते ही उसने मुझे पहचान लिया और मुझे अपनी चेष्टाओं से वशीभूत कर लिया, किंतु मैं उसे पहचान न सका। मैं कुछ दिन तक उसके पास रहा और जब उसने जान लिया कि वह गर्भवती हो गई है, तब एक दिन उसने मुझे एक बनावटी पत्र दिखाया और कहा, 'कामरूप देश के राजा ने मुझे बुलाया है। मैं क्या करूं ? पराधीन हूं—यद्यपि मैं तुमसे ही प्रेम करती हूं, किंतु मुझे विवश होकर जाना पड़ेगा।' और वह मुझे वहीं छोड़कर पटना वापस चली गई।

"वहां समय पर उसके एक पुत्र उत्पन्न हुआ। बड़ा होने पर वह बालक सारी कलाएं सीख गया। बारह वर्ष का होते हुए भी वह बड़ा चंचल था। एक बार उसने अपनी उम्र के एक लड़के को पीट दिया जिससे उस लड़के ने उससे क्रोध में आकर कहा, 'जिसके बाप का पता नहीं, वह भी मुझे मारता है।' यह बात मेरे पुत्र को बड़ी बुरी लगी और उसने आकर अपनी मां से पूछा, 'मेरा पिता कौन है और कहां है?' उसकी मां ने उत्तर दिया, 'बेटा! तेरा पिता मूलदेव है और उज्जयिनी में रहता है।' यह कहकर उसने उसे सारा हाल बता दिया।

"अपनी मां से यह वृत्तांत सुनकर बालक बोला, 'माता ! मैं अपने पिता को बांधकर यहां तुम्हारे पास लाऊंगा और तुम्हारी प्रतिज्ञा पूरी करूंगा।' यह कहकर उस बालक ने अपनी माता से मेरी पहचान पूछी और उज्जयिनी में आ गया। यहां उसने मुझे एक द्यूतशाला में जुआ खेलते हुए देखा और पहचान लिया। जुए में उस बालक ने सभी जुआरियों को जीत लिया। बालक होने पर भी वह महा धूर्त था। सब उसे देखकर बड़े विस्मित हुए। उसने जुए में जीता हुआ सारा धन याचकों को दे दिया। रात के समय उसने युक्ति से मुझे तो जमीन पर सुला दिया और मेरा पलंग निकालकर ले गया। सुबह मैंने बाजार में जाकर देखा कि वह मेरे पलंग को बेच रहा है। मैंने उससे पूछा, 'इस पलंग का क्या मूल्य है ?' उसने उत्तर दिया, यह पलंग मूल्य से नहीं मिलेगा, वरन जो कोई आदमी अद्भुत वृत्तांत सुनायेगा, उसे मिलेगा।' यह सुनकर मैंने उससे कहा, 'मैं तुम्हें एक अद्भुत वृत्तांत सुनाता हूं, पर यदि तुम उसका अर्थ ठीक-ठीक न बता सकोगे, तो तुम जार के पुत्र समझे जाओगे और मैं इस पलंग को ले लूंगा।'

"बालक ने मेरी इस शर्त को स्वीकार कर लिया। तब मैंने उसे यह अद्भुत वृत्तांत सुनाया और इसका अर्थ पूछा : 'प्राचीन काल में किसी राजा के राज्य में दुर्भिक्ष पड़ा। उस राजा ने सूअर की प्रिया की पीठ पर सर्पों के वाहन की जल की बूंदों से स्वयं खेती की। उससे बहुत-सा अन्न पैदा हुआ और दुर्भिक्ष शांत हो गया।'

"यह वृत्तांत सुनकर उस बालक ने हंसते हुए कहा, 'इस वृत्तांत में क्या अद्भुतता है ? यह तो साधारण-सी बात है—'सर्पों के वाहन मेघ हैं, सूअर की प्रियतमा पृथ्वी है, विष्णु सूअर हैं, मेघों के जल से पृथ्वी में अन्न उत्पन्न होता ही है।'

"बच्चे की यह बात सुनकर मैं बड़ा विस्मित हुआ। तब उसने मुझसे कहा, 'अब मैं आपसे एक अद्भुत वृत्तांत कहता हूं। यदि आप उसका ठीक-ठीक उत्तर दे देंगे, तो मैं आपको पलंग दे दूंगा, पर यदि आपने ठीक उत्तर न दिया, तो आप मेरे दास होंगे।' मैंने उसकी शर्त स्वीकार कर ली। उस धूर्त बालक ने यह वृत्तांत सुनाया : 'प्राचीनकाल में एक ऐसा बालक उत्पन्न हुआ, जिसके पैदा होते ही पृथ्वी उसके चरणों के भार से कांपने लगी और उसने उसी समय बढ़कर दूसरे लोकों में भी पैर रख लिया।' बालक के इस वृत्तांत का अर्थ मैं न समझ सका और मैंने उसे असत्य बताया। इस पर उसने कहा, 'क्या भगवान के वामनावतार धारण करते ही उनके चरणों के भार से पृथ्वी नहीं कांप उठी थी ? और क्या उन्होंने

एकदम बढ़कर स्वर्ग में भी पैर नहीं रख लिया था ?' मुझे यह अर्थ समझाकर वह बालक कहने लगा, 'अब मैंने आपको जीत लिया है और आप मेरे दास हो गये हैं। यहां बैठे हुए सब आदमी मेरे साक्षी हैं। अब मैं जहां चलूं, वहीं आपको मेरे साथ चलना होगा।'

"यह कहकर उस धीर बालक ने मेरी बांह पकड़ ली। वहां बैठे हुए सब आदमियों ने उसकी बात का अनुमोदन किया और मैंने भी उसकी दासता स्वीकार कर ली। फिर वह बालक मुझे शर्त में बांधकर अपनी माता के पास पटना ले गया। उसकी माता ने मुझे देखकर कहा, 'आर्यपुत्र ! आज मैंने भी अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर दी। यह आपका ही पुत्र आपको बांधकर लाया है।' यह कहकर उसने सारा हाल मुझे सुना दिया। सब बातें जानकर उसके माता-पिता तथा बंधु-बांधव बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने बड़ा उत्सव मनाया। मैं भी बहुत समय तक अपनी पत्नी तथा पुत्र के साथ वहां सुखपूर्वक रहकर फिर उज्जयिनी में ही चला आया। इस प्रकार हे राजन् ! कुलीन स्त्रियां स्वामीभक्त भी होती हैं।"

मूलदेव से यह कथा सुनकर राजा विक्रमादित्य बहुत प्रसन्न हुआ। वह इसी प्रकार की अनेकों आश्चर्यजनक कथाएं सुनता-सुनाता तथा अनेकों आश्चर्यजनक कार्य करता हुआ बहुत काल तक शासन करता रहा।

इस प्रकार कश्यप मुनि के आश्रम में वर्षा ऋतु बिताने के लिए ठहरे हुए राजा नरवाहनदत्त ने मदनमंचुका से वियोग के दिनों की अपनी कथा सुनाते हुए ऋषियों से कहा, "यह कथा सुनाकर कण्वमुनि ने मदनमंचुका के विरह में पीड़ित मुझसे कहा, 'संयोग और वियोग तो मनुष्यों के जीवन में लगे ही रहते हैं। हे नरवाहन-दत्त ! तुम्हारा भी शीघ्र ही अपनी प्रिया के साथ मिलन होगा, तुम धैर्य धारण करो।'

यह वृत्तांत सुनाकर नरवाहनदत्त फिर मुनियों से बोला, "हे मुनियो ! कण्व ऋषि के इन सांत्वनापूर्ण वचनों से मेरा मन शांत हुआ। मैंने किस प्रकार शंभु के प्रसाद से क्रमशः स्त्रियां, विद्याएं और विद्याधरों का साम्राज्य प्राप्त किया है, यह मैं आपको पहले बता ही चुका हूं।"

नरवाहनदत्त से यह कथा सुनकर वहां रहनेवाले सभी मुनि लोग तथा उसके मामा गोपालक आदि बहुत प्रसन्न हुए।

इन्हां कथा-कहानियों में वर्षा ऋतु बीत गई। वर्षाऋतु के बीतने पर राजा

नरवाहनदत्त ने अपने मामा गोपालक तथा तपोवनवासी ऋषियों से विदा ली और अपनी पत्नियों तथा मंत्रियों के साथ विमान पर चढ़कर अपने निवास-स्थान ऋषभ पर्वत पर आ गया। वहां वह मदनमंचुका तथा अन्य रानियों के साथ विद्याधरों के चक्रवर्ती-पद को भोगता हुआ कल्पों तक सुख से रहा।

भगवान शिव ने यह कथा कैलास पर्वत पर पार्वती के प्रार्थना करने पर उन्हें सुनाई थी। फिर शाप से पृथ्वी पर अवतीर्ण हुए पुष्पदंत आदि शिव के गणों ने पृथ्वी पर इस कथा को प्रसिद्ध किया। यह कथा सुना चुकने पर भगवान शिव ने इस कथा को यह वरदान दिया है कि जो कोई भी व्यक्ति इस कथा को आदर से सुनेगा अथवा पढ़ेगा अथवा कहेगा, उसके सारे पाप क्षीण हो जायंगे और वह विद्याधरों का पद पाकर शिव-लोक को प्राप्त होगा।

●

लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी, पुस्तकालय
*L.B.S. National Academy of Administration, Library*

मसूरी
MUSSOORIE

यह पुस्तक निम्नांकित तारीख तक वापिस करनी है ।
This book is to be returned on the date last stamped

| दिनांक Date | उधारकर्त्ता की संख्या Borrower's No. | दिनांक Date | उधारकर्त्ता की संख्या Borrower's No. |
|---|---|---|---|
| | | | |
| | | | |
| | | | |
| | | | |
| | | | |
| | | | |
| | | | |
| | | | |
| | | | |

122144
LBSNAA

H
398.2
सोमदे

अवाप्ति सं० ~~15653~~
ACC. No.................

वर्ग सं.
Class No................

पुस्तक सं.
Book No..............

लेखक
Author.............................................

शीर्षक कथा-सरित्सागर ।
Title.............................................
.....................................................

H
398.2
सोमदे

LIBRARY
LAL BAHADUR SHASTRI
National Academy of Administration
MUSSOORIE

*Accession No.* 122144

1. Books are issued for 15 days only but may have to be recalled earlier if urgently required.
2. An over-due charge of 25 Paise per day per volume will be charged.
3. Books may be renewed on request, at the discretion of the Librarian.
4. Periodicals, Rare and Reference books may not be issued and may be consulted only in the Library.
5. Books lost, defaced or injured in any way shall have to be replaced or its double price shall be paid by the borrower.

*Help to keep this book fresh, clean & moving*